प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific

Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

भाग—२१

मेष—कन्या १९८२

प्रकाशक

विज्ञान—परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

अर्थ-शास्त्र
(Political Economy)

सहयोग संस्था—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ... १२१

औद्योगिक रसायन
(Industrial Chemistry)

अंगाराम्ल (Carbon dixiode or Carbonic acid gas) ले० कविराज श्री० प्रतापसिंहजी ७३

कड़ुए बादामका उड़नेवाला तेल—ले० कविराज श्री० प्रतापसिंहजी १५५

काँचका चूर्ण—ले० कविराज श्री० प्रतापसिंहजी १५४

खुरासानी अजवाइन—ले० कविराज श्री० प्रतापसिंहजी १५८

नत्रजनका वशीकरण—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. ४

भिलांवा—ले० कविराज श्रीप्रतापसिंहजी ... ७५

मिट्टीका तेल—ले० कविराज श्रीप्रतापसिंहजी... १५६

सिरका, इमली और नींबूका तेज़ाब—ले० कविराज श्रीप्रतापसिंहजी १५६

सुरमा—ले० कविराज श्रीप्रतापसिंहजी ... १५६

इतिहास
(History)

मुग़ल साम्राज्य और बुन्देले राजा—ले० श्री० चिरञ्जीलाल माथुर, बी. ए., एल.टी.... २५८

गणित
(Mathematics)

वृत्तच्छेद—ले० श्री० अवध उपाध्याय ... १८६

जीव-विज्ञान
(Biology)

होवरज़न प्राणी साँप है कि पक्षी?—ले० श्री० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. ... ३२

वृक्षोंका वृत्तान्त—ले० श्री० एल० जी० सिंह ८३, २२६

ज्योतिष शास्त्र
(Astronomy)

विश्वका विस्तार—ले० श्री० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. २६

सूर्य-सिद्धान्त—ले० श्री० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ४१, ८५, १६८, २७३

दर्शन
(Philosophy)

आइन्स्टाइनका सिद्धान्त और मन—ले० श्री० शंकरलाल जींदल, एम. एस-सी. ... २४५

पुरातत्व
(Archaeology)

ऐतिहासिक भूगोलका संक्षिप्त परिचय—ले० श्री० देवीदत्तजी शुक्ल १७

भौतिकशास्त्र
(Physics)

नींदमें विद्याध्ययन—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. ६७

परवर्तीय वाटरियां—ले० श्री० शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी. १०८

पारलोग्राफ़—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. ३४

प्रधान बाटरियाँ—ले० श्री० शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ७६, १०६
वर्षा विचार—ले० श्री० महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, एम. ए., डी. लिट ... २७
बाटरियोंका जोड़—ले० श्री० शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी. १२६
सूक्ष्म अन्तर—ले० श्री० नवनिद्धि राय, एम. ए. १

रसायन शास्त्र

(Chemistry)

परमाणु भार—ले० श्री० सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद १६०
रसायनके कुछ प्रारम्भिक सिद्धान्त—ले० श्रीसत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद ... २२८
रसायन या कीमिया—ले० श्री० नवनिद्धि राय, एम. ए. ६७
आलसी समुदाय—ले० डा० रामचन्द्र भार्गव एम. बी., बी. एस. २६१

वैद्यक तथा स्वास्थ्य रक्षा

(Medicine)

क्षयरोग और लहसुन—ले० श्री० नवनिद्धि राय, एम. ए. ५८
दिगम्बरी देवीका इतिहास—ले० डा० रामचन्द्र भार्गव, एम. बी. बी. एस. ... २३५
निद्रा—ले० डा० एम० एल० वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस. ६०
मक्खनिया दूध—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. ६
मिथ्योपचार—ले० श्री० रामदास गौड़, एम. ए. २१२
स्वच्छता—ले० श्री० कृष्णगोपाल माथुर, विशारद, साहित्यरत्न २४२
विसूचिका—ले० डा० रामचन्द्र भार्गव, एम. बी., बी. एस.... ... ... २६३
रोगमीमांसा—ले० श्री० रामदास गौड़, एम. ए. १२४
स्वास्थ्यका मूल जल—ले० श्री० नवनिद्धि राय, एम. ए. ७

मनोविज्ञान

प्रेत बाधा—ले० श्री० रामदास गौड़, एम. ए. १००
मानसिक आलस्य—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. ४
संगीतका प्रभाव—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. १६३

गल्प

सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. ३७, ५२

साधारण

(General)

देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. ११
देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य—ले० श्रीफूलदेव सहाय वर्मा, एम. ए., बी. एस-सी. १३
रँगनेकी विधि—ले० श्री० सत्येश्वर घोष, एम. एस-सी. २४६
समालोचना—ले० श्री० कृष्णानन्दजी ... ३६
समालोचना—ले० श्री० शुकदेव बिहारी मिश्र, बी. ए. २७१
समालोचना—ले० श्री० 'मुनि'... ... २७२
सफलताकी कुंजी—ले० श्रीनवनिद्धि राय, एम. ए. ४६
वैज्ञानिकीय— ७६

सृष्टि शास्त्र

ईश्वरकी माया—ले० श्री० नवनिद्धिराय, एम. ए. ११७

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २१ } मेष, संवत् १९८२ { संख्या १

सूक्ष्म अक्षर

[ले० श्रीनवनिद्धराय, एम. ए.]

हमने अभी विज्ञापन देखा है कि एक प्रकाशक तावीज़में मढ़ाने लायक भगवद्गीता १ इंच लंबी १ इन्च चौड़ी और आध इन्च मोटी १) में बेचते हैं। संपूर्ण भगवद्गीता इतने छोटे आकार में उपस्थित की गई है। विस्मय होता है कि कितने छोटे अक्षर इसमें छापे गये होंगे। पाठकोंने यह भी सुना होगा कि कोई कोई लोग अत्यन्त छोटे अक्षरों द्वारा एक पोस्टकार्ड में ८० से अधिक और १०० तक सतरें लिख डालते हैं। साधारणतः समझा जाता है कि इससे छोटे अक्षर लिखना भला कभी संभव हो सकता है। परन्तु विज्ञानकी महिमा अपरम्पार और अनन्त है। जैसे ईश्वर-की सृष्टिका पार पाना परिमित शक्तिवाले मनुष्यके लिए असंभव है उसी तरह विज्ञानकी अनन्त लीलाका पार पाना असंभव है। ठीक भी है। परमात्माकी सृष्टिके नियमोंका ज्ञान ही विज्ञान है। ऐसी अवस्थामें विज्ञानके विस्मय-मुग्ध-कारी नये नये आविष्कारोंका प्रतिदिन उपस्थित होते जाना कोई कठिन बात नहीं है। इङ्गलैण्डमें सूक्ष्म लेखक लोग एक पिनके सिरके बराबर स्थानमें सम्पूर्ण "लार्डस प्रेयर" (Lord's prayer) बरसों से लिखते रहे हैं। भला ध्यान तो कीजिए कि इसका मतलब क्या है। ५६ शब्द इस विन्दुके बराबर स्थानमें लिख डालना क्या आपको असम्भव प्रतीत नहीं होता? परन्तु यह तो बरसोंसे साधारण सी बात मानी जाती रही है।

जिन आविष्कारोंका वर्णन यहाँपर हम करनेवाले हैं वह तो अवश्य ही असंभव, और

संभव है, केवल चंडूखानेकी गप ही आपको समझ पड़ें। जो बातें पाश्चात्य देशोंमें बिलकुल साधारण लोगोंके ज्ञानमें घुस जाती हैं उनका पतातक हमारे देशमें बरसों हमारे अच्छेसे अच्छे पढ़े लिखे लोगोंको नहीं चलता। भारतीय विश्वविद्यालयोंके वैज्ञानिक उपाधि-धारी महाशयोंके सामने भी यदि कुछ पाश्चात्य आधुनिक अविष्कारोंका वर्णन किया जाय तो उन्हें भी यह न केवल विस्मयमें डाल देंगे पर सम्भवतः यह महानुभाव भी साधारण मनुष्योंकी तरह इन वैज्ञानिक आविष्कारोंको किसी मनचले मनुष्यके मस्तिष्ककी सृष्टि मात्र समझेंगे।

सन् १८५२ ई० में लंडनके एक सर्राफ़ डब्ल्यू पीटर्स महाशयने माईक्रोपैन्टाग्राफ़ (Micro-pantograph) सूक्ष्म-लेखक नामक एक छोटीसी मशीन का आविष्कार किया था। तब से अबतक किसी उत्साही और उद्योगी पुरुषने इससे काम नहीं लिया। अब श्रीयुत मैकईवनने इस पुरानी मशीनका पुनरुद्धार करके इसकी उपयोगिता और महत्ताका पूर्णरूपसे प्रकाश किया है। इसकी सहायतासे सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओंसे भी छोटे अक्षर मैकईवन लिख लेते हैं। इन्होंने इस मशीनकी सहायता से इतने छोटे अक्षर लिखे हैं जिनमें यदि सम्पूर्ण बाइबिल लिखी जाय तो एक इञ्च लंबे और एक इञ्च चौड़े काग़ज़में ८० सम्पूर्ण बाइबिल लिखी जा सकती हैं। सुनने मात्रसे विस्मयका ठिकाना नहीं रहता, इस बातमें विश्वास करनेको जी नहीं चाहता। विश्वास करनेका प्रयत्न करते ही ऐसा प्रश्न उठता है कि भला अब किसी भी असम्भव बातमें अविश्वास करना मुमकिन होगा। दिलमें धड़कन पैदा करनेवाली, दिमाग़को चक्कर देनेवाली यह बात केवल अनुमान नहीं है, पूर्णरूप से प्रमाण-सिद्ध है। मैकईवन महाशयने लिखकर लोगोंको दिखला दिया है।

इस सूक्ष्म-लेखक यंत्रने किस असंभवको संभव कर दिया है यह जाननेके लिए ज़रा और देखिए। आकारकी मात्रा "ा" की चौड़ाईको लीजिए यह $\frac{१}{१००}$ इंचके बराबर है। $\frac{१}{१००}$ इञ्च लम्बी और $\frac{१}{१००}$ इञ्च चौड़ी अथवा $\frac{१}{१००००}$ वर्ग इञ्च जगहको लीजिए। इतनी जगहमें इसाइयोंकी प्रार्थना (जिसमें ५६ शब्द हैं) ७० दफ़े लिखी जा सकती है और फिर भी कुछ जगह बाक़ी रह जायगी। अब हिसाब लगाइए कि एक वर्ग इञ्चमें कितने शब्द लिखे जा सकते हैं। ५६ × ७०=३९२ शब्द $\frac{१}{१००००}$ वर्ग इञ्च जगह में लिख जायंगे और जगह बच जायगी। इसलिये १ वर्ग इञ्च जगहमें चार करोड़ शब्द लिखे जायँगे।

मैकईवन महाशयकी इच्छा है कि सूक्ष्म लेखन-विधि तथा इस सूक्ष्म-लेखकको और भी उन्नत करके राजकीय गोप्य दास्तावेज़ों, काग़ज़ों और ख़बरोंको लिखनेके लिए लड़ाईके समयमें काममें लानेका मार्ग बनावें। इस विधिसे बड़ी लम्बी लम्बी चिट्ठियाँ पत्रवाहक द्वारा भेजी जा सकती हैं। दुश्मनों को पता भी नहीं चल सकता कि वाहक ख़बरको कैसे और कहाँ छिपाये हुए है। कोट या कुर्ते के साधारण बटनके ऊपर बड़ी लम्बी चौड़ी चिट्ठी बटनके किसी कोनेमें अंकित रह सकती है। यदि विज्ञानकी एक संख्याके बराबर जगह घेरनेवाला हाल भेजना हो तब भी एक बटन से ही काम चल जायगा। इससे छोटी-मोटी ख़बरें ऐनकके किसी एक कोनेपर अंकित रह सकती हैं। ऐनकका जो भाग नाकके ऊपर रहता है उसीमें न जाने कितनी ख़बर छिपी रह सकती है। तेज़से तेज़ निगाहवाले, होशियार से होशियार जाँच करनेवाले, अनुभवी से अनुभवी ख़ुफ़िया पुलिसवाले महाशयोंको अनुमान करना भी कठिन हो जायगा कि ख़बर किस जगहपर और कैसे छिपी हुई है। आवश्यक होगा कि सिद्धहस्त सूक्ष्मलेखक उपस्थित रहें जिनको यह मालूम हो कि ख़बर कैसे और कहाँ छिपाई जाती है। इनको भी यंत्रों द्वारा बड़ी छानबीन करनी पड़ेगी कि कहीं उनकी नाकके नीचेसे ही ख़बर लिये हुए वाहक निकल न जाय।

अनुमान कीजिए एक टीनका बटन है जिसमें २ पत्तर एक दूसरेके ऊपर चिपकाये हुए हैं। इस दो दलवाले बटनके भीतरी भागमें सूक्ष्म-लेखक यंत्र द्वारा सम्पूर्ण तुलसीकृत रामायणके बराबर हाल अंकित कर दिया गया है। बतलाइए पकड़े गये १०—१२ मनुष्योंके सब बटनोंके दोनों दलोंको अलग अलग करके सूक्ष्म पाठकको छिपी हुई खबर ढूँढनेमें कितनी कठिनाई होगी। जरा सी असावधानीसे काम बिगड़ जाना या जासूसका बच जाना क्या साधारण सी बात न होगी। सुईके नाकेसे भी छोटी जगहमें दो मित्रदलोंके आपसका समझौता विशद रूपसे अंकित किया जा सकता है। अर्थ और नीति सम्बन्धी सम्पूर्ण लिखा पढ़ी, टीका टिप्पणी और व्याख्या सहित, सुईके नाकेपर लिखी हुई रह सकती है। बेचारे पकड़नेवाले कितनी ही मेहनत करेंगे और फिर भी असफल रहनेकी संभावना कितनी अधिक होगी।

इस आविष्कारसे सभ्यताको लाभ पहुँचानेवाला एक बड़ा भारी काम लिया जा सकता है। मैकईवन कहते हैं कि ऐसा ज्ञान जिसका चिरस्थायी रहना आवश्यक है और सभ्यताके विकाशके लिए परमोपयोगी है इस्पातके पत्तरोंपर सूक्ष्म-लेखक यंत्रसे अंकित करके सदाके लिए सुरक्षित रक्खा जा सकता है। ऐसा इस्पात लोहा भी विज्ञानकी महिमाके कारण ही बनता है जिसमें कभी किसी अवस्थामें भी मुर्चा नहीं लग सकता। यही वैज्ञानिक इस्पात इस ज्ञानको अंकित करनेके काममें लाया जायगा। सम्पूर्ण पुस्तकें अत्यन्त थोड़ी सी जगहमें अंकित सुरक्षित बक्समें बन्द रहेंगी।

हिन्दुओंने कहीं ऐसे यंत्र और ऐसे इस्पातका आविष्कार अपनी सभ्यताके युगमें कर लिया होता तो हिन्दुओंकी सभ्यताका लोप होना अथवा क्षीण होना असम्भव हो जाता। न जाने कितनी अमूल्य पुस्तकें न जानें कितना नैसर्गिक साहित्य, न जानें कितना शिल्प और कला सम्बन्धी सौन्दर्य पूर्ण आविष्कार कालके कराल चक्रने हमारी अकर्मण्यताने तथा सभ्यताद्रोहियोंने नाश कर दिया। आर्योंका धर्म, आर्योंका विज्ञान और उनकी विद्याका विशद रूप अनुमान द्वारा भी निर्माण करना इस समय उद्योगी पुरातत्ववेत्ताओंके लिए कठिन हो गया है। वेद भगवानसे लेकर जो जो समुज्ज्वल रत्न आर्य साहित्यमें निर्मित हुए हैं वह सब थोड़ेसे इस्पातके पत्तरोंपर अंकित इस समय यदि हमें मिल जाते तो मनुष्य मात्रका कितना भला होता—यह केवल अनुमान ही किया जा सकता है। मनुष्यको पूर्वमें और पश्चिममें परमेश्वरकी अनन्त सृष्टिके अनन्त नियमोंका फिरसे ढूँढ़ निकालना आवश्यक न होता। समय इसमें नष्ट न होता वरन् मनुष्य ईश्वरीय आज्ञाओं और नियमोंका पालन करता हुआ उन्नतिके पथपर अग्रसर रहता, मोक्ष पाना बहुत सरल हो गया होता। परन्तु परमात्माकी इच्छा सर्वोपरि है। सभ्यताके विकाश और उसके ह्रासका चक्र भी परमात्माने शायद मनुष्यके लाभके लिए ही बनाया है। यदि मसाला तैयार मिले तो संभव है मनुष्य आलसी और अकर्मण्य हो जाय। पूर्वजोंसे जायदाद पानेपर सन्तान कम उद्योगशील रहती हैं ऐसे ही यदि हमको अपने पूर्वजोंसे ज्ञान और विज्ञानका अनन्त भाँडार मिल जाता तो सम्भवतः मानसिक और बौद्धिक उन्नतिके मार्गमें हम भी शिथिल और उद्योगहीन दिखलाई पड़ते। भारतवासी इस समय भारतवर्षकी अवनत दशाको देखकर उन्नतिके साधन ढूँढ रहे हैं। यही उद्योग उन्नतिका बीज है और यही उद्योग भारतवर्षमें नई शक्तिका निर्माता होगा।

नत्रजनका वशीकरण

[ले० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

खेतीके लिए खाद परमावश्यक वस्तु है। देहातमें तरह तरहके खादोंका प्रयोग होता है। खाद एकत्र करना आसान काम नहीं है। फिर भी परमात्माकी कृपासे किसानोंकेलिए प्राकृतिक खाद प्रायः मिल जाती है। परन्तु अब खाद एकत्रित करनेमें वह सुविधा नहीं होती जो पहले इस देशमें थी। भारतवर्षमें विज्ञानका युग अभी नहीं आया है इसलिए दिन प्रतिदिन खादकी कमीके कारण खेतोंकी पैदावार पहलेकी अपेक्षा घटती जाती है। गोबर, विष्टा, घास, पत्ती तथा राख आदि खादकी सामग्री हैं। हड्डियाँ ज़मीनमें मिलकर अच्छी खाद उत्पन्न करती थीं पर अब देश भरमेंसे हड्डियाँ बिन बिन कर रेलोंमें लद-कर विदेश चली जाती हैं। इन हड्डियोंसे बहुत अच्छा खाद यूरोपमें बनाया जाता है। खेतीके लिए पृथ्वीके समस्त देशों में खादका प्रश्न बड़े महत्व का है।

भारतवासी चुपचाप ईश्वरपर भरोसा किये हुए जैसे तैसे अपने दिन बिताते हैं। यूरोप निवासी ईश्वर में विश्वास अवश्य करते हैं, परमात्माकी कृपा सर्वोपरि समझते हैं परन्तु अकर्मण्यता ईश्वरीय नियमके विरुद्ध समझकर अपनी कठिनाइयोंको दूर करनेकेलिए निरन्तर उद्योगशील रहते हैं। पहले वैज्ञानिक रीतियों द्वारा खादका विश्लेषण किया गया। पता चला कि नत्रजनके यौगिक नाइट्रेट या नत्रित तथा कई नत्रजनित पदार्थ जहाँ उपस्थित होते हैं वहीं खादकी उत्पादक और उत्तेजक शक्ति दिखलाई पड़ती है। नत्रजनके इन यौगिकोंकी ढूंढ़ समस्त भूमण्डलमें होने लगी। दक्षिण अमरीकाके चिली नामक देशमें नाइट्रेटकी खानें निकलीं। इस लवणकी खानोंसे चिलीको बड़ा लाभ हुआ।

परमात्माकी लीला अपरम्पार है। प्रकृतिके रहस्योंका समझना आसान काम नहीं है। न जाने क्यों मनुष्य जीवनकेलिए इतने आवश्यक पदार्थको प्रकृतिने बड़ी कंजूसीसे भूमंडलके ऊपर से बाँटा है। नाइट्रेट मूल्यवान धातुओंमेंसे नहीं है। परन्तु मनुष्य जीवनके लिए आवश्यक होने के कारण इस समय नाइट्रेटकी बहुत माँग है। पहले तो मनुष्यको यह ज्ञान ही नहीं था कि उसको नाइट्रेटकी कितनी आवश्यकता है। हर एक पाधा बिना नत्रजनके बढ़ ही नहीं सकता। जड़ें पृथ्वीके भीतर इधर उधर चक्कर काटकर नत्रजनित पदार्थोंको ढूँढ़ लेती हैं और जैसे तैसे अपना काम चलाती हैं। पहले ज़मानेके किसान और माली रासायनिक तो थे नहीं परन्तु थे समझदार! उन्होंने यह मालूम कर लिया कि खादसे फ़सिल अच्छी होती है इसलिये बिना जाने ही वह लोग पौधोंको नत्रजन पहुँचाते थे। उस ज़मानेके किसानोंका काम तो चल गया परन्तु आबादी बढ़नेके कारण जर्मनी जैसे देशोंमें अकालका डर है। ज़मीन अधिकाधिक अनाज पैदा करती जाती है फिर भी जर्मनीको अन्य देशोंसे खानेके पदार्थ मँगाने पड़ते हैं। वैज्ञानिकोंने इस तरफ़ ध्यान दिया। पता चला कि नत्रजन बराबर पृथ्वीमेंसे निकलता जा रहा है क्योंकि अनाजोंमें नत्रजन सबसे अधिक परिमाणमें मौजूद है। यह निश्चय हो गया कि अगर ज़मीन बराबर अनाज उपजाती रही तो जितना नत्रजन ज़मीनसे खिच आता है उतना केवल खादोंकी सहायतासे ही, फिर ज़मीनमें लाटाया नहीं जा सकता। इसलिए नत्रजनके यौगिकोंकी तरफ़ ध्यान गया। निश्चय किया गया कि नत्रजनित खाद पृथ्वीमें दीजाय। इसीलिए चिली देशकी नाइट्रेटकी खानोंका मूल्य बढ़ गया। युरोप, एशिया और उत्तरी अमरीकामें कहींपर भी नत्रजनके घुलनशील यौगिक ढूँढनेपर भी न मिल सके। प्रशान्त महासागरके किनारे किनारे

चिली प्रदेशमें सोडियम नाइट्रेटकी तहें मिलीं। यह सन् १८३० की बात है परन्तु सन् १८८० से इन खानोंमें काम ठीक तरहसे और ज़ोरसे आरंभ हुआ है। सन् १९१३ में २ से ३ मिलियन टनतक नाइट्रेट चिलीसे बाहर भेजे गये थे। यूरोपीय महायुद्धके कारण नाइट्रेटकी माँग और भी बढ़ गई। विस्फोटक पदार्थोंमें शोरा अथवा नाइट्रेट ही सबसे अधिक आवश्यक पदार्थ है। अब चिलीकी और भी बन आई।

युद्धके समयमें जर्मनीको चिलीके नाइट्रेट मिलना असंभव हो गया। बड़ी विकट समस्याका सामना था। खेतोंकेलिए चाहिए नाइट्रेट और तोपोंकेलिए भी चाहिए नाइट्रेट। जर्मनीका काम तमाम दिखाई पड़ने लगा। विपक्षी राह देखने लगे कि कब जर्मनी नाइट्रेटकी कमीके कारण भूखों मरता हुआ हाथ जोड़ते दिखलाई पड़ता है। शोरा न होगा तो तोपें क्या चलेंगी। परन्तु जर्मनी तो विज्ञानकी शरणमें था। विज्ञानके पुजारी रासायनिक प्रयोग-शालाओंमें प्रकृतिकी आराधना प्रयोगों द्वारा करने लगे। उनको सफलता हुई। प्रकृति देवीने उनके उद्योगपर प्रसन्न होकर सफलताका सरल मार्ग खोल दिया।

हवामें नत्रजन अनन्त परिमाणमें उपस्थित है। परन्तु नत्रजनके यौगिक बनाना अत्यन्त दुष्कर काम है। नत्रजनने किसीसे मिलना सीखा ही नहीं। हवामें ओषजन और नत्रजन दो पदार्थ हैं। पाँचमें एक भाग ओषजनका और ४ भाग नत्रजनके हैं। साँस द्वारा हवा हमारे अन्दर जाती है। फेफड़े ओषजनसे काम लेते हैं परन्तु नत्रजन जैसाका तैसा बाहर निकल जाता है। जलनेवाले पदार्थ ओषजनको अपनेमें मिलाकर जल जाते हैं परन्तु नत्रजन किसीसे मिलता नहीं। धातुएँ, वनस्पति, मनुष्य और अन्य जीवधारी निरन्तर नत्रजनसे नहाया करते हैं। परन्तु नत्रजनसे किसीका संयोग नहीं होता। यह हवामें जैसाका तैसा भरा पड़ा है। एक ओर तो नत्रजनित यौगिकोंकी इतनी आवश्यकता और दूसरी ओर नत्रजनका यह उदासीन भाव। वैज्ञानिकोंके सामने एक समस्या उपस्थित थी। क्या कोई तरकीब नत्रजनके यौगिक बनानेकी निकल सकती है जिससे हवाके नत्रजनको दूसरी धातुओंसे मिलाकर जीवनोपयोगी घुलनशील यौगिक बना लिये जायँ। यदि यह समस्या हल हो जाय तो इस चराचर सृष्टिका कितना भला हो। मनुष्य, पशु, पक्षी, पेड़ पल्लव सब अपना भोजन पा जायँ। काम बड़े महत्वका था। गत चतुर्थांश शताब्दीके भीतर विज्ञानने उदासीन नत्रजनको वशमें करके ही छोड़ा। अब नत्रजनके कई ऐसे यौगिक हवाके नत्रजनके मेलसे बनाये गये हैं जो खेती युद्ध और औद्योगिक क्रियाओंमें चिलीके नाइट्रेटके बराबर ही काम देते हैं। लड़ाईके ज़मानेमें इन कृत्रिम यौगिकोंकी सहायतासे ही जर्मनी अपना काम चला सका। उसी समय जर्मनीमें नत्रजनके कृत्रिम यौगिकोंका उद्योग बड़ी उन्नत अवस्था पर पहुँच गया। नत्रजनका वशीकरण अमरीकामें सफल नहीं हुआ परन्तु नारवे और जर्मनीने इसमें बड़ी सफलता प्राप्त की। बड़े बड़े कारखाने खुल गये। लाखों टन नत्रजनित यौगिक वायुके नत्रजन द्वारा तैयार किये गये। अमरीका और यूरोपके अन्य प्रदेशों में भी नत्रजनके यौगिक बनने लग गये। अब वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा जितने यौगिक बनते हैं उनका परिमाण चिलीसे निकलने वाले नाइट्रेटसे बहुत ज़्यादा है।

नत्रजनके वशीकरणकी यह कहानी सुनकर हमको अपने देशके पुराने ऋषियों की पुरानी कथाएँ याद आती हैं। सम्पूर्ण-त्यागी, वैरागकी पराकाष्ठापर स्थित, निष्काम कर्मकर्त्ता, निरन्तर परोपकार-रत, अनन्त ईश्वरके ध्यानमें लीन, भगवानकी भक्तिमें व्याप्त ऋषि लोग जैसे कामदेवके चुंगलमें फँसकर सृष्टिके चक्रमें पड़ जाते थे और ब्रह्माण्डका बड़ा उपकार करते थे वैसे ही नत्रजन विज्ञानकी प्रक्रियाओं द्वारा अपनी वियोगा-

त्मक बुद्धिको भूलकर संयोग करनेकेलिए बाध्य किया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि अपना ज्ञान और विज्ञान भूल कर वह अब सृष्टि-कर्ममें सहायक होगा।

मखनिया दूध

[ले० श्री नवनिद्धि राय, एम. ए.]

पृथ्वीका सबसे अधिक धनी व्यक्ति अमरीकाका एक निवासी है। उनका नाम जान. डी. राकफ़ेलर है। इस समय उनकी अवस्था ८५ वर्षकी है। इनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। ५८ वर्षकी अवस्थामें इनका स्वास्थ्य इतना अच्छा नहीं था जितना अब ८५ वर्षकी अवस्थामें है। इन्होंने जवानीको फिर बुला लेनेका गुर ढूँढ़ लिया है। अपने पुराने साहित्यमें च्यवन ऋषिकी कथा विख्यात है। कहते हैं कि बुढ़ापेमें इन्होंने फिरसे जवानी ओढ़ी थी। राकफ़ेलर महाशयने रुपयेके ज़ोरसे किसी दूसरे मनुष्यकी जवानी मोल नहीं ली है वरन् एक साधारण सा नुसख़ा, जिसपर रुपये पैसे खर्च करने की आवश्यकता नहीं हुई है, इनके बुढ़ापेकी स्वस्थ अवस्थाका मूल कारण है।

हिन्दुओंमें दूधसे बढ़कर कोई दूसरा खाद्य पदार्थ नहीं समझा जाता। शरीर और मस्तिष्क दोनोंका पोषण करनेवाला दूध है। दूधकी उपयोगितापर मुग्ध होकर हिन्दुओंने गाय को गोमाता माना और गोहत्यासे बढ़कर हिन्दू धर्ममें कोई दूसरा पाप नहीं समझा जाता। इसी दूधका एक रूपान्तर मात्र राकफ़ेलरके स्वास्थ्यका कारण है। इन्हें मन्दाग्निकी बीमारी थी। भोजन पचता नहीं था, धीरे धीरे इनकी मृत्यु इनके निकट आ रही थी। इनका जीवन स्रोत निश्चित रीतिसे सूखता जा रहा था। यह दुख दूर करनेका कोई उपाय दिखलाई न पड़ता था। डाक्टर जो कुछ कर सकते थे करनेके लिए उद्यत थे परन्तु मन्दाग्नि की कोई दवा, उसको दूर करनेका उपाय, दिखलाई न पड़ता था। धनकी शक्ति राकफ़ेलर महाशयकी सहायता करनेमें असमर्थ थी।

राकफ़ेलर अत्यन्त उद्योगी मनुष्य हैं। अपने निरन्तर उद्योग और अथक परिश्रमके कारण ही इन्होंने अपने बाहुबलसे २५० मिलियन (पचीस करोड़) पाउण्डकी जायदाद पैदा कर ली। यह पचीस करोड़ पाउण्ड ३ अरब ७५ करोड़ रुपये के बराबर होते हैं। पहले यह साधारण मज़दूरकी अवस्थामें थे पर परमेश्वरकी कृपा से और अपनी शक्तिके उचित उपयोगके कारण संसारके सबसे धनी व्यक्ति बन गये। यही परिश्रम और उद्योग इन्होंने अपने स्वास्थ्यको ठीक करनेकेलिए ख़र्च कर दिया। इन्होंने बुढ़ापेमें जवानी फेर लानेका गुरुमंत्र ढूंढ़ ही निकाला। यह मंत्र चाहे औरोंकेलिए लाभकर न हो पर राकफ़ेलर महाशयने तो इसकी सहायतासे अपना काम सिद्ध कर ही लिया, अपने शत्रु मन्दाग्निपर विजय प्राप्त कर ही ली।

भूमंडलका सबसे धनी यह व्यक्ति कई वर्षों तक बराबर भूखा रहा। जो कुछ यह खाते थे पचता न था। मन्दाग्नि इतनी तेज़, दुखद और कष्टदायक हो जाती थी कि खाना खानेका प्रयत्न करना ही उन्होंने छोड़ दिया। जीवनको बनाये रखनेकेलिए बिस्कुट और दूध खाकर रह जाते थे। अमेरिका में कई ऐसे भोजन बिकते हैं जो वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा इतने हलके और शीघ्र पचनेवाले बना दिये जाते हैं कि बीमार बुड्ढे और बच्चे इन्हें जल्दी पचा लें। दूध और बिस्कुटसे उकताकर इन भोजनोंकी शरण राकफ़ेलरको लेनी पड़ती थी परन्तु उनकी तुष्टि कभी न होती थी। खानेको जी ललचाया करता था परन्तु मन्दाग्नि के डरके मारे ये भूखे ही घूमा करते थे।

उदरकी बीमारियोंके बड़ेसे बड़े विशेषज्ञ भी थककर हार गये परन्तु राकफ़ेलरको कोई भी लाभ न पहुँचा सके। १० वर्ष हुए इनके एक

मित्र डाक्टर एच् एफ् बिगार इनके यहां अपनी छुट्टी बितानेकेलिए ठहरे हुए थे। अकस्मात् दोनों मित्रोंमें प्रोफ़ेसर मेच्नीकाफ़के आयु-प्रवर्धक सिद्धान्तोंपर बहस होने लगी। मेच्नीकाफ़ने उदर और आमाशयकी बीमारियोंके लिए लैक्टिक् एसिड (Lactic Acid) नामक तेज़ाब जो दही और मट्ठेमें रहता है अत्यन्त उपयोगी बतलाया है। मेच्नीकाफ़का सिद्धान्त था कि मट्ठा, दही और खट्टा दूध पाचन शक्तिके बड़े प्रबल सहायक हैं। डाकृर बिगारने राकफ़ेलर महाशयसे मेच्नीकाफ़के सिद्धान्तानुसार खट्टे दूधका प्रयोग करनेकेलिए अनुरोध किया। परन्तु राकफ़ेलर इसे पीनेकेलिए उद्यत न हो सके। किसी तरह भी इन्हें खट्टा दूध रुचिकर न था। डाकृर महोदयने तब इनसे कहा कि मक्खन निकाले हुए मखनिया दूधसे भी वही लाभ मिलनेकी संभावना है। इसपर राकफ़ेलर महाशय राज़ी हो गये। खट्टा दूध तो इन्हें अरुचिकर था परन्तु मखनिया दूध यह पी सकते थे और वह कुछ इन्हें रुचता भी था। प्रयोग महीनोंसे बरसोंतक चलता रहा। इन्होंने कई बहुत अच्छी गायें पालीं और अपनेलिए प्रतिदिन मखनिया दूध तैयार कराते थे। दिनमें तीन बार यह दूध पीते थे, साथ ही जब मखनिया दूध पीते थे तो एक बड़ा चिम्मच ओलाइवका तेल भी पी लेते थे। ओलाइवको हिन्दीमें जित वृक्ष कहते हैं। धीरे धीरे राकफ़ेलर की पाचन शक्ति बढ़ने लगी। जो चीज़ें बरसों से इन्होंने छुई भी न थीं खाने और पचाने लगे। कबाब और अण्डे पचा लेना इनके लिए साधारण बात हो गई।

मानसिक अवस्थाका प्रभाव पाचन शक्तिपर बहुत पड़ता है। 'एक्स-रे' (X Ray) की सहायतासे आमाशय और आँतोंमें भिन्न भिन्न मानसिक अवस्थाओंमें होनेवाली क्रियाओं का फ़ोटो लिया गया है और इस प्रकार यह सिद्ध किया गया है कि गुस्सेकी हालतमें उदरकी सब क्रियाएँ एक दम रुक जाती हैं और खुशीकी हालतमें पाचन क्रिया ज़ोरसे होने लगती है। इसलिए राकफ़ेलर महाशयने अपना समस्त कारबार अपने लड़केपर छोड़ दिया और अपना जीवन शान्ति-पूर्ण विनोद और व्यायाममें बिताने लगे। अन्तमें राकफ़ेलरको मन्दाग्निसे छुट्टी मिल गई।

धन ही सब सुखोंका मूल नहीं है। धनसे स्वास्थ्य नहीं मोल लिया जा सकता। मखनिया दूध जिसे साधारणतः कोई भी पीना पसन्द नहीं करता राकफ़ेलरके स्वास्थ्यका कारण सिद्ध हुआ। अब आशा की जाती है कि भूमंडलका सबसे धनी यह व्यक्ति सौ वर्षकी अवस्थातक जीवेगा—यही अब इनकी हार्दिक अभिलाषा है। वेद भगवानके शब्दोंमें हमारी भी यही प्रार्थना है—ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं, शृणुयामशरदः शतं प्रब्रवामशरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतंभूयश्च शरदः शतात्॥

स्वास्थ्यका मूल जल

[ले०—श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

कभी कभी बड़ीसे बड़ी कठिनाईको दूर करनेका इतना सरल साधन उपस्थित हो जाता है कि मनुष्य विस्मयमुग्ध हो जाता है। मनुष्य स्वस्थ कैसे रह सकता है इस प्रश्नपर विचार करते हुए एक पाश्चात्य डाकृरने यह निर्णय किया कि स्वास्थ्य बराबर क़ायम रखनेकेलिए सबसे सरल साधन यह है कि मनुष्य खूब पानी पिये। नुसख़ा इतना सस्ता है, दवाई इतनी सरल और साधारण है कि इसकी उपयोगिता और सत्यतामें विश्वास करनेको जी नहीं चाहता। उक्त डाकृर महाशयने यह निश्चय किया कि स्वस्थ आदमीको अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेकेलिए कमसे कम ६ गिलास पानी प्रतिदिन पीना चाहिए। इस नुसख़ेकी

महत्तामें अविश्वास निश्चय है क्योंकि हमारे देशमें खाना खानेके साथ शराब पीनेकी प्रथा तो है नहीं। धार्मिक और सामाजिक नियमोंके कारण जल ही खानेके साथ पिया जाता है। यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कोई मनुष्य ऐसा भी होगा जो स्वास्थ्यकेलिए आवश्यक परिमाणमें जल न पीता हो? पाश्चात्य देशोंके सम्बन्धमें जहाँ शराबका बहुत ज़्यादा रिवाज है और जहाँ अधिकांश लोग प्यास लगनेपर चाय या शराबसे ही काम लेते हैं डाक्टर महोदयका नुसखा किसी हदतक लाभकारी हो सकता है परन्तु क्या भारतवर्ष जैसे देशकेलिए भी इस मन्तव्यकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है? यदि इस नुसखेमें कुछ सचाई है तो इसपर ध्यान देना ज़रूरी है क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिको अपनेलिए यह निश्चय करना कि कमसे कम कितना जल उसके स्वास्थ्यकेलिए आवश्यक है, बड़ा कठिन काम है। जब प्यास लगी तभी पानी पी लिया, यही एक साधारण नियम लोगोंने मान रखा है, परन्तु कभी ज़्यादा और कभी कम जल शरीरके अन्दर पहुँच जाना साधारण बात है। कुछ खर्च न होनेके कारण जलके परिमाणकी ओर कोई क्यों ध्यान देने लगा? फिर यदि कम मात्रामें भी जल पहुँचा तो किसे इतनी फ़ुर्सत है कि वह प्रतिदिन इस बातका ध्यान करता रहे कि जलकी उचित मात्रा उसके शरीरमें पहुँची है अथवा नहीं। साधारणतः जल प्यास बुझानेका साधनमात्र ही समझा जाता है। मनुष्यको अनेकानेक बीमारियोंसे बचानेवाला स्वास्थ्यको ठीक रखनेवाला समझकर कोई जल नहीं पीता। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा जब जलकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है और जब यह निश्चय हो गया है कि बीमारियोंको दूर रखनेवाला हमारा मित्र जल है तो क्यों न जलकी महिमा और उपयोगिताका ध्यान रखकर प्रत्येक मनुष्य आवश्यक परिमाणमें जलको शरीरके भीतर पहुँचाता रहे और इस प्रकार डाक्टरके आक्रमणसे सुरक्षित रहे।

जो लोग स्वस्थ हों उन्हें खूब पानी पीना चाहिये जिससे स्वास्थ्य बिगड़ने न पावे। खूबका अर्थ है कमसे कम ६ गिलास। प्रश्न होता है कि इतने जलकी आवश्यकता क्यों है? जल उदरमें पहुँचकर भोजनके साथ मिलता है, उसे मुलायम करके पचनेके योग्य बनाता है, उदरके पाचक रसोंके साथ मिलकर उन्हें पतला करता है और इस तरहसे भोजनके छोटे छोटे कणोंपर भी पाचक रसोंकी क्रिया करानेमें सफल होता है। खूनमें मिलकर उसके गाढ़ेपनको कम कर देता है और शरीर भरकी झिल्लियोंको तर रखता है। शरीरके तापक्रमको ठिकानेपर रखता है। यदि एक स्थानपर तापक्रम घटता है और दूसरे स्थानपर बढ़ता है तो जल ही एक अंगसे दूसरे अंगतक गरमी पहुँचाकर तापक्रम बराबर कर देता है। यदि शरीरमें गरमी अधिक होती है तो पसीनेमें परिवर्तित होकर पसीनेके साथ तापको बाहर निकाल देता है। इस प्रकार तापक्रम निश्चित परिमाणसे अधिक नहीं बढ़ने पाता। शरीरके सड़े गले और रद्दी मलको दूर करनेका साधन भी जल ही है। शरीरके अन्दर जाकर खाना जलता है, जिसके फल शारीरिक शक्ति और तापक्रम हैं। जैसे कोयला जलनेपर राख बच जाती है वैसे ही भोजनके जल जानेपर शरीरमें मल रह जाता है और शरीरकी नसें, झिल्लियाँ, सेलें (रक्तकोष) बराबर टूटती फूटती और बिगड़ती रहती हैं। यह मल और टूटन फूटन रक्तके साथ मिली रहती है और खाल, फेफड़े, गुर्दे और अँतड़ियोंके द्वारा शरीरसे बाहर निकलती रहती हैं। पिया हुआ पानी पर्याप्त परिमाणमें होनेसे उपर्युक्त अवयवोंको शरीरके मल और ज़हरीले पदार्थोंको शरीरसे बाहर निकालनेमें सहायता देता है। शरीरका समस्त भाग, सब इन्द्रियाँ और सब अवयव नस, नाड़ी, झिल्ली, हड्डी, मांस इत्यादि पानीके बिना बन ही नहीं सकते। सबमें पानी है, दाँतों तकमें पानी है। सच तो यह है कि शरीरका दो

तिहाई जल है और शरीरमें सदा दो तिहाई जल बनाये रहना आवश्यक है। प्रतिदिन बहुत सा पानी शरीरके बाहर निकल जाता है। शरीर-को कामके लिए उपयुक्त बनाये रखना तभी संभव है कि जितना जल शरीरसे बाहर जाय उतना ही सदा शरीरके भीतर पहुँचता रहे। कुछ जल तो हमारे खाद्य पदार्थोंका अंश होनेके कारण शरीरमें पहुँच ही जाता है उसके अतिरिक्त ६ गिलास और पीना चाहिए। बात इतनी सीधी है फिर भी बहुतसे आदमी ऐसे हैं जो पर्याप्त मात्रामें जल नहीं पीते। सरमें दर्द हो रहा है, बदहज़मी है, और कारणका पता नहीं चल रहा है। स्वप्नमें भी यह ध्यान नहीं होता कि सिर दर्द और मन्दाग्नि-का कारण जलका न्यून परिमाण हो सकता है। यदि आप अबतक ६ गिलास जल रोज़ नहीं पीते रहे हैं तो कृपया अब आरम्भ कर दीजिए। एक या दो गिलास सवेरे कलेवाके साथ पीजिए। यदि गरम जल इस समय पिया जाय तो उदरकी क्रियाओंमें शक्तिका संचार होगा, शेष ४ गिलास दिनमें भिन्न भिन्न समयपर पी लीजिए। खाना खाते समय जल पीनेमें कोई बुराई नहीं है लेकिन इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि मुँहमें भोजन-का कुछ भी भाग न हो तब पानी पिया जाय, नहीं तो यह बुरी आदत पड़ सकती है कि जलके सहारे भोजन गलेके नीचे उतार दिया जाय और बिना चबाया हुआ खाना पेटके अन्दर पहुँचे।

मानसिक आलस्य

[ले०—श्री नवनिद्धि राय, एम. ए.]

विश्व विद्यालयके एक विख्यात प्रोफ़े-सर बड़े तेज़ और उद्योगी व्यक्ति हैं, निरन्तर कार्यमें लगे ही रहते हैं। कभी प्रयोगशालामें और कभी पुस्तकालयमें इन्हें काम ही करते आप देखेंगे। आलस्य तो इनके बदनमें छू नहीं गया। अभी इन्होंने अपनी मित्र मंडलीमें कहा, 'मुझे मानसिक काम करनेकी इच्छा बहुत कम होती है, मानसिक कार्य करनेको जी नहीं चाहता, मुझे ज़बरदस्ती अपनेको ठेलठाल कर अपने मस्तिष्कसे काम कर-वाना पड़ता है। मेरे शरीरके सब अंग कसरतके लिए बराबर भूखे रहते हैं, जैसे मेरा पेट भोजनके लिए। लेकिन जब मास्तिष्कसे काम लेनेका अवसर आता है तो मुझे अंकुशकी सहायता लेकर अपने मस्तिष्कसे ज़बरदस्ती काम कराना पड़ता है। किसी विषयपर मैं विचार करनेका प्रयत्न करूं तो मेरा मन सीधे रास्तेको छोड़कर इधर उधर घूमने लगता है और मुझे अपने मनको खींचकर फिर शक्ति प्रयोगद्वारा विचारणीय विषयर लगाना पड़ता है। उपर्युक्त प्रोफ़ेसर महोदयका मन और मस्तिष्क साधारणसे बहुत अधिक तेज़ और कार्यकुशल है। परन्तु इन्होंने अंगीकार किया है कि इनका मन सदा विचलित होनेका प्रयत्न करता रहता है। खेल कूद, आमोद प्रमोद, कथा कहानी इत्यदिकमें मन जल्दी लग जाता है लेकि-न सच्चे और उपयोगी मानसिक कार्यमें मस्तिष्क नहीं लगता। जो अवस्था इन प्रोफ़ेसर साहबकी है वही समस्त मनुष्य जातिकी है। संभव है कि प्रत्येक मनुष्यके लिए कुछ समय ऐसा होता हो जब उसका मस्तिष्क नई चीज़ सीखनेके लिए तैयार हो। मानसिक कार्य करनेवाले व्यक्तियोंके लिए दिन भर मानसिक कार्य करते रहना कैसे संभव हो सकता है। जैसे पेटमें निश्चित समयपर भूख लगेगी वैसे ही निश्चित समयपर मस्तिष्क-को भी मानसिक भोजनकी आवश्यकता होगी। ऐसे समयमें दिमाग़ तेज़ीमें काम करेगा। यदि सवेरेसे शामतक दिमाग़से काम लिया जाय तो उपर्युक्त प्रोफ़ेसर महोदयकी तरह अवश्य ही मन और मस्तिष्कको ज़बरदस्ती काममें लगाना पड़ेगा, आत्मसंयमके प्रयोगसे ही मस्तिष्कसे काम कराया जा सकेगा। कार्य करनेकी इच्छा कई कारणोंसे हो सकती है। मान लीजिये विश्वविद्या-

लयकी कोई परीक्षा पास करना है, कोई नया प्रयोग करके ख्याति प्राप्त करनी है, किसी व्यापारमें सफलता प्राप्त करना है, इत्यादिक कारण मनुष्यको कार्य करनेके लिए उत्तेजित कर सकते हैं। कोई न कोई वाह्य शक्ति काम करानेके लिए ज़रूर होनी चाहिये। धनोपार्जनकी लालसा मात्र ही मस्तिष्कसे काम करानेमें असमर्थ है। लेखकका भी यही अनुभव है।

यह स्वीकार कर लेनेमें हमें ज़रा भी संकोच न होना चाहिए कि मनुष्यका मस्तिष्क स्वभावतः आलस्यशील है। सफलता प्राप्त करनेके लिए आवश्यक है कि मनुष्यकी मानसिक निश्चेष्टताको दूर करनेका प्रयत्न किया जाय और मानसिक शिथिलताको वशमें रखकर ज़बरदस्ती काम कराया जाय। प्रायः लोग अपना समय मित्रोंसे मिलने जुलने, बिरादरीमें आने जाने और नाटक उपन्यास पढ़ने तथा अन्य आमोद प्रमोदमें बिताते हैं और इस तरहसे अपनेको समझा लेते हैं कि उन्हें गम्भीर कामोंके लिए अवकाश नहीं है। सफलता न होनेपर प्रायः लोग अपनेको समझा लेते हैं कि उनके पास समय नहीं है अन्यथा वह भी सफल हो सकते। परन्तु यदि ईमानदारीसे इस विषयपर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि सफल तथा असफल मनुष्योंके पास बराबर ही समय है।

जानवर और मनुष्यमें क्या भेद है। मनुष्यमें मास्तिष्क द्वारा कार्य करनेकी शक्ति है। भिन्न भिन्न अवस्थाएँ उपस्थित होनेपर अपनी मानसिक शक्ति द्वारा सोच विचारकर अपने लिए उपयुक्त कार्य प्रणाली निश्चित कर लेना मनुष्यका काम है। जानवर स्वभाववश काम करते हैं, सोच विचार कर नहीं। परन्तु मनुष्य भी स्वभावके वशीभूत होकर ही काम करते हैं। बहुत कम ऐसे मनुष्य हैं जिनके कार्य विचारके फल हों। जैसे भीड़के अन्दर मोटर चलाना तभी संभव है जब मशीनके ऊपर इतना आधिपत्य हो गया हो कि मशीनसे काम लेना एक तरहकी आदत हो गई हो। अगर किसी कामके लिए निश्चित आदत नहीं पड़ गई है तो विशेष अवस्था उपस्थित हो जानेपर उसी काममें बहुधा भूल हो होनेकी संभावना है।

हम लोग अपने अधिकाँश काम अभ्यास वश ही करते हैं। विशेष अवस्थाओंमें विशेष रीतिसे कार्य करनेका हमें अभ्यास हो जाता है। यदि किसी नई अवस्थामें हम पड़ जाते हैं तो उस स्थितिका सामना करनेका अभ्यास न होनेके कारण अधिकतर गलती हो जाया करती है। एक आदमी तैरना नहीं जानता—मान लीजिए उसे पानीमें ढकेल दिया जाय। उसने चाहे जितना तैरनेकी विधिपर पढ़ और सुन रखा हो परन्तु दो चार हाथ पानीके भीतर मारकर ज़रा सी देरमें उतरायगा और पानीके ऊपर हाथ फेंक कर डूब ही जायगा। यदि वह पानीके ऊपर हाथ न निकालता और पानीके नीचे ही हाथ मारता रहता तो वह इतनी देरतक उतराता रह सकता था कि सहायक पहुँच जाते। यह ग़लती अभ्यास न होनेके कारण ही हुई। साधारणतः नई स्थितिका सामना पड़नेपर यही हाल सब लोगोंका होता है। बहुत ही कम दशाओंमें विचारपूर्ण कार्य होता देखा गया है।

यदि हम अपने दैनिक व्यवहारकी ओर ध्यान दें तो तुरन्त ही मालूम हो जायगा कि हमारी आदतें आपसे आप बन गई हैं। विचारपूर्ण निश्चयके उपरान्त अभ्यास नहीं डाला गया है। ज्ञान और विचार द्वारा कार्य संचालन बहुत कम होता है। जैसे तैसे अभ्यास पड़ते जाते हैं और मनुष्यकी अवस्था बढ़नेपर यही आदतें दृढ़ हो जाती हैं।

हम सबमें बहुतसे ऐसे गुण और शक्तियाँ हैं जिनका हमें मानतक नहीं और जो कभी भी उपयोगमें नहीं लाई गई हैं। कोई कठिन समय उपस्थित होनेपर हम अपनी समस्त शक्तियोंको केन्द्रित करके बड़े कार्य कर डालते हैं। यही ऐसे

समय होते हैं जब कोई कोई मनुष्य वीरता और साहसपूर्ण देव-तुल्य कार्य कर दिखाते हैं। साधारणतः हम कभी भी अपनी समस्त शक्तियोंसे काम नहीं लेते। जबतक ज़बरदस्ती शक्तियोंको केन्द्रित करके काम नहीं किया जाता मस्तिष्क शिथिल रहता है, फल कुछ नहीं होता।

स्वभावसे मनुष्य आलसी है। थोड़ीसी ही सफलतासे अपनेको सन्तुष्ट कर हम अपने जीवनको उच्च कोटिका बनानेकी चेष्टा नहीं करते। हम अन्य लोगोंसे अपनी तुलना करके अपनेको धोखेमें डाल लेते हैं। यदि औरोंसे ज़रा भी अच्छा समझनेका कोई भी कारण हमारे पास हुआ तो बस अपने अनुद्योगपर निर्भर होकर अपनी भावी उन्नतिका हनन करनेका साधन हमें मिल गया।

हमें चाहिए कि हम बराबर इस बातका ध्यान रक्खें कि हमारा स्वाभाविक मानसिक आलस्य हमें शिथिल और अनुद्योगी न बनाने पावे। वेद भगवानने कहा है—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतम् समाः। कर्म करते हुए सौ वर्षतक इस लोकमें रहनेकी इच्छा करो। कर्म वही है जो हमें उन्नत करे।

देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य

[ले०—श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

पटना के राष्ट्रीय साप्ताहिक "देश" के विशेषांकमें प्रोफ़ेसर फूलदेव सहाय वर्माने बड़े महत्वपूर्ण विषयोंपर अपने विचार प्रकट किये हैं। राष्ट्रीय उन्नतिके साथ साथ वैज्ञानिक साहित्य और विज्ञानकी उन्नतिसे इन प्रश्नोंका घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण इस लेखको विज्ञानमें प्रकाशित करना चाहिये। पहला प्रश्न है—"सब विषयोंकी उच्चसे उच्च शिक्षा देशी भाषाओं द्वारा दिया जाना," दूसरा प्रश्न है "देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक शब्दोंका निर्माण"। विज्ञानपरिषत्‌को कार्य करते हुए दस वर्षसे अधिक हो गये तथा १० वर्षसे 'विज्ञान' बराबर निकल रहा है। उपर्युक्त दोनों ही प्रश्न विज्ञानपरिषत्‌के सामने उपस्थित रहे हैं। भारतीय भाषाएं वैज्ञानिक साहित्यके निर्माण द्वारा इस योग्य बना दी जायँ कि उनसे उच्च वैज्ञानिक शिक्षा देशी भाषाओं द्वारा देना संभव और सरल हो जाय, इस महान उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर विज्ञानपरिषत्‌की स्थापना की गई थी। कुछ साहित्य विज्ञान परिषद्‌ने स्वयं बनाया है और कुछ साहित्य विज्ञानपरिषत्‌के अस्तित्वके कारण हिन्दी भाषामें बन गया है। परन्तु जितना महान यह प्रश्न है उतना ध्यान इसपर नहीं दिया गया। इस विज्ञानके युगमें राष्ट्रोन्नतिका एक मात्र साधन सर्वसाधारणमें वैज्ञानिक ज्ञानका प्रसार है। यदि यह बात भली भाँति समझमें आ-जाय तो हमारे देशके विद्वान् इस ओर अवश्य ध्यान दें। अब राजनीतिके क्षेत्रमें कार्य करनेवाले हमारे नेताओंकी समझमें आचला है कि सर्वसाधारणमें शिक्षाका प्रचार तभी संभव है जब उच्चसे उच्च शिक्षा कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें देशी भाषाओं द्वारा दी जाने लगे। आशा बंधती है कि शिक्षाके माध्यम का प्रश्न कुछ दिनोंमें तै हो जायगा।

इस स्थानपर हमें दोचार शब्द हिन्दीमें वैज्ञानिक शब्दोंके प्रश्नपर कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। यह प्रश्न जितना ही आवश्यक है उतना ही कठिन भी है। वैज्ञानिक साहित्यके निर्माताओंमें इस प्रश्नपर एकमत होना अत्यन्त कठिन मालूम होता है। विज्ञानका प्रकाशन करते हुए विज्ञानपरिषत्‌को इस प्रश्नपर बराबर विचार करना पड़ा है परन्तु कोई मन्तव्य स्थिर कर लेना अबतक संभव नहीं हुआ। इस विषयपर विज्ञानमें कितने ही लेख निकल चुके हैं। विद्वानोंने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे इसपर विचार किया है। अब आवश्यक यही मालूम होता है कि वैज्ञानिकोंकी

एक कान्फ्रेंस किसी स्थानपर एकत्र की जाय और इस प्रश्नपर अन्तिम निर्णय कर ही लिया जाय।

अबतक विज्ञानपरिषत्‌की जो नीति रही है उसे हम संक्षेपमें उपस्थित करते हैं।

(१) पहले प्रयत्न यह किया जाता है कि हिन्दी भाषामें प्रचलित कोई शब्द ऐसा मिल जाय जो विदेशी वैज्ञानिक शब्दके भावको प्रकट कर सके।

(२) किसी उपयुक्त प्रचलित शब्दके न मिलनेपर ऐसा शब्द ढूंढा जाता है जो है तो विदेशी परन्तु किसी कारखानेमें कुछ विकृत रूपमें प्रचलित हो गया है। ऐसा शब्द मिलनेपर यह उचित समझा जाता है कि इसका प्रयोग कर लिया जाय।

(३) इसके बाद विदेशी वैज्ञनिक शब्दके भाव को प्रकट करनेवाला सरल संस्कृत शब्द निर्माण किया जाता है।

(४) संस्कृत शब्द निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि यह नया शब्द बहुत बड़ा, कठिन और दुरूह न हो, इसलिए यदि विदेशी शब्द छोटा सरल हमारी भाषामें घुल-मिल जानेवाला प्रतीत होता है तो जैसेका तैसा या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनके साथ उसका प्रयोग कर लिया जाता है। जैसे नाइट्रोजनके लिए नत्रजन, रेडियाके (Radio) लिए रेडियो सेल्के (cell) लिए सेल या कोष शब्द भी प्रयुक्त होता है परन्तु सेलके प्रयोगमें भी कोई अनौचित्य नहीं प्रतीत होता।

(५) यह नीति नहीं रक्खी गयी है कि सब अंग्रेज़ी शब्द जैसेके तैसे बिना किसी भी परिवर्तनके ले लिए जायँ। क्योंकि अनुभवसे यह प्रतीत हुआ है कि अपनी भाषासे कुछ सम्बन्ध रखनेवाला शब्द ज़्यादा आसानीसे भाषामें मिल जाता है। यदि सब ही वैज्ञानिक शब्द विदेशी हों तो भाषा मधुर नहीं वरन कर्णकटु और ऊबड़-खाबड़ मालूम पड़ेगी।

संक्षेपमें हमने विज्ञानपरिषत्‌की नीतिका मोटे रूपसे वर्णन कर दिया है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि प्रश्न हल हो गया है। इसपर अभी बहुत विचार होना आवश्यक है। यदि देशके गण्यमान्य वैज्ञानिक कोई मन्तव्य स्थिर करदें तो बहुत अच्छा हो। फिर प्रत्येक तीसरे वर्ष वैज्ञानिकोंकी एक सभा हुआ करे जो निर्मित वैज्ञानिक शब्दोंपर विचारकर उसपर अपनी मुहर लगा दिया करे।

भारतवर्षमें कई उन्नत भाषाएँ मौजूद हैं। उचित यही होगा कि सब भारतीय भाषाओंमें एक ही वैज्ञानिक शब्द उपयोगमें आया करें। इस तरह समस्त भारतवर्षमें वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणमें बड़ा सुभीता होगा। परन्तु दो कठिनाइयाँ हैं, हिन्दी-उर्दू समस्या और खर्च। निर्णयपर पहुँचना तभी सम्भव है जब खर्चका पूरा प्रबन्ध कर लिया जाय। हमारी व्यक्तिगत राय यह है कि केवल हिन्दी भाषाकी ओर ध्यान देकर कार्य किया जाय। मुसलमानोंको भी साथ रखना राष्ट्रीय दृष्टिसे बहुत अच्छा है परन्तु यदि धार्मिक, राजनीतिक, अन्तर्प्रान्तीय समस्याओंको वैज्ञानिक शब्दोंके निर्माणमें स्थान दिया जायगा तो सिवाय गड़बड़के और कुछ फल न होगा। अभी जबतक भारतीय सरकार और सब प्रान्तीय सरकारें इस प्रश्नको हल करनेके लिए उद्यत न होंगी कोई मन्तव्य स्थिर करना हमारी शक्तिके बाहर है। वैज्ञानिक शब्दोंके निर्माणका प्रश्न हमें जल्दी ही तै कर लेना आवश्यक है। गवर्नमेंण्टकी राह देखना मानों बीसियों वर्षोंके लिए इस प्रश्नको दूर हटाना होगा। हिन्दी भाषा के कार्य करनेवाले अपने ढंगसे और अपनी समझसे अपनी भाषा और अपने साहित्य तथा हिन्दी भाषाद्वारा नीची श्रेणीसे उच्चतम श्रेणीतक शिक्षाका ध्यान करके इस प्रश्नको हल कर लें। दस करोड़ हिन्दी भाषा बोलनेवाले भारतवर्षमें हैं। जापानी, अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच इत्यादिक भाषाओंके बोलनेवाले पाँच पाँच करोड़से कुछ कम या ज़्यादा हैं। इस तरह यदि १० करोड़ हिन्दी-भाषा-भाषी अपने लिए अपने ही

ढंगसे इस प्रश्नपर विचार करें तो कुछ बुरा नहीं है। हम मानते हैं कि अन्तिम निश्चय करते समय राष्ट्रीय और अन्य प्रान्तोंके दृष्टि कोणोंपर ध्यान रखते हुए कार्य करना उचित और आवश्यक होगा। परन्तु हमें अभी केवल हिन्दी भाषाको प्रबल और योग्य बनानेका उद्योग करना चाहिये। यदि हमारी भाषामें वैज्ञानिक साहित्य प्रचुरतासे और पूर्ण रीतिसे होगा तो अन्य भारतीय भाषाएं भी (उर्दूको छोड़कर) अवश्य हिन्दीसे अनुवाद करेंगी और हिन्दीमें निर्माण किये हुए शब्द प्रयोग करेंगी। जैसे हज़ारों शब्द बँगला और मराठीसे इस समय हिन्दीमें लिये जा रहे हैं ऐसे ही हिन्दी वैज्ञानिक शब्द अन्य भाषाओंको दे सकती है। हिन्दी राष्ट्रभाषा होनेसे अन्य भारतीय भाषाओं-पर बड़ा प्रभाव डाल सकेगी। पर हमें हिन्दीको योग्य बना लेना चाहिये। इस समय भी जितना वैज्ञानिक साहित्य हिन्दी भाषामें है उतना किसी भारतीय भाषामें नहीं है। 'विज्ञान' जैसा पूर्ण वैज्ञानिक पत्र किसी भारतीय भाषामें नहीं है। यदि हिन्दी-भाषा-भाषी विज्ञान वेत्ता महोदय अपनी भाषामें लिखनेका कार्य्य आरम्भ कर दें तो केवल पांच वर्षोंमें ही समस्या हल हो जाय। विज्ञान परिषत्‌को यदि सहयोग मिले तो उच्च कोटिकी वैज्ञानिक पुस्तकें शीघ्र प्रकाशित कर दे। काशी नागरी प्रचारिणीसभाके वैज्ञानिक कोषने भारतीय सब भाषाओंके ऊपर प्रभाव डाला है। अब यदि एक सर्वाङ्ग-पूर्ण कोष विज्ञान-परिषत् प्रकाशित कर दे तो 'विज्ञान' में प्रयुक्त हज़ारों वैज्ञानिक शब्द लेखक-मण्डलीके सामने उपस्थित हो जायँ। यह कोष अन्य भारतीय भाषाओंके लेखकोंको सहायता पहुँचावेगा और इस प्रकार भारतीय भाषाओं-के वैज्ञानिक शब्दोंमें एकरूपताका बड़ा प्रबल कारण और साधन हो सकेगा। पर वैज्ञानिक कोष-के निर्माणमें रुपएका खर्च है और परिषत्‌की आर्थिक अवस्था इस योग्य नहीं कि इतने खर्चका बोझ अपने ऊपर उठा सके। दो तीन वर्ष हुआ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनमें वैज्ञानिक कोष निर्माण सम्बन्धी एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था पर सम्मेलनकी आर्थिक स्थिति ऐसी न थी कि इस सम्बन्धमें कुछ करे।

हमारी राय है कि हम हिन्दी भाषियोंको हिन्दीको वैज्ञानिक भाषा बना देना चाहिये और इतना वैज्ञानिक साहित्य पुस्तकाकार छाप देना चाहिये कि भारतीय भाषाएँ हमारी भाषासे सहारा लेने लगें। रही उर्दूकी बात, सो उर्दू और हिन्दी हैं तो एक ही भाषा। पर हमें चाहिये कि अपने मुसलमान भाइयोंको उर्दूकी गति निर्धारित करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता देदें। वह उर्दूको जैसी चाहें बनावें, हमें उनकी इच्छाओंकी पूर्ति में कोई बाधा न उपस्थित करनी चाहिये। बँगला, गुजराती, मराठी, तामिल तेलगू और हिन्दीके लेखक अरबी और तुर्की भाषाओंसे शब्द उधार लेनेमें असमर्थ हैं और सदा असमर्थ रहेंगे, साथ ही उर्दू लेखक अरबी भाषासे शब्दोंको उधार लेना अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझते हैं। इस झंझट को सुलझाना अभी तो सम्भव नहीं मालूम होता, न हमारे पास इतनी शक्ति है। जो ज़रा सी कार्य्य करनेकी शक्ति हममें है वह हमें अपने साहित्यके निर्माणमें लगा देनी चाहिए। काम करना हमारा कर्त्तव्य है फल ईश्वरके हाथ है, भारत-भाग्य-विधाता भगवान भारतवर्षका मंगल करेंगे ही, हमें भारतको करुणामय भगवानकी करुणा और प्रेमके योग्य बनानेका निरन्तर उद्योग करना चाहिये, बस।

देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य।

[ले०—श्री फूलदेवसहाय वर्मा, एम. ए., बी. एस-सी.]

स्कूल और कालेजोंमें शिक्षाका माध्यम देशी भाषायें हों इस बातमें अब मतभेद नहीं रह गया है। सभी स्वीकार करते हैं कि मानव-शक्तिके पूर्ण-विकासमें, विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा-

का प्रचार, रुकावट उपस्थित करता है। विदेशी भाषा द्वारा जो शिक्षा दी जाती है उसमें ज्ञानका गहरापन उत्पन्न करनेका सर्वथा अभाव है; इसे प्रायः सब ही शिक्षा-शास्त्र-वेत्ता स्वीकार करते हैं। इस देशमें वैज्ञानिक विषयोंमें अन्वेषणकर्ताओंकी कमीका कारण अङ्गरेज़ी भाषाका माध्यम ही बतलाया जाता है।

देशी भाषाओंको शिक्षाका माध्यम होनेकी उपयोगिता और आवश्यकता सभी स्वीकार करते हैं किन्तु इस बातमें अभी मतभेद है कि कबसे अंग्रेज़ीका स्थान देशी भाषायें ग्रहण करें। कुछ तो ऐसे हैं जिनकी रायमें अंग्रेज़ीका माध्यम उठा देना चाहिये किन्तु कुछ ऐसे भी हैं। जिनकी रायमें अंग्रेज़ीका माध्यम उठा देनेसे उच्च शिक्षाका वर्त्तमान स्टैंडर्ड क़ायम नहीं रखा जा सकता। देशी भाषाओंके पोषकोंके मतानुसार अंग्रेज़ीका माध्यम देशी भाषाओंके प्रचार और साहित्यकी वृद्धिमें रुकावट डाल रहा है। ज्यों ही अंग्रेज़ीका माध्यम उठ जायगा, देशी भाषायें बड़ी शीघ्रतासे उन्नति करने लगेंगी और शीघ्र ही उनकी इतनी उन्नति और साहित्यकी वृद्धि हो जायगी कि सब विषयोंमें उच्च शिक्षा इनके द्वारा सरलतासे दी जा सकेगी। और शिक्षाका केवल वर्त्तमान स्टैंडर्ड ही क़ायम ही नहीं रखा जा सकता बल्कि इसमें वृद्धि भी हो सकती है। दूसरी ओर ऐसे लोग हैं जो विश्वास करते हैं और सच्चे दिलसे विश्वास करते हैं कि देशी भाषाओंका माध्यम शिक्षाके वर्त्तमान स्टैंडर्डको क़ायम नहीं रख सकेगा और अनेक वर्षोंतक ऐसी दशा रहेगा। इससे उनके मतसे देशी भाषाओंका उच्च क्लासोंमें माध्यम होना तबतक स्थगित रखा जाना चाहिए जबतक देशी-भाषाओंके साहित्यकी वृद्धि न हो जाय और उसमें सब विषयोंके अच्छे अच्छे ग्रन्थ तैयार न होजायं।

एक निरपेक्ष निरीक्षककी दृष्टिमें दोनों ही प्रकारके मत रखनेवालोंके कथनोंमें कुछ न कुछ सचाई है। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि देशी भाषायें अंग्रेज़ी भाषाकी तुलनामें बहुत पीछे पड़ी हुई हैं और यदि देशी भाषा शिक्षाका माध्यम हो जाय तब शिक्षाका स्टैंडर्ड अवश्यही न्यून हो जायगा। किन्तु इसके साथ साथ देशी भाषाओंकी शिक्षाका माध्यम हो जानेसे उनके साहित्यकी वृद्धिमें बहुत कुछ उत्तेजना मिलेगी और बड़ी शीघ्रतासे नये नये ग्रन्थ प्रकाशित होने शुरू होंगे इसे भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

जबतक ये कठिनाइयाँ विद्यमान हैं दोनों ही ओरसे इस समस्याको हल करनेकी चेष्टा होनी चाहिये अर्थात् नीचे वर्गोंसे क्रमशः देशी भाषाओंको शिक्षाका माध्यम बनाना और साथ साथ इनके साहित्यकी वृद्धि करना। यह सन्तोषका विषय है कि दोनो ही ओरसे इस प्रकारकी चेष्टाएं हो रही हैं यद्यपि इसकी गति बहुतही धीमी है। कई प्रान्तोंने स्कूलोंमें देशी भाषाओंको माध्यम स्वीकार कर लिया है यद्यपि अबाध्य रूपसे नहीं और अनेक अच्छे ग्रन्थ विशेषज्ञों द्वारा देशी भाषाओंमें लिखे जारहे हैं।

इस सम्बन्धमें सबसे अधिक कठिनता देशी-भाषाओंमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंके लिखनेमें उपस्थित होती है। उस्मानिया युनिवर्सिटीने—जो उर्दूके माध्यम द्वारा शिक्षा दे रही है—एक विशेष विभाग, अङ्गरेज़ीकी वैज्ञानिक पुस्तकोंको उर्दूमें अनुवाद करनेके लिये स्थापित किया है। वह अन्यान्य लोगोंको भी पुरस्कार द्वारा अनुवाद करनेमें उत्तेजना दे रही है। उसे भी इस कार्य्य में कठिनताका अनुभव हो रहा है। अन्य उन्नत देशीभाषाओंमें—हिन्दी, बङ्गाली, मराठी और तामिलमें इधर उधरके एकाध ग्रन्थ मौजूद हैं अथवा लिखे जा रहे हैं किन्तु इन सभी भाषाओंमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंके प्रकाशनकी गति बहुत ही निराशाजनक है। इसका मुख्य कारण वैज्ञानिक शब्दोंका अभाव है। वैज्ञानिक शब्दोंके निर्माणमें आजकल कोई पद्धति नहीं—कोई ऐसा नियम नहीं जिसके सहारे लेखक गण आगे बढ़ें। प्रत्येक लेखक अपनी

इच्छानुसार शब्दोंको गढ़कर अपने ग्रन्थों अथवा लेखोंमें व्यवहार करता है। कुछ लोग संस्कृत और अर्बी शब्दोंको ही व्यवहार करना पसन्द करते हैं। यह हर लेखकके लिए सम्भव नहीं क्योंकि प्राचीन भाषाओंका ज्ञान साधारणतः वैज्ञानिकोंको नहीं होता; इससे शब्दोंके निर्माणमें उन्हें बड़ी कठिनता होती है। कुछ ऐसे हैं जो अङ्गरेज़ी शब्दोंको ही तोड़ मरोड़कर हिन्दुस्तानी उच्चारणके अनुकूल बनाकर प्रयोग करना पसन्द करते हैं। कुछ ऐसे हैं जो बिना किसी परिवर्तनके शुद्ध अङ्गरेज़ी शब्दोंका ही व्यवहार करते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक शब्दोंके सम्बन्धमें बड़ा गोलमाल उत्पन्न हो गया है। ऐसा होना कोई असाधारण बात नहीं है। यूरोपकी भाषाओंमें भी कुछ समयतक ऐसी गड़बड़ी उत्पन्न हुई थी। वैज्ञानिक युगके आरम्भमें अङ्गरेज़ी भाषामें कुछ ही गोलमाल फैला हुआ था। किन्तु इन पाश्चात्य देशोंके आचार्य्योंने इस प्रश्नको हल कर डाला। समय समयपर एकत्रित हो वे लोग अपनी भाषाओंमें प्रचलित वैज्ञानिक शब्दोंपर विचारकर कुछ अनुपयुक्त शब्दोंको निकालकर जहाँ कमी थी वहाँ नये शब्दोंको जोड़कर अपने निर्णयोंको सर्वसाधारणके सम्मुख उपस्थित करते थे; जिन्हें अन्यान्य वैज्ञानिक अन्वेषक एवं लेखक अपनाकर तद्विषयक पुस्तकोंके लिखने और अपने विचारोंको प्रकट करनेमें सहायता पाते थे। इस प्रकार पाश्चात्य देशोंके विज्ञानाचार्य्योंने वहींकी भाषाओंमें उपयुक्त शब्दोंका प्रचार बढ़ाया। इस प्रकारका अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन अब समय समयपर बैठता है और नये शब्दोंके निर्माणपर विचारकर अपना निर्णय प्रदान करता है। इस सम्मेलनने सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य्य यह किया है कि यूरोपकी सभी भाषाओंमें प्रायः एक ही वैज्ञानिक शब्दोंका प्रचार बढ़ाया है जिससे एक भाषाभाषीको दूसरी भाषाके वैज्ञानिक साहित्यके अध्ययनमें बड़ी सरलता होती है। इससे विज्ञानकी उन्नतिमें बड़ी सहायता मिली है।

देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी वृद्धिके लिए कोई ऐसे ही सम्मेलनकी बड़ी आवश्यकता है। ऐसा न होनेसे केवल इसकी वृद्धिमें ही अड़चनें उपस्थित न होंगी वरन् वैज्ञानिक शब्दोंकी गड़बड़ीके कारण इन भाषाओंके द्वारा विज्ञानके अध्ययनमें रुकावटें उपस्थित हो रही हैं और होंगी। अभी भी इसी गड़बड़ीके कारण अङ्गरेज़ी जानने वाले देशी भाषाओंके द्वारा वैज्ञानिक पुस्तकोंको पढ़ना पसन्द नहीं करते। अतएव यह अत्यावश्यक है कि हिन्दी, उर्दू, बङ्गाली, मराठी और तामिल आदि मुख्य मुख्य देशी भाषाओंके ज्ञाता एकत्रित होकर वैज्ञानिक शब्दोंके प्रयोगका एक मार्ग निर्धारण करें। और उसे इस क्षेत्रके कार्य्यकर्ताओंके सम्मुख उपस्थित करें।

लेखकने इस विषयपर बहुत गहरा विचार किया है। दो ही मार्ग इसके लिये खुले हैं। एक तो संस्कृत और अर्बी शब्दोंसे वैज्ञानिक शब्द निर्माण किये जायं। इसमें दो मुख्य कठिनाइयाँ हैं। प्रथम सभी वैज्ञानिक शब्दोंके लिए संस्कृत और अर्बी शब्दोंका मिलना असम्भव है। फिर ये साधारण मनुष्योंके समझनेमें उतने ही कठिन होंगे जितने अङ्गरेज़ी अथवा अन्य विदेशी भाषाओंके शब्द। दूसरे इसके होनेसे हिन्दी और उर्दूका भेद दिन दिन बढ़ता जायगा। राजनैतिक दृष्टिसे यह आवश्यक है कि इन दोनों भाषाओंकी उन्नति ऐसे सिलसिलेसे हो कि अन्तमें दो लिपियोंमें लिखी हुई ये दोनों एक ही भाषा बन जायँ। संस्कृत और अर्बी शब्दोंके प्रचारसे ऐसा नहीं हो सकता इसमें शब्दोंका प्रचार साहित्य-वृद्धिमें रुकावट ही नहीं उपस्थित करेगा वरन् राष्ट्रीयताके विचारसे देशके लिए हानिकारक भी होगा।

दूसरा मार्ग अङ्गरेज़ी शब्दोंको ही ज्योंका त्यों अथवा कुछ परिवर्तनके साथ देशी भाषाओंमें व्यवहार किये जानेका है। मैं आचार्य्य रामावतार शर्म्मासे सहमत नहीं हूँ कि अङ्गरेज़ी शब्दोंको देशी पोशाक पहनाकर Newton को नवतनु

और Caldwell को कदवल बनाकर व्यवहार किया जाय। ऐसे शब्द न केवल देशी भाषाओंके जानने वालोंके समझनेमें कठिन होंगे किन्तु अङ्गरेज़ी जाननेवालोंके भी। फिर इससे क्या लाभ। अङ्गरेज़ी शब्दोंके व्यवहारसे कुछ न कुछ अङ्गरेज़ीका ज्ञान रखना आवश्यक होगा। अङ्गरेज़ीका ज्ञान रखना कोई बुरा नहीं है। भारतमें अङ्गरेज़ोंका शासन न रहनेपर भी संसारसे वाणिज्य व्यवहार रखनेके लिये अङ्गरेज़ीका ज्ञान भी अवश्य करना ही पड़ेगा। अङ्गरेज़ी भाषा ही अवश्य ही ऐसी भाषा है जिसके सहारे मनुष्य सारी पृथ्वीकी सरलतासे परिक्रमा कर अपने मनके भावोंको हर देशमें प्रकट कर सकता है। इससे अङ्गरेज़ी शासन न रहनेपर भी संसारसे सम्बन्ध स्थापित रखनेके लिये अङ्गरेज़ी भाषाका ज्ञान अवश्य रखना पड़ेगा दूसरे अङ्गरेज़ी शब्दोंके प्रयोगसे अन्यान्य यूरोपि-भाषाओंकी वैज्ञानिक पुस्तकोंके अध्ययनमें भी सुभीता होगा। इससे देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी अवश्य ही बड़ी शीघ्रतासे वृद्धि होगी। जापानने गत वर्षोंमें जो उन्नति की है उसका मुख्य कारण यही है कि अपनी देशी भाषामें शिक्षा देते हुये उसने वैज्ञानिक अङ्गरेज़ी शब्दोंको ही ज्यों-का त्यों अपनी भाषामें व्यवहार किया है, इससे हमारे देशकी भाषाओंमें इन शब्दोंके सम्बन्धमें जो गोलमाल फैला हुआ है वह यहाँ नहीं फैल सका। इससे बहुत शीघ्र ही वैज्ञानिक साहित्यकी उन्नति हुई। मैं आशा करता हूं कि देशी भाषाओंके शुभचिन्तक शीघ्र ही इस विषयपर गूढ़ विचार कर किसी निर्णयपर पहुँचेंगे जिससे वैज्ञानिक साहित्यकी शीघ्र ही वृद्धि होकर हमारी मातृभाषाका भण्डार वैज्ञानिक ग्रन्थोंसे परिपूर्ण होगा।

['देश' से उद्धृत]

वैज्ञानिकीय

जले हुए मनुष्यकी प्राथमिक सहायता

यदि किसी मनुष्यके वस्त्रोंमें आग लग जाय तो उसको तुरन्त धरतीपर पटक देना चाहिये, जिसमें मुंह और विशेषतः नथने आगकी लपटसे बचे रहें। फिर बिना देर लगाये उसे किसी फ़र्श, जाजम, टाट या और कुछ न मिले तो दोहरमें लपेट दो; सहसा कपड़ा लपेट देनेसे जलते हुए वस्त्रोंतक वायुका पहुँचना बन्द हो जायगा और आग बुझ जायगी। मुंहसे आगकी लपटको दूर ही रखना चाहिये, जिसमें उत्तप्त वायु फेफड़ोंमें न पहुँचे और मुंह न जले, क्योंकि मुँह परके घाव मुश्किलसे अच्छे होते हैं। अतएव कपड़ा लपेटना गर्दनसे आरम्भ करना चाहिये।

यदि त्वचाका बड़ा भाग जल गया है तो निर्बलतासे लेकर बेहोशी तकका अनुभव हो सकता है। यदि दशा ख़राब दीखे तो तुरन्त ही चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये। (Aromatic spirts of ammania) एरोमेटिक स्पिरिट ओव अमोनिया-की दो चार बूंद या बारएडी पानीमें मिलाकर कई बार जल्दी जल्दी देनी चाहिये जबतक कि होश न आ जाय और बलका अनुभव न होने लगे।

बच्चों और बुड्ढोंके शरीरोंका ऊपरसे ही जला हुआ विस्तृत भाग उस थोड़े भागसे जो अधिक गहराईतक जला है अधिक कष्टदायक होता है। यदि गरम हवा या भाप श्वास द्वारा फेफड़ोंमें पहुँची है तो तुरन्त ही किसी डाक्टर से परामर्श कर लेना चाहिये।

यदि बहुत हलका जला हो—झुलस गया हो तो साधारण रोटी बनानेका पौडर (Baking powder) अर्थात् बाई कार्बोनेट ओव सोडा पानीमें घोलकर, एक गद्दी उससे भिगोवें और जले हुए भागपर बाँध दें। गद्दीको बराबर भिगोते रहें और अधिक जलनेपर अलसीका तेल और चूनेका

पानी सम भाग मिलाकर काममें ला सकते हैं। इससे भी अच्छी मलहम वेसलीनमें तीन प्रति शत सोडा बाइकारबोनेट मिला कर बना सकते हैं। यदि वेसलीन या पेट्रोलियम जेली न मिले तो चर्बी-का प्रयोग कर सकते हैं।

बार्नेकिल्सका वर्णप्रेम

जहाज़ोंके पेंदोंमें बार्नेकिल नामी प्राणी आकर चिपट जाया करते हैं और उन्हें हानि पहुँचाते हैं। अब यू. एस. ब्यूरो ओव फ़िशेरीज़ (U. S. Bureau of fisheries) को पता चला है कि जहाज़के पेंदेके रंगका बार्नेकिल्सपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि पेंदेपर काला या नीला रंग चढ़ा है तो बार्नेकिल्स बहुत संख्यामें आ चिपटते हैं किन्तु यदि पेंदेपर सफ़ेद, पीली, लाल या हरी वार्निश की गई है तो बार्नेकिल्स प्रायः दूर ही रहते हैं।

टीनको ज़ुकाम

जिस प्रकार सर्दी लगनेसे मनुष्योंको ज़ुकाम या न्यूमोनिया हो जाता है उसी प्रकार टीनको भी अत्यन्त शीत असहनीय है। उत्तरीय रूसमें टीनके बर्तन जाड़ोंमें बिलकुल निकम्मे हो जाते हैं। रूसके किसी चुंगी घरमें एक जहाज़ भरी टीन या राँग रखी हुई थी। जाड़ेमें वह बारीक चूर्णमें बदल गई। जब बंग या राँगको सर्दी लगती है तो पहले उसकी सतहपर एक या अधिक दाग़ नज़र आते हैं। यह दाग़ बढ़ता जाता है और नये नये दाग़ पैदा होते जाते हैं, यह सब मिलकर एक हो जाते हैं और बंगकी शलाकाएं धूलिका रूप धारण कर लेती हैं।

ऐतिहासिक भूगोलका संक्षिप्त परिचय

[ले० श्री देवदत्त शुक्ल]

रोमन-साम्राज्यके भिन्न भिन्न भागोंमें पारस्परिक कलह जाग्रत हुई जिसे सम्राट 'कान्स्टंटाइनने अपनी चतुरतासे बल पकड़ने न दिया था। उसी समय उत्तरसे बर्बर लोगोंके आक्रमण प्रारम्भ हुए। इनके यह आक्रमण ५० वर्ष तक जारी रहे। पारस्परिक कलहमें फंसा हुआ रोमन-साम्राज्य इनके आगे नहीं ठहर सका।

पहला आक्रमण गाथ लोगोंका हुआ। यह लोग जर्मन-उत्पत्तिके थे। डैशिया (ट्रांसिल्वैनिया, वलाचिया तथा माल्डेविया) प्रान्तसे होकर इन्होंने काला सागर पार किया और लघु एशिया-के उत्तरी किनारेको विनष्ट कर डाला। फिर यह यूनानपर चढ़ आये और एथेन्स्, कारिंथ और आर्गस जैसे प्रसिद्ध नगरोंको लूटकर जला दिया। उनके बाद वंडाल लोगोंका आक्रमण हुआ। यह लोग बोहेमियाँके पार्वात्य देशके निवासी थे। आँधीकी तरह यह लोग गाल देश-पर टूट पड़े और इसे ध्वंस कर डाला। फिर पिरीनीज़के दर्रोंको पारकर स्पेनमें जा पहुँचे। अन्तमें यहां यह दक्षिणी प्रदेशमें आबाद हो गये। वर्तमान अंडूलूशिया इनके वंडालेशियाका भ्रष्ट रूप है। राइन नदीके निचले भागकी सीमापर कुछ जातियाँ निवास करती थीं। गाल देशके निम्न भागपर आक्रमण करके अन्तमें रोमन लोगोंकी सत्ताको वहाँ इन्होंने नष्ट कर डाला।

कान्सटंटाइनके शासन-कालमें गाथ लोग रोमन लोगोंसे सन्धि कर लेनेको बाध्य हुए थे। परन्तु उसकी मृत्युके बाद ही उन्होंने फिर युद्ध शुरू कर दिया। यह युद्ध तीन वर्षतक जारी रहा। उस समय गाथ लोग दो भागोंमें विभक्त हो गये थे। जो लोग काला सागरके तटवर्ती

देशमें निवास करते थे वह आस्ट्रो गाथ अर्थात् पूर्वी गाथके नामसे प्रसिद्ध हुए और जो डैन्यूब नदीके किनारेके देशमें बस गये थे वह विसी गाथ अर्थात् पश्चिमी गाथ कहलाये।

उपर्युक्त आक्रमणकारियोंके बाद हूणोंकी बारी आई। यह लोग एशियाई उत्पत्तिके थे और शक जातिकी पूर्वी शाखाके लोग थे। इन लोगोंने युरोपपर आक्रमण किया। पहली मुठभेड़ इनकी अलानी लोगोंसे हुई जो वालगा और डान नदियोंके बीचके पार्वात्य देशमें निवास करते थे। इनको जीतकर यह लोग विसीगाथ लोगोंके देशपर चढ़ गये और विसीगाथ लोगोंको मार कर डैन्यूबके पार मैशिया (बलगेरिया) देशमें खदेड़ दिया और उस देशको अपने अधिकारमें कर लिया। फिर इन्होंने गाथ लोगोंके मित्रके रूपमें रोमन लोगोंके विरुद्ध डैन्यूब नदी भी पार की।

अलारिकके नेतृत्वमें वीसीगाथ लोगोंने इटलीपर चढ़ाई की। उन्होंने रोम नगरको लूट लिया और प्रायद्वीपको विध्वंस कर दिया। इसके बाद वह अलारिकके उत्तराधिकारियोंके नेतृत्वमें दक्षिणी गालको चले गये। वहाँसे वह स्पेनको गये। यहाँ उनकी रोमन और वंडाल लोगोंसे लड़ाइयाँ शुरू हुईं। स्पेन और अफ्रीकाके रोमन गवर्नरोंकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण वंडाल लोगोंको मौका मिल गया। उन्होंने जिब्राल्टरके मुहानाको पार कर लिया और अफ्रीकामें पहुँचकर अटलाँटिक महासागरके किनारेसे लेकर सायरिनीके बीचके सारे देशको लूट-फूंक कर तबाह कर डाला। इस प्रकार अफ्रीकामें रोमन-साम्राज्य ध्वंस हो गया। यहाँसे वंडाल लोग सार्डीनियां, कार्सिका और सिसली द्वीपोंमें फैल गये। उन्होंने इटलीपर भी चढ़ाई की और रोम नगरको चौदह दिनतक लूटते रहे। इस अवसरपर नगरकी प्रायः सभी कलाद्योतक इमारतें तोड़ फोड़ कर नष्ट कर दी गईं।

डैन्यूब-प्रदेशको विजय करके हूणराज अटीलाने पश्चिमकी ओर मुँह फेरा और आस्ट्रोगाथ लोगोंको अपने साथ लेकर गाल देशमें घुस गया। यहाँ शलां-सर-मार्ने नामक नगरके पास उसे रोमन लोगों और विसीगाथ लोगोंकी सम्मिलित सेनाने पराजित किया। परन्तु वर्ष बाद उसने इटलीपर फिर चढ़ाईकी और उसके उत्तरी भागको तहस-नहस कर डाला। यहाँके निवासियोंने भागकर उन दलदलवाले द्वीपोंमें आश्रय लिया जिनपर बादको प्रसिद्ध वेनिस नगर आबाद हुआ। पोप लिओके बीच-बचाव करनेसे रोम नगर लूटे जानेसे बच गया। परन्तु तीन वर्ष बाद वंडाल लोगोंने इसे लूट लिया। अटीलाकी मृत्युके बाद ओडोअकरने उन बर्बर लोगोंका नेतृत्व ग्रहण किया जो इटलीमें घुसे हुए थे। अटीलाके समय यह व्यक्ति कान्स्टैंटिनोपलमें उसका राजदूत था। इसके नेतृत्वमें प्रायद्वीपमें जो थोड़ी बहुत रोमन प्रभुता शेष रह गई थी उसका भी विनाश हो गया। परन्तु आस्ट्रोगाथ लोगोंके राजा थ्योडरिकने ओडोअकरको हराकर इटलीपर अधिकार कर लिया और स्वयं वहाँका राजा बन बैठा।

उपर्युक्त बर्बर आक्रमणोंके समय दूर देशस्थ रोमन सेनायें वापस बुला ली गई थीं। अतएव ब्रीटेनकी भी सेनायें बुला ली गई थीं। पाचवीं सदीके प्रारम्भमें वहाँ रोमन सेनायें नहीं थीं, वह सर्वथा अरक्षित दशामें हो गया था। ऐसी दशामें पिक्ट और स्काट लोगोंसे आक्रान्त होनेपर ब्रिटन लोगोंने अपनी सहायताके लिए जूट लोगोंको बुलवाया। ये लोग युरोप महाद्वीपके उत्तर-सागरके तटवर्ती देशमें रहते थे और जर्मन जातिके थे। ब्रिटेनमें आकर इन्होंने पिक्ट और स्काट लोगोंको पराभूत किया। परन्तु ये स्वयम् उलटा वहाँ डट गये और केंट प्रदेशमें अपना राज्य स्थापित किया। जूट लोगोंके बाद सैक्सन लोग आये। इन्होंने ब्रीटेनके दक्षिणी और पूर्वी भागपर अपना अधिकार जमाया।

सुविशाल रोमन-साम्राज्यका अङ्गभङ्ग हो गया। राजधानी कान्स्टैंटनोपलके आसपासके ही देश उसकी सीमाके भीतर रह सके। वंडाल लोगोंने उत्तरी अफ़्रीकापर अधिकार कर लिया था; स्पेन-पर विसीगाथ लोगोंका कब्ज़ा हो गया था; इटली, फ़्रांस और उन सब देशोंपर जो आल्प्स पर्वतके चारों ओर डैन्यूब नदीतक फैले थे आस्ट्रोगाथ लोगोंके राजा महान् थ्योडरसका शासन स्थापित हो गया था, लयार और सोमके बीचका समग्र गालदेश फ़्रैंक लोगोंके हाथमें था। उधर एशियामें ईरानकी शक्ति भी बढ़ रही थी। ससान घरानेके राजाओंने केवल अपने साम्राज्यको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें ही सफल नहीं हुए; किन्तु वे रोमन लोगोंका प्रभाव एशियासे हटा देनेको भी प्रयत्नशील हुए। यही नहीं, उन्होंने अर्मीनिया प्रान्तको रोमन लोगोंसे ले भी लिया था।

सन् ५०० से सन् ८०० तक

ऊपर उल्लेख हुआ है कि पूर्व और रोमन (बैज़ंटाइन) साम्राज्यका विरोध ईरानी लोग सफलतापूर्वक कर रहे थे। और वे एशियामें अपना राज्य विस्तृत कर रहे थे। परन्तु पश्चिम और रोमन साम्राज्यका बोल बाला था। सम्राट् जस्टीनियनके शासन-कालमें उसके सेनापति बेलीसारियसने अफ़्रीकापर चढ़ाई की थी। दो वर्षके युद्धमें उसने वंडाल लोगोंको परास्त कर दिया और उनके राजाको क़ैद करके कांस्टैंटिनेपल ले आया। दूसरे युद्धमें उसने दक्षिण इटलीपर चढ़ाई करके आस्ट्रोगाथ लोगोंसे उसे छीन लिया और इन्हें उत्तर इटलीमें खदेड़ दिया। उसके उत्तराधिकारी नार्सीज़ने इन लोगोंको उत्तर इटलीसे भी मार भगाया। यहाँतक कि इनका इटलीसे भिन्न जातिके रूपमें नाम ही शेष हो गया।

इसी समय शसान घरानेके सर्वश्रेष्ठ सम्राट् खुशरूके शासन कालमें ईरान साम्राज्य लाल सागर से लेकर सिन्ध नदीतक और अरबसे लेकर मध्य एशियातक फैल गया। मेसोपोटैमिया, सीरिया, पैलेस्टाइन, मिस्र और लघु एशिया आदि देश एक एक करके बैज़ंटाइन राज्यसे जीत लिये। जेरूसेलमपर कब्ज़ा करके लूट लिया गया और यही हाल अलेकजेंड्रियाका भी हुआ। बिजयी ईरानी सेना कैंस्टैंटिनोपलके सामने एशियाई तटके चाल्सीडन नामक स्थानपर जा धमकी। इस दशाको देखकर बैज़ंटाइन सम्राट् हेराक्लियसने ईरानियोंका मुक़ाबिला किया। यही नहीं उसने ईरानियोंको सिलीशियाके इस सनामक स्थानके प्रसिद्ध युद्धमें ईरानियोंको पराजित किया। यहाँसे वह अरमीनिया पहुँचा और वहाँ-काकेशसके बर्बर लोगोंकी सहायता प्राप्त कर उसने मीडियापर आक्रमण किया। इस्पहानमें पहुँचकर उसने ईरानियोंको युद्धोंमें परास्त किया। इस प्रकार ससान घरानेकी प्रभुताको नष्ट कर डाला।

हेराक्लियसके उदय-कालमें दक्षिण अरबमें एक नई जातिका उदय हुआ। भूमध्य सागरके पूर्व-तटवर्ती देशोंमें समय समयपर जिन राज्योंका उदय हुआ था उनमें कोई भी अरबी जातियोंकी स्वतंत्रताको न नष्ट कर सका। उन्हें बैबिलोनियां, असीरिया, मिस्र या ईरानके बादशाह कभी पराभूत न कर सके। यद्यपि रोमन-साम्राज्यके उदय-कालमें ट्राजन अरबपर चढ़ गया था तो भी केवल उत्तर-सीमावर्ती जातियोंके सरदारोंने उसकी अधीनता नाम-मात्रको स्वीकार की थी। सम्राट् अगस्टसके समयमें रोमन लोगोंके आक्रमणको यमन देशके निवासियोंने वीरताके साथ वारण किया था। यमन देशवासी नगरोंमें रहते और खेती-बारी करते थे। पर अधिकांश अरब लोगोंका जीवन कंजड़ों जैसा ही था। सन्-६०० ईस्वीके लगभग अरबके प्रायद्वीपमें ईसाई धर्मका प्रवेश हुआ। जेरूसलेमके संहारके बाद नवागन्तुकोंने वहाँ पहलेसे ही यहूदी धर्मका प्रचार कर रक्खा था। अतएव अरबमें धार्मिक भावोंका प्रचार बढ़ा। इसी समय मक्कामें सन्-

५५०में मुहम्मदका जन्म हुआ। हिरा पहाड़के एकान्तवासमें ईश्वरी सन्देश पानेके बाद यह अपने धर्मके प्रचारमें प्रवृत्त हुए। परन्तु मक्का निवासियोंके विरोध-भाव धारण करनेके कारण इन्हें मदीना भाग जाना पड़ा। यहाँ एक बलवान् अरबी जातिके शासक और न्यायाधीशका पद इन्होंने ग्रहण किया। इसके बाद ईश्वरके नामपर इन्होंने इस्लामके शत्रुओंके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की और बेवाद्रके युद्धमें मक्का वासियोंको परास्त किया। इसके बाद उन्होंने ईरान, अबीसीनिया, मिस्र आदि देशोंके शासकोंके पास तथा हेराक्लियसके दरबारमें भी अपने धर्म-प्रचारके सम्बन्धमें दूत भेजे। ईरानके बादशाहने उनके दूतका अपमान कर उसे मरवा डाला। इसपर उनके अनुयायियोंने ईरानपर चढ़ाई कर दी। इसपर पहले युद्धमें उन्हींकी हार हुई।

परन्तु इस नये धर्मकी जड़ अरबमें जम गई। मुहम्मदकी मृत्युके कुछ ही पहले सीरिया और बैज़ंटाइनपर आक्रमण करनेके लिए मुसलमानोंने विस्तृत तैयारी कर ली थी। मुहम्मदके उत्तराधिकारी पहले ख़लीफ़ा अबूबक्र ने बैबिलोनियापर चढ़ाई कर दी। हरक्लियसकी सेनाओंको कई युद्धोंमें पराजित कर उसने सीरियाको भी जीत लिया। दूसरे ख़लीफ़ा उमरने और भी मुस्तैदीके साथ युद्ध जारी रक्खा। उसने जेरूसेलमपर अधिकार कर लिया और सुलेमानके मन्दिरके स्थानपर मस्जिद बनवाई, जो आज भी उसके नामसे प्रसिद्ध है। इसके बाद उसने ईरानपर चढ़ाई कर दी और उसे भी जीत लिया। अरबोंका दबदबा इतना अधिक क़ायम हो गया कि ख़लीफ़ाके सेनानायक अमरने बिना विघ्न-बाधाके ही सम्पूर्ण मिस्रपर अधिकार कर लिया। इसके बाद बरका और ट्रिपोलीपर भी क़ब्ज़ा किया गया।

उमरकी मृत्युके समय (सन् ६४४) अरबोंने केवल दस वर्षोंके भीतर ही एशियामें आरमीनिया और खीवासे लेकर उत्तर अफ़्रीकामें साइटींज़के बीचके समग्र भूभागको जीत लिया। अथर्मनके समयमें मुसलमानोंकी प्रभुता सुदूर पश्चिममें मराकोतक स्थापित हो गई थी। उत्तरी अफ़्रीकामें बैज़ंटाइन सम्राट्का अधिकार न्यूकार्थेजके आसपासतक सीमाबद्ध था। इसी समय ख़लीफ़ाने मदीनाको छोड़कर सीरियाके दमश्क नगरको अपनी राजधानी बनाया। लघु एशियापर चढ़ाई करके मुसलमानी सेनाओंने कान्स्टेंटिनोपलको जा घेरा, पर वहाँ उन्हें सफलता नहीं मिली। आठवीं सदीके प्रारम्भ होनेके पहले ही मुसलमानोंने कार्थेज ले लिया। इस प्रकार बैज़ंटाइन साम्राज्यका अफ़्रीकामें इतना बचा हुआ भूभाग भी जाता रहा। इस समय ख़लीफ़ाकी प्रभुता शीर्षस्थानपर पहुँच चुकी थी। इधर मुसलमानी सेनाओंने मध्य-एशियाको जीता था कि उधर मराकोसे स्पेनपर उनकी चढ़ाई हुई। तारिककी अधीनतामें मूर लोग कइटा नामक स्थानसे जिब्राल्टरके मुहानेको पार कर स्पेनके अलजीरस नामक स्थानपर जा उतरे। वीसीगाथ लोगोंके अन्तिम बादशाह राडरिकने आक्रमण कारियोंका जेरेज़ डीला फ्रन्टेरा नामक स्थानमें सन् ७११ में मुक़ाबला किया। नौ दिनतक घोर युद्ध होता रहा। तारिकके साथ द्वन्द्व युद्ध करते समय राडरिक मारा गया। मुसलमानोंने पूर्ण विजय प्राप्त की। इस विजयसे उनका सम्पूर्ण स्पेनपर अधिकार हो गया। केवल अस्टूरियस नामक पहाड़ी प्रदेश स्वदेशी शासकोंके अधिकारमें रह गया था। यहाँ मुसलमानोंने आगे बढ़कर फ्रांसके दक्षिणी प्रदेशपर भी अधिकार कर लिया था।

जिस समय मुसलमान लोग युरोपके दक्षिणी देशोंको इस प्रकार शीघ्रताके साथ एक एक करके अपने अधिकारमें कर रहे थे उस समय उत्तरी युरोपमें क्या हो रहा था, इसका उल्लेख भी यहां करना उचित होगा। जब बैज़ंटाइन सम्राट्ने वीसीगाथ लोगोंसे इटलीको जीत लिया तब

उन्होंने अपना प्रतिनिधि वहाँ नियुक्त कर दिया। इसकी राजधानी खेन्नामें थी। इन्होंने पन्द्रह वर्ष-तक इटलीपर शासन किया। इसके बाद जर्मन जातिके लोम्बार्ड लोगोंने, जो वास्तवमें पहले एल्ब नदीके निचले भागमें निवास करते थे, पैनोनियासे आल्प्स पहाड़ पार किया। इटलीपर इनके दलोंकी आँधी आगई और इन्होंने उत्तरी तथा मध्य इट-लीको जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया। ये यहाँ बस गये और लोगोंमें मिल गये। यहाँतक कि अपनी भाषाको भी भुला दिया। कालान्तरमें लेटिन ही इनकी भी भाषा हो गई।

फ्रैंक-राजाओंके पहले राजघरानेके बाद जिस दूसरे घरानेकी स्थापना हुई उसमें चार्लस उर्फ मार्टेल अत्यन्त प्रसिद्ध राजा हुआ। वह अपने समयमें पड़ोसकी सैक्सन आदि स्वाधीन जाति-योंसे सफलता पूर्वक लड़ता रहा। परन्तु उसकी धाक उस विजयसे बैठ गई जो उसने मूर मुसल-मानोंपर सन् ७३२में पाशियर्स और टूर्सके युद्धों-में प्राप्त की थी। इस पराजयसे मुसलमानोंका युरोपमें उत्तर और आगे बढ़ना रुक गया, जिससे उस समय सारे ईसाई-देश भय-भीत हो रहे थे।

लोम्बार्ड लोगोंको उत्तराधिकारित्वके लिए परस्पर झगड़ते देखकर चार्लसके पुत्र पीपेन लि-ब्रेफ़ने इटलीपर चढ़ाई कर दी। परन्तु वस्तुतः लोम्बार्ड राज्यका पराभव उसके पुत्र शार्लीमेनने किया। लोम्बार्ड-राज्यका अस्तित्व दो सौ वर्षतक रहा। शार्लीमेनने अपने राज्यके उत्तर-समीपवर्ती सैक्सन लोगोंको पराजित करके एल्ब नदीकी ओर खदेड़ दिया। इसके सिवा दक्षिण ओर मूर लोगोंको हटा कर पिरीनीज़से लेफ़र एब्रो नदी-तकके सारे देशको उनसे छीनकर अपने राज्यमें मिला लिया। जर्मनीकी ओर उसका राज्य पैनो-नियातक फैल गया था। इस ओर भी उसने अवरी लोगोंको पराभूत किया था।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि ब्रिटेनमें ज्यूट और सैक्सन लोग वर्तमान समयके इँग्लैंडके दक्षिण और मध्यमें आबाद हो गये थे। उनके बाद शीघ्र ही एँगल नाम धारी एक तीसरी जर्मन जाति वहाँ जा पहुँची और सफ़ोक तथा नारफ़ोकके किनारे इँग्लैंडमें आबाद हो गई।

इस समयतक अरब साम्राज्य अपनी उन्नति-की चरम सीमाको पहुँच गया था। दमश्कसके ख़लीफ़ा घरानेकी एक शाखा स्पेनमें कारडोवा नामक स्थानमें जाकर स्थापित हुई। इस शाखाने स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी। उधर दमश्कसके ख़लीफ़ा घरानेका प्रभाव घट गया और बग़दादके अब्बासीद घरानेके ख़लीफ़ाओंने अपनी प्रभुता क़ायम की। प्रसिद्ध ख़लीफ़ा हारुनलरशीदका जन्म इसी घरानेमें हुआ था। बग़दाद नगरकी रचना इसके पूर्वजोंने सन् ७६२ में की थी। युरोप-में शार्लीमेनके शासनमें फ्रैंक-साम्राज्यकी शक्ति बढ़ गई थी और वह एक विस्तृत क्षेत्रमें फैल गया था। बग़दादके ख़लीफ़ाके राजदूत इसके दरबार में भेजे गये थे। पोपने रोममें इसका राज्याभिषेक किया था। इस समय सम्राट् छठे कैंस्टैनटाइन-की राजमाताने फ्रैंक सम्राटके साथ विवाह कर पूर्व और पश्चिम युरोपके संयुक्त करनेकी चेष्टा की थी। परन्तु उसका षड्यंत्र न चला, उसका सारा प्रभाव जाता रहा और वह एजियन सागरके लेस्बस द्वीपको निर्वासित कर दी गई (सन् ८०२)।

सन् ८०० से सन् १००० तक

अब्बास घरानेके ख़लीफ़ा-पद प्राप्त करने-पर उसकी राजधानी बननेका सौभाग्य बग़दाद नगरको प्राप्त हुआ और ईरानका ख़ुरासान प्रदेश उनके साम्राज्यका केन्द्र बन गया। यद्यपि इस्लाम-धर्मका प्रचार बढ़ता जा रहा था तो भी ख़लीफ़ाओंका प्रभाव धीरे धीरे कम होने लगा। हारुनलरशीदके शासन-कालमें ही फेज़ (फेज़-नगर की रचना सन् ८०८ में हुई थी) और तूनिस-में स्वतंत्र राज्योंकी स्थापना हो गई थी। इसके बाद शीघ्र ही पश्चिमी अफ्रीकाके सारे देश ख़लीफ़ा-

के हाथसे निकलकर स्वतंत्र हो गये थे। कास्पियन सागर और एशियाके मध्यस्थ पहाड़ोंके बीचके देशके बहु-संख्यक निवासी, जो तुर्क कहलाते थे, सैनिक सेवाके लिए बुलाये गये थे। शक्ति हाथमें आजानेपर ये तुर्क लोग अपने स्वामियोंके विरुद्ध उठ खड़े हुए और कुछ समयके लिए तुर्की शासकोंने ही खुरासानपर राज्य किया। कई एक दूसरे राजघरानोंका भी उदय हुआ। इनमें ग़ज़नवी घराना बड़ा प्रसिद्ध हुआ। इस घरानेने टैग्रीज़से लेकर गङ्गा और जैक्सर्टीज़से लेकर भारत सागर तक फैले हुए विस्तृत सम्राज्यपर शासन किया। इसकी राजधानी अफ़ग़ानिस्तानका ग़ज़नी नगर था।

सन् ८६८ में मिस्रका एक तुर्की सूबेदार स्वतंत्रताकी घोषणा करके मिस्रका शासक बन बैठा। एक सदी बाद फातिमी सम्प्रदायके मुसलमानोंका उदय हुआ। इनका नेता पैग़म्बरकी कन्या फ़ातिमासे अपने घरानेकी उत्पत्ति बतलाता था। इसने तूनिसके शासकोंको पराजित कर मिस्र और सीरियाको विजय किया। सन् ९७०में कैरो नगर बसाकर वहाँ अपनी ख़िलाफ़त क़ायम की। इस प्रकार तीन ख़िलाफ़तें अस्तित्वमें आईं १ बग़दाद, २ कैरो और ३ कारडोवामें। अलजियर्स राज्यकी स्थापना पचीस वर्ष पहले ही एक अरबी राजकुमारने की थी।

स्पेनमें मूरोंने उत्तरी पार्वात्य प्रदेशको पूर्ण रूपसे विजय न कर पाया था। अस्टूरियस और गैलेशियाके स्वाधीन ईसाई राज्य बराबर बने रहे। नवीं सदीके लगभग मध्य-भागमें नावरीके बीर बस्क्यू लोग भी स्वतंत्र हो गये और ये लोग भी मूरोंके विरुद्ध उस युद्धमें योग-दान देते रहे जो अभीतक स्पेनमें जारी ही था। पिरीनीज़ और एब्रोके बीचका जो देश शार्लीमेनने मूरोंसे छीन लिया वह यद्यपि मूरोंके अधिकारमें फिर आग या था तो भी इसका भी एक अंश इस समय स्वतंत्र हो गया। अन्तमें प्रायद्वीपके मध्यका कस्टाइल नामक प्रदेश भी स्वाधीन हो गया। इस प्रकार स्पेनमें मुसलमानी सत्ता क्रमशः क्षीण होने लगी और उसके एक एक प्रान्त ईसाई सरदारोंके नेतृत्वमें स्वतंत्र होने लगे।

शार्लीमेनकी मृत्युके बाद उसका विस्तृत फ़्रैंक-साम्राज्य भङ्ग हो गया। उसका अङ्ग-भङ्ग हो जानेसे उसकी शक्ति नष्ट हो गई। ऐसी स्थितिमें डेन्मार्क और स्कैंडिनेवियासे नार्मन लोगोंने फ़्रैंक-साम्राज्यपर धावा बोल दिया। वे पेरिसतक घुसते चले गये। यही नहीं, वे देशके उस भागमें आबाद हो गये जो बादको नार्मंडीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी समय एब्रो और पिरीनीज़के मध्यमें स्थित पूर्वोक्त प्रदेशोंपर मूरोंने भी अधिकार कर लिया था। पूर्व और जर्मन सरदार लोग अपना बादशाह अलग बना लेना चाहते थे। दसवीं सदीके प्रारम्भ होनेके बाद ही कानरड प्रथम जो फ़्रैंकोनियाका ड्यूक या काउण्ट था जर्मनीका बादशाह बना दिया गया। उसके उत्तराधिकारी ओथोने डेन, स्लाव और हंगरीवालोंको पराजित किया। उसका राज्य उत्तरमें एल्ब नदीतक और दक्षिणमें लोम्बार्डी तक फैल गया। लोम्बार्डीमें वह शीघ्र ही शार्लीमेनका उत्तराधिकारी स्वीकार किया गया। रोममें उसका राज्याभिषेक हुआ और वह पश्चिमका सम्राट् माना गया।

जिन हंगेरियावासियों या मगयर लोगोंसे जर्मनीके सबसे पहलेके सम्राटोंका सामना हुआ वह लोग एशियाके रहनेवाले थे। सन् ८८९ में चालीस हज़ारकी संख्याके लगभग वह लोग अपने बाल बच्चोंके सहित कास्पियन-सागरके समीपकी अपनी निवास भूमि छोड़कर पश्चिमकी ओर रवाना हुए थे। मार्गकी जातियोंसे लड़ते-भिड़ते वह डैन्यूब नदीके तटवर्ती और पैनोनियाके उत्तर-पूर्वके देशमें जा पहुँचे और यहीं बस भी गये। धीरे धीरे वे कार्पेथियन पहाड़से लेकर सर्वियातक और ट्रांसिलवेनियाके आल्पस लेकर स्टीरियाके आल्पसतक फैल गया। इस सुन्दर भूभागमें इनका जो

राज्य स्थापित हुआ वह नाना प्रकारके सङ्कटों-को सहते हुए लगभग एक हज़ार वर्षतक बना रहा।

बैज़ंटाइन या ग्रीक साम्राज्यसे जैसा कि अब वह कहलाने लगा था, दक्षिणमें अरब शक्तियोंसे लड़ाई बराबर होती रही। उसके अधिकारसे क्रीट और सिसलीके द्वीप निकल गये। उधर बलगर नामक एक नई जाति ने, जिनकी उत्पत्ति फ़िन जातिसे थी मैलियन लोगोंको जीतकर डैन्यूब नदीके निम्नाञ्चलके दक्षिण-स्थित देशमें बस गये।

दसवीं सदीकी समाप्तिके लगभग रूस जाति-का उद्भव हुआ। ग्रीक-साम्राज्यके शत्रुओंमें स्लाव जाति भी थी। इसी जातिसे रूस जाति निकली है। यह जाति इन्हीं जातियोंके समूहमेंसे एक थी जो पूर्वी युरोपमें नीपर और डोन नदियोंके उद्गम स्थानोंके आस-पास निवास करती थीं। प्राचीन कालके लेखक इन्हें समार्टियन कहते थे। उनकी मुख्य बस्तियाँ नोवागोराड और कीफ़में थीं। अपने युद्ध-प्रेमी पड़ोसियोंसे पीड़ित होकर इन्होंने सन् ८६२ के लगभग अपने राजदूत भेज-कर अपनी सहायताके लिए समुद्र पारसे वरंगि-यन या नार्थमेन लोगोंको बुलाया। अतएव स्कें-डिनेवियाका सरदार रूरिक अपने दलके साथ आ पहुँचा और नोवागोराडपर कब्ज़ा कर लिया। इसको अपनी राजधानी बनाकर अपने साम्राज्य-का विस्तार किया जो बढ़कर ग्रीक साम्राज्यकी सीमातक जा पहुंचा।

इसी समय यूरोपमें ही स्लाव जातिकी एक दूसरी शाखाका भी उदय हुआ। पोलनीकी जातियाँ ओडर और विस्टुला नदियोंके बीचमें निवास करती थीं। पड़ोसकी अपनी ही दूसरी जातियों-पर इनको प्राधान्य स्थापित हो गया। दसवीं सदीके मध्य-कालके लगभग इनका शासक ईसाई हो गया। इसके बेटे बोलस्लास प्रथमने, जो महान-की पदवीसे विभूषित किया गया, पश्चिम ओर जर्मनोंका सफलता पूर्वक सामना किया। पोलैंड राज्यकी कल्पना इसी शासकने की। सन् ७०० में क्रैको नगरकी स्थापना कर क्राक नामक एक पोल राजकुमारने उसे अपनी राजधानी बनाया।

ब्रीटेनमें एङ्गलो-सेक्सन लोगोंके जो सात राज्य क़ायम हो गये थे उनको वेसेक्सके राजा एग्बर्टने एकमें मिलाकर सन् ८२७ में इँगलैंडके राज्यकी स्थापना की। इसीके घरानेमें महान् अल्फ्रेडका जन्म हुआ था। डेन लोगोंके जो बार-बार आक्रमण होते थे उनके निवारण करनेवाले इस राजाके प्रयत्न इतिहासमें प्रसिद्ध हैं।

इस समय डेन्मार्क और स्कैंडिनेवियाके डाकू आक्रमणकारी खूब विख्यात थे। वे लोग अपने देशसे आकर इँगलैंड, फ्रैंक साम्राज्य, जर्मनी, यहाँतक कि रूसमें भी पहुँचकर लूटमार किया करते थे। इसका एक परिणाम यह हुआ कि दसवीं सदीके अन्ततक ईसाई धर्मका प्रवेश स्कैंडनेवियामें हो गया। इसी समयकी उनकी पौराणिक कथाओंसे उनके असली इतिहासका सूत्रपात होता है। ये कथायें उनके वीर काव्यों सैगा या यडा में शामिल हैं।

टालेमीके समयसे अबतक लोगोंका भौगोलिक ज्ञान उसी सीमातक परिमित रहा। परन्तु इधर नार्थमेन लोगोंने अपनी जहाज़ी यात्राओंसे उस ज्ञानमें अधिक वृद्धि की इनके दो नाविक उल्फ़-स्टन और ओथरने महाराज अल्फ्रेडके दर-बारमें अपनी यात्राकी कहानी कही थी। उन्होंने बल्टिक सागरको पार कर (प्रशिया) विटलैंड और (इस्थोनिया) इस्टलैंड तथा यूरोपके उत्तर अन्तरीपसे होते हुए वालरस नामक जल-जन्तुओंकी खोजमें सफ़ेद सागरकी यात्रा की थी। परन्तु इन नार्थमेन लोगोंकी खोज यहीं तक परिमित नहीं रही। फ़ैरोई द्वीप इन लोगोंका अड्डा बन गया था। सन् ८६७ के लग-भग इनका नडोडर नामक एक सरदार तूफ़ानमें पड़कर पश्चिम ओर भटक गया और उसने एक

अज्ञात द्वीपके एक पहाड़को देखा। इसका नाम उसने स्नोलैंड रक्खा। बादको यही आइसलैंड नामसे प्रसिद्ध हुआ। परन्तु इसके बहुत पहले ही आयलैंडके साधुओंने सन् ७९५ के लगभग आइसलैंडका पता लगा लिया था, वे यहाँ गर्मी भर रहे भी थे। सात् वर्ष बाद नार्वेवालोंने इस द्वीपपर अपना अधिकार कर लिया और वे उसकी आधुनिक राजधानी रेकिआविकके चारों ओर बस गये थे। आइसलैंडवालोंका समुद्र-यात्राका प्रेम बराबर बना रहा। सन् ८७६ के लगभग गनवियर्न नामक वहाँका एक नाविक यात्रा करता हुआ एक विस्तृत अज्ञात देशमें जा पहुँचा। इसी देशका नाम वहाँके इरिकदिरेड नामक एक दूसरे नाविकने ग्रीनलैंड रक्खा। इसके किनारे उसने दो बस्तियाँ भी बसाई थीं।

ग्रीनलैंडके उपर्युक्त उपनिवेश-वासियोंने कोलम्बससे लगभग पाँच सौ वर्ष पहले अमरीकाका पता लगा लिया था। सन् ९८६ में बार्नी ग्रीनलैंडसे रवाना हुआ और तूफ़ानमें पड़कर एक अज्ञात द्वीपके तटपर जा पहुँचा। अतएव सन् ९९४ में इस नये देशकी खोजमें इरिकदिरेडका पुत्र लीफ़ रवाना हुआ। इसने जिन देशोंका पता लगाया उनके ये नाम रक्खे—हेलूलैंड (स्लेटलैंड) सम्भवतः लेब्राडर, मार्कलैंड (सम्भवतः दक्षिणी लेब्राडर) और वाइनलैंड जिसे कोई तो न्यू फ़ाउँडलैंड और कोई उस भूभागको जो बादको मार्थास्-वाइनलैंड कहलाया, बतलाते हैं।

इस समयतक अरब-साम्राज्य कई मुसलमानी राज्योंमें बँट गया था और पूर्वके ख़लीफ़ापर मध्य एशियाके तुर्कोंका प्रधान्य स्थापित हो गया था। ग्रीक साम्राज्यकी सीमा और भी घट गई थी। मध्य युरोपके स्लाव लोगोंने रूस और पोलैंडमें अपने राज्योंकी स्थापना कर ली थी। जर्मनी भी एक स्वाधीन राज्य हो गया था। शार्लीमेनका विशाल फ्रैंक साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न होकर छोटा हो गया था। स्पेनके ईसाई राज्य उन्नति कर रहे थे और मूरोंके विरुद्ध वे अपने प्रयत्नोंमें सफल हो रहे थे। इँग्लैंड भी एक राज्यमें परिणत हो गया था स्कैंडिनेवियाके परिश्रमशील नाविक अपने प्रयत्नमें सफल होकर अमरीका महाद्वीपके तटतक जा पहुँचे थे।

सन् १७०० से सन् १३०० तक

अब हम मध्य युगके केन्द्र-स्थानमें आ पहुँचे हैं। यही प्राचीन कालको आधुनिक कालसे पृथक करता है। जैसा पहले कहा जा चुका है, युरोप शीघ्रताके साथ बर्बरताकी सीमाका अतिक्रमण कर रह था। वर्तमान समयके यूरोपीय राष्ट्रोंकी धीरे धीरे सृष्टि हो रही थी, वे स्वयं विकसित् हो रहे थे। ईसाई धर्म उसरी यूरोपमें फैलनेके लिए उद्योग कर रहा था। पोपको बहुत अधिक सांसारिक क्षमता प्राप्त हो चुकी थी। अन्ध विश्वास और धार्मिक उत्साह बहुत विस्तृत रूपमें फैल गया था। जब भयङ्कर सेलजूक तुर्कोंने पेलेस्टाइनपर आक्रमण कर जेरूसेलेमके पवित्र मन्दिरको तोड़ डाला था उस समय यह धर्मोत्साह युरोपमें अपनी हद्तक पहुँच चुका था। अतएव इस घटनाके कारण यूरोपके पाश्चात्य ईसाई राष्ट्रों और प्राच्यके मुसलमानोंके बीच वे धार्मिक युद्ध हुए जो क्रूसेडके नामसे प्रसिद्ध हैं। (१०९६–१२७०) इस समय ज्ञात संसारके प्रत्येक राज्यमें क्या घटनायें घटित हो रही थीं, इनकी ओर एक निगाह डाल लेनी चाहिए।

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि ईरानमें ग़ज़नवी घरानेका राज्य था। यह घराना पचास वर्षसे कुछ अधिक समयतक शासन कर चुका था, जब सेलजुक तुर्कोंने खुरासानके उपजाऊ प्रदेशमें आबाद होना प्रारम्भ किया था। ये लोग उन एशियाई जातियोंकी एक उपजाति थे जिन्होंने सन् ७४४ में किपचक-साम्राज्यको विध्वंस किया था। कास्पियन सागरके उत्तर-पूर्वका देश किपचकके नामसे प्रसिद्ध था। ये लोग अपने नेताके नामसे प्रसिद्ध हुए। वह बोख़ाराके आसपासके

देशका स्वामी था। ग़ज़नवी लोगोंसे लड़-भिड़कर इन लोगोंने उत्तरी ख़ुरासानपर अधिकार कर लिया। इसके बाद बलख़ और ख़ीवापर भी इनका अधिकार हो गया। फिर फ़ारस या ईरानसे होकर यह लोग दक्षिणकी ओर बढ़े और करमान तथा ईरानको अपने आधीन किया। यहाँसे यह बग़दाद पहुँचे। उस समय खलीफ़ाके हाथमें राज सभा नहीं रह गई थी तो भी वे अभीतक मुसलमानों द्वारा धर्ममें प्रधान व्यक्तिके रूपमें पूजनीय समझे जाते थे। ख़लीफ़ाने तुर्की सरदारका स्वागत किया। इसके बाद सन् १०६० में समग्र फ़ारसपर उसकी सत्ता क़ायम हो गई। बादको अत्यन्त शक्तिशाली मीलकशाहने सेलजुक साम्राज्यमें सीरिया, पेलेस्टाइन तथा अक्सस नदीके आगेके देशोंके सिवा अरब, लघु एशिया और अर्मीनियाको भी मिला लिया। यह साम्राज्य अपनी उन्नतिके शिखरपर पहुँचनेके समय एजियन सागरसे लेकर तातार और भारतवर्षतक फैला हुआ था।

इस समय मिस्रपर फ़ातिमी घरानेका एक ज़नाना शासक राज्य कर रहा था। बारहवीं सदीके पिछले भागतक ऐसे ही शासकोंके अधिकारमें वह बना रहा। इसी समय प्रसिद्ध सलादीन, जो टायग्रीज़ नदीके टेकरितके सेलजुक सूबेदारका पुत्र था, सीरिया और मिस्रका सुलतान बन बैठा।

अलजीरियामें अरबी राजकुमार बारहवीं सदीके मध्य भागतक शासन करते रहे। ग्यारहवीं सदीके प्रारम्भ होनेके कुछ ही समय बाद मराको एक पृथक राज्य बन गया। मराको नगरकी स्थापना सन् १०७२ में हुई थी। अलमेहदी नामक एक मुसलमानी सम्प्रदायके सम्मुख यह दोनों राज्य न ठहर सके। इस सम्प्रदायकी रचना अटलस प्रदेशके एक निवासीने की थी। उसके झण्डेके नीचे अरबी और बर्बर लोग एकत्र हुए थे। इस धर्म-सम्प्रदायने राजनैतिक रूप धारण कर मराकोसे लेकर ट्यूनिसतक सारे उत्तर-अफ्रीकापर अधिकार कर लिया। यही नहीं उन्होंने स्पेनके मुसलमानी राज्यको भी एब्रो नदी और टेमस नदीतक जीत लिया।

स्पेनके प्रायद्वीपके उत्तरमें कैस्टाइल राज्यकी स्थापनाके बाद शीघ्र ही एब्रो नदी की तराईमें अरागन नामक एक दूसरे ईसाई राज्यका जन्म हुआ। नावरीके साथ अब इन्होंने भी अपने शत्रु मूरोंसे युद्ध छेड़ दिया।

मिनहोसे लेकर टेगसतक पुर्तगाल देश कैस्टाइल राज्यके अधीन हो गया था। सन् १०९५ में बर्गंडीका हेनरी कैस्टाइल राज्यके जागीरदारके रूपमें उसका शासन करता था। परन्तु औरीक मुक़ामपर मूरोंपर बड़ी भारी विजय प्राप्त करनेके बाद उसके पुत्र अलफ़ोंसोको उसके सैनिकोंने पुर्तगालका राजा बना दिया।

सन् १२१२ में कैस्टाइल, नवरी, अरगन और पुर्तगालकी सम्मिलित सेनाओंने मूरोंको टोलोसाके मदानमें बड़ी बुरी तरहसे पराजित किया। इस बिजयने स्पेनमें अलमेहदी लोगोंकी शक्तिको विनष्ट कर दिया। और ग्रनाडाके नये मुसलमानी राज्यको शीघ्र ही कैस्टाइल राज्यकी प्रभुता स्वीकार करनी पड़ी। इस समयसे मुसलमानोंके आतंकका अन्त हुआ।

दसवीं सदीके अन्त समयमें जब ह्युगकैपेट-फ्रैंक राजसिंहासनपर आसीन हुआ और पेरिस पहले पहल राजधानी बना तब देशका अधिकाँश भाग स्वाधीन राजाओंके अधीन था और फ्रैंक राजकी सत्ता पेरिस और आर्लियससे आगे कुछ ही दूरतक थी। छठें लुईने (११०८—११३७) पुनर्वार राज्यपर राजकीय सत्ता क़ायम की। उसने इङ्गलैण्ड और जर्मनीके साथ युद्ध भी किया। तेरहवीं सदीके पिछले भागमें नवरी राज्य फ्रैंक राज्यमें मिला लिया गया।

जब पूर्वोक्त भयङ्कर समयके पीछे शार्लीमेनका साम्राज्य भङ्ग होने लगा था तब नार्थमेन लोगोंने उत्तरी फ्रांसपर चढ़ाई की थी और

बादको देशके उस भागमें मज़बूतीके साथ बस गये थे जो नार्मंडीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस चढ़ाईके नेताका नाम राल्फ़ या रोलो था। नार्मंडी-के ड्यूक इसीके वंशधर थे। अङ्गरेज़ोंके इतिहासमें इन लोगोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

महान् अल्फ़्रेडके उत्तराधिकारियोंके साथ डेन लोगों तथा वेल्सके पहाड़ी लोगोंकी लड़ाई बराबर होती रहती थी। अन्तमें डेन लोगोंके प्रबल आक्रमणके कारण एथेलरेडको नारमंडी भाग जाना पड़ा। इस बीचमें स्वीन और कैन्यूट नामक डेन् राजाओंने २८ वर्षतक इङ्गलैंडपर राज्य किया। एथेलरेडके पुत्र एडवर्डके समयमें इङ्गलैंडमें सैक्सन लोगोंका राज्य (१०४२) फिर स्थापित हुआ। उसने वेल्स और नार्थम्ब्रियाके निवासियोंको युद्धोंमें हराया और स्काटलैंडके मैकबेथपर सेना चढ़ा ले गया। वेस्टमिनिस्टर गिरजाघर उसीके समय बना था।

एडवर्डकी मृत्युके बाद इङ्गलैंडके सिंहासन-पर हैरल्ड बैठा। वह केंटके अर्ल गुडविनका पुत्र था। परन्तु नार्मंडीके ड्यूक विलियमने सन् १०६६ में इङ्गलैंडपर चढ़ाई कर दी। उसका कहना था कि इङ्गलैंडका राज्य अपने बाद एडवर्ड मुझे दे गया है। साठ हज़ार सैनिक लेकर वह इङ्गलैंडपर चढ़ आया। हेस्टिंग्स नामक स्थानपर हेरल्डने उसका सामना किया, पर हेरल्ड युद्धमें मारा गया और इङ्गलैंडपर नार्मन लोगोंका अधिकार हो गया

केनेथके शासन कालमें (सन् ८४३) स्काट और पिक्ट् लोग मिलकर एक जातिके लोग हो गये। इनकी राजधानी फार्टीवियटमें थी। नार्मन लोगोंके समयमें इनका राजा मालकम कनमोर था। तेर-हवीं सदीके अन्त समयमें इङ्गलैंडके साथ इनका युद्ध शुरू हुआ। अन्तमें स्काटलैंड अपनी स्वतन्त्रता-की रक्षा करनेमें सफल हुआ।

नार्वे कुछ समयतक डेन-विजेता कैनूटके अधि-कारमें रहा। परन्तु उसके बाद उसने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। फिर स्वदेशी राजाओंका राज्य स्थापित हो गया। स्वीडन स्वाधीन राज्यके रूपमें पहले पहल बारहवीं सदीके प्रारम्भमें प्रकट हुआ। उसके ईसाई शासकोंने इसी समय नार्थलैंडपर अधिकार कर लिया। इसके बाद वे फ़िनलैंडपर भी हाथ लगाने लगे। उसके निवा-सियोंको ईसाई बनाकर उसके कुछ भागको अपने अधीन कर लिया।

इस समय जर्मन साम्राज्यमें बड़ा गड़बड़ मचा था। वहांके दो शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी दलों-में युद्ध हो रहा था। एक दलका नेता फ़्रैंकोनिया-का ड्यूक था और दूसरेका नेता सैक्सनीका ड्यूक था। फ़्रैंकोनियाका ड्यूक राज-पक्षका प्रतिनिधि था और सैक्सनीका ड्यूक विरोधी प्रजा और धर्मका पक्ष ग्रहण किये था।

इस समय पोलैंड उन प्रशियावालोंके साथ युद्धमें फंसा था जो ईसाई नहीं थे। अपनी स्वतन्त्रता-के विनष्ट हो जानेके डरसे उन्होंने ईसाई होना नहीं स्वीकार किया और पोलैंडवालोंसे बराबर मोर्चा लेते रहे। अन्तमें पोलैंड वालोंने अपनी सहायताके लिए ट्यूटन नाइटोंको बुलाया। इनकी सहायतासे प्रशियोंमें ईसाई धर्मका प्रचार हुआ और पोलैंड वालोंका उसपर अधिकार हो गया। परन्तु इन ट्यूटन नाइटोंने स्वयं प्रशिया, लिवोनिया और कोरलैंडपर अधिकार कर लिया और इस प्रकार पोलैंडवालोंके घोर शत्रु बन गये।

रूसमें अनैक्यका राज्य था। वहाँ इस समय कई छोटे छोटे राजा राज्य कर रहे थे। वे सब आपसमें लड़ते रहते थे।

इस समयके प्रारम्भिक भागमें ग्रीक साम्रा-ज्यपर चारों ओरसे बड़ी आपत्ति थी। उसपर अरब, सेल्जुक तुर्क और उत्तरी बर्बर लोग चढ़ाईपर चढ़ाई कर रहे थे। इटलीमें उसका अधिकार ओरेंटोतक ही रह गया था। उसपर नार्मन लोगोंका राज्य हो गया था। नारमंडीके टंक्रीड डिहाटीवाली नामक नाइटके बारह पुत्र इटलीमें अपनी भाग्य परीक्षाके लिए आये थे।

चन्द्रमा या सूर्यके चारों तरफ़ हलका सफ़ेद मण्डल, घने बादल, लाल बादल, नील बादल, चमकता हुआ चन्द्रमा, चमकती हुई तारायें, इन्द्रधनुष, मेघगर्जन, विद्युल्लता, ग्रहोंका उज्वल तथा शान्त भावसे चमकना। यह सब गर्भके सामान्य लक्षण हैं। विशेष लक्षण यों वर्णित हैं। अगहन, पूसमें लाल आकाश, सूर्य और चन्द्रमण्डल सहित बादल, मामूलीसे कम सर्दीका पड़ना।

पूस माघमें तेज़ हवा, पाला पड़ना, कोहरा, सूर्यके किरणमें ठंडक, मन्द चाँदनी, कड़ी सर्दी, सूर्यास्त और सूर्योदयके समय बादल।

माघ फाल्गुन—रूखी तेज़ हवा, बादल, सूर्य, ताम्रके ऐसा रंग।

फाल्गुन-चैत—तेज़ हवा, बादल, वृष्टि, सूर्य, चन्द्रमण्डल।

चैत-वैशाख—बादल, हवा, वृष्टि, बादलका गरजना।

गर्भके समय बादलोंका रङ्ग यदि चाँदी अथवा मोती अथवा तमालपत्र अथवा नीलकमल अथवा कज्जलके ऐसा हो तो प्रसवके समय अधिक वृष्टि होगी और यदि बादलोंमें सूर्यकी गर्मी अधिक हो और हवा मन्द चलती रहे तो प्रसव-कालमें अति वृष्टि होगी।

जैसे गर्भके अनन्तर गर्भस्राव होता है उसी तरह यहाँ भी गर्भधारणके अनन्तर यदि निम्नलिखित घटनायें हों तो उस गर्भका फल साढ़े छ महीनेके बाद नहीं होगा। यह घटनायें यों हैं, उल्कापात, वज्रपात, धूलवृष्टि, दिग्दाह, भूकम्प, बादलोंमें मकानोंके से आकार पुच्छलतारा, वर्षाके जलमें शोणित, माँस, चर्बी, घृत या तेलके चिन्ह, इन्द्रधनुष, ग्रहण, बिना बादलके आकाशमें गर्जन, करकापात, (बंगौरी)।

बिना विघ्नके यदि गर्भधारण अगहनमें हो तो १९५ दिनके बाद अच्छी वृष्टि आठ दिनतक होगी। यदि पौषमें हो तो पाँच दिन, यदि माघमें तो सोलह दिन, यदि फाल्गुनमें तो चौबीस दिन, यदि चैतमें तो बीस दिन, यदि वैशाखमें तो तीन दिन।

यदि गर्भके पाँचों लक्षण मौजूद हों अर्थात् वायु, वृष्टि, विद्युत्, गर्जन और मेघ तो प्रसवकालमें चार सौ वर्ग मीलतक वृष्टि होगी, यदि एक लक्षण हीन हो तो दो सौ वर्ग मीलतक; यदि दो लक्षण हीन हों तो सौ वर्ग मील। यदि तीन हीन हों तो पचास वर्ग मील, यदि चार हीन हों तो बीस वर्ग मील।

वृष्टिपातके नापनेका भी व्यवहार हमारे यहाँ पुराने ज़मानेमें था। यदि पाँचों लक्षण प्रसवमें हों तो एक 'द्रोण' वृष्टि होगी। यदि प्रसवकालमें केवल हवा थी तो वृष्टि तीन 'आढक' होगी। प्रसवकालमें केवल विद्युत् हो तो छ आढ़क वृष्टि होगी; प्रसवकालमें यदि केवल बादल हों तो नौ 'आढक' और यदि मेघ-गर्जन हो तो बारह 'आढक'।

नापनेकी विधि यों हैं—चौबीस अंगुल व्यास, चौबीस अंगुल गहरा एक पात्र बाहर रख दिया जाय। यदि वर्षाके जलसे भर जाय तो एक आढक वृष्टि हुई—ऐसा समझना चाहिये और चार आढकोंका एक द्रोण होता है।

जेठके महीनेके शुक्लपक्षमें यदि मन्द मन्द हवा चलती रहे तो गर्भकी पुष्टि समझनी चाहिये।

आषाढ़के पूर्णिमाके दिन यदि पूर्व या ईशान दिशासे सुगन्धित हवा चले तो वृष्टि अच्छी होगी और अन्न भी अच्छा होगा इत्यादि।

सद्योवृष्टिके भी कुछ लक्षण लिखे हैं। यदि वर्षा ऋतुमें उदय-कालमें सूर्यके किरण बहुत तेज़ हों, यदि पानीका स्वाद बिलकुल नीरस हो, आकाशका रंग यदि गोरोचनके ऐसा हो, यदि नमकमेंसे पानी निकलने लगे, यदि तालाबोंमें मछली ज़मीनकी ओर उछलने लगें, यदि ताँबे पीतलके बर्तनोंसे मछलीकी सी महक निकलने लगे, यदि चींटियाँ अण्डोंको लेकर एक जगहसे दूसरे जगह जाने लगें, यदि सर्प वृक्षपर चढ़ने लगें तो यह सूचित होगा कि एक आध घण्टेके भीतर ही पानी बरसेगा।

विश्वका विस्तार

[ले० श्री गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

यदि किसी अंधेरी रातमें आप आकाश की ओर आंख उठा कर देखें तो सम्भवतः हज़ार या दो हज़ार तारे आप गिन सकेंगे। दूरबीनोंकी सहायतासे समस्त आकाश मण्डलकी खोज की गई है और की जा रही है। ज्योतिर्विदोंका मत है कि दिखाई देनेवाले तारे, तारा गुच्छ (Clusters) और नीहारिकाओंकी संख्या एक और दो अरबके बीच में हैं। इनमेंसे सबसे दूरवाला वह ज्योति-पिण्ड है, जिसका प्रकाश हमतक २२०,००० वर्षमें आ पाता है। प्रकाश एक सेकण्डमें १८६००० मील चलता है, तो आप अनुमान कर सकते हैं कि उक्त पिण्ड किस अनन्त दूरीपर स्थित है।

इतनी दूरतक तो मनुष्यकी दृष्टि दूरबीन द्वारा पहुँच सकी है, इस दूरीका अनुभव करना भी मुश्किल है। बहुत से दार्शनिक तो इससे ही ऊब उठते होंगे परन्तु विज्ञान अपनी धुनमें लगा ही हुआ है। ज्योतिर्विदोंके बाद अब भौतिक विज्ञानियोंकी बारी है। उन्होंने प्रश्न उठाया है कि इसका कहीं अंत भी है? यदि है तो विश्वकी सीमाका कैसा रूप है और वह कहां स्थित है।

इस प्रश्नका एक उत्तर तो सापेक्ष वाद (Theory of Relativity) से मिलता है। सापेक्ष वादमें विश्वकी त्रिज्या और समयकी वक्रता निकालनी पड़ती है। इन शब्दोंको सुनते ही मुंहसे निकल पड़ता है कि कैसी निरर्थक मूर्खता पूर्ण बातें हैं। आइये इस विषयपर थोड़ा विचार करें।

देश और कालके सम्बन्धमें जो हमारे विचार हैं वह शरीर और मनके गुणोंसे घनिष्ठ सम्बंध रखते हैं। उदाहरणतः देशको तीन दिशा वाला (त्रिदिक्) हम क्यों मानते हैं, इसका मुख्य कारण है कि यही हमारा शरीर और इन्द्रियां स्वयम् तीन दिशावाली हैं और इन्हीं तीन दिशाओंमें हमारे समस्त अनुभव सीमाबद्ध है। समयकी एकसी चाल भी उन रहस्यमय रासायनिक परिवर्त्तनों द्वारा अनुभव गम्य है जो हमारे वात तन्तुओंमें होते रहते हैं।

हम कई प्रकारके देशकी भी कल्पना कर सकते हैं; सम्भव है कि देश परिमित होते हुए भी अपरिमित हो, सारांश यह कि हम विश्वकी ऐसे रूपमें कल्पना कर सकते हैं, जो उस रूपसे हमारी परिमित क्षुद्र बलहीन इन्द्रियोंको दीखता है, बिलकुल निराला हो। इससे स्पष्ट है कि देश और काल दोनोंमें वह गुण भी विद्यमान हों जो निरी वक्रतासे अधिक आश्चर्यजनक हों।

आइये अब थोड़ासा समयकी वक्रतापर विचार करें। मान लीजिये कि पृथ्वीपर रखी हुई तोपसे एक गोला छोड़ा गया है जो इसके वायु मण्डलको भेदकर अनन्त आकाशमें पहुँच गया है। मान लीजिये कि वह समान वेगसे चल रहा है अर्थात् प्रत्येक सेकण्डमें वह उतनी ही दूरी तय करता है—जैसे एक सेकण्डमें एक मील। अब प्रश्न है कि हम यह मील और यह सेकण्ड कैसे नापते हैं। स्पष्ट है कि हम तो उसी विधिका अनुसरण करेंगे जिसका पृथ्वी पर करते हैं। सैकण्ड हम उस घड़ीसे नापेंगे जो पृथ्वीकी गतिसे मिलाई गयी है।* मील भी भूमण्डलीय मीलोंमें ही नापेंगे। परन्तु क्या प्रमाण है कि पृथ्वीसे अलग हो जानेपर यह मील और सैकण्ड उतनेही परिमाणके बने रहेंगे जितने कि पृथ्वीपर थे। सम्भव है कि देशके कुछ भाग हों जहां समय भिन्न प्रकारका हो। यह भी सम्भव है कि देश भी बदल जाय और पृथ्वीका एक मील किसी अन्य ग्रहके एक मीलसे भिन्न हो। यदि यह भी मान लें कि गोलेपर कोई मनुष्य घड़ी और गज़ लेकर बैठ जाय तो भी क्या भरोसा कि

* जितने समयमें पृथ्वी अपने अक्षपर एक बार घूम जाती है, उस समयको २४ घण्टे मानकर ही सेकण्डकी माप होती है।

इनमें भी परिवर्तन न हो जाय। यदि उनमें परिवर्तन हुआ तो विश्वका वक्रताका प्रमाण है। यदि घड़ी बदली तो समयकी वक्रता सिद्ध हुई। यदि गज़ बदला तो देशकी वक्रता स्पष्ट होगी।

उपर्युक्त बातें समझनेके लिए पृथ्वीके पृष्ठकी वक्रतापर विचार कीजिये। समतल होनेका क्या प्रमाण है? एक नली लेकर उसमें पानी भर दीजिये और थोड़ीसी हवा उसमें छोड़कर उसका मुंह बन्द कर दीजिये। इस नलीको जब आप लिटाएँगे तो हवाका बुदबुदा नलिकाके उस सिरेकी तरफ़ जायगा जो ऊंचा होगा। यदि दोनों सिरे सम तल होंगे तो बुदबुदा बीचों बीच रहेगा। अतएव जब बुदबुदा बीचों बीच रहे तब समझ लो कि नली पृथ्वी तलके समानान्तर है। यह यंत्र समतल यंत्र कहाता है। इस यंत्र को भूभागके एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाइये। इन स्थानोंमें लगभग १००० मीलका अन्तर हो तो अच्छा। A रेखाके समानान्तर न होगी। यह अन्तर क्यों हो गया, केवल एक ही उत्तर हो सकता है। पृथ्वीके पृष्ठके वक्र होनेके कारण। किन्तु हम यह भी कह सकते हैं कि शायद समतल-यंत्र ही इस प्रकार बदल गया हो। या यों समझिये कि भूपृष्ठकी वक्रताकी यह भी परिभाषा दे सकते हैं कि समतल-यंत्रोंके द्योतनमें जितना अंतर आता है वह भूपृष्ठकी वक्रता है।

अब पहले कही हुई बातपर ध्यान दीजिये। गज़ और घड़ीके द्योतनमें जितना अन्तर स्थान परिवर्तन करनेसे पड़े, वही अन्तर देश और कालकी वक्रताका सूचक और मापक होगा। जिस देश कालमें गोला गति कर रहा है उसीका नाम तो विश्व है, अतएव यह स्पष्ट है कि विश्वकी वक्रता देश-कालकी वक्रतासे नापी जा सकती है।

यह तो कल्पना मात्र हुई, वस्तुतः देश और कालमें वक्रताका पता चलाना सम्भव भी है, इस प्रश्नपर अभी विचार नहीं किया। यदि सभी गज़ोंमें उतना ही अन्तर हो जाय, यदि गोलेमें भी उसी अनुपातसे परिवर्तन हो जाय, यदि स्वयम् गोलेके सवारमें भी उसी क्रमसे विस्तार या संकोच हो जाय तो परिवर्तनका पता कौन और किस प्रकार चला सकता है। यदि कई गोले साथ छोड़े जायं और उनकी गतियोंमें भी परिवर्तन एकसा हो तो उसका भी पता चलाना कठिन ही नहीं असम्भव होगा।

विद्युत कणकी परिक्रमा

ऐसी समस्या जब उपस्थित हो तो किसी देवी या देवताकी शरण लिये बिना सफलता नहीं हो सकती, आइये हम भी विद्युत् देवीकी आराधना करें।

यदि आपको परिवर्तनोंका पता चलाना है तो आप गोलेपर सवार होकर देशकी यात्रा न कीजिये आप यहाँ ही रहिये और दूरबीन द्वारा गोलेपर रखे हुए गज़ और घड़ीको ध्यानपूर्वक देखते रहिए। तब उनकी तुलना प्रयोग शाला के गज़ और घड़ीसे आप कर सकेंगे और परिवर्तनका परिमाण निकाल सकेंगे, पर यह विधि भी कल्पना मात्र है। कहाँ तो ऐसी बड़ी तोप मिले और कहां उसका गोला समान गति करता हुआ घड़ी और गज़को लादे हुए देशमें विचरे। यदि सम्भव भी हुआ तो मापदण्डके बारीक निशानोंको दूरबीनसे देखना असम्भव है। निराश न हूजिये, विद्युत् देवीने अपने जीवन सर्वस्व कणोंका भेद हमें बता कर इस कठिनाईका एक उपाय दिखला दिया है। यह तो थोड़ी तपस्याका फल है, यदि और तपस्या की जाय तो पूरा भेद भी खुल जायगा।

मामूली घड़ी दूर दूरके तारोंतक भेजनेकी आवश्यकता नहीं है। वहाँ पहलेसे ही अनादि कालसे घड़ियां विद्यमान हैं, जिनकी तुलना हम अपने यहांकी घड़ियोंसे कर सकते हैं। यह घड़ियां परमाणु, विशेषतः उज्जनके परमाणु हैं।

आधुनिक गवेषणासे सिद्ध हुआ है कि उज्जनके परमाणुके दो मुख्य भाग हैं—विद्युत् कण और

दूसरा आद्यकण (Electron and proton)। परमाणुके केन्द्रमें आद्यकण स्थित है। विद्युत् कण इसकी परिक्रमा उसी भांति करता है जिस प्रकार पृथ्वी सूर्यकी। इस मतके पक्षमें अनेक प्रयोगोंका वर्णन किया जा सकता है और संसारके सभी प्रमुख विज्ञान-वेत्ता इसको मानते हैं। पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका समय एक वर्ष है विद्युत् कणकी परिक्रमा एक सेकण्डके अत्यन्त सूक्ष्म भागमें एक बार पूरी हो जाती है। जिस प्रकार भू-भ्रमणसे सेकण्ड, घंटा, वर्ष आदिका परिमाण निश्चित होता है, उसी प्रकार विद्युत् कणकी परिक्रमासे भी समय नापा जा सकता है।

करोड़ों कोसकी दूरीपर स्थित तारोंके उज्जनके परमाणु अपनी भ्रमण कथा प्रकाश रश्मियों द्वारा हमें सुनाते रहते हैं। किस स्थानपर उनके वेगमें कितना अन्तर पड़ा यह समाचार हमें निरंतर मिलता रहता है। इसका रहस्य नीचे बतलाया गया है।

जब उज्जनको अत्यन्त उत्तप्त किया जाता है या शून्य नलिकामें (Vaccum tube) बिजलीकी मारसे उद्दीप्त किया जाता है तो उसमेंसे विशेष प्रकारका प्रकाश निकलने लगता है। इस प्रकाशको कांचके तिपहलमेंसे निकाल कर परीक्षा कर सकते हैं। जिस यंत्रसे यह काम होता है उसे रश्मि-चित्र-दर्शक (Spectros cope) कहते हैं।

इस यंत्रसे प्रकाशकी लकीरें दिखलाई देती हैं, इन्हींके समुदायको प्रकाश छत्र (Spectrum) कहते हैं। प्रत्येक मौलिकका प्रकाश-छत्र निराला होता है, उसमें उसकी विशेष प्रकाश-रेखाओंका वर्ण और स्थान निश्चित रहता है। वस्तुतः प्रकाश-छत्रको देख कर किसी गैसके अवयवोंका पता सहज ही लगाया जा सकता है। इन प्रकाश रेखाओंकी स्थिति एक निश्चित परन्तु जटिल रीतिसे परमाणुके विद्युत् कणके भ्रमणपर अवलम्बित है। यदि इन विद्युत्कणोंका वेग घट जाय तो रेखाएं प्रकाश पुञ्जके लाल भागकी ओर हट जायंगी और वेग बढ़नेसे बैंजनी भागकी तरफ़ सरक जायंगी। अब मान लीजिए कि किसी दूरस्थ तारेकी उज्जनके रश्मि-छत्र की तुलना पृथ्वीस्थ उज्जनके रश्मि-छत्रसे करें और रेखाओंको मिलावें तो क्या परिणाम निकलेगा? स्पष्ट है कि उनके वेगों की समानता अथवा भिन्नता प्रकट हो जायगी, अथवा यों कहिये कि उस दूरस्थ तारेकी विद्युत कणीय घड़ीकी तुलना पृथ्वीकी वैसी ही घड़ीसे हो जायगी।

ऊपर कह चुके हैं कि अभी पूरा रहस्य नहीं खुला है। इन रेखाओंके स्थानमें भेद केवल विद्युत् कणोंके गति-भेदसे ही नहीं उत्पन्न होता है। तारे और पृथ्वीकी पारस्परिक गतिसे भी यह भेद अंशतः पैदा हो सकता है। यह समझनेके लिए एक उदाहरण दिया जाता है।

आप रेलकी लैनपर खड़े होकर उस इंजिनकी तरफ़ देखिए जो सीटी देता हुआ आपकी तरफ चला आ रहा हो। जैसे जैसे इंजन आपकी तरफ़ बढ़ेगा सीटीका सुर अधिक ऊंचा होता जायगा और जैसे जैसे इंजन आपसे दूर होता जायगा सुर नीचा होता जायगा। यद्यपि सीटीका सुर एक समान रहता है तथापि इंजनकी गतिकी दिशा आपकी अपेक्षा बदलती है इसीसे आपको सुर नीचा और ऊंचा सुनाई पड़ता है। स्वरका ऊंचा या नीचा होना दोलन-संख्यापर निर्भर है। वायुमें दोलन होनेसे शब्द उत्पन्न होता है। दोलनसे तरंगें उत्पन्न होकर वायुमें प्रयाण करती हैं। यदि शब्दायमान वस्तु और श्रोता दोनों स्थिर हैं तो प्रति सैकण्ड उतनी ही शब्द तरंगें श्रोतातक पहुँचेंगी। किन्तु शब्दायमान वस्तु श्रोताकी तरफ़ प्रयाण करती होगी तो अधिक और उससे दूर जा रही होगी तो कम तरंग श्रोतातक पहुँचेंगी। यद्यपि शब्दायमान वस्तुकी दोलन संख्या एक समान है तथापि उसके और श्रोताके पारस्परिक वेगके परिवर्तनके अनुसार

दोलन संख्या श्रोताको घटती बढ़ती प्रतीत होगी अर्थात् सुर उतरता चढ़ता प्रतीत होगा।

प्रकाश भी (ईथर) आकाश तरंगोंसे पैदा होता है। भिन्न भिन्न प्रकाश भिन्न भिन्न दोलन संख्या वाली तरंगोंके परिणाम हैं। जब कोई तारा पृथ्वी-से हटता है तो उसके प्रकाशकी दोलन संख्या कम होती दिखाई पड़ती है और जब पृथ्वीकी तरफ़ आता है तो संख्या बढ़ती प्रतीत होती है। यही कारण है कि इस पारस्परिक गतिके प्रभावसे रेखाएं अपने स्थानसे दाएँ बाएँ हटती हैं। इस कारण रेखाओंके हटनेसे विद्युत्कणोंके भ्रमण कालोंकी ठीक तुलना करना कठिन है। तथापि वर्तमान कालमें तो इससे अच्छा कोई दूसरा साधन नज़र नहीं आता। अतएव विश्वके विस्तार और देश तथा कालकी वक्रताका निर्णय इसीसे किया जाता है।

इस हिसाबसे डा० सिल्वास्टीनने गणना की है और उनका मत है कि विश्वका व्यासार्द्ध पृथ्वी और सूर्यके अन्तरसे ६,०००,०००,०००,००० गुना है अर्थात् १०,०००,००० प्रकाश वर्ष है। इससे दुगना विश्वका विस्तार है।

विश्वकी वक्रताके ठीक ठीक निकालनेके सम्बन्धमें हमारी वही दशा है जो ५०० या १००० वर्ष पहिले उन लोगोंकी थी जो पृथ्वीको गोल मानते थे। अपने अनुभवोंके आधारपर उन्हें पूर्ण और दृढ़ विश्वास था कि पृथ्वी गोल है, किन्तु उसके व्यासार्द्धकी नाप उनकी शक्तिके बाहर थी, वह यही सोचते रहते थे कि कभी न कभी अच्छे अच्छे और बारीक यंत्र बनेंगे और तभी यह ग्रन्थि खुलेगी। विज्ञानके विकाशसे वह दिन भी शीघ्र आ जायगा जब विश्वके व्यास-की ठीक ठीक नाप ज्ञात हो सकेगी।

होएटज़िन

यह प्राणी सांप है कि पक्षी!

[ले० प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

दक्षिण अमेरिकाके गरम प्रदेशको नदियोंके किनारोंपर जहां तहां एक महा अद्भुत प्राणी रहता है, जो सम्भवतः संसारमें सबसे अधिक अभागा है। न जाने ब्रह्माने इसकी रचना किस धुनमें कर डाली थी। उक्त स्थानोंमें झाड़ियोंमें-से कराहनेकी भद्दी सी आवाज़ आया करती है—हो एट-ज़िन। इसी शब्दके कारण इस प्राणीका नाम भी होएट-ज़िन रखा गया है। इस प्रकृतिके तमाशेको वैज्ञानिक संसार बहुत दिनोंसे जानता है, किन्तु अभीतक धुरंधर विद्वान यह निर्णय नहीं कर सके हैं कि यह प्राणी किस वर्गका है। इसमें उनका दोष नहीं है, वस्तुतः यही तो इस प्राणीकी विचित्रता है कि जन्मके समय उसके शरीर परके चिन्ह और उसका व्यवहार सांपकासा होता है। अपने घोंसलेमेंसे निकलकर यह सांपकी तरह सिकुड़ सिकुड़कर पेड़पर चढ़ा करता है, जिसमें कि वह अपनी माता द्वारा लाये हुये खाद्य पदार्थों-को ग्रहण कर सके। कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि यह उरग जातिका प्राणी है और कुछ अन्य वैज्ञानिक कहते हैं कि यह पक्षि-वर्गका है, किन्तु जगत प्रसिद्ध वैज्ञानिक डार्विन कहा करते थे कि उरग और पक्षिवर्गोंके बीचकी खोई हुई कड़ी (missing link) यह प्राणी है। उरग वर्गसे पक्षिवर्गमें बदलते समय परिवर्तन अवस्थाके मध्यमें ही इस प्राणीका परिवर्तन-क्रम सहसा रुक गया—जिसका परि-णाम रूप यह अद्भुत व्यापार है। अमेरिकन म्यूज़ियम ओव नेचुरल हिस्टरीके कार्यकर्ता प्रसिद्ध वैज्ञा-निक-मिस्टर विलियम बीब (William Beebe) दक्षिण अमेरिकाके जंगलोंमें कुछ दिनसे गए हुए थे। उनका अभिप्राय था कि इस प्राणीकी रहन सहन आदिका सूक्ष्म रीतिसे अन्वेषण करें। वह

हालमें ही इस कामको करके लौटे हैं। वह इस अनोखे जीवके छाया चित्र भी लाये हैं। उन्हें इन प्राणियोंके कई झुण्ड मिले, जिनका निरीक्षण कर इन्होंने बहुत सी अज्ञात बातोंका पता लगाया, परन्तु अब भी कई बातें ऐसी रह गई हैं जिनका रहस्य किसी प्रकार नहीं खुलता दीखता। होएट-ज़िनका बच्चा वस्तुतः पक्षियोंकी अपेक्षा सांपोंसे अधिक मिलता जुलता होता है। अण्डेके बाहर निक-लनेपर वह सांपकी तरह इधर उधर लहराता हुआ चलता है। यही एक ऐसा पक्षी है जिसकी पीठ परके निशान परोंके अन्त्य भागोंतक बराबर फैले होते हैं। इन निशानोंका रंग और स्थिति बिलकुल सांपों जैसी होती है। जब बच्चा बढ़ने लगता है तो सांपसे उसकी समानता कम होने लगती है और वह पक्षीसे अधिक मिलता जुलता दीखने लगता है। बच्चा होएटज़िनकी यह प्रारम्भिक विशेषता ही उसको अन्य प्राणियोंसे विलक्षणता प्रदान कर देनेके लिए पर्याप्त है, किन्तु इस अभागे प्राणीको प्रारब्धही विधाताने विलक्षण बनायी है। इसके प्रत्येक प्रमुख लक्षणका विरोधक कोई न कोई अन्य लक्षण भी विद्यमान रहता, जिसके कारण उसके जीवन व्यापार दुस्साध्य और और दुखदाई हो जाते हैं। इस बातका समझनेके लिए दो एक बातें नीचे दी जाती हैं।

पक्षियोंके समान बड़े होनेपर इसके पर उग आते हैं। यह सभी जानते हैं कि पक्षियोंके बाजू—हमारे हाथोंके स्थानपर हैं—हाथोंके विकारसे ही बाजू बने हैं। होएटज़िनके बाजुओंके सिरोंपर अंगूठे और बीचकी अंगुली विशेष बर्धित रूपमें विद्यमान रहते हैं, किन्तु परोंके कारण वह इन अंगोंको काममें नहीं ला सकता। उधर जब वह परोंका सहारा ले उड़ने लगता है तो वह हवामें कुलांट खाने लगता है। इसका कारण यह है कि उसका आमाशय बहुत बढ़ा हुआ होता है और अन्य पक्षियोंकी अपेक्षा अधिक आगेको हटा हुआ होता है। अतएव भोजन कर चुकनेपर विशेषत: जब वह परकी ओर उड़नेका प्रयत्न करता है तो हवामें कुलांट खाता हुआ कुछ दूर उड़ पाता है।

इस प्राणीकी टांगे बड़ी और पंजे विस्तृत होते हैं, किन्तु यह भी उसको दुखदायी ही सिद्ध होते हैं। यह प्राणी छोटी छोटी डालियोंपर जब उन्हें पकड़ पकड़ कर चलता है तो बड़ी बड़ी टांगें और चौड़े चौड़े पंजे उन्हें पकड़ नहीं पाते।

पाठकोंके हृदयमें यह प्रश्न उठ रहा होगा कि पेट भरनेपर तो यह पक्षी नहीं उड़ पाता, पर क्या ख़ाली पेट भी यह उड़नेमें असमर्थ है। वस्तुतः ख़ाली पेट उड़नेमें यह कुलांटे तो नहीं खाता और न पहियेकी तरह घूमता हुआ उड़ता है, परन्तु उसके बाजुओंका क्षेत्रफल बहुत थोड़ा होता है; अतएव उसे उड़नेमें अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है, थोड़ा सा उड़नेपर ही उसका दम फूल जाता है और जब वह निर्दिष्ट स्थानपर उतरता है तो उसे पैरोंसे पकड़ सांसको शान्त करनेके लिए उलटा लटक जाता है।

इस प्राणीकी चोंच उक़ाब या बाज़की सी होती है, जिसमें यह मांसको चीर या काटकर खा सकता है। बंगालियोंकी तरह उसका प्रिय खाद्य मछली है। वह पानीके किनारे इसीलिए रहता है कि भाग्यवश कभी मछली हाथ लग जाय और नदी किनारेके वृक्षोंपर बैठा जलमें तैरती हुई मछलियोंको देखकर ही ख़ुश होता रहता है। यदि प्रकृतिने उसे बाज़ कासा मांस प्रिय और पाचन शक्ति सम्पन्न बनाया था तो उसे आकाश विहरण और डुबकी लगानेकी शक्ति भी प्रदान करनी चाहिए थी।

"यह रोटी और वह मछली" वाले बंगालीकी नाई इसे भी दूरसे ही अपनी मत्स्य-लिप्सा पूरी करनी पड़ती है और शाकाहारी बनना पड़ता है। किन्तु इस अहिंसा व्रतमें भी उसे अनेक कठिनाइ-

योंका सामना करना पड़ता है। बाज़की सी चोंच-से फलोंका तोड़ना और खाना दोनों कार्य कष्ट साध्य हैं। मुड़ी हुई चोंच बड़ी कष्टदायक है। होएटज़नके सरपर फ़ेज़ेंट पत्तीका सा मुकुट या कलगी होती है। उसकी चोंच भी टरकी या फ़ेज़ेन्ट कीसी होनी चाहिए थी, किन्तु प्रकृतिने उसके साथ बड़ा उपहास किया है।

अब ज़रा सोचिये कि चोंच निकम्मी, पर निकम्मे, अंगुठा और अंगुली बेकाम, फिर यह पत्ती आत्म-रक्षा कैसे करता है। रात दिन वह प्रकृतिके अन्यायका विलाप करता रहता है, झाड़ियोंमें इधर उधर कठिनाई से चलता फिरता है—कभी थोड़ा सा उड़ता है, फिर गिर पड़ता है, तब अंगूठा और अंगुली द्वारा पतली पतली शाखा-ओंको पकड़ कर चलता है, कभी फुदकता है, किन्तु जहां किसी शत्रुको आते देखता है तहां टहनियोंको हाथ से छोड़ प्रारब्धके भरोसे टपक पड़ता है। इस प्रकार घनी झाड़ियोंके बीच अंधेरे स्थानोंतक पहुँचकर छिप जाता है। किन्तु इस संकट कालीन यात्रामें उसके पर नुच जाते हैं। वैसे भी जब वह अँगुली और अंगूठेसे टहनियोंको पकड़ कर चलता है तब भी उसके रोएं और पर रगड़ खाकर उखड़ जाते हैं। इस प्रकार उसकी उड़नेकी शक्ति निरंतर कम होती जाती है। प्रकृति यह सब तमाशे देखा करती है और अपनी इस अनोखी सृष्टिपर हंसा करती है, उसे उसकी बेबसी पर दया आती भी या नहीं, यह कहना तो कठिन है; किन्तु उसकी आत्म रक्षाका एक साधन प्रकृतिने अवश्य बना दिया है। उसके शरीरमेंसे अत्यन्त तीव्र दुर्गन्ध निकला करती है। इस उग्र गन्धके कारण कोई जानवर इसके पासतक जानेका साहस नहीं करता। चील, बाज़ आदि प्राणी भी इसके पासतक नहीं फटकते। अमेरिकाके मांसभोजी आदिम निवासी भी इस प्राणीको कभी नहीं खाते।

इसके सिरपरके मुकुटसे इसकी आकृतिमें कुछ मनोहरता अवश्य आजाती है, किन्तु यह भी सम्भवतः प्रकृतिने उसे चिढ़ानेके लिए बनाई थी, क्योंकि थोड़े ही दिनमें शाखाओं, पत्तों और झाड़ों-की रगड़से वह झड़ जाती है।

आरम्भमें इस प्राणीकी पूंछ छिपकलीकी सी होती है, किन्तु जैसे जैसे इसका रूपान्तर होता है, पूंछके स्थानपर कुछ भद्देसे बाल रह जाते हैं। पक्षियोंकी पूंछके बाल पतवारका काम दिया करते हैं, अतएव आप अनुमान कर सकते हैं कि इसकी पूंछकी जीर्ण दशाका इसपर क्या प्रभाव पड़ता होगा। यदि कभी साहस कर यह एक डालीसे किसी अन्य डालीका लक्ष्यकर उड़ता भी है तो उसके आगे निकल जाता है और बेदम हो किसी टीले आदिपर जा गिरता है; फिर लक्ष्यपर पहुँचनेके लिए अपने पैर, अंगली और अंगूठाका आश्रय लेता है।

इस बेचारे प्राणीको दो और असुविधाओंका सामना करना पड़ता है। एक तो इसकी छातीकी हड्डी विकृत है और दूसरे इसके शरीरपर दो परोपजीवी (parasite) रहते हैं, जो किसी अन्य प्राणीपर नहीं रह सकते।

पारलोग्राफ़

[ले० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

एक विचित्र अविष्कारका हाल सुनिए। ग्रामोफ़ोन तो अब साधारण सी चीज़ हो गई है, देहातोंतकमें कोई कोई अमीर जमीन्दार ग्रामोफ़ोन बाजेको बजाकर सन्ध्या समय कुछ मन बहलाव कर लेते हैं तथा भोले भाले अशिक्षित ग्रामवासियोंको कुतूहलमें डाल देते हैं। इसी ग्रामोफ़ोन-

का थोड़ा सा परिवर्तित रूप सैकड़ों मील दूर बैठे मित्रके पास अपनी वाणी और शब्द भेजनेके काममें लाया जा सकता है। इस नये यंत्रका नाम पारलोग्राफ़ (Parlograph) है। इस यंत्र द्वारा तागोंके ऊपर वार्तालाप अंकित कर दिया जाता है। ग्रामोफ़ोनमें बातचीत और गाना रिकार्डोंके ऊपर अंकित रहता है और यही रिकार्ड ग्रामोफ़ोनमें रक्खे जाकर अंकित वार्तालाप या गानेकी पुनरावृत्ति कर देते हैं। जो शब्द अंकित किये जाते हैं वही ज्योंके त्यों सुनाई पड़ते हैं। पारलोग्राफ़ नामक यंत्रमें रिकार्डोंके ऊपर नहीं वरन सेल्यूलोसके तागोंके ऊपर शब्द अंकित किये जाते हैं। यह तागा सितारके तारसे भी पतला होता है। सेल्युलोसको हिन्दीमें काठोज कहते हैं। स्विटज़रलैण्डके एक निवासीने इस यंत्रका आविष्कार किया है।

बोलते हुए तागोंकी सहायतासे पत्रव्यवहारका आजकलका ढंग बिलकुल बदल जायगा। अपने दूरस्थ मित्रोंके पास पत्रमें रखकर सेल्यूलोसके धागेकी लच्छियाँ डाक द्वारा भेज दी जायँगी; इनपर बोले हुए शब्द ज्योंके त्यों अंकित होंगे। मित्र इस तागेको मशीनके पुनरावृत्ति करनेवाले अंगपर रखकर जैसे शब्द बोले गये थे वैसे ही सुन लेंगे। मनुष्यका शब्द बिलकुल साफ़ और इतनी ज़ोरसे इस अंग द्वारा दोहराया जाता है कि कमरेमें बैठे हुए सब मनुष्य सुन और समझ सकते हैं। बोलते हुए तागे वाला यह मशीन टेलीफ़ोनके साथ दफ़्तरोंमें लगाई जाती है। मालिककी अनुपस्थितिमें यदि टेलीफ़ोनपर किसीने कुछ कहा तो इस यंत्रमें वह बात अंकित हो जायगी और लौटनेपर दफ़्तरके बाबू उस बातचीतको फिरसे सुन सकते हैं। बड़े बड़े दफ़्तरोंमें शार्टहैण्ड लेखक रहते हैं। स्वयं न लिखकर अफ़सर लोग चिट्ठियोंके जवाब और नयी चिट्ठियाँ बोलते जाते हैं और स्वरालेखक तत्काल लिखते जाते हैं। फिर जो कुछ बोला गया है टाइपराइटरसे टाइप करके हस्ताक्षरके लिए अफ़सरके पास उपस्थित करते हैं। बड़े बड़े काम करनेवाले अपना बहुत सा अमूल्य समय इस प्रकार बचा लेते हैं और थोड़े ही समयमें बहुत सा पत्रव्यवहार कर लेते हैं। यदि यह तरकीब न हो तो बड़े बड़े व्यापारी जिन्हें प्रतिदिन एक हज़ारसे भी अधिक पत्र सुनकर उत्तर लिखाना पड़ता है कभी भी अपना काम पूरा न कर सकें। इस पारलोग्राफ़ यंत्रकी सहायतासे अब स्वरालेखककी भी आवश्यकता न रहेगी। मेज़पर पारलोग्राफ़ रक्खा रहेगा। एक लेखक पत्र पढ़कर सुनाता जायगा। व्यापारी महोदय उत्तर बोलते जायँगे; उनका उत्तर पारलोग्राफ़में सेल्यूलोसके तागेपर अंकित होता जायगा। सैकड़ों हज़ारों पत्रोंके उत्तर इस प्रकार अंकित हो जायँगे। लेखक यह तागा ले जाकर टाइपराइटर मशीनपर छापनेवाले लेखकोंको दे देगा। वह इस यंत्रके पुनरावृत्ति करनेवाले अंगकी सहायतासे उत्तरोंको अपने मालिकके शब्दों और वाणीमें सुनते जायँगे तथा टाइप करके हस्ताक्षरके लिए उपस्थित कर देंगे।

छोटे और बहुत सस्ते रूपमें भी यह यंत्र बनाया गया है। इस रूपमें यह हाथसे ही चलाया जा सकता है और घरमें रखकर काममें लाया जा सकता है। रेल या मोटरमें चलते हुए मुसाफ़िर पत्रोंका उत्तर इस मशीनमें बोलकर सेल्यूलोस (काष्ठोज) के तागे अपने मित्रोंके पास भेज सकते हैं। लड़ाईके समयमें गोप्य ख़बरें संकेताक्षरों और सांकेतिक शब्दोंमें काष्ठोजके तागोंपर अंकित करके कबूतरोंकी टाँगोंमें बाँधकर भेज सकते हैं। ख़बर चाहे जितनी लंबी हो भेजी जा सकती है, क्योंकि लम्बी ख़बरके लिए लम्बा तागा होगा पर उसका भार और आयतन बहुत कम होगा अथवा यों कहिये कि बहुत लम्बा तागा पतला और हलका होनेसे लपिटकर बहुत कम जगह घेरेगा और हलका भी होगा।
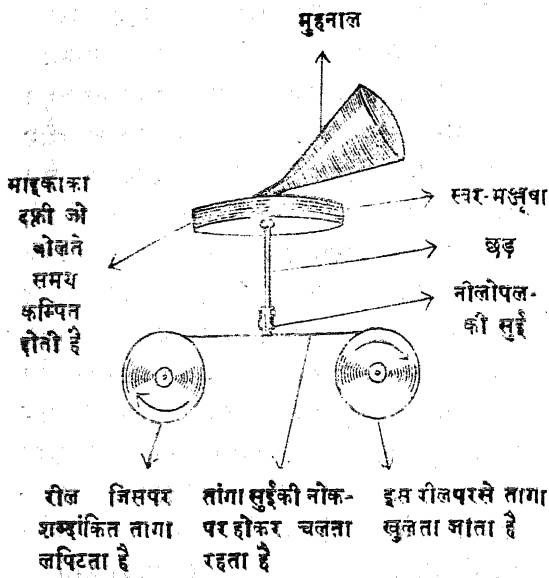
इस यंत्रका चित्र और उसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जाता है। साधारण ग्रामोफ़ोनके सौण्डबाक्स (Sound Box) या (अपनी भाषामें) स्वरमंजूषाके साथ जो माईका (mica) का बना होता है एक छोटा सा मुहनाल जोड़ा जाता है। इस स्वरमंजूषाके केन्द्रपर उससे लम्ब बनाता हुआ एक छड़ लगा रहता है। इस छड़के दूसरे सिरेपर छेनी जैसी नोकवाला नीलोपलका क़लम लगा रहता है। यह क़लम वैसा ही समझिए जैसा शीशा काटनेके लिए हीराका क़लम होता है। भेद यही है कि यहाँपर हीरेके बदले नीलोपल लगा रहता है। बस थोड़ेसे काष्ठोजके तागेकी और आवश्यकता होती है। यंत्रसंचालनके लिए ग्रामोफ़ोन जैसे मोटरकी आवश्यकता होती है। साधारण ग्रामोफ़ोनके स्वरमंजूषामें लगे हुए मुँहनालमें शब्द बोले जाते हैं। शब्दकी तरंगें माइकाकी दफ़लीमें दोलन उत्पन्न कर देती हैं। और यह दोलन पतली छड़ द्वारा नीलोपलकी सुईमें कंपन उत्पन्न कर देती है। सुई काष्ठोजके तागेको छुए रहती है। डोरा सुईको कुछ कुछ रगड़ताला रहता है और कम्पनके कारण सुई डोरेमें शब्द तरंगोंको अंकित कर देती है। यह तागा दो रीलोंपर लपटा रहता है, विद्युत्‌की मोटरकी सहायतासे एक रीलपरसे खुलता जाता है और दूसरीपर लिपटता जाता है। जैसे जैसे नीलोपल की सुई शब्दतरंगोंको अंकित करती जाती है तैसे तैसे एक रीलपरसे खुलकर दूसरी रीलपर यह डोरा लपटता है। जब पूरी बात अंकित हो जाती है तब अंकित डोरेवाली रील पुनरावृत्ति करनेवाली मशीनपर चढ़ाई जाती है।

इस समय युरोप और अमेरुकामें इतने ज़्यादा अविष्कार हो रहे हैं, ऐसे नये नये यंत्र बनते जा रहे हैं कि भारतवासियोंके लिए उसका पूरा अनुमान करना भी कठिन है। वैज्ञानिक उन्नतिका कारण यह है कि साधारण कोटिका मनुष्य भी लिख पढ़ सकता है। कोई भी कुली ऐसा न मिलेगा। जो कोई न कोई दैनिकपत्र रोज़ न पढ़ता हो। इन पत्रों द्वारा अनेकानेक विषयोंका ज्ञान सर्वसाधारणमें फैल जाता है। छोटे छोटे बच्चे भी विज्ञानके आविष्कारोंसे अनभिज्ञ नहीं हैं क्योंकि बचपनसे ही वैज्ञानिक शिक्षा वैज्ञानिक ढंगसे दी जाती है। इसीलिये बड़े होनेपर इनकेलिए आविष्कार करना मामूली सी बात हो जाती है। हमारे देशमें विज्ञानकी ओर किसीका ध्यान अभीतक गया हो नहीं। ख़ाली समयमें गपशप लड़ाकर और एक दूसरेकी बुराई करके समयको किसी प्रकार नष्ट करना ही सबको अभीष्ट है। क्या यह संभव नहीं है कि जो लोग हिन्दी पढ़-लिख सकते हैं वह विज्ञान मासिक पत्रको हर महीने पढ़ लिया करें। परन्तु खेद है कि १० बरस विज्ञानको प्रकाशित होते हो गया पर अबतक विज्ञानके इतने ग्राहक नहीं हुए कि आधा ख़रचा निकल आवे। विज्ञान-परिषत्‌ने बड़े परिश्रम और बहुत व्ययसे इस पत्रको अबतक चलाया है और आगे भी चलानेका निश्चय किये हुए है। परन्तु बड़े दुःखकी बात है कि विज्ञानको पढ़नेवाले व्यक्ति नहीं मिलते।

सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा

अथवा

ऐन्द्रजालिक ऐनक

मनोहर कहानी

[अनुवादक—श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

डाक्टर हक्सलने अपनी प्रयोगशालामें झाड़-पोंछ करने और चीज़ें उठाने धरनेके लिए १६ वर्षका एक लड़का नौकर रख लिया था। लड़का बहुत तेज़ था। उसका नाम था तोताराम। तोतारामकी कहानी सुनिये।

एक दिन डाक्टर हक्सलने तोतारामको सिनेमाका एक टिकट दे दिया। सिनेमा देखकर तोताराम घर लौट रहे थे। तब एक विचित्र घटना घटी। एक बहुत बढ़िया मोटरकार सड़ककी पटरीपर तोतारामके पास आकर ठहर गई। इस मोटरमें एक अत्यन्त सुन्दर बालिका कासनी रंगकी साड़ी पहने बैठी थी। रत्नजटित आभूषणोंसे सरसे पैरतक लदी हुई थी। सुन्दरीने तोतारामको इशारेसे अपनी ओर बुलाया। तोताराम सौन्दर्यकी इस राशिको देखकर स्तम्भित रह गये।

सुन्दरीने कहा—"आओ जल्दी मोटरमें चढ़ आओ, मैं तुमसे कुछ बातचीत करना चाहती हूं।"

तोताराम न समझ सके कि सुन्दरी किसको बुला रही है। चकित होकर चारों ओर देखने लगे, लेकिन आसपास कोई दिखलाई न पड़ा।

सुन्दरीने खीझकर कहा, 'मैं आपको ही बुला रही हूँ, महाशय! आइए, जल्दी चढ़ आइए।'

हमारे नायकको निश्चय हो गया कि सुन्दरी भ्रमसे उन्हें अपना परिचित व्यक्ति समझ कर बुला रही है।

तोताराम तो सदा मज़ाकके लिए तैयार ही रहतेथे इसलिए इन्होंने कुछ कहना और सुन्दरीके भ्रमको दूर करना उचित न समझा, झटपट सुन्दरीके पास मोटरपर बैठ गये।

सुन्दरीने कहा—'मेरा नाम है कुमारी मनोरमा देवी। संभवतः आपने मेरे सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें कुछ न कुछ अवश्य पढ़ा होगा। आपका नाम शायद महाशय तोताराम है।'

तोतारामके विस्मयका ठिकाना न रहा, जब इन्हें मालूम हुआ कि सुन्दरी इन्हींको बुलाना चाहती थी। सुन्दरीको इनका नाम मालूम है इसपर तो यह और भी मुग्ध हो गये। इनका दिल ज़ोरसे धड़कने लगा, शरीरमें आनन्दके कारण कम्पन होने लगा पर अपनेको संभाल इन्होंने उत्तर दिया, "जी हाँ, मेरा नाम यही है, परन्तु मेरे मित्र मुझे कभी कभी परबते भी कहते हैं।"

सुन्दरीने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'अच्छा परबते महाशय! आप डाक्टर हक्सलकी प्रयोगशालामें काम करते हैं न?" यह प्रश्न अत्यन्त मधुर वाणीमें सुन्दरीने किया था।

परबते महाशयपर कुछ विचित्र प्रभाव पड़ा। इन्होंने उत्तर दिया—"जी हाँ, श्रीमती जी!"

उसी मधुर उन्मत्तकारी वाणीमें फिर प्रश्न हुआ—"मैंने सुना है कि आपमें अनेक गुण हैं तथा पारखी लोगोंकी राय यह है कि आपमें ऐसे गुण मौजूद हैं जिनके कारण आप शीघ्र बहुत बड़े जासूस हो जायँगे।"

तोताराम कुछ झेंपसे गये। क्योंकि इनके हृदयकी गुप्त परन्तु अत्यन्त बलवान आकांक्षाकी ओर सुन्दरीने इशारा किया था। बचपनसे ही यह बेचारे इस उधेड़-बुनमें थे कि वह वाइसरायकी काउन्सिलके मेम्बर बनें या जासूसीका काम करें। बहुत दिनोंतक इस समस्याको यह हल न कर सके परन्तु अन्तमें उन्होंने एक उच्च कोटिका जासूस होना ही निश्चय किया। जासूसोंके कार्य और उनके जीवनके सम्बन्धमें इन्होंने जो कुछ सुना और पढ़ा था उससे इन्हें निश्चय हो गया

था कि जासूसके जीवनसे बढ़कर सुन्दर और आनन्दमय जीवन संभव नहीं। इसीलिए सुन्दरीके शब्दोंने इनपर विचित्र प्रभाव डाला।

सुन्दरीने फिर कहा—"मुझे आपकी शक्ति और जासूसी योग्यतामें इतना अधिक विश्वास है कि मैंने अब एक अत्यन्त कठिन मामलेको सुलझानेमें आपकी सहायता लेना निश्चय किया है। परन्तु पहले मुझे एक बात बतलाइए। मैंने सुना है कि डाक्टर हक्सरने एक अद्भुत ऐनक बनाई है। शायद उसका नाम एक्सरे ऐनक है। उसे लगा लेनेसे घरके अन्दरकी चीज़ें, बक्सोंके अन्दरके जवाहिरात, दीवारके ओटमें रक्खे हुए पदार्थ सब दिखलाई पड़ जाते हैं, क्या यह सच है?"

"हाँ, श्रीमतीजी! परन्तु डाक्टर हक्सर इसे जेड्रे ऐनक कहते हैं क्योंकि इस ऐनकमें एक्स रेसे काम नहीं लिया जाता।"

"कभी आपने यह ऐनक लगाई है? क्या आप इनकी सहायतासे काम ले सकते हैं?"

"नहीं, श्रीमतीजी! परन्तु डाक्टर एक दिन कहते थे कि इनका प्रयोग करना बहुत सरल है चाहे कोई इनसे काम ले सकता है।"

"क्यों, क्या डाक्टर आपको यह ऐनक माँगनेसे एक सप्ताहके लिए दे देंगे? आप उनसे यह न कहिएगा कि ऐनक मुझे चाहिये। आप अपने ही लिए उनसे माँगिए।"

"कुछ दबे हुए स्वरमें परबते महाशयने कहा, "मुझे आशा है कि शायद मुझे मिल जाय।"

"बहुत ठीक! बस मैं इतना ही काम आपसे चाहती हूं और याद रखिए इसके लिए बड़ा सुन्दर इनाम आपको मिलेगा। यदि मुझे ऐनक मिल जाय तो मैं आपको एक हज़ार रुपया दूँगी।"

परबतेकी आँखें चमक उठीं। सन्तोष और हर्ष इनके मुँहपर झलक उठा। बोल उठे—"बहुत अच्छा, मैं अवश्य सफल हूंगा। बतलाइए, आप मुझसे क्या काम चाहती हैं?"

सुन्दरीने अपने हाथकी घड़ीको देखा, कहा, "खैर फिर कभी कहूंगी। बात लम्बी है; आज मुझे समय नहीं है। कल ठीक १० बजे रातको इस स्थानपर आइए, ऐनक अपने साथ लेते आइए। मैं मोटरमें यहीं मिलूंगी और अपने घर आपको ले चलूँगी, तब पूरी कथा सुनाऊँगी, तब तक नमस्कार।"

(२)

डाक्टर हक्सर बोले—"नहीं तोताराम, मैं यह ऐनक तुम्हें नहीं दे सकता। अभीतक मैंने इसका प्रकाशन नहीं किया है क्योंकि मैं इन ऐनकोंको अपने पाससे नहीं जाने देना चाहता। बदमाश और बेईमान आदमियोंके हाथमें पड़कर यह ऐनकें न जाने क्या ग़ज़ब ढायें। मुझे डर है कि इनका दुरुपयोग न किया जाय। परन्तु आओ, मैं तुम्हें दिखला सकता हूं। लो इसे अपनी आँखोंपर लगा तो लो। देखो, इसकी कमानीके सिरेपर यह गोल गोल जो लगा है इसे अपने कानपर चढ़ाओ। अब कानके ढकनसे जो तार जुड़े हुए हों वह तुम्हारी पीठपरसे होते हुए इस रेडियोकी बाटरीसे जोड़ दिये जायँगे। यह बाटरी वास्कटके जेबमें रख ली जाती है। अब बाटरीको जेबमें रख तो लो। ऊपरसे कोट पहन लो। इस बाटरीके ऊपर जो मुठिया सी है उसे दबाओ तो, और दीवालकी ओर देखो।"

परबते चिल्ला उठे—"अरे! मुझे तो दीवालके उस पारकी सब चीजें दिखलाई पड़ने लगीं। देखिए क्लर्क लोग बैठे काम कर रहे हैं।"

डाक्टर हक्सरने कहा—"हाँ, कभी कभी मैं भी उन्हें देख लेता हूँ। तोताराम! जब मैं यह ऐनक लगाकर देखता हूँ तो तुम्हें प्रायः कुछ काम करते नहीं पाता। सम्भव है कि ऐनकमें कुछ बुराई हो। अच्छा! अब तुम अपनी छाती और पेटके अन्दरका हाल देखना चाहो तो उसी मुठियाको बाईं ओर घुमा दो।

अब तुम्हें अपनी पसली फेफड़े दिल इत्यादिक सब दिखलाई पड़ रहे होंगे। डाक्टरोंके लिए यह ऐनक बड़े कामकी है अन्दरके प्रत्येक अङ्गकी अवस्थाको देखकर गुप्त बीमारियोंको जान लेंगे। इस ऐनकसे हज़ारों काम लिये जा सकते हैं।"

[क्रमशः]

समालोचना

[ले० श्री कृष्णानन्द]

अतीत स्मृति

लेखक—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—मानसमुक्ता कार्यालय, मुरादाबाद। पृष्ठ संख्या २४१ मूल्य, १।=)

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दीके धुरन्धर लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकी प्रौढ़ लेखनीसे लिखे हुए और 'सरस्वती' मासिक पत्रिकामें छपे हुए २१ ऐतिहासिक लेखोंका सुन्दर संग्रह है। यह सब लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और मनन करने योग्य हैं। 'आर्य' और 'हिन्दू' शब्दकी व्युत्पत्ति, 'हिन्दू' शब्दकी प्राचीनता, आर्योंका आदिम स्थान, प्राचीन मिश्रमें हिन्दुओंकी आबादी, बाली द्वीपमें हिन्दुओंका राज्य, पुराणोंकी प्राचीनता, सोम लता, बौद्ध समयकी यूनिवर्सिटियाँ, अमेरिकाका हिन्दुओंके द्वारा अन्वेषण, प्राचीन भारतमें जहाज़, इत्यादि सभी लेख ऐतिहासिक और गवेषणापूर्ण हैं। इतिहास प्रेमियोंके लिए यह ग्रन्थ एक रत्नके समान है। जो इतिहास प्रेमी नहीं हैं उन्हें भी यह पुस्तक पढ़कर लाभ उठाना चाहिए। कागज़, छपाई सफ़ाई सब कुछ अच्छा है, मूल्य कुछ अधिक है।

हिन्दू धर्म मीमांसा

लेखक—डाक्टर शिवाजी गणेश पटवर्धन

प्रकाशक—गुलाबचन्द वैद्य, श्रीऋषिमंडल-कार्यालय अमरावती, बरार। पृष्ठ संख्या २००, मूल्य १)

इसे एक महाराष्ट्र विद्वान्‌ने हिन्दीमें लिखा है। प्रश्नोत्तरके द्वारा हिन्दू धर्मका विस्तृत स्वरूप बहुत उत्तम ढंगसे दरसाया गया है। इसमें स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण, षट्‌दर्शन, ब्राह्मण, उपनिषद्, गीता और तंत्र ग्रंथके भी प्रमाण उद्धृत किये गए हैं। इसमें सिर्फ एक ही बातकी कमी रह गई है कि वेद मंत्रोंका यथेष्ट समावेश नहीं किया गया है। तथापि पुस्तक उत्तम, उपयोगी और समयानुकूल है। इसमें गीता दर्शन, जैन दर्शन, राजयोग और हठयोगका भी प्रश्नोत्तरके रूपमें वर्णन है। जो लोग हिन्दू धर्मके मर्मको सुगमतासे जानना चाहते हैं उन जिज्ञासुओंके लिए पुस्तक बड़े कामकी है। कागज़ छपाई सफ़ाई सब अच्छी है। मूल्य उचित है।

शरीर के अङ्ग और उनके कार्य

लेखक—डाक्टर गिरिवर सहाय सकसेना

पता—डा० गिरिवरसहाय सक्सेना, बाँदा। दूसरा पता—साहित्यभवन लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य ॥)

इसमें शरीरके सब बाहरी और भीतरी अंगों और उपांगों, नस और नाड़ियोंका वर्णन और कार्य अच्छी तरह समझाया गया है। इसमें बहुत से चित्र भी हैं जिससे विषय समझनेमें सुगमता हो गई है। डा० त्रिलोकीनाथ वर्माने भी हमारे शरीर की रचना पुस्तक रची है। परन्तु वह बहुत बड़ी, अधिक मूल्यकी और वैद्योंके कामकी है। अपने शरीरका भीतरी भेद लोग कुछ भी नहीं जानते यही कारण है जिससे अधिकतर नवयुवकोंका स्वास्थ्य सुदशामें नहीं रहता। इस पुस्तकमें जितनी बातें लिखी गई हैं कमसे कम इतनी बातें यदि नवयुवक वृन्द समझ लें तो उनका अत्यन्त हित हो। इतनी बातें तो प्रत्येक नवयुवकको जानना बड़ा जरूरी है। हम डाक्टर गिरिवरसहायजीको इस उत्तम और उपयोगी पुस्तकके लिए बहुत बहुत धन्यवाद देते हैं और

नवयुवकोंसे हमारा अनुरोध है कि इस पुस्तकको अवश्य पढ़कर लाभ उठावें। इसका मूल्य भी कम रक्खा गया है। मेरी रायमें यह हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षामें रखने योग्य है।

साप्ताहिक पत्र "देश" का विशेषांक

पता—मनेजर देश पटना। मूल्य ।)

इस विशेषांकका बाबू मथुरा प्रसाद सिंह, बी.ए., बी.एल. ने बड़ी योग्यतासे और बड़ी अच्छी रीतिसे सम्पादन किया है। शुरूमें महात्मा गांधी जीका सन्देश है। उनकी हस्तलिखित चिट्ठी ज्यों की त्यों छापी गई है। कई नेताओं, विद्वानों और लेखकोंके अच्छे अच्छे लेख हैं। कलाविचार, विहारमें राष्ट्रीय शिक्षा, हमारा इतिहास, भारतीय अर्थशास्त्र, भारतमें कर-भार, सम्पादन कला, स्वरों की उत्पत्ति और नामकरण, हिन्दुओंकी गणित विद्या आदि आदि लेख पढ़ने योग्य हैं। कई कवियों की कविताएँ भी हैं, देशबंधुदास, पंजाब केसरी लालालाजपतरायजीके सन्देश भी हैं। निदान यह विशेषांक देखने योग्य है।

हिन्दी पुष्कर

वार्षिक मूल्य २॥), पता—मनेजर हिन्दी पुष्कर, बरेली।

श्रीयुत गंगासहायजी पाराशरीके सम्पादकत्व में विविध विषय विभूषित सचित्र मासिकपत्र "हिन्दी-पुष्कर" का छठवाँ अंक मुझे प्राप्त हुआ है। इसके कई लेख अच्छे हैं। कविताएँ भी हैं, समालोचना भी छपती है। हम हृदयसे इस पत्रकी उन्नति चाहते हैं।

साप्ताहिक अभ्युदय

हिन्दू महासभा का विशेषांक, मूल्य ≡)
पता—मनेजर अभ्युदय, प्रयाग।

हमें यह विशेषांक प्राप्त करके बड़ा हर्ष हुआ। देशके अनेक नेताओं और विद्वानोंने इसके कलेवर को रँगा है। भाई परमानन्दजीका लेख हमारी जन सख्या, पुरुषोत्तमदास टंडनजी का लेख अछूतोंके सम्बन्धमें, पोयूषकान्तिजी घोषका हिन्दुओं को संगठित करनेका उपाय, नरसिंह चिन्तामणि केलकरका महात्मा तिलकके सम्बन्धमें, गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित हिन्दू संगठन, मुंशी ईश्वरशरण जीका जातिगत प्रतिनिधित्व, सत्यव्रतजीका हिन्दुओंकी कमज़ोरी और सबके अंतमें सम्पादकीय लेख यह सब पढ़ने योग्य हैं। देशके महामान्य नेताओंके सन्देश भी उद्धृत किये गये हैं। इसमें ७-८ कविताएँ भी हैं परन्तु उनमें पं० हरिशंकर शर्मा रचित कर्मवीर बनो पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय रचित प्रेम, और लाला भगवानदीन रचित पतितोद्धार यह तीन कविताएँ बड़ी ही प्रभावशालिनी हैं। वास्तवमें सुयोग्य सम्पादक पं० कृष्णकान्त मालवीयजीने इस विशेषांकको निकालकर हिन्दू समाजको विशेष लाभ पहुंचाया है। विज्ञानके पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि इस विशेषांकको पढ़कर अवश्य लाभ उठावें।

सूर्य-सिद्धान्त

[कन्या के अङ्क से आगे]

पलभा जाननेकी १ली रीति—

एवं विषुवतिच्छाया स्वदेशे या दिनार्धजा ।
दक्षिणोत्तररेखायां सा तत्र विषुवत्प्रभा ॥१२॥

अनुवाद—(१२) इस प्रकार सूर्य जिस दिन विषुवद्वृत्त पर हो उस दिन मध्याह्नकाल में जिस स्थान की उत्तर दक्षिण रेखापर १२ अंगुल शंकु की जितनी लम्बी छाया पड़े वही उस स्थानकी विषुवत्प्रभा या पलभा होती है ।

विज्ञानभाष्य—पलभाके सम्बन्धमें २९९-३०० पृष्ठों पर तथा इसी अध्यायके सातवें श्लोकके भाष्यमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है । ३०० वें पृष्ठमें यह बतलाया गया है कि किसी स्थानके अक्षांशकी स्पर्शरेखा उस स्थानकी पलभाको शंकुसे भाग देने पर आती है । इसलिए यहां यह बतला देना आवश्यक है कि इस श्लोकके अनुसार पलभाका जो मान जाना जाता है वह स्थूल है । क्योंकि सायन मेष या सायन तुला संक्रान्ति (विषुव संक्रान्ति) के दिन, जिस दिन मध्याह्नकाल में शंकुकी छाया नापकर पलभा जानी जाती है मध्याह्नकाल में सूर्य ठीक विषुवद्वृत्तपर नहीं होता वरन् कुछ आगे या पीछे होता है । मध्याह्नकालमें ठीक विषुवद्वृत्तपर सूर्यके आनेका संयोग कई वर्षके बाद आता है । इस दिन सूर्यकी क्रान्ति प्रत्येक घंटेमें प्रायः एक कलाके हिसाबसे बदलती है । इसलिए सायन मेष या तुला संक्रान्तिका शुद्ध काल गणनासे जानकर सूर्य की मध्याह्नकालकी क्रान्ति जान लेनी चाहिये और इसका संस्कार कर लेने के बाद शुद्ध पलभा जाननी चाहिये । संस्कार करनेकी रीति अगले १४-१५ श्लोकोंमें बतलायी जायगी ।

अक्षांश जानने की १ली रीति—

शङ्कुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते ।
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा॥१३॥

अनुवाद—(१३) शंकु और उसकी छाया (यहां पलभा) को अलग अलग त्रिज्या अर्थात् ३४३८ से गुणा करके प्रत्येक गुणनफलको विषुवत्कर्णसे भाग दे देने पर क्रमसे लम्बज्या और अक्षज्या आ जायंगी जिनके धनु क्रमसे लम्बांश और अक्षांश होंगे । (उत्तर गोल में) ये सदा दक्षिण होते हैं ।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकका सार यह है :—

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन मध्यान्हकालमें १२ अंगुल शंकु का जो छायाकर्ण होता है वही विषुवत्कर्ण, पलकर्ण या अक्षकर्ण कहलाता है । पृष्ठ २९९ के चित्र ४१ में क ग विषुवत्कर्ण है । इसलिए

$$\text{विषुवत्कर्ण} = \sqrt{\text{पलभा}^2 + \text{शंकु}^2}$$

पृष्ठ ८३ के चित्र ७ और पृष्ठ ८८ के चित्र १० में यह बतलाया गया है कि किसी स्थान के अक्षांश और लम्बांश क्या है। इन चित्रों से यह भी प्रकट होता है कि किसी स्थान के अक्षांश और लम्बांश दोनों मिलकर ९०° के समान होते हैं । पृष्ठ २९९ में चित्र ४१ के सम्बन्धमें यह भी कहा गया है कि विषुवत्कर्ण और शंकुके बीचका कोण ख क ग अक्षांश है । इस लिए यह सिद्ध है कि विषुवत्कर्ण और पलभा के बीचका कोण क ग ख लम्बांश हुआ, क्योंकि $\angle$ ख क ग और $\angle$ क ग ख दोनों पूरक कोण हैं ।

इसलिए लम्बज्या या लम्बांशकी ज्या

$$= \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ आजकलकी प्रथानुसार (दशमलव भिन्न में)

$$= \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ हमारे सिद्धान्तोंके अनुसार (कलाओंमें)

लम्बांशकी ज्याको अक्षांशकी कोटिज्या भी कहते हैं क्योंकि लम्बांश और अक्षांशका योग ९०° होता है। इसी तरह अक्षज्या या अक्षांश की ज्या

$$= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ (दशमलव भिन्न में)

अथवा $$\frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ (कलाओं में)

[देखो पृष्ठ ८५-८७]

४२-४३ चित्रोंके सम्बन्धमें भी बतलाया गया है कि क्षितिज के उत्तर-विन्दु से ध्रुवकी ऊंचाई अक्षांशके समान होती है। इससे पाठकोंको शायद शंका हो कि अक्षांशकी कौन परिभाषा ठीक है। इसलिए यहां इस बातका निश्चय कर देना चाहिये कि अक्षांशकी यह तीनों परिभाषाएं एक ही है।

चित्र ७ और १० से स्पष्ट है कि विषुवत् रेखासे किसी स्थानका जो कोणात्मक अंतर उत्तर-दक्खिन-रेखापर होता है वही उस स्थानका अक्षांश है और ध्रुव से उत्तर दक्खिन रेखापर स्थानका कोणात्मक अंतर उसका लम्बांश है। विषुवत् रेखाके तलको यदि आकाशकी ओर बढ़ा दिया जाय तो यही विषुवन्मण्डल कहलाता है और उत्तर-दक्खिन रेखाके तल को आकाश में बढ़ा दिया जाय तो वह यामोत्तरवृत्त कहलाता है। इसी तरह पृथ्वीके केन्द्रसे किसी स्थानको मिलानेवाली रेखा (चित्र ७ की रेखा सभ) ऊपर बढ़ानेपर आकाशके जिस विन्दुपर पहुँचती है वह उस स्थानका खस्वस्तिक कहलाता है। इस लिए यह सिद्ध है कि किसी स्थानके खस्वस्तिकसे विषुवन्मण्डलका जो अंतर यामोत्तरवृत्तपर होता है वह भी अक्षांश है। तथा खस्वस्तिकसे आकाशीय ध्रुवका जो अन्तर यामोत्तरवृत्त पर होता है वह लम्बांश है। इस लिए चित्र ४२,४३ के ख वि धनु श स्थान के अक्षांश तथा ख ध धनु श स्थान के लम्बांश हुए। परन्तु ध वि धनु या उ ख धनु ९० अंश के समान है। इस लिए प्रत्येकसे सामान्य धनु ध ख निकाल दिया जाय तो शेष ख वि और उ ध समान होंगे, अर्थात् खस्वस्तिकसे विषुवन्मण्डलका जो अंतर होता है वही क्षितिज के उत्तर विन्दुसे उत्तरी आकाशीय ध्रुवका अन्तर होता है। इसी तरह यह भी सिद्ध हो सकता है कि ध ख धनु द वि धनु के समान है, अर्थात् क्षितिजके दक्षिण विन्दु से विषुवन्मण्डल की जो ऊंचाई होती है वह भी लम्बांश के समान है। यह भी स्पष्ट है कि उत्तर गोलमें किसी स्थानके खस्वस्तिकसे विषुवन्मण्डल सदैव दक्षिण रहता है इस लिए ख वि अक्षांश और वि द लम्बांश उत्तर गोल में सदा दक्षिण ही रहेंगे।

अब यह सिद्ध करना रह गया कि शंकु और विषुवत्कर्ण के बीच का अन्तर (देखो पृष्ठ २९९) अक्षांश के समान क्यों

ब स व द=भूतलकी उत्तरदक्षिणरेखा
ब=उत्तरी ध्रुव
द=दक्षिणी ध्रुव
स=वह स्थान जहाँ श स शंकु गड़ा है
व=विषुवत्‌रेखाका विन्दु
ख=स स्थानका खस्वस्तिक
र=विषुवद्‌वृत्तपर रविका स्थान

स छ=पलभा
श छ=विषुवत्कर्ण
भ=पृथ्वीका केन्द्र

यह ध्यान रखना चाहिए कि चित्र १ में पृथ्वीकी तुलनामें शंकु बहुत बड़ा दिखलाया गया है। रेखागणितसे यह स्पष्ट है कि

<स श छ=<र श ख
=<श र भ+<र भ

परंतु भूकेन्द्रसे सूर्यका अन्तर भ र प्रायः ६ करोड़ २६ लाख मील है और पृथ्वीका अर्द्धव्यास भ स अथवा भ श (क्योंकि स श=१२ अङ्गुल) ४००० मील है। इसलिए <शरभ इतना छोटा कोण है कि यह शून्य माना जा सकता है (यथार्थ में यह कोण ६ विकला के लगभग होता है)। इस लिए

चित्र १

<स श छ=<र भ श
=<व भ स
=अक्षांश

अर्थात् शंकु और विषुवत्कर्णके बीचका कोण अक्षांश के समान होता है। इस लिए पलभा और विषुवत्कर्णके बीचका कोण जो पहलेका पूरक कोण होता है लम्बांशके समान हुआ।

उदाहरण—प्रयाग की पलभा ५ अङ्गुल ४१ व्यंगुल अथवा ५·६८ अङ्गुल है तो प्रयाग का अक्षांश बतलाओ।

प्रयागका विषुवत्कर्ण

$= \sqrt{\text{शङ्कु}^2 + \text{पलभा}^2}$

$= \sqrt{१२^2 + (५·६८)^2}$

$= \sqrt{१४४ + ३२·२६}$

$= \sqrt{१७६·२६}$

=१३·२८ अंगुल

∴ प्रयागकी अक्षज्या

$= \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$

$= \frac{५·६८ \times ३४३८}{१३·२८}$

=१४७०·५ कला

इस लिए ज्याओंकी सारिणी (पृष्ठ १७८-१७९) तथा स्पष्टाधिकारके श्लोक ३३ (पृष्ठ १६१-१६२) के अनुसार अक्षांश=२५°२१′

अक्षांश जाननेकी २री रीति—

मध्यच्छाया भुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका।
स्वकर्णाप्ता धनुर्लिप्ता नतास्ता दक्षिणे भुजे॥१४॥
उत्तराश्चोत्तरे याम्यास्ताः सूर्यक्रान्तिलिप्तिकाः।
दिग्भेदे मिश्रिताः साम्ये विश्लिष्टाश्चाक्षलिप्तिकाः॥

अनुवाद—(१४) किसी दिनके मध्याह्नकी छायाको जिसे भुज भी कहते हैं त्रिज्यासे गुणा करके मध्याह्नके छाया-

कर्णसे भाग दे दो और भागफलका धनु बनाओ तो सूर्यका मध्याह्नकालिक नतांश ज्ञात हो जायगा। यदि छाया दक्षिणकी ओर हो तो (१५) उत्तर नतांश होगा और यदि छाया उत्तर हो तो दक्षिण नतांश होगा। यदि नतांश और सूर्यकी क्रान्तिकी दिशाएँ भिन्न हों तो इन दोनोंका योगफल और एक ही हों तो अन्तर अक्षांश होगा।

विज्ञान भाष्य—खस्वस्तिकसे आकाशके किसी विन्दु (तारा, सूर्य का केन्द्र इत्यादि) पर जाता हुआ जो वृत्त क्षितिजसे समकोणपर खींचा जाता है उसे ऊर्ध्ववृत्त (Vertical Circle) कहते हैं। इस वृत्तपर उस विन्दुका खस्वस्तिकसे जो अंतर होता है उसे उस विन्दुका नतांश (zenith distance) कहते हैं और क्षितिजसे जो अंतर होता है उसे उस विन्दुका उन्नतांश (altitude) कहते हैं। सममण्डल भी एक ऊर्ध्ववृत्त है पर इसमें विशेषता यह है कि यह क्षितिजके पूर्व पच्छिम विन्दुओंपर होता है। यामोत्तरवृत्त भी उत्तर दक्षिण विन्दुओं पर ऊर्ध्ववृत्त है। इस लिए मध्याह्नकाल में जब कि सूर्य यामोत्तरवृत्त पर रहता है, इससे खस्वस्तिकका जो अंतर होता है वह इसका मध्याह्नकालिक नतांश हुआ। यदि सूर्य विषुवद्वृत्त पर भी होतो यही अक्षांश के समान होगा। यदि सूर्य विषुवद्वृत्त पर न हो तो यह या तो विषुववृत्तसे उत्तर रहेगा या दक्षिण। मध्याह्नकाल में सूर्यका विषुवद्वृत्तसे जो अंतर होता है वही सूर्य की क्रान्ति है जो सूर्यके विषुवद्वृत्तसे उत्तर या दक्षिण रहनेके अनुसार उत्तर या दक्षिण क्रान्ति कहलाती है। इसी प्रकार सूर्य खस्वस्तिकसे भी उत्तर या दक्षिण हो सकता है। यदि सूर्य खस्वस्तिकसे उत्तर हो तो छाया दक्खिनकी ओर होगी और खस्वस्तिक से सूर्य का अंतर उत्तर नतांश कहलायेगा। परन्तु यदि सूर्य खस्वस्तिक से दक्खिन हो तो छाया उत्तरकी ओर होगी और सूर्यका नतांश दक्षिण होगा। चित्र २ से यह स्पष्ट है कि सूर्य के मध्याह्नकालिक नतांश और क्रान्तिसे अक्षांश कैसे जाना जा सकता है:—
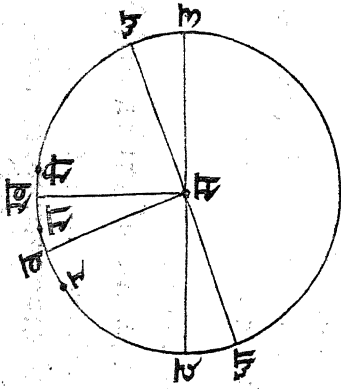
चित्र २

उ ध ख व द यामोत्तरवृत्त, ध उत्तरी आकाशीय ध्रुव, ख खस्वस्तिक, व विषुवद्वृत्त और यामोत्तरवृत्त का सामान्य विन्दु, और र, रा, री सूर्य के तीन भिन्न भिन्न स्थान हैं। र पर सूर्य विषुवद्वृत्त के दक्खिन है इस लिए इस समय सूर्य की दक्षिण क्रान्ति वर है परन्तु वरा या वरी सूर्यकी उत्तर क्रान्तियां हैं। इसी प्रकार खर और खरा सूर्य के दक्षिण नतांश और खरी उत्तर नतांश हैं। खस स्थानका अक्षांश है। चित्रसे प्रकट है कि

व ख = खर—वर .... (१)

= खरा + वरा .... (२)

= वरी—खरी .... (३)

समीकरण (१) में सूर्यके नतांश और क्रान्ति दोनों दक्षिण तथा समीकरण (३) में नतांश और क्रान्ति दोनों उत्तर हैं। परन्तु समीकरण (२) में नतांश दक्षिण और क्रान्ति उत्तर हैं। इससे प्रकट है कि जब नतांश और क्रान्ति दोनों की दिशाएं

एक ही हों तो इनका अंतर और भिन्न हों तो योग करने से अक्षांश जाना जा सकता है। यदि न नतांश, क क्रान्ति और अ अक्षांश माने जांय तो इनका सम्बन्ध इस समीकरणसे प्रकट होगा—

$$न \pm क = अ$$

यहां धनका चिह्न उस समय लिखा जायगा जब न और क दोनोंकी दिशाएं भिन्न हों और ऋणका चिह्न उस समय जब दोनों की दिशाएं एक ही हों।

ऊपरके दोनों श्लोकों में यह बतलाया गया है कि शंकु की मध्यान्हकालीन छाया नापकर नतांश कैसे जानते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि शंकु और छायाकर्णके बीचमें जो कोण होता है वह सूर्यका नतांश है। इस लिए

$$नतांशज्या = \frac{छाया \times त्रिज्या}{छायाकर्ण}$$ [सिद्धान्तीय रीति के अनुसार।

नतांशकी ज्यासे नतांश निकालकर इसको सूर्य की क्रान्ति में जो स्पष्टाधिकार के श्लोक २८ के अनुसार जानी जा सकती है, जोड़ने या घटाने से, जैसी आवश्यकता हो, अक्षांश निकल आता है।

उदाहरण—यदि किसी दिन सूर्य की उत्तर क्रान्ति १५°२५′ और इसी दिन प्रयागमें शंकुकी मध्यान्हछाया २·१२ अंगुल हो तो प्रयागका अक्षांश बतलाओ।

प्रयागका मध्यान्ह छायाकर्ण

$$= \sqrt{शंकु^२ + छाया^२}$$
$$= \sqrt{१२^२ + (२·१२)^२}$$
$$= \sqrt{१४८·४९}$$
$$= १२·१९ \text{ अंगुल}$$

$$\therefore नतांशज्या = \frac{छाया \times त्रिज्या}{छाया\ कर्ण}$$
$$= \frac{२·१२ \times ३४३८}{१२·१९}$$
$$= ५९८'$$

इसलिए नतांश = ९°५१′

यह नतांश दक्खिनकी ओर है और सूर्यकी क्रान्ति उत्तर है। इसलिए दोनों का योग प्रयाग का अक्षांश होगा।

इसलिए इस रीतिसे प्रयागका अक्षांश

$$= ९°५१' + १५°२५'$$
$$= २५°१६'$$

दोनों रीतियोंसे निकाले गये अक्षांशोंमें कुछ अंतर है। इसका कारण प्रत्यक्ष है। छायाकी नाप स्थूल होती है जिसका कारण पहले बतलाया जा चुका है। यदि छाया छोटी हो तो अशुद्धि और भी बढ़ जाती है।

पलभा जाननेकी २ री रीति यदि अक्षांश ज्ञात हो—

ताभ्योऽक्षज्या च तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम्।
लम्बज्याकंगुणाक्षज्या विषुवद्भाथ लम्बया ॥ १६ ॥

अनुवाद—(१६) ऊपर बतलायी गयी रीतिसे अक्षांश जानकर अक्षज्या बनाओ और अक्षज्याके वर्गको त्रिज्याके वर्ग से घटाकर शेषका वर्गमूल निकालो तो लम्बज्या निकल आवेगी। अक्षज्याको १२ से गुणा करके लम्बज्यासे भाग देने पर जो आवेगा वही पलभा होगी।

विज्ञान भाष्य—पलभा जाननेकी पहली रीति सायन मेष या तुला संक्रान्तिके दिन ही काममें लायी जाती है। दूसरी रीतिसे किसी दिनके मध्यान्हकालके सूर्यकी क्रान्ति और नतांश से अक्षांश जानकर पलभा की गणना की जा सकती है।

इस श्लोकका सार यह है:—

$$\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{अक्षज्या}^2} = \text{लम्बज्या}$$

और $$\frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}} = \text{पलभा}$$

उपपत्ति—चित्र १० पृष्ठ ८८ में सभा लम्बज्या, भभा अक्षज्या, सभ त्रिज्या और कोण सभाभ समकोण है, इसलिए यदि अक्षज्या ज्ञात हो तो,

$$\text{सभा}^2 = \text{सभ}^2 - \text{भभा}^2$$

$$\text{अथवा सभा} = \sqrt{\text{सभ}^2 - \text{भभा}^2}$$

$$\therefore \text{लम्बज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{अक्षज्या}^2}$$

चित्र ४१ पृष्ठ २९९में खग पलभा, कख शंकु, <खकग अक्षांश और <कगख लम्बांश है, इस लिए आजकलकी रीतिके अनुसार

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}}$$

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}}$$

$$\therefore \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}} \div \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}}$$

$$= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ख}}$$

$$= \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}}$$

$$= \frac{\text{पलभा}}{१२ \text{ अंगुल}}$$

$$\therefore \text{पलभा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}} \text{ अंगुल} \cdots (१)$$

इस रीतिसे पलभाका मान निकालने में बहुत गुणा भाग करना पड़ता है। इस लिए यदि स्पर्श रेखाओंकी सारिणी बना ली जाय तो यह काम सहज हो हो सकता है क्योंकि अक्षांश और लम्बांश पूरक कोण हैं इस लिए $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$=अक्षांश स्पर्श रेखा, जिससे

पलभा=१२ × अक्षांश स्पर्शरेखा.........(२)

यही बात पृष्ठ ३०० में भी दिखलायी गयी है।

उदाहरण—प्रयागका अक्षांश २५°२५' है तो प्रयागकी पलभा क्या होगी ?

(१) सूर्यसिद्धान्तकी रीतिसे

अक्षज्या=२५°२५'की ज्या

=१४७४'

$$\therefore \text{लम्बज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{अक्षज्या}^2}$$

$$= \sqrt{३४३८^2 - १४७४^2}$$

$$= \sqrt{(३४३८ + १४७४)(३४३८ - १४७४)}$$

$$= \sqrt{४९१२ \times १९६४}$$

$$= ३१०६'$$

$$\therefore \text{पलभा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{१४७४ \times १२}{३१०६}$$

$$= ५{\cdot}६९ \text{ अंगुल}$$

(२) नवीन रीतिसे—

पलभा=१२ × अक्षांश स्पर्शरेखा

=१२ × स्परे* २५°२५′
=१२ × ०.४७५२ अंगुल
=५.७०२४ अंगुल
=५.७ अंगुल

सूर्यकी क्रान्ति नाप कर सायन भोगांश जानना—

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
दिग्भेदेऽपक्रमः शेषस्तस्यज्या त्रिज्यया हता ॥१७॥
परमापक्रमज्याप्ता चापं मेषादिगो रविः ।
कर्कादौ प्रोज्झ्य चक्रार्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ॥१८॥
मृगादौ प्रोज्झ्य भगणान्मध्याह्नेर्कः स्फुटो भवेत् ।
तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ॥१९॥

अनुवाद—(१७) अपने स्थानका अक्षांश और मध्यान्ह कालिक सूर्यका नतांश यदि एक ही दिशाके हों तो इनका अन्तर निकाले और भिन्न भिन्न दिशा के हों तो जोड़ दे। जो कुछ आवे वही सूर्यकी मध्यान्हकालिक क्रान्ति है। इसकी ज्याको त्रिज्यासे गुणा करके (१८) सूर्यकी परमक्रान्तिज्या से भाग दे दे और लब्धिका धनु बनावे। यदि सूर्य सायन मेषादि तीन राशियोंमें हो तो यही (धनु) मध्यान्हकालिक सूर्यका स्फुट सायन भोगांश होगा। यदि सूर्य सायन कर्कादि तीन राशियों में हो तो इस धनुको ६ राशिमें घटानेसे जो कुछ आवेगा वह मध्यान्ह कालिक सूर्यका स्फुट सायन भोगांश होगा। यदि सूर्य सायन तुलादि तीन राशियोंमें हो तो इस धनुको ६ राशियोंमें जोड़नेसे जो कुछ आवेगा वह मध्यान्ह कालिक सूर्यका स्फुट सायन भोगांश होगा। और यदि सूर्य सायन मकर आदि तीन राशियोंमें हो तो इस धनुको १२ राशियोंमें घटानेपर जो कुछ आवेगा वह मध्यान्हकालिक सूर्यका सायन भोगांश होगा। इस स्फुट सायन भोगांशमें मंदफल का उलटा संस्कार कई वार करनेसे मध्यम सायन भोगांश निकलेगा।

विज्ञान भाष्य—१४-१५ श्लोकोंमें सूर्यके मध्यान्हकालिक नतांश और क्रान्तिको जोड़ या घटाकर अक्षांश जानने की रीति बतलायी गयी है। १७ वें श्लोकमें अक्षांश और नतांश जानकर क्रान्ति निकालनेकी रीति है। इसलिए यह पहली रीतिका ही दूसरा रूप है और जैसे वहां जोड़ना घटाना पड़ता है वैसे ही यहां भी। इसका कारण भी चित्र ५६ के संबंधके तीन समीकरणोंसे समझमें आ सकता है।

जोड़ने और घटानेका नियम इस समीकरणसे सरलता पूर्वक समझमें आ जायगा—

$$अ \pm न = क$$

जिसमें अ, न और क क्रमसे अक्षांश, नतांश और क्रान्ति सूचित करते हैं; धनका चिन्ह उस समय लिखा जायगा जब अक्षांश और नतांशकी दिशाएं भिन्न होंगी अन्यथा ऋण का चिन्ह प्रयोग होगा। यहां एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। यह बात साधारणतः लोग समझते हैं और आजकल यही प्रथा भी है कि उत्तर गोलमें अक्षांशकी दिशा उत्तर समझी जाती है परन्तु इस नियममें इस की दिशा दक्षिण समझी गयी है क्योंकि उत्तर गोलमें खस्वस्तिकसे विषुवद्वृत्तकी दिशा दक्षिण होती है।

क्रान्ति जब मालूम हो गयी तब सूर्यका भोगांश स्पष्टाधिकारके २८ वें श्लोकसे ही जाना जा सकता है क्योंकि वहां बतलाया गया है (देखो पृष्ठ १८१-१८२ चित्र २५) कि

*स्पर्श रेखा की जगह सरलता के लिए स्परे लिखा गया है जैसे कोटिज्या के लिए कोज्या लिखा जाता है।

$$\frac{\text{ज्या (व स)} \times १३६७}{३४३८} = \text{ज्या (स प)}$$

$$\text{इसलिए ज्या (व स)} = \frac{\text{ज्या (स प)} \times ३४३८}{१३६७} \cdots (१)$$

जहां व स सूर्यका सायन भोगांश, स प सूर्यकी क्रान्ति, और १३६७ सूर्यकी परमक्रान्तिकी ज्या है। यही १७ वें श्लोकके अंतिम चरण और १८ वें श्लोक के पूर्वार्द्धका रूप है।

यदि आजकलकी रीतिसे ज्याका मान दशमलव भिन्नमें व्यवहार किया जाय तो और भी सरल रूप यह होगा—

$$\text{ज्या (व स)} = \frac{\text{ज्या (स प)}}{\text{ज्या (स व प)}} \cdots\cdots\cdots\cdots (२)$$

अब यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया कि सूर्यकी परम क्रान्ति २४° नहीं है वरन् इसका मध्य मान इस समय २३° २७′ के लगभग है और प्रतिवर्ष आधा विकला के लगभग घटती जा रही है। इसलिए यदि आजकल सूर्यकी क्रांतिसे भोगांश जानना हो तो < स व प को २३° २७′ के समान समझकर गणना करनी चाहिये।

उदाहरण—एक दिन मध्यान्ह कालमें सूर्यकी क्रान्ति १६° १७′ दक्षिण है और यह सायन मकरादि राशिमें है तो इसका स्फुट सायन भोगांश बतलाओ।

$$\text{ज्या (भोगांश)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (परम क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या } १६^\circ\ १७'}{\text{ज्या } २३^\circ\ २७'}$$

$$= \frac{\cdot २८०४}{\cdot ३९७९}$$

$$= \cdot ७०४७$$

$$\therefore \text{ भोगांश } = ४४^\circ ४८'$$

सूर्य सायन मकरादिमें है इसलिए इस भोगांशको १२ राशि या ३६०° से घटाने पर जो आवेगा वह सूर्यका स्पष्ट सायन भोगांश होगा। इसलिए इस दिन सूर्यका सायन भोगांश

$$= ३६०^\circ - ४४^\circ ४८'$$

$$= ३१५^\circ\ १२'$$

पृष्ठ २६३ के चित्र ३६ को देखनेसे तथा अनुभवसे भी यह स्पष्ट है कि सूर्य जितने समयमें वसंत संपातसे दक्षिणायन विंदु तक जाता है अर्थात् सायन मेषसे तीन राशि तक जाता है उतने समयमें इसकी उत्तर क्रान्ति शून्य से २३°२७′ तक बढ़ती है। जब सूर्य दक्षिणायन विंदुसे (सायन कर्कके आदिसे) शरद सम्पात तक जाता है तब इसकी उत्तर क्रान्ति २३°२७′ से घटते घटते शून्य हो जाती है। शरद सम्पात् अर्थात् सायन तुलासे उत्तरायण विंदु (सायन मकर के आरंभ तक) तक सूर्य की दक्षिण क्रान्ति शून्यसे २३ २७′ बढ़ती रहती है और सायन मकर के आरम्भ से वसन्त सम्पात तक घटते घटते फिर शून्य हो जाती है।

[क्रमशः]

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २१ { वृष, संवत् १९८२ { संख्या २

सफलता की कुंजी

[ले० श्री नवनिद्धराय, एम. ए.]

सफलताकी कुंजी लाखोंने ढूँढी। सैकड़ों सफल हुए, हज़ारों असफल हुए। जो सफल हुए उन्होंने समझा कि कुंजी उनके हाथ लग गई है। जो असफल हुए वह निराश तो अवश्य हुए पर ढूँढनेमें फिर लग गये। जीवन यों ही भटकते बीत गया। असंख्य मनुष्य सृष्टिके आरंभसे अबतक संसारमें आये और सफलताकी मृगतृष्णामें दौड़ दौड़कर इस संसारको दुखित हृदय छोड़कर चलेगये। ज्ञानियों ध्यानियोंने ज्ञान और ध्यानकी सहायतासे सफलताकी कुंजी ढूँढने-का प्रयत्न किया। बहुतोंने समझा कि कुंजी उन्हें मिल गई है, उनकी कुंजीकी सहायतासे काम करके सफलता-का द्वार खोलना सरल काम हो जायगा। परमात्माकी यह सृष्टि अनन्त है। इसका रूप ऋषियोंने देखा, मुनियोंने देखा, ज्ञानियों ध्यानियोंने देखा, उजड्ड गँवारोंने भी देखा पर सबने भिन्न भिन्न सौन्दर्यका दर्शन किया। एकने जो देखा वह दूसरेको न दीखा। जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी। अनन्त ईश्वरका अनन्त स्वरूप ही तो यह अनन्त सृष्टि है। परिमित शक्तिवाला मनुष्य अपनी शक्तिकी सीमाके भीतर जैसा चाहेगा देखेगा। बस यही समझिए सफलताकी कुंजीका भी इतिहास। किसीने कोई तर-कीब बतलाई किसीने कोई। दो मनुष्य कभी एकमत न हो सके। जिन साधनोंसे एकने सफलता प्राप्त की वही दूसरेकी असफलताके कारण सिद्ध हुए। सफलताका न कोई एक द्वार है और न सफलताकी कोई एक कुंजी। इस अनन्त सृष्टिकी तरह सफलताके अनन्त भवनमें अनन्त द्वार हैं। भटकता हुआ उद्यमशील उद्योगी पुरुष कभी किसी द्वारपर पहुँच गया बस

भवनके भीतर चला गया, कर्मकी सहायतासे द्वारको खोलनेमें कुछ कठिनाई न पड़ी।

अपने अपने अनुभवके अनुसार लोगोंने सफलताके भिन्न भिन्न साधन बतलाये हैं। कुछ ऐसे साधनोंका उल्लेख यहां किया जाता है। मनुष्यके गुणों और कर्मोंपर ही सब उन्नति निर्भर है। देखना यह है कि वह कौनसे गुण और कौनसी शक्तियाँ हैं जिनके द्वारा मनुष्य उन्नतिके पथपर अग्रसर हो सकता है। विश्लेषण करनेपर देखा जाता है कि यह गुण यों तो बहुत ही साधारण प्रतीत होते हैं और इसीलिए उनपर ध्यान जमता नहीं परन्तु वास्तवमें यही उन्नतिकी चरम सीमापर मनुष्यको पहुँचा देते हैं। पानीके बूँद टपकते २ पहाड़ोंपर चिह्न कर देते हैं। दरारोंके भीतर घुसकर तरल जल जाड़ेके दिनोंमें बरफ बनकर ऐसी शक्ति अपने अन्दर उत्पन्न कर लेता है जिसकी सहायतासे बज्र पहाड़ोंको चिटका कर तोड़ देता है, टुकड़े टुकड़े कर देता है। ऐसाही समझिए साधारण गुणोंका हाल।

मनुष्यके मानसिक संगठनका महत्वपूर्ण अंग दृढ़ता है। एक बातपर स्थिर हो जाना, जम जाना, कठिनाइयोंका सामना पड़नेपर विचलित न होना, यही दृढ़ताका अर्थ है। जिस मनुष्यमें दृढ़ता नहीं है उसके लिए सफल होना संभव नहीं। विरोधी वायुके हलके झोंके भी जिसकी मानसिक स्थिरताको आन्दोलित कर देते हैं उसके लिए कोई कार्य आरंभ करके अन्ततक पहुँचना कब संभव हो सकता है ? किसी मनुष्य या स्त्रीको सफलता प्राप्त करनेकी योग्यताका अनुमान करना हो तो उसकी गम्भीरता या दृढ़ताका पता चलाना चाहिए। मनुष्यके व्यक्तित्वकी नीव उसकी मानसिक दृढ़ता और स्थिरतापर रक्खी हुई समझनी चाहिए।

प्रश्न होता है कि गम्भीरता या दृढ़ता मनुष्यकी किस इन्द्रियमें स्थित है। दृढ़ता मानसिक शक्ति है। मस्तिष्कमें इसका स्थान है। सिरके पिछले भागमें जहाँपर हिन्दू लोग शिखा रखते हैं, वही जगह इस मानसिक शक्तिका उच्चतम केन्द्र है। इसी स्थानपर मस्तिष्कके बुद्धि, ज्ञान तथा नैतिक बलको प्रेरित करनेवाली शक्तियाँ स्थित रहती हैं। यही कारण है कि खोपड़ीके इस भागको सुरक्षित रखनेके लिए तथा इन सब शक्तियोंको प्रबल बनानेके लिए हिन्दू लोग गायके खुरके बराबर शिखा या चोटी रखा करते थे। जैसे जैसे हिन्दुओंकी शिखा पतली और छोटी होती गई वैसे ही वैसे इनकी मानशिक और नैतिक शक्तियाँ घटती गई—दृढ़ता गम्भीरता और स्थिरता तो मानों रह ही न गई।

दृढ़ता कई प्रकारकी होती है, कई रूपोंमें यह व्यक्त होती है। उत्तम और क्रियात्मक रूपमें यह मनुष्यको बार बार उद्योग करनेपर तत्पर रखती है, या यों कहिए कि मनुष्यकी इच्छाओं और अन्य इन्द्रियोंकी तुष्टिके लिए निरंतर कार्य कराती रहती है। इसकी सहायतासे अन्य इन्द्रियां अपने कार्यको पूरा कर पाती हैं। मन जो निश्चय कर लेता है उसे कठिनाइयों और विघ्न बाधाओंके होते हुए भी यही शक्ति कार्यरूपमें परिणत कराती है। इस प्रकारकी दृढ़तासे मनुष्यमें जो गुण और शक्तियां उत्पन्न होती हैं वह यह हैं—

१—निश्चय पर तुले रहना।
२—स्थिरता।
३—मन और भावका कट्टरपन।
४—उद्योग करते समय शान्तिपूर्ण सहनशीलता
५—ध्येयकी प्राप्तिमें अध्यवसाय।
६—विरोधका सामना करनेके लिए संकल्प।
७—मन और भावकी संलग्नता।

सफल मनुष्योंके सामर्थ्यका मूल दृढ़ता मालूम पड़ती है। एक दो व्यक्ति किसी असाधारण या अलौकिक गुण या धी-शक्तिके कारण दृढ़ताके न होते हुए भी सफलता प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु इसके विपरीत हज़ारों साधारण और थोड़ी सी भी शक्ति रखने वाले व्यक्ति इस दृढ़ताकी सहायतासे अपूर्व सफलता प्राप्त कर लेते हैं। ऊपर गिनाई हुई दृढ़ताके कारण उत्पन्न होने वाली शक्तियों और गुणोंकी सहायतासे आश्चर्यजनक फल प्राप्त किये जा सकते हैं। जन

समूहपर शासन करने वाले महत्व और उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों के संचालक बिना दृढ़ताके अपने काममें सदा असफल रहते हैं।

अपने मित्रोंमें कौनसा गुण सबसे अधिक आवश्यक हम समझते हैं? किस मित्रपर हम भरोसा या विश्वास कर सकते हैं और किसपर नहीं? यही प्रश्न सच्ची मित्रताकी कसौटी है। जो भरोसेका आदमी है वही सच्चा मित्र है। व्यापारमें भी वही व्यापारी सफल हो सकता है जिसमें यह गुण है कि वह लोगोंको अपने अन्दर विश्वास और अपने ऊपर भरोसा करा सके। बिना भरोसे और विश्वासके न कोई सफल व्यापारी ही हो सकता है और न सच्चा मित्र। इस विश्वास और भरोसेकी उत्पत्ति कहांसे है? उत्तर है कि दृढ़ता जब शुचिता, पुण्यशीलता अथवा न्यायपरायणतासे मिलती है तो मनुष्यमें वह गुण उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण दूसरे लोग उसपर भरोसा और विश्वास करने लगते हैं। ईमानदार, सदाचारी, शुद्धमति, तथा विश्वासपात्र मनुष्य यदि कभी हमें हानि भी पहुँचावे या हमारे साथ सुखद व्यवहार न भी करे तो भी हम उससे अपना नाता नहीं तोड़ते।

न्यायपरायणता मनुष्यको सत्य और औचित्यकी ओर प्रेरित करती है। परन्तु यदि यथेष्ट मात्रामें दृढ़ता न हुई तो लोगोंके दबाव या बहकावेमें आकर मनुष्य सन्मार्गसे विचलित हो जाता है। दृढ़ता और न्यायपरायणताका संयोग आत्मसमर्पण और बलिदानका मूल है। इसी संयोगके कारण त्यागी बड़ी बड़ी कठिनाइयां और कष्ट सहते हुए अपने मन्तव्य और सिद्धान्तपर बलिदान हो गये।

बहुत कम मनुष्योंमें दृढ़ संकल्प शक्ति होती है। कुछ लोगोंमें तो संकल्प शक्तिका अभाव प्रतीत होता है। हलकी इच्छा उठनेपर भी ऐसे लोग आतुर हो जाते हैं और अपनी इच्छाका दमन नहीं कर सकते परन्तु उसके वशीभूत हो जाते हैं। दूसरे लोग ऐसे देखे गये हैं जो अपने मन्तव्यों और निश्चयोंपर अटल रहते हैं, सिद्धान्तोंसे डिगना जानते ही नहीं, बहलाने फुसलानेमें नहीं आते और न कभी देखा देखी कोई काम करते हैं। इनका आचरण एकरस रहता है, कभी परिवर्तन नहीं होता। ऐसे मनुष्योंसे आशाकी जा सकती है कि जो सोचेंगे कर ही डालेंगे, अपने निश्चयको पूर्णतया कार्यरूपमें परिणत कर डालेंगे चाहे उनको ऐसा करनेमें लाभके बदले हानि ही क्यों न हो।

मन और बुद्धिकी प्रेरणासे इच्छाके अनुरूप संकल्प बनता है। बहुत काम हम कर डालते हैं और बहुत नहीं करते हैं—यह हमारी बुद्धि और विवेककी प्रेरणापर निभर है। दृढ़ता हमारे संकल्प और निश्चयको स्थिर करती है। यही कारण है कि विशाल दृढ़ता वाला मनुष्य अपने विचार और आचारमें स्थायित्व दिखलाता है। संभव है कि इसके निश्चय दूसरेके निश्चयोंसे उत्तम न हों परन्तु एक बार निश्चय कर लेनेपर, यह निश्चय भला हो या बुरा हो, यह मनुष्य अपने संकल्पसे डिगता नहीं। दृढ़ और न्यायपरायण मनुष्य शारीरिक और मानसिक उद्यम द्वारा सफलता प्राप्त करनेका संकल्प कर लेते हैं, विशेषतः ऐसी अवस्थामें जब उनके सामने कोई आदर्श उपस्थित हो, उनमें पूर्णता प्राप्त करने की प्रबल इच्छा हो, किसी ध्येय की प्राप्ति की आकाँक्षा उनके हृदयमें उत्पन्न हो गई हो। यही दृढ़ता और न्यायपरायणता संयुक्त होकर कई गुणोंको उत्पन्न करते हैं। न्यायशीलता, उद्यम शीलता, महत्वाकांक्षा, यशकामना इत्यादि गुण इस प्रकार उत्पन्न होते हैं और यही मन तथा इन्द्रियोंके संकल्पोंको कार्यरूपमें परिणत कर देते हैं। यही कारण है कि उपर्युक्त गुणों वाले मनुष्य ऐसे कार्यमें लगे हुए दिखलाई पड़ते हैं जो हमें उनकी शक्ति और योग्यताके बिलकुल परे जान पड़ते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि सभी इन्द्रियोंकी क्षमता बढ़ाई जा सकती है और निरन्तर उद्योगकी सहायतासे साधारण योग्यता वाले मनुष्य भी बहुत कुछ कर सकते हैं। फिर भी बड़े दुःखकी बात है कि अपनी योग्यताका यथोचित ज्ञान न होनेके कारण लोग ऐसे

काममें लगे देखे जाते हैं जो सर्वथा उनकी योग्यता-के बाहर हैं, साथ ही ईश्वरदत्त कितने ही अपने गुणोंको बेकाम और सुषुप्त पड़े रहने देते हैं। विज्ञानकी सहायता ऐसे लोगोंको लेनी चाहिए। फ्रेनोलाजी (Phrenology) नामक शास्त्रकी सहायतासे मनुष्यके मस्तिष्कका पूरा हाल जान कर यह बतलाया जा सकता है कि उसमें कौनसे गुण हैं, किस प्रकारकी उसमें योग्यता है और उसके कौशलकी क्या सीमा है। सीमाके उल्लंघनसे अच्छी-से अच्छी चीज़ बुराई पैदा कर देती है। दृढ़ता भी बहुत उत्तेजित अवस्थामें पहुँचकर कई दुर्गुणोंकी जननी बन जाती है—जैसे हठ और दुराग्रह, दूसरेकी बात न मानना, अपनी ही बातपर अड़े रहना, न्याय अन्यायका ध्यान न करना, अक्खड़पन, यह सब दुर्गुण दृढ़ताके विकृत रूप हैं। बच्चोंमें उपर्युक्त सब दुर्गुण प्रायः पाये जाते हैं। समझ लेना चाहिए कि ऐसे बच्चोंमें दृढ़ताकी मात्रा है। और शिक्षा देते समय समझाकर, बहलाकर प्रेमपूर्ण-व्यवहारसे कुमार्ग-से सन्मार्गकी ओर उनकी दृढ़ताका वेग फेर देना चाहिए।

दृढ़ संकल्प शक्तिकी न्यूनता मनुष्यके नैतिक संगठनमें बड़ी भारी कमी समझनी चाहिए। ऐसे आदमी सदाचारहीन, ढीले, अनुद्योगी, संशयात्मा, इन्द्रिय लोलुप होते हैं। दृढ़ संकल्प वाले मनुष्य ऐसे लोगोंपर शासन करते हैं और अपने हाथकी कठपुतली बनाकर जिधर चाहते हैं उनकी नाक मोड़ते हैं।

दृढ़ता और संकल्पशक्तिका पूर्णरूपसे विकास करनेका प्रयत्न प्रत्येक बच्चेकी शिक्षाका सर्वोपरि और परमावश्यक अंग होना चाहिए। हर एक आदमी-को अपनी संकल्पशक्ति प्रबल करनेका प्रयत्न करते रहना चाहिए। सदा चैतन्य रहना चाहिए जिससे दृढ़ताकी कमी न आने पावे। इस समयके हिन्दू समाजकी ओर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो दृढ़ संकल्पशक्तिकी न्यूनता सब प्रकारके ह्रासका एकमात्र कारण सिद्ध होगी। हिन्दुओंके लिए सफलताकी कुंजी बस दृढ़ संकल्पशक्ति ही है। सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, पारमार्थिक, ऐहिक सब प्रकारकी सफलता दृढ़ता दिला सकती है।

सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा

अथवा

ऐन्द्रजालिक ऐनक

मनोहर कहानी

[अनुवादक—श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

[गतांक से आगे]

परबतेने पूछा—"यह किस सिद्धान्तके आधारपर बनी है? डाकृरने उत्तर दिया—"इन ऐनकोंके बनानेमें कितने ही दिन लगे, रातों जगा हूं। पहले तो मुझे आविष्कार बड़ा साधारण मालूम पड़ता था क्योंकि एकसरेसे काम लेनेका मैंने निश्चय किया था। परन्तु आविष्कार टेढ़ी खीर है, कामकी गति बड़ी मन्द रहती है और महीनों लग जाया करते हैं। आविष्कारोंका जन्म साधारण काम नहीं है। जरा दर्पणके आविष्कार-पर तो विचार करो। आरम्भमें मनुष्य अपनी छायाको तो देखता होगा परन्तु अपना प्रतिबिम्ब पहले पहले उसने जलमें देखा होगा और शता-ब्दियोंतक जल ही अथवा अन्य द्रव पदार्थ दर्पण-का काम देते रहे होंगे। इसके बाद सुचिक्कण धातुके दर्पणका आविष्कार हुआ होगा। शता-ब्दियों पीछे फिर कहीं शीशेके दर्पण बने। दर्पणके बहुत दिनों बाद तालका निर्माण हुआ। सबके अन्तमें एकसरेका आविष्कार हुआ। अभी यह आविष्कार प्रारंभिक अवस्थामें है। इन किरणोंका परावर्त्तन और वक्रीकरण (Refraction) पूर्ण रूपसे सफल नहीं हुआ है। इन्हीं किरणोंके ऊपर मैंने प्रयोग किये। एक्स किरणें ताप और प्रकाश-की किरणोंके बहुत समान हैं। इतनी अधिक समानताको देखकर मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन किरणोंकी सहायतासे एक ऐनक

बनाई जाय जिसके द्वारा ठोस पदार्थोंमें होकर भी दिखलाई पड़ने लगे। संवत् १९६८में फ्रेडरिक लाऊ महाशयने एक्स किरणोंका यह गुण मालूम कर लिया था कि किसी किसी रवादार तलपरसे एक्स किरण परावर्त्तित हो जाती हैं। भिन्न-भिन्न तरंग-लम्बानों (wave length) की एक्स किरणोंपर प्रयोग करके उन्होंने यह निश्चय किया कि जो तल किसी किरणको परावर्त्तित करेगा तो उसके तरंगलम्बान और उस तलके अणु संगठनमें एक विशेष सम्बन्ध रहेगा। अबतक इस आविष्कारसे केवल इतना ही काम लिया गया है कि आकाशमें (Space) परमाणुओंकी असली व्यूहरचनाका पता लगाया जाय।

"एक्स किरणोंसे मेरा कुछ काम न चला। तब मैंने अन्य किरणोंकी ओर ध्यान दिया। देखो तोताराम, बहुत तरहकी किरणें होती हैं। अकेला रेडियम ही तीन प्रकारकी किरणें प्रसारित करता है। इनके नाम हैं आल्फा (α) बीटा (β) और गामा (γ) किरणें। आल्फाको एक्सरे जैसी समझो। यह भी प्रति सेकेण्ड ८००० से १६००० किलोमीटरकी गतिके चलती हैं। १ मील १·६०९३ किलोमीटरके बराबर होता है बीटा किरणोंकी गतिका वेग साधारण प्रकाशकी किरणोंके वेगके बराबर होता है। प्रयोगोंसे सिद्ध हुआ है कि बीटा किरणें ऐसे कणोंकी बनी हुई हैं जिनपर चुम्बक का प्रभाव होता है। परन्तु गामा किरणोंपर चुम्बकका कोई प्रभाव नहीं होता।

"इन्हीं सब किरणोंपर प्रयोग करते करते मुझे एक नई किरणोंका पता चल गया। इनका नाम मैंने "जेड्रे" (जेड्किरण) रख लिया। साधारण प्रकाश किरण, एक्सकिरण और बीटाकिरणकी तरह इन किरणोंकी भी तरंगलम्बानोंमें न्यूनाधिक्य होता है। इन किरणोंकी तरंगलम्बानोंमें बहुत घट बढ़ देखी जाती है। अब मैं यह प्रयत्न करने लगा कि मैं इन किरणोंमेंसे थोड़ी सी ऐसी सवर्ण (homogeneous) किरणें अलग करूँ जिनका तरंगलम्बान समान (uniform) हो। यह समस्या साधारण न थी। बहुतसे प्रयोग मुझे करने पड़े। वह सब प्रयोग मैं समझाऊँ भी तो तुम्हारी समझमें न आवेंगे। बड़े परिश्रमसे मैंने सफलता प्राप्त की। अब मैंने ऐसा परदा बना लिया है जिसके द्वारा होकर जब किरणें निकलती हैं तो छनी हुई किरणें मेरा पूरा काम दे जाती हैं। अब मैं लोगोंके जेबमें रक्खी हुई चिट्ठियाँ पढ़ सकता हूँ। इसके लिए मैंने एक छोटा सा यंत्र अलग बना लिया है। अच्छा तोताराम! अब ऐनक फिर तो लगाओ। मैं यह यंत्र जोड़े देता हूँ। देखो अब मेरे कोटकी जेबमें जो चिट्ठी है उसका पता पढ़ सकते हो?"

परवते महाशयने आँखपर ऐनक फिर चढ़ाई और बिस्मयसे चिल्ला उठे—

"हो, हो! ओह ओ, मैं तो आपके पेटके भीतर भी देख रहा हूँ! मुझे तो आपकी सब हड्डियाँ दिखलाई पड़ रही हैं! आपकी पूरी ठठरी मैं देख रहा हूँ! बप्पा रे बप्पा! मैं तो आपका हृदय देख-रहा हूँ, अँतड़ियाँ देख रहा हूँ, सभी कुछ दिखलाई पड़ रहा है। जो जिस रंगकी है वह चीज़ वैसीही दिखलाई पड़ रही है। यह नहीं है कि एक्सरेवाली फ़ोटोकी तरह केवल काली और सफ़ेद दिखाई पड़े। आपके जेबमें जो कुछ है वह सब मुझे दिखलाई पड़ रहा है। चिट्ठियाँ, रुपये, डायरी सब देख रहा हूँ रेलके टिकटपर जो लिखा है यह भी मैं पढ़ रहा हूँ। क्यों डाकृर साहब! आप मुझे एक सप्ताहके लिए यह ऐनक माँगे दे दीजिए।"

डाकृरने उत्तर दिया—"नहीं नहीं, भला बिचार तो करो। इन ऐनकोंके दुरुपयोगसे कितनी हानि पहुँच सकती है! गिरहकटोंके लिए यह कितने कामकी चीज़ है। वह तुरन्त देख लेंगे कि किस मनुष्यके जेबमें कितना रुपया है और किसकी जेब काटनेसे उन्हें अधिक लाभ होगा।"

डाकृरने नहीं माना, ऐनक नहीं दी। परन्तु प्रयोगशालाके ताले साधारण और पुराने ढंगके थे।

कीलकी सहायतासे परवते महाशयने ताले खोल लिये। वह अलमारी इन्होंने देखही ली थी जिसमें डाकृर महोदयने ऐनक रक्खी थी। इस ऐनकका प्रयोग यह समझ ही चुके थे। उस रातको १० बजे नियत स्थानपर पहुँच गये और सुन्दरीके हाथमें ऐनक इन्होंने रख दी। सुन्दरीकी मधुर मुस्कराहट और कुछ प्रेमपूर्ण कटाक्षसे यह कृतकृत्य हो गये। मन ही मन इन्होंने अपने भाग्यको सराहा।

(३)

डाकुओंके एक गरोहसे कुमारी मनोरमा देवीका सम्बन्ध था। यह बेचारी इन लोगोंके चुंगलमें फँस गई थी। वह लोग जिस तरह चाहते थे इससे काम लेते थे। इसकी कथा अत्यन्त करुणाजनक है। इन डाकुओंके सरदारने इस सुन्दर निरीह बालिकाको पहले अपने प्रेमपाशमें फँसाया। जब इस देवीने अपना हृदय इस डाकूको समर्पित कर दिया, उसके ऊपर पूर्ण विश्वास करने लगी तो इस दुष्टने बेचारीका सतीत्व नष्ट करके उसे घरसे भगा लिया और जब वह हर प्रकारसे निरुपाय हो गई तो इसे कठपुतलीकी तरह डाकेके काममें सहायता देनेके लिए बाध्य किया। मनोरमाको इस कामसे तथा अपने जीवनसे भी घृणा हो गई थी। परन्तु अबलाओंका सहायक समाजमें कोई है नहीं। समाजकी स्थिति ऐसी है कि बेचारी भोली भाली कुललनाओंपर कितना ही अत्याचार क्यों न हो कोई भी उनकी सहायताकी ओर ध्यान नहीं देता। किसीने अभाग्यवश यदि कोई गलती कर दी तो हमारे धर्म व समाजमें उसका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। मनोरमा छटपटाती थी पर इन दुष्टोंके पंजेसे निकल सकनेके लिए उसके पास कोई उपाय न था। समाजका संगठन ऐसा है कि उसे कहीं अपने लिए स्थान नहीं दिखाई पड़ता था। डाकुओंका यह गरोह अत्यन्त सुसंगठित और सफल था। इसके भेदिये सब जगह थे और तुरन्त सूचना दिया करते थे कि किस जगहपर अच्छी जमा हाथ लगेगी।

डाकृर हक्सरके नौकरोंमें भी इनका एक भेदिया था। न जाने कैसे इस भेदियेको जेडरे (Z-ray) ऐनकोंका हाल मालूम हो गया। डाकुओंके सरदारके पास सूचना तुरन्त पहुँच गई। सरदारने निश्चय किया कि किसी न किसी तरह यह ऐनक हाथ लगनी चाहिए। सीधा और सरल उपाय उसके ध्यानमें आ गया। कुमारी मनोरमासे काम लेना उसने निश्चय किया। मनोरमाको यह बात बिल्कुल अच्छी न लगी परन्तु बेचारी इनकार कैसे कर सकती थी। वह तो इन लोगोंके वशमें थी। बस, थियटरके पास ही परवतेके टोहमें रही। और जब दूसरी बार ऐनक लेकर परवते उससे मिले तो मोटरमें अपने साथ बिठाकर डाकुओंके अड्डेपर उसे पहुँचा दिया। मनोरमाके सौन्दर्यपर लुब्ध होकर बेचारे परवते डाकुओंके पंजेमें फँस गये।

इनके पकड़े जानेकी कथा सुनिए। ऐनक चुराकर मन ही मन मुस्कराते सुन्दरीका ध्यान करते नियत स्थानपर यह पहुँच गये। थियेटरके सामने यह खड़े ही हुए थे कि एक ओरसे सुन्दरी मोटरमें आ उपस्थित हुई।

उत्सुकतासे उसने पूछा—'कहिए महाशय! आप ऐनक लाये?'

परवते कुछ न बोले। कोटकी जेबपर हाथ रख दिया और इशारेसे समझा दिया कि ऐनक उनके पास है।

सुन्दरीने कहा—"आइए जल्दी चढ़ आइए। मैं आपको अपने घर ले चलूँगी और वहीं मैं अपने मनकी बात आपको बतलाऊँगी। ऐसा सुअवसर इस जन्ममें आपको फिर कभी प्राप्त न होगा। आप चाहेंगे तो आपका नाम बड़े बड़े जासूसोंमें मशहूर हो जायगा।"

सुन्दरी बड़ी तेज़ीसे मोटर चलाने लगी। तोताराम मन ही मन सोच रहे थे कि ऐसी सुन्दर, इतनी शिक्षित तथा इतनी अमीर बालिका यह कौन है। कभी कभी बालिकाके मुखपर कुछ उदा-

सीसी छा जाती थी मानों हृदयके किसी दुःखको अन्दरही दबाये रखनेका प्रयत्न कर रही है पर कुछ उसकी झलक मुँहपर आ ही जाती है। पाठक, इस बेचारीको मनोवेदनासे आपका हृदय भी दुखी अवश्य होगा।

आधे घंटेके बाद शहरके बीहड़ तथा निर्जन मोहल्लेमें मोटर रुकी। दोनों मोटरसे उतरे। सुन्दरीके पीछे पीछे तोताराम एक घरके अन्दर घुसे। सुन्दर सुसज्जित एक कमरेमें सुन्दरीने तोतारामको बिठलाया। तोतारामने ऐनकोंका प्रयोग सुन्दरीको दिखलाया और समझाया। मनोरमा बड़ी खुश हुई। उसके आनन्दको देखकर परबते भी आनन्दित हुए।

अब मनोरमाने कहा, "महाशय जी अब मैं अपनी इच्छा आपसे बतलाती हूँ। मैं आपको दो सप्ताहके लिए अपने पास रक्खूँगी। इसलिए कृपया आप एक पत्र डाक्टर हक्सरको लिख दीजिए। लिखिए कि आप बनारसमें अपने एक सम्बन्धीकी मृत्युशय्याके पास बैठे हैं और कुछ समयतक इसी कारणवश आप डाक्टर साहबकी सेवामें उपस्थित न हो सकेंगे। इसके बाद आपको मैं भोजन कराऊँगी और स्वयं भोजन करके आपके साथ जासूसीका एक काम आरम्भ करूँगी।"

प्रसन्न मन परबते महाशयने पत्र लिख दिया। भोजनकी थालियाँ सामने आईं। दोनों भोजन करने लगे। तोतारामके भोजनमें कोई मादक पदार्थ अवश्य मिला हुआ था क्योंकि इन्हें कुछ औंघाई मालूम होने लगी और बहुत जल्द बेहोश हो गये।

घंटों बाद इनकी नींद खुली। इन्होंने अपनेको क़ैदी पाया। कोठरी सजी हुई थी। परन्तु खिड़कियोंमें मोटे लोहके सिक्चे लगे हुए थे, किवाड़ा बाहरसे बन्द था। ऐनक इनके जेबमें न थी। घबड़ाये और परेशान हुए, पर बेचारे करते क्या!

जिस दिन तोतारामके ऊपर यह आफ़त आई उसी दिनसे नगर भरमें डाके पड़ने लगे। लोहेके बड़े बड़े सेफ़ टूट जाते थे और डाका ठीक उसी रात्रिको पड़ता था जब उन बक्सोंमें बड़ी रकमें होती थीं। ऐसा मालूम पड़ता था कि बहुत ही विश्वस्त कर्मचारी डाकुओंसे मिले हुए हैं लेकिन इन कर्मचारियोंपर अविश्वास करना बुरा मालूम पड़ता था क्योंकि वे पुराने विश्वस्त नौकर थे। कुछ समझमें न आता था।

कुमारी मनोरमा देवी चाहतीं तो सब रहस्य खोल देतीं। बंगों और कोठियोंमें प्रायः यही जाया करतीं थीं और अपनी ऐनकोंके सहारेसे लोहेके सेफ़ोंमें दीवालके ओटसे ही देखकर यह निश्चय कर लेती थीं कि डाका डालनेके योग्य कुछ माल है? हीरा जवाहिर मोती चाहे जहाँ छिपाकर रक्खे गये हों इनकी तीव्र दृष्टिसे छिप न सकते थे। बड़े बड़े डाके इन्हीं "ज़ेडरे" ऐनकोंकी सहायतासे पड़े थे। इधर डाक्टर हक्सरको ऐनकोंके चोरी जानेका कुछ पता न था। परबतेकी चिट्ठी इन्हें अवश्य मिली थी पर उसपर विशेष ध्यान देनेका कोई कारण नहीं था। एक दिन डाक्टर हक्सर ज़ेडरे ऐनकोंके सम्बन्धमें एक लेख विख्यात मासिक पत्रिका सरस्वतीके लिए लिखने लगे इस लेखमें उन्होंने दिखलाया कि यह ऐनक पुलीसके कितने कामकी है। जासूस या भेदिये इन ऐनकोंको आँखोंपर चढ़ाकर दूसरे मनुष्योंके जेबके पिस्तौल आदि और डाकुओंके बक्समें ताला तोड़नेके औज़ार देख लें। चोरीसे कोकेन या अफ़ीम ले जानेवाले तुरन्त ही पकड़ लिये जायँगे। जूतोंमें, छड़ियोंमें, जेबोंमें छिपी हुई कोकेन तुरन्त पकड़ी जा सकेगी। चुंगीवालोंको यात्रियोंके बक्स और बिछौने खोलने न पड़ेंगे और न उनके कपड़ोंकी तलाशी लेनी पड़ेगी। इन ऐनकोंकी सहायतासे सब रहस्य तुरन्त प्रकट हो जायगा। क़ैदी लोग आरी या रेती छिपाकर साथ न रख सकेंगे।

वैद्यों और डाक्टरोंको इन ऐनकोंसे बड़ी सहायता मिलेगी। रोगियोंके हृदय इत्यादि शरीरके भीतरी अंगोंकी सब क्रियायें ज्योंकी त्यों उन्हें

दिखलाई देंगी। साधारण गतिमें कहीं ज़रा भी अड़चन होगी इन्हें तुरन्त दिखलाई पड़ जायगी। ढलाईके काम करने वालोंको साँचेके भीतर ढलती हुई चीज़में कोई भी त्रुटि होगी तो तुरन्त मालूम हो जायगी। संक्षेपमें यों समझिये कि जीवनके प्रत्येक कार्यमें इन ऐनकोंसे बड़ी विचित्र सहायता मिल जायगी। समाजमें नये प्रकारका परिवर्तन दिखलाई पड़ने लगेगा। विज्ञान और कलामें बड़ी उन्नति होगी।

यह लिखते लिखते डाक्टरको अपनी एक मशीनकी याद आई जो किसी कारणसे रुकी पड़ी थी। तुरन्त इन्होंने कलम रख दिया, ऐनक लेनेके लिए उठे जिससे मशीनका हाल दिखाई पड़ जाय, पर ऐनक ग़ायब थी। इधर ढूंढ़ा उधर ढूँढ़ा, ऐनकका पता न चला। परबतेकी प्रार्थनाकी भी याद आई, समझ गये। बिना पूछे ही तोतारामने ऐनक उड़ा दी।

डाक्टर कह उठे, 'विचित्र लड़का है। कोई बदमाशी इसे अवश्य सूझी है।'

तभी उन्हें शहरके बड़े डाके ध्यानमें आये। दो सप्ताहके भीतर ही यह पड़े थे। दोनों घटनाओंका संबन्ध इन्हें निश्चित हो गया।

"डाकुओंके किसी दलके हाथ यह ऐनक लग गई है। बस यही सब अनर्थका कारण है। इसीसे इन्हें सेफ़ोंके रुपयेका पता चल जाता है। किसी न किसी तरह यह ऐनक मेरे पास लौट आनी चाहिये। मैं उनका पता जल्दी लगा लूंगा। संसारमें सिवा मेरी ज़ेडरके और तो कहीं है नहीं। मेरा ज़ेडरे अन्वेषक इनका स्थान जान लेगा। यदि ये हज़ार मीलके अन्दर हों तो ५ मिनटमें मैं इनका ठीक स्थान जाने लेता हूं।"

क्षण भरमें अन्वेषकका स्विच इन्होंने दबाया। और अपनी दूसरी जेडर ऐनकोंको इनशूलेट (वियोग) करके अन्वेषक की सुई देखने लगे। डायलके ऊपर घूम कर सुई एक स्थानपर ठहर गई। डाक्टरने आप ही आप कहा, "सुई तो ठीक उत्तरकी ओर बतला रही है और ज़ेडतरंगोंकी शक्तिसे जान पड़ता है कि वे यहाँसे ५ मीलकी दूरीपर हैं। यह ऐनक चौरंगीमें कहींपर होनी चाहिये।

अपनी शिष्या पार्वतीदेवीको उन्होंने ज़ोरसे पुकारा, 'पार्वती! डाकुओंके दलको पकड़कर क्या तुम अपना नाम करना चाहती हो?'

पार्वती टाइपराइटरपर कुछ टाइप कर रही थीं, घबड़ा कर बोलीं, 'क्या?'

'डाकुओंको पकड़नेके लिए बड़े बड़े इनाम छप रहे हैं। तुम्हें कुछ रुपया पैदा करना हो तो तैयार हो जाओ। रामनारायण और ३-४ मज़बूत आदमी तुम्हारे साथ कर दूँगा। ज़ेडरे ऐनकें लगा लो और इस मामलेमें सफलता प्राप्त कर लो।'

तैयारीमें दो चार ही मिनट लगे। रामनारायण किसी ज़मानेमें मशहूर सेफ़ तोड़नेवाले थे। पर अब यह काम इन्होंने छोड़ दिया था और डाक्टर हक्सरके यहाँ नौकर हो गये थे। सेफ़ और ताले तोड़नेके सब औज़ार मोटरमें रख दिये गये। संभव था कि किसी घरमें ताला तोड़कर घुसना पड़े, जिस सेफ़में चोरीका माल बन्द हो उसे खोलना पड़े। रामनारायणको यह सब काम खूब मालूम थे। इनके साथ एक गैस भी रख दी गई थी जिसका गुण था कि सूंघने वालोंपर यह मोहनी डाल देती थी, उन्हें बेहोश करके विरोधके अयोग्य कर देती थी। ज़ेडरे अन्वेषक भी साथ कर दिया गया।

चौरंगीतक जानेमें कुछ ही मिनट लगे। यहांपर अन्वेषकने एडन उद्यानकी ओर सुई दिखलाई। यह लोग तुरन्त ही चल पड़े। उद्यानके पास एक एकान्त मकानके द्वारपर मोटर थमी। सब उतर गये। घरको चारों ओरसे घेर लिया। अब ज़ेडरे अन्वेषककी सुई इसी घरको ओर दिखला रही थी। निश्चय हो गया कि ज़ेडरे ऐनक इसी घरके भीतर होनी चाहिये।

पर्वती देवीने ऐनक अपनी आंखपर चढ़ा ली। दीवारके पासतक धीरे धीरे जाकर दीवारके उसपार घरके भीतर देखने लगीं। कोई दस बारह आदमी शराब पीते ताश खेलते दिखलाई पड़े। दूसरे कमरेमें एक सुन्दर युवती चारपाईपर पड़ी पढ़ती दिखलाई पड़ी। यही मनोरमा देवी थीं। एक और कमरेमें एक युवक बन्द दिखलाई पड़ा। कमरेका दरवाज़ा बाहरसे बन्द था युवक भीतरसे भाग निकलनेकी तरकीब ढूंढ़ रहा था। पार्वतीने परबतेको पहचान लिया। रामनारायणकी आंखोंपर अब ऐनक लगाकर सब हाल उसे भी दिखलाया।

रामू बोले—'बस क्या है, सब एक ही कमरेमें तो हैं और नशेमें हैं। सबके सब अभी पकड़े जाते हैं।'

रामू सिद्धहस्त थे। एक खिड़की खोलकर घरके भीतर घुस गये। पार्वती, रामू और तीनों मनुष्योंने मुंहके ऊपर गैस रक्षक नक़ाब पहन ली और गैस-विकीरक नलीका सिरा कमरेके दरवाज़ेके एक सन्धमें लगा दिया। जिस कमरेमें डाकू लोग थे, गैस तुरन्त भर गई। एक मिनट बाद दलका दल बेहोश हो गया, जब इनकी आँख खुली तो अपने हाथों और पैरोंमें बेड़ियां पड़ी देखीं। इनका एक साथी उस समय कमरेमें न था। पीछेसे पहुँचकर कुछ कठिनाई उसने उपस्थित की, पर रामू तो गुरू थे। बड़ी होशियारी से लंगी लगा कर उसे गिरा दिया और हथकड़ी पहना दी। सुन्दरी मनोरमाने पकड़े जानेमें कोई आपत्ति न की, अपनेको पकड़ा दिया।

स्वतंत्र होकर परबते बड़े सुखी हुए। चोरी वाली ऐनक लगाकर इन्होंने भी चोरीका माल ढूंढनेमें पार्वतीकी बड़ी सहायता की। हीरे, जवाहिरात, आभूषण आदि जगह जगहपर बड़ी होशियारीसे छिपाये गये थे। कहींपर दीवारमें छिपी हुई अलमारियां थीं, कहीं अलमारियों और कुरसियोंमें गुप्त खाने बने हुए थे। इनमेंसे माल निकला। भण्डार घरमें राखके ढेरके नीचे जवाहिरात और आभूषण निकले। ढेरके ढेर नोट, क़ीमती घड़ियां तरह तरहकी चीज़ें मिलीं। कोई पन्द्रह लाख रुपयेके नोट सावरेन और रुपये मिले।

इन ऐन्द्रजालिक ऐनकोंसे कोई भी गुप्त स्थान सुरक्षित न था। दीवारोंके उस पार, फ़र्शके नीचे ज़मीनमें गड़े हुए ख़जाने ज़ेडरेकी सहायतासे दिखलाई पड़ रहे थे। मूल्यवान चीज़ोंको देख लेना बिलकुल कठिन न था, पर उनको निकालना अधिक कठिन था। लूटकी सब सामग्री मोटरकारमें भर दी गई। साथ ही सब डाकू एकके ऊपर एक लादकर ठूंस दिये गये। कोई आधी रातको सब लोग डाक्टर हक्सरके घर पहुँच गये।

डाकुओंको लम्बी सज़ाएँ मिलीं पर डाक्टर हक्सरने सुन्दरी मनोरमाको अभियोगसे अलग रखा। वह तो बेचारी डाकुओंके हाथमें कठपुतली थी। अपनी प्रयोगशालामें उसे इन्होंने नौकर रख लिया। मनोरमाने भी डाक्टरकी इस अनुग्रहके बदलेमें मेहनत और ईमानदारीसे काम किया।

चोरीका माल बरामद करनेके लिए श्रीमती पार्वती देवीको पुरस्कार स्वरूप ६०००) रुपया और एक अत्यन्त सुन्दर मोतियोंका हार मिला। परबते महाशयको भी १०००) रु० और सुन्दर सोनेकी घड़ी मिली।

अबसे डाक्टर हक्सर अपनी इन ऐनकोंको बड़े सुदृढ़ सेफ़में बन्द रखने लगे। कभी कभी कहा करते, "प्रत्येक बड़ा आविष्कार शक्तिका रूपान्तर है। शक्तिका प्रयोग भले और बुरे दोनों कामोंमें हो सकता है। मेरी ऐन्द्रजालिक ऐनकें जन साधारणके हाथमें पड़कर जन समूहका बड़ा अपकार कर सकती हैं।"

यही कारण है कि अबतक हम और हमारे पाठक इन ऐनकोंके आनन्दसे वंचित हैं। देखें डाक्टर हक्सरकी कृपा कभी हम लोगोंपर होती है कि नहीं।

क्षय रोग और लहसुन

[ले० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

क्षय रोगका अंग्रेजीमें वैज्ञानिक नाम टयूबरकुलोसिस (Tuberculosis) है। जन साधारणमें भी अब टयूबरकुलोसिस शब्दका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। जैसे भारतवर्षमें भवाली आदि सैनेटोरियम टयूबरकुलोसिसके रोगियोंके लिए पहाड़ोंपर बने हुए हैं वैसे ही इंगलैण्डमें भी स्थान स्थानपर सैनेटोरियम (Sanatorium) बने हुए हैं। इन स्थानोंपर क्षय रोगकी चिकित्साका पूर्णरूपसे प्रबन्ध किया गया है और यह चिकित्सालय ऐसे स्थानपर बनाये गये हैं जहाँका जलवायु इस रोगकी चिकित्सामें सहायक समझा जाता है। अभी हमारे देशमें तो यह प्रथा नहीं चली है कि बड़े बड़े नगरोंमें इस रोगके विशेषज्ञ वैद्य नगरमें क्षय रोगकी बढ़तीको रोकने और इस रोगके सम्बन्धमें सर्व साधारणमें ज्ञान फैलानेका प्रयत्न करते रहें, पर लन्दन जैसे विशाल नगरमें एक टयूबरकुलोसिसका विशेषज्ञ नौकर रहता है। क्षय रोगके रोगी इस विशेषज्ञ और उसके अधीन नौकर वैद्योंसे हर तरहकी सहायता ले सकते हैं। गत वर्ष एक महाशय लन्दनके इस विशेषज्ञसे अपनी धर्मपत्नीकी बीमारीके सम्बन्धमें राय लेनेके लिए गये। उनकी स्त्रीकी अवस्था २४ वर्ष की थी। अच्छे वैद्योंने चिकित्साकी थी और अन्तमें यह कह दिया था कि रोग असाध्य हो गया है। विशेषज्ञने उनकी स्त्रीको भली प्रकार देखा और यहीं निश्चय किया कि रोग असाध्य है और क्षय रोगके चिकित्सालयमें रखनेसे भी कोई लाभ होना संभव नहीं है। दुखित पतिने सैनेटोरियममें (चिकित्सालय) ले जानेका प्रयत्न किया पर वैद्योंने कह दिया कि कमजोरीके कारण अब हटाया जाना असंभव है। हार कर इन्होंने स्पालिंगर (Spahlinger) नामक चिकित्साकी ओर ध्यान दिया पर इधर भी इनको निराश ही होना पड़ा। क्योंकि जवाब यह मिला कि सीरम (कीटाणु) जिसकी सहायतासे चिकित्सा होती है तैयार नहीं है और न कुछ दिनतक तैयार हो सकेगा।

अपनी पत्नीको बचानेका कोई उपाय उनके लिए न रह गया। अकस्मात् इनकी निगाह समाचार पत्रके एक विज्ञापनपर पड़ गई। यह विज्ञापन यादील (Yadil) या लहसुनके तेलका था जिसका वैज्ञानिक नाम था ट्राईमेथीनाल अलाइलिक कार्बाइड (Trimethenal allylic carbide)। इन्होंने यादीलकी बोतल मँगाकर अपनी धर्मपत्नीको पिलाना आरंभ किया। तुरन्त अवस्थामें परिवर्त्तन दिखलाई पड़ा। बहुत जल्द शक्ति लौटने लगी और तीन ही महीनेके भीतर वह इतनी अच्छी हो गई कि घूमने फिरने लगीं और समुद्रकी बायु सेवन करनेके लिए समुद्रके किनारे जा सकीं।

इन महाशयको विश्वास हो गया कि यादीलकी सहायतासे शीघ्र ही रोगसे निवृत्ति हो जायगी। और लोगोंसे भी इन्होंने अपना अनुभव बतलाया। कई लोग ऐसे मिले जिनका अनुभव यादीलके सम्बन्धमें उनका ही जैसा था। वैद्योंपर यह बहुत गुस्सा हुए और अनेक अपशब्दोंका प्रयोग उन बेचारोंके लिए किया।

एक या दो रोगियोंके अच्छे हो जानेसे भी किसी औषधि या चिकित्सा-प्रणालीके सम्बन्धमें कोई निश्चित मन्तव्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। कई वैद्योंने यादीलके गुणोंका यथोचित रीतिसे अन्वेषण किया है। यादीलकी क्षमताके सम्बन्धमें इस समय मत उतना अनिश्चित नहीं है जितना अन्य विज्ञापन-बाजोंकी दवाइयोंके सम्बन्धमें। यह तेल निस्सन्देह बहुत अच्छा कीटाणुनाशक है। लहसुनके तेलकी कीटागुनाशक शक्तिका ज्ञान यादीलके विज्ञापनके बहुत पहलेसे लोगोंको है। इसकी कीटाणुनाशक शक्तिको प्रयोगोंद्वारा सिद्ध करनेके बाद यादील प्रचारकोंने यादीलका विज्ञापन निकाला है। कई रोगोंकी चिकित्सामें लहुसनका तेल तथा यादील लाभदायक होते हैं। ट्यूबकुलोसिस अथवा क्षयरोगमें भी इनसे बहुत लाभ पहुँचनेकी आशा की जा रही है, इसीलिए आजकल यादीलका प्रचार बढ़ानेका

प्रयत्न किया जा रहा है। एक डाक्टरने कई रोगोंमें कई वर्षोंतक लहसुनके तेलको लाभ पहुँचाते हुए पाया। लहसुनके निर्माणमें गन्धकका अच्छा अंश मौजूद है। डाक्टर महोदयकी राय है कि लहसुनकी रोग-नाशक क्षमता गन्धकके कारण ही है। प्याज़में लहसुनसे कम गन्धक रहता है परन्तु गन्धक उसमें है अवश्य। इसीलिए प्याज़में भी कई रोगोंको दूर करनेकी शक्ति है। हैज़े की बीमारी जब फैलती है तो लोग प्रायः बच्चोंके गलेमें प्याज़ छेदकर पहना देते हैं। कई रोगोंमें प्याज़ अच्छी ओषधिका काम देता है। यूरोपीय चिकित्सा-शास्त्रमें गन्धक और उसके यौगिकोंसे बहुत काम लिया जाता है। होमियोपैथी चिकित्सामें भी गन्धक बड़ी प्रबल और अत्यन्त गुणवाली औषध है। उपर्युक्त डाक्टर महोदयकी राय है कि प्रकृतिकी प्रयोगशालामें बने हुए गन्धकके यौगिक जैसे लहसुन और प्याज़ अत्यन्त गुणकारी पदार्थ हैं।

ब्राह्मणोंमें प्रायः लहसुन और प्याज़का निषेध है। इनकी देखा-देखी अन्य जातिके हिन्दू भी लहसुन और प्याज़से घृणा करना और उनके उपयोगका विरोध करना उच्च कोटिकी धार्मिकता समझने लगे हैं। मेरी राय है कि हिन्दुओंको लहसुन और प्याज़ खाते रहना चाहिए।

यादीलके आविष्कारकका नाम अलेक्जेण्डर क्लेमेण्ट है। यादील बनानेवाली कम्पनीके प्रधान ये ही महाशय हैं। अपने आविष्कारका प्रचार यह बड़े उत्साहसे कर रहे हैं। लहसुनका यादील नामक रूप इन्होंने बहुत दिनोंकी मेहनत और अध्ययनके बाद तैयार किया है। इन महाशयमें एक गुण यह है कि यह अपने आविष्कारके लाभकी और यादीलके गुणोंकी सीमाको अच्छी तरह जानते हैं और बराबर इस बातका प्रयत्न करते रहते हैं कि लोग यादीलमें ऐसे गुण न समझ बैठें. जो उसमें वस्तुतः नहीं हैं। क्षयरोगपर यादीलके प्रयोगके सम्बन्धमें उनकी राय है कि क्षयरोगके कीटाणुओंको यादील अथवा लहसुन मार देता है। इससे अधिक लहसुन या यादील और कुछ नहीं कर सकता। इसलिए यादीलके प्रयोगके साथ साथ क्षय रोगकी अन्य प्रकारकी चिकित्सा भी करते रहना चाहिए। और बिना अन्य प्रकारकी चिकित्साके पूर्ण रूपसे स्वास्थ्य प्राप्त करनेकी संभावना कम है। लहसुन या यादील द्वारा नाश किये जानेपर भी कुछ दिनों बाद कीटाणु फिर आ पहुँचते हैं। "यादील सेवन विधि" नामक पुस्तिकामें इस बातपर भली प्रकार ध्यान आकर्षित किया गया है। जो लोग इनसे मिलने आते हैं या इनसे पत्र व्यवहार करते हैं उनको भी यही बात समझानेका यह प्रयत्न करते हैं।

एक रोगी ब्रामटन (Brompton) अस्पतालमेंसे यह कह कर बाहर कर दिया गया कि उसके लिए मरनेके सिवा और कोई आशा रोगसे छूटनेकी नहीं रह गई है। इसने समुद्रके किनारे जाकर मरना निश्चय किया। सौभाग्यवश वहाँ एक साधारण डाक्टर इसे मिल गये और यादीलका सेवन करनेके लिए कहा। यह रोगी अच्छा हो. गया पर पूर्ण आरोग्य प्राप्त करनेके लिए इसे अन्य चिकित्साका भी सहारा लेना पड़ा। प्रश्न है कि अन्य चिकित्सा किस प्रकारकी हो? क्लेमेण्ट महाशयकी रायमें उचित पथ्यका अनुसरण परम आवश्यक है। साधारण दैनिक व्यवहारकी शाक भाजियोंमेंसे चुनकर इस रोगके उपयुक्त पथ्य तैयार किया गया है। साधारण शाकोंमें भी बहुत अपूर्व गुण पाये गये हैं। शहरमें रहनेवाले हिन्दुओंसे हम प्रार्थना करेंगे कि हरी तरकारियोंका खूब सेवन किया करें। एक मात्र आलूपर निर्भर न रह कर ऋतुकी सभी तरकारियोंको खाया करें। स्वास्थ्य रक्षामें इससे विशेष सहायता मिलेगी। बड़े बड़े वैद्यों द्वारा जवाब पाये हुए असाध्य रोगके रोगी यदि दो चार बोतलों और उचित पथ्यके प्रयोगसे अखबारी विज्ञापन वाली दवासे अच्छे हो जायं तो वह वैद्योंको क्यों न कोसें और उनके शास्त्रका उपहास करें। भारतवर्षके वैद्योंको चाहिए कि लहसुनके गुणोंकी भली प्रकार जांच करें। हमारे देशमें लहसुन बहुत पैदा होता है। इसके सेवनकी ऐसी विधि क्यों न निकाली जाय जिससे हमारे देशमें क्षयरोगके

कीटाणु अथवा ट्यूबरकिल (Tubercle) भारतवासियोंके शरीरपर आक्रमण करते ही नष्ट कर दिये जायं।

सब लोगोंको लहसुन अपने भोजनका एक आवश्यक अंश बना देना चाहिये। ग़रीब लोग तो मँहगा होनेके कारण लहसुन नहीं खा सकते। बहुतसे लोग धार्मिक विचारके कारण लहसुन नहीं छूते। जो लहसुन खाते भी हैं वे केवल स्वादके लिए। अब लहसुनका प्रचार स्वादकी दृष्टिसे नहीं वरन् उसकी कीटाणुनाशक शक्तिके कारण प्रत्येक भारतवासीको करना चाहिए। विशेषकर नगर निवासियोंको अवश्य खाना चाहिये जहाँ क्षयरोगका आक्रमण दिनपर दिन प्रबल होता जा रहा है। हमें आशा है कि भारतीय वैद्य इस ओर ध्यान देंगे।*

* [हम इस लेखमें निर्धारित मन्तव्यसे सहमत नहीं हैं। अभी प्रयोग हो रहे हैं। लहसुनके अवगुणोंका भी अन्वेषण होना चाहिये। एक बातमें लेखकसे हम सहमत हैं, कि भारतीय वैद्योंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। कहीं पाश्चात्य वैज्ञानिक हमारे धर्मको ही न ले डूबें। बड़े विवेकसे काम लेना चाहिये। —सम्पादक]

निद्रा

सोना क्यों आवश्यक है ?

[ले० श्री एम. एस. वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.]

निद्रासे किसका दुख दूर नहीं होता? श्रमितको विश्राम मिलता है। दुखी जनको कुछ समयके लिए सांसारिक दुखोंसे मुक्ति मिलती है। वियोगकी आँचसे तपने वाले अपने दुखको भूल जाते हैं। चिन्ता ग्रस्त अपनी चिन्तासे मुक्त होते हैं। जिनको संसारमें कहीं भी आश्रय नहीं मिलता और जो दिन भर दर दर भटक कर प्रत्येक मनुष्यके सामने हाथ पसार कर अपना आधा पेट भरते हैं वह भी थोड़े समयतक निद्रादेवीकी गोदमें लेटकर अपनी सब व्यथाओंको भूल जाते हैं। क्षुधार्तजन अपनी क्षुधाको भूलते हैं, पापी मनुष्य कुछ समयके लिए पापोंसे बचते हैं। निद्रा देवी किसको नहीं अपनाती।

यह हुई काव्यकी कल्पना। वैज्ञानिक दृश्य तो कुछ और ही होगा। वैज्ञानिक सोचता होगा कि मनुष्यको अथवा प्राणी मात्रको नींद क्यों आती है। शरीरमें ऐसे कौन कौनसे परिवर्त्तन हो जाते हैं जिनका परिणाम निद्रा है। सोनेके समय मस्तिष्ककी क्या दशा होती है। मस्तिष्क और शरीरपर सोनेका क्या प्रभाव पड़ता है। निद्रामें स्वप्न क्यों आते हैं। क्या स्वप्नोंका कुछ अर्थ होता है? यदि स्वप्न सप्रयोजन होते हैं तो किन किन नियमोंसे यह दशा बाधित है। निद्रामें विकार आ जानेसे कौन कौन सी दशायें उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसे ही और भी प्रश्न वैज्ञानिकके चित्तमें उठा करते हैं।

विज्ञान वेत्ताओंने ऐसे सब प्रश्नोंका उत्तर देनेका प्रयत्न किया है। नाना प्रकारके प्रयोग किये हैं। भिन्न भिन्न प्रयोग कर्त्ताओंके भिन्न भिन्न साधन होनेके कारण परिणाम भी भिन्न निकले हैं। इस कारण निद्राके विषयमें बहुतसे सिद्धान्त प्रचलित हैं। कुछ सिद्धान्तोंका नीचे उल्लेख किया जाता है।

१. दूषित पदार्थोंका एकत्रित होना—कुछ लोगोंका मत है कि जब रक्तमें अम्ल पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं तो वह स्नायुमंडलको हानि पहुंचाते हैं। उससे स्नायु सेलोंकी चेतना और उत्तेजक शक्ति नाश होजाती है। यदि बाहरसे कोई उत्तेजना पहुँचे तो सेल उसका उत्तर नहीं देते जैसा कि वह साधारण अवस्थामें करते हैं। जब मांस पेशी कार्य करते हैं तो उस समय रासायनिक क्रियायें होती हैं और उनका परिणाम स्वरूप यह अम्ल पदार्थ बनते हैं।

२. अणुओंके अन्तर्गत ओषजनका समाप्त हो जाना—इस सिद्धान्तके अनुसार सेलोंके भीतर ओषजन संग्रह रहती है। एक ओर सेल द्वारा

यह ओषजन काममें लाई जाती है और दूसरी ओर रक्त द्वारा ओषजन सेलमें पहुँचती है। इस प्रकार यह संग्रह कभी समाप्त नहीं होता। इस सिद्धान्तके अनुयायियोंका कथन है कि जागृत अवस्थामें मस्तिष्कके सेल इस ओषजनको इतना जल्दी काममें लाते हैं कि रक्त उस कमीको पूरा नहीं कर सकता। इस प्रकार ओषजन समाप्त हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि सेलों-की उत्तेजन शक्ति जाती रहती है। इसपर जब बाहिरसे उत्तेजनाएं पहुँचनी बन्द हो जाती हैं तो निद्रावस्था उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्थामें ओषजनका कोष फिर पूरा हो जाता है।

३. विष सिद्धान्त—यह बहुतसे लोगोंका मत है कि कार्य करते समय शरीरमें एक विशेष विष बनता है जिसका स्नायु सेलों (nerve cells) पर बुरा प्रभाव होता है। जब इसकी मात्रा अधिक हो जाती है तो सेल अपनी क्रिया बन्द कर देते हैं। कुछ प्रयोगोंके परिणाम इस सिद्धान्तका समर्थन करते हैं। यदि कुत्तेके छोटे छोटे पिल्लोंको न सोने दिया जाय तो वह चार व छः दिनमें मर जायंगे। पायरोन (Pieron) नामक विद्वानमें बड़े कुत्तों-पर यही प्रयोग किया। उसका कथन है कि यदि कुत्तोंको ३० से ३०० घंटेतक न सोने दिया जाय तो उनमें पागल होनेके चिन्ह उत्पन्न हो जाते हैं। अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) द्वारा देखनेसे भी मस्तिष्कके अग्रभागके सेल आकारमें विकृत मिलते हैं। यदि ऐसे कुत्तेका रक्त, जिसको कुछ समयतक नहीं सोने दिया गया है और जिसमें रोग उत्पन्न हो गया है, एक स्वस्थ कुत्तेके शरीर-में इंजेक्शन द्वारा प्रवेश कर दिया जाय तो उसमें भी वही चिन्ह उत्पन्न हो जायंगे। इस सिद्धान्तका रचयिता इस बातको मानता है कि इस विषके प्रभावसे स्नायु सेल बाहिरकी उत्तेजनाओं का अनु-भव नहीं कर सकते।

४. नाड्योन सिद्धान्त—सेलोंका आपसमें सम्बन्ध तारों द्वारा होता है। प्रत्येक सेलसे अनेकों तार निकलते हैं। इन तारोंसे फिर शाखायें निक-लती हैं। इस प्रकार नाड़ीके सेलोंका आकार एक वृक्षकी भांति होता है। एक सेलकी यह शाखायें दूसरे सेलकी शाखाओंसे मिली रहती हैं अर्थात एक दूसरेके इतना पास रहती हैकि आपसमें मिल जाती हैं। यथार्थमें उनका आपसमें कोई सम्बन्ध नहीं रहता। एक सेलसे दूसरे सेलमें उत्तेजना इन्हीं शाखाओं द्वारा आती है। जब चर्मसे कोई उत्ते-जना आती है तो वह सेलके तारों द्वारा सेलतक पहुँचती है। वहाँसे एक सेलकी शाखाओंसे दूसरे सेलकी शाखाओंमें होती हुई स्वयं सेलमें पहुँचती है। इस प्रकार उत्तेजना मस्तिष्कमें पहुँचती है। डूगल व कैजाल (Dugal and Cajal) जो इस सिद्धान्त-को मानने वाले हैं उनका कथन है कि जब सेल अपनी शाखाओंके साथ सिकुड़ जाता है तो एक सेलकी शाखायें दूसरे सेलकी शाखाओंसे बहुत दूर हो जाती हैं। इससे उत्तेजना एक सेलसे दूसरे सेल तक नहीं पहुँच सकती। यही निद्राका कारण होता है। जब जागृति होती है तब शाखायें फिर पास आ जाती हैं। किसी प्रयोगके ऐसे परिणाम नहीं निकले हैं जिनके द्वारा इस सिद्धान्तका सम-र्थन हो।

५. मस्तिष्कमें रक्तकी कमी—प्रयोगोंसे यह देखा गया है कि जब भी किसी कारणसे मस्तिष्क-में काफ़ी रक्त नहीं पहुँचता तो मूर्छा आ जाती है। इसी से बहुतसे लोगोंका यह मत है कि निद्रा-का कारण मस्तिष्कमें काफ़ी रक्त न पहुंचना है। प्रयोगोंमें यह देखा गया है कि निद्रावस्थामें मस्तिष्कमें रक्त कम हो जाता है। सारे शरीरका रक्त-भार (Blood pressure) भी घट जाता है। निद्राके समय सदा रक्तभार कम रहता है। और चर्मकी रक्त नलिकायें फैली रहती हैं। इन सब बातोंसे यही मालूम होता है कि निद्राके समय मस्तिष्कमें रक्त-संचालन कम हो जाता है। कुछ लोग यह मानते हैं कि निद्राका यही कारण है। प्रथम रक्त संचालन कम हो जाता है और निद्रा

उसका परिणाम होती है। दूसरोंका कथन है कि रक्तका कम होना निद्राका केवल परिणाम है।

शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंका रक्त संचालन मस्तिष्कके एक केन्द्रके आधीन होता है। इस केन्द्रके द्वारा संचालन कम या अधिक हो सकता है। इस केन्द्रकी क्रिया बाहिरसे व अंगोंसे आई हुई उत्तेजनाओंपर निर्भर रहती है। क्रोधमें मुँह लाल हो जाता है। भोजनके पश्चात् अँतड़ियों रक्तका संचालन अधिक होने लगता है, यह सब इसी केन्द्रका काम है। जिस समय जिस स्थानपर रक्तकी अधिक आवश्यकता होती है उस समय वहांपर अधिक रक्त भेजना इस केन्द्रका ही कार्य है। जागृत अवस्थामें प्रत्येक समय इस केन्द्रमें उत्तेजनायें पहुंचती हैं और इसकी क्रिया भी सदा होती रहती है। किसी समय भी इसकी क्रिया बन्द नहीं होती। संभव है कि दिन भरके कार्यके पश्चात् यह केन्द्र श्रमित हो जाता है जिस प्रकार हमारा शरीर श्रमित हो जाता है। इसके उपरान्त जिस समय इसके सोनेकी आदत है उस समय एकान्त स्थानमें आंखें बन्द करके हम लेट रहते हैं। इससे बाहिरकी कोई भी उत्तेजना मस्तिष्क तक नहीं पंहुच सकती। रक्त संचालक केन्द्र इससे बिलकुल शिथिल हो जाता है। उसकी क्रिया बन्द हो जाती है। साथमें रक्त-भार भी कम हो जाता है। मस्तिष्कमें रक्त कम पहुंचता है। निद्रा आ जाती है।

जितने भी ऐसे सिद्धान्त हैं उनमें सब बातोंका उत्तर नहीं मिलता। इनमें केवल इस बातका वर्णन है कि निद्रावस्थामें क्या क्या परिवर्तन हो जाते हैं। जो कारण बतानेका उद्योग करते हैं वह सिद्धान्त अपूर्ण हैं और प्रयोगोंसे उनका समर्थन नहीं होता। यद्यपि युरोपकी भाषाओंमें इस विषयपर अनेकों ग्रन्थ हैं किन्तु अधिकांश ऐसे ही हैं जो केवल घटनाका वर्णन करते हैं। एक रूसी लेखकका सिद्धान्त है कि "Sleep is the resting time of consciousness" अर्थात निद्रा चेतना अवस्थाका विश्राम काल है। इस सिद्धान्तसे जिन प्रश्नोंका उत्तर मिलता हो अथवा निद्राके कारणोंका पता लगता हो वह स्वयं ही समझे जा सकते हैं। यद्यपि थोड़े दिनोंसे वैज्ञानिकोंका ध्यान इस ओर पूरी तरह आकर्षित हुआ है और नाना प्रकारके प्रयोग किये गये हैं और किये जा रहे हैं तो भी अभी तक कोई एक ऐसा सिद्धान्त नहीं मिला है जो निद्राके संबंधमें सारी विचित्र घटनाओंका समाधान कर सके। कोई भी सिद्धान्त पूर्णतया संतोष जनक तभी कहा जा सकता है जो ऐसी ऐसी सब बातोंका उत्तर दे दे, जैसे उदाहरण स्वरूप—बच्चा अधिक समय क्यों सोता है, युवा अवस्थामें निद्राकी अपेक्षा जागृत अवस्था अधिक क्यों होती है, वृद्धावस्थामें नींद क्यों अधिक आने लगती है, परिश्रमके पश्चात नींद अधिक आती है किन्तु परिश्रम बहुत अधिक होनेपर नींद क्यों नहीं आती?

शारीरिक व दिमागी कामपर निद्रा निर्भर नहीं है। यह आवश्यक नहीं कि यदि परिश्रम अधिक किया जावे तो नींद भी अधिक आवे। ऐसे मनुष्योंके उदाहरण जो बहुत अधिक परिश्रम करते थे और बहुत कम सोते थे जैसे नेपोलियन, फ्रेडरिक दी ग्रेट, हम्बोल्ट इत्यादि कुछ कम नहीं हैं। ऐसा बहुधा देखा जाता है कि ऐसे मनुष्योंको जिनके विश्राममें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ी है, लेकचर व सभामें सो जाते हैं। क्लासमें ऐसा कितनी बार होता है कि अध्यापक पढ़ा रहा है और विद्यार्थी सो रहा है। इसके विरुद्ध ऐसे लोग हैं जो निद्राभंग (Insomnia) रोगसे ग्रस्त हैं जिनको प्रयत्न करनेपर भी नींद नहीं आती। यह अनेकों प्रयत्न करनेपर भी नहीं सो सकते। ऐसी बहुत सी विचित्र बातोंका समाधान करना वैज्ञानिकोंका कार्य है जिसको वह अभीतक पूरा नहीं कर सके हैं।

एक महाशयका मत है कि मांस पेशियोंको बिलकुल ढीला छोड़ देना ही नींदका कारण है। ढीला छोड़ देनेसे मस्तिष्कको उत्तेजनायें जानी बन्द हो जाती हैं। इससे नींद आ जाती है। ऐसे बहुत उदाहरण पाये जाते हैं जहां यात्री घोड़ेकी पीठपर सो गये हैं, अपने साथ तमंचा, हाथकी छड़ी इत्यादि सबको ठीक प्रकार लिये रहे। एक अन्वेषण-कर्त्ता स्वयं अपना वर्णन करता है कि एक दिन उसको किसी मित्रसे जो कुछ दूरीपर रहता था मिलने जाना था। मिल कर जब लौटा तो चलते चलते उसको रास्तेमें नींद आ गई। वह उसी दशामें बराबर रास्ते-पर चलता रहा। बिना कहीं गिरे हुए या कोई वस्तु खोये हुए वह अपने मकानपर पहुंच गया। इसी प्रकार गैलन (Galen) नामक विद्वान दो सौ गज़से अधिक निद्राकी अवस्थामें चला। कदाचित उसकी आंखें तब भी न खुलती यदि वह एक पत्थरसे टक्कर न खाता। यदि मांस पेशियोंका ढीला होना नींदके लिए आवश्यक है तो यह लोग निद्रावस्थामें किस भांति चलते रहे। इस लिए यह सिद्धान्त भी ठीक नहीं मालूम होता।

डाक्टर सिडिस (Doctor Sidis) के अनुसार एकान्त और निस्तब्धता नींद उत्पन्न करते हैं। इनका मत है कि जब सब दशायें समान होती हैं भिन्नताका अभाव होता है, तो उत्तेजनायें भी समान ही होती है। इनमें भी भिन्नता नहीं रहती। एक समान उत्तेजनाओंसे मस्तिष्क बहुत जल्दी थक जाता है और नींद आ जाती है। उन्होंने अपने रोगियोंपर जिनकी वह चिकित्सा किया करते थे अनुभव किया है। निद्रा भंगके रोगियोंपर ही डाक्टर साहबने प्रयोग किये हैं और अपनी क्रियाको हिप्नोटिज़्मका नाम दिया है।

रोगीको एक कुर्सीपर बिठा दिया जाता है। उसको आज्ञा दी जाती है कि शरीरके सब अंगोंको ढीला छोड़ दो, किसी बातकी ओर ध्यान न करो। उसकी आंखें बन्द करवा दी जाती हैं और उसे हाथ पावं नहीं हिलाने दिया जाता। उसके पास ही एक यंत्र बजाया जाता है जिससे एक समान स्वर निकलते हैं। गानेके समय ऊंचे और नीचे स्वर नहीं होते। रोगीको आज्ञा होती है कि स्वरों-पर अपना ध्यान जमाये। जब कुछ समय हो जाता है तो उससे कहा जाता है कि अपने रोगके लक्षणोंका विचार करे और साथमें स्वरोंका भी ध्यान रखे। थोड़े समयतक इसी भांति रहनेके पश्चात रोगी सुषुप्ति अवस्थामें आजाता है। उसका श्वास धीमा चलने लगता है और नाड़ीकी गति भी धीमी पड़ जाती है। रोगीकी वैसी ही दशा हो जाती जैसी कि गाढ़ निद्राके पहिले होती है।

डाक्टर सिडिसके विचारोंके अनुसार गाढ़ी निद्रा आनेसे पूर्व प्रत्येक मनुष्यकी यही दशा होती है जिसमें कुछ बाहिरका ज्ञान भी रहता है और निद्राका भी आरम्भ हो जाता है। इसका भली भांति अन्वेषण करनेके लिए उन्होंने हारवर्ड मेडिकल स्कूल (Harvard Medical School) की प्रयोगशालामें प्रयोग प्रारम्भ किये। अधिकतर प्रयोग जानवरों पर ही किये गये; कुछ छोटे छोटे बच्चोंपर भी किये गये। डाक्टर सिडिसके ही शब्दोंमें उनके प्रयोगोंका कुछ वर्णन किया जाता है।

"मैंने दो महीनेकी आयु वाले दो कुत्तोंके पिल्लोंको लिया। एक हाथमें उनको पकड़कर दूसरे हाथसे मैंने उनके शरीरको वस्त्रके टुकड़ेमें लपेटनेका उद्योग किया जिससे सारा शरीर तो कपड़ेसे ढक जाय और केवल मुँह खुला रहे। ऐसा करनेपर पहिले तो दोनों पिल्ले बहुत क्रुद्ध हुये, खूब भूँके, और टांगें फेंकीं। मैं थोड़े समय-तक उनको खूब मज़बूतीसे पकड़े रहा और किसी न किसी भाँति उनपर कपड़ा लपेट दिया। पहिले मैंने एक पिल्लेको लिया और उसकी टाँगों और शरीरको इस भांति पकड़े रहा कि वह तनिक भी न हिल सके। हाथकी उङ्गलियोंसे आंखोंकी

पलक भी बन्द कर दी । यद्यपि उनका सारा शरीर मेरे हाथोंके नीचे दबा हुआ था तो भी वह बराबर छूटनेका प्रयत्न करते रहे ।

कुछ समयके पश्चात उनका हाथ पैर हिलाना कम हो गया । वह शान्त होने लगे । श्वास भी धीमा चलने लगा । धीरे धीरे मैंने अपना हाथ उसपरसे हटा लिया । वह वैसी ही दशामें लेटा रहा, न उसने आंखें ही खोलीं और न उसने हाथ टाँगें ही हिलाईं । वह इस समय निश्चिन्त भावसे सो रहा था ।

"दूसरे पिल्लेके साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया गया । पाँच मिनटतक हाथ पांव मारनेके पश्चात वह शान्त होकर सो गया । दोनों पिल्ले सोते रहे । मैंने बीचमें उनको कई बार छेड़ा, हाथसे शरीरको छुवा, लकड़ी चुभाई, किन्तु तो भी वह न जागे । पालके कमरेमें शोर भी मचवाया किन्तु उसका भी उनपर कोई प्रभाव न पड़ा । बीस मिनटके पश्चात एक पिल्ला जागा, उसने टाँगें इधर उधर मारीं, किन्तु उसकी आंखें बराबर बन्द रहीं । थोड़े समयके पश्चात वह फिर सो गया । मैंने धीरे धीरे उसके शरीरका वस्त्र खोल दिया किन्तु उसे कुछ भी न मालूम हुआ । वह पहिलेकी भाँति ही सोता रहा ।

"इसी प्रकार तीन और पिल्लोंको लिया । इनकी आयु ३½ सप्ताहकी थी । इनपर भी ऐसा ही प्रयोग किया गया । शरीरको वस्त्रसे ढककर आँखोंकी पलक बन्दर कर दीं । कुछ मिनटतक हाँथ पाँव मारनेके पश्चात वह भी सो गये । दूसरे कुत्तोंके साथ भी यह प्रयोग किया गया । प्रत्येक दशामें परिणाम यही निकला । जिस दशामें उनका शरीर रख दिया गया था अन्त तक वैसा ही रहा । आँखोंकी पलक बन्द रहीं । जब इनको खोलनेका उद्योग किया गया तो कुत्तोंने उनको बन्द कर लिया । इसी दशामें एक घंटेतक वह बराबर सोते रहे । यदि उनको जगाया न जाता तो संभव था कि वह अधिक समयतक सोते रहते ।

"दूसरे प्रयोगोंसे भी वही परिणाम निकला । ज्यों ज्यों पिल्लों की आयु बढ़ती थी त्यों त्यों उनकी सुषुप्त अवस्था भी अधिक समयतक रहती थी । गाढ़ निद्रा आनेमें अधिक समय लगता था । जागनेपर भी यही दशा होती थी । पहिले एक दो बार आँखें खोलते और बन्द करते और अङ्गड़ाई लेते थे । इसके पश्चात उनको गाढ़ी निद्रा आती थी ।"

डाक्टर सिडिसके सब प्रयोगोंसे यही परिणाम निकला । जब वह शरीरमें किसी भांतिकी गति न होने देते और बाहिरसे उत्तेजनायें न आने दी जातीं अथवा एक ही भांतिकी उत्तेजनायें आने पातीं तो उस पशुको, जिसपर प्रयोग किया जाता, शीघ्र ही नींद आ जाती । जिन बच्चोंपर यह प्रयोग किया गया वह अधिक आयु वालोंकी अपेक्षा शीघ्र और सहजमें सो गये । इसका कारण यही है कि बच्चेके मस्तिष्कमें सोचनेके लिए इतनी बातें नहीं रहतीं । उसकी विचार शक्तिकी सीमा बहुत छोटी होती है । ज्यों ज्यों आयु अधिक होती जाती है विचारोंकी सीमा भी बढ़ती है । उससे अधिक आयु होनेपर भिन्न भिन्न विषयों द्वारा मस्तिष्कको भिन्न भिन्न उत्तेजनायें मिलती हैं यही कारण है कि इनपर प्रयोगका इतनी जल्दी प्रभाव नहीं होता ।

डाक्टर सिडिसका कहना है कि उनको अपने किये हुये प्रयोगोंसे यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि उत्तेजनाओंकी समानता, एकान्त और निस्तब्धता नींदके मुख्य कारण हैं । हमारे सोनेका कारण यही है कि जो उत्तेजनायें मस्तिष्कमें पहुँचती हैं उनमें भिन्नता नहीं होती । और इस कारण मस्तिष्क इतना उत्तेजित नहीं होता कि वह जागृत अवस्थामें रहे । डाक्टर साहबका कथन है कि उत्तेजना चाहे भिन्न हों भी किन्तु दिन भरकी उत्तेजनाओंसे मस्तिष्क ऐसा थक जाता है कि वह उत्तेजनाओंकी भिन्नताका अनुभव

नहीं कर सकता। बहुत ऐसा होता है कि काम करते करते हमारा शरीर इतना थक जाता है कि यदि हमको कोई नया और ज़रूरी काम भी करना हो तो भी हम उसको धीरे धीरे बिना किसी उत्साहके करते हैं। ठीक इसी प्रकार मस्तिष्क इतना थक जाता है कि उसके लिए सब उत्तेजनायें एक समान हो जाती हैं। अथवा जब नित्यका सोनेका समय आता है तो हम यथार्थमें पूर्णतया जागृत होते हैं किन्तु हम यह अनुभव करते हैं कि हमारा सोनेका समय आ गया है हम सब ओरसे अपने चित्तकी प्रवृत्तियोंको खींचकर एकान्तमें अपने बिस्तरेपर लेट जाते हैं, प्रकाशको भी हटा देते हैं अथवा धीमा कर देते हैं जिसमें मस्तिष्कको उत्तेजनाएं न पहुँचे। इस प्रकार बाहरकी उत्तेजनाएं बन्द हो जाती हैं और हमको नींद आ जाती है।

अब हमें यह देखना है कि यह महाशय ऊपर कहे हुए लोगोंकी दशाका जो नींदमें चलते रहे तथा दूसरे प्रश्नोंका किस प्रकार समाधान करते हैं। उनका कहना है कि नींदमें चलनेसे सिद्धान्तमें कोई दोष नहीं आता। जब मस्तिष्क इतना थक गया कि वह उत्तेजनाओंकी भिन्नताका अनुभव नहीं कर सका तो निद्रावस्था उत्पन्न हो गई। उनकी समझमें चलनेसे टांगोंकी पेशियां इत्यादिसे जो उत्तेजना पहुंचती रही वह निद्राको दूर करनेके लिए काफ़ी न थी। छोटे बच्चेके अधिक सोनेका कारण यह कहा जाता है कि उसके शरीरमें जो बड़े वेगसे वृद्धि हो रही है वही अधिक समय सोनेका कारण है। ऐसे बहुतसे मनुष्य हैं जो अधिक आयु होनेपर भी बच्चोंके समान सोते हैं और यदि चाहें तो ३६ घंटेतक बराबर सोते रहें। केवल दैनिक शौच क्रिया इत्यादिके लिए उठेंगे उसको समाप्त करनेके पश्चात फिर सो जायंगे। यदि शारीरिक वृद्धि ही बच्चोंके इतने अधिक सोनेका कारण है तो यह अधिक आयु वाले मनुष्य इतने समयतक किस प्रकार सोते हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार बच्चोंके अधिक समयतक सोनेका कारण यह है कि वह उत्तेजनाओंकी भिन्नताका अनुभव नहीं करता। जितना मस्तिष्कका विकास कम होता है उतनी ही नींद अधिक आती है क्योंकि मस्तिष्कके पास सोचनेके लिए बहुत कम विषय हैं। उसको कुछ काम नहीं करना है। जिन मनुष्योंके दिमाग़की बनावट अपूर्ण होती है (अँग्रेज़ी में इनको imbeciles कहते हैं) उनकी भी वही दशा होती है। उनको भी बच्चोंकी भांति बहुत जल्दी नींद आ जाती है। अमरीकाके जंगली लोगोंकी यह आदत है कि जब वह कामसे फुर्सत पाते हैं तो चाहे बैठे हों चाहे खड़े, तुरन्त सो जाते हैं। कारण यह है कि विचार शक्तिकी बहुत ही प्रारम्भिक दशा होती है।

कास्पर हाउसर (Cashpar Hausar) नामक एक मनुष्य जर्मनीमें हुआ है। जब यह छोटा बच्चा था तो दुर्भाग्यवश किन्हीं कारणोंसे इसको कारागारमें डाला गया। जिस कोठरीमें यह रखा गया वह ऐसे स्थानपर थी कि वहां सिवाय अंधकार और प्रकाशके किसी भी वस्तुको नहीं देख सकता था। मनुष्य, पशु, सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी, वृक्ष इत्यादि मानो उसके लिए कुछ थे ही नहीं। सन १८२८ में १७ व १८ वर्षकी आयुमें वह जेलसे निकाल कर छोड़ दिया गया। उसके न कोई माता पिता थे न कोई घर द्वार था। कुछ दयालु पुरुषोंने दयाकरके उसके रक्षण पोषणका भार अपने ऊपर ले लिया। इसकी कथाका वर्णन कई जर्मनी भाषाकी पुस्तकोंमें मिलता है। जो लोग इस मनुष्यकी देख भाल करते थे उनका कथन है कि उसके मस्तिष्ककी दशा एक छोटे बच्चेके समान थी। वह बड़ी आसानीसे सो जाता था जैसा कि छोटे बच्चे करते हैं। संध्याके पश्चात् तो जागना उसके लिए असंभव था। यदि उसको दिनमें किसी गाड़ीपर बाहिर ले जाया जाता तो उसको तुरंत ही नींद आ जाती। गाड़ीमें चाहे कितने ही धक्के लगते, रास्ता कैसा ही ऊंचा नीचा होता किन्तु उसकी

नींद कभी न टूटती। वह मुरदोंसे शर्त्त बांधके सोता था। चाहे कैसा भी शोर क्यों न हो, बिजली तड़पे, इसके पास ही बन्दूक चलाई जाय, उसके शरीरको हिलाया जाय किन्तु वह नींदसे न जागता।

डाकृर सिडिसके सिद्धान्तसे इस दशाका समाधान हो जाता है। जो मनुष्य बहुत थोड़ा सोते हैं उनके मस्तिष्ककी शक्ति बहुत उच्च होती है और वह विचार शक्तिसे बहुत अधिक कार्य लेते हैं। इनका मस्तिष्क कभी उत्तेजनाओंसे मुक्त नहीं रहता। प्रत्येक स्थान, प्रत्येक घटनासे उनके मस्तिष्कके कार्यके लिए कुछ न कुछ भाव उनको मिलता जाता है। ऐसे मनुष्य कभी सारे दिन एक ही काममें लिप्त नहीं रहते। नेपोलियन लड़ाईके मैदानमें युद्धके नक़शे और आक्रमण विधि बनाता था, साथ ही फ्रांसमें शिक्षा क्रमका प्रबन्ध भी सोचता था। दूसरे समयमें पुलिस विभागके कार्योंकी ओर भी ध्यान देता जाता था। दूसरे मनुष्योंके जीवन भी इसी प्रकार हैं। विज्ञान वेत्ता विरचाउ (Virchow) के जीवन क्रमका डाकृर वाल्श (Doctor Walsh) ने कुछ वर्णन किया है। एक वर्षसे अधिक मैं इस जर्मनीके विज्ञान वेत्ताके साथ रहा। जहाँतक मैं सोचता हूं उसके इतना अधिक काम करनेको और बहुत कम सोनेकी शक्तिका रहस्य यही है कि वह कभी एक ही काममें सारा दिन नहीं व्यतीत करता था। वह नाना प्रकारके भिन्न भिन्न कार्योंमें लगा रहता था। बहुधा वह राजकीय सभासे रातके एक बजेसे पहिले न छूटता, प्रातःकाल साढ़े सात बजेके पूर्व वह अपनी प्रयोगशालामें जो उसके स्थानसे लगभग दो मीलकी दूरीपर थी, पहुँच जाता था। शरीर शास्त्रके अतिरिक्त वह जीव शास्त्रके प्रश्नोंपर भी विचार करता था। नगरके स्वास्थ्य विभागकी देख भाल भी उसके सिपुर्द थी। फ्रेंक जर्मन युद्धके पश्चात जबसे बर्लिन नगर बनना प्रारम्भ हुआ तबसे स्वास्थ्य विभागका अध्यक्ष वही रहा। वह स्वयं स्थानोंका निरीक्षण करता था। नगर निवासियोंके स्वास्थ्यको उत्तम बनानेकेलिए उसने अनेकों तरकीबें निकालीं। इसी प्रकार वह सदा भिन्न भिन्न कार्य किया करता था। इससे इसे किसी प्रकारकी हानि होनेके बदले लाभ होता था। इससे मालूम होता है कि केवल वही मनुष्य जो कई प्रकारके भिन्न भिन्न कामोंमें लगे रहते हैं और जिनकी विचार शक्ति बहुत बढ़ी हुई होती है उनके लिए थोड़ी सी निद्रा भी काफ़ी है। जिनको सदा एक ही सा कार्य करना होता है, जिनके जीवन क्रममें भिन्नताका अभाव होता है उनके लिए अधिक समयतक सोना आवश्यक है। कारण यह है कि उनके मस्तिष्कके एक ही सेल-समूहको बराबर काम करना पड़ता है, इसलिए जल्दी थक जाते हैं। किन्तु जो मनुष्य भिन्न भिन्न कार्य किया करता है उसके मस्तिष्कके भिन्न भिन्न सेलसमूह भिन्न भिन्न समयपर काम करते हैं। इस लिए प्रत्येक सेल-समूहको उतना काम नहीं करना पड़ता। अतएव सारे सेल इतना अधिक नहीं थकते।

इन सब बातोंसे मालूम होता है कि जितने समय तक सोना आवश्यक है उससे हम लोग कहीं अधिक सोते हैं। आयोवा विश्वविद्यालय (Iowa university) में तीन मनुष्योंको ९० घंटेतक नहीं सोने दिया गया। इसके पश्चात जब वह सोये तो स्वाभाविक निद्रा-कालसे तिहाई समयमें ही उनकी निद्रा पूरी हो गई। जहाँ ९० घंटेमें वह २२ घंटेके लगभग सोते वहां उनकी नींद केवल ६ व ८ घंटेमें ही पूरी हो गई। जब वे सोकर उठे तो उनकी वैसी ही दशा थी जैसी कि किसी स्वस्थ मनुष्यकी प्रतिदिन सोकर उठनेपर होती है। नींदका लाभ गाढ़ी व हलकी होनेपर निर्भर करता है। दो घंटेकी गाढ़ निद्रा ६ घंटेके ऊंघनेसे बहुत अच्छी है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतासे अधिक सोता है तो उसको लाभ नहीं होता, हानि होती है। जबतक वह सोता है मस्तिष्कमें रक्त कम पहुँचता है, फुफुसमें वायु भी कम पहुँचती है जिससे रक्तको ओषजन भी कम मिलती है। इसका शरीर-

पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। जो मातायें अपने बच्चोंको बहुत देरतक सुलाती हैं वह उनको हानि पहुँचाती हैं। जहाँ आवश्यकतासे अधिक सोना उचित नहीं है वहां कम सोना भी हानिकारक है।

जो मनुष्य बहुत अधिक सोते हैं वह अभ्याससे अपनी निद्रा कम कर सकते हैं। मस्तिष्कसे अधिक भिन्न भिन्न काम लेनेसे निद्रा भी घट जायगी और विचारशक्ति भी बढ़ेगी। बिना विचारशक्तिको बढ़ाये हुए नींदका कम करना ठीक नहीं है। जबतक मस्तिष्ककी शक्तियोंके बढ़ानेका प्रयत्न न किया जाय, जो समय निद्रा-कालसे कम किया जाय वह भी किसी उचित कार्यमें न लगाया जाय उस समयतक नींद कम करनेका प्रयत्न न करना चाहिये। यदि साधारण मनुष्य नेपोलियन व फ्रेडरिककी भाँति सोनेका उद्योग करें तो सिवाय हानिके कोई लाभ नहीं हो सकता।

अब प्रश्न यह उठता है कि साधारणतया मनुष्यके लिए कितने समयतक सोना आवश्यक है। जब बच्चा उत्पन्न होता है उस समयसे दो महीनेतक वह २२ घंटे सोता है। ज्यों ज्यों उसकी आयु बढ़ती है त्यों त्यों निद्रा भी घटती है। एक व दो वर्षकी आयुपर बच्चोंको लगभग १६ घंटे सोना चाहिये। २ और तीनके बीचमें १५ घंटे, ३ व ४ वर्षमें १४ घंटे ४ और ६ वर्षके बीचमें १२ व १३ घंटे, ६ व १३ वर्षकी आयु पर ८ व १० घंटे सोना चाहिये। इसके पश्चात् जब युवाकाल आरम्भ हो तो सोनेका समय कुछ बढ़ा देना चाहिये। इसके समाप्त होनेपर सात घंटे काफ़ी हैं। जब १६ व २० वर्षकी आयु पूरी हो जाय तो निद्राका समय ६ घंटे कर देना चाहिये। कुछ मनुष्य उस समयपर पहुँचकर जब उनके मस्तिष्ककी शक्तियोंका विकास पूरा हो जाता है जो लगभग ३० वर्षपर होता है इसमें भी कम सोते हैं। साधारण आदमीको लगातार छः घंटे सोना पर्याप्त है।

नींदमें विद्याध्ययन

[ले० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

भारतवर्षमें अभी रेडियोका प्रचार नहीं हुआ है। बहुत कम लोगोंने रेडियोका नाम सुना है। थोड़ेसे लोग ऐसे होंगे जिन्होंने बेतारके तारका हाल सुना होगा। प्रयागराजमें त्रिवेणी संगमपर स्नानके लिए जो श्रद्धालु-हिन्दू आते हैं वह किलेमें बड़े ऊंचे ऊंचे खंभे देख जाते हैं और यह सुन जाते हैं कि यह बेतारके तारके खम्भे हैं। साधारणतः यह समझमें आना सुलभ काम नहीं है कि बिना तारके समाचार भेजना कैसे संभव होता है। भोले भाले देहाती शहरवालोंसे यह सुनकर कि यह बेतारके तारके खम्भे हैं प्रायः यह समझते हैं कि शहरवाले लोग उनको बना रहे हैं। शहर और देहातवालोंमें भेद इतना ही है कि शहरवाले तो यह मान गये हैं कि बेतारका तार कोई संभव चीज़ है परन्तु देहातवाले इसे दिल्लगी समझते हैं। हमारे देशका अत्यन्त दुर्भाग्य है कि यहाँ विज्ञानका कुछ भी प्रचार नहीं हुआ है और न प्रचारके कोई साधन दिखलाई देते हैं। बेतारके तारका नाम "रेडियो" है, "बेतारका तार" शब्द निरर्थक है। उचित पारिभाषिक शब्द न होनेके कारण यह शब्द साधारण लोगोंने गढ़ लिया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह शब्द इनके भावोंको भली प्रकार व्यक्त करता है। वैज्ञानिक और साहित्यिक दृष्टिसे शुद्ध शब्द निर्माण करना अशिक्षित समुदायके लिए कब संभव हो सकता है। रेडियो शब्द इस समय इंग्लैण्ड और अमेरिकामें उन सब आविष्कारोंके समूहके लिए प्रयुक्त होता है जिनमेंसे बिना तारकी सहायताके एक स्थानसे दूसरे स्थानको हज़ारों मीलकी दूरीपर शब्द संकेतों द्वारा समाचार भेजे जा सकते हैं। विद्युतके चमत्कारसे हमारे देशवासी अब बहुत कुछ परिचित हो गये हैं। तार और टेलीफ़ोन द्वारा समा-

चार भेजना शहरोंमें सड़कों और मकानोंमें बिजलीके द्वारा प्रकाश करना, विद्युत्-शक्तिसे कल कारखानोंका चलाना, रेलों और ट्रामोंका विद्युत्-शक्तिसे दौड़ना, इत्यादि देखते देखते बिजलीसे हमारे देशवासियोंको बहुत परिचय हो गया है। विद्युत्की शक्ति अनन्त है। नये नये रूप धारण करलेना इसके लिए साधारण सी बात है। रेडियो भी बिजलीका एक रूपान्तर मात्र है। अन्वेषकोंने प्रयोग करते करते इस देवीकी आराधनामें अपना जीवन समर्पण करके विद्युत्की एक नई शक्तिका पता लगाया। विद्युत् द्वारा एक प्रकारकी ऐसी शक्ति उत्पन्नकी जा सकती है जिसकी सहायतासे दस बीस या पचीस हज़ार मील तक समाचार भेजना संभव हो गया है। एक प्रकारकी ऐसी तरंगें उत्पन्न कर दी जाती हैं जो आकाशमें होती हुई दूरस्थ स्थानपर विशेष रीतिसे इसी कामके लिए निर्मित ग्राहक (receiver) नामक यंत्रपर आघात करके तरंगें उत्पन्न कर देती हैं तथा प्रेषक (transmitter) से सम्बन्ध उपस्थित कर देती हैं। अब प्रेषक यंत्रके पास बैठा हुआ मनुष्य प्रेषक-द्वारा तरंगें भेजता है और ग्राहक यंत्रके पास बैठा मनुष्य दस हज़ार मीलकी दूरीपर ग्राहक यंत्रमें आन्दोलनका अनुभव करके यंत्रमें दोलनकी विधिको देखकर निश्चित संकेतोंकी सहायतासे प्रेषित समाचार समझ लेता है। विद्युतकी इस शक्ति, इन तरंगों तथा इनके द्वारा जितने काम किये जाते हैं और इनका जो कुछ विकास हुआ है उन सबको लेकर विज्ञानकी एक नई शाखा ही बन गई है और इसका नाम 'रेडियो' रख दिया गया है। हम भी रेडियो शब्दका प्रयोग करना ही उचित समझते हैं। हिन्दीमें रेडियो शब्द ग्रहण करना अनुचित नहीं जान पड़ता क्योंकि यह शब्द छोटा और सीधा है। विशेषकर अमेरिकामें रेडियोका बड़ा प्रचार है। भारतवर्षमें तो अभी रेडियोकी आश्चर्यजनक शक्तिमें विश्वास दिलाना कठिन काम है। प्रयाग विश्वविद्यालयके एक बी. एस-सी. महोदयसे हमने कहा कि रेडियोकी सहायतासे अब ऐसे टेलीफ़ोन बन गये हैं जिनसे कलकत्तेका गाना प्रयागमें सुना जाता है। प्रेषक यंत्र कलकत्तेमें है, ग्राहक यंत्र महल्ला दारागंजमें प्रसिद्ध राधारमणकी कोठीमें लगा हुआ है। शामको पूर्वनिश्चित प्रक्रम (programme) के अनुसार कलकत्तेमें तरह तरहका गाना होता है। कोठीवालोंकी आज्ञा लेकर जो चाहे गाना सुन आवे और रेडियोके चमत्कारमें अविश्वास न करे। विज्ञान-उपाधिधारी यह महोदय मेरी इस बातपर विश्वास न कर सके समझे कि मैं उन्हें बना रहा हूँ। कुछ हँसी करनेकी मेरी आदत अवश्य है पर उनका अविश्वास देखकर मैंने उन्हें समझाया कि आप दारागंज चले जाइए और स्वयं देख आइए। यह तो अवस्था है हमारे देशके पढ़े लिखे लोगोंकी, उपाधिधारियोंकी! भला अंग्रेज़ी भाषासे अनभिज्ञ लोगोंकी कौन कहे! अमेरिकामें छोटे छोटे बच्चे रेडियोके ग्राहक यंत्र लिए फिरा करते हैं। प्रेषक और ग्राहक यंत्रके अंग अलग अलग बिकते हैं जिनको मिलाकर १०-१२ वर्षके बच्चे भी प्रेषक और ग्राहक यंत्र बना लेते हैं।

कलकत्ता, बम्बई और कराँचीमें ऐसी कम्पनियाँ खुल गई हैं जो रेडियोके प्रेषक और ग्राहक यंत्र तथा सब पुरज़े बेचती हैं। छोटे छोटे कम दामके घर गृहस्थीके योग्य रेडियो यंत्र बिकने लगे हैं। अभी इतने सस्ते यंत्र तो यहाँ नहीं आये हैं कि ५०-४० रुपये मासिक आमदनी वाले महाशय भी उन्हें मोल ले सकें पर वह सब सज्जन जिनकी आमदनी ५००) रुपयेके लगभग है रेडियो यंत्र अपने घरमें रख सकते हैं। यह बात नहीं है कि रेडियो यंत्रका दाम बहुत ज़्यादा हो। कोई १५००) रु० में यंत्र मिल सकता है। इसमें अधिक मूल्य प्रेषक यंत्रका है। ग्राहक यंत्रका मूल्य बहुत कम होता है। जितने दूर समाचार भेज सकनेकी शक्ति होगी उतना ही अधिक दाम प्रेषकका होगा और

जितने अधिक दूरकी ख़बर ग्राहक पकड़ सकेगा उतना ही अधिक मूल्य उसका होगा। जब रेडियोका प्रचार इस देशमें अधिक हो जायगा तो मूल्य भी घट जायगा।

अमेरिका वाले रेडियोके इस कामपर संतोष करके बैठ नहीं गये। अनेक वैज्ञानिक नये प्रयोग कर रहे हैं। इस बातका प्रयत्न किया जा रहा है कि रेडियोकी शक्ति द्वारा वायुयान इस प्रकार चलाया जाय कि उनके अन्दर कोई मनुष्य न बैठे वरन् अपने कमरेमें बैठा हुआ संचालक रेडियोकी शक्ति द्वारा इस वायुयानको हवामें उड़ावे और १००—२०० कोसकी दूरीपर ले जाकर उतार दे, वहाँसे माल लादे और फिर वायुयानको अपने कमरेमें बैठा ही बैठा वहाँसे लौटा कर अपने द्वार-पर उतार ले। हमारे पाठकोंको यह सुन कर बड़ी हँसी आवेगी, कुछ सोचेंगे कि अमेरिकाके वैज्ञानिक किसी नशेमें हैं; परन्तु अधिकांश हमारे पाठक संभव है यह सोचें कि लेखकका मस्तिष्क कुछ चक्कर खा गया है; कुछ यह भी समझ सकते हैं कि लेखकको दिल्लगी सूझी है। पर हम पाठकोंसे सविनय सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे इन शब्दोंको हमारी मनगढन्त न समझें। जो कुछ हमने यहां लिखा है उसका आधार अमेरिकाके वैज्ञानिक संवाद-पत्र हैं।

ख़ैर, यह तो आगे होने वाला है। जो अभी हुआ है उसका एक ज़रा सा टुकड़ा इस लेखमें हम आपको बतलाना चाहते हैं। इसी उद्देशसे यह लेख लिखा गया है। शिक्षाकी समस्या कोई नई नहीं है। चिरकालसे पृथ्वीके समस्त देशोंमें शिक्षाकी ओर ध्यान दिया गया है। अनपढ़ोंको पढ़ाना धर्मका बड़ी भारी अंग माना गया है। शिक्षा सब उन्नतिकी जड़ मानी गई है। कूढमग़ज़ोंको, मन्द बुद्धि वालोंको तथा पढ़नेमें मन न लगाने वालोंको शिक्षा देनेके अनेकानेक ढंग ढूंढ निकाले गये हैं। कहीं खेलों द्वारा, कहीं नाटकों द्वारा, कहीं गीतों द्वारा, अनेकानेक विधियोंसे ज्ञानके प्रसारका प्रयत्न किया गया है। सब विधियोंमें सफलता तथा असफलता दोनों हुई हैं। एक बात देखी गई है कि मस्तिष्क शक्तिकी न्यूनता और सीखनेवालेकी अनिच्छाका सामना पड़नेपर बड़े अनुभवी शिक्षकतक हार मान बैठते हैं। इस अवस्थामें कोई भी विधि सफल होती दिखलाई नहीं पड़ती। एक अवस्था ऐसी भी आ जाती है कि बुद्धि साधारणसे कम नहीं है, सीखनेकी इच्छा पर्याप्त मात्रामें मौजूद है, सीखने वाला अपनी शक्तिके अनुरूप परिश्रम भी कर रहा है परन्तु वाञ्छित उन्नति नहीं हो रही है अथवा वाञ्छित विद्याकी प्राप्तिके लिए इतना समय लग रहा है जितना समय लगानेका अवकाश नहीं है, सीखने वाला सोनेके अतिरिक्त अपना कुल समय इसी काममें लगाये हुए है और यह सोचता रहता है कि किस प्रकार थोड़ेसे समयमें विद्या आ जाय और वह उसे अपने काममें लगावे। रेडियोने एक अपना अजीब चमत्कार दिखलाया है। इन परिश्रमी विद्यार्थियोंके लिए सोनेकी अवस्थामें भी विद्योपार्जन करना संभव और सरल कर दिया है। कानपर यंत्र चढ़ा लीजिये आप सोते रहिए। प्रेषक ५०-६० ऐसे विद्यार्थियोंके कानोंमें अपना ज्ञान पहुँचाता रहेगा और बारबार एक ही बातको दोहराकर आप सबको एक साथ सबक़ याद करा देगा। सोते रहिए, आराम करते रहिए, बेचारा शिक्षक सबक़ रटता रहेगा, आपके ५०-६० सहपाठियोंको सवेरे सबक़ याद निकलेगा। कहिए! आप कुछ विस्मित हुए? हमारी आदत सिरहाने किताबें रख कर सोनेकी थी। हमारे सहपाठी हमसे पूछते कि क्या सोतेमें भी पढ़ा करते हो? हम हंसीमें उत्तर देते, 'नहीं, पढ़ते तो नहीं हैं पर किताब मस्तिष्कके बहुत पास होनेके कारण नींदकी अवस्थामें हमारे मस्तिष्कतक अपने शब्दोंको भेजती रहती है अथवा जैसा हमने सुना है नींदमें सम्भव है हमारी जीवात्मा बदनसे निकल कर किताब पास ही देखकर बिना लम्पके तथा बिना किताब

खोले किताबको पढ़ ले। शायद इस प्रकार जगने-पर एक ही बार पढ़नेसे पुस्तक हमें याद हो जाय।' हमारी स्मरण शक्ति कुछ अच्छी थी, सबक़ हमें जल्दी याद हो जाया करता था। बोर्डिंग हाउसके हमारे सहपाठी यही समझा करते थे कि हम रातमें दिया जला कर पढ़ा करते हैं और उनपर रोब गाँठनेके लिए और अपना घोंटूपन छिपानेके लिए स्वांग रच रहे हैं। जब हमने अमेरिकाके एक वैज्ञानिक पत्रमें शिक्षाकी इस नयी विधिका हाल पढ़ा तो हमें पूर्व स्मृति हो आई।

अमेरिकाके नेवल एविएशन स्कूल (Naval Aviation school) में मानव मन और मस्तिष्क-पर रेडियोकी शक्तिके प्रभावका अध्ययन किया जा रहा है। विस्मयकारी फल दिखलाई पड़ रहे हैं—रेडियो सम्वाद-प्रेषण सीखने वाले युवक विद्यार्थियोंको नींदमें भी शिक्षा दी जाती है। रातमें रेडियोके ग्राहक यंत्र कानपर चढ़ाकर बिछौने-पर यह लोग सोते हैं। रेडियो द्वारा समाचार रात भर उनके कानमें भेजे जाते हैं। रात भर सुनते सुनते सांकेतिक शब्द उन्हें याद हो जाते हैं। संवाद भेजने और प्राप्त करनेकी उनकी गति दूसरे दिन बढ़ जाती है। बात बिल्कुल असम्भव जान पड़ती है परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिकाका नौ-सेना बिभाग इस बातको सत्य बतलाता है। शिक्षार्थियोंको ६ महीनेतक सीखनेके लिए रहना पड़ता है और प्रत्येक दिन दो घंटे रेडियोमें लगाये जाते हैं। उन्हें २० शब्द प्रति मिनटके हिसाबसे सम्वाद भेजना और प्राप्त करना पड़ता है। यही सबसे कठिन काम इस शिक्षामें उन्हें मालूम पड़ता है। पहले तो सांकेतिक शब्द सीखने पड़ते हैं। जब १० शब्द प्रति मिनटकी प्रेषण गति उनमें हो जाती है तो निद्रावस्थाकी शिक्षा प्रारम्भ होती है। अब कानोंपर ढकन चढ़ा कर ये लोग सोते हैं और ८ घंटेतक लगातार १५ शब्द प्रति मिनटके वेगसे रेडियोके समाचार उनके कानमें पहुँचाये जाते हैं। नींदमें इन्हें कुछ भी मालूम नहीं पड़ता। लेकिन दूसरे दिन इनकी प्रेषण गति १५ शब्द प्रति मिनट या उससे भी अधिक हो जाती है। इस प्रकार शिक्षार्थी एक महीनेमें जितनी गति प्राप्त कर लेते हैं वह ३ महीनेकी साधारण शिक्षासे भी कठिनाईसे प्राप्त होगी।

सुषुप्त मनका भेद किसीको मालूम नहीं। सुषुप्तिअवस्थामें मन क्या और कैसे करता है, एक रहस्य है। एक बात निश्चित है। ९५ प्रतिशतसे भी अधिक हमारे विचार मनकी सुषुप्त अवस्थामें प्रौढ़ किये जाते हैं। लेकिन सुषुप्त मनके ऊपर वैज्ञानिक रीतिसे अभीतक बहुत कम प्रयोग किये गये हैं। मनोविज्ञानवेत्ताओंकी इस समय राय है कि जाग्रत और सुषुप्त मनमें कोई पार्थक्य नहीं है। हमारे अत्यन्त उज्ज्वल विचार अन्तस्तलसे आते जान पड़ते हैं मानों सुषुप्तिकी सन्तान हैं। बड़े बड़े ध्यानियोंको मनके अन्तस्तलसे प्रभावोत्पादक ओजस्वी भाव प्राप्त होते हैं। बड़े बड़े ज्ञानी प्रायः कहते हैं कि उनकी सर्वोत्तम कृति स्वयंभू है, वह उनके मस्तिष्कमें बिचार रूपसे गर्भित नहीं हुई।

निस्सन्देह सुषुप्त मन ही मनुष्यकी स्मृतिका निवास स्थान है। इसलिए इस बातका समझमें आजाना कठिन नहीं है कि सोते हुए आदमीकी स्मृतिपर निद्रावस्थामें चिन्ह और चित्र अंकित किये जा सकते हैं, चाहे बुद्धिकी संचालक शक्ति काम कर रही हो या नहीं। बिना स्मृतिके हम कुछ भी नहीं कर सकते। अपनी यादसे हम बहुत सा पुराना अनुभव काममें लाकर किसी निर्णय-पर पहुँचते हैं। बिना स्मृतिके हम नवजात शिशुके समान निर्बल प्रतीत होंगे। जवान और बच्चेके मस्तिष्कमें यही तो एक भेद है। मानव मस्तिष्कमें स्मरण-शक्ति पूर्व-स्मृतिके रूपमें अनुभव और ज्ञानका अनन्त भाण्डार सुव्यवस्थित रीतिसे भिन्न भिन्न खानोंमें संचित रहता है, काम पड़ने-पर बड़ी तीव्रताके साथ इस भाण्डारको मनुष्य काममें लाता है। यह सब व्यापार बड़ा विचित्र है।

एक साधारण मनुष्यको लीजिए। दफ़्तरका काम समाप्त करके मेज़की सब चीज़ें ठीक-ठिकाने रखकर उठा, कपड़े बदले, सड़कपर आकर मोटरमें चढ़ा, घर पहुँचा, द्वार खोला, अन्दर गया। यह सब काम बिना विचार शक्तिको लगाये ही उसने कर डाले। उसका मस्तिष्क कहीं और था। तरह तरहके विचार उत्पन्न हो रहे थे। पर सब काम वह करता जाता था मानो कोई मशीन चल रही है। साधारणतः कहा जायगा कि उसका अन्तस्तल उसके कार्योंका संचालक था। परन्तु कहना यों चाहिए कि उसके कठपुतलीकेसे काम असलमें उसकी स्मरण शक्तिके फल हैं। उसे विचार करके काम करनेकी आवश्यकता इसलिए नहीं हुई कि कार्यका संचालन स्मृतिके हाथमें था। इसीने उसके सब कार्योंको प्रेरित किया और दफ़्तरसे घर पहुँचा दिया। अगर क्षणभरके लिए भी स्मरण शक्तिने काम न किया होता तो वह घबरा जाता, अपनेको झंझटमें पाता और विचार करने लगता कि वह क्या कर रहा है। जैसे प्रायः भुलक्कड़ मनुष्य कोई काम करते होते हैं तो एकाएक कह उठते हैं कि मैं क्या करने जा रहा था।

स्मृति क्या चीज़ है? अनुभव और ज्ञान कैसे एकत्र करके विधिपूर्वक नियत स्थानपर मस्तिष्कमें अलग अलग रख दिये जाते हैं? कोई नहीं जानता कि रहस्य क्या है पर शारीरिक संगठन और स्वास्थ्यसे इसका सम्बन्ध अवश्य है। मस्तिष्कपर आघात पहुँचनेसे प्रायः बहुत सी स्मृतियाँ नष्ट हो जाती हैं या कभी कभी सब स्मृतियाँ एक साथ नष्ट हो जाती हैं। स्मरण-शक्ति तथा स्मृतियोंका निवास-स्थान खोपड़ीके भीतर मस्तिष्कके सफ़ेद गूदेको आच्छादित करने वाले भूरे गूदेके छिलकेमें है। इसमें करोड़ों सूक्ष्म नसें हैं।

एक ही प्रकारकी स्मृतियाँ एक ही जगह एकत्र रहती हैं। शब्द सम्बन्धी स्मृतियां कानके ऊपरके भागमें स्थित रहती हैं। यहाँपर बचपनमें सुनी हुई कहानियाँ, गीत इत्यादि बातें अंकित रहती हैं। उसके बाद मातृभाषाके शब्द, नाटकोंके चित्र, मित्रोंके चेहरे, तस्वीरें इत्यादि अन्य देखी हुई चीज़ें अंकित रहती हैं।

मस्तिष्कमें बहुतसे छोटे छोटे प्राणी अलग अलग कोठरी बनाये हुए, सब आपसमें मेल जोलसे वास करते हैं। कोई बीस करोड़ ऐसे प्राणी अलग अलग काम करते हुए मस्तिष्कमें रहते हैं। जो काम एक प्राणीका है वह दूसरा नहीं कर सकता। प्रत्येक प्राणी एक स्मृति है। वह स्मृतियां जो विचारोंको क्रमबद्ध करती हैं, न्यायानुकूल निश्चय निर्मित करती हैं, नये आविष्कारोंका आयोजन करती हैं वह मस्तिष्कके ऊपरी भागमें रहती हैं। यही मानसिक साम्राज्यमें शासन करती हैं। नींदमें भी यह स्मृतियाँ जागृत और कर्मशील रहती हैं, देखनेमें तो मनकी उच्च शक्तियाँ सुषुप्त मालूम पड़ती हैं। नींदमें सम्भवतः सदा ही स्वप्न आते रहते हैं। अगर नींद गाढी हुई तो जगनेपर स्वप्न याद नहीं रहते। एक विचित्र बात यह है कि स्वप्नावस्थामें हम ऐसे ऐसे जघन्य पाप बिना किसी हिचकिचाहटके कर डालते हैं जो जागृत अवस्थामें सदाचार विरुद्ध होनेके कारण हमारे नैतिक आचार कभी हमें न करने देते। जागता हुआ मनुष्य स्वप्नमें किए हुए सदाचारहीन कामोंको कभी दोहरानेके लिए तैयार नहीं होता।

स्मृतियाँ स्वप्नकी जननी हैं। हम सोते रहते हैं, वह स्वप्न उत्पन्न करती रहती हैं। यह बिलकुल संभव है कि कभी कभी स्मृतियाँ हमारी नींदमें इस प्रकार कार्य करें कि हमारी जागृत अवस्थामें हमें बड़े कामकी और लाभदायक राय दे सकें। ऐसे पुराने क़िस्से सुननेमें आते हैं जहाँ नींदमें बड़े सुअवसरपर चेतावनी दी गई हैं जिनसे लोगोंने लाभ उठाया है। बहुत सी इन कहानियोंका आधार सत्यपर है। स्वप्नके फल विचारनेकी

प्रथा नितान्त निराधार नहीं है। इस विषयपर वैज्ञानिक अनुसन्धानकी आवश्यकता है। कई ऐसे उदाहरण भी पाये जाते हैं जिनमें सुषुप्त मनने ऐसा विवेक और अनुभवपूर्ण निश्चय किया जिससे बड़ा लाभ हुआ। इतने विवेक और अनुभवकी आशा जागृत मनसे न थी। इस समस्यापर काफ़ी प्रकाश डालना अभी हमारे लिए संभव नहीं।

रेडियो द्वारा बिना तारके तारका काम (रेडियो संवाद प्रेषण) सिखलानेके सम्बन्धमें जो प्रयोग हो रहे हैं वह तो ऊपर लिखे जा चुके हैं। दूसरी ओर सोते हुए विद्यार्थियोंपर पाठशालाकी पुस्तकें रेडियो द्वारा याद करानेके प्रयोग किये जा रहे हैं। इन प्रयोगोंमें सोनेवालेका सुषुप्त मन ग्रामोफ़ोनकी रिकार्ड मान लिया जाता है जिसपर रेडियो द्वारा प्रेषित शब्द अंकित करनेका प्रयत्न किया जाता है। जगनेपर विद्यार्थीको अंकित किया हुआ विषय याद निकलता है। बिना परिश्रम किये, स्मरण शक्तिको काममें लाये बिना, स्मृति-पटलपर विषयका ज्ञान अंकित हो जाता है।

अगर इस प्रकारसे ज्ञान, विचार और भाव सुषुप्त मनके ऊपर उँड़ेल कर स्मृति-पटलपर अंकित कर देना संभव हो गया तो इस प्रकार हर विषयकी शिक्षा देना कैसा सरल और सुगम हो जायगा। व्याख्यानों द्वारा जो विषय पढ़ाये जाते हैं वह सब रेडियोकी सहायतासे निद्रावस्थामें विद्यार्थीके स्मृतिपटलपर अंकित कर देना, पढ़ाने वाले और पढ़ने वाले दोनोंके लिए कितना सुविधा-जनक है। इतिहास पढ़ाना है, विदेशी भाषाएँ सिखलानी हैं तो बच्चोंसे रटाई कराके उनका मन इन विषयोंसे उचटा देना अच्छा नहीं है। बस उधर बच्चे सोये इधर गुरुने यंत्र उनके कानपर चढ़ा दिया और मुठिया घुमा दी। ६०-७० बच्चे गुरुकी रटन्तको नींदमें ही अपने स्मृति-पटलपर अंकित करते जा रहे हैं। वह तो आराम कर रहे हैं, रट रहे हैं गुरुजी। सवेरे उठे, पाठ, याद है। उल्लुओंकी तरह बेचारे गुरुजी सूर्योदय होते ही बिछौनेमें मुँह छिपाने भागे। बच्चोंके लिए शिक्षा कितनी उत्साहजनक होगी। नहीं हम भी क्यों न निद्रावस्थामें अपने अन्दर ज्ञान उँडलवा लें, एक रेडियोका यंत्र मोल ले लें, विकट सी विकट पुस्तकोंको रुपया देकर अपनी मेज़पर रखवा लें, एक उल्लू पाल लें, वह रातभर पुस्तकें पढ़ता रहे और सवेरे हम अपनेको, बिना परिश्रम ही, बड़ा ज्ञानी विषयका अगाध पंडित पावें। पाठक! क्या आपको यह यंत्र अच्छा नहीं लगा! परीक्षार्थियोंको अब घोटाईसे बचनेका कैसा अच्छा साधन मिल गया! दिन खेल कूद हँसी मज़ाकमें बिताया, रात्रिको सोने लगे तो कानपर यंत्र चढ़ा लिया, शिक्षक लोग रात भर व्याख्यान देते रहेंगे, विद्यार्थी बिना परिश्रम ही विद्यालाभ करते हुए परीक्षामें उत्तीर्ण हो जायँगे।

युरोप और अमेरिकामें साधारण कोटिके आदमियोंको गहन विषयोंकी शिक्षा देकर अधिक योग्य बनानेके लिए पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा देने वाली मंडलियां बहुत सी हैं। यह अपना पाठ डाकद्वारा भेजती रहती हैं। शिक्षार्थी पढ़ता है और प्रश्नोंके उत्तर लिख कर भेजता जाता है। इसी क्रमसे सम्पूर्ण विषय पढ़ा कर यह मंडलियां शिक्षार्थीको बड़े बड़े विश्वविद्यालयोंकी उपाधियां तक दिलवा देती हैं। अब रेडियोकी सहायतासे यह मंडलियाँ अपनी कार्यप्रणालीमें विप्लवकारी परिवर्त्तन कर लेंगी। रेडियोमें टेलीफ़ोन जोड़ कर हज़ारों मीलकी दूरीपर बैठे हुए दो व्यक्ति बड़ी सुगमतासे बातचीत कर सकते हैं तो यह मंडलियाँ क्यों न नियत समयपर अपने शिक्षार्थियोंको रेडियो-फ़ोन द्वारा व्याख्यान सुना देंगी। इस विधिमें भी शिक्षार्थीको अवश्य परिश्रम करना पड़ेगा। क्यों न शिक्षार्थी सोता रहे, शिक्षण-मंडलियाँ १००-५००-१००० मीलकी दूरीपर कानपर यंत्र चढ़ा कर सोते हुए शिक्षार्थियोंके कानोंमें विषयका ज्ञान उंडेल कर—बार बार उसे दोहरा कर एक साथ

ही सब शिक्षार्थियोंके मानसपटलपर वा स्मृति-पटलपर ज्ञान अंकित न कर दें। यह सब होनेमें बहुत देर न समझिये। बड़े वेगसे अमेरिका-में रेडियोका प्रचार हो रहा है। नित्य नये प्रयोग होते जा रहे हैं। दो चार सालके भीतर ही निद्रा-वस्थामें पढ़ाने वाली शिक्षा-संस्थाएं स्थापित हो जायंगी।

कितनी आश्चर्यजनक बात है! भारतवासी विज्ञानकी दौड़में अभी कितने पीछे पड़े हुए हैं! पाठक, विज्ञानका प्रचार अपने देश और धर्मकी उन्नतिके लिए परमावश्यक है। आप भी कुछ "विज्ञान" मासिक पत्रका प्रचार बढ़ानेमें विज्ञान-परिषद्का हाथ बटाइये।

अंगाराम्ल (Carbon dioxide or carbonic acid gas)

[ले०—कविराज श्री प्रतापसिंह]

यह गैस प्रश्वास क्रिया, सड़ाइन्द धात्वीकरण (Combustion) और मांस आदि पदार्थोंके सड़नेसे भी उत्पन्न होती है। कभी कभी चूनेके भट्टोंमें भी उत्पन्न हो जाती है। इस गैस (ज़हरीली हवा) का विष-प्रभाव आकस्मिक होता है। फ्रांस देशमें यह रिवाज है कि जलते हुए कोयलोंकी अंगीठी मकानके अन्दर रखकर सब खिड़कियाँ और दरवाज़े बन्द कर मनुष्य उसके अन्दर सो जाते हैं और इस विषके प्रभावसे वहां वह इस भांति आत्महत्या कर लेते हैं। इस गैसके विषसे बहुत सी आकस्मिक घटनाएं निम्नलिखित प्रकारसे हुआ करती हैं। यदि बहुतसे मनुष्य ऐसे छोटे मकानमें सो जायं जहां शुद्ध वायु आनेका ठीक प्रबन्ध न हो तो उनके श्वाससे जो अपवित्र वायु निकलेगी उसीको फिर श्वासमें लेनेसे वह सब मर जायँगे। क्योंकि उनपर विष-का सा प्रभाव पड़ेगा।

एक बार नैनीतालके अस्पतालमें चार रोगी मूर्च्छित दशामें प्रातःकाल लाये गए। वह छः फिट चौड़ी आठ फिट लम्बी और सात फिट ऊंची कोठरीमें पाये गये थे और उनके बीचमें एक कोयलोंकी अंगीठी जल रही थी। उनमेंसे तीन बच गये परन्तु एक मर गया। बचे हुओंकी दशा यह थी कि वह तन्द्रावस्थामें थे। किन्तु कुछ कुछ होश था। जब उनको खूब ज़ोरसे हिला हिला कर आवाज़ दी जाती थी तो वह कुछ कुछ बोलते थे; उनकी आंखें धुएंके रंग जैसी दिखाई पड़ती थीं. नेत्र तारक फूले हुए थे, नाड़ी हलकी और दुर्बल चलती थी। उन तीन मनुष्योंमेंसे दो तो अच्छे हो गये, परन्तु एकका बदन सूज गया और सर्वाङ्गपर फुन्सियाँ निकल आईं और तीन दिन कष्ट पानेके बाद वह मर गया।

इसी प्रकार नोशेरा नामक स्थानपर भी पांच मनुष्य अस्पतालमें लाये गये। उनमेंसे चार बच गये और एक मर गया। धात्वीकरणका फ्रांसका उदाहरण ऊपर लिखा जा चुका है। बड़े बड़े शहरोंमें जो बड़ी बड़ी नालियां होती हैं; उनमें भी यह गैस उत्पन्न हो जाती है और जब उनको साफ़ करनेके लिये लोग उनमें उतरते हैं तो प्रायः इस विषसे विषान्वित होकर मर जाया करते हैं। जिन खत्तियोंमें धान भरे जाते हैं यदि उनमें धान भरकर बहुत दिनतक बन्द रक्खा जाय तो उनमें भी यह गैस उत्पन्न हो जाती है। जब धान निकालनेके लिये मनुष्य उनमें प्रवेश करते हैं तो इसके विषसे विषान्वित हो जाते हैं। इसी प्रकारकी आकस्मिक घटना कलकत्तेके एक जहाज़में हुई थी जिसमें तेरह मनुष्योंपर विषके लक्षण प्रगट हुए थे। यह घटना इस प्रकार हुई कि ऊपरके स्टोर रूममें (भोजन सामिग्रीका कमरा) कुछ दुर्गन्ध सी उत्पन्न होने लगी, उसको खोजनेके लिए कुछ लोग वहांपर गये। उनको अधिकाधिक भयंकर दुर्गन्ध प्रतीत होने लगी। जब वह उसके अति निकट पहुंचे तो उस गन्धसे बेहोश होकर गिर

पड़े। उनको देखनेके लिये जो मनुष्य वहां गये वह भी इसी प्रकार बेहोश होकर गिर गये और जो लेम्प प्रकाशके लिये ले गये थे वह भी बुझ गया। अन्तमें नीचेका दरवाज़ा खोलकर उन सबको निकाल कर डेकपर लाया गया; उनमेंसे आठ तो यत्न करनेपर होशमें आगये परन्तु ५ मर गये। शेष मनुष्योंको भी इस विषके लक्षण उत्पन्न हुए। इसी प्रकार सहारनपुर नगरमें भी अन्न निकालनेके लिये तीन मनुष्योंने खत्तीमें प्रवेश किया और वह तीनों ही वहांपर मर गये। उस खत्तीका नियम यह था कि जब खोली जाती थी तो कुछ देर खुली रहनेसे जब उसकी अशुद्ध वायु निकल जाती थी; तब उसमें मनुष्य प्रवेश करते थे। परन्तु उस दिन यह कारण हुआ कि वर्षा होनेके भयसे मनुष्य तुरन्त ही खत्तीमें घुस गये और वहां अशुद्ध वायुके दोषसे मर गये।

लक्षण—शुद्ध कर्बन द्विओषिद् गलेपर प्रभाव करती है और उस प्रभावसे श्वास रुक कर मनुष्य मर जाता है। जब यह गैस किसीके साथ मिली हुई होती है तब मदकारक प्रभाव करती है जिससे मनुष्यको नशा सा आ जाता है और मूर्छा होकर मृत्यु हो जाती है। यदि इसमें और भी शुद्ध वायु मिली हुई हो तो यह अपना प्रभाव धीरे २ करती है। यदि इसमें श्वास-वायु अधिक मिश्रित होती है तो प्रथम शिरःशूल, भ्रम (चक्कर आना) कर्णनाद (कानोंमें गुनगुनाहट होना) होकर धीरे धीरे शरीरके मांसोंकी शक्ति न्यून होती जाती है। साधारणतया चेहरेपर मुरदापन आजाता है, हृदयका स्पन्द अधिक होने लगता है, श्वासक्रिया शीघ्र शीघ्र होने लगती है धीरे धीरे नशा सा अधिक होने लगता है वही बढ़कर मूर्छाके रूपमें परिणत हो जाता है और श्वास रुक रुक कर आने लगता है। कभी २ वमन और हाथ पैरोंमें ऐंठन भी होती है।

शुद्ध श्वास-वायुमें यह कितनी मिली रहनी चाहिये, इस विषयपर कुछ विद्वानोंका मत है कि यदि यह वायु दस फ़ी सदी मिली रहे तो विष प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। कुछका मत है कि इससे भी अधिक मिली हुई होनी चाहिये।

किन्तु अधिक मत यह निर्णय करता है कि श्वास-प्रश्वास क्रियासे उत्पन्न हुई इस गैसकी मात्रा पांच फ़ी सदी ही विष प्रभाव करनेके लिए पर्य्याप्त है। बहुतसे मनुष्योंको इससे न्यून अर्थात् दो फ़ी सदीतक ही विष प्रभाव उत्पन्न कर देती है। किसी वस्तुके जलानेसे जब ओषजन (oxygen) क्षय होकर मानोकसाइड monoxide उत्पन्न होता है; तब वह कर्बन द्विओषिद्की अपेक्षा अधिक भयङ्कर होता है। यह बात याद रखनी चाहिये कि इस गैसकी वायुमें विषात्मक मात्रा उपस्थित रहते हुए भी लेम्पकी बत्ती जलती रहती है। शुद्ध वायुमें निम्न लिखित वायुका सम्मेलन होना चाहिये। प्रति हज़ार भागमें इतने भाग होने चाहिये।

ओकिसजन (ओषजन)	२०९.६
नाइट्रोजन (नत्रजन)	७९०.०
कर्बन द्विओषिद्	०.४
	१०००

अमोनिया, एन्द्रिक पदार्थ organic matter ओज़ोन, खानेके नमक, और अन्य खनिज पदार्थ जलीय वाष्प आदि नाम मात्रको मिले होते हैं।

इस हिसाबसे विदित होता है कि प्राकृतिक वायुमें नाम मात्रको ही अशुद्ध वायु मिली रहती है। यह जितनी अधिक बढ़ती जायगी उतना ही अधिक विष प्रभाव करती जायगी।

इस विषसे मरनेपर शव परीक्षा करनेसे विदित होता है कि मनुष्यके चेहरा झाँईदार हो जाता है। जीभ फटी हुई होती है और दांतोंमें दब जाती है। नाक और मुखसे कभी कभी झाग निकले हुए दृष्टि पड़ते हैं। मस्तिष्क और उसकी कलाएं अधिक रक्तमय होती हैं, उदर और गुदाके अवयवोंकी भी यही दशा होती है। जो मनुष्य फाँसी

लगा कर मरते हैं उन जैसे सब लक्षण इस विषके रोगीमें दृष्टि पड़ते हैं।

चिकित्सा—इसके विष रोगीको तुरन्त ही शुद्ध वायुमें ले जाना चाहिये, उसको होशमें लानेके लिए हाथ पैरोंमें शीतल जलके छींटे देना तथा बिजुलीका प्रयोग करना चाहिये। कृत्रिम श्वास प्रश्वास क्रिया करें, यदि मस्तिष्कमें रक्त अधिक एकत्रित हो गया हो तो अल्प मात्रामें रक्तस्राव करा देना भी उत्तम है।

यदि कोई मनुष्य किसी गड्ढे या नालीमें उतरे और वहाँ दूषित वायु अधिक हो तो वह तुरन्त ही बेहोश हो जायगा। उसके निकालनेके लिए दूसरे मनुष्योंको उसी गड्ढेमें उतारना व्यर्थ ही दूसरे मनुष्योंकी प्राण हानि करना है अतः ऐसा नहीं करना चाहिये।

ऐसे अवसरपर उस गड्ढेके अन्दर ओषजन डाल कर इस वायुकी मात्रा कम कर दी जाय या चूना डाल कर वायु शोषित कर दी जाय तो उस विषैली वायुका प्रभाव कम हो जायगा।

भिलावा (Marking nuts)

[लेखक—कविराज श्री प्रतापसिंहजी]

भारतवर्षमें भिलावेको ज़हरके रूपमें कदाचित ही कोई व्यवहारमें लाता है। किन्तु कुटा हुआ चूर्ण स्थानीय ज्वालोत्पादक कार्यके लिये या गर्भपातके लिये प्रयोग किया जाता है। जैसे यूरोपमें मनुष्योंको कष्ट पहुँचानेके लिये नोले थाथेका घोल उनके शरीरपर डालते हैं वैसे ही हमारे देशमें भी दुष्ट लोग भिलावेके रसको अन्य शोथोत्पादक वस्तुओंके साथ मिलाकर शरीरपर छिड़क देते हैं। इस प्रकारके प्रयोगसे लोग मर भी गये हैं, इसके उदाहरण भी ग्रन्थोंमें मौजूद हैं। इस समय भी बम्बई हाईकोर्टमें एक षड्यंत्र चला था, जिसमें एक मनुष्यने अपनी स्त्रीको मारनेके लिये उसके मुखमण्डलपर भिलावेका रस लगा-दिया था, जिससे मुखके ऊपर छाले हो गये और दाईं आँख दुखने आ गई, जो बहुत दिनोंतक कष्ट देती रही। बहुत से मनुष्य आंख दुखाने और फुंसियां उत्पन्न करनेके लिये भी इसका प्रयोग करते हैं। डाक्टर डबल्यू ग्रे (Dr. W Gray) ने एक भिलावेके विष रोगी स्त्रीका वर्णन इस प्रकार लिखा है कि एक पुरुषने अपनी पत्नीको हानि पहुँचानेके लिये उसके अपत्यपथ (योनिमार्ग) में तीन भिलावे रख दिये थे। कुछ लोग भिलावेका रस अन्य दूसरी वस्तुओंके साथ मिलाकर किसी स्थानपर लगाकर झूठ मूठ चोटका निशान बना लेते हैं और इस प्रकार मुकद्दमे बाज़ी करते हैं। बाज़ारोंमें सूखे भिलावे मिलते हैं यह रंगमें काले, दिलकी शकलके, और इनके सिरेपर एक टोपी सी लगी रहती है। इनकी लम्बाई आध इंचसे पौन इञ्चतक और वज़न ३ माशेसे ६ माशेतक होता है। इनके ऊपरके आवरणमें ज्वालोत्पादक विष रहता है। इनके भीतर चपटी बड़ी सी एक गिरी होती है। जैसा रस इसके फलीमें निकलता है इस वृक्षकी मोटी छालमें से भी निकलता है। यह मद्यरस (Alcohol) और तेलोंमें डालनेपर घुल जाता है। रसायनिक विश्लेषण करनेसे इसके रसमें दो वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। एक Anacardic acid और दूसरी Cardol, यह दोनों वस्तुएं ही गरम करनेसे खराब होती हैं, किन्तु इनकी भापसे भी दाह और शोथ उत्पन्न हो जाता है। इस रसमेंसे एनाकार्डिक एसिड अनघुल सीसक क्षार (Lead salts) के रूपमें निकाला जा सकता है। भिलावेके रसके मद्यसारीय घोलको सीसक भस्म के (Lead oxide) साथ पकानेसे यह निकल जाता है। उसके बाद केवल पानी मिला देनेसे, कारडोन नामक वस्तु अलग हो जाती है। यह पीला तेलकी शकलका द्रव पानीमें अनघुल होता है किन्तु मद्यसार और ईथरमें घुल जाता है। इसको चमड़ीपर लगानेसे भयंकर छाले उत्पन्न हो जाते हैं। डाक्टर बेसीनर (Basiner) के मता-

नुसार यदि इसको बड़ी मात्रामें गरम मिज़ाज वाले पशुओंमें चर्मके अन्दर इन्जेकशन किया जाय तो कम्प और लकवा उत्पन्न करता है।

भिलावेके रसकी परीक्षा-विधि यह है:—

१—यह मद्यसार और तैलोंमें घुलनशील है।

२—चर्मपर लगानेसे छाले उत्पन्न करता है।

३—भिलावेका मद्यसारीय घोल, एक चीनीकी कटोरीमें लेकर, उसमें एक बूंद पुटासिक हाइड्रेटके (Potacic hydrate) मिलानेसे चमकदार हरा रंग एक दम उत्पन्न हो जाता है। कटोरीमें कुछ देर हिलानेसे उसका परिवर्त्तन होता है। अन्तमें सुर्खी मायल भूरा रंग हो जाता है।

यदि भिलावेका रस चर्मपर लगाया जाय तो पहिले उसे तेलमें मिलाकर सावधानीसे लगाना चाहिये। बम्बई हाईकोर्टमें एक मनुष्यपर, तेलमें मिले हुए भिलावेके तेलकी परीक्षाकी गई, उसको दो तीन दिनतक कोई कष्ट नहीं मालूम हुआ, परन्तु तीसरे दिन बहुतसे कष्टदायक छाले उत्पन्न हो गये।

जब भिलावे कूटे जाते हैं; तो उनमेंसे एक भूरे रंगका उग्र कटु तैल युक्त रस निकलता है और हवामें रखनेसे यह रस काला पड़ जाता है। यदि यह रस चर्मपर लगाया जाय तो बड़े बड़े काले रंगके छाले उत्पन्न होते हैं; जिनमें एक पतला द्रव भरा रहता है। यह द्रव शरीरके किसी अंगमें लग जाय तो वहां भी पामाके (खुजली) सदृश फुंसियां उत्पन्न कर देता है। शरीरके अन्दर यदि मुख द्वारा प्रविष्ट किया जाय तो चर्मकी अपेक्षा अल्प ज्वालोत्पादक प्रभाव उत्पन्न करता है। एक भिलावेके रसको एक सेर दूधमें मिलाकर औषधरूपमें पिलाते हैं। मुसलमान भी इसका प्रयोग करते हैं। ६ रत्तीसे १२ रत्तीतक रस या तेल मक्खनमें मिलाकर खिलाते हैं। इसकी विषात्मक मात्रा छः माशेके लगभग होती है।

वैज्ञानिकीय

विचारोंकी गति

किसी तेज़ीका बयान करना होता है तो कहते हैं कि वह इतना तेज़ है जैसे बिजुली। बिजुलीसे भी अधिक तेज़ चलनेवाली किसी चीज़का अनुमान करना भी कठिन है। अबतक लोगोंका विचार था कि विचारोंका धारा-प्रवाह इतनी तीव्र गतिसे होता है, जैसे बिजुलीका। परन्तु गति नापनेके आधुनिक यंत्रोंसे और नवीन विधियोंसे यह सिद्ध हो गया है कि विचारोंकी गतिका वेग बिलकुल साधारण है। बिजुलीकी तरह तीव्र नहीं है। मनुष्यकी कोहनीपर आघात पहुँचा मस्तिष्कतक गया और उसकी सूचना कलाईको दी गई। जो समय इसमें लगा वह नाप लिया गया। ज्ञात हुआ कि इस प्रवाहका वेग १८० फ़ीट प्रति सेकण्ड था। इसी तरहसे सिद्ध किया गया है कि मेंढकके विचारका वेग ९० फ़ीट प्रति सेकेण्ड है। ह्वेल मछली एक सौ पचास फ़ीट लम्बी होती है। जब उसकी पूँछमें भाले कोंच दिये जाते हैं तो इस आघातकी सूचना मस्तिष्कतक पहुँचनेमें दो सेकण्ड लग जाते हैं। शरीरके ताप-क्रम और विचारोंके वेगसे कुछ सम्बन्ध अवश्य है परन्तु कैसे और क्यों इसका स्पष्टीकरण अवश्य हुआ है। शरीर जब गरम होता है तो विचार वेगवान हो जाते हैं और जब ठण्डा होता है तो विचारोंकी गति मंद पड़ जाती है। ठण्डके कारण हाथ पाँव सुन्न हो जानेपर यदि उनमें कोई आघात पहुँचाया जाय तो उसका वेग बहुत ही कम होगा। १७°श पर एक मेंढकको रखा गया और उसके विचारोंका वेग नाप लिया गया। ३५°श पर रख कर उसके विचारोंका वेग १७° श के वेगसे दूना था। मनुष्य देहका ताप क्रम साधारणतः ९८°फ़ होता है। यदि मेंढककी देहको ९८° फ़ पर पहुचाया जाय तो मेंढकके विचारोंका वेग मनुष्यके विचारोंके वेगके बराबर हो जायगा।

जलमें रहनेवाली मछलियोंका तापक्रम स्वभावतः कम होता है। इसी लिये मूसल (Mussel) नामक मछली ढाई इञ्च प्रति सेकण्डकी गतिसे विचार करती है। कटल मछली (Cuttle fishes) जाड़ेमें तीन फ़ीट प्रति सेकण्डके हिसाबसे विचार करती हैं। जैसे ठण्डके कारण विचारोंका वेग घट जाता है वैसे ही मादक पदार्थोंके सेवनसे भी विचारोंका वेग मन्द पड़ जाता है। विचारोंके वेगके ऊपर अभी प्रयोग हो रहे हैं किन्तु इस विषयका अभी पूर्णरूपसे अनुसन्धान नहीं हो चुका है।

—नवनिद्धि राय

मनुष्यकी ऊंचाईपर अक्षांश अथवा शर (लेटीट्यूड) का प्रभाव

प्रायः यह माना जाता है कि सबसे लम्बे या ऊंचे मनुष्य समशीतोष्ण प्रदेश (temperate Zone) में पाये जाते हैं। कहते हैं कि अंग्रेज़ और स्कण्डिनेविया निवासी बहुत लम्बे होते हैं, किन्तु जांचसे इस सिद्धान्तके विरुद्ध अंक प्राप्त होते हैं। अंग्रेज़, स्कॉच और स्कण्डिनेवियनकी औसत ऊंचाई बराबर है। इनमेंसे प्रत्येक जातिका युवक प्रायः ५ फुट और ७.२ से ५ इंच लम्बा होता है। आइरिश इनसे ½ इंच छोटे होते हैं, जिनके बाद डेन्स और बेलजियन्सकी गणना है। उपर्युक्त जातियां सबसे लम्बी नहीं होतीं। जुलू, इरोक्यू, ओइस इण्डियन, पोलीनेशियन, पेटेगोनियन इनसे लंबे होते हैं। अन्तिम जातिके लोग प्रायः ५ फुट और १०.१ से ३ इंच ऊंचे होते हैं। जूलू अर्द्धोष्ण प्रदेशमें, इरोक्यू, ओइस समशीतोष्ण देशमें, पौलीनेशियन अत्यन्त उष्ण प्रदेशमें और पेटेगोनियन्स अत्यन्त ठण्डे और खराब प्रदेशमें रहते हैं। उधर लेपलण्डर्सको देखिये। यद्यपि वह वैसे ही प्रदेशमें रहते हैं जैसेमें कि पेटेगोनियन्स, तथापि वह बहुत छोटे क़दके होते हैं। ५ फुट ½ इंचसे शायद ही ऊंचे होते हैं।

इस विषयपर जितना ही विचार किया जाय उतनी ही जटिलता बढ़ती जाती है। परन्तु एक बात निश्चय है कि शर या देशान्तरका मनुष्यके डील डौलसे कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वच्छ पुष्टिकारक भोजन और निर्मल वायुका प्रभाव मौसिमके प्रभावसे अधिक बलवान है।

भारतवर्षमें भी दीनताकी वृद्धिके साथ साथ क़द घटता चला जा रहा है। हमारे देखते देखते आदमी नाटे होते चले जा रहे हैं, किन्तु हमको यही सिखाया जाता है कि गरम देशमें छोटे क़दके निर्बल आदमी पैदा होते हैं।

—गोपालस्वरूप भार्गव

नामका प्रभाव

रासायनिक पदार्थोंके एक वर्गका नाम अलकोहल या मद्यसार है। इस वर्गका पहला पदार्थ मिथिल अलकोहल और दूसरा इथिल अलकोहल है। साधारण बोल चालमें अलकोहल शब्द इस दूसरे पदार्थका ही बोधक समझा जाता है। इथिल अलकोहल पीनेका जो परिणाम होता है वह सभी जानते हैं। मिथिल अलकोहलको वुड अलकोहल भी कहते हैं। अमेरिकाके एक बड़े भारी नगरमें अलकोहलके प्रेमी मिथिल अलकोहलपर भी हाथ साफ़ करने लगे। नामके धोखेमें पड़कर इस ज़हरीले पदार्थका भी प्रयोग अशिक्षित समाजमें होने लगा। परिणाम यह हुआ कि एक वर्षमें ही ५४ मनुष्य इस दुरुपयोगसे मरे। इससे कुछ दिन पहले अलकोहलोंके नामकरणकी एक विधि वैज्ञानिकोंने बतलाई थी। इस विधिके अनुसार इनके नाम मिथेनोल, इथेनोल, प्रोपेनोल आदि माने जाने लगे। उपर्युक्त शहरमें भी यह आज्ञा दी गई कि विधिवत (systematic) नामोंका प्रयोग ही करना उचित है। इसका परिणाम यह हुआ कि एक सालमें ही मृत्यु संख्या ३४ रह गई। हमारे यहां भी ऐसे ऐसे अनेक विघ्न पैदा हो रहे हैं जो नामके भ्रममें पड़कर देशको हानि पहुँचा रहे हैं। अभी हालमें

एक सज्जन मेरे पास आये और कहने लगे कि "मोतीकी खाक" आप कहांसे मंगाते हैं। मैंने कहा कि मैंने तो इस पदार्थके दर्शन भी नहीं किये। अन्तमें पता चला कि उनका अभिप्राय "पर्ल ऐश" (Pearl ash) से है। "पर्ल ऐश" पोटाश कर्बनेतका साधारण नाम है, जो राखमें भी विद्यमान रहता है। हिन्दीमें औद्योगिक रसायनपर पुस्तक लिखनेवाले प्रायः भूल किया करतेहैं। उनसे सावधान रहिये।

ऐसे ही एक और साहब आये और कहने लगे कि सोडामें कास्टिक मिला देनेसे कास्टिक सोडा बन जाता है। मुझे यह सुनकर बड़ी हंसी आयी।

—गोपालस्वरूप भार्गव

जवाखार (Carbonate of potash or Soda carbonate Impure)

जवाखार और सज्जीखार मिलाकर जो खार बनता है बाज़ार वाले उसको पापड़का खार कहते हैं। कारबोनेट ओफ अमोनिया (Carbonate of Ammonia) काष्टिक अमोनिया (Caustic ammonia) काष्टिक सोडा (Caustic soda) काष्टिक-पुटाश (Caustic potash इन क्षारोंसे दुर्घटनावश कभी कभी विषात्मक प्रभाव हो जाया करता है। इनके विषके लक्षण दाहक अम्लों (Concentration) के समान होते हैं। केवल भेद यह है कि वमन किया हुआ द्रव्य क्षारीय होता है भूमिपर झाग उत्पन्न नहीं करता एवं विरेचक होता है। यह लक्षण दाहक अम्लोंके विषमें नहीं होते, यदि अमोनिया द्रवकी वाष्पसे या कारबोनेट ओफ अमोनियासे विष हुआ हो तो गलेके श्वास पथका शोथ बराबर रहता है। काष्टिक अमोनियाकी अपेक्षा काष्टिक पुटाश और सोडा अधिक दाहक है, कारबोनेट पुटाशकी अपेक्षा कारबोनेट ओफ सोडा अल्प दाहक है। इन विषोंमें जितना हो अधिक घनत्व (Concentration) होगा उतने ही विष लक्षण अधिक होंगे। मरनेके पश्चात् शव परीक्षाके लक्षण और मरण चिह्न दाहक अम्लोंके समान ही होते हैं। चिकित्सामें साधारणतया पानी मिले हुए अम्ल प्रयोगमें लाने चाहिये और विशेषकर सिरकेका प्रयोग करना अति उत्तम है। यदि अमोनियाके सूंघनेसे विष प्रभाव हुआ हो तो एसेटिक एसिड (सिरकेका तेजाब) की वाष्प सुंघाकर श्वास पथके कष्टको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

मारक मात्रा—एकबार बीस रत्ती काष्टिक पुटाशकी मात्रा खानेसे एक युवा मनुष्य सात सप्ताहके अन्दर अत्यन्त दुर्बल होकर मर गया। काष्टिकसोडा काष्टिकपुटाश और कारबोनेट ओफ़ पुटाश सवा तोलेकी मात्रामें मारक लक्षण उत्पन्न कर सकता है। कई बार युवा मनुष्य इसी मात्राके खानेसे दोसे चार मासके अन्दर मर चुके हैं। कारबोनेट ओफ सोडा इनकी अपेक्षा अल्प विषात्मक होता है। काष्टिक अमोनिया ६ माशेसे १½ तोलेके लगभग खानेसे मृत्यु हो सकती है।

—कविराज श्री प्रतापसिंह

रीठा (Soap Nuts)

यह औषधि भारतवर्षमें रेशमी कपड़े धोनेके लिये और औषध रूपमें व्यवहार करनेके लिये प्रयोग की जाती है। डाक्टर डीमकके मतानुसार रीठा कृमिनाशक तथा शक्तिप्रद औषधके रूपमें प्रयोग किया जाता है।

देशी औषधियोंमें इसके फलके छिलकोंका प्रयोग तीव्र विरेचक औषधिके लिये ८ रत्ती इसके साथ चार रत्ती सकमोनिया मिलाकर किया जाता है। रीठेके अन्दर एक विशेष शक्तिवाली औषधि होती है उसको सेपोनिन (Saponin) कहते हैं। वह रंगमें श्वेत तथा जलमें घुलनशील होती है। उसका घोल साबुनके घोलकी भांति झागदार होता है। सेपोनिन एक प्रकारका विष होता है

यदि आधी रत्तीसे डेढ़ रत्तीतक मनुष्यको खिलाया जाय तो साधारण विष-लक्षण उत्पन्न करता है। ३० रत्तीकी मात्रा खिलानेसे मारक प्रभाव करता है। सेपोनिनको चर्मपर लगानेसे दाह उत्पन्न होता है और उस स्थानको शून्य तथा निश्चेष्ट बना देता है। यदि इसको शरीरमें प्रवेश कराया जाय तो बात नाड़ियोंके केन्द्र और हृदय-को अवसन्न कर देता है। यदि इसके खिलानेसे किसीको विष प्रभाव हो जावे तो यह लक्षण दृष्टि पड़ेंगे। हाथ पैरोंके मांसोंमें कार्यकी अशक्तता, हृदयकी दुर्बलता, और अतिसार। सेपोनिन और भी बहुत सी वस्तुओंमें मिलता है। जैसे सनेगा (Cenega) २ सारसापरेला (Sarsaparella) ३ सोपबार्क (Soap bark) ४ कोमन कोरन कोकल (Comon, corn, coekle), अन्तिं वस्तुके खाद्य गेहूं आदिमें मिली रहनेके कारण कभी २ विष लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रीठेका वृक्ष भारत-वर्षमें सर्वत्र उत्पन्न होता है। विशेषकर देहरादूनके जिलोंमें अधिकतासे उत्पन्न होता है। इसके सूखे हुए फल बाजारोंमें बहुत बिकते हैं; रेशमी और ऊनी कपड़े धोनेमें लोग इन फलोंका उपयोग करते हैं। इसकी छाल खानेमें पहले मीठी मालूम होती है परन्तु फिर अत्यन्त कड़वी लगती है। सेपो-निन निकालनेकी विधि यह है कि रीठेके फलकी छालको लेकर उससे दश गुना शराब ले फिर उसको तेज़ गरम करके उसमें छिलकोंको भिगो दें। जब शराब ठण्डा हो जायगी तो सेपोनिन नीचे जम आयगा, फिर ऊपरसे शराबको निचोड़कर नीचे जमे हुए भागको सुखा ले, फिर सूखी हुई वस्तुमें थोड़ासा उबलता हुआ पानी मिलाकर उसमें जमी हुई वस्तुको घोलकर छान ले। बादमें उसी घोलमें तीव्र मद्यसार मिलानेसे सेपोनिन तलछटके रूपमें पेंदीमें जम जायगी। सेपोनिन शीतल मद्य-सार और ईथरमें नहीं घुलता। इसमें सलफ़्यू-रिक एसिड़ मिलानेसे लाल रंग उत्पन्न होता है। यह जलमें घुलनशील होता है और जलमें डाल-नेसे साबुन जैसा घोल बन जाता है। इसके विष प्रभावपर अभी अन्वेषण होना अवशिष्ट है; कालान्तरमें संभव है स्कूल ऑफ़ ट्रोपिकल मेडिसिन कलकत्ताके धुरन्धर पंडित करें।

—कविराज श्री प्रतापसिंह

प्रधान बाटरियाँ

[ले०—श्री शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

गेलवनीने एक मेंढककी खाल उतार कर तांबेके तार द्वारा एक लोहेकी छड़पर लटका दिया। जब कभी मेंढक लोहे-से छू जाता था उसकी टांग फड़क उठती थी। ऐसी ही फड़कन मुरदा मेंढकके शरीरमें उस समय पैदा होती थी जब कभी ऐसा मेंढक विद्युन्मय बिजलीकी कलोंसे छू जाया करता था। गेलवनीने दूसरे प्रयोगमें तांबेका तार नाड़ीसे जोड़कर और जस्ते-का तार गोश्तमें रखकर उनके दोनों सिरोंको मिला-

चित्र ३
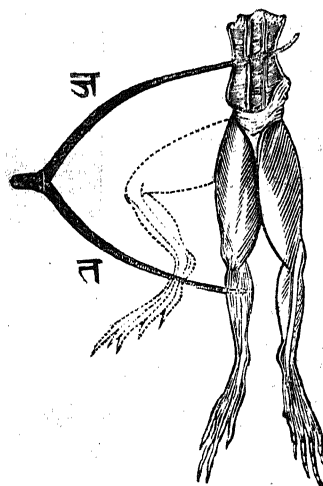
कर ऐसी ही फड़कन पैदाकी और इस प्रयोगसे यह नतीजा निकाला कि मेंढकके गोश्तमें एक प्रकारकी बिजली और नाड़ीमें दूसरे प्रकारकी बिजली रहती

है जो उनमें रखे हुए तारोंके मिला देनेसे मिल जाती हैं और फड़कन पैदा कर देती हैं।

वाल्टाने कहा कि बिजली मेंढकके मांस और नाड़ीमें नहीं है बलकि दो भिन्न धातुओंके मिलनेसे उत्पन्न होती है और मेंढककी टांगोंको फड़का देती है। इसकी पुष्टिमें उन्होंने अपना पाइल १७९९ ईसवीमें बनाया।

तांबेकी एक चकत्ती सबसे नीचे रखकर उसके ऊपर गंधकके तेज़ाबमें भीगा हुआ एक कपड़ेका टुकड़ा रक्खा उस पर जस्तेकी चकत्ती रक्खी इसपर तांबेको दूसरी चकत्ती बिठलाई, इसपर तेज़ाबका भीगा कपड़ा उसपर फिर जस्तेकी चकत्ती इत्यादि। इसी तरह ३०-४० उपरोक्त क्रमानुसार तांबे और जस्तेकी चकत्तियां बिठला दीं। वोल्टाका पाइल बन गया। सबसे नीचे वाली तांबे और सबसे ऊपर वाली जस्तेकी चकत्तीको एक साथ छूनेसे वही धक्का लगता था जो यन्त्र द्वारा एकत्र की हुई बिजली-से लगा करता था।

चित्र ४

पाइलके बाद वाल्टाने अपनी 'प्यालों-वाली' बाटरी बनायी। कांचके प्यालोंमें नमकका घोल लेकर उनमें तांबे और जस्तेकी पत्तियां रखीं। एक प्यालेकीजस्तेकी पत्ती दूसरे प्यालेकी तांबेकी पत्तीसे धातुकेतार द्वारा जोड़ दी। इन 'प्यालों' के जोड़से भी वही असर पैदा हुआ जो 'पाईल' से पैदा किया गया।
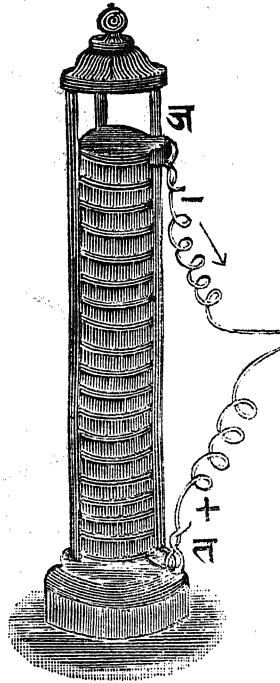
लोगोंने नमकके पानीको तेज़ाबके पानीसे बदल दिया। ऐसी बाटरी कि जिसकी तांबे और जस्तेकी पत्तियां तेज़ाबके पानीमें रखी हों साधारण बाटरी कहलाती है और इससे ही प्रयोग करनेपर यह पता चलता है कि बाटरीमें क्या क्या ऐब पैदा हो सकते हैं या होते हैं और उनको किस प्रकार दूर किया जाता है। एक कांच या चीनीके बरतनमें गंधकका तेज़ाब मिला हुआ पानी (१० भाग पानी और १ भाग तेज़ाब) ले लीजिए और इसमें एक तांबे और एक *ख़ालिस जस्तेकी तख्ती रख दीजिए। इन तख्तियोंका कुछ हिस्सा पानीके बाहर रहना चाहिए और उसमें पेच लगे होने चाहिएं ताकि उनके नीचे तार दबाये जासकें। इन पेचोंको जिनके नीचे तार दबाकर धारा बाहरी चक्करमें ले जाते हैं बाटरीके 'सिरे' कहते हैं। इन सिरोंको तारसे जोड़ते ही एक गैसके बुलबुले तांबेके आसपाससे निकलने लगते हैं। जबतक दोनो तख्तियां तारसे जोड़ी नहीं जातीं अथवा किसी और प्रकार मेल नहीं खातीं गैसके बुलबुले नहीं निकलते। चित्र नं० ३ में त तांबेकी और ज जस्तेकी तख्ती है।
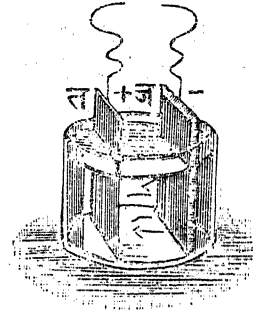
चित्र ५

इस बाटरीसे काम लेनेसे यह देखनेमें आया है कि थोड़ी ही देरमें यह बाटरी काम देना बन्द

*पाठक यदि साधारण जस्तेका प्रयोग करेंगे तो यह मालूम होगा कि वह गंधकके तेज़ाबमें डालते ही गलने लगता है और उसके आस पाससे हउजन गैसके बुलबुले निकलने लगते हैं। परन्तु यदि थोड़ा सा पारा और गंधकका तेज़ाब इस जस्तेपर रगड़ दिया जाय, तो पारा जस्तेपर चढ़ जायगा और इस पारे चढ़े हुए जस्तेके गुण शुद्ध जस्तेके जैसे होंगे अर्थात् यदि इसे तेज़ाबमें डालें तो न गलेगा।

कर देती है। कारण इसका यह प्रतीत होता है कि गैसके बुलबुले तांबेकी तख़्तीपर जम जाते हैं अथवा यों कहिये कि तांबेकी तख़्तीपर गैसका ख़ोल चढ़ जाता है और यह तख़्ती बे काम हो जाती है। समय समयपर तांबेकी तख़्तीको निकालकर यदि रगड़ दिया जावे जिससे गैसका यह ख़ोल हट जावे तो फिर यह तख़्ती काम देती है पर बार बार ऐसा कहांतक किया जा सकता है, इसलिए ऐसी तरकीब लोगोंने सोची जिससे यह गैस तख़्तीपर जमने ही न पावे। एक तरकीब यह है कि तांबेकी तख़्तीके बदले "प्लेटिनम ब्लेक" चढ़ी हुई प्लेटिनमकी तख़्ती रख दें। 'प्लेटिनम ब्लेक' से तख़्तीकी सतह खुदुरी हो जाती है और उसपर गैस जमा नहीं होने पाती है। इस बाटरीको स्मीकी बाटरी कहते हैं।

साधारण बाटरीके सिरोंसे जुड़े हुए तारके पास दिशा सूचकका चुम्बक लानेसे पता चलेगा कि तारमें धारा तांबेकी पत्तीसे जस्तेकी पत्तीकी ओर जाती है। इसलिए ताँबेकी पत्तीवाले सिरेको धनात्मक (धन या गरम) और जस्तेकी पत्तीवाले सिरेको ऋणात्मक (ऋण या नरम) सिरा कहते हैं।

यदि पानीके वाल्टामापकमें धारा बहायी जावे तो उज्जन वाल्टामापकके उस सिरेपर जमा होती है जो बाटरीके ऋणात्मक सिरेसे जुड़ा हुआ है या यों कहिए कि उज्जन जब कभी भी चक्करमें पैदा हो जाती है तो धाराकी दिशामें जाती है।

साधारण बाटरीके तांबेकी तख़्तीपर जो गैस जमा होती है यदि उसको परखें तो मालूम होगा कि वह उज्जन है इसीलिए बाटरीके भीतर धारा जस्तेसे ताँबेको बहती हुई मानी जाती है। बाहरी तारमें धारा ताँबेसे जस्तेको जाती है इसलिए धारा एक बंद चक्कर में बहती हुई मानी जाती है। जो कोई यंत्र बाटरीके सिरोंसे जोड़ा जाता है बाहरी चक्कर (या चक्करका बाहिरी हिस्सा) कहलाता है और बाटरीकी तख़्तियोंके बीचके हिस्सेको भीतरी चक्कर (या चक्करका भीतरी हिस्सा) कहते हैं। यह तो देखनेमें आया है कि उज्जन थोड़ी थोड़ी मात्रामें बराबर ताँबेकी पत्तीपर आती रहती है और उज्जन उसी समय आती है जब बाटरीके सिरे किसी वाहकसे जोड़ दिये जाते हैं। उसी समय उस वाहकमें चुम्बकके हटानेका अद्भुत गुण उत्पन्न हो जाता है। जब कभी कहीं हमको द्रव या गैस थोड़ी थोड़ी मात्रामें निकलती हुई मिलती है तो हम यह कहते हैं कि द्रव या गैसकी धारा बह रही है। इसी प्रकार जब उज्जन बाटरीमें थोड़ी थोड़ी निकलती हुई मिलती है तो यों कह सकते हैं कि उज्जनकी धारा बह रही है परन्तु इस उज्जनकी धाराका कारण वह चीज़ है जो तारमें भी अद्भुत गुण पैदा कर देती है। इस चीज़को विजलीकी धारा या विद्युद्-धारा कहते हैं।

यह हम लोग रोज़मर्रा पानीकी धाराके सम्बंधमें देखते हैं कि धारा उस ओर ही बहती है जिधर ढाल होती है। धाराकी दिशा देखकर ढालका पता चल जाता है और हमको मालूम हो जाता है कि उचान किस ओर है और निचान किस ओर। इसी प्रकार जब बिजलीकी धारा बाटरीके धनात्मक सिरेसे ऋणात्मक सिरेकी ओर जाती हुई मानी जाती है तो धनात्मक सिरा ऋणात्मक सिरेकी अपेक्षा उच्च अवस्थाका समझा जाता है और विद्युतकी ढाल भी उसी दिशामें समझी जाती है।

देखनेमें आवेगा कि जस्ता ही तेज़ाबमें गलता है (और स्मी बाटरीके) प्लेटिनमपर तेज़ाबका कुछ भी असर नहीं होता है। इससे यह स्पष्ट है कि धारा बहानेके लिए जो कुछ भी क्रिया हो वह बाटरीमें उसके ऋणात्मक सिरे वाली तख़्तीपर ही हो रही है। धनात्मक सिरेवाली तख़्ती तो उच्च अवस्था की है उसपर यदि बिजली पहुंच जावेगी तो रास्ता मिलनेपर नीचे अवस्थाके सिरेकी ओर धारा रूपमें चलने लगेगी। परन्तु नीचे अवस्था वाली तख़्तीसे ऊंची अवस्था वाली तख़्तीपर कैसे पहुँचे। जो क्रिया नीची अवस्थावाली तख़्तीपरसे विजलीको ऊंची अवस्थावाली तख़्तीपर ले जाती है उसका ठीक ठीक पता नहीं चला है परन्तु उस शक्तिको जो ऐसा करती है विद्युत संचालक शक्ति कहते हैं। इसे 'शक्ति' केवल इसीलिए

कहते हैं कि यह बिजलीको एक नियत दिशामें ही चलाती हैं। उसकी माप है बाटरीके सिरोंका उस मयका अवस्था भेद जब कि बाटरीसे धारा न बहायी जाती हो यदि बाटरी धारा बहाती हो तो विद्युत संचालक शक्तिका अनुमान ओह्मके नियमकी सहायतासे किया जाता है। मान लीजिये कि भीतरी चक्करकी बाधा $ब_1$ ओह्म और बाहरी चक्करकी बाधा $ब_2$ ओह्म है और ध धारा बाटरीसे चक्करमें बह रही है तो

भीतरी अवस्था भेद= $ब_1ध$

और बाहरी अवस्था भेद=$ब_2ध$

इन दो अवस्था भेदोंके जोड़को विद्युत् संचालक शक्ति कहेंगे और इस समीकरणसे सूचित करेंगे।

बि० सं०श =ध ($ब_1 + ब_2$) वोल्ट

इस समीकरणसे यह आसानीसे समझमें आ-जावेगा कि समान वि० सं० श वाली बाटरियोंमेंसे नियत बाधा वाले चक्करमें प्रबल धारा उसी बाटरीसे मिलेगी जिसकी भीतरी बाधा कम होगी, और समान भीतरी बाधावाली बाटरियोंमेंसे नियत बाधावाले चक्करमें प्रबल धारा उसी बाटरीसे मिलेगी जिसकी वि० सं० श अधिक होगी, इसलिए ऐसी बाटरीकी मांग रहती है जिसकी वि० सं० श बड़ी से बड़ी हो और भीतरी बाधा कमसे कम हो।

ऊपर जिनका बर्णन किया गया है उनको और उन सब बाटरियोंको जिनमें मसाले डालकर सिरोंको तार (वाहक) से जोड़नेपर धारा बहने लगे प्रधान बाटरियां कहते हैं। इनमें यही देखनेमें आवेगा कि धनात्मक सिरेवाली तख्तीपर उज्जन ही जमा हो जाती है और इसी कारण उनसे एकसी धारा बहुत देरतक नहीं ली जा सकतीहै। जब कभी बाटरीकी तख्तियोंपर ऐसी कोई चीज़ जमा हो जाती है जिससे धाराकी प्रबलतामें कमी आजाती है तो उस चीज़को 'बाधक' कहते हैं। 'प्रधान बाटरियों' में मुख्य बाधक उज्जन ही समझना चाहिए। स्मी बाटरीकी तख्ती ऐसी बनायी गयी कि उसपर उसका जमना कठिन हो गया और अन्य बाटरियोंमें ऐसा प्रबंध किया जाता है कि धनात्मक सिरेवाली तख्तीपर जब यह पहुँचती है तो इसको उज्जन मिल जाती है जिससे कुछ न कुछ लेकर उससे यह मिल जाती है। और हानिकारक नहीं रहती है।

लेकलांशि—बाटरीका चित्र यहां दिया जाता है (चित्र नं० ६)। इसमें ब कांचका बरतन है जिसमें
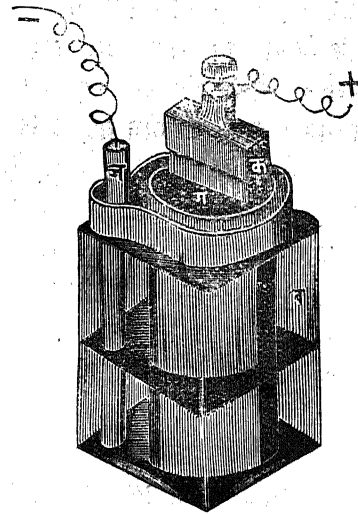
चित्र ६

नौसादरका घोल डाला जाता है। घोल बनाते समय पानीमें इतना नौसादर डाला जाता है जितना अधिक-से अधिक घुल सके। घोलमें ज जस्तेकी छड़ बरतनके एक कोनेमें रक्खी है। ग मिट्टीका गिलास (जैसा ऊपर एक स्थानपर बतलाया गया है) जिसमें क कर्बनकी छड़ और मैंगनीज डाइआक्साइड और कर्बनका मिश्रित पूर्ण (Manganese dioxide—काला मंगल मग्न) भरकर उस गिलासका मुंह बिलकुल बन्दकर दिया जाता है। केवल एक छेद हवा आने जानेके लिए छोड़ दिय जाता है। पहलेकी नाईं एक तार कर्बनकी छड़से और एक जस्तेकी छड़से जोड़ दिया जाता है। कर्बनवाला पेच धनात्मक और जस्तेवाला ऋणात्मक है। मैंगनीजके साथ कर्बन (ग्रेफाइट) का बुरादा मिलानेकी इसलिए जरूरत है कि मैंगनीज़ अवरोधक है इसमेंसे धारा नहीं बह सकती है।

इस बाटरीसे भी प्रबल धारा नहीं मिल सकती है क्योंकि इसकी भीतरी बाधा भी बहुत है, दूसरे उज्जन कर्बनके कणोंपर जम जाता है और मैंगनीजसे ओषजन उसे आसानीसे नहीं मिलता। प्रायः यह बाटरी वहीं काममें आती है जहां दुर्बल धारा थोड़ी थोड़ी देरके लिये आवश्यक होती है जैसे घरमें घंटी बजानेके लिए या प्रयोगशालाओंमें बाधा सम्बन्धी प्रयोगोंमें। इसी बाटरीके कई रूप बाजारमें मिलते हैं और सूखी बाटरीके नामसे बहुत बिकते हैं।

यहाँ एक प्रकारकी सूखी बाटरीका वर्णन किये देते हैं। जस्तेका एक चोंगा (बिना पेंदेका गिलास) बना लिया जाता है। इसको लकड़ीके बकसमें रखकर चोंगले और बकसके बीचमें लकड़ीका बुरादा भर देते हैं। पेरिस प्लास्टर, नौसादर और आटा मिलाकर पानीमें लेई सी बना लेते हैं और जस्तेके चोंगलेमें भर देते हैं। मैंगनीज (Manganese dioxide) काला-मांगल ग्रेफाइट और नौसादरकी लेईको कर्बनकी छड़के चारों ओर रखकर ऊपरसे कपड़ा लपेट देते हैं और डोरेसे बांध देते हैं। इस लपेटी हुई कर्बनकी छड़को जस्तेके चोंगलेके भीतर लेईमें डाल देते हैं। एक तार कर्बनसे और दूसरा जस्तेसे जोड़ा जाता है। चित्रमें ब लकड़ीका बकस है ज जस्ताका चोंगला है, ल लेई है, क कपड़े में लेईसे लिपटी हुई कर्बनकी छड़ है। चोंगलेका मुंह प पेरिस प्लास्टरकी तहसे बन्द कर दिया जाता है। बकसके ऊपर ढ ढकना लगा दिया है जिसमेंसे कार्बनकी छड़के ऊपरका पेंच और चोंगलेसे लगी हुई जस्तेकी छड़ बाहर निकली रहती हैं। इनमें तार जोड़े जाते हैं। बाटरीके भीतर हवा आने जानेके लिये न नली लगी रहती है। इस बाटरीमें पानी नहीं रहता इसलिये जेबमें रखकर इधर उधर फिरा सकते हैं।

चित्र ७

लेलंडी बाटरी-काँच या चीनीके बरतनमें कास्टिक पोटाशका गहरा घोल (तोलके हिसाबसे १ भाग कास्टिक पोटाश और ३ भाग पानी) रखकर उसमें एक क्यूपरिक आक्साइड (Cupric Oxide) ताम्रिक-अम्लजिद) की और एक जस्तेकी तख्ती डाल दी जाती है। दोनों तख्तियोंसे तार जोड़नेपर बाटरी काम देने लगती है। बाजारमें कास्टिकके नामसे कास्टिक सोड़ा भी (Caustic soda—दाहक सोड़ा) बिकता है, यह न लेना चाहिये। क्यूप्रिक आकसाइड की तख्ती यदि न मिल सके तो एक मिट्टीके गिलासमें (जैसा ऊपर एक स्थानपर लिखा गया है) क्यूपरिक ओक्साइड भर कर कास्टिक पोटाशमें रख देना चाहिए। एक तार इस गिलासके भीतर आक्साइडमें और दूसरा जस्तेमें जोड़ा जाता है।

[असमाप्त]

वृक्षोंका वृत्तान्त

[ले० श्री० जी० एल० सिंह]

प्रकृति किस प्रकार कोंपलोंकी रक्षा करती हैं।

पशु अपने बच्चोंको धूप, मेंह और हवासे बचानेके लिये अनेक उपाय करते हैं। पक्षी अंडा देनेके समय घोंसला बनाता है जिसमें बच्चे बेखटके रहते हैं। चूहे, छछून्दर, बिल्ली, कुत्ते इत्यादि अपने बच्चोंको या तो बिलोंमें रखते हैं या खोह खाईं अथवा झाड़ियोंमें, ऐसे स्थानोंमें बेचारे निर्बल बच्चोंको किसी प्रकारका भय नहीं रहता। गाय, बैल, गदहा इत्यादिके बच्चोंके शरीरपर बड़े बड़े बाल होते हैं जिनके कारण सर्दी गर्मी अथवा पानीका कुछ असर नहीं होता। अब प्रश्न यह

---

* ताम्रिक अम्लजिद, तांबे और अम्लजनके मेलसे बनता है। इसका अंग्रेजी नाम भी यहाँ इसलिये दिया गया है जिसमें पाठकोंको मोल लेनेमें सुगमता हो। "कास्टिक" अस्पताल वाले Silver nitrate को भी कहते हैं।

इस बाटरीसे भी प्रबल धारा नहीं मिल सकती है क्योंकि इसकी भीतरी बाधा भी बहुत है, दूसरे उज्जन कर्बनके कणोंपर जम जाता है और मैंगनीज़से ओषजन उसे आसानीसे नहीं मिलता। प्रायः यह बाटरी वहीं काममें आती है जहां दुर्बल धारा थोड़ी थोड़ी देरके लिये आवश्यक होती है जैसे घरमें घंटी बजानेके लिए या प्रयोगशालाओंमें बाधा सम्बन्धी प्रयोगोंमें। इसी बाटरीके कई रूप बाजारमें मिलते हैं और सूखी बाटरीके नामसे बहुत बिकते हैं।

यहाँ एक प्रकारकी सूखी बाटरीका वर्णन किये देते हैं। जस्तेका एक चोंगा (बिना पेंदेका गिलास) बना लिया जाता है। इसको लकड़ीके बकसमें रखकर चोंगले और बकसके बीचमें लकड़ीका बुरादा भर देते हैं। पेरिस प्लास्टर, नौसादर और आटा मिलाकर पानीमें लेई सी बना लेते हैं और जस्तेके चोंगलेमें भर देते हैं। मैंगनीज (Manganese dioxide) काला-मांगल प्रेफाइट और नौसादरकी लेईको कर्बनकी छड़के चारों ओर रखकर ऊपरसे कपड़ा लपेट देते हैं और डोरेसे बांध देते हैं। इस लपेटी हुई कर्बनकी छड़को जस्तेके चोंगलेके भीतर लेईमें डाल देते हैं। एक तार कर्बनसे और दूसरा जस्तेसे जोड़ा जाता है। चित्रमें ब लकड़ीका बकस है ज जस्ताका चोंगला है, ल लेई है, क कपड़े में लेईसे लिपटी हुई कर्बनकी छड़ है। चोंगलेका मुंह प पेरिस प्लास्टरकी तहसे बन्द कर दिया जाता है। बकसके ऊपर ढ ढकना लगा दिया है जिसमेंसे कार्बनकी छड़के ऊपरका पेंच और चोंगलेसे लगी हुई जस्तेकी छड़ बाहर निकली रहती हैं। इनमें तार जोड़े जाते हैं। बाटरीके भीतर हवा आने जानेके लिये न नली लगी रहती है। इस बाटरीमें पानी नहीं रहता इसलिये जेबमें रखकर इधर उधर फिरा सकते हैं।

चित्र ७

लेलंडी बाटरी-काँच या चीनीके बरतनमें कास्टिक पोटाशका गहरा घोल (तोलके हिसाबसे १ भाग कास्टिक पोटाश और ३ भाग पानी) रखकर उसमें एक क्यूपरिक आक्साइड (Cupric Oxide) ताम्रिक-अम्लजिद)* की और एक जस्तेकी तख्ती डाल दी जाती है। दोनों तख्तियोंसे तार जोड़नेपर बाटरी काम देने लगती है। बाजारमें कास्टिकके नामसे कास्टिक सोड़ा भी (Caustic soda—दाहक सोड़ा) बिकता है, यह न लेना चाहिये। क्यूप्रिक आकसाइड की तख्ती यदि न मिल सके तो एक मिट्टीके गिलासमें (जैसा ऊपर एक स्थानपर लिखा गया है) क्यूपरिक ओक्साइड भर कर कास्टिक पोटाशमें रख देना चाहिए। एक तार इस गिलासके भीतर आक्साइडमें और दूसरा जस्तेमें जोड़ा जाता है।

[असमाप्त]

वृक्षोंका वृत्तान्त

[ले० श्री० जी० एल० सिंह]

प्रकृति किस प्रकार कोंपलोंकी रक्षा करती हैं।

पशु अपने बच्चोंको धूप, मेंह और हवासे बचानेके लिये अनेक उपाय करते हैं। पक्षी अंडा देनेके समय घोंसला बनाता है जिसमें बच्चे बेखटके रहते हैं। चूहे, छछून्दर, बिल्ली, कुत्ते इत्यादि अपने बच्चोंको या तो बिलोंमें रखते हैं या खोह खाईं अथवा झाड़ियोंमें, ऐसे स्थानोंमें बेचारे निर्बल बच्चोंको किसी प्रकारका भय नहीं रहता। गाय, बैल, गदहा इत्यादिके बच्चोंके शरीरपर बड़े बड़े बाल होते हैं जिनके कारण सर्दी गर्मी अथवा पानीका कुछ असर नहीं होता। अब प्रश्न यह

* ताम्रिक अम्लजिद, तांबे और अलमजनके मेलसे बनता है। इसका अंग्रेजी नाम भी यहाँ इसलिये दिया गया है जिसमें पाठकोंको मोल लेनेमें सुगमता हो। "कास्टिक" अस्पताल वाले Silver nitrate को भी कहते हैं।

है कि वृक्ष जो किसी ऐसे उपायके करनेके योग्य नहीं हैं अपने नवीन और कोमल कोपलोंको ग्रीष्म ऋतुकी वेगसे बहनेवाली गर्म हवा तथा कड़ी वृष्टिसे किस प्रकार बचाते हैं।

पीपल, बरगद, पाकड़ इत्यादिके पत्तोंको तो आप लोगोंने देखा ही होगा यदि आप उनके कोपलोंको सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो यह मालूम होगा कि नई नई कोमल पत्तियोंके ऊपर एक गहरी खोल चढ़ी हुई है और जब कोपल बढ़ती है तो यह खोल फट कर कुछ समय तक तो लटकी रहती है और अन्तमें धीरे धीरे सूखकर गिर जाती है। रबरके वृक्षमें यह खोल बहुत बड़ी होती है और बहुधा ५ तथा ७ इञ्चतक लम्बी होती है।

घुइयां केला और बैजन्तीके फूलोंपर भी एक बड़ी मोटी और रंगदार खोल होती है और जिस समय फूल खिलने लगते हैं, यह सूखने लगती है। इस खोलका और कोई प्रयोजन नहीं है सिवाय इसके कि कोपलों और कलियोंको निर्बलताके समयमें उनको गर्मी, हवा और अन्य हानिकारक शक्तियोंसे बचावें।

चैत्र और बैसाखके महीनेमें बेल और शीशमकी पुरानी पत्तियां झड़ने लगती हैं। और नई पत्तियां निकलने लगती हैं। यदि आप नई पत्तियोंको देखें तो जान पड़ेगा कि उनके ऊपर कोमल और छोटे छोटे रोओंकी एक तह है। यह तह पुरानी पत्तियोंमें नहीं होती। मनुष्य और अन्य पशुओंमें रोओंका यह प्रयोजन है कि उनको गर्मी और सर्दीसे बचावें। और यदि इसी विचारसे हम शीशम और बेलकी पत्तियोंके रोओंको देखें तो मालूम होगा कि उनका भी यही काम है कि कोमल पत्तियोंको गर्मी और सर्दीसे बचावें और यह बात ठीक भी मालूम होती है जब हम यह देखते हैं कि पुरानी पत्तियोंमें यह रोयें नहीं होते।

बांस, ईख और नरकट इत्यादिके तनेमें गांठें होती हैं और इन्हीं गिरहोंके ऊपर पत्तियां होती हैं। पत्तियोंके नीचेका हिस्सा चौड़ा होकर कुछ दूरतक डंठलसे मिला रहता है और इन पत्तियोंके नीचे जड़में भीतर गिरहसे निकलता हुआ छोटासा अँखुआ होता है। प्रथम तो यह पत्तियोंके भीतर छिपा रहता है किन्तु बड़ा होनेपर पत्तियोंको फोड़कर बाहर निकल जाता है। अब ऐसी पत्तियोंका प्रयोजन आप भली भांति समझ सकते हैं। अंखुआ उनके अन्दर बाल्यावस्थामें तो ढंका रहता है किन्तु जब बलिष्ठ हो जाता है तो पत्तियोंको फाड़कर बाहर निकल जाता है।

अब मुझे दो एक बातें और बतानी हैं और इसके पश्चात् लेख समाप्त होगा। आप लोगोंने केला और बैजन्तीके वृक्षोंको तो देखा ही होगा। उनकी पत्तियां पहले अपने वृक्षोंमेंसे लपेटे हुए कागज़के पुलिन्देकी भांति निकलती हैं और धीरे धीरे बाहर निकलकर फैल जाती हैं अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह पत्तियां इस प्रकार लिपटी क्यों रहती हैं। इसका उत्तर यह है कि ऐसी अवस्थामें पत्तियां फैली हुई अवस्थासे अधिक मज़बूत होती हैं। यही कारण है कि बांस और नरकट इत्यादिके दरख्त पोले होते हैं। उदाहरणके लिये आप कागज़को लीजिये एक कागज़का वरक़ तेज़ हवाके वेगको नहीं सहन कर सकता परन्तु यदि आप इसको लपेटकर पुलिन्दा बान दें तो बहुत मज़बूत हो जाता है।

सूर्य-सिद्धान्त

[गतांक के आगे]

ऊपर भोगांश निकालनेका जो नियम बतलाया गया है उससे केवल यह जाना जाता है कि वसंत या शरद सम्पातसे सूर्य कितनी दूर है। यदि सूर्य वसंत संपात अर्थात् सायन मेषसे तीन राशियोंके बीचमें है तो आया हुआ भोगाँश वसंत संपातसे ही सूर्यकी दूरी है, इसलिए यही सायन भोगाँश हुआ। यदि सूर्य सायन कर्कके आरम्भसे तीन राशियोंके भीतर है तो आया हुआ भोगाँश शरद सम्पातसे विलोम दिशामें सूर्यकी दूरी है। परन्तु शरद सम्पात सायन मेषसे ६ राशि दूर है इसलिए ६ राशिमें से आया हुआ भोगाँश घटाना पड़ता है तब वसंत सम्पातसे सूर्यका सायन भोगांश निकलता है। यदि सूर्य सायन तुलासे तीन राशियोंके बीचमें है तो आया हुआ भोगांश शरद सम्पातसे अनुलोम दिशामें सूर्यकी दूरी है इस लिए ६ राशिमें यह जोड़ना पड़ता है तब सूर्यका वसंत सम्पातसे सायन भोगांश निकलता है। और यदि सूर्य सायन मकरसे तीन राशियोंके बीचमें है तो आया हुआ भोगांश वसंत संपातसे विलोम दिशामें सूर्यकी दूरी है। इस लिए १२ राशियोंमेंसे इस भोगांशको घटानेपर वसंतसंपातसे अनुलोम दिशामें सूर्यकी दूरी (भोगांश) आती है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्यकी परमक्रान्ति वर्षमें आधी विकलाके लगभग घटती जा रही है। यहां वह सूत्र दे देना अच्छा होगा जिससे किसी समय परम क्रान्ति सहज ही जानी जा सकती है।

१९८० विक्रमीयकी मेष संक्रान्तिके दिन मध्यम परम-क्रन्ति २३°२६'५७''·३५ है। यह प्रति वर्ष ०''·४६८ विकलाकी दरसे घटती है इसलिए मध्यम परमक्रान्तिका सूत्र =२३° २६'५७''·३५—०''·४६८ (व—१९८०)

यहां 'व' किसी विक्रमीय संवत्की संख्या है।

अयनांशका विचार करते समय यह कहा गया था कि अक्ष विचलन (Nutation) के कारण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचके कोण अर्थात् परमक्रान्तिपर भी प्रभाव पड़ता है। इसके कारण परमक्रान्तिका स्पष्ट मान इस सूत्रके अनुसार होगा—

२३°२६'५७''·३५—०''·४६८ (व — १९८०) + ९''·२१ कोज्या (सायन राहु) + ०''·५५ कोज्या² (सायन सूर्य)

वसंत संपात बिंदुसे राहुके भोगाँशको सायन राहु और सूर्यके भोगांशको सायन सूर्य कहा गया है।

इस रीतिसे सूर्यका जो स्पष्ट सायन भोगाँश निकलता है उससे अयनाँशका मान घटा देनेपर निरयन भोगांश अर्थात् अश्विनीके आदिसे सूर्यकी दूरी आ जाती है। यही सूर्यका स्पष्ट स्थान हुआ जिसको गणितसे जाननेकी रीति स्पष्टाधिकारमें बतलायी गयी है।

जैसे स्पष्टाधिकारमें मंदफलका संस्कार करनेपर मध्यम सूर्यसे स्पष्ट सूर्य निकलता है वैसे ही इस रीतिसे आये हुये स्पष्ट सूर्यमें मंदफलका उलटा संस्कार करनेपर मध्यम सूर्य आता है। परन्तु स्पष्टाधिकारके विज्ञान भाष्य ४ में बतलाया गया है कि मध्यम सूर्यमें केवल सिद्धान्तनीय रीतिसे मंद-फलका संस्कार देनेसे बेध सिद्ध स्पष्ट सूर्य नहीं निकलता इसलिए यह सिद्ध है कि इस अध्यायसे १७—१९ श्लोकों की रीतिसे जो स्पष्ट सूर्य निकलता है उसमें सिद्धान्तीय रीतिके मंदफलका उलटा संस्कार करनेपर मध्यम सूर्य नहीं आ सकता। इसी लिये असकृत्कर्म करनेको कहा गया है अर्थात् एक बार मंदफलका उलटा संस्कार देनेसे जो मध्यम सूर्य आवे उसको ही स्पष्ट सूर्य समझ कर फिर मंद फलका संस्कार करे। इससे जो मध्यम सूर्य आवे उसमें फिर

मंदफलका संस्कार करे। इस तरह कई बार करनेपर मध्यम सूर्य आ जावेगा।

मध्यान्हकालकी छाया और छाया कर्ण जानना (सूर्यकी क्रान्ति और अक्षांशसे

स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।
शेषं नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिजा ॥२०॥
शंकुमानाङ्गुलाभ्यस्ते भुज त्रिज्ये यथाक्रमम्।
कोटिज्यया विभज्याप्ते छाया कर्णावहर्दले ॥२१॥

अनुवाद—(२०) अपने स्थानका अक्षांश और मध्यान्हकालके सूर्यकी क्रान्ति यदि एक ही दिशामें हों तो जोड़ दो और भिन्न दिशामें हो तो घटा दो। जो कुछ आवेगा वही सूर्यका मध्यान्ह कालिक नतांश होगा। इसकी भुजज्या और कोटिज्या बनाओ। (२१) शंकुके अंगुलात्मक मानको अर्थात् १२ को भुज (नतांशकी भुजज्या) से गुणा करके कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्ध मध्यान्ह की छाया तथा शंकुको त्रिज्यासे गुणा करके कोटिज्यासे भाग देनेपर मध्यान्हका छाया कर्ण ज्ञात होगा।

विज्ञान भाष्य—यह १४ वें श्लोकका विलोम है। इन दोनों श्लोकों का सरल रूप यह है:—

$$\text{अ} \pm \text{क} = \text{न} \cdots\cdots\cdots (१)$$

$$\text{छाया} = \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}} \cdots\cdots\cdots (२)$$

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोज्या (न)}} \cdots\cdots\cdots (३)$$

जहाँ अ अक्षांश, क सूर्यकी मध्यान्ह कालिक क्रान्ति और न सूर्यका मध्यान्ह कालिक नतांश है। समीकरण (१) में धनका चिन्ह उस समय लिखना चाहिये जब अक्षांश और क्रान्तिकी दिशाएं एक ही हों और ऋणका चिन्ह उस समय जब इनकी दिशाएं भिन्न हों। अक्षांशकी दिशा उत्तर गोलमें सदैव दक्खिन समझी गयी है जिसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है।

१५ वें श्लोकके भाष्यमें बतलाया जा चुका है कि शंकु और छाया कर्णके बीचके कोणको नतांश कहते हैं। इस लिये

$$\text{नतांशज्या} = \frac{\text{छाया}}{\text{छायाकर्ण}} \text{ वर्तमान प्रथानुसार} \cdots (\text{क})$$

$$\text{नतांशकोटिज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{छायाकर्ण}} \text{ ,,} \cdots\cdots\cdots (\text{ख})$$

$$\therefore \text{छाया} = \text{नतांशज्या} \times \text{छाया कर्ण}$$

$$= \text{नतांशज्या} \times \frac{\text{शंकु}}{\text{नतांशकोटिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}}$$

यदि स्पर्श रेखाकी सारिणीसे काम लिया जाय तो इसका सरल रूप यह होगा—

$$\text{छाया} = १२ \times \text{स्परे (न)} \cdots\cdots\cdots (४)$$

ऊपरके समीकरण (ख) से सिद्ध है कि

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु}}{\text{नतांश कोटिज्या}} \text{ वर्तमान प्रथानुसार}$$

यदि नतांश कोटिज्या का मान भारतीय प्रथानुसार लिखा जाय तो

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

अथवा छायाकर्ण $=\frac{१२ \times त्रिज्या}{कोज्या (न)}$

उदाहरण—किसी दिन सूर्यकी उत्तर क्रान्ति १५°२५′ और प्रयागका अक्षांश २५°२५′ है तो प्रयागमें इस दिन मध्यान्ह कालमें छाया और छाया कर्ण क्या होंगे? [देखो १४-१५ श्लोकका उदाहरण]

प्रयाग उत्तर गोलमें है, इस लिये इसके अक्षांशकी दिशा श्लोकोंके नियमके अनुसार दक्खिन है और क्रान्तिकी दिशा उत्तर है इस लिए इन दोनोंका अंतर ही सूर्यका नतांश होगा।

$\therefore$ न=२५°२५′ − १५°२५′=१०°

(१) सिद्धान्तकी रीति से:—

छाया $=\frac{ज्या (न) \times १२}{कोज्या (न)}$

$=\frac{ज्या १०° \times १२}{कोज्या १०°}$

$=\frac{५६७ \times १२}{३३८४}$

=२·१२ अंगुल

छायाकर्ण $=\frac{१२ \times त्रिज्या}{नतांश कोटिज्या}$

$=\frac{१२ \times ३४३८}{३३८४}$

=१२·१६ अंगुल

(२) नवीन रीतिसेः—

छाया=१२ × स्परे १०°

=१२ × ·१७६३ अंगुल

=२·११५६

=२·१२ अंगुल

छायाकर्ण $=\frac{१२}{कोज्या १०°}$

$=\frac{१२}{·९८४८}$

=१२·१६ अंगुल

सूर्यकी क्रान्ति और किसी इष्टकालकी छाया जानकर दिशा जानना—

क्रान्तिज्या विषुवत्कर्णगुणाप्ता शङ्कुजीवया।
अर्काग्रास्वेष्टकर्णघ्नी मध्यकर्णोद्धृता स्वका ॥२२॥
विषुवद्भायुतार्काग्रा याम्ये स्यादुत्तरो भुजः।
विषुवत्यां विशोध्योदग्गोले स्याद्बाहुरुत्तरः ॥२३॥
विपर्ययाद् भुजोयाम्यो भवेत्प्राच्यपरान्तरे।
माध्याह्निकोभुजोनित्यंछायामाध्याह्निकीस्मृता॥२४॥

अनुवाद—(२२) सूर्यकी क्रान्तिकी ज्याको विषुवत्कर्णसे गुणा करके शंकु रूपी जीवा अर्थात् १२ से भाग देनेपर सूर्यकी उदयकालिक अग्रा आती है इसको इष्टकालके छायाकर्णसे गुणा करके मध्यकर्ण अर्थात् त्रिज्यासे भाग देनेपर इष्टकालकी कर्णाग्रा अथवा कर्णवृत्ताग्रा आती है। (२३) यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो अर्थात् यदि सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण हो तो कर्णाग्रामें पलभा जोड़ देनेसे और यदि सूर्य उत्तर गोलमें हो तो पलभासे कर्णाग्रा घटा देनेपर उत्तर भुज आता है। (२४) यदि सूर्य उत्तर गोलमें हो और पलभा कर्णाग्रासे छोटी हो तो विपरीत क्रिया करनेसे अर्थात् कर्णाग्रासे पलभा घटानेपर दक्खिन भुज आता है। मध्याह्नमें जो छाया होती है वही सदैव माध्याह्नकालिक भुज है।

विज्ञान भाष्य—इसी अधिकार के ५ वें और ७ वें श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें अग्रा और अग्राज्याकी चर्चा हुई है। ७ वें श्लोकमें अग्राकी परिभाषा यह बतलायी गई है, "इष्ट छाया-की नोकसे विषुवच्छायाग्रा रेखाका जो अंतर होता है वह अग्रा कहलाती है"। चित्र ४५, ४६, के वर्णनमें छ अ अग्राज्या और छभ भुज बतलाये गये हैं। परंतु छ अ को अग्रा या अग्राज्या कहनेसे बहुत गड़बड़ हो जानेका डर है इस लिए छ अ को जिसे ७ वें श्लोकमें अग्रा और विज्ञान भाष्यमें मैंने अग्राज्या लिखा है इष्ट कालिक कर्णाग्रा या जैसा भास्कराचार्य लिखते हैं कर्णवृत्ताग्रा कहना अधिक उचित होगा। अग्रासे केवल वह कोण समझना चाहिए जो क्षितिजवृत्तपर पूर्व या पच्छिम विन्दुसे सूर्य, ग्रह या तारेका अंतर होता है। चित्र ४३ में उदय कालिक ग्रहका स्थान क्षितिज वृत्तके ग विन्दु पर है और पूर्व विन्दु ५ है इस लिए ग्रहकी उदय कालिक अग्रा ग पू धनु है। इसी प्रकार ग्रहकी अस्तकालिक अग्रा गा प धनु है क्योंकि प पच्छिम विन्दु और गा ग्रहका अस्तकालके समयका स्थान है। यदि ग अथवा गा विन्दुओं-से पूर्व पच्छिम रेखापर लम्ब गिराया जाय तो इसीका मान उदय कालिक अग्राज्याके नामसे व्यवहार किया जायगा। चित्र ४२ में य श सीधी रेखा उदयकालिक ग्रहकी अग्राज्या है। उदयकालके सिवा किसी अन्यकालमें सूर्यका ऊर्ध्ववृत्त क्षितिजके जिस विन्दुपर गिरेगा उस विन्दुसे पूर्व या पच्छिम विन्दुका अंतर इष्ट कालिक अग्रा कही जायगी।

६२ वें श्लोकमें अर्काग्रा उदयकालिक सूर्यकी अग्राज्या-के लिए, इष्टकर्ण इष्टकालके छायाकर्णके लिए और मध्यकर्ण त्रिज्याके लिए प्रयोग किये गये हैं इस लिए इनको ध्यानमें रखना चाहिए। किसी किसी अनुवादकने मध्यकर्णको मध्याह्न कालिक छायाकर्ण माना है परन्तु यह भ्रम है। मध्यकर्णको रंगनाथ जीने त्रिज्या इस तरह सिद्ध किया—

×"कर्णास्य व्यासस्य मध्यमर्धमिति मध्यकर्णो व्यासार्धं त्रिज्यातयेत्यर्थः" व्यासके अर्थमें कर्णका प्रयोग मध्यमाधिकार-के ५६ वें श्लोकमें भी हुआ है। इसी अधिकारके अगले २७ वें श्लोकमें यही नियम दुहराया गया है जिसमें मध्यकर्णकी जगह त्रिज्याका प्रयोग किया गया है। इस लिए मध्यकर्ण-का अर्थ त्रिज्याके सिवा और कुछ नहीं है। इस श्लोक का सार यह है:—

$$\text{अग्राज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२} \cdots\cdots (१)$$

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} = \frac{\text{अग्राज्या} \times \text{इष्ट छाया कर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२} \times \frac{\text{इष्टछाया कर्ण}}{\text{त्रिज्या}} \cdots\cdots (२)$$

$$\text{परंतु } \frac{\text{विषुवत्कर्ण}}{१२} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}$$ [देखो १३वें श्लोक का भाष्य]

$$\text{इसलिये अग्राज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} \cdots\cdots (३)$$

समीकरण (३) से अग्राज्या अर्थात् उदय या अस्तका-लिक सूर्यकी अग्राकी ज्याका मान तथा अग्रा सुगमता पूर्वक निकल सकते हैं इसलिए यह अच्छा है। इस तरह

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} = \frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} \times \text{इष्टछाया कर्ण} \cdots\cdots (४)$$

कर्ण वृत्ताग्रामें पलभाके किस समय जोड़ने या घटाने-से छायाका भुज ज्ञात होता है यह चित्र ४५, ४६ से स्पष्ट है। जब सूर्य दक्षिण गोलमें होगा अर्थात् जब सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होगी तब कर्ण वृत्ताग्रामें पलभा सदैव जोड़ी जायगी

× वेङ्कटेश्वर प्रेसका सूर्य सिद्धान्त पृष्ठ ८०

पलभा भारतवर्षमें सदैव उत्तर रहती है इसलिए भुज उत्तर होगा।

इन दोनों उदाहरणोंमें सूर्य उत्तर गोलमें है अर्थात् इसकी क्रान्ति उत्तर है। यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो तो चित्र ५ की तरह स्थिति होगी। गोलीय त्रिभुज ध ख र में

$$\text{कोज्या} \angle \text{ध ख र} = \frac{\text{कोज्या (ध र)} - \text{कोज्या (ख र)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख र)} \times \text{ज्या (ध ख)}}$$

$$\therefore \text{कोज्या} (९०^\circ + \text{अग्रा}) = \frac{\text{कोज्या} (९०^\circ + \text{क्रान्ति}) - \text{कोज्या (नतांश)} \ \text{कोज्या (लम्बांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}}$$

$$\therefore - \text{ज्या (अग्रा)} = \frac{- \text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}}$$

$$- \text{कोस्पर्श (नतांश)} \times \text{स्पर्श (अक्षांश)}$$

∴ पहलेकी तरह

$$- \text{ज्या (अग्रा)} = \frac{१}{\text{छाया}} \left\{ \frac{- \text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} \right\}$$

$$= \frac{१}{\text{छाया}} \left\{ - \text{कर्ण वृत्ताग्रा} - \text{पलभा} \right\}$$

अथवा $- \text{ज्या (अग्रा)} \times \text{छाया} = - \text{कर्ण वृत्ताग्रा} - \text{पलभा}$

या, $- \text{भुज} = \text{कर्ण वृत्ताग्रा} - \text{पलभा}$

$\therefore \text{भुज} = \text{कर्ण वृत्ताग्रा} + \text{पलभा}$

यहां कर्ण वृत्ताग्रामें पलभा जोड़नेसे भुज आता है।

∴ जब सूर्यकी क्रांति दक्षिण होती है तब कर्ण वृत्ताग्रामें पलभा सदैव जोड़ना पड़ता है।

यदि सूर्य सममंडलमें हो तो छाया कर्ण जाननेकी १ली रीति

लम्बाक्षजीवे विषुवच्छाया द्वादशसङ्गुणे।
क्रान्तिज्याप्ते तु तौ कर्णौ सममण्डलगे रवौ॥२५॥

अनुवाद—(२५) यदि सूर्य सममण्डलमें हो तो लम्बज्याको पलभासे अथवा अक्षज्याको १२ से गुणा करके प्रत्येकको क्रान्तिज्यासे भाग देनेपर छाया कर्ण आ जाता है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकका सार यह है :—
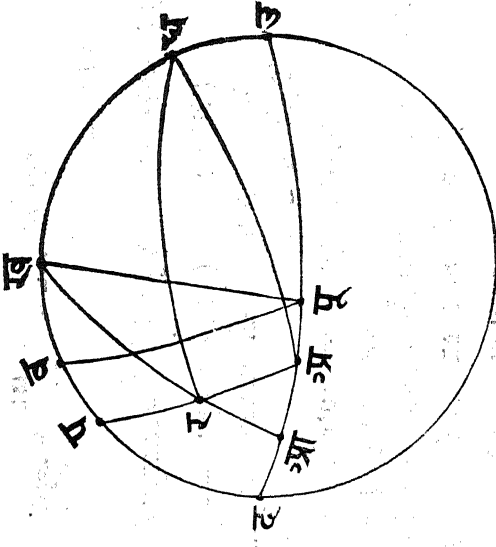
चित्र ५८

उ ध ख व प द = याम्योत्तर वृत्त
उ = उत्तर विन्दु
ध = उत्तरी आकाशीय ध्रुव
ख = खवास्तविक
द = दक्षिण विन्दु
पू = पूर्व विन्दु
ख पू = सममंडल
व पू = विषुद्वृत्त
अ प = सूर्यका अहोरात्र वृत्त जब क्रान्ति दक्षिण हो
अ = उदय विन्दु
र = सूर्य का इष्ट स्थान
ख र आ = सूर्यका ऊर्ध्व वृत्त
उ अ = सूर्यका उदय कालिक दिगंश

उ आ = सूर्यका इष्ट कालिक दिगंश

अ पू = उदय कालिक अग्रा

आ पू = इष्ट कालिक अग्रा

ख ध अ = सूर्यका उदय कालिक नतकाल

< ख ध र = सूर्यका इष्ट कालिक नतकाल

ख र = सूर्यका नतांश; आ र = सूर्य उन्नतांश

जब सूर्य सममंडलमें हो तो,

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{लम्बज्या} \times \text{पलभा}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

जिस समय सूर्य सममण्डलमें होता है उस समय शंकुकी छाया ठीक पूर्व-पच्छिम रेखापर रहती है, चित्र ५७ में सूर्य इस स्थितिमें अहोरात्र वृत्त प अ और सममंडल ख पू के सम्पात विन्दु 'स' पर रहेगा। ऐसी दशामें कोण ध ख स ९०° के समान होगा और इष्ट कालिक अग्रा शून्य होगी। इस लिए पिछले श्लोकके समीकरण (६) के बायें पक्षका मान्य शून्य होगा; इसलिए इस समीकरणके दाहिने पक्षका भी मान्य शून्य होगा। इसलिए

$$\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} = ०$$

$$\therefore \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} = \text{पलभा}$$

$$\text{या छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{अक्षांश कोटिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

परंतु अक्षांश कोटिज्या = लम्बज्या, इसलिए

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}} \ldots\ldots\ldots(७)$$

१३वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें बतलाया गया है कि

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\therefore \text{विषुवत्कर्ण} = \frac{\text{शंकु}}{\text{लम्बज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{अक्षज्या}}$$

$$\therefore \text{पलभा} \times \text{लम्बज्या} = \text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}$$

समीकरण (७)में पलभा × लम्बज्याकी जगह शंकु × अक्षज्या रख देनेसे इसका रूप यह होगा—

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

यह बात नेपियरके दूसरे नियमसे भी सिद्ध हो सकती है क्योंकि जिस समय सूर्य सममंडलमें होगा उस समय दिगंश ९०° और अग्रा शून्य होगी इसलिए चित्र ५७का ∠ ध ख स समकोण होगा। इसलिए त्रिभुज ध ख स समकोण गोलीय त्रिभुज होगा जिसके भुजों और कोणोंका सम्बन्ध नेपियरके दूसरे नियमके अनुसार यह होगा :—

कोटिज्या (ध स) = कोटिज्या (ध ख) × कोटिज्या (ख स)

यहां धनु ध ख स सूर्यका ध्रुवांतर, ख स सूर्यका नतांश और ध ख लम्बांश है। इसलिए

कोटिज्या (ध्रुवांतर) = कोटिज्या (नतांश) × कोटिज्या (लम्बांश)

परंतु ध्रुवांतर क्रान्तिका पूरक होता है, इसलिए

ज्या क्रान्ति = कोटिज्या (नतांश) × ज्या (अक्षांश)

$$\text{परंतु नतांश कोटिज्या} = \frac{१२}{\text{छाया कर्ण}}$$ [देखो श्लोक २१का समीकरण (ख)

$$\therefore \text{ज्या क्रान्ति} = \frac{१२}{\text{छाया कर्ण}} \times \text{ज्या (अक्षांश)}$$

$$\text{अर्थात् छाया कर्ण} = \frac{१२ \times \text{अक्षांश ज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

और योगफल उत्तर भुज होगा क्योंकि ऐसी दशामें छायाकी नोक सदैव विषुवद्भाग्रगा रेखासे उत्तर होती है, (देखो चित्र ४५)। यदि सूर्य उत्तर गोलमें हुआ अर्थात् क्रान्ति उत्तर हुई तो जबतक सूर्य सममंडलसे उत्तर रहेगा तबतक छाया पूर्व पच्छिम रेखासे दक्खिन रहेगी इसलिए कर्णवृत्ताग्रा पलभासे बड़ी होगी। ऐसी दशामें कर्णवृत्ताग्रासे पलभा घटानेपर भुज ज्ञात होगा, (देखो चित्र ४६)। परंतु यदि सूर्य सममंडलसे दक्खिन हुआ तो छाया पूर्व पच्छिम रेखा और विषुवद्भाग्रगा रेखाके बीचमें रहेगी। ऐसी दशामें पलभा कर्णवृत्ताग्रासे बड़ी होगी और पहलेसे दूसरीको घटाना पड़ेगा। २३-२४ श्लोकोंका सार यह है :—

कर्णवृत्ताग्रा $\pm$ पलभा=भुज ....(५)

इसमें धनात्मक चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होगी अर्थात् जब सूर्य सायनतुला आदि ६ राशियोंमें रहेगा और ऋणात्मक चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होगी अर्थात् जब सूर्य सायनमेषादि ६ राशियोंमें रहेगा। पिछली दशामें यदि छाया पूर्व पच्छिम रेखासे दक्खिन होगी तो भुज दक्षिणमें होगा और यदि छाया पूर्व पच्छिम रेखासे उत्तर होगी तो भुज उत्तर और पलभासे कर्णवृत्ताग्राको घटाना पड़ेगा।

आजकल गोलीय त्रिकोणमितिके नियमोंके अनुसार समीकरण (५) इस प्रकार निश्चय किया जाता है :—

चित्र ४७

चित्र का परिचय

उ पू द=क्षितिज वृत्त

पू क व=विषुवद् वृत्त

उ ध ख व द=यामोत्तर वृत्त

द पू उ=क्षितिज,

पू=पूर्व विंदु

उ=उत्तर विन्दु द=दक्षिण विन्दु

ख=ख स्वस्तिक

व=यामोत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्तका सामान्य विंदु

अ र प=सूर्यका अहोरात्र वृत्त जब क्रांति उत्तर हो,

र, स, रा सूर्यके तीन स्थान

ख र आ, ख स पू और ख रा इ सूर्यके तीन ऊर्ध्व वृत्त

उ आ, उ पू और उ इ सूर्यके दिगंश

पू आ, पू ई सूर्यकी अग्रा

अ सूर्यका उदय विन्दु

∠ ख ध अ सूर्यका उदयकालिक नतकाल

∠ ख ध र, ∠ ख ध स और ∠ ख ध रा सूर्यके नतकाल जब वह क्रमसे र, स और रा बिन्दुओंपर रहता है।

ध अ, ध र, ध स और ध रा सूर्यके ध्रुवान्तर जो प्रायः समान हैं।

र क, स का, रा की सूर्यकी-क्रान्तियांजो प्रायः समान हैं।

ख र ख स और ख रा सूर्यके नतांश।

आ र, पू स और इ रा सूर्यके उन्नतांश।

त्रिभुज ध ख र एक गोलीय त्रिभुज है, इसलिए*

$$\text{कोज्या ध ख र} = \frac{\text{कोज्या (ध र)} - \text{कोज्या (ख र)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख र)} \times \text{ज्या (ध ख)}} \quad \text{............(क)}$$

$$\text{अथवा कोज्या (दिगंश)} = \frac{\text{कोज्या (ध्रुवांतर)} - \text{कोज्या (नतांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}} \times \text{कोज्या लम्बांश} \quad \text{.........(ख)}$$

परंतु दिगंश अग्राका, ध्रुवांतर क्रान्तिका और लम्बांश अक्षांशका पूरक हैं, इसलिए

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{ज्या नतांश} \times \text{कोज्या अक्षांश}} \quad \text{... (ग)}$$

$$= \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} - \text{कोटि स्पर्श रेखा (नतांश)} \times \text{स्पर्श रेखा (अक्षांश)} \quad \text{.........(घ)}$$

$$\text{परन्तु स्पर्श रेखा (अक्षांश)} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$ [देखो पृष्ठ ३००

$$\text{कोटि स्पर्श रेखा (नतांश)} = \frac{१२}{\text{छाया}}$$

$$\text{ज्या (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{\text{छाया कर्ण}}$$

$$\therefore \text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \frac{\text{छाया कर्ण}}{\text{छाया}} - \frac{\text{छाया}}{१२} \times \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$= \frac{१}{\text{छाया}} \left\{ \frac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} \right\} \quad \text{.........(६)}$$

$\therefore$ छाया × इष्ट कालिक अग्राज्या = कर्ण वृत्ताग्रा − पलभा

देखो समीकरण (४)

परंतु छाया × इष्ट कालिक अग्राज्या = इष्ट कालिक छाया का भुज, क्योंकि चित्र ४८ में ∠ श स पू या ∠ छ श भ इष्ट कालिक अग्रा है जिसकी $\text{ज्या} = \frac{\text{छ भ}}{\text{छ श}}$

$$\text{इसलिए छाया} \times \text{इष्ट कालिक अग्राज्या} = \text{श छ} \times \frac{\text{छ भ}}{\text{छ श}}$$

$\therefore$ भुज = कर्ण वृत्ताग्रा − पलभा

इस चित्रमें सूर्य सममंडलसे उत्तर है इसलिए भुज दक्षिण होगा। यदि सूर्य सममंडलके दक्खिन जैसे रा पर हो तो गोलीय त्रिभुज ध ख रा में

$$\text{कोज्या} \angle \text{ध ख रा} = \frac{\text{कोज्या (ध रा)} - \text{कोज्या (ख रा)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख रा)} \times \text{ज्या (ध ख)}}$$

अथवा कोज्या (९०° + पू ख रा)

$$= \frac{\text{कोज्या (ध्रुवांतर)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (लम्बांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} - \text{को स्परे (नतांश)} \times \text{स्परे (अक्षांश)}$$

$$\text{परंतु कोज्या } (९०° + \angle \text{पू ख रा}) = -\text{ज्या} \angle \text{पू ख रा} = -\text{ज्या (अग्रा)}$$

$\therefore$ पहलेकी तरह

$$-\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{१}{\text{छाया}} \left\{ \text{कर्ण वृत्ताग्रा} - \text{पलभा} \right\}$$

अथवा, − छाया × ज्या (अग्रा) = कर्ण वृत्ताग्रा − पलभा

या, − भुज = कर्ण वृत्ताग्रा − पलभा

यहां कर्ण वृत्ताग्रासे पलभा घटानेपर भुज ऋणात्मक होता है जिससे प्रकट है कि पलभा कर्ण वृत्ताग्रासे बड़ी है। सूर्य सममंडलके दक्खिन है इसलिए कर्ण वृत्ताग्रा पूर्व पच्छिम रेखा और विषुवच्छायाग्रगा रेखाके बीचमें होगी और

*देखो टाडहंटर और लेथेम की गोलीय त्रिकोणमिति पृष्ठ २१

$$\text{ज्या (क्रान्ति)} = \frac{१२ \times \text{अग्राज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ [श्लोक २२

$$\text{कोज्या (अक्षांश)} = \frac{१२}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ [श्लोक १३

समीकरण (ग) से सिद्ध है कि

$$\text{ज्या (अग्रा)} \times \text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या अक्षांश}$$
$$= \text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या अक्षांश}$$

इसमें ज्या (अग्रा), ज्या (अक्षांश) इत्यादिके मान उत्थापन करनेसे

$$\frac{१}{\sqrt{२}} \times \text{ज्या (नतांश)} \times \frac{१२}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$
$$= \frac{१२ \times \text{अग्रज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

इसी समीकरणके दूसरे पक्षमें जो अग्रज्या है वह सूर्यकी उदयकालिक अग्राकी ज्या है। इस समीकरणके प्रत्येक पदके हरमें विषुवत्कर्ण है इसलिए इस सामान्य संख्याको हटा देनेमें कोई अंतर नहीं पड़ेगा। यदि पलभा, नतांश और अग्रज्याको क्रमसे प, न और अ अक्षरोंसे सूचित किया जाय और विषुवत्कर्ण हटा दिया जाय तो

$$\frac{१}{\sqrt{२}} \times \text{ज्या (न)} \times १२ = १२ \times \text{अ} - \text{कोज्या (न)} \times \text{प}$$

दोनों पक्षोंका वर्ग करनेसे,

$$\tfrac{१}{२} \times \text{ज्या}^२ \text{(न)} \times १२^२$$
$$= १२^२ \times \text{अ}^२ + \text{प}^२ \times \text{कोज्या}^२\text{(न)} - २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

परंतु १६वें श्लोकके आधार पर

$$\text{ज्या}^२ \text{(न)} = \text{त्रिज्या}^२ - \text{कोज्या}^२ \text{(न)}$$

इसलिए उपर्युक्त समीकरणका रूप यह होगा

$$\tfrac{१}{२} \times १२^२ \times [\,\text{त्रिज्या}^२ - \text{कोज्या}^२ \text{(न)}\,]$$
$$= १२^२ \text{अ}^२ + \text{प}^२ \times \text{कोज्या}^२ \text{(न)} - २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

अथवा सरल करने पर

$$१२^२ \left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अ}^२\right]$$
$$= \text{कोज्या}^२ \text{(न)} \left[\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२\right] - २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

प्रत्येक पक्षको $\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२$ से भाग देनेपर और आवश्यक पदोंको एक पक्षसे दूसरे पक्षमें ले जानेपर

$$\text{कोज्या}^२ \text{(न)} - \frac{२ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प}}{\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२}\text{कोज्या (न)} - \frac{१२^२\left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अ}^२\right]}{\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२} = ०$$

तीसरे पदकी जगह करणी और दूसरे पदके $\frac{१२ \times \text{अ} \times \text{प}}{\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२}$ की जगह फल लिखनेसे इसका रूप होगा

$$\text{कोज्या}^२ \text{(न)} - २ \times \text{फल} \times \text{कोज्या (न)} - \text{करणी} = ०$$
$$\text{या} \quad \text{कोज्या}^२ \text{(न)} - २\,\text{फल} \times \text{कोज्या (न)} = \text{करणी}$$

पहले पक्षको पूर्ण वर्ग बनानेके लिए प्रत्येक पदमें $(\text{फल})^२$ जोड़नेसे

$$\text{कोज्या}^२ \text{(न)} - २\text{फल} \times \text{कोज्या (न)} + \text{फल}^२$$
$$= \text{करणी} + \text{फल}^२$$

इस समीकरणका पहला पक्ष $= [\text{कोज्या (न)} - \text{फल}]^२$

$\therefore \text{कोज्या}(\text{न}) - \text{फल} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२}$

अथवा $\text{कोज्या}(\text{न}) = \text{फल} + \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२}$

परंतु कोज्या (न) = कोज्या (नतांश) = ज्या (उन्नतांश) = कोणशंकु

$\therefore \text{कोण शंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२} + \text{फल}$

इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होती है तब फलके वर्गको करणीमें जोड़कर और योगफलका वर्गमूल निकालकर फलमें जोड़ देनेसे कोण शंकु आ जाता है। यदि सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण हो तो चित्र ५८ के अनुसार

– ज्या (अग्रा) × ज्या (नतांश) × कोज्या (अक्षांश)

= – ज्या (क्रान्ति) – कोज्या (नतांश) × ज्या (अक्षांश)

जिसमें ज्या अग्रा, ज्या क्रान्ति इत्यादिके मान उत्थापन करने और सरल करनेसे

$$-\frac{१}{\sqrt{२}} \times \text{ज्या}(\text{न}) \times १२ = -१२\,\text{अ} - \text{प} \times \text{कोज्या}(\text{न})$$

अथवा $\frac{१}{\sqrt{२}} \times १२ \times \text{ज्या}(\text{न}) = १२\,\text{अ} + \text{प} \times \text{कोज्या}(\text{न})$

दोनों पक्षोंका वर्ग करनेसे

$$\frac{१२^२}{२} \times \text{ज्या}^२(\text{न}) = १२^२\,\text{अ}^२ + \text{प}^२ \times \text{कोज्या}^२(\text{न}) + २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या न}$$

अथवा $\frac{१२^२}{२}\left[\text{त्रिज्या}^२ - \text{कोज्या}^२(\text{न})\right]$

$$= १२^२\,\text{अ}^२ + \text{प}^२ \times \text{कोज्या}^२(\text{न}) + २ \times ११ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या}(\text{न})$$

$$\therefore १२^२\left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{३} - \text{अ}^२\right]$$

$$= \text{कोज्या}^२(\text{न})\left[\frac{१२^२}{२} \times \text{प}^२\right] + २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या न}$$

$$\therefore \text{कोज्या}^२(\text{न}) + \frac{२ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प}}{\frac{१२^२}{२} \times \text{प}^२}\text{कोज्या}(\text{न})$$

$$= \frac{१२^२\left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अ}^२\right]}{\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२}$$

अथवा $\text{कोज्या}^२(\text{न}) + २ \times \text{फल} \times \text{कोज्या}(\text{न}) = \text{करणी}$

$\therefore [\text{कोज्या}(\text{न}) + \text{फल}]^२ = \text{करणी} + \text{फल}^२$

$\therefore \text{कोज्या}(\text{न}) + \text{फल} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२}$

$\therefore \text{कोज्या}(\text{न}) = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२} - \text{फल}$

सिद्ध होता है कि जब सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होती है तब फल घटाना पड़ता है!

स्वशङ्कुना विभाज्याप्ते दृक्त्रिज्ये द्वादशाहते।
छायाकर्णौ तु कोणेषु यथा स्वं देशकालयोः ॥३३॥

अनुवाद—(३३) दृग्ज्या और त्रिज्याको १२ से गुणा करके कोण शंकुसे भाग दो। भागफल क्रमानुसार इष्ट स्थानके यथा समय छाया और कर्ण होंगे।

विज्ञान भाष्य—२८–३२ श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि जब सूर्य आग्नेयादि विदिशाओंमें हो तब उस समयकी उन्नतांश ज्या (कोण शंकु) और नतांश ज्या (दृग्ज्या) कैसे निकालते हैं। ३३वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि दृग्ज्या और कोण शंकुसे उस समयकी छाया या छायाकर्ण कैसे निकाला जाता है।

इस नियमका सार यह है :—

$$(\text{कोण})\ \text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$(\text{कोण})\ \text{छाया कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शङ्कु}}$$

[असमाप्त]

इससे दूसरा रूप भी पहलेकी तरह जाना जा सकता है।

समर्मडलमें सूर्य हो तो छाया कर्ण जाननेकी रीति

सौम्याक्षोना यदाक्रान्तिः स्यात्तदाद्युदलश्रवः।
विषुवच्छाययाभ्यस्तः कर्णोमध्याग्रयोद्धृतः ॥२६॥

अनुवाद—यदि उत्तर अक्षांशसे उत्तर क्रान्ति कम हो तो मध्याह्न कालिक छाया कर्णको पलभासे गुणा करके मध्याह्न कालिक कर्णाग्रासे भाग देनेपर इष्टकालिक छाया कर्ण निकल आता है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकका सार यह है:—

जब सूर्य सममंडलमें हो तब,

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छाया कर्ण} \times \text{पलभा}}{\text{मध्याह्न कर्णाग्रा}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

उपपत्ति—२२वें श्लोकके अनुसार,

$$\text{मध्याह्न कर्णाग्रा} = \frac{\text{उदय कालिक अग्राज्या} \times \text{मध्याह्न छाया कर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

∴ समीकरण (१) में मध्यान्ह कर्णाग्राका यह मान उत्थापन करनेसे

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छाया कर्ण} \times \text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{उदय कालिक अग्राज्या} \times \text{मध्याह्न छाया कर्ण}}$$

$$= \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{उदय कालिक अग्राज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

समीकरण (२) में उदयकालिक अग्राज्याका मान २२वें श्लोकके प्रथम पंक्ति या वहांके समीकरण (१) के अनुसार उत्थापन करनेसे,

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\dfrac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२}}$$

$$= \frac{\text{पलभा} \times १२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}$$

परंतु १३वें श्लोकके अनुसार $\dfrac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}} = \text{लम्बज्या}$

$$\therefore \text{छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

जो २५वें श्लोकके नियमका ही एक रूप है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्य सममंडलमें हो तब

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छाया कर्ण} \times \text{पलभा}}{\text{मध्याह्न कर्णाग्रा}}$$

कर्णाग्रा जाननेकी दूसरी रीति—

स्वक्रान्तिज्या त्रिजीवाघ्नी लम्बज्याप्ताग्रमौर्विका।
स्वेष्टकर्णहता भक्ता त्रिज्ययाग्राङ्गुलादिका ॥२७॥

अनुवाद—(२७) इष्टकालके सूर्यकी क्रान्तिज्याको त्रिज्यासे गुणा करके लम्बज्यासे भाग देनेपर उदयकालिक अग्राज्या आती है जिसको इष्टकालके छाया कर्णसे गुणा करके त्रिज्या-भाग देनेपर इष्टकालकी कर्णाग्रा आती है।

विज्ञान भाष्य—२२वें श्लोकमें कर्णाग्रा जाननेकी रीति बतलायी गयी है वही यह भी है अंतर केवल इतना है कि वहां क्रान्तिज्याको विषुवत्कर्णसे गुणा करके १२ से भाग दिया गया है और यहां क्रान्तिज्याको त्रिज्यासे गुणा करके लम्बज्यासे भाग दिया गया है जो एक ही है। (देखो श्लोक १३ तथा २२)

जब सूर्य ईशान अग्नि आदि चार कोणोंमें हो तब उन्नतांश या नतांश जाननेकी रीति

त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रज्यावर्गोनाद्द्वादशाहतात्।
पुनर्द्वादशनिघ्नाच्च लभ्यते यत्फलं बुधैः ॥२८॥
शङ्कुवर्गार्धसंयुक्त विषुवद्वर्गभाजितात्।
तदेव करणी नाम तां पृथक् स्थापयेद्बुधः ॥२९॥

अर्कघ्नी विषुवच्छायाग्रज्यया गुणिता तथा ।
भक्ता फलाख्यं तद्वर्ग संयुक्त करणीपदम् ॥३०॥
फलेन हीनसंयुक्तं दक्षिणोत्तर गोलयोः ।
याम्ययोर्विदिशोः शङ्कुरेवं यामोत्तरे रवौ ॥३१॥
परिभ्रमति शङ्कोस्तु शङ्कुरुत्तरयोस्तु सः ।
तत् त्रिज्यावर्ग विश्लेषान्मूलं दृग्ज्याभिधीयते ॥३२॥

अनुवाद—(२८) त्रिज्याके वर्गका आधा करके उसमेंसे उदयकालिक अग्रज्याके वर्गको घटाकर शेषको १२ से गुणा करके, गुणनफलको फिर १२ से गुणा करनेपर जो फल विद्वानोंको मिलता है (२९) उसको शंकुके वर्गार्ध और पलभाके वर्गके योगफलसे भाग देते हैं, जो लब्धि आती है उसे करणी कहते हैं। इसको विद्वान् अलग रखते हैं। (३०) १२को पलभासे गुणा करके गुणनफलको उदयकालिक अग्रज्यासे भी गुणा करके जो आता है उसको भी शंकुके वर्गार्ध और पलभाके वर्गके योगफलसे भाग देते हैं और लब्धिको फल कहते हैं। फलके वर्गको करणीमें जोड़कर योगफलका वर्गमूल निकालते हैं, (३१) यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो अर्थात् यदि सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण हो तो वर्गमूलसे फलको घटा दे और यदि सूर्य उत्तर गोलमें हो तो वर्गमूलमें फलको जोड़ दे। ऐसा करनेसे जो कुछ आता है वही आग्नेयादि कोणोंका शंकु अर्थात् कोणशंकु कहलाता है। (३२) जब सूर्य दक्षिणमें होता है तब कोणशंकु मध्यान्हके पहले अग्निकोणमें और मध्यान्हके पीछे नैऋत्य कोणमें होता है। परंतु जब सूर्य उत्तरमें होता है तब कोणशंकु मध्यान्हके पहले ईशान कोणमें और मध्यान्हके पीछे वायव्य कोणमें होता है। कोणशंकु और त्रिज्याके वर्गोंके अंतरका वर्गमूल निकालनेसे दृग्ज्या होती है।

विज्ञान भाष्य—इन ५ श्लोकोंका सम् यह है :—

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^2}{२} - \text{अग्रज्या}^2\right) \times १४४}{\frac{१२^2}{२} + \text{पलभा}^2}$$

$$\text{फल} = \frac{१२ \times \text{पलभा} \times \text{अग्रज्या}}{\frac{१२^2}{२} + \text{पलभा}^2}$$

$$\text{कोण शंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^2} \mp \text{फल}$$

$$\text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{कोण शंकु}^2}$$

जिस समय सूर्य ईशान, अग्नि, नैऋत्य या वायव्य कोणोंमें रहता है उस समय इसका जो उन्नतांश (Altitude) होता है उसकी ज्याको कोणशंकु और जो नतांश होता है उसकी ज्याको दृग्ज्या कहते हैं; किसी अन्य समयके नतांशज्याको भी दृग्ज्या तथा उन्नतांशज्या शंकु कहते हैं। इसलिए इस शंकु और १२ अंगुलवाले शंकुके भेदको अच्छी तरह ध्यानमें रखना चाहिए। इसलिए जब सूर्यका दिगंश (Azmuth) ४५° होता है तब यह क्षितिजसे जितने अंश ऊपर रहता है उस अंशकी ज्या कोणशंकु हुई और ख स्वस्तिकसे जितना नीचे रहता है उस अंशकी ज्या दृग्ज्या हुई। इसलिए चित्र ५७ के समीकरण (क), (ख), या (ग) की सहायतासे कोणशंकु या दृग्ज्याका मान सहज ही निकल सकता है। समीकरण (ग) इस प्रकार है—

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}}$$

जब सूर्य ईशान, अग्नि, नैऋत्य या वायव्य कोणमें होता है तब अग्रा ४५ अंशके समान होती है, इसलिए ऐसी दशा में

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \text{ज्या } ४५^\circ = \frac{१}{\sqrt{२}}$$

$$\text{ज्या (अक्षांश)} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ [श्लोक १३

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २१ { मिथुन और कर्क संवत्, १९८२ } संख्या ३, ४

रसायन या कीमिया

[श्री नवनिद्धिराय, एम. ए.]

साधू महात्माओंका आदर अभी इस देशसे बिलकुल उठ नहीं गया है। हिन्दुओंकी श्रद्धा अबतक गेरुए वस्त्रमें बहुत है। जटा बढ़ाये, गेरुआ वस्त्र पहिने साधू-सन्यासी अब भी दानशील हिन्दुओंसे बहुत कुछ ऐंठ लेते हैं। पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षाके प्रचारके कारण शिक्षित समुदाय तो अब इनके चंगुलमें फँसते नहीं, परन्तु स्त्रियाँ और निम्न श्रेणीके लोग गेरुए वस्त्र धारियोंके बहकावेमें आसानीसे आजाते हैं। कितने ही ऐसे मामले सुननेमें आये हैं जहाँ किसी जटा जूट धारी साधूने धन लोलुप बहुत जल्द अमीर हो जानेकी इच्छा रखने वाले व्यक्तियोंको दम पट्टी पढ़ाकर उनका सारा माल ऐंठ लिया। ठगनेकी विधि यह है—महात्माजी पहले ऐसी बात चीत करते हैं और अपना ऐसा आचरण दिखलाते हैं जिससे लोगोंको उनके ऊपर विश्वास और उनमें श्रद्धा हो जाती है। तब यह लोगोंको बतलाते हैं कि उनके पास ऐसी सिद्धि है जिससे वे सोना और चाँदी बना सकते हैं। दुनियाके प्रायः सभी देशोंमें ऐसे मनुष्य पाये जाते थे जो कीमिया बनाने या पारस पत्थरको ढूँढ़ निकालनेमें अपना समय बिताया करते थे। इनका विश्वास था कि अनुसन्धानसे उन्हें ऐसी क्रियाका पता चल जायगा जिसके द्वारा जस्ता, ताँबा तथा लोहा इत्यादि कम मूल्यके धातु अधिक मूल्यवान धातुओं जैसे सोना चाँदी इत्यादिमें परिवर्तित किये जा सकते हैं। यह लोग रसायन बनानेवाले कीमियागर या आलकेमिस्ट (Alchemist) इत्यादिक नामोंसे प्रसिद्ध थे। ये बेचारे दिनरात रासायनिक क्रियाओंमें लगे रहते थे और इसी प्रकार अपना

समस्त जीवन व्यतीत कर दिया करते थे। इनका समुदाय अलग ही बना हुआ था। इनकी सब क्रियायें गुप्त थीं। हमारे देशमें ऐसे व्यक्ति तान्त्रिक कहे जाते थे। अपनी सब क्रियायें और तत्सम्बन्धी ज्ञान ये लोग गुप्त रखते थे तथा बड़ी कठिन परीक्षाओंके बाद बड़ी कठिनाईसे किसीको चेला बनाते थे। इन्हीं लोगोंकी क्रियाओं और प्रयोगोंके ऊपर आधुनिक रसायन शास्त्रकी नींव पड़ी है। साधारण धातुओंको मूल्यवान धातुओंमें परिवर्तित कर देनेवाली क्रियाके अनुसन्धान कर्ताओंने अपना समस्त जीवन इसी खोजमें लगा दिया। आधुनिक रसायन शास्त्रियोंने उनके परिश्रम और त्यागसे लाभ उठाया, पर बड़ी कृतघ्नताका परिचय दिया, जिनसे सब कुछ पाया उन्हींको बेवकूफ़ और पागल बतलाया। कहने लगे कि एक धातु किसी दूसरी धातुमें परिवर्तित नहीं हो सकती, रसायन और कीमिया असम्भव पदार्थ है। पर इन बेचारोंको परमात्माकी अनन्त सृष्टिका क्या पता था, उन्हें क्या मालूम था कि जैसे उन्होंने अपने गुरुओंको बेवकूफ़ और पागल सिद्ध किया है वैसे ही उनके चेले उनके ज्ञानकी सीमा बतलाकर उन्हें अज्ञानी सिद्ध कर रहे हैं। अब धातु परिवर्तन सम्भव मान लिया गया है और ऐसे प्रयोग किये जा रहे हैं जिनसे यह पूर्ण आशा है कि दो चार वर्षोंमें ही एक धातुको दूसरे धातुमें परिवर्तित करना साधारण बात हो जायगी। पुराने ज़मानेके तान्त्रिक और कीमियागर वास्तवमें वैज्ञानिक थे पर इन बेचारोंको लुक छिप कर अपने वैज्ञानिक प्रयोग करने पड़ते थे। समाज और राज्यके डरके मारे रात्रिमें या अत्यन्त गुप्त स्थानोंमें अपनी जानको हथेलीमें लेकर यह बेचारे अपने प्रयोग किया करते थे। इन बेचारोंको अपने परिश्रमका फल तो नहीं मिला परन्तु यह उन्हींके उद्योग और परिश्रमका फल है कि रसायन शास्त्र इतनी उन्नत अवस्थामें है और वह दिन दूर नहीं है जब उनके ध्येयपर हम लोग पहुँच जाँयगे। इस सफलताको देखनेके लिए वे लोग अब जीवित नहीं हैं परन्तु उनकी आत्माको कितनी शान्ति होगी।

इन कीमियागरोंने बड़ी बड़ी कठिनाइयोंका सामना करते हुए युरोपमें अपना काम किया। एक ओर तो इन्हें प्रकृतिके रहस्योंका बहुत कम ज्ञान था जिससे इनकी उन्नतिकी गति बहुत मन्द थी दूसरी ओर धार्मिक समुदाय इन्हें शैतानका अनुयायी समझता था जिससे इन्हें अपने प्राणोंका भय लगा रहता था और अपनी सब क्रियायें छिपकर करनी पड़ती थीं। इनमेंसे कितने ही जीते जला दिये गये। पारासेलसियस (Paracelsius) एक पहाड़ी परसे ढकेल कर मार दिया गया। लेवायसियर (Lavoissier) का सिर कटवा डाला गया था। फिर भी रसायन शास्त्रकी उन्नति होती ही गई। अविद्यान्धकार और धर्मान्धताके ज़मानेमें वैज्ञानिकोंकी इतनी बुरी दशा थी तिसपर भी उन्नति क्यों होती गई इस प्रश्नका उत्तर यह है कि एक वैज्ञानिकने जो आविष्कार किये और प्रयोगों तथा अनुसन्धानों द्वारा जो ज्ञान संचित किया उससे उसके बादमें आनेवाले वैज्ञानिकोंने लाभ उठाया और उसी नींवपर विज्ञानका निर्माण करते गये। एकके अनुभवसे दूसरेने लाभ उठाया तथा इन दोनोंके अनुभवोंसे तीसरेने काम लिया। कला और विज्ञानमें यही तो भेद है। यदि कोई कला शास्त्री मरता है तो अपनी नैसर्गिक शक्ति तथा अलौकिक निपुणताको अपने साथ लेता जाता है। चित्रकारको, गवैयेको सौन्दर्य निर्माणकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए नये सिरेसे कार्य आरम्भ करना पड़ता है। गुरु केवल पथ-प्रदर्शकका काम करता है पर सब राह आरम्भसे चेलेको चलनी पड़ती है। यही कारण है कि ललित कलाओंका विकाश ऐसी नियमित और निश्चयात्मक रीतिसे नहीं होता रहता जैसे विज्ञानका। आजकलके रासायनिक अपने पूर्वजोंके कामसे पूरा लाभ उठा रहे हैं और रसायन शास्त्रमें बराबर उन्नति होती जा रही है।

कीमियागरोंने अब काफ़ी उन्नति कर ली। धीरे धीरे जनताने और गवर्नमेन्ट ने भी रसायन शास्त्रकी उपयोगिताका अनुभव किया। गत युरोपीय महायुद्धमें इतने रासायनिक यौगिक काममें लाये गये थे कि यदि उसे रासायनिकोंका युद्ध कहें तो अत्युक्ति न होगी। पाश्चात्य देशोंकी औद्योगिक उन्नति रसायन शास्त्रपर ही निर्भर है। फ़ोटोग्राफ़ी, सिनेमाके चलते हुए चित्र, किताबों और मासिक पत्रोंमें छपने वाले ब्लाक, इसपातका बनाना, लोहा, जस्ता, तांबा, चाँदी तथा सोना इत्यादि धातुओंका शोधना, तरह तरहके विदेशी रंग और अनगिनती न जाने कितने उद्योग धन्धे सब रासायनिक प्रक्रियाओंपर निर्भर हैं। रासायनिक लोग निर्धनसे धनी हो गये, विज्ञानकी सहायतासे बहुत रुपया पैदा किया और बहुत से ऐसे यंत्र मोल ले सके जिनकी सहायतासे बड़े बड़े सफल प्रयोग किये जा सके। ऐसे सूक्ष्म और विस्तृत प्रयोग करना कीमियागरोंके लिए असम्भव था।

पहले यह अनुमान किया गया कि संसारके सब पदार्थ किसी एक आरम्भिक पदार्थसे बने हैं जो सबमें व्यापक है। इसी प्रारम्भिक पदार्थको ढूँढ़ निकालनेका प्रयत्न किया जाने लगा। बड़े परिश्रमके बाद हीलियम (Helium) गैस यह आरम्भिक पदार्थ सिद्ध हुई। वैज्ञानिकोंने इस सिद्धान्तपर पहुंचनेके लिए जो प्रयोग किये उनका संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है।

प्रयोगशालामें पूर्ण अन्धकार कर दिया जाता है। उजालेकी किरणें भीतर बिलकुल नहीं आने पातीं। कमरेके बीचमें एक मेज़के ऊपर एक रश्मिचित्रदर्शक (Spectroscope) यन्त्र रखा जाता है। तालोंका (Lenses) समूह और तारोंका जाल यंत्रके चारो तरफ़ फैला रहता है। थोड़ी दूरपर एक दीवटमें बाल बराबर पतला धातुका तार टंगा रहता है। रश्मिचित्र दर्शकको नली तारकी ओर फेर दी जाती है। यंत्रमें रश्मिचित्रका फ़ोटो लेनेका प्रबन्ध भी रहता है। उपर्युक्त सूक्ष्म धातुका तार रश्मिचित्र दर्शककी नलीके सामने इस तरह रखा जाता है कि जब चाहे उसका फ़ोटो ले लें। इस तारको विद्युत्जनकके संचायकसे जोड़ देते हैं और इतनी ऊँची अवस्थाकी बिजुलीकी धारा इस तारमें होकर बहाते हैं कि उसमें इतनी तेज़ गर्मी पैदा हो जाय जितनी सूर्यमें होती है। सूर्यके तापक्रमपर धातु ठोस अवस्थामें नहीं रह सकता वरन् गैसकी अवस्थामें रहता है। जैसे ही विद्युत-धारा तारमें होकर बहेगी, तार जल उठेगा और वह तुरन्त गैस बन जायगा। इस तारके जलते ही जो किरणें उत्पन्न होंगी उनका रश्मिचित्र रश्मिचित्रदर्शक यंत्रमें दिखलाई पड़ेगा। परन्तु जैसा ऊपर कह आये हैं उसमें फ़ोटो लेनेका प्रबन्ध है, इसलिए रश्मि-चित्रका फ़ोटो खिंच जायगा। तारमें होकर विद्युतकी ऐसी प्रबल धारा बहेगी जिसको तार

स्विच संघर्ष विद्युत् जनक
तेल
पारा
तार
फ़ोटो केमरा
रश्मि चित्र दर्शक नली दीवट पृथ्वी संचायक

चित्र १०
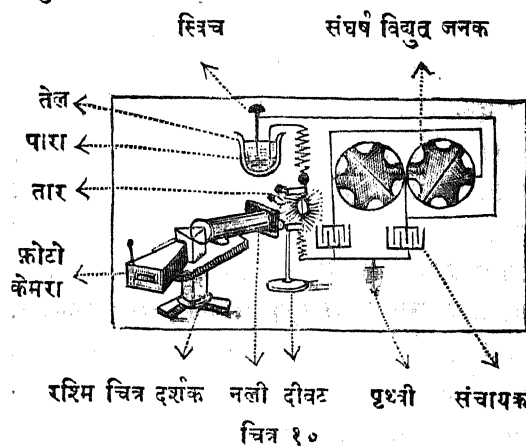
सह न सकता था इसलिए उसके अणुओंका विश्लेषण होकर एक नई गैस बन गई और गैसका रश्मिचित्र फ़ोटोके प्लेटपर अंकित हो गया। अब यह प्लेट फ़ोटोग्राफ़ीकी प्रक्रियाओं द्वारा सिद्ध कर (Develope) ली जाती है और रश्मिचित्रका फ़ोटो फ़ोटोग्राफ़ीवाले काग़ज़ पर छाप लिया जाता है। तार टंगस्टन (Tungsten) धातका टाँगा गया था। जो रश्मि-चित्र मिला है वह टङ्गस्टन धातुका नहीं है। धातुओंके प्रमाण-सिद्ध रश्मिचित्रोंसे

तुलना करनेपर यह हीलियम गैसका सिद्ध होता है, टङ्गस्टनका नहीं। निश्चय हुआ कि ऐसी प्रबल धाराके प्रवाहसे जो सूर्यके बराबर तापक्रम उत्पन्न कर दे टङ्गस्टन धातुको हीलियम गैसमें बदल सकते हैं। अबतक रासायनिकोंका मत था कि सिद्धान्त रूपसे सौ ऐसे रूढ पदार्थ हैं जिनके योगसे ब्रह्माण्डके समस्त पदार्थ निर्मित हैं। ये रूढ़ पदार्थ गुण और स्वभावमें एक दूसरेसे भिन्न हैं। इनमेंसे एकको किसी दूसरेके रूपमें परिवर्तित कर देना असम्भव है। चाँदी, ताँबा, लोहा, इत्यादि ऐसे रूढ़ धातु हैं जिनके रूपमें परिवर्तन करना असम्भव है। ताँबेसे सोना नहीं बन सकता और न सोनेसे ताँबा। लोहा कभी चाँदी नहीं हो सकता और न कभी चाँदी ही लोहेका रूप धारण कर सकती है। इसी सिद्धान्तके ऊपर रासायनिकोंने अपने पूर्वज कीमियागरोंको मृगतृष्णाके पीछे दौड़ते हुए सिद्ध किया। पर अब टङ्गस्टनके रूप परिवर्तन सिद्ध हो जानेपर रास्ता खुल गया है। दो चार दस वर्षमें सोनेसे ताँबा और ताँबेसे सोना, लोहेसे चाँदी तथा चाँदीसे लोहा बन जाना शायद सम्भव हो जाय। सिद्ध हो जायगा कि आरम्भिक रूढ़ पदार्थ एक ही है। कीमियागरोंकी कल्पित कल्पना अटल वैज्ञानिक सिद्धान्तका रूप धारणकर लेगी और उनके सम्पूर्ण परिश्रम तथा त्यागका फल उनकी प्रेतात्माको सन्तोष प्रदान करेगा। उन बेचारोंने जो अत्याचार सहे थे वे सब इस सफलताकी खुशीमें उन्हें भूल जाँयगे।

पाठक! आप उत्सुक होंगे कि पाश्चात्य वैज्ञानिक धातु परिवर्तनमें सफल होकर लोहे और ताँबेसे चाँदी और सोना बना दें, पर इस परिवर्तनसे वस्तुतः कोई अधिक लाभ नहीं होगा। सोना चाँदी तब मूल्यवान न रह जाँयगे। वैज्ञानिकोंके इस परिश्रमसे एक नवीन वैज्ञानिक सिद्धान्तकी स्थापना की जायगी तथा तान्त्रिकों और कीमियागरोंकी आत्माको सन्तोष होगा।

प्रेत बाधा

[ले० श्रीरामदास गौड़, एम० ए०]

पिछले जाड़ोंके आरंभमें एक अत्यंत आवश्यक कामसे रुग्ण होते हुए भी प्रयाग जाना पड़ा। वहां एक सप्ताहके लगभग हिन्दी-विद्यापीठके मनोरम स्थानमें अपने परम मित्र श्री टंडन जीका मेहमान रहा। वहांके शुद्ध जलवायुने जादूका काम किया। मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया। घर लौटा तो अपनी बड़ी लड़कीको अत्यन्त बीमार पाया।

लड़की गर्भवती थी। इसलिये उसका इलाज कठिन था। शिकायतें भी विचित्र सी थीं। लक्षणोंके बदलते देर नहीं लगता था। स्थायित्व इसीमें था कि प्रायः समस्त शरीर फूल आया था। चेहरेकी आकृति इसी कारण कुछ बदल गयी थी। कभी सारे बदनमें पीड़ा थी, कभी नहीं। कभी पानी पीनेमें भी कष्ट था, गलेमें दाने और छाले पड़ गये थे, कभी कोई कष्ट न था। कभी ऐसी पागल हो जाती थी कि किसीको पहचानती न थी, सब से डरती थी, और कभी एक दम अंधी हो जाती थी और कुछ देख न सकती थी। कभी सब कुछ सुनती थी और कभी इतनी बहरी हो जाती थी कि पास चिल्लानेपर भी न सुनती थी। अठवारों कभी कुछ न खाती थी और कभी खाने लगती तो चार चारकी खूराक खा जाती थी। पागलपनकी दशामें बक उठती थी "हटो हटो, राह छोड़ो, इक्का आ रहा है, दब जाओगे! तुम लोग यहां से चले जाओ, हमारा मुहँ क्यों चिढ़ाते हो। मेरी मांको बुलाओ। मेरे बापको बुलाओ। मैं यहां न रहूँगी। अपने घर जाऊँगी। बुहार दो, लालटेन जलादो। एक धोती लाओ। सहानी चूड़ी लाओ।" इत्यादि, इत्यादि। मां बापसे उसका मतलब हम लोगों-

से न था, क्योंकि हम लोग मौजूद होते थे। वह देखती भी थी और सुनती भी थी तो भी कहती थी "नहीं, तुम मेरे मां बाप नहीं हो। तुम लोग और कोई हो।" घरसे उसका अभिप्राय ससुराल-से न था, क्योंकि विवाहके बादसे उसका पति मेरे यहां रहता है। आजतक वह ससुराल गयी ही नहीं।

वह कभी कभी और भी अयुक्त बातें कहती थी। पूछा गया "मक्खन खायेगी" बोली "मेरे दांत कहां हैं जो मक्खन खाऊँ!" पूँछा "रोटी खायेगी?" बोली "क्या रोटी मेरे मुहँ में अट जायगी?" इन बातोंसे निश्चय हुआ कि पागल हो गयी है। होमियोपैथी इलाज होता रहा, परन्तु एक मासके लगभग उसकी दशा ज्योंकी त्यों रही, जीवन मरणकी विषम समस्यामें पड़ी हुई थी कभी कभी उल्टी सांस चलने लगती थी। मृत्युके सभी लक्षण प्रकट होते थे परन्तु नाड़ी स्वस्थ चलती थी। डाक्टर देख देख हैरान होता था।

एक रात लगभग ११ बजे होंगे, कि रोगिणी-की कोठरीमें धूप जलाई गयी कि हवा सुगंधित हो जाय। कुछ प्रेतबाधाके संदेहसे एक मित्र डाक्टरकी पुत्री श्री शान्तिदेवीने, जो स्नेहवश रोगिणीके पास रहती थीं, वह धूप उसकी नाकके पास सुँघायी, रोगिणी घबड़ा उठी और बोली "हटाओ, हटाओ, बड़ी दुर्गंध है।" श्री शान्ति देवीने हटानेसे इनकार किया, बोलीं जबतक अपना ठीक पता न देगी, मैं न हटाऊँगी।" फिर इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुआ—

शां०—तू कौन है?

रो०—कानमें बताऊँगी। [कान पासले जाने-पर] मेरा नाम दौलत है।

शां०—तू कहांसे आयी?

रो०—पिछवाड़ेसे। पास ही घर है।

शां०—तेरे बापका क्या नाम है?

रो०—बटुक।

शां०—तेरी मांका क्या नाम है?

रो०—फुलेहरा

शां०—तू कौन जातिकी है?

रो०—ब्राह्मणी।

शां०—तू यहां इस घरमें कैसे आयी?

रो०—अपनी चाचीके साथ।

शां०—क्यों आयी।

रो०—आमका अचार खाने आयी। चाची शान्ताकेलिये मोल लायी थी। [शान्ता मेरी रोगिणी पुत्रीका नाम है।]

शां०—तू इस लड़कीको क्यों सताती है!

रो०—यह आमका अचार खाती है और मुझे अचार बहुत पसन्द है, मैं इसीसे इसके साथ रहती हूं।

शां०—तू इसको कब कैसे छोड़ेगी?

रो०—मैं इसे कभी न छोड़ूंगी। एक महीनेमें इसे लेकर चली जाऊँगी।

यह वार्त्तालाप मेरी पत्नीके सामने हुआ। वह तो बहुत डर गयीं। उस समय किसी तरह रात काटी। मैं सो गया था। सवेरे मुझसे सारा वृत्तान्त कहा। मैंने उनसे कहा कि जबतक मैं परीक्षा न कर लूँ कोई राय नहीं दे सकता।

सवेरे आठ बजे फिर बकझक करने लगी तो मैं मौजूद था। मैंने भी अनेक प्रश्न पूछे। जितने सवाल किये गये थे उन्हें दुहराया और वही जवाब पाया। उनके अतिरिक्त यह प्रश्न किये। मैं अब प्रश्न और उत्तरको प्र० और उ० लिखूँगा, क्योंकि कभी मैं प्रश्न करता था कभी उसकी माता और कभी डाक्टर जो इस समय नित्यकी भांति आ गये थे।

प्र०—तू गौड़जीको जानती है? वह तेरे कौन हैं?

उ०—हां, वह तो मुहल्लेके ही हैं। मैं उन्हें चाचा कहती थी। वह मेरे कोई नहीं हैं। वह कायस्थ मैं ब्राह्मणी, उनका मेरा क्या नाता?

प्र०—क्या यह तेरी मां नहीं है ? [मांकी ओर दिखाकर]

उ०—नहीं, मां नहीं है। मेरी मां तो फुलेहरा है।

प्र०—तो यह कौन है ?

उ०—मैं नहीं जानती ? मुझे दीखता तो है ही नहीं।

प्र०—क्या तू अंधी है, बिलकुल नहीं दीखता?

उ०—हां, मैं बिलकुल अंधी हूं।

[इस अवसरपर रोगिणीकी माता फुलेहरा-का नाट्य करते हुए रोगिणीको "बेटी दौलतिया" कहकर प्यार करने लगती है, तो रोगिणी प्रसन्न होकर गोदमें लिपट जाती है। यह मेरे सिखलानेसे मेरी पत्नीने किया।]

प्र०—तेरी तबियत कैसी है ?

उ०—मैं बहुत अच्छी हूं। कोई दुःख नहीं है।

प्र०—तू कराहा चिल्लाया क्यों करती है ?

उ०—मैं कभी कराहती चिल्लाती नहीं।

प्र०—तुझे क्या किसी बातका दुख है ?

उ०—हां, मेरी धोती १५ बरसकी हो गयी। बिलकुल फट गयी है चूड़ियां टूट गयी हैं।

प्र०—अबार और यह चीज़ें मिलें तो तू चली जायगी ?

उ०—कैसे मिलेंगी ? मिलें तो भी इसको लिये बिना न जाऊँगी।

प्र०—जो तुझे आगमें जलाया जाय ?

उ०—नहीं। मुझे मत जलाओ। पर मैं जाऊँगी नहीं।

प्र०—तुझे हम पानीमें डुबा देंगे।

उ०—नहीं पानीमें मत डुबोओ। पर मैं जाऊँगी नहीं।

डाक्टर [जो तगड़े और लम्बे चौड़े आदमी थे, मुझसे] आइये साहब, हम लोग थामके कंडालमें डुबो दें। [हम दोनों उसके ना ना करते भी दोनों बाहें पकड़कर उठाना चाहते हैं। नहीं उठती तो लाचार छोड़ देते हैं। अत्यन्त भारी हो जाती है, और रोती है।]

मैं—मिरचोंका धुआं दूं ?

उ०—मुझे मिरचा (लाल मिरचें) बहुत पसन्द हैं। ज़रूर लाइये। [लाल मिरचोंके धुएंसे वह खुश होती है, उसे कोई कष्ट नहीं होता। सब लोग खांसते खांसते हैरान होते हैं।]

मैं—अच्छा मैं दवा सुंघाता हूं। [स्मेलिंग साल्ट तीव्र अमोनिया सुंघानेसे घबरा जाती है और सांस रोक लेती है। झट मुहँ हटाकर सांस खींच कर फिर रोक लेती है। ज़बरदस्ती सर पकड़ कर सुंघानेपर—]

उ०—जाती हूं, जाती हूं, ताला खोल दो।

मैं०—छतसे फांद कर चली जा !

उ०—[फिर सुंघानेपर] जाती हूं। अब न आऊँगी, छोड़ दो।

मैं—तीन बार वादा कर कि नहीं आऊँगी।

उ०—(नहीं आऊँगी) ३। हां ! जाती हूँ।

रोगिणी बैठी थी। अब लेट गयी। कहने लगी बड़ गरम है। पंखा हांको। अत्यन्त थकी थी। परन्तु सूजन ग़ायब। कोई रोग न था। आंखोंसे देखने लगी। कानोंसे सुनने लगी। सबको पहचानने लगी। पूछनेपर कहने लगी कि मुझे तो कुछ भी याद नहीं है। बेहोशीमें लज्जाशीला शान्ता बड़ी निर्लज्ज और संकोचहीन थी। अब फिर अपनी प्रमितावस्थामें आ गयी। भूखी थी। एक सप्ताह पीछे कुछ खाया। बातें करती थी। बिलकुल अच्छी थी। दो ढाई घंटे पीछे फिर वैसी ही दशा हो गयी। शरीर फूल आया बक झक आरम्भ हुआ।

उसे अब मालूम हुआ कि गौड़जी भगा देनेमें समर्थ हैं। वह मुझसे बेतरह डरी हुई थी। मेरी पत्नी भूत चुड़ैलको पहले नहीं मानती थीं। उन्हें परीक्षा करनेका शौक हुआ। अब यह निश्चय हो गया कि उसने बक झक शुरू किया और परीक्षक

लोग तय्यार हो गये। यह क्रिया कोई एक पक्षतक तो दिन रातमें तीन चार बार होती रही और बादको प्रायः प्रतिदिन एक बार शामको या रातको। अन्तमें उसे मैंने दो मासके लिये खदेड़ दिया।

नित्य नित्यकी परीक्षाओंमें अनेक बातें मालूम हुईं। उनका निष्कर्ष जो कुछ निकला सिलसिले वार कथारूपमें नीचे देता हूं। परीक्षाओंमें दो एक बड़ी विचित्र बातें हुईं। एक बार मैं रोगिणीके पास न था। दूर अपने कमरेमें था जब मैं बुलाया गया। बात यह थी कि चुड़ैलकी शक्तिकी परीक्षा हो रही थी। उससे शक्तिका परिचय मांगा गया। उसने कहा जो कहो सो करें। कहा गया, अच्छा, पानीसे भरा कलसा दांतोंके बल लिये उठ कर खड़ी हो जा। वह सहजमें बैठ गयी दांतोंसे कलसेका किनारा पकड़ लिया और उठाकर खड़ी रही। यह भयंकर खेल था, क्योंकि गर्भवतीके लिये बोझ उठाना गर्भके लिये हानिकर है।

एक दिन खौलते तेलमें देरतक अँगुली रखी। अँगुलीमें छाले नहीं पड़े। पीड़ा नहीं हुई।

मैं गायत्री मन्त्रसे अभिमंत्रित जल होमयोपैथिक दवाके बहाने जब देता था तब उससे उसका मुंह कंठ और पेट जल जाता था। छूनेसे उसका हाथ जलता था। परन्तु सच्ची होमियोपैथिक ओषधिके जलसे उसे कुछ न होता था।

एक बार रोगिणी सरसे पैरतक रज़ाईसे ढकी पड़ी थी। उस हालतमें उसके ऊपरसे स्मेलिंग साल्टकी बन्द शीशी लायी गयी। वह घबरा उठी। अमोनियासे पहलेका अनुभव उसे दुःखद था।

अभिमंत्रित चरखेके सूतको वरुणपाश कल्पित करके, जब वह सिरसे पांवतक ढकी हुई होती थी तब ऊपरसे चारों ओर उसे लपेट कर गाँठ देता था, तो चिल्लाने लगती थी। एक सूतमें गाँठ देता हुआ पांवकी कल्पना करके उसे आगमें डाल देता था तब चिल्लाती थी कि हाय, पाँव कस गये, जल गये, जल्दी करो, पानी डालो—इत्यादि।

घरमें शंख बजता था तो वह घबराती थी। इसलिए घर भरमें रोज शंख बजाया जाता था। इन्हीं दिनों कई बार रोगिणीके मुंहसे बड़ी दुर्गंध आयी। पूछा "कहां थी, तेरे शरीरसे बड़ी दुर्गंध आ रही है?" बताया "उस बाजेसे भागती हूं। पाखानेमें रहती हूं। मुझे विष्ठा खानेमें भी परहेज़ नहीं। उससे मुझे दुर्गन्ध नहीं मालूम होती।" इस दुर्गन्धको मिटानेके लिये गायत्री मंत्रसे फूंका हुआ एक घूँट जल ज़बरदस्ती पिलाया गया। दुर्गन्ध मिट गयी।

वह दुर्गाके नामसे काँपती थी। घरमें इसीलिये दुर्गा पाठ कराया। जहाँ पाठ होता था, वहां न रहती थी। रोगिणीको दुर्गा कवच पहना दिया जब इसनेपर भी चुड़ैल आयी तब पूछा "क्यों, दुर्गा कवचको नहीं डरती?" तो बोली "वह पेटकी ओर है। मैं पीठकी ओर रहती हूँ। श्रीमद्भागवतकी पोथी चारो तरफ़ फिरानेसे रोती चिल्लाती, नख़रे करती परन्तु भागती न थी।

मैं उसे कल्पनासे खड़ाउओंसे मारता और तरह तरहके दंड देता था। चिल्लाती थी, पर छोड़ती न थी। फिर मैंने कल्पित वरुणपाशमें बांधकर अन्तमें मारा, पीटा, थुकवाया-चटवाया जलाया, स्मेलिंग साल्ट सुँघाया। भाग न सकती थी क्योंकि बँधी थी। बहुत बिनती की कि छोड़ दो अब कदापि न आऊँगी। मैंने छोड़ दिया तो दो मासतक नहीं आयी। मैं निश्चिन्त सा हो गया। परन्तु दो मास बाद पूरे दिन होनेपर पीड़ा हुई। जन्मके पहले पेटमें बच्चा मर गया। वहां रातको चुड़ैलका आवेश हुआ। उसने क़बूल किया कि बच्चा मैंने ले लिया। खेला रही हूं। अब इसे भी लेकर जाऊँगी। गौड़ जीके डरसे छिपी रहा करती थी।

अस्पतालसे रोगिणी घर आयी। वही बीमारी जो पहले थी अब उग्र रूपमें दिखाई दी। अब वह प्रकटमें किसीसे बात नहीं करती थी। पीड़ासे बेचैन दिन रात घरमें भागती फिरती थी। डाक्टरने जबाब दे दिया। बोले, जबतक चुड़ैल दूर न होगी, कोई इलाज काम न करेगा।

लड़कीको चैनपुर लेगया जो गया लैनपर भबुआ रोड स्टेशनसे लगभग १७ मीलपर है। यहाँ हरसू ब्रह्मका चौरा है। यहांकी सब लीलाएं देखीं। मुझे यहांकी सत्यतामें विश्वास होगया। जो कुछ हुआ उसका विस्तार फिर कभी लिखूँगा। वह चुड़ैल जला दी गयी। अब शान्ताको वह सब रोग नहीं हैं। कोई कष्ट होता है तो डाक्टर इलाज करते हैं।

नित्यके बारंबारके अनुभवसे, प्रश्नोंसे पूर्व इतिहासके अन्वेषणसे, परीक्षाओंसे, जो निष्कर्ष निकला अब उसे संक्षेपसे यहां देता हूं।

लगभग पन्द्रह बरसके हुए कि जब मैं प्रयागसे काशी आता था और अपने घर ठहरता था तब मेरे घर बहुधा नलसे पानी लेनेको दौलत नामकी मेरे पिछवाड़े रहने वाले एक भड़ुलीकी लड़की आया करती थी। चार पांच बरसमें उसका विवाह भी हो गया, उसके दो बच्चे हुए और वह अपने मायकेमें ही मर गयी। उसके माता पिता, पति, सास ससुर किसीने उसका मृतक कर्म्म नहीं किया। उसकी एक आंखमें फूलो थी। मरती बेर दोनों आंखें अंधी हो गयी थीं। गर्भवती थी और बदन फूल आया था। उसकी ननँद और लड़की पहलेसे मर चुकी थीं। यह तीनों चुड़ैलें आस पासमें भरमती फिरती थीं। मेरा रहना उसके जीवनमें प्रयागमें ही होता था। मेरी लड़की जो इस समय उससे आविष्ट थी, तब बहुत छोटी, लगभग छः या सात बरसकी थी और तबतक काशीमें रहनेका उसे अवसर नहीं मिला था। वह दौलतको न जानती पहचानती थी और न इस लड़कीमें कोई महत्व ही था कि इसकी कभी मेरे यहां चर्चा भी हुई हो। इस लड़कीको मरे दो वर्षसे अधिक हो चुके थे। जब हम लोग अपने घर काशीमें रहने लगे पिछवाड़ा होनेके कारण मेरे घरसे बटुकके घर वालोंकी कोई विशेष आवा जाई न थी।

सितम्बर १६२० में मेरी छोटी लड़कीको जो उस समय तीन बरसकी थी हैज़ा होगया। इलाजसे हैज़ा थमा तो निउमोनिया हो गया। दोनों फेफड़ोंमें प्रदाह था। बचनेकी आशा न थी। अन्तमें ओषजन चिकित्सासे बची। जब उसकी दशा अत्यन्त निराशा जनक थी तब वह अंधी थी, बहरी थी, बेहोशीमें विचित्र प्रलाप करती, कहती थी "जगह बुहार दो, लालटेन जलाकर रख दो, मुझे चुनरी पहनाओ, सहानी चूड़ियां पहनवा दो। माके पास ले चलो। बापके पास ले चलो" इत्यादि। प्रलाप मात्र समझकर हम लोगोंने कभी ध्यान न दिया। परन्तु मुझे बिना कोई सूचना दिये मेरे चमार सईसकी सलाहसे स्त्रियोंने कुछ उतारे पतारे उस समय रखवा दिये थे।

इस बार जब यही बातें बड़ी लड़की बकने लगी तब शुबहा हुआ। मैंने आविष्ट कन्यासे मालूम किया कि वह और कई और प्रेतात्माएँ मुद्दतसे मेरे घर रहती हैं क्योंकि घर प्रायः जन शून्य रहता था। जब हम लोग रहने लगे, दौलत बीमार लड़कीको लगी और उसके वाग्यंत्रसे उसने अपनी माँगे शुरू कीं। अभीष्ट पूर्त्तिपर उसे छोड़ दिया। फिर वह मेरी एक नवजात लड़कीको उड़ा ले गयी। अबतक वह उसके पास है।

उसके प्रेत जीवनका भी कुछ हाल मालूम हुआ। वह अब भी अंधी और बीमारीकी दशामें थी। उसको कपड़ोंकी और भोजनकी आवश्यकता पड़ती थी। जीवन रक्षाके लिये नहीं बल्कि स्वादकी वासना तृप्तिके लिये। उसको सरदी गरमी बरसातका कोई कष्ट नहीं होता था। उसे मार पीट आदिसे भी बहुत कष्ट नहीं होता था। परन्तु रोती चिल्लाती ज़रूरतसे ज़्यादा थी कि

हम उसे कष्ट न दें। आवेशकी दशामें जो कुछ सुख दुःख होता था वह आविष्ट लड़कीको कुछ नहीं होता था। सब उसी चुड़ैलको प्रतीत होता था। वह चुड़ैल हिन्दू थी, दुर्गा, देवी, और मंत्रोंको मानती थी और उसपर मंत्रोंका प्रभाव भी पड़ता था। मंत्रोंसे उसे कष्ट होता था। और प्रेतात्माएँ जो घरमें रहती थीं और नीच प्रकृतिकी न थीं वह उसे डाटती थीं और उससे घृणा करती थीं।

इस चुड़ैलकी प्रकृति नीच थी। यह व्यभिचारिणी न थी, पर बड़ी चटोरी थी। इसे हम लोग तंग करते थे इसलिये यह भी तंग करती थी। तंग कैसे करती थी सो सुनिये। घरमें किसीकी आँख लगी कि उसको सपनेमें बासन माँजनेका इतना शोर सुनाई देने लगा कि आँख खुल गयी। देखते हैं तो सन्नाटा है। झूठा सपना है। घरमें इस अनुभवसे कोई बचा न था। मैं तो कई रात जागा। फिर गायत्री मंत्रके जाप आदिके द्वारा निद्रा पायी। सोते सोते अब मालूम होने लगा कि मेरे ज़रूरी काग़ज़ कतरे जा रहे हैं। झट उठा। देखा, कुछ नहीं। एक मित्र डाकूर जो बीमार थे मेरे यहां रहते थे। पेशाब करने उठे। मोरीके पास कंडाल था। दो बजे रातका समय धुंधले प्रकाशमें उन्हें कंडालके पास एक स्त्री दीखी। यह समझ कर कि मेरे परिवारकी कोई देवी होगी, वह रुक गये। परन्तु जब वह न हटी उन्हें शुबहा हुआ, पूछा, तुम कौन हो, तो ग़ायब हो गयी। वह पेशाब करके कमरेमें गये तो कमरमें ऐसा पीड़ा हुई कि चीख़ने लगे। मैं उठा। सेंकवाया ओषधि दी। नींद उचट गयी थी। चारपाईपर पड़ा डाकूरीकी एक पुस्तक पढ़ रहा था। किसीने ज़ोरसे बन्द दरवाज़ेको धक्का दिया। खोलता हूँ तो कोई नहीं। घरमें सब सो रहे हैं। खुले किवाड़ छोड़ कर सोया कि तंग न किया जाऊँ, तो आँख लगते ही वही बरतन माँजनेका शोर। हैरान हो पाँव धोकर जल लेकर आया। शय्याका मार्जन करके उसके चारों ओर मंत्रपूत जलसे सिंचन करके प्राणायाम करता हुआ सोया, फिर बाधा नहीं हुई। सबेरे जब आविष्टकी परीक्षा की तो उसने हमारे मित्र डाकूरकी हंसी उड़ाते हुए कहा कि रातको मैंने उन्हें खूब डरवाया और जब लघुशंका करके अपने बिस्तरपर गये तो मैंने कमरमें वह घूंसा लगाया कि चीख़ने लगे और किवाड़ भड़भड़ाकर गौड़जीको सोने नहीं दिया।

जब जब आवेश होता था, मैं मंत्रपूत जलसे सिंचन करता था। एक बार मेरी हँसी उड़ानेको आंगनमें बैठी स्त्रियोंपर छतपरके कंडालसे पानी छिड़कती मुंडेलसे दिखाई दी। स्त्रियां डर कर घिघियाने लगीं। शब्द सुन कर एक आदमी तुरंत भीतर गया तो ऊपरसे झांकते हुए एक स्त्रीका रूप देखा। लालटेनको लेकर ऊपर गया तो कुछ न था।

इन अनुभवोंसे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि जिन व्यक्तियोंकी बात प्रकृति होती है या बात रोग ग्रस्त होते हैं उन्हें नीच प्रेतात्माएं अपनी वासना तृप्तिका साधन बना लेती हैं। उनके लिंग-देहकी दशा आवेशके लिये अनुकूल होती है। जैसे सड़नसे कीड़े आकृष्ट होते हैं वैसे ही बात विकारसे बुरे प्रेत आकृष्ट होते हैं। इस लिये बात रोगियोंको चाहिये कि वह यह भी पता रखें कि कोई नीच प्रेतात्मा तो उनके शरीरको अपनी निकृष्ट वासनाओंकी तृप्तिका साधन नहीं बना रही है।

यह लेख काफ़ी लम्बा हो गया है। इसके सम्बन्धकी और बातें और हरसूब्रह्मके चौरेका अपना अनुभव फिर भी दूंगा।

प्रधान बाटरियां

[ले० श्री शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

(गताङ्कसे आगे)

डैनियल बाटरी—यह बाटरी नीचे लिखे ढंगसे बनायी जाती है। एक तांबेका चोंगा (गिलास) लेकर उसमें नीले तूतियेका सम्पृक्त घोल डाल दिया जाता है। इस घोलमें चीनीका गिलास रख दिया जाता है। इसमें तेज़ाब मिला पानी (आयतनके हिसाबसे १ गुना तेजाब, १० गुना पानी) डालकर उसमें पारा चढ़ा हुआ जस्तेका छड़ रख दिया जाता है। चित्रमें ब तांबेका बरतन, ग चीनीका गिलास और ज जस्तेकी छड़ है।
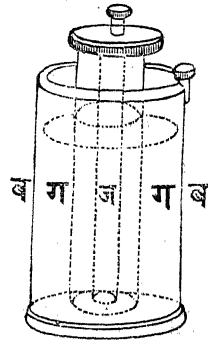
चित्र ११

तांबेके गिलासमें ऊपरकी ओर एक छेदोंदार तांबे का हलका लगा रहता है जिसपर तूतियेकी डलियां रख दी जाती हैं।

यह बाटरी कई रूपमें मिलती है। गंधकके तेज़ाबकी जगह नमकका घोल डाला जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि नीले तूतियेका घोल नमकके घोलसे घनत्वमें अधिक हो तो कांचके बरतनमें तांबेका टुकड़ा डालकर नीले तूतियेका घोल भरा जाय और ऊपरसे धीरे धीरे नमकका घोल इस प्रकार डाला जाय कि नमकका घोल ऊपर रहे। इसमें अब मिट्टीके गिलासकी आवश्यकता नहीं रहती। नमकके घोलमें जस्तेकी छड़ डाल दी जाय तो बाटरी बन गयी। पर उस जस्तेका कोई भाग नीले तूतियेके घोलमें न डूबना चाहिये। कभी कभी नीले तूतिये और नमकके पानीके बीचमें लकड़ीके बुरादेकी तह डाली जाती है। उपरोक्त बाटरियां मुलम्मा करने वालोंके पास देखनेमें बहुधा आयी होंगी, क्योंकि यह मुलम्मेके लिए अच्छी हैं।

यह बाटरी साधारण बाटरीसे अधिकदेरतक काम करती रहती है पर इसमें भी एक कमी है। गिलासके बाहरका नीला तूतिया रस रस कर जब गिलासके भीतर पहुँच जाता है तो धाराका प्रवाह धीमा पड़ जाता है। इसके बनानेका ढंग ऐसा है जिससे इसकी भीतरी बाधा अधिक है इसी कारण इससे प्रबल धारा नहीं मिल सकती है।

डेनियल बाटरीकी. वि० सं० श. १ से १.०२ वोल्ट और लेकलांशिकी १.५ वोल्टके लगभग होती है और इन दोनोंकी भीतरी बाधा १ ओह्मके लगभग होगी इसलिए प्रबल धारा मिलना असम्भव है। इसी कारण ग्रोव, बुन्सन और बाइक्रोमेट बाटरियां बहुधा उन स्थानोंपर देखनेमें आवेंगी जहां प्रबल धारा थोड़ी देरके लिए चाहिए इनसे भी बहुत देरतक प्रबल धारा नहीं मिल सकती है। ऐसी बाटरी जिससे प्रबल धारा बहुत देरतक मिल सके आगे परिच्छेदमें वर्णन करेंगे, यहां इन तीनों बाटरियों और प्रामाणिक बाटरियोंको वर्णन कर समाप्त करदेंगे। लेकलांशि और लेलंडि बाटरियोंमें तो उज्जनको ओषजन देनेवाले पदार्थ मैंगनीज़ और क्यूपरिक ओक्साइड थे, ग्रोव और बुन्सन बाटरियोंमें शोरेका तेज़ाब रहता है। बे रोग़न किये हुए चीनी मिट्टीके गिलासमें शोराका तेज़ाब भरकर उसमें प्लेटिनमकी पत्ती डाल दी जाती है। और यह गिलास एक दूसरे मिट्टी या कांचके गिलासमें जिसमें गंधकका तेज़ाब और जस्तेकी छड़ रहते हैं रख दिया जाता है। चित्रमें 'क' मिट्टी या कांचका गिलास है जिसमें 'ग' गंधकका तेज़ाब भरा है और 'ज' जस्तेकी छड़ (पारा चढ़ी हुई रखी है. 'च' चीनीका गिलास है जिसमें शोरेका तेजाब भर दिया गया है 'प' प्लेटिनम की पत्ती रख दी गई है। प्लेटिनमकी पत्ती और 'ज' पर तार दबानेके लिए पेच लगे रहते हैं। 'प' धन
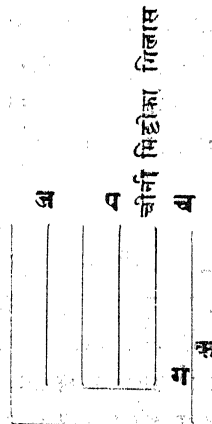
ज प च
चीनी मिट्टीका गिलास
क
ग
मिट्टी या कांचका गिलास

चित्र १२

(गरम) सिरा और 'ज' ऋण (नरम) सिरा है। बाहरी चक्करमें धारा 'प' से प्रवेश करेगी और 'ज' से बाटरीमें लौट जावेगी, यह ग्रोव बाटरी हुई। इसकी वि० सं० श. १·९ वोल्टके लगभग होगी।

चूं कि प्लेटिनम बड़ा महंगा होता है इसलिए बुन्सनने इसके बदले कार्बन (ग्रेफाइड) की छड़ इस्तेमाल की। बुन्सन और ग्रोव बाटरियोंमें केवल इतनाही भेद है और उनकी वि० सं० शक्तियां भी बराबर सी ही हैं।

इन दोनोंमेंसे काम करते समय बदबूदार गैसें निकलती रहती हैं इसलिए भी यह लोगोंको पसंद नहीं आती हैं।

बाइक्रोमेट बाटरी बनानेके लिए एक मिट्टी या कांचका गिलास लेकर उसमें गंधकका तेजाब भर-दीजिए और तेजाबमें पोटेश बाईक्रोमेट छोड़ दीजिए। इस मिश्रितमें एक ओर जस्तेकी छड़ और दूसरी ओर कार्बनकी छड़ रख दीजिए। यह तो साधारण बाटरीकी ढंगकी बाटरी है। इसमें बाइक्रोमेट तेजाबमें मिला दिया जाता है और तांबेकी पत्तीके बदले कार्बनकी छड़ रख दी जाती है। प्रयोगोंसे पता चला है कि सोडियम बाईक्रोमेट पोटेश बाईक्रोमेटके बदले ज्यादा अच्छा काम देता है। यह चीजें नीचे लिखे वजनोंमें मिलाना चाहिए।

पानी १००० घ. श

सोडियम बाइक्रोमेट ७० ग्राम

गंधकका तेजाब (तेज़) १०० घ. श

जिन पदार्थोंसे उज्जनको ओषजन मिलती है उनको बाधक नाशक भी कह सकते हैं क्योंकि उज्जन-को बाधक कह आये हैं और नाशकसे केवल इतना ही अभिप्राय है कि उसको उस जगह अथवा अवस्थासे हटा दे कि जिसमें वह हानिकारक थी।

बाइक्रोमेट बाटरी और भी अच्छा काम कर सकती है, यदि नाशक को बे रोगन वाले चीनीके गिलासमें रखदें जैसे शोरेका तेज़ाब (जो नाशक था) ग्रोव अथवा बुनसन बाटरीमें चीनीके गिलासमें रखा गया था।

जिन बाटरियोंमें मसामदार (बेरोग़नवाला) चीनी मिट्टीका गिलास काममें आता है उनके संबंधमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि गिलासके मसाम (बारीक छेद) लवणोंके रवे जमनेके कारण बंद न हो जावें। जिन बाटरियोंमें दो दो द्रव इस्तेमाल होते हैं उनको बहुत देरतक ठाली समयमें एक दूसरेके पास नहीं छोड़ना चाहिए नहीं तो एक दूसरेमें प्रवेश कर दोनोंको और बाटरीको ख़राब कर देंगे।
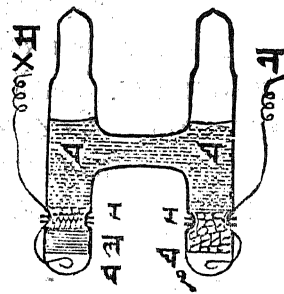
चित्र १३
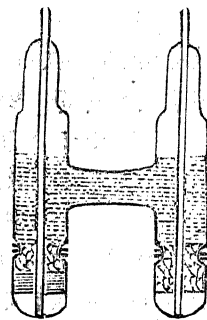
इस चित्रमें यह दिखलाया है कि प्लेटिनमके तारोंको नालियोंके पेंदोंमें न गलाकर छोटे छोटे व्यासकी कांचकी नालियोंके सिरोंमें गलाकर उनको ऊपरसे नलियोंमें छोड़ दिया जावे।

चित्र १४

यदि बनाकर इन बाटरियोंको थोड़ी देर रख दिया जावे तो उनकी वि० सं० श कम होती जावेगी

और अधिक देरके बाद तो किसी कामकी नहीं रहेंगी इसलिए वेस्टनने ऐसी बाटरी बनायी जिससे प्रबल धारा तो अवश्य नहीं ली जा सकती परन्तु जो बनाकर रख दी जा सकती है और जिसकी वि० सं० श में किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता है। यह इस प्रकार बनायी जाती है।

दो शीशेकी पेंदेदार नलियां लेकर बीचमें एक आड़ी नलीसे जोड़ दी जाती हैं जैसा चित्रमें दिखलाया गया है। एक नलीके पेंदेमें थोड़ासा पारा 'प' डाल दिया जाता है पारेके ऊपर एक तह 'ल' Mercurous Sulphate और केडमियम गंधेतकी लेईकी रहती है। इस तहपर ($Cdso_4$) केडमियम गंधेतके रवे रख दिये जाते हैं। दूसरी नलीके पेंदेमें पारेमें केडमियमका घोल (१२.५ भाग केडमियम और ८७.५ पारा) $घ_१$ डालदिया जाता है। इस घोलके ऊपर एक तह ($Cdso_4$) केडमियम गंधेतके रवोंकी लगा दी जाती है। नलियोंकी बाक़ी हिस्सोंमें आड़ी नलीके कुछ ऊपरतक ($Cdso_4$) केडमियम गंधेतके सम्पृक्त घोलसे भर देते हैं। नलियोंके पेंदोंमें छोटे छोटे प्लेटिनमके तार गला दिये जाते हैं। इनका एक एक सिरा पारे और केडमियमके घोलमें रहता है और दूसरा नलियोंके बाहर। बाहरी सिरे तांबेके तारोंसे बकसके ढकनेके ऊपर पेचोंसे जोड़ देते हैं इन पेचोंके नीचे तार दबाकर बाहरी चक्करमें धारा बहायी जा सकती है। पारेसे जुड़ा हुआ तार धन सिरा और घोलसे जुड़ा हुआ तार ऋणसिरा होता है। इन दोनों नलियोंके मुंह (चित्र १३ की बाटरीमें) तो ऊपरी हिस्सेको गलाकर बंदकर देते हैं और दूसरी तरहकी बाटरीके नलियोंके मुंहको काग और मेरीन गिल्यू द्वारा बंद कर देते हैं। बंद करनेकी ज़रूरत इसलिए है कि भीतरी द्रव किसी प्रकार ऊपर न आवें नहीं तो बाटरीके भीतरी मसालोंकी स्थिति बदल जावेगी।

बाटरियोंकी वि० सं० श तापक्रम बढ़नेसे अवश्य ही कुछ कम होजाती है केडमियम बाटरी (वेस्टन बाटरीको केडमियम बाटरी भी कहते हैं) की वि० सं० श में तापक्रम बढ़नेसे जो अंतर पड़ता है इस समीकरणसे सूचित किया जाता है।

$$व_त = व_{२०} — \cdot००००४०६ (त — २०) — \cdot०००००९५ (त — २०)^२ — \cdot००००००१ (त — २०)^३$$

यहां $व_{२०}$—२०°श पर वि० सं० श. है अ $व_त$ किसी 'त° श' तापक्रमपर, इससे यह स्पष्ट है कि वि० सं० श में तापक्रम बदल जानेसे बहुत कम भेद पड़ता है। इसी कारण इस बाटरीको आजकल प्रामाणिक मानते हैं। इससे पहले क्लार्क बाटरी प्रामाणिक मानी जाती थी। इसमें और वेस्टन बाटरीमें केवल इतनाही भेद है कि केडमियम और केडमियम गंधेतके बदले जस्ता और जस्तगंधेत काममें लाया-जाता है। इसकी वि० सं० श में केडमियम बाटरीकी अपेक्षा तापक्रमके बदलनेसे अधिक अंतर पड़ जाता है इसीलिए इसका चलन कम हो गया है। इन बाटरियोंकी भीतरी बाधा बहुत है परन्तु इसपर भी बहुधा १०,००० ओह्मकी बाधा इनके साथ शृंखला बद्ध कर देते हैं ताकि भूलसे भी किसी अवसरपर इनसे प्रबल धारा न ली जासके। यह केवल प्रमाणकी तरह काममें आती है। इनसे और बाटरियोंकी वि० सं० श की तुलना की जा सकती है। इनको प्रामाणिक बाटोंकी तरह काममें लाना चाहिए।

परवर्तीय बाटरियां

[ले० श्री सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

ब एक कांच या मिट्टीका बरतन जिसपर गंधकके तेजाबका कोई असर न पड़े लेकर उसमें हलका गंधकका तेजाब (पानीमें मिला हुआ) भर दीजिए। दो नलियां लीजिए जिनके पेंदोंमेंसे प्लेटिनमके तार गला दिये गये हों। बाहरकी ओर इन तारोंका लम्बा होना आवश्यक नहीं है परन्तु भीतरकी ओर नलियोंके बराबर (अथवा कुछ ही कम) लम्बे होने चाहिए।

इनमें हलका तेजाब भरकर डट्टोंके सहारे तेजाब भरे बरतन 'ब' में उलटे लटका दीजिए जैसा चित्रमें दिखलाया गया है।
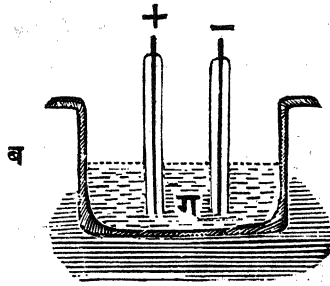
चित्र १५

किसी बाटरीका धन सिरा बांई नलीके तारसे और ऋण सिरा दहिनी नलीके तारसे जोड़कर धारा बहाइए, बांई नलीमें ओषजन और दहनी नलीमें उज्जन जमा होते जावेंगे, कुछ देर धारा बहाकर बाटरीको खोल दीजिए और किसी धारासूचक या धारामापकको नलियोंके प्लेटिनमके तारोंसे जोड़ दीजिए, जोड़ते ही धारासूचकसे पता चलेगा कि उसमें धारा बहने लग गयी है। नलियोंमें जो गैसें जमा हो गयी थीं उनके आयतन कम होते जाते हैं और कुछ देर बाद गैसें गायब हो जावेंगी और धारा चलना बंद हो जावेगी।

अब यदि फिर पहलीकी नाईं बांई नलीके तारसे किसी बाटरीके धन सिरेको और दहिनी नलीके तारसे ऋण सिरेको जोड़कर धारा बहावें तो नलियोंमें गैसें फिर भर जावेंगी, और बाटरीको फिर अलग कर कर यदि उसकी जगह धारामापक अथवा कोई दूसरा यंत्र जोड़ दिया जावेगा तो उसमें धारा बहने लगेगी और जबतक गैसें समाप्त न हो जावेंगी बहती रहेगी, यह उलट फेर कितनी ही बार किया जा सकता है।

यों कहिए कि इस यंत्रने थोड़ी देर बाटरीका काम किया। धारामापकमें धाराकी दिशासे ज्ञात होगा कि बांई नलीका तार इस बाटरीके धन सिरे और दांई नलीका तार इसके ऋण सिरेका काम करता है पहले पहल इस प्रयोगको ग्रोवने किया और इस बाटरीका नाम गैस बाटरी रखा। हम इस बाटरीको गैस परवर्तीय बाटरी कहेंगे। जिस बाटरीसे इसमें पहिले धारा बहाते हैं उसको भरनेवाली बाटरी कह सकते हैं। बाटरीके अतिरिक्त किसी अन्य धारा-जनकसे भी यह काम लिया जा सकता है। भरनेवाली बाटरीसे इस परवर्तीय बाटरीमें धारा बहाना इसका भरना कहलाता है। भरनेवाली बाटरीको अलग कर कर धारामापक अथवा किसी अन्य यंत्रमें इस परवर्तीय बाटरीसे धारा बहाना इसका खाली करना कहलाता है। भरनेके समय धारा बाईं नलीके तारसे तेजाबमें प्रवेश करती है और दहनी नलीके तार द्वारा निकलती है अर्थात् बांएसे दांएको जाती है, परन्तु खाली करते समय धाराकी दिशा उलट जाती है; क्योंकि जैसा अभी बतलाया, धारा बाहरी चक्करमें बांई नलीके तारसे प्रवेश करती है और दांई नलीके तारसे बाटरीके अंदर दाखिल होती है। धारा तो बंद चक्करमें चलती है इसलिए इसको भीतर दांईसे बांई ओर जाना चाहिए। अर्थात भरते समय बाटरीके भीतरी चक्करमें धारा जिस दिशामें बहायी जाती है खाली होते (करते) समय बाटरीके भीतरी चक्करमें धाराकी दिशा उलटी होती है या यों कहिये कि खाली करनेवाली धाराकी दिशा भरनेवाली धाराकी दिशाकी उलटी होती है।

यहां हमने पहले बाटरीमें धारा बहाकर नलियोंमें गैसोंकी मात्रा भरली और फिर बाटरीसे धारा बहाकर उनको गायब करा दिया। गैसोंको मात्राओंका बिजलीकी मात्रासे यह सम्बन्ध है।

$$मा = म\ क$$
$$= म\ धस$$

यहां मा किसी पदार्थकी मात्रा जो ध धाराके 'स' सेकंड तक बहनेसे निकलती है और म उसका विद्युत योगभार है। 'क' कूलम्बोंकी संख्या अथवा एम्पों और सेकंडोंका गुणनफल है।

इस समीकरणसे यह तो स्पष्ट ही है कि जितनी अधिक देरतक एक नियत प्रबलताकी धारा बहायी

जावेगी गैसोंकी मात्रा उतनी ही अधिक जमा होगी और खाली करते समय एक नियत प्रबलताकी धारा अधिक समय तक मिल सकेगी। जितनी बिजलीकी मात्रा किसी बाटरीसे मिल सकती है वह उसकी समाई कहलाती है। कुलम्ब बहुत छोटी इकाई है इसलिए इसकी ३६०० गुणी अर्थात् एम्पियर—घंटा इकाई मानकर बाटरीकी समाई एम्पियर घंटोंमें दी जाती है। जैसे किसी मोटरकारको बाटरीकी समाई ८० एम्पियर-घंटे हो तो इससे यह अभिप्राय है कि पूरी तौरसे भरी हुई बाटरीसे ८ एम्पकी धारा १० घंटेतक ली जासकती है। जितनी बिजलीकी मात्रा किसी बाटरीमें भरी जासकती है और जितनी उससे खाली करते समय ली जा सकती है दोनोंमें सम्बन्ध अवश्य ही है। इसलिए यदि खाली करते समय अधिक मात्रा मिल सकती है तो भरते समय भी अधिक मात्रा भरना पड़ेगी। ग्रोव वाली बाटरीमें जो मात्रा भरी जा सकती थी नलियोंके आयतन पर निर्भर थी। आयतन बढ़ा देनेसे समाई बढ़ जावेगी और घटा देनेसे घट जावेगी।

ग्रोवकी बाटरी प्रचलित नहीं है क्योंकि इससे प्रबल धारा नहीं मिल सकती। प्लांटेने दो सीसेकी पत्तियां हलके तेज़ाबमें रखी और बाटरीसे दोनों पत्तियोंके बीचमें धारा बहायी। जो पत्ती बाटरीके धन सिरेसे जुड़ी हुई थी और जिसपर ओषजन आता था उसका सीसा ओषजनसे मिलकर सीसा द्विओषद (Lead Peroxide, PbO_2) बनता जाता था। थोड़ी देरके बाद ओषदका खोल उस पत्तीपर चढ़ गया इसके बाद अधिक सीसा ओषजनसे नहीं मिल सकता था। जिस पत्तीपर उज्जन जाता था उसपर सिवा उसके साफ़ हो जानेके और कोई परिवर्तन उसमें नहीं हुआ। यह दोनों पत्तियां तेज़ाबमें रखी हुई बाटरीका काम दे सकती हैं। यदि किसी धारामापकसे यह जोड़ दी जावें तो पता चलेगा कि ओषदसे ढकी हुई पत्तीसे बाहरी चक्करमें धारा दाखिल होती है और दूसरी पत्तीको लौटती है अर्थात् ओषदसे ढकी हुई पत्ती धन सिरे और दूसरी पत्ती ऋण सिरेका काम देती है। ओषदसे ढकी हुई पत्तीको धन पत्ती और दूसरीको ऋण पत्ती कहेंगे। प्लांटेने यह भी देखा कि यदि यह बाटरी थोड़ी देर बिना कामके छोड़ दी जावे या दोनों प्लेटोंको एक छोटे तारसे जोड़ दें जिससे बाहरी चक्कर छोटा हो तो ओषद गंधेतमें बदल जाता है। फिर उसी दिशामें धारा बहानेसे (ताकि ओषजन इस पत्ती पर आवे) गंधेत ओषदमें बदल जाता है। अधिक समयतक धारा बहानेसे सीसेकी अधिक मात्रा ओषदमें बदल जाती है। हर बेर भरने और खाली करनेसे ज्यादा ज्यादा सीसा बदलता जावेगा अर्थात् प्लेटकी समाई बढ़ती जावेगी। कोरे सीसेवाली बाटरीको खाली करनेपर भी ऋण प्लेटमें कोई परिवर्तन नहीं आया। इसके बाद यह देखा गया कि यदि ओषदसे ढकी हुई प्लेटको बाटरीके ऋण सिरेसे जोड़कर पत्तियोंके बीचमें धारा बहायी जावे, जिससे इस प्लेटपर उज्जन आने लगे, तो ओषद गंधेतमें बदलता हुआ अधिक देरतक धारा बहानेसे स्पंजी सीसेमें बदल जावेगा। ऐसे स्पंजी सीसेवाली पत्ती खाली करते समय गंधेतमें बदल जाती है जो भरते समय फिर स्पंजी सीसेमें बदल जावेगी। साधारण सीसेकी पत्तियोंको ओषदसे ढकना और स्पंजी सीसेमें बदलना (धन और ऋण) पत्तियोंका बनाना कहलाता है।

प्लांटेने यह साबित कर दिया कि यदि तेज़ाब मिश्रित पानीमें सीसेकी दो पत्तियाँ रख कर उनके बीचमें किसी धारा-जनकसे धारा बहायी जावे तो धारा-जनकके धन सिरेसे जुड़ी हुई पत्ती ओषदके खोलसे ढक जाती है। ऐसी ओषदसे ढकी हुई पत्ती और दूसरी सीसेकी पत्ती तेज़ाबमें रखी हुई बाटरीका काम करती हैं। ओषद वाली पत्ती इस बाटरीकी धन पत्ती है और कोरे सीसे वाली इसकी ऋण पत्ती कहलाती है, जिससे यह मतलब है कि जो यंत्र इन प्लेटोंसे जोड़ा जावेगा उसमें ओषद ढकी हुई प्लेटसे धारा प्रवेश करेगी और दूसरी प्लेटको लौट जावेगी। यह भी उन्होंने दिखला दिया कि यदि ओषद ढकी हुई प्लेटको धारा जनकके ऋण सिरेसे जोड़ दें अर्थात्

पत्तियोंके बीचमें धाराकी दिशा बदल दें तो ओषद ढकी हुई प्लेट स्पंजी सीसेमें बदल जाती है जो कोरे सीसेकी प्लेटके अपेक्षा कहीं अच्छा काम करती है। कोरा सीसा बाटरी खाली करते समय गंधेतमें नहीं बदल जाता था और भरते समय यदि कोरा सीसा हो तो स्पंजी सीसा नहीं बनता क्योंकि उज्जन गंधेत-को ही भरते समय स्पंजी सीसेमें बदल सकता है। स्पंजी सीसेमें भरते और खाली करते समय परिवर्त्तन होने लगा जो कोरे सीसेमें नहीं होता। इतने वृत्तान्त के बाद यह समझमें आना आसान है कि एक ऐसे बरतनमें जिसपर तेजाबका असर न पड़े तेजाब भर कर यदि उसमें दो सीसेकी पत्तियां रख दें और उनके बीचमें थोड़ी देरतक धारा एक दिशामें और थोड़ी देर तक उलटी दिशामें बहावें तो चंद बेर ऐसा करनेसे प्लेटें बन जावेंगी और अन्तमें एक दिशामें कुछ देरतक धारा बहा कर इस परवर्तीय बाटरीको भर लिया जा सकता है। भरनेके बाद इससे काम ले सकते हैं। जब यह खाली होनेको आवे फिर भर लिया जावे। इसी प्रकार इसको मुद्दततक इस्तेमाल कर सकते हैं।

यह तो पाठकोंको साफ़ मालूम हो गया होगा कि प्लांटेकी विधिसे प्लेटोंके बनानेमें बड़ी देर लगती है क्योंकि कई बार धारा एक दिशा और उलटी दिशामें बहाना पड़ती है। फौरेने दिखलाया कि प्लेटोंके बनाने का समय बहुत कम किया जा सकता है और धाराकी दिशाके भी बदलनेकी आवश्यकता न होगी यदि कोरे सीसेकी प्लेटें न लेकर सींदूरसे ढकी हुई प्लेटे ली जावें। सींदूर भी सीसेका ओषद है जो कि द्विओषदसे कम दर्जेका है। द्विओषदमें सीसेके ७ भाग ओषजनके एक भागसे मिले होते हैं और सींदूरमें १० भाग सीसे के एक भाग ओषजनसे मिले होते हैं। इसलिए फौरेने कहा कि जब ऐसे प्लेटोंको तेजाबमें रखकर धारा बहायी जावेगी तो धन सिरेसे जुड़ी हुई प्लेटका सींदूर जिसपर ओषजन आवेगा द्विओषदमें जलदी जलदी बदल जावेगी और धन प्लेट बन जावेगी। दूसरी प्लेट भी जो ऋण सिरेसे जुड़ी हुई है द्विओषदसे ढकी हुई प्लेटके मुकाबिले जलदी स्पंजी सीसेमें बदल जावेगी और ऋण प्लेट बन जावेगी। उन्होंने सीसेकी टट्टियां बनाकर उनके खानोंमें गंधकके तेजाबमें सींदूरकी लेईसी बनाकर भर दिया और जोरसे दबा दिया जिससे कि सींदूर खानोंमें ठहरा रहे। इनको फौरेकी लेईदार प्लेटें कह सकते हैं।

आज कल फौरेकी विधिमें केवल इतना परिवर्तन कर दिया गया है कि ऋण प्लेटकी टट्टीको भी धन प्लेटकी टट्टीकी तरह सींदूरसे न भरकर मुरदारसंग-से भरते हैं। मुरदारसंग भी सीसेका एक ओषद सींदूर-से भी कम दर्जेका है। उसको स्पंजी सीसेमें बदलनेमें सींदूरसे भी कम समय लगता है। इन दोनोंको प्लेटोंपर थमानेके लिए अनेक प्रकारकी टट्टियां बना दी जाती हैं जिनका पूरा हाल बताना कठिन है क्योंकि बहुतसे बाटरियोंके बनाने वाले उनको बकसके अंदर बंद करके भेजते हैं जिस कारण प्लेटें दिखलायी भी नहीं देती हैं। देखने में ऐसा ही आया है कि धन प्लेटें टट्टी के ही रूपमें होती हैं। टट्टीके खानोंमें सींदूर भरा रहता है। इनका रंग गेरुवा होता है। ऋण प्लेटें आजकल बकसके ढंगकी अधिक प्रचलित हैं। जालीदार टट्टियां बनाकर दोनोंके बीचमें मुरदारसंग रखकर दोनोंको दबा देते हैं। मुर्दारसंग दोनोंके बीचमें ठहरा रहता है गोया मसाला जालीदार टट्टियोंके बकसके अंदर बंद रहता है। इन प्लेटोंके चित्र नीचे दिये जाते हैं।

बाटरीकी समाई मसालोंकी मात्रापर निर्भर है। यदि सब मसाला एक ही प्लेटपर लगाया जावे तो बड़ी समाई वाली बाटरियोंकी प्लेटें बड़ी लम्बी चौड़ी और बेढंगी हो जावें। धन प्लेटपर १ पौंड मसाला (सींदूर) १०९ एम्पियर घंटेके लिए आवश्यक है इसलिए समाईके अनुसार जितने मसाले-की जरूरत है उतना एक ही लम्बाई चौड़ाईकी कई प्लेटोंपर लगा दिया जाता है धन प्लेटोंको एक डंडे-से जोड़ देते हैं। इसी तरह ऋण प्लेटोंको दूसरे डंडे से जोड़ देते हैं। ऋण प्लेट पर १ पौंड मसाला (मुर्दारसंग) ७२ एम्पियर घंटेके लिए आवश्यक है।

इस प्रकार कई प्लेटें भी ऐसा ही काम करती हैं जैसे एक प्लेट। यदि हारबद्ध बाटरियां ध्यानमें हों तो यह बात आसानीसे समझमें आ जावेगी।
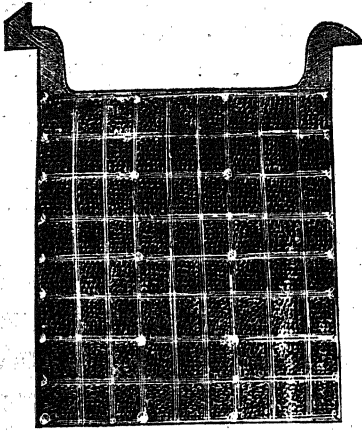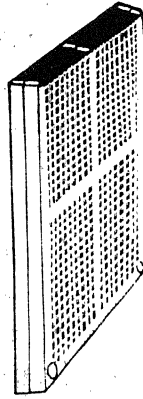
धन प्लेट ऋण प्लेट

चित्र १६

मान लीजिए कि एक बाटरीके लिए समाईके हिसाब से ९ इंच लम्बी और ८ इंच चौड़ी ३ धन प्लेटोंकी आवश्यकता है तो उनको एक ओर एक सीसेके डंडेसे जोड़ देंगे। इस बाटरीमें चार ऋण प्लेटें होंगी जो दूसरी ओर एक सीसेके डंडेसे जुड़ी होंगी। आमने सामने डंडे रखनेसे धन और ऋण सिरोंके मिल जानेका भय कम रहता है। यदि वह किसी प्रकार मिल जावें तो छोटे (सूक्ष्म) चक्करमें प्रबल धाराके बहनेसे भरी हुई बाटरियां केवल खाली ही नहीं हो जावेंगी बल्कि प्लेटोंके खराब हो जानेका भय है।

इन बाटरियोंके बकस या तो शीशेके या सीसेके जो लकड़ीके बकसके अंदर रहते हैं होते हैं। इन प्लेटोंके ऊपर सीसेकी कोहनियां लगी होती हैं जो शीशेके बकसकी दीवारोंपर रख कर प्लेटें बकसके अंदर झूला दी जाती हैं। वह बकसके पेंदेसे ऊपर रहती हैं। नीचे मसालेका कचरा जमा होता रहता है क्योंकि कुछ न कुछ कचरा अवश्य ही गिरता है। यदि इन प्लेटोंके बीचमें कचरा जावे तो बाटरी तुरंत खाली हो जावेगी। प्लेटोंके आपसमें मिलने और किसी वाहकसे जुड़ जानेसे सदैव बचाना चाहिए। यदि सीसेका बकस हो तो उसकी दो आमने सामने वाली दीवारोंके बगलमें शीशेकी प्लेटें रखी रहेंगी और प्लेटें इन शीशेकी प्लेटोंपर झूलती रहेंगी। प्लेटोंको अलग और समानान्तर झूलनेके लिए इनके बीचमें शीशेकी उसी मोटाईकी नलियां जितना इनको दूर रखना चाहें रख दी जाती हैं। कभी कभी एबोनाइटके चिम्टे वा लकड़ीकी प्लेटें या किसी मसालेकी बनी हुई मसामदार प्लेटें भी रख दी जाती हैं। किसी भी बाटरीमें ऋण प्लेटें धन प्लेटोंसे अधिक होंगी और उनकी संख्याओंमें भेद एकके बराबर होगा क्योंकि ऐसा देखनेमें आया है कि यदि धन प्लेटका कोई पृष्ठ भी ऋण प्लेटसे खाली रह गया तो धन प्लेट बरड़ जाती है और दूसरे जो पृष्ठ ऋण प्लेटके सामने नहीं आया उतना उसका मसाला खराब गया। सिरेकी ऋण प्लेटोंपर उसी तरफ़ जालीदार टट्टी रहती है जो धन प्लेटके सामने होती है, दूसरी तरफ़ ठोस रहती है।

ऐसा नहीं है कि प्लाँटे विधिसे बनायी हुई प्लेटें काममें आती ही न हों। इस विधिसे बनायी हुई धन प्लेटें बड़ी मज़बूत और कीमती होती हैं। जहाँ प्रबल धारा बहानेकी जरूरत होती है (जैसे रेल अथवा ट्राम चलानेमें) वहाँ इसी विधिसे बनायी हुई धन प्लेटें बाटरियोंमें इस्तेमाल करते हैं। बाक़ी सब कामोंके लिये बाटरियाँ लेईदार ही होती हैं।

बाटरियोंको भरनेके लिए बहुधा १·१९० घनत्वका तेज़ाब बनाया जाता है। यह १ हिस्सा तेज़ाब ५ हिस्से पानीमें (आयतनके हिसाबसे) मिलानेसे बनता है। तेज़ाबका यह घनत्व तो जब होगा जब उसका तापक्रम १५°श हो। यदि तापक्रम अधिक हो तो पानी और तेज़ाब इन ही मात्राओंमें मिलानेपर भी घनत्व कुछ कम ही मिलेगा। तेज़ाब बनाते समय इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये। पानी और तेज़ाब

बिलकुल शुद्ध होने चाहियें। पानी कलई किये हुए भपकेका खिंचा हुआ होना चाहिये और तेज़ाबमें भी कोई चीज मिली हुई नहीं होनी चाहिये। पानीमें तेज़ाब मिलानेके लिये पानीको एक सीसेके बकसमें भरते हैं, तेज़ाब मिलाते जाते हैं और किसी लकड़ीके डंडेसे हिलाते जाते हैं। हिलाना बहुत आवश्यक है यदि हो सके तो बाटरीमें छोड़नेके पहले तेज़ाबको पहले बरतनसे दूसरे बरतनमें उलट फेरकर खूब मिला लेना चाहिये जिससे कुल मिश्रितका एक ही घनत्व हो जावे। हमारे देखनेमें ऐसा आया है कि यदि तेज़ाब मिलाकर पानी छोड़ दिया जावे तो मिश्रितकी ऊपर नीचेकी तहोंका घनत्व एकसा नहीं होता है। बाटरी बनानेवाले अपनी हिदायतोंमें जो बाटरीके साथ भेजते हैं अवश्य ही लिख देते हैं कि किस घनत्वका तेज़ाब चाहिये। जब पानीमें तेज़ाब मिलाया जाता है तो मिश्रित बड़ा गरम हो जाता है। गरम मिश्रित बाटरी में कभी नहीं छोड़ना चाहिए। तेज़ाब मिलाकर मिश्रितको ठण्डा होनेके लिए रख देना चाहिए। जब कमरेके तापक्रमपर आ जावे और बाटरीके भरनेकी तैयारी हो जावे तब बाटरीमें डालना चाहिए। तेज़ाब डालनेके बाद बाटरी 'भरना' अर्थात् भरनेवाली धारा बहाना चाहिए। यदि देर हो जावेगी तो प्लेटोंके खराब हो जानेका डर है। कोई कोई बाटरी ऐसी होती है जिसके बनानेवाले तेज़ाब भरकर कुछ देर बाद भरनेकी हिदायत करते हैं। ऐसे मामलोंमें उनकी हिदायतकी पाबंदी अत्यन्त आवश्यक है।

नीचे दिए हुए चित्रमें यह दिखलाया गया है कि तेज़ाबकी विशिष्टबाधा पानीमें तेज़ाबकी मात्रा बढ़ाने घटानेसे किस प्रकार बदलती है। इससे यह मालूम होगा कि जब तेज़ाबकी मात्रा ३०% पानीमें हो तो विशिष्ट बाधा कमसे कम होती है। भीतरी बाधा कम करनेके लिए यह अच्छा होगा कि जहांतक हो सके तेज़ाब इसी दरजेका हो। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि देखनेमें यह आया है कि यदि तेज़ाबका घनत्व १·३०० से अधिक होता है तो ऋण प्लेटको खाने लगता है जिससे यह मतलब है कि इससे कम घनत्व वाले तेज़ाबमें रखी हुई ऋण प्लेटपर तेज़ाबका असर तभी पड़ता है जब उसमें धारा चलती
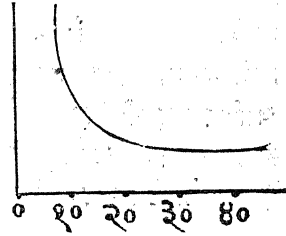
चित्र १७—प्रतिशत तेज़ाब के हिसाब से मात्रा

है वरना कोई असर नहीं पड़ता। यदि तेज़ाबका घनत्व १·३०० के आसपास या अधिक हो तो बिना धाराके भी प्लेटपर तेज़ाबका असर हो जावेगा। यदि तेज़ाबका घनत्व १·१०० से कम हो तो बाटरीमें रासायनिक क्रिया (धन प्लेटका द्विओषदसे ढक जाना और ऋण प्लेटको स्पंजी सीसेमें बदलना) ठीक ठीक नहीं होती। इसलिए तेज़ाबका घनत्व इनही संख्याओंके बीचमें रखना पड़ता है। जब १·१९० घनत्वका तेज़ाब भरकर बाटरी भरी जाती है तो जब बाटरी भर चुकती है तो उसका घनत्व १·२०० हो जाता है। खाली करते समय चूंकि प्लेटोंपर ओषद और स्पंजी सीसेके बदले गंधेत बनने लगता है तेज़ाबका घनत्व गिरने लगता है। इसीलिए बड़ी बाटरीमें घनत्वमापक डालकर रखा जाता है क्योंकि तेज़ाबके घनत्वसे बाटरीकी अवस्थाका पता लगता रहता है। परन्तु केवल घनत्वपर भरोसा न कर के बाटरीके सिरोंका अवस्थाभेद भी देख लेना चाहिए। जब तेज़ाब छोड़ा जाता है तो बाटरीके सिरोंका अवस्थाभेद १·५ वोल्टके लगभग होता है। जब बाटरी भरने को आती है तो यह अवस्थाभेद उस अवस्थामें जब कि भरनेवाली धारा बह रही हो २·५ वोल्टके बराबर होगा। कोई कोई छोटी छोटी बाटरियोंमें यह २·७५ वोल्टके बराबर भी हो जाता है। जितना अवस्था भेद (वोल्टन) बाटरीके पूरे

भर जानेपर होगा वह बाटरी बनाने वाले हिदायतोंमें लिख देते हैं। जब बाटरी खाली करने लगते हैं तो उसके सिरोंका अवस्था भेद बहुत देरतक तो २ वोल्ट-के लगभग ही रहता है परन्तु जैसे जैसे बिलकुल 'खाली' अवस्थाको पहुँचती है यह कम होने लगता है। कितने अवस्था भेदपर बाटरीसे धारा लेना बंद कर देना चाहिए यह भी हिदायतोंमें दिया रहता है। बहुधा उस समय खाली करना बिलकुल बंद कर दिया जाता है जब वोल्टन १.८५ वोल्टके लगभग होता है।
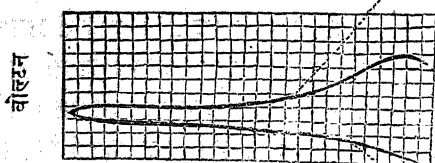
चित्र १८—इस चित्रके वक्रोंसे पता चलता है कि खाली करते और भरते समय वोल्टनमें कैसे अन्तर पड़ता है।

बाटरीको जिस धारासे साधारणतः भरना चाहिए वह बनाने वाले लिख देते हैं। भरने वाली धारा उससे अधिक कभी नहीं होना चाहिए। बहुधा उससे आधी या तिहाई प्रबलताकी धारा बहाते हैं। इससे भरनेमें समय तो कुछ अधिक लगता है परन्तु किसी दुर्घटनाका भय नहीं रहता। तिहाईसे कम धारा अवश्य नहीं होनी चाहिए। साधारण धारासे भरनेमें ४०—६० घंटे लगते हैं। साधारण धाराकी आधी धारासे भरनेमें ७०—८० घंटे लगेंगे। बाटरीको जब भरने लगते हैं तो गैसें बहुत कम (या बिलकुल नहीं) निकलती हैं। यदि निकलती हैं तो एक गैस ओषजन धन प्लेटसे। परन्तु जब बाटरी भरनेकी अवस्थाको पहुँचती है तो दोनों प्लेटोंसे दोनों गैसें (ओषजन और उज्जन) निकलने लगती हैं। इनके बुलबले बड़े बड़े होते हैं। इसी कारण जब भरनेकी अवस्थाके निकट पहुँचते हैं, यदि साधारण धारासे भी भरना आरंभ किया हो, तो धारा दुर्बल कर देते हैं क्योंकि बड़े बड़े बुलबले प्लेटोंको हानि पहुँचा देते हैं।

इन बुलबुलोंका उठना बाटरीका 'गैस करना' कहलाता है। यह बाटरीके भरनेकी निशानी है।

बाटरीकी भरनेकी साधारण धाराके साथमें जो प्रबलसे प्रबल धारा उनसे ली जा सकती है (खाली करनेके समय) वह भी बाटरी बनाने वाले लिख देते हैं। खाली करने वालीधारा भी कभी इससे अधिक नहीं होना चाहिये क्योंकि इससे भी प्लेटोंको हानि पहुँच जाती है। यदि हिदायतें खो जावें तो धन प्लेटोंके दोनों पृष्ठोंका क्षेत्रफल (वर्ग इञ्चोंमें) निकाल कर २५ से भाग देकर जो संख्या मिले उसको साधारण भरने वाली धारा समझना चाहिये। साधारण खाली करने वाली धारा तो इससे कम या बराबर ही होगी।

बाटरियोंकी समाई भी बनाने वाले लिख भेजते हैं जिससे आप यह अनुमान लगा सकते हैं कि खाली करते समय कितनी देरतक आप एक नियत प्रबलताकी धारा उससे ले सकते हैं। मान लीजिये कि एक बाटरीकी समाई ८० एम्पियर घंटे दी हुई है और इससे प्रबल से प्रबल धारा जो ली जा सकती है वह ८ एम्प है तो इसका यह मतलब है कि ८ एम्पकी धारा १० घंटे तक (४ एम्पकी धारा २० घंटे तक) ली जा सकती है। परन्तु इससे पहिले ही धारा बहाना बंद करके फिर भर लेना ज्यादा उचित है।

बाटरियोंमें तेजाब प्लेटोंके आध इञ्च ऊपर रहना चाहिये और ज्यों ज्यों पानी उड़ता जावे त्यों त्यों पानी शुद्ध खिंचा हुआ डालते जाना चाहिये। तेजाब केवल एक बेर बाटरी 'भरते' समय डालना चाहिये।

बाटरीको जब पहली बार भर लेते हैं तो जो उसके तेजाबका घनत्व होता है वह लिख लेते हैं। यदि कभी ऐसा हो कि भरनेके अंतमें उतना घनत्व न हो तो बाटरीमेंसे तेजाब निकाल कर इतना घना तेजाब मिला देते हैं जितना पहले घनत्वके लिए आवश्यक हो। ध्यान रहे कि यदि सब तेजाब बाटरीमेंसे निकाल दिया जावेगा तो बाटरीको फिर (धारासे) भरना

आवश्यक हो जावेगा। परन्तु ऐसा कभी कभी करना चाहिये। देखनेमें ऐसा आवेगा कि थोड़ी देर ज्यादा धारा बहानेसे घनत्व आ जावेगा।

धन प्लेटका रंग भरनेसे पहले गेरवी होता है भरनेपर कत्थई होजाता है। ऋण प्लेटके रंगमें भेद नहीं पड़ता है। प्लेटोंके रंगोंमें भेद होनेसे उनके रंगोंको ही देख कर धन और ऋण प्लेटोंका पता चल जाता है। यदि बाटरी बहुत देर खाली अवस्थामें छोड़ दी जावे तो प्लेटोंपर सफेदी आजाती है। यह सफेदी एक न घुलने वाला सीसेका गंधेत है। इसके आजानेसे बाटरीकी समाई कम हो जाती है। इसीको बाटरीका गंधकाना कहते हैं। कभी कभी तो धीमी धीमी धारा बहुत देरतक बहानेसे यह सफेदी चली जाती है और कभी कभी यह नहीं हटती है और बाटरीका लाइलाज रोग होकर बैठ जाती है जिससे बाटरी सदैवके लिए बेकार हो जाती है। इससे हमेशा डरना चाहिए। इस लाइलाज रोगका कोई संतोषजनक इलाज (उपाय) अभी नहीं निकला है। कुछ लोगोंकी राय है कि सोडा गंधेतका घोल (१५°/०) तेजाबके बदले छोड़कर बाटरी भरनेसे इस रोगको कुछ फायदा पहुँचता है। जब बाटरी भर जाती है सोडा गंधेत निकाल लिया जाता है और उसके बदले तेजाब छोड़ दिया जाता है। तेजाब छोड़ देनेके बाद बाटरी भरनेकी जरूरत नहीं पड़ती है जैसी कि जब पड़ती है कि जब कभी बाटरी तेजाबसे खाली हो जावे।

जब बाटरी गैस करने लगती है तब गैसोंके बुलबुलोंके साथमें तेजाब भी ऊपर उछलता है और इसके छींटे इधर उधर गिरकर चीज़ोंको खराब करते हैं इसलिए बाटरीके ऊपर एक शीशेकी प्लेट टेढ़ी रखी रहती है जो छींटोंको रोक लेती है।

जिस कमरेमें इन बाटरियोंका समूह रहता है उस कमरेमें जो जो चीजें ऐसी होती हैं जिनपर तेजाबका असर पड़ सकता हो उनको एक प्रकारके काले रोग़नसे (जिसको Antisulphuric enamel कहते हैं) ढक देते हैं। बाटरीके सिरोंपर भी वेसलीन लगा देते हैं जो तेजाबका रस रस कर ऊपर पहुँचना बंद कर देता है और पेचोंको खराब होनेसे रोक देता है। यदि तेजाब रस रस कर ऊपर पहुँच जावेगा तो बकसकी दीवारोंपर बाहरकी ओर गिरेगा और बाटरीके लिए एक बाहरी चक्कर बनालेगा जिसके द्वारा बाटरी खाली होती जावेगी।

इन बाटरियोंकी भीतरी बाधा बहुत कम होती है इसलिए इनके सिरोंका अवस्था भेद इनकी वि० सं० श के बराबर ही समझना चाहिये इसलिए इनके सिरोंका वोल्टन लोगोंकी बोलचालमें सुननेमें आवेगा।

जिसका ऊपर वर्णन किया यह वही बाटरी है जिसको अंग्रेजीमें Secondary battery, storage cell या accumulator कहते हैं। इसको हमने परवर्तीय बाटरी नाम दिया है जो इसके गुणको देखकर आजकल लोगोंको ज्यादा पसंद आता है।

यदि काम भी न लिया जावे तो भी बड़ी बड़ी बाटरियोंकी तो देख भाल करते ही रहना चाहिये और पन्दरह बीस रोजमें उनको 'भरते' रहना चाहिये घंटे २ घंटे गैस कराकर छोड़ देना चाहिये। परन्तु छोटी छोटी (जैसे मोटरकार वाली) बाटरियोंको तो खाली करके रखना ज्यादा उचित होगा। उनको खाली करके रख छोड़नेकी एक विधि हम बतलाते हैं (शायद और भी तरीके हों) जिससे अकसर हमने काम लिया है। बाटरीमेंसे तेजाब निकालकर उसके बदले शुद्ध (खिंचा हुआ) पानी छोड़ कर बाटरीसे धारा लेना चाहिये। जबतक कि उसके सिरों (प्लेटों) का अवस्था भेद १·५ वोल्टके बराबर आजावे उसके बाद पानी भी फेंक दीजिये और 'खाली' बाटरी रख छोड़िये। जब उससे काम लेनेका समय आवे तेजाब छोड़कर मामूली तौर से भर दीजिये।

यह बाटरियां बड़ी नाजुक होती हैं। जरा ही लापरवाहीसे काम लेने पर हमेशाके लिए बिलकुल खराब हो जाती हैं सवारियोंमें बुरी सड़कोंपर चलनेसे झटकोंके लगनेपर प्लेटोंके टूटने मसालेके गिरजानेका भय रहता है। भारी भी बहुत होती है इसलिए सवारियोंके लिये ऐसी बाटरीकी आवश्यकता समझी जाती है

जो झटकोंसे (कभी कभी कुछ उचाईसे गिरने पर भी) न टूटे और कुछ ला परवाहीके साथ भी इस्तेमाल की जा सके, कभी साधारणसे प्रबल धारा भी ली जा सके और खाली अवस्थामें बहुत देर तक बिना हानिके छोड़ी जा सके। इन बातोंके ख्यालसे लोगोंकी राय है कि एडीसन बाटरी (वह भी परवर्तीय है) इस सीसेकी बाटरीकी अपेक्षा कहीं अच्छी है। इसके धन प्लेटपर निकल-ओषद और ऋण प्लेटपर लोह-ओषद होते हैं। इन मसालोंको निकिल चढ़े हुये स्पातके जालीदार नलियोंमें भरते हैं, नलियोंकी मजबूतीके लिए स्पातके बंद लगे रहते हैं। निकिलके खोलके गिर जानेका भय रहता है इसलिये निकिल चढ़े हुए स्पातको बहुत गरमकर लेते हैं ताकि निकिल स्पात दोनों मिल जावें। निकिल ओषद कुचालक है इसलिये जिन नलियोंमें निकिल ओषद रहता है उनमें निकिलकी जालियां दी जाती हैं। धन प्लेट कई नलियोंका एक समूह होता है। कभी कभी ऋण प्लेटका मसाला गोलाकार नलियोंमें न रखकर चौखूँटे नलियोंमें रखते हैं। लोह-ओषद भी कुचालक है इस लिए थोड़ा सा पारा मिला दिया जाता है। प्लेटोंको अलग रखने वाले एबोनाइटके बने होते हैं। जिस द्रवमें यह प्लेटें रखी जाती हैं वह कास्टिक पोटेशका घोल (२१%) होता है। इनका वोल्टन १·३ के लगभग होता है इस लिये एक नियत वोल्टनके लिए ५०% ज्यादा संख्या इन बाटरियोंकी सीसेके बाटरियोंके मुकाबिल लेना पड़ती है। यह बड़ी अड़चनकी बात है ज्यादा बाटरियोंकी देख भाल करना पड़ती है और जगह भी ज्यादा घिरती है।

कास्टिक पोटेशसे कार्बन द्विओषद मिलजाता है इसलिए बाटरीमें से गैसें निकलनेके लिए रास्ता बहुत छोटा होता है और बाटरी चारों ओरसे ढकी रहती है। इस द्रवके घनत्वमें बाटरीके भरने और खाली करनेके समय कोई भेद नहीं पड़ता है इसलिए इस बाटरीकी अवस्थाका पता वोल्टनसे ही चलता है।

बाटरियों (प्रधान व परवर्तीय) का हाल पढ़नेसे पाठकोंको विदित हो गया होगा कि बाटरीके लिए दो पदार्थोंकी आवश्यकता होती है चाहे वह भिन्न भिन्न पदार्थ हों (तांबा और जस्ता) या एक मौलिक पदार्थ और दूसरा इसी मौलिक और किसी दूसरे मौलिक पदार्थका यौगिक (जैसे स्पंजी सीसा और सीसेका द्विओषद) यह एक द्रव या दो द्रवोंमें रखे होते हैं। वास्तवमें जितने मौलिक पदार्थ हमको मालूम हैं हम उनसे एक ऐसी श्रेणी बना सकते हैं कि यदि उस श्रेणीमें से कोई दो पदार्थ किसी उचित द्रवमें रखे जावें तो जो पदार्थ इस श्रेणीमें नीचे है उनसे धारा बाहरी चक्करमें होती हुई दूसरे पदार्थको जावेगी और भीतरी चक्करमें ऊपर वाले पदार्थसे नीचेवाले पदार्थको। ऊपरवाले पदार्थको धन और नीचेवालेको ऋण पदार्थ कहते हैं। धाराकी भीतरी चक्करमें दिशाको ध्यानमें रखते हुये पदार्थोंकी ऐसी श्रेणीको विद्युत अवस्था श्रेणी कहेंगे।

धन—

एल्यूमीनियम	जस्ता	लोहा	निकिल
सीसा	टिन	तांबा	उज्जन
पारा	चांदी	सोना	प्लेटिनम
कार्बन	नत्रजन	गंधक	ओषजन

पदार्थ जितने एक दूसरेसे इस श्रेणीमें दूर होते हैं उतनी ही बाटरीकी वि० सं० श अधिक होती है। सीसा और ओषजन बहुत दूर हैं। ओषजन जब सीसेसे मिल जाता है तो (सीसे वाली परवर्तीय बाटरी) सीसेको ही सीसेके मुकाबले धन कर देता है, भीतरी चक्करकी धाराकी दिशाके ख्यालसे और प्रबल वि० सं० श वाली बाटरी बना देता है।

पानी वाले वाल्टामापकमें हम देख चुके हैं कि उज्जन उसी दिशामें जाता है जिस दिशामें वाल्टामापकमें धारा बहती है और ओषजन उलटी दिशामें। उज्जन इस श्रेणीमें ओषजनके ऊपर है इसलिये उज्जन ओषजनके मुकाबिले धन पदार्थ है, इसी बातको यों भी कह सकते हैं कि यदि किसी वाल्टामापकमें दो पदार्थ धाराके बहनेसे उत्पन्न हो जावें तो जो पदार्थ इस श्रेणीमें ऊपर हैं वह धाराकी दिशामें जावेंगे और

नीचे वाला पदार्थ उलटी दिशामें। नमकके घोलमें धारा बहा कर यदि नमकका विश्लेषण कर दें तो सोडियम जो हरिनके मुकाबिले धन पदार्थ है धाराकी दिशामें जावेगा और हरिन उलटी दिशामें।

ईश्वरकी माया

[ले० श्रीनवनिद्धराय, एम० ए०]

पुराणोंमें सृष्टिकी उत्पत्तिका हाल पाया जाता है। आजकल पौराणिक गाथाओंका असली मतलब समझना कठिन हो गया है। न समझ सकनेके कारण यह सब वर्णन हमें कपोलकल्पित और अवैज्ञानिक प्रतीत होता है। पाश्चात्य ज्योतिषियोंने भी सृष्टिकी रचनाके सम्बन्धमें कुछ सिद्धान्त स्थिर किये हैं। आधुनिक यंत्रोंकी सहायतासे बराबर अनुसन्धान किया जा रहा है। ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञानकी वृद्धि निरन्तर होती जा रही है। पाश्चात्य और पौराणिक ज्ञानकी तुलना करनेसे दोनोंमें विचित्र साम्य दिखलाई पड़ता है, जिससे सिद्ध होता है कि भारतवासियोंने किसी न किसी विधिसे सृष्टिविकाशके सम्बन्धमें उतना ही शुद्ध-ज्ञान प्राप्त कर लिया था जितना इस समय पाश्चात्य ज्योतिषी प्राप्त कर सके हैं। श्रीयुत रामदासजी गौड़ने वैज्ञानिक अद्वैतवाद नामक पुस्तकके "जगतकी सृष्टि और लय" अध्यायमें बड़ी सुन्दरताके साथ सुबोध भाषामें पौराणिक तथा पाश्चात्य सिद्धान्तों और मतोंकी तुलना करके उपर्युक्त कथनको सिद्ध किया है।

भारतवासियोंने शताब्दियोंसे ज्ञान और विद्याकी वृद्धिका क्रम बिलकुल बन्द कर रक्खा है अन्यथा जो नई नई बातें अनुसन्धान द्वारा पाश्चात्योंको अब मालूम हो रही हैं वह इस देशमें कभीकी मालूम हो गई होतीं, हम अब भी संसारके गुरु होते। मनुने लिखा है कि पृथिवीके सब राष्ट्र विद्याकी प्राप्तिके लिये आर्य्यावर्त देशमें आया करते थे। अब इस देशके निवासी पाश्चात्य देशोंमें विद्याध्ययनके लिये जा रहे हैं। पुराना क्रम उलट कैसे गया? हमारी अकर्मण्यताके कारण। जहाँ पाश्चात्य देश नये ज्ञानका अविष्कार कर रहे हैं वहाँ हम लोग अपने पूर्वजोंसे प्राप्त सामग्रीको सर्वथा भूलते जा रहे हैं।

भारतवासियोंने ज्योतिष विद्यामें अच्छी उन्नति कर रखी थी। ग्रहोंकी गति इत्यादिके सम्बन्धमें उनका ज्ञान आजकल भी पाश्चात्योंको विस्मित कर देता है। सृष्टिकी उत्पत्ति और विकाश तथा सूर्य, पृथिवी और चन्द्रमा इत्यादि ग्रहोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भारतवासियोंके जो सिद्धान्त थे वह आजकलके वैज्ञानिकोंने अनुसन्धान द्वारा ठीक सिद्ध कर दिये हैं। पर भारतवर्षसे तो अनुसन्धानकी परम्परा बिलकुल उठ गई है। विद्याके स्थानमें अन्धविश्वासने भारतवासियोंके मस्तिष्कपर आधिपत्य जमा लिया है। बिना समझे ही उलटे पुलटे कुछके कुछ अर्थ समझकर सच्चे ज्ञानका बिलकुल गला ही घोंट दिया गया है। यही कारण है कि इस समय हम युरोप निवासियोंसे बहुत पीछे पड़े हुए हैं। देखिये युरोपके ज्योतिषी कहांसे कहां पहुँच गये हैं। वे लोग अब इस प्रश्नपर विचार कर रहे हैं कि पृथिवीकी कोई बहिन शीघ्र जन्म लेनेवाली है अथवा एक नये ग्रहका निर्माण होने वाला है। उनका अनुमान है कि जल्द ही हमारे सौरमण्डलमें एक नया ग्रह शामिल होनेवाला है। केवल अनुमान ही नहीं वरन अनुसन्धानसे कुछ ऐसी बातें मालूम करली गई हैं जिनसे एक नये ग्रहकी उत्पत्तिकी सम्भावना अधिक प्रतीत होने लगी है।

जुपिटर ग्रहको दूरवीक्षण यंत्रसे देखनेपर उसमें एक बड़ा भारी लाल चकत्ता दिखलाई पड़ता है। कहा जाता है कि यह चकत्ता कुछ दिनोंमें जुपिटर ग्रहसे अलग होकर एक नये ग्रहका रूप

धारण कर लेगा। यह चकत्ता तीस हज़ार मील लम्बा और सात हज़ार मील चौड़ा है। इसलिये अनुमान किया जाता है कि नया ग्रह पृथिवीसे कुछ बड़ा होगा। अभी जुपिटरका यह भाग कुछ द्रव और कुछ गैसकी दशामें है। इसमें विस्मयकी कोई बात नहीं है क्योंकि अब भी जुपिटर बहुत ही गर्म है और एक छोटे तथा कुछ ठण्डे सूर्यके रूपमें है। प्रश्न हो सकता है कि एक ग्रहमेंसे दूसरा ग्रह पृथिवीसे भी बड़ा कैसे उत्पन्न हो जायगा? इसमें ज़रा भी कठिनाई नहीं है क्योंकि जुपिटर हमारी पृथिवीसे बारह सौ तीस गुणा बड़ा है। जैसे पृथिवीसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ वैसे ही जुपिटरसे यह नया ग्रह बन जायगा।

हमारे सौर मण्डलमें जुपिटरके शरीरको तोड़कर बने हुये इस ग्रहके कारण कैसी आंधी उपस्थित हो जायगी? इसकी उत्पत्तिसे हमारी पृथिवीके भविष्यमें क्या परिवर्तन उपस्थित हो जायगा? इन सब प्रश्नोंपर विचार करके अभीसे भविष्यको जाननेका प्रयत्न किया जा रहा है। यह विचार है कि इस ग्रहकी उत्पत्तिका प्रभाव हमारे सूर्यपर ऐसा पड़ेगा कि कितने ही वर्षोंतक पृथिवी बहुत ठण्डी हो जायगी, उष्णताकी कमीके कारण ग्रीष्म ऋतुका बिलकुल लोप हो जायगा और शरद ऋतुमें इतनी ठण्ड पड़ेगी कि सब प्राणी ठिठुर जायँगे। ऐसा क्यों होगा? इसका कारण यह है कि इस नये ग्रहकी उत्पत्तिके समय सूर्यके वायुमण्डलमें बड़ा भारी तहलका मच जायगा जिससे सूर्य अधिक गर्म हो जायगा। सूर्यके तापकी वृद्धिका फल होगा पृथिवीकी शीतलता।

सूर्यमें ताप वृद्धिके कारण पृथिवीकी शीतलता कैसी? साधारणतः लोगोंका विचार यह होगा कि यदि सूर्य अधिक गर्म होगा तो अवश्यही पृथिवी अधिक गर्म हो जायगी। पृथिवीको सब गर्मी सूर्यसे ही आती है तो सूर्यमें तापकी वृद्धिसे पृथिवी के तापकी भी वृद्धि होना बिलकुल स्वयंसिद्ध मालूम होता है। परन्तु वर्षोंके अनुसन्धानसे जो वैज्ञानिक सिद्धान्त स्थिर किया गया है वह साधारण मनुष्योंके विश्वासके सर्वथा विपरीत है। यह पूर्ण रूपसे सिद्ध हो चुका है कि सूर्य जितना ही अधिक गरम होगा पृथिवी उतनी ही शीतल हो जायगी। जब सूर्यकी लपटें अधिक प्रचण्डतासे उठने लगती हैं तब सूर्यके चारों तरफ़ धूलके घने बादलका आवरण आच्छादित हो जाता है जिससे सूर्यकी किरणें रुक जाती हैं और पृथिवीतक पहुँचनेवाली गर्मीकी मात्रा कम हो जाती है। यही कारण है कि सूर्यके चकत्ते जब दिखलाई पड़ते हैं तभी हमारी पृथिवीपर शीतलता रहती है। यह चकत्ते हैं क्या चीज़? ये कैसे उत्पन्न होते हैं? निश्चयात्मक उत्तर देना तो कठिन है पर अनुमान यह किया जाता है कि सूर्यतलपरसे प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाके कारण उत्तप्त द्रव और गैस पदार्थ ऊपरकी ओर उठते हैं जिनके कारण बड़ी बड़ी आंधियां सूर्यके वायुमण्डलमें चलती रहती हैं। यही गैस और द्रव पदार्थ विशाल अन्धड़के रूपमें सूर्यके किसी किसी भागको कुछ समयके लिये ढक लेते हैं और पृथिवी परसे हम दूरवीक्षण यंत्र द्वारा जब सूर्यको देखते हैं तो सूर्यतलपर बड़े बड़े चकत्तोंके रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। अग्निमय पदार्थोंके अन्धड़के कारण सूर्य अधिक उत्तप्त हो जाता है परन्तु धूलके आवरणके कारण हमारे पासतक गर्मी बहुत कम पहुँचती है।

प्रोफ़ेसर एल्सवर्थ हण्टिङ्गटन (Professor Ellsworth Huntington) भी इस सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं। उनका विचार है कि सूर्यके वायुमण्डलमें परिवर्तनके कारण पृथिवीपर कभी शरद ऋतु कुछ गरम और ग्रीष्म ऋतु कुछ ठण्डी हो जाती है। सूर्यके आसपासके तारोंका प्रभाव सूर्यके वायुमण्डलमें परिवर्तन उपस्थित करता है। हमारे सूर्यमण्डलके सबसे पासका पड़ोसी आल्फ़ा-सेण्टरी (Alpha centauri) सूर्यके वायुमण्डल-परिवर्तनका सबसे बड़ा कारण है।

आल्फ़ासेण्टरीका कुछ थोड़ासा हाल सुनिये अल्फ़ासेण्टरी दो संयुक्त सूर्योंका नाम है। यह दोनों सूर्य हमारे सूर्यके बराबर हैं, यह दोनों एक ही गुरुत्व केन्द्र (Centre of gravity) के चारो ओर प्रदक्षिणा करते हैं। अपने गति पथ-पर घूमते हुए जब यह दोनों एक दूसरे की ओर चलनेके कारण एक दूसरेके निकट आ जाते हैं तो हमारे सूर्य के चकत्ते बढ़ जाते हैं। और जब आल्फ़ा-सेण्टारीके दोनों सूर्य एक दूसरेके विरुद्ध दिशामें चलते होते हैं जिससे उनके बीचकी दूरी बढ़ती जाती है तो हमारे सूर्यके चकत्ते घट जाते हैं।

अब तक कोई इस बातका निश्चयात्मक कारण नहीं बता सका है कि ठीक ग्यारह वर्षके बाद यह सूर्यके चकत्ते क्यों एक दमसे बढ़जाते हैं? इसके बाद यह चकत्ते धीरे धीरे घटते रहते हैं और कई वर्षोंमें न्यूनतम अवस्थाको पहुँच जाते हैं। इसके बाद फिर चकत्ते बढ़ने लगते हैं और ग्यारह वर्षका अवकाश बीतते बीतते अधिक-तम अवस्थाको पहुंच जाते हैं। यह ग्यारह वर्ष-का समानान्तर वृद्धि और क्षयका काल ज्योतिषी लोग बहुत दिनोंसे देखते आये हैं। इस सबका कारण आल्फ़ासेण्टारी है। ज्यों ज्यों यह मिथुन सूर्य एक दूसरेकी ओर पास आते जाते हैं वैसेही हमारे सूर्यका ज्वलन्त आवरण अधिकाधिक तेज़ीसे जलता है और सूर्यके चकत्ते बढ़ते जाते हैं दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि मिथुन सूर्यकी समदिक गतिके कारण ज्वाला प्रचण्ड हो उठती है जो सूर्य-का धूलके बादलोंसे अच्छादित करके तापके प्रसार का अवरोध करती है।

हमारे सूर्य और नेप्चून (Neptune) में जितनी दूरी है उतनी ही दूरी आल्फ़ासेण्टारीके दोनों सूर्योंके बीचमें है। इतने समीप होनेके कारण ये दोनों एक दूसरेमें निरन्तर विप्लवकी अवस्था बनाये रहते हैं। हमारे सूर्यके समीप होनेके कारण दोनों मिलकर वक्र दृष्टि डाले रहते हैं। जब यह दोनों एक दूसरेके समीप आते होंगे तब विप्लवकी वृद्धि होती होगी जिससे हमारे सूर्यकी ज्वालामें उत्तेजना हो जाती होगी।

दूरवीक्षणसे देखनेपर यह चकत्ते सूर्यकी चम-कदार थालीपर चलते हुए दिखलाई पड़ते हैं। इनकी गतिको देखकर ही यह मालूम किया गया है कि सूर्यका गोला अपनी दूरीपर सत्ताइस दिन-में एक बार घूम जाता है। इसी प्रकार आकाश-में जितने तारे दिखलाई पड़ते हैं वह सब गति-वान हैं, स्थिर कोई भी नहीं, प्रत्येक अपनी अपनी गतिसे निरन्तर नियमित रूपसे घूमता और परि-क्रमा करता रहता है। साधारण भाषामें जिन्हें हम तारे कहते हैं वह सब सूर्य हैं। हमसे वह इतनी दूरीपर हैं कि उनका टिमटिमाता उजाला असंख्य वर्षोंमें हमतक पहुँचता है। इन आकाश वासियोंमेंसे कई जो हमारे सूर्य मण्डलमें हमारे संगी हैं नियमिति रूपसे चलते दिखलाई पड़ते हैं, इन्हें हम ग्रह कहते हैं। शेष तारे हमें स्थिर जान पड़ते हैं। पर यह सब आकाशमें बड़ी ही तीव्र गतिसे चलते रहते हैं। उनका स्थान निरन्तर बदलता रहता है। परन्तु वह हमसे इतनी दूरी पर हैं कि उनके स्थानान्तरित होनेका पता हमारे दूरवीक्षण सैकड़ों शताब्दियोंके बाद ही जान सकते हैं।

कोई अट्ठाईस हज़ार वर्ष हुए अल्फ़ासेण्टारी नामके मिथुन सूर्य इस समयकी दूरीके तिहाई दूरीपर हमारे सूर्यसे थे। अगर अब वह हमारे सूर्य पर प्रभाव डाल सकते हैं तो पहले जब इतने पास रहे होंगे, बहुत ज्यादा प्रभाव डालते रहे होंगे। भूगोल-विद्या विशारदोंकी राय है कि गत आठ लाख वर्षोंमें चार बार पृथिवीकी ऋतुओंमें बड़ा भारी परिवर्तन हुआ है। प्रत्येक बार पहले शीतका प्राधान्य हुआ और हमारी पृथिवीपर बर्फ़-का साम्राज्य रहा। इस साम्राज्यके अन्त होनेपर तापका प्राधान्य हुआ जिससे उत्तर और दक्षिणी

ध्रुवके समीपस्थ स्थलोंमें ऐसी ऋतु होगई कि बरफ़का नाम निशान न रह गया और वहाँपर भी गरम देशमें उत्पन्न होने वाले वृक्ष और फूल उगने लगे। चौथे शीतप्रधान कालमें अनुमान किया जाता है कि मनुष्य जानवरोंकी श्रेणीसे निकल-कर मनुष्यत्वको प्राप्त हुआ शीतका साम्राज्य समाप्त होनेपर मनुष्यने सभ्यताओंका विकाश किया। भूगोल शास्त्र विशारदोंका कथन है कि शीत साम्राज्य हमारे पृथिवीसे अभी बिलकुल गया नहीं है। शीत साम्राज्य काल समाप्त होनेपर एक लाख वर्षतक तापका प्राधान्य रहेगा और तब धीरे धीरे उत्तर ध्रुवतककी ज़मीन बर्फ़के आतंकसे छूटकर खेतीके कामकी हो जायगी, मनुष्य वहाँ मज़ेसे रह सकेंगे। परन्तु आजकलके गरम देशोंमें उस समय कितनी गर्मी होगी? भारतवर्षका क्या होगा? भारतवासी कहाँ होंगे? इसका अनुमान करना कठिन है। शायद यहाँकी बढ़ती गरमीसे बचनेके लिये हम लोग उत्तर ध्रुवकी ओर यात्रा करेंगे। एक समय था, जब हम लोग लो० तिलकके सिद्धा-न्तानुसार अपने वेदोंको साथ लेकर उत्तर ध्रुवसे चल पड़े थे और भारतवर्षमें आ बसे। फिर हमको उसी रास्तेसे लौटकर अपने पूर्वजोंकी जन्म भूमि-में जा बसना पड़ेगा। ईश्वर सबसे दलेल कराता रहता है। किसीको क्षणभरके लिये भी स्थिर नहीं रहने देता। समस्त ब्रह्माण्डमें प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक पदार्थके लिये, इस अनन्त सृष्टिके सब अङ्गों और उपाङ्गोंके लिये यही व्यापक नियम है।

गति शक्तिका रूपान्तर है। शक्तिका व्यक्त रूप गति है। पृथिवीके ऋतु और तापक्रममें इतना बड़ा परिवर्तन कालान्तरसे क्यों होता है? इसका कारण भी गति है! हमारा सूर्य आकाशमें एक स्थानपर स्थित नहीं है। अपने सब ग्रहोंको साथ लिये हुये हमारा सूर्य बड़ी तेज़ीसे आकाशमें दौड़ रहा है। बारह मील प्रति सेकेण्डके वेगसे हमारा सूर्य-मण्डल आकाशमें एक सरल रेखाकी दिशामें चल रहा है। चलते हुए गत अरबों वर्षोंमें न जाने किन किन तारोंके पाससे होकर सूर्यमण्डल निकला होगा और न जाने कौनसे प्रभाव उन तारोंने हमपर डाले होंगे।

दूरवीक्षण यंत्रसे देखनेपर भी आकाशमें अग-णित ऐसे तारे हैं जो बिलकुल अचल ज्ञात पड़ते हैं। परन्तु यह अचल तारे भी बराबर चलते रहते हैं और दो चार हज़ार वर्षोंमें ही इनका स्थान बदला हुआ दिखाई पड़ता है। ब्रह्मा-ण्डके जीवनमें दो हज़ार वर्ष कुछ भी नहीं हैं। हमारे जीवनमें जैसे दो चार मिनट कोई बड़ा परिवर्तन नहीं उपस्थित कर देते वैसे ही कहीं हज़ारों वर्षोंमें तारोंके स्थानोंमें इतना परिवर्तन होता है। यह तारे हमारी पृथिवीसे इतनी दूर हैं कि चलते हुए भी हमें अचल दिखलाई पड़ते हैं। इतने बड़े वेगसे चलता हुआ हमारा सूर्य मण्डल जब कभी इन सितारोंके पाससे होकर निकला होगा तो अवश्य प्रभावान्वित हुआ होगा। बहुत सम्भव है कि हमारा सूर्य कुछ ही समयमें किसी बहुत बड़े बड़े तारोंके समूहके पाससे होकर निकले। यह तारे हमारे सूर्यसे करोड़ों और अरबों गुणा बड़े हो सकते हैं। इस सामीप्यके कारण हमारे सूर्यमण्डलकी न जाने क्या अवस्था हो। सम्पूर्ण मण्डलका मण्डल ही आकर्षणके कारण किसी तारेमें जा मिले जिससे हमारे लिये प्रलय ही हो जाय। हमारा भविष्य अन्य तारोंके ऊपर निर्भर है और बिलकुल अनिश्चित है क्योंकि बन्दूककी गोलीकी चौबीस गुना गतिसे हमारा सूर्य न जाने कहाँ जा रहा है। हज़ार या लाख वर्षोंमें हम लोग न जाने कहाँके कहाँ पहुँच जाँयगे। अनुमान द्वारा भी कुछ नहीं कहा जा सकता। सूर्य सरल रेखापर चलता मालूम पड़ता है परन्तु सम्भव है यह सरल रेखा किसी विशाल वक्रका एक भाग हो। उस वक्र-का केन्द्र कहाँ है और उसके केन्द्रपर क्या है, कितने सूर्यमण्डल उस केन्द्रकी परिक्रमा कर रहे हैं? ऐसे ही ऐसे अनेकों प्रश्न उठते हैं जिनके

विचार मात्रसे सर चकरा उठता है। जितना ही विचार कीजिये उतनी ही अधिक गहरी भूल भुलैयां दिखलाई पड़ती है। यही कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड अनन्त है, ईश्वरकी शक्ति अनन्त है, ब्रह्माण्डका संचालक परमात्मा भी अनन्त है। जब बुद्धि चक्कर खा गई तो बस एक जवाब ठीक समझमें आता है। यह संसार अनित्य और असार है, जगत मिथ्या है, यह समस्त संसार परमात्माका क्रीडास्थल है। ब्रह्माण्डकी अनन्त गति ईश्वरकी माया है।

सहयोग-संस्था

[ले० श्रीशंकरराव जोशी]

सहकारी संस्थाओंके लाभोंसे संसारके सभी देश भले प्रकार परिचित हैं। संसारके प्रत्येक देशमें सहयोगको अपनानेके लिए जनता उत्सुक रहती है। सहयोग समितियोंकी उन्नति और प्रचारके लिये प्रत्येक सभ्य देश अहर्निश दत्तचित्त रहता है। ग्रेट-ब्रिटेन जरमनी, अमेरिका, डेनमार्क आदि देशोंका अनुभव है कि सहकारिता, राष्ट्रीय हितके लिये अत्यन्त आवश्यक है। संसारमें भारतके सिवा, शायद ही कोई देश ऐसा हो जिसकी सामाजिक और साम्पत्तिक अवस्था सहकारी-मंडलोंके प्रचारके लिये इतनी अनुकूल हो। आजतक भारतवर्षमें उन मण्डलोंको बहुत अच्छी सफलता मिली है। इतने थोड़े समयमें इतनी अधिक सफलता संसारके अन्य किसी देशमें प्राप्त नहीं हुई है। परन्तु इतनेमें ही समाधान मान लेना-योग्य नहीं है। क्योंकि अभीतक तो भारतवर्षका एक बहुत बड़ा क्षेत्र अछूता ही पड़ा है। अतएव प्रत्येक शिक्षित भारतवासीका यह एक पवित्र कर्तव्य है कि सहकारी मंडलोंकी उन्नतिके हित-साधनके लिये यत्न-शील रहे।

वर्तमान कालमें राजनैतिक सुधारोंपर बहुत ज्यादा जोर दिया जाता है। और भारतके इस छोरसे उस छोरतक राजनीतिकी उत्तुंग तरंगें उठ रही हैं। यह तो हम भी मानते हैं कि सुराज्यकी अपेक्षा स्वराज्य श्रेष्ठ है। और राष्ट्रके अभ्युदयके लिये राजनैतिक अधिकारोंकी भी उतनी ही आवश्यकता है। किन्तु हमारे मतसे सामाजिक और साम्पत्तिक दुरवस्थाकी ओर दुर्लक्ष करना महा हानिकारक है। क्योंकि राष्ट्रका भावी जीवन इन्हींपर निर्भर करता है। कोरे राजनैतिक सुधारोंसे ही राष्ट्रका अभ्युदय होना आकाश कुसुम पानेकी लालसाके समान निरर्थक और शुद्ध पागलपन है। हमारे बड़े बड़े नेताओंका ध्यान इस ओर बहुत कम खिंचा है। सौभाग्यका विषय है कि महात्मा गांधी इस मर्जको पहचान गये हैं और उन्होंने कुछ उपचार भी बताए हैं किन्तु वे सब एकाँगी ही हैं। देशकी अधिकांश जनता कृषि या तत्संबंधी उद्योग धंधोंके द्वारा ही अपना जीवन निर्वाह करती है। अतएव इन राष्ट्रके अन्नदाताओंकी साम्पत्तिक दुरवस्थाको सुधारनेका प्रयत्न किया जाना अनिवार्य है। पाश्चात्य देशोंके अनुभवसे यह बात भले प्रकार सिद्ध हो चुकी है कि सहयोग संस्थाएँ ही दीन कृषकों और मजदूरोंकी साम्पत्तिक दुरवस्थाके निवारण करनेका एक मात्र राजमार्ग हैं। अस्तु!

सहकारिता साम्पत्तिक-प्रवृत्ति (Economic movement) है और इसी लिये सबसे पहिले इसके साम्पत्तिक लाभोंकी ओर ही हमारा ध्यान आकर्षित होता है। जरमन, इटली, डेनमार्क आदि पाश्चात्य देशोंमें सहकारिताने जादूका असर दिखाया है। सहयोग संस्थाओंकी शरण लेते ही सूदका दर बहुत घट गया। अपव्ययके मार्ग रुक गये और बहुत अधिक सूद लेनेवाले साहूकारोंका अस्तित्व-ही एक प्रकारसे मिट गया। जिन छोटे छोटे काश्तकारों और कारीगरोंको अपने धंधेके लिये पूञ्जी नहीं मिलती थी, उन्हें कम सूदपर काफी पूञ्जी मिलने लगी। कम सूदपर चाहे जिस समय काफी रुपया मिलनेकी व्यवस्था हो जानेके कारण दिनों दिन उद्योग-धंधों और कृषिकी तरक्की होने लगी। रासायनिक खाद, उत्तम बीज, औजार आदिकी सहायतासे कृषिकी पैदावारमें भी खूब वृद्धि हुई। आवश्यक पदार्थोंके

क्रय-विक्रयका कार्य सहकारी संस्थाओं द्वारा किया जाने लगा, जिससे एजण्टों और दलालोंकी जरूरत न रही। फल यह हुआ कि आवश्यक पदार्थोंकी खरीदी व विक्रीसे बहुत फायदा होने लगा। किसी ज़मानेमें डेनमार्क देश अत्यन्त हीन अवस्थाको प्राप्त हो गया था। ज़मीनकी उर्वराशक्ति अपनी अंतिम सीमा-तक घट गई थी, जिससे किसानोंकी हालत बहुत ही खराब हो गई थी। किन्तु सहकारिताको अपनानेसे शीघ्र ही वह एक समृद्धिशाली देश होगया, और वर्तमान कालमें वह सर्वाधिक समृद्ध देश माना जाता है। जरमनीका वह प्रदेश जहां ग़रीबीकी आग ज़ोरोंसे धधक रही थी और जहांके निवासियोंको न तो खानेको मोटा अन्न ही मिलता था और न लज्जा निवारणार्थ फटे पुराने वस्त्र ही नसीब होते थे वही प्रदेश सहकारिताके बलपर धन-धान्यसे परिपूर्ण हो गया। भारतवर्षमें सहकारिताका प्रवेश हुए अभी २० ही वर्ष हो पाये हैं। किन्तु इतने थोड़े समयमें भी उसका अच्छा फल दृष्टि-गोचर होने लगा है।

युरोप और भारतवर्षकी अवस्थामें ज़मीन आसमानका फ़र्क़ है। हमारे मतसे भारतके उद्धारके लिये सहयोग संस्था ही एक मात्र साधन है। नीचे दिये हुए अङ्कोंसे यह बात भली प्रकार ज्ञात हो जायगी कि संसारके अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतकी दशा कैसी हीन है :—

देशोंके नाम	प्रति मनुष्य पीछे औसत आय	प्रति मनुष्य पीछे औसत पूञ्जी
युनाइटेड किंगडम (इङ्गलैंड वेल्स स्काटलैंड)	३३·८ पौंड	३०२ पौंड
फ्रांस	२७·८ ”	२५२ ”
जरमनी	२२·६ ”	१५७ ”
डेनमार्क	३५·५ ”	२३० ”
इटली	१२·१ ”	१०१ ”
रूस	११·५ ”	६१ ”
यूरोप (समस्त)	१९·४ ”	१३९ ”
संयुक्तरियासतअमेरिका	३९ ”	२३४ ”
आस्ट्रेलिया	४०·२ ”	५५६ ”
भारत	२·१	१० (लगभग) पौंड

भारतवर्षकी प्रतिशत ८५ जनता कृषिद्वारा जीवन निर्वाह करती है। भारतवासी क़र्ज़के भारी बोझसे दबे हुये हैं। सरकारी रिपोर्टोंसे पता चलता है कि देहाती जनता पर ३०० करोड़ रुपयेका क़र्ज़ है और क़रीब १३५ करोड़ रुपया गिरवी क़र्ज़ है। हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि दोनों ही प्रकारके क़र्ज़का औसत प्रति व्यक्ति पीछे अनुक्रमसे १२·५ रुपया पड़ता है। परन्तु उनके डरनेका कोई कारण नहीं है। पश्चिमी देशोंमें क़र्ज़का कई गुना भारी बोझ है। किंतु बड़े दुखके साथ कहना पड़ता है कि भारतियोंके सिरपर क़र्ज़का यह बोझ दिनपर दिन बढ़ता ही जा रहा है। हमारा अपव्यय ही इसका मुख्य कारण है। भारतियोंके क़र्ज़पर विचार करते समय दो बातोंपर विचार करना निहायत जरूरी है। ऊपर लिख आये हैं कि अनुत्पादक कार्योंमें अपव्यय करते रहनेके कारण ही भारतपर क़र्ज़का बोझ दिन ब दिन अधिक होता जा रहा है। माल गुज़ारीकी वृद्धि वर्षाकी कमी या अवर्षण, विवाह मृत्यु आदिमें होने वाले खर्च ही क़र्ज़के कारण हैं। पाश्चात्य देशोंमें जितना भी क़र्ज़ लिया जाता है वह सबका सब कृषिकी उन्नतिके कामोंमें या अन्य-उत्पादक कार्योंमें ही खर्च किया जाता है। भारतवासियोंको क़र्ज़के बोझके नीचे दबा हुआ देखकर चिन्तित होनेका कोई कारण नहीं। विचार तो इस बातपर किया जाना चाहिये कि जितना भी क़र्ज़ लिया जाता है उसका व्यय किस प्रकार किया जाता है। यदि क़र्ज़ लिया हुआ द्रव्य कुएँ खोदने, खेतीकी तरक्की करने या अन्य उत्पादक कार्योंमें व्यय किया जाय, तो बड़ी अच्छी बात है। अनुत्पादक कार्योंमें रुपया खर्च किया जाना ही विशेष चिंताकी बात है। अकसर लोगोंकी यह धारणा हो गई है कि ज़मीनमें रुपया अटकाना फ़ायदेमंद है। परंतु उनकी यह धारणा निराधार और भूल भरी है क्योंकि ज़मीनके एक आदमीके पाससे दूसरे आदमीके पास चले जानेसे कोई लाभ नहीं। लाभ तो तभी हो सकता

है, जब खेतोंकी उर्वरा-शक्ति बढ़ाने, शिल्प, शिल्पकी तरक्की करने आदि लाभदायक कामोंमें पैसा लगाया जाय।

अकसर कहा जाता है कि छोटे छोटे काश्तकारोंके क़र्ज़का बोझ हलका करना एक प्रकारसे असंभवसा है। हम भी इससे सहमत हैं क्योंकि उनकी सबकी सब पूंजी, बैल, खाद, कुआँ, यंत्र आदि कृषि उपयोगी-आवश्यक पदार्थोंमें ही लगी रहती है। अतएव अन्य आवश्यकीय कार्योंके लिए क़र्ज़ लेना उनके लिए अनिवार्य्य हो जाता है। परन्तु ध्यान इस बातपर दिया जाना चाहिये कि जितना भी रुपया क़र्ज़ लिया जाया करे, वह आवश्यक और उत्पादक कार्योंमें ही व्यय किया जाया करे। प्रत्येक भारतवासीका यह पवित्र कर्तव्य है कि वह अनुत्पादक कार्योंमें व्यय किये जानेके लिए क़र्ज़ लेना रोकनेके लिए अहर्निश तन-मनसे यत्न करता रहे।

स्वर्ग-वासी महामना रानडे आदि प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्र-वेत्ता अकसर कहा करते थे कि भारतीय किसान ज़मीन ख़रीदनेमें जितना रुपया ख़र्च करते हैं उसका बीसवाँ हिस्सा भी वे ज़मीनको सुधरने और उसकी उर्वराशक्तिको बढ़ानेमें व्यय नहीं करते। यही कारण है कि कृषक दिनपर दिन क़र्ज़के बोझके नीचे अधिकाधिक दबे जाते हैं। हमारे मतसे सूदकी दरका बहुत ज़्यादा होना ही इसका एक मुख्य कारण है। जबतक ब्याजकी दर घट न जायगी यही दशा बनी रहेगी। बम्बई और मद्रासमें ज़मीन गिरवी रखनेपर भी १२ से २४ सैकड़ातक सूद देना पड़ता है। और उत्तर हिन्दुस्तानमें सूदकी दर-२४ से ३६ सैकड़ातक है। इतनी भारी सूदकी दरपर रुपया उधार लेकर खेतीकी तरक्कीके कामोंमें लगाना दिवालिया बनना है। कोई भी समझदार आदमी ऐसा काम करनेको आगे न बढ़ेगा। जबतक कम ब्याजपर रुपया मिलनेकी तजवीज़ न हो पायगी तबतक कोई भी आदमी खेतीकी तरक्कीके कामोंमें एक छदाम ख़र्च करनेकी बात सपनेमें भी न सोचेगा। यह तो सभी जानते हैं कि देशकी अधिकांश पूँजी ज़ेवरोंमें या ज़मीनके अंदर अटकी पड़ी है। इसके अलावा पूंजीका एक बड़ा अंश बड़ी बड़ी बैंकोंकी पेटियोंके अंदर बंद है। कृषि शास्त्रके धुरंधर विद्वानोंका मत है कि भारतकी आबहवा और छोटे छोटे ज़मीनके टुकड़ोंपर खेती करनेकी पद्धतिके कारण क़ीमती मशीनें और खाद हमारे लिए एकदम अनुपयुक्त हैं। भारतवर्षके अर्थ-शास्त्रियोंका मत है कि देशमें प्रति मनुष्य पीछे पच्चीस रुपया सोने चांदीके ज़ेवरोंमें अटकाया हुआ है। यदि लोगोंको समझाया जाय, और साम्पत्तिक लाभका विश्वास दिलाया जाय, तो उक्त पूँजीका एक बड़ा अंश उत्पादक कार्योंके लिए सहज ही मिल सकता है। बड़े बड़े शहरोंमें रहनेवाले लोगोंकी कमाई उन बैंकोंमें जमा रहती है जो कृषकोंको रुपया उधार नहीं देतीं। बहुतसे लोग अपनी पूंजी ज़ेवर बनवाने या ज़मीन ख़रीदनेमें लगाते हैं और कई लोग रुपया ज़मीनके अंदर गाड़ कर रखते हैं। लोगोंकी यह धारणा हो गई है कि ज़मीनके रूपमें संपत्ति इकट्ठी कर संततिके लिए छोड़ जाना ही एक मात्र उत्तम और सुरक्षित उपाय है। यही कारण है कि ज़मीन ख़रीदनेमें प्रतियोगिताका बाज़ार बहुत गर्म है, जिससे ज़मीनकी क़ीमत बहुत ही ज़्यादा बढ़ गई है। कई बार ज़मीनमें अटकाई हुई पूंजीपर प्रतिशत ४ से भी कम फ़ायदा मिलता है। भारतकी साम्पत्तिक अवस्थाको देखते हुए कहना पड़ता है कि ख़रीद फ़रोख़्तसे ज़मीनकी मालकीके बार बार बदलते रहनेसे किसी प्रकारके लाभकी आशा नहीं की जा सकती और न आजतक इस प्रथाका अवलम्बन करनेसे कोई लाभ ही दिखाई दिया है। देशको फ़ायदा तो तभी हो सकता है जब पूंजीका उपयोग ज़मीनकी पैदावार और उर्वरा-शक्ति बढ़ानेके कामोंमें किया जाने लगे।

इधर भारतीय वाणिज्यकी दशा भी शोचनीय है। रात दिन कठिन परिश्रम करके कच्चा माल तैयार करने वाले ग़रीब देहातियोंको अपने परिश्रमका समुचित पारिश्रमिक (मजदूरी) नहीं मिलता। संसारके बाज़ारोंमें इस कच्चे मालकी जितनी क़ीमत

आती है, उतनी माल पैदा करनेवालोंको नहीं मिलती। हम देखते हैं कि भारतवर्ष अपना कच्चा माल विदेशोंमें भेजता है, और उसके बदलेमें वहांसे पक्का माल खरीदता है। भारतवर्षके लिये यह अवश्य ही बड़ी लज्जाकी बात है। परन्तु यह कोई कारण नहीं है कि इसी वजहसे हमको अपने कच्चे मालकी पूरी क़ीमत न मिलनी चाहिये। कच्चा माल इकट्ठा करनेवाले और विदेशोंमें माल भेजनेवाली दूकानों-को माल पुरानेवाले दलालों और आढ़तियोंकी बद-माशी और प्रपंचके कारण संसारके बज़ारोंमें भारत-का माल घटिया माना जाने लगा है; जिससे क़ीमत भी कम आती है। दलाल और आढ़तिये माल खरीदकर अच्छा बुरा माल मिला देते हैं या उसमें कंकर, रेत, कचरा आदि मिलाकर बेचते हैं। सारांशमें चार पांच रुपया सैकड़ा लाभकी आशासे वे अच्छे बुरे सभी साधनोंका उपयोग करनेमें नहीं हिचपिचाते। परन्तु इससे देशको विशेषकर किसानों-को बहुत नुक़सान उठाना पड़ता है। क्योंकि कच्चा माल खरीद करने वाले कारखानेके मालिक, रद्दी माल अलग करनेके बाद, मालको साफ़ करने और यंत्रोंकी घिसाई आदिका तखमीना करके हिसाब लगाते हैं; और इन्हीं सब प्रकारकी बातोंपर विचार करनेके बाद ही मालकी क़ीमत निश्चित की जाती है। दलालकी बदमाशीके कारण देश और किसानोंको अपने मालकी क़ीमतके ३०-४० सैकड़ा भागसे हाथ धोना पड़ता है। ये दलाल देशके भयङ्कर शत्रु हैं।

सहकारिताकी सहायतासे भारतकी साम्पत्तिक अवस्था एक हदतक, सुधारी जाती है। मितव्यय ही सहकारिताका एक मुख्य उद्देश है। सहकारिताका अवलम्बन करनेसे फिज़ूल खर्ची रोकी जा सकती है। तथा लोगोंको किफ़ायतका सबक़ भी पढ़ाया जा सकता है। साहूकार या क़र्ज़ देनेवाला ज्यादा सूद लेकर, क़र्ज़ लेने वालेका खून चूसता रहता है; जिससे बेचारे गरीब लोगोंकी सब आशा और सुख मट्टीमें मिल जाते हैं। सहकारी सभाओंसे कम सूद-पर रुपया लेकर साहूकारोंका क़र्ज़ चुकानेकी व्यवस्था की जा सकती है; और तब किश्तवारीसे सभाओंका क़र्ज़ भी चुकाया जा सकता है। पारस्परिक विश्वास और व्यापारिक तत्वोंका ज्ञान प्राप्त कराकर सहयोग संस्थाएं पूंजी इकट्ठी कर सकती हैं। धीरे धीरे ज़ेवर या ज़मीनके अन्दर अटका हुआ धन लोग इन संस्थाओंको देने लग जायंगे और तब उत्पादक कार्यों में उसका उपयोग किया जा सकेगा। कृषिकी उन्नति-के लिये तो सहकारिता ही एक उत्तम साधन है और छोटे छोटे काश्तकारोंके लिये तो एक आशीर्वाद स्वरूप है। सहयोग मण्डल उसको कम सूदपर रुपया उधार देता है, उसके लिये उत्तम और अमिश्र बीज, खाद खेतीके औज़ार आदि कम क़ीमतमें खरीद देता है, और पैदावारको अच्छी क़ीमतपर बेचनेका भार भी वह अपने ऊपर लेता है।

साम्पत्तिक दृष्टिसे भारतवर्षमें सहकारितासे पुष्कल लाभ हो सकते हैं, परन्तु सहकारितासे नैतिक और राजनैतिक लाभ भी कम नहीं होते। किन्तु वर्तमान कालमें हमारे नेता लोग इस ओर फूटी आँखसे भी नहीं देखते। संभवत: उनकी दृष्टिमें सहकारिता गौण जंच रही है। मितव्यय, पारस्परिक सहायता और स्वावलम्बन ही सहकारिताके मुख्य उद्देश हैं। सह-कारी-संस्थाओंका सभ्य अपने साथीके हितपर पूरा ध्यान रखता है और सार्वजनिक हितके लिये रात दिन कोशिश करता है। सहकारितामें प्रामाणिकतापर ही सब दारोमदार रहता है। असलमें देखा जाय तो, सहकारिताका उद्देश ही यह है कि प्रामाणिकताके तारणपर ही रुपया उधार दिया जाय। सहकारिता, मितव्ययता, दूरदर्शिता, व्यापारिक रीत भांत और सचाईका पाठ पढ़ाती हैं। सहकारिताके लाभोंपर विचार करते हुए प्रसिद्ध अङ्गरेज लेखक मि० वुल्फ लिखते हैं:—"असली आदमी अपने कर्तव्यपर आरूढ़ होना सीख लेता है। फिजूल खर्च करने वाला किफ़ायतशारी करने लगता है। शराबी शराबको एक दम छोड़ देता है। चोर, डाकू और बदमाश भी अपना अपना धंधा छोड़कर सदाचारी बन जाते हैं।

बूढ़े आदमीको भी विद्या पढ़नेका शौक़ पैदा हो जाता है।" एक प्रांतमें सहकारिताका प्रचार होनेके बाद, जो जो फ़ायदे हुए, उनपर एक इटालियन पादरी खुले दिलसे सहकारिताकी बड़ाई करते हुए लिखते हैं:—

"अब लोगोंने कलाल-(शराब बेचनेवाला) की दूकानपर जाना बहुत ही कम कर दिया है और आजकल पहलेकी अपेक्षा वे अधिक मन लगाकर खूब काम करने लगे हैं। आलसका तो अब नामतक न रहा। अच्छे चाल-चलनवाले आदमीको ही सभासद बनाने, सभाओंमें शामिल करनेका अटल नियम होनेसे, कई आदमियोंने शराब न पीनेकी प्रतिज्ञा करली है। वे अपनी प्रतिज्ञापर पूर्णतः अटल हैं। अकसर देखा जाता है कि पचास या साठ वर्षके बूढ़े आदमी भी पढ़ना-लिखना सीख गये हैं जिससे वे क़र्ज़के लिये दी जानेवाली अपनी अर्ज़ीपर दस्तखत कर सकें। सारा जन्म भीख माँगकर पेट पालनेवाले कई आदमी अब मज़दूरी करने लगे हैं और कई आदमी इस कोशिशमें हैं कि भिक्षा या दानसे अपना गुज़ारा न चलाकर मिहनत मज़दूरी करके गुज़र चलायें। यह सब उस छोटी सी रक़मका प्रताप है, जो सहकारी संस्थाओं द्वारा कम सूदपर उधार दी गई थी। ग़रीब आदमी, जिनको एक वक्त भी भर पेट खानेको नहीं मिलता था, उनको सहकारी-संस्थाने एक एक गाय खरीद दी है। गायके दूध, मक्खन, पनीर आदिको बेंचकर वे अपना क़र्ज़ चुका रहे हैं। इधर गायका बच्चा मुफ़्त ही उनके हाथ लग जायगा।"

सहयोग-सिद्धान्तके एकांत हामी सुप्रसिद्ध-अंग्रेज विद्वान मि० वुल्फने बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें लिखा है कि सहयोग प्रवृत्ति [Co-operative movement] अमूल्य-सोनेकी खदानोंवाला एक दूसरा केलिफ़ोर्निया है। किन्तु हमारे मतसे तो केलिफोर्निया-की खानोंमें और सहयोग प्रवृत्तिमें बहुत बड़ा अंतर है। संभव है किसी दिन ये खानें जबाब दे दें, और तब कोई भी इनकी पूछताछ न करे, किंतु सहयोग प्रवृत्ति अपना सत् यावच्चन्द्रदिवाकरौ नहीं त्याग सकती। हम इसे कामधेनु कह सकते हैं। जबतक मानव-प्राणी तन-मन धनसे इसकी सेवा करता रहेगा, वह उसको दिन ब दिन अधिकाधिक ऐश्वर्य्य और सुख तथा यश प्रदान करती रहेगी। अस्तु !

सहयोग सिद्धान्तके संबंधमें मिस्टर वुल्फ एक स्थानपर लिखते हैं—

"सहकारी-संस्थाओंने संसारका बहुत कुछ भला कर दिखाया है। सोना एक अमूल्य-धातु है। सोनेकी खानपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये कई राष्ट्रोंने खून-खराबी और तरह तरहके भयंकर अत्याचार किये हैं। सोनेके ही कारण कितने ही राष्ट्रोंको भयंकर यातनाएँ, लूट खसोट और क़त्ले आमका भीषण प्राय दृश्य देखना पड़ा है। सोनेकी बदौलत संसारमें लोभ, द्वेष, ईर्षा और अप्रमाणिकताका भंडार है। यह तो सद्गुण और सदाचारकी एक मात्र जननी है। यह मनुष्यको किफ़ायत करने वाला उद्योगी, गंभीर और प्रामाणिक बनाती है।"

भारतवर्षमें सहकारिताका बीज बोया जा चुका है और अधिकांशमें सरकार द्वारा ही इनको जीवन-प्रदान किया जारहा है। हमारे बग़ीचेका यह विदेशी माली, राजनैतिक-फलोंका आस्वादन हमको कभी न लेने देगा तथा ऐसा होना अनिवार्य और स्वाभाविक भी है। किन्तु हमें पूर्ण विश्वास है कि एक न एक दिन इस बग़ीचेके सच्चे स्वामी—हम भारतवासी—विदेशी मालीकी इच्छा न रहनेपर भी इस सुमधुर फलका स्वाद चाखे बिना न रहेंगे।

वर्तमान युग लोक-शासनका युग है। सारे संसारमें पूंजी-तंत्रका बोलबाला हो रहा है। सहकारिता लोक-शासनका बहुत ही छोटा नमूना है। प्रतिनिधियोंका निर्वाचन समाज विशेषतः अपनी संस्थाके हित संबंधी प्रश्नोंपर बहस करके उनका निर्णय करना और अपने मत (vote) का उपयोग करना आदि बातों-की शिक्षा प्रत्येक सभ्य सहकारी-संस्थाओं द्वारा प्राप्त कर सकता है। अपने स्वार्थको त्यागकर सार्वजनिक-हितके लिए निस्स्वार्थ-भावसे रात-दिन कोशिश

करते रहनेका सबक़ सहकारी-संस्था रूपी पाठशाला-ओंमें, व्यावहारिक रूपमें सीखा जा सकता है। इन संस्थाओं द्वारा तैयार किये हुए कार्यकर्त्ता देश-हितके लिये काम करनेमें पूर्णरूपेण समर्थ हो सकते हैं और उनमें सच्चे नेता बननेकी योग्यता आ जाती है। सहकारितासे सबसे अधिक लाभ तो यह होता है कि जनताकी संगठन-शक्ति बहुत बढ़ जाती है। यह संगठन देशके लिये विशेष लाभकारी सिद्ध हो सकता है। सारांशमें हमारे मतसे सहकारिता स्वराज्य प्राप्त करनेकी पहिली सीढ़ी है और कहें तो कह सकते हैं कि स्वाराज्यकी भव्य इमारतको सहकारिताकी मज़बूत नींवपर खड़ी करना भारतको अपना गत वैभव प्राप्त करा देनेके लिये परम आवश्यक है।*

बाटरियोंका जोड़

[ले० श्री सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

यह देख चुके हैं कि किसी बाटरीकी ज्यादासे ज्यादा वि० सं० श २ वोल्ट है और उसके सिरोंका अवस्था भेद इससे कम ही होगा। कमसे कम अवस्था भेदपर जलने वाले लम्पको चार वोल्टका अवस्था भेद चाहिये। इससे कम अवस्था भेदपर चलने वाले विजलीके पंखे भी नहीं मिलते। जिन शहरोंमें बिजली लगी है वहांके रहनेवाले यह भी जानते हैं कि उनके तारोंका अवस्था भेद २२० या ४४० वोल्ट है। इन बातोंको देखकर यह प्रश्न उठता है कि इतना अवस्था भेद किस प्रकार पैदा किया जाता है? मान लो कि जितनी चाहें उतनी हम ऐसी बाटरियां खरीद सकते हैं जिनके सिरोंमें २ वोल्टका अवस्था भेद है। अब २२० वोल्टका अवस्था भेद (वोल्टन) उत्पन्न करनेके लिए हमको कितनी बाटरियां खरीदनी चाहिएं और खरीद कर उनको किस प्रकार जोड़ना चाहिये जिससे २२० वोल्टके बराबर अवस्था भेद मिल सके। प्रत्येक बाटरीका धनात्मक सिरा उच्च अवस्थाका और ऋणात्मक सिरा नीची अवस्थाका माना जाता है। चित्र १८ में दो बाटरियां दी हुई हैं। इनके ऋणात्मक सिरे छोटी और मोटी लकीरोंसे और धनात्मक सिरे लम्बी और बारीक लकीरोंसे सूचित किये गये हैं।
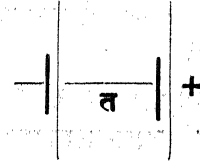
चित्र १८

मान लो कि पहली बाटरीके सिरोंमें अवस्था भेद अ वोल्ट और दूसरी बाटरीके सिरोंमें $अ_1$ वोल्ट है। अब यदि कोई ऐसी विधि हो कि हम पहली बाटरीके ऋणात्मक सिरे और दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरेकी अवस्था एक कर सकें तो पहली बाटरीके धनात्मक सिरे और दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरेमें अ वोल्टोंका अवस्था भेद होगा। दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरे और ऋणात्मक सिरे में $अ_1$ वोल्टोंका अवस्था भेद है इसलिये पहली बाटरीके धनात्मक और दूसरी बाटरीके ऋणात्मक सिरेमें $अ + अ_1$ वोल्टोंका अवस्था भेद होगा। वह विधि कौन सी है, जिससे पहली बाटरीके ऋणात्मक और दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरेकी अवस्था एक कर दी जावे। वह विधि धातुके तारसे जोड़ देना है। यह तार चित्रमें त लकीरसे सूचित किया गया है। यदि दोनों बाटरियां समान हों तो उनके सिरोंमें अवस्था भेद बराबर ही होगा। यदि इन दोनोंको ऊपर दी हुई विधिसे जोड़ें तो पहली बाटरीके धनात्मक और दूसरीके ऋणात्मक सिरेमें २ अ वोल्टोंका अवस्था भेद होगा। अर्थात् इस प्रकार जोड़नेसे हमको दुगने अवस्था भेदकी बाटरी मिल गई।

अब यदि उसी तरहकी एक तीसरी बाटरी लेकर इसका धनात्मक सिरा इस जोड़के ऋणात्मक सिरेसे जोड़ दें तो तीसरीके ऋणात्मक और पहली

* लेखककी 'सहयोग-संस्था नामक अप्रकाशित पुस्तकका एक अध्याय।

बाटरीके धनात्मक सिरेमें ३४ वोल्टका अवस्था भेद होगा। इस विधिके अनुसार बाटरियोंको जोड़ कर जितना अवस्था भेद चाहें उत्पन्न कर सकते हैं। २२० वोल्टोंके बराबर अवस्था भेद उत्पन्न करनेके लिये हमको २ वोल्टोंके अवस्था भेदवाली ११० बाटरियां चाहिए और उनमेंसे एक बाटरी लेकर उसके ऋणात्मक सिरेको दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरेसे जोड़ देना चाहिये। दूसरी बाटरीके ऋणात्मक सिरेको तीसरी बाटरीके धनात्मक सिरेसे जोड़ना चाहिये और इसी प्रकार बाटरियोंको जोड़ते हुए चले जाना चाहिये। अन्तमें ११०वीं बाटरीका ऋणात्मक सिरा खुला रह जायगा इसमें और पहली बाटरीके धनात्मक सिरेमें २२० वोल्टोंके बराबर अवस्था भेद मिलेगा। ऐसा मान सकते हैं कि ११० बाटरियोंका समूह ऐसे जोड़से एक ही बाटरी हो गया है। इस बाटरीका धनात्मक सिरा पहली बाटरीका धनात्मक सिरा है और इसका ऋणात्मक सिरा ११० वीं बाटरीका ऋणात्मक सिरा है। इस प्रकार जुड़ी हुई बाटरियोंको शृंखलाबद्ध कहते हैं। शृङ्खलाबद्ध बाटरियोंके समूहके सिरोंमें अवस्था भेद समूहकी बाटरियोंके अवस्था भेदोंके जोड़के बराबर होता है। शृंङ्खलाबद्ध बाटरियोंके समूहको इस प्रकार सूचित किया करेंगे। [चित्र १६]
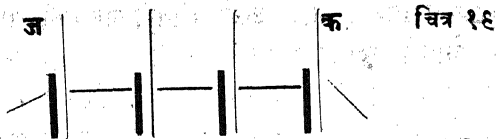
ज क चित्र १६

चित्र २०—चार शृंखलाबद्ध बाटरियां दिखलायी गयी हैं—

यदि १०० या २०० अथवा और भी अधिक बाटरियां शृंखलाबद्ध हों तो उनको इस प्रकार सूचित किया करते हैं।

+ |—|—|—............|—|—|—
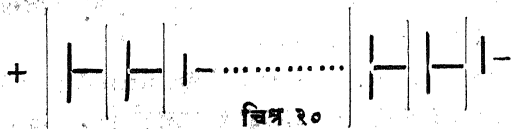
चित्र २०

१०० या २०० बाटरियां या २०० या ४०० वोल्ट

अब यदि इस समूहके दोनों सिरे किसी लम्पसे जोड़ दिये जावें तो ऐसा मान सकते हैं कि धारा धनात्मक सिरेसे लम्पमें प्रवेश करेगी और लम्पमें होती हुई ऋणात्मक सिरेसे समूहमें दाखिल होगी और प्रत्येक बाटरीमें होती हुई धनात्मक सिरेको लौट जावेगी। इस उदाहरणसे यह मतलब निकला कि जो धारा बाहरी चक्करमें बहती है वही धारा प्रत्येक बाटरीमें होकर बहती है।

एक प्रकारकी बाटरियोंके सिरोंका अवस्था भेद तो एक ही होता है किन्तु उनकी बनावटके अनुसार उनसे भिन्न भिन्न प्रबलताकी धाराएँ उत्पन्न की जा सकती हैं।

एक बाटरी ऐसी हो सकती है जिससे पांच एम्प की धारा ली जा सकती है। दूसरी ऐसी हो सकती है जिससे आप १० एम्पकी धारा ले सकते हैं। पर यह धाराएं उनसे एक नियत समयतक ही ले सकते हैं। कोई बाटरी ५ एम्पकी धारा १० घण्टेतक दे सकती है और कोई १० एम्पकी धारा ३० घण्टेतक दे सकती है। घण्टों और एम्पोंके गुणनफलको बाटरीकी समाई कहते हैं। एक बाटरीकी ५० एम्प-घंटे समाई हुई और दूसरीकी ३०० एम्प-घंटे। यदि समूहमें भिन्न भिन्न समाई वाली बाटरी लगा दी जाएँ तो कोई जल्द ही खाली हो जायगी और कोई देरमें। जो खाली हो जावेंगी उनसे धारा मिलना बन्द हो जावेगा। वह बाटरियां बेकार हो गईं अर्थात् समूहमें बाटरियोंकी संख्या कम हो गई। अवस्था भेद भी कम हो जायगा। लम्पका जलना भी बन्द हो जायगा। इससे यही नतीजा निकला कि शृंखलामें उन्हीं बाटरियोंको जोड़ना चाहिये जिनमेंसे एक समान धारा ली जा सके और जिनकी एक ही समाई हो। इन बाटरियोंके सिरोंमें एक ही अवस्था भेद होना आवश्यक नहीं है। अवस्था भेद भिन्न होनेसे एक नियत वोल्टनके लिए बाटरियोंकी संख्यामें भेद पड़ जायगा।

कभी ऐसा भी हो सकता है कि हमारे पास पांच एम्पकी धारा देनेवाली बाटरियां हों और हमको १० एम्पकी धाराकी आवश्यकता हो तो क्या ऐसा उपाय

नहीं है कि हमको इन्हीं बाटरियोंसे १० एम्पकी धारा मिल जाय। उपाय अवश्य ही है और वह बाटरियोंकी नीचे दी हुई विधिसे जोड़ना है। दो बाटरियां लो। एक का धनात्मक सिरा दूसरेके धनात्मक सिरेसे और ऋणात्मक सिरा ऋणात्मक सिरेसे जोड़ दो, जैसा चित्र २१ में दिखलाया गया है बाटरियोंके ऐसे जोड़में इन बातोंपर ध्यान आवश्यक है। एक बाटरीका चक्र दूसरी बाटरीमें होकर पूरा हो गया है। पर यदि ऊपर-

चित्र २१
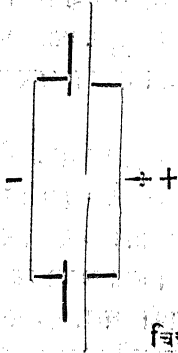
वाली बाटरी धारा बहावे तो नीचे वाली बाटरीमें दाएँ-से बाएँको होती हुई जायगी, और यदि नीचे वाली बाटरी धारा बहावे तो ऊपरवाली बाटरीमें भी दाएँ से बाएँ को ही बहायेगी, जिससे यह मालूम होगया कि जिन तारोंसे बाटरियां जुड़ी हुई हैं उनमें धाराओंकी दिशा एक दूसरेके विरुद्ध होगी। इसलिए यदि दोनों-बाटरियोंकी धारा बहानेकी शक्ति (वि० सं० श) बराबर हो तो दोनोंमें कोई सी भी धारा न बहा सकेगी और चक्रमें धारा सूचक डालनेसे उसपर कोई असर न पड़ेगा। बाटरियोंकी वि० सं० श० बराबर हैं या नहीं इसी प्रकार जांची जा सकती हैं। एक बाटरीसे दूसरी बाटरीमें धारा जाना बेफ़ायदा ही है। इसी कारण इस प्रकार जोड़नेके लिए बाटरियां समान विद्युत संचालक शक्तिकी होनी चाहिये। बाहरी चक्रमें ये धारा दोनों बाटरियां मिलकर बहावेंगी। इस कारण यदि एक एकसे ५ एम्पकी धारा मिल सकती है तो दोनों मिलकर १० एम्पकी धारा बाहरी चक्करमें बहा सकती हैं। यह बाटरियोंका हार बन्धन कहलाता है।

इस बातका ध्यान रहे कि इस प्रकारके बंधनमें समूह-का अवस्था भेद एक बाटरीके अवस्था भेदके बराबर है क्योंकि समान अवस्थावाले सिरे ही जोड़े गये हैं।
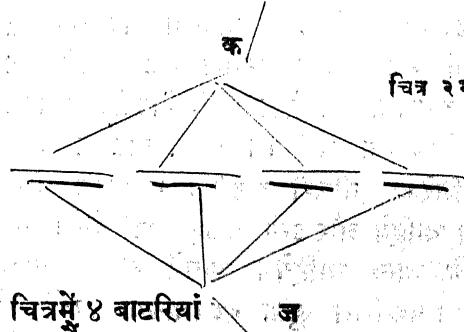
चित्र २२

इस चित्रमें ४ बाटरियां हार बद्ध हैं

यह तो देख ही चुके हैं कि बाहरी चक्करमें धारा बाटरीकी वि० सं० श और भीतरी बाधापर निर्भर है। जब बाटरियां श्रृंखलाबद्ध की जाती हैं तो उनकी भीतरी बाधायें भी श्रृंखलाबद्ध हो जाती हैं इसलिए ऐसे समूहके भीतरी चक्करकी बाधा प्रत्येक बाटरीकी भीतरी बाधाओंके जोड़के बराबर होगी। बाटरियोंको श्रृंखलाबद्ध करनेसे यदि उनकी वि० सं० श जुड़ जाती हैं तो उनकी बाधाएँ भी जुड़ जाती हैं इसलिए यह ज़रूरी नहीं हैं कि ऐसे समूहसे प्रबल धारा मिल ही जावे। लेकलांशि बाटरीकी वि० सं० श १.५ वोल्टके बराबर है और उसके भीतरी चक्करकी बाधा एक ओह्मके बराबर है। यदि ऐसी १०० बाटरियां श्रृङ्खलाबद्ध कर दी जावें तो समूहकी वि० सं० श १५० वोल्टके बराबर होगी और भीतरी चक्करकी बाधा १०० ओह्मके बराबर। इसी कारण इतनी बड़ी शक्तिवाले समूहसे भी १.५ एम्पकी धारासे अधिक प्रबल धारा नहीं मिल सकती है और यह धारा भी उस समय मिलेगी जब बाहरी चक्करकी बाधा बहुत ही कम होगी या यों कहिए कि यह धारा केवल भीतरी चक्करमें ही बहायी जा सकती है।

परन्तु परवर्तीय बाटरियोंको इस प्रकार जोड़ कर बहुत प्रबल धारा मिल सकती है। उनकी वि० सं० श बहुत है और भीतरी बाधा बहुत कम। यदि ·०१ ओह्म-

की भीतरी बाधावाली १०० परवर्तीय बाटरियां श्रङ्खलाबद्ध कर दी जावें तो उनके समूहकी वि० सं० श २०० वोल्ट और भीतरी बाधा १ ओह्म होगी। यदि बाहरी चक्करकी बाधा बहुत कम हो तो इनसे २०० एम्पतककी धारा मिल सकती है। इस बातका ध्यान रहे कि बाहरी चक्करकी बाधा इतनी कम न हो कि इन बाटरियोंसे उस धारासे प्रबल धारा बहने लगे जो प्रबलसे प्रबल धारा इनमें ली जा सकती है। यहां केवल उदाहरणके लिए यह लिखा गया है कि ऐसे समूहसे २०० एम्पकी धारा मिल सकती है जिसका यह मतलब नहीं है कि ऐसे समूहसे इतनी धारा ले ही लेना चाहिए। इन बातोंसे यह तो मालूम ही हो गया कि छोटी भीतरी बाधावाली ही बाटरियोंको श्रृङ्खलाबद्ध करनेसे प्रबल धारा मिल सकती है।

कभी यदि ऐसी इच्छा हो कि बड़ी भीतरी बाधा वाली बाटरियोंको किसी ऐसी रीतिसे जोड़ना चाहिए कि प्रबल धारा मिले तो कुछको हारबद्ध करना पड़ेगा और हारबद्ध बाटरियोंके समूहोंको श्रङ्खलाबद्ध करना पड़ेगा। नीचे एक चित्र दिया जाता है जिसमें दो दो श्रृङ्खलाबद्ध बाटरियोंके दो समूहोंको हारबद्ध किया गया है।
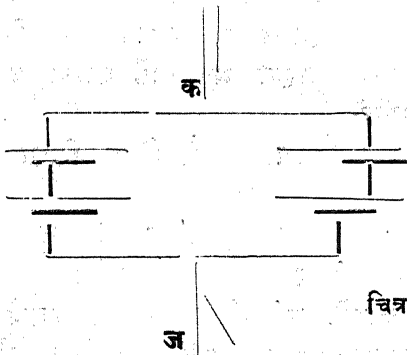
चित्र २३

ऐसे जोड़से उस समय अधिकसे अधिक धारा मिलती है जब ऐसे समूहकी भीतरी बाधा बाहरी बाधाके बराबर होता है।

उस समय भीतर चक्करमें भी उतनी ही गरमी पैदा होती है जितनी बाहरी चक्करमें अथवा दोनों चक्करोंमें बराबर ही गरमी पैदा हुई या काम हुआ क्योंकि गरमी भी तो कामका एक रूप है या यों कहिए कि जितना काम बाटरियोंने किया उसका आधा भीतरी चक्करमें हुआ, जो व्यर्थ हुआ। चूंकि बाटरियोंकी आधी सामर्थ्य खराब जाती है इसलिए ऐसे जोड़ोंका प्रचार बहुत कम है और आज कल परवर्तीय बाटरियोंके ज़मानेमें बिल्कुल ही जाता रहा है क्योंकि इनको श्रंखलाबद्ध ही कर कर बहुत प्रबल धारा ले सकते हैं।

रोग मीमांसा

[ले० श्री रामदास गौड़, एम. ए.]

(१) रोगके कारण

रोग चाहे किसी दशामें हों किसी रूपमें हों या वाह्याघातजन्य हों, सभी एक अप्रमित विकारके रूपान्तर हैं। रोग मीमांसाके विषयको स्वतंत्र रूपसे विचार-क्षेत्रमें लानेके लिये हमें यह कल्पना कर लेना चाहिये कि यह शरीर अनेक संस्थान चक्रोंसे निर्मित एक विचित्र यंत्र है जो बहुत कालतक चलते रहनेके लिये शक्ति संपन्न किया गया है। जैसे घड़ी कूक देनेसे दी हुई शक्तिके अनुसार परिमित काल तक चलती रहती है, उसी तरह शरीर भी एक परिमित प्राण शक्तिके द्वारा परिमित कालतक चलता रहता है। हम समझ चुके हैं कि शरीरके भीतर जन्मसे मरण पर्यन्त प्रतिक्षण विकारोंका होता रहना अनिवार्य है। जिस शक्तिके द्वारा निरन्तर यह विकार होते रहते हैं उसे हमारे शास्त्रकारोंने जीव, जीवन या प्राण शक्ति कहा है। इस प्राण शक्तिका ह्रास होना भी शरीरमें अप्रमित विकार उत्पन्न कर सक्ता है। स्थूल शरीरके रोगी होने वा अल्प मृत्युके तीन मुख्य कारण समझे जाने चाहियें।

(१) प्राणशक्तिका ह्रास। नाड़ी दौर्बल्य वा वात दोष।

(२) रसोंमें और रक्तमें अप्रमित विकार। पित्त दोष।

(३) मलों और विषोंका संचय। कफ दोष।

यह तीनों कारण हमारे शरीरमें इसलिये उपस्थित होते हैं कि हम सांस लेनेमें, काममें, आराममें, एवं सामाजिक और वैयक्तिक आचारमें, पारिवारिक प्रसंगमें और अपने विचारमें बहुधा स्वभाव विरुद्ध आचरण करते हैं। इस विरुद्धाचारके अतिरिक्त वाह्य प्रकारसे चोट लगना, बुढ़ापेका आना, निमित्तकी प्रतिकूलता आदि वैयक्तिक कारण भी हो सकते हैं। इन कारणोंका स्पष्ट रूपसे दिग्दर्शन निम्न लिखित सारणीसे हो सकता है।

हमारे आचार और विचारमें अस्वाभाविकतासे उसके रोगोंके मुख्य और गौण कारणः—

मुख्य हेतु

प्राण शक्तिका ह्रास, जो रात्रिश्रम, अति प्रसंग, अतिपान, विषयोपचार, और अनुचित शिल्पचिकित्सासे और पूर्व संस्कारसे भी हो सकता है—वात दोष

रसों और रक्तका अप्रमित विकार अनिष्ट भोजनके कारण और विशेष रूपसे अन्नगत लवणोंके अभावसे—पित्त दोष

मलों और विषोंका संचय जो उपर्युक्त पहिले और दूसरे मुख्य कारणोंसे हो सकता है। साथ ही अहित भोजन, अमित भोजन (मारक पदार्थोंका सेवन) अनुचित औषधों और विषोंका सेवन भी, आकस्मिक बिषका प्रभाव तीव्र अल्पकालिक रोगोंका दब जाना, अहित शल्यचिकित्सा भी एक कारण हो सकती है—कफ दोष

गौण हेतु

१—वंशानुगत या शरीरस्थ गठिया, कंठमाला खुजली, गर्मी आदिके बीज और अधिक पारा कुनैन, तैल वा इसी तरहके अन्य विषोंके चिरकालतक सेवनका फल।

२—ज्वर, शोथ, दाने, श्लेष्मिक विकार, व्रण, फोड़े, कृमि, रोगाणुओं और परस्ववादोंसे।

३—बाहरी चोटसे हड्डियोंका मांसपेशियोंका और बंधनोंका मोच खाना, ढीला होजाना, उखड़ जाना इत्यादि। बुद्धि, संकल्प शक्ति और आत्मसंयमका ह्रास और नाश जिससे कि अत्यन्त बात प्रकोप हो सकता है। उन्माद, अपस्मार एवं इन रोगोंके विविध रूप इन्हीं कारणोंसे दिखाई पड़ते हैं। प्रेतबाधा, नज़र लगना अथवा मारण, मोहन, उच्चाटन आदिके प्रयोग भी ऐसी दशामें हो सकते हैं।

(२) रोग और उपचारकी एकता।

हम ऊपर रोगके जो तीन मुख्य कारणोंका उल्लेख कर आये हैं इनके विचारसे पीड़ा दूर करने और रोग निवारणके स्वाभाविक उपायोंका संकलन इस प्रकार हो सकता है—

स्वाभाविक उपचार

१—जीवनको स्वभावके अनुकूल बनाना अथवा अपना रहन सहन और अपनी परिस्थितिको प्रमित और प्रकृत अवस्थामें रखना, यह भी इन उपायोंसे

क—सुबोध, साधारण, वैयक्तिक शिक्षा द्वारा मानसिक विकास।

ख—चित्तकी एकाग्रता, संकल्पकी दृढ़ता और आत्मसंयमका निरन्तर अभ्यास।

ग—विचारमें, सांसमें, परिधानमें, कर्मचेष्टामें, स्वप्नमें, विहारमें एवं सामाजिक, नैतिक और पारिवारिक आचरणमें पूर्ण स्वभाविक रूपमें रहना। "अति" से बचे रहना।

घ—मालिशमें हड्डीके बैठनेसे, उचित शल्य चिकित्सासे और आवश्यक यंत्रोंके व्यवहारसे बाहरी चोट अथवा अन्य वाह्य दोषोंका निराकरण।

२—प्राण शक्तिका मित व्यवहार जिसमें नीचे लिखी बातें आवश्यक होंगी —

क—प्राण शक्तिके अपव्यय या क्षयके द्वारोंको रोकना।

ख—विहित रीतिसे अंग प्रत्यंगको आराम देना और निद्रा।

ग—हित, मित और उचित आहार एवं मानसिक चिकित्सा।

घ—मनकी सात्विक वृत्ति।

३—मल विसर्जन, जहां मल शब्दमें हानिकारक विष भी सन्निविष्ट हैं। इसमें निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं।

क—भोजन और पानका ठीक ठीक समाहार और विहित रीतिसे उसका चुनाव।

ख—उचित और लाभदायक व्रत और उपवास।

ग—जल चिकित्सा।

घ—वायु और प्रकाशसे लाभ, उभय स्नान और घर्षण।

ङ—अस्थि और मांस पेशियोंकी मालिश एवं अनुषंगिक व्यायाम।

च—प्राणायाम और अनुषंगिक क्रियायें

छ—ऐसी औषधियोंका प्रयोग, जिनसे रक्तके शोधनमें और प्रमितीकरणमें सहायता मिले और शरीरको सुपाच्य रूपमें आवश्यक लवणमय पदार्थ मिल जायँ।

उपर्युक्त दोनों सारिणियोंसे प्रस्तुत लेखमें हमारे विषय क्रमका पता लग जायगा। जिस तरह हमारी यह धारणा है कि रोग एक ही है और उसकी चिकित्सा भी एक ही हो सकती है, उसी प्रकार हम आगे चलकर देखेंगे कि रोग मात्रके निराकरणके भी तीन उपाय हैं, जो भरसक स्वभावके अनुकूल हैं। कारणोंका पहिले अलग अलग वर्णन करेंगे।

(३) प्राणशक्तिका ह्रास

यह साधारण विश्वास है कि हमारा जीवन गिने हुए श्वास और उच्छ्वासोंपर निर्भर है। यह शरीर यंत्र एक घड़ी है, जिसके पुर्ज़ेमें पूरा सामंजस्य करके जगह जगह उचित रूपसे विठा कर और उचित स्थानोंमें तेल देकर जगन्नियंताने कमानी कस दी है। कमानीमें कूकनेवालेने शक्ति भर दी है। इस शक्तिका सदुपयोग और दुरुपयोग करना कुछ तो हमारे हाथमें है और कुछ परिस्थितिके। होमयोपैथीका आचार्य हानिमान कहता है कि शरीर और मनसे प्राणशक्ति एक भिन्न पदार्थ है। हमारे दर्शनोंके अनुसार स्थूल और सूक्ष्म शरीर जिनके अन्तर्गत मन भी एक इन्द्रिय है, जीवन शक्तिके सहारे बंधे हुए हैं:—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मेपराम्।
जीवभूतां महबा हो ययेदं धार्य्यते जगत्॥

जीवन-शक्ति या प्राणशक्ति अखिल जगतमें विस्तृत और प्रसृत है। यही जगद्धात्री है। इसी शक्तिसे जीवमात्रकी स्थिति है। खनिज, वनस्पति, पशु, मनुष्य चराचर इसी शक्तिके सहारे जीते हैं और सबके लिये जो जीवनकालकी मर्यादा रखी गई है वह प्राकृतिक है। परंतु इस मर्यादाके भीतर घटने बढ़नेकी भी गुन्जाइश है। प्राणी इस मर्यादाके भीतर रहते हुए भी अपने जीवनको घटा बढ़ा सका है। यह तो साधारण प्राणियोंकी बात हुई। इस शक्तिको अपने वशमें करने वाला योगेश्वर मर्यादासे बाहर भी अपनी जीवन शक्तिको स्थिर रख सकता है। परंतु हमें यहां योग साधनोंपर विचार करना नहीं है। सामान्यतः यह बात देखी जाती है कि जन्मसे लेकर प्रौढ़ावस्थातक पहुँचनेमें जितना अधिक समय लगता है उतना ही अधिक प्राणीके जीवन कालका विस्तार होता है। मृत्युके लिये सच पूछिये तो कोई काल निश्चित नहीं है और साधारणतया अकाल मृत्यु शब्दसे अल्प मृत्यु ही बोध होता है। अल्प मृत्युके कारण पूर्व जन्मके संस्कार, जनक जननीके दोष और परिस्थिति, यह तीन ही हुआ करते हैं। बच्चोंको गर्भमें ही रोगी होते पाया गया है और सौमें पचहत्तर बच्चोंका स्वास्थ्य, जो

पाठशालाओंमें पढ़ते हैं, प्रायः संतोषजनक नहीं होता। पूर्ण स्वास्थ्य जिसे कहते हैं वह केवल आदर्श है। एक कल्पना मात्र है। परन्तु यह वह आदर्श है जिसपर पहुँचनेके उद्योगमें मनुष्य मात्रका लाभ है और यह वह कल्पना है जो हमें उन्नतिके मार्गमें बराबर अग्रसर रखती है।

प्रकृतिकी रचना विकासमय है और विकासके साथ साथ विकारका होता रहना अवश्यम्भावी है। वायुकी तरंगोंकी तरह विकास तरंगें आगे पीछे दोनों ओरकी गति दिखाती हुई उन्नतिकी ओर ही प्रवृत्त हैं। जहां नीचेकी ओर कोई अणु जाता है, स्वभाव उसे फेर कर फिर ऊंचे चढ़ानेकी चेष्टा करता है। यही नीचेकी ओरकी गति हमारे स्वभावमें अप्रमित विकारका रूप ग्रहण करती है और सुखी रहने और दीर्घायु होनेकी इच्छा हमें इन विकारोंसे बचनेकी ओर प्रवृत्त करती है। हम इस तरह अपनी प्राण शक्तिकी सहायता करनेमें अग्रसर होते हैं।

पाश्चात्य देशोंमें आजकल "सुप्रजन" नामक विज्ञानका प्रचार हो रहा है। हमारे यहां वैदिक युगोंसे आजकल संस्कारकी रीतियां और तत्संबंधी उपदेश व्यवहारिक सुप्रजन विज्ञान है। पाश्चात्य देशोंमें नये ढंगसे आन्दोलन आरंभ हुआ है। हमारे यहां लोग संस्कारोंको भूल गये हैं। प्राण नहीं है। शरीर रह गया है। संस्कारोंके वास्तविक तत्वपर ध्यान देकर यदि लोगोंकी अधिक प्रवृत्ति हो जाय और संस्कार केवल रस्म न समझे जायं तो अच्छी प्रजाकी उत्पत्तिमें कठिनाई नहो और अल्पमृत्यु सुननेमें न आवे।

मनुष्यका साढ़े तीन हाथका शरीर अणुवीक्षणसे भी दुर्दृश्य जीवाणुओंका बना हुआ है और हमारी प्राणशक्ति इन जीवाणुओंकी प्राणशक्तिके उपर अपना संयम रखती है और उन्हें अपने अनुकूल चलाती रहती है। हमारी प्राणशक्तिका जब ह्रास होता है, इस संयमके कामको वह पूर्णतया नहीं सम्पादन कर सकती। साधारणतया बुढ़ापेके आने और जीवनकी अन्तिम मर्यादातक पहुँचनेके समय तो प्राणशक्तिका ह्रास होता ही है, किन्तु बाहरी आघातसे अथवा अपने रहन सहन, आहार विहार ठीक न करनेसे प्राणशक्तिका ह्रास हो जाता है और उत्कट और तीव्र रोगका रूप धारण करके यदि प्राण शक्ति कारणके निवारणमें समर्थ न हुई तो अल्प मृत्यु अवश्य हो जाती है।

(४) रक्त और रसोंमें अप्रमित विकार

मानवशरीर रसायन शास्त्रके अनुसार लगभग १७ मूल पदार्थोंके उचित मात्रामें सुव्यवस्थित होनेसे बना है। शरीरका ढांचा, मांस पेशियां, नाड़ी, स्नायु एवं तन्तु आदि नालियां और मार्ग और शरीरके अंग प्रत्यंग इन्हीं सत्रहोंके यथावसर यथेष्ट परिमाणमें रहनेपर ही निर्भर है। जीवाणुओंसे लेकर शरीरके बड़े छोटे सभी अंग रक्त और रसोंके प्रवाहसे पलते रहते हैं। प्रत्येक जीवाणु और प्रत्येक अंग अपनी वृद्धि और स्थितिके लिये भोजन लेता रहता है और प्रत्येकके निरन्तर क्षय होते रहनेसे मल भी विसर्जन होता रहता है। आभ्यान्तरिक कारणोंसे हमारे शरीरमें जो रोग उत्पन्न होते हैं उनमें यह भी देखा जाता है कि रक्तमें और तंतुओंमें कुछ मुख्य मूल पदार्थमें अवश्य कमी हो गई है। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि इसका भी कारण अहित और अमित आहार-विहार ही है जिससे अत्यधिक मल और विष उत्पन्न होते हैं, जिन्हें निकालनेके लिये असाधारण उद्योगकी आवश्यकता होती है। साथ ही जो पदार्थ क्षय हो कर निकल गये हैं, उनकी पूर्ति भी नहीं होने पाती क्योंकि पहिलेसे अहिताहारमें आवश्यक मूल पदार्थोंका अभाव भी हो सकता है। दूसरे जो मूल पदार्थ मौजूद भी हैं प्राणशक्ति उन्हें खींचनेमें समर्थ नहीं होती, क्योंकि उसका अधिकांश बल अत्यधिक मल और विषोंको दूर करनेमें लग जाता है। उपवासके प्रसंगमें इस प्रसंगकी हम अधिक व्याख्या करेंगे।

(५) मलों और विषोंका संचय

ऊपर जो कुछ हम कह आये हैं उससे सहज ही बोध हो जायगा कि जीवनशक्तिका ह्रास और रक्त और रसोंके विकारका कारण मल संचय भी होता है। परन्तु पूर्व दोनों कारणोंका मल संचयके साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। प्राण शक्तिके ह्रासले और रक्त और रसोंके बिगड़ जानेसे मल और विषके दूर करनेमें भी कठिनाई पड़ती है। नित्य नये मल और विषका संचय करता जाता है। जिससे तीव्र और जीर्ण दोनों प्रकारके रोगोंका घर हो जाता है। यह तो हुई भीतरी मल और विषकी बात। रोग होनेपर ठीक कारणके निराकरणके बदले रोगी ऊपरसे अत्यन्त उग्र औषधियाँ सेवन करने लगता है जिससे कई बाहरी विष भी शरीरमें पहुँच कर विषकी मात्राको बढ़ा देते हैं। यह तो नित्यकी बात है कि रोगी घबड़ा कर चिकित्सकसे कहता है कि मुझे कोई तेज़ दवा दीजिये और बहुधा पीड़ाकी उग्रता उसे विष खा लेने या आत्म हत्या कर लेने-को भी प्रवृत्त करती है।

"कुपथ माँगु रुज व्याकुल रोगी।
वैद्य न देय सुनहु मुनि योगी॥"

रोगसे व्याकुल मनुष्यको चतुर चिकित्सक उग्र औषधी नहीं देते। परन्तु चतुर हैं कितने।

रोगीके मनोविकार भी प्रायः उसका रोग बढ़ा देते हैं। भय, चिन्ता, क्रोध, शोक आदि स्नायु-के मार्गको रोक देते हैं, तन्तुओंको बिगाड़ देते हैं, प्राण शक्तिके क्रियामें बाधक होते हैं और मल विसर्जनमें रुकावट डालते हैं। अधीरता, क्रोध और चिड़चिड़ेपनसे ज्वर बढ़ जाता है। और स्वभावके सभी रोग निवारक कामोंमें बाधा पड़ जाती है। शरीरमें मनोभावोंका वेग रोगके ऊपर इष्ट या अनिष्ट प्रभाव डालनेमें कितना समर्थ है, इसका अनुमान बहुत कम चिकित्सकोंको होता है। मानसिक चिकित्सा करनेवाले केवल कल्पना शक्तिसे और रोगीके मनमें दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके अनेक रोग अच्छे कर देते हैं। इन चिकि-त्सकोंका दावा तो यह है कि कोई रोग ऐसा नहीं जो मानसिक बल द्वारा अच्छा न किया जा सके। किन्तु इसमें तो तनिक संदेह नहीं कि "विश्वासो फल दायकः" वाली कहावत चिकित्सामें जितनी चरितार्थ होती है, उतनी कहीं नहीं। मनोविकार रोगोपचारमें जैसे लाभदायक होते हैं, उसी तरह मनोविकारोंका रोगके बढ़नेमें भी बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है।

(६) गौड़ हेतु

हम मुख्य हेतुओंपर विचार करके अब कुछ गौण हेतुओंका वर्णन करेंगे। प्राचीनकालके संस्कारोंकी जो रीतियां हममें चली आती हैं, हमारे देशके मनुष्य समाजने समयके फेरसे उन्हें इतना बिसार दिया है कि आज यदि हम कहें कि सारे समाजमें संस्कारोंका यथावत् पंजर भी शेष नहीं रहा है तो अनुचित नहीं होगा। अच्छी सन्तान उत्पन्न करनेके लिये संस्कारकी जिस वास्तविक प्राणकी आवश्यकता थी वह समाज-के दौर्बल्यसे उसके शरीरसे निकल गया। इस लिये हमारी सन्तान रोगी, दोषी और कम प्राण शक्ति वाली होती है। गर्भाधानके समयसे ही रज और वीर्यमें माता पिताके दोषोंका बीज पनपने लगता है और जो नया शरीर बनने लगता है उसमें कर्मानुसार ऐसे जीवका प्रवेश होता है जो अपने पूर्व संस्कारोंके कारण उस विशेष देश कालके लिये उपयुक्त होते हैं। इस तरह हमारे पूर्व जीवनोंके और पूर्व समाजोंके कर्म दिनपर दिन अधोगतिके कारण हो रहे हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि हम अपने कर्म ठोक, हाथपर हाथ धर, बैठ जायँ। यह हक़ीक़तमें हमारे कर्मों और संस्कारोंका तक़ाज़ा है कि हम तपस्या और सदाचारसे अपने भावी जीवन या जीवनोंको ऊंचा बनावें और निष्प्राण संस्कारोंमें प्राण डाल दें।

माता पिता तथा उनके पूर्वजोंके बहुतेरे रोग और शारीरिक दोष संतानोंमें आ जाते हैं। यह

जीव-विज्ञानसे सिद्ध है। कुछ दोष निवार्य और कुछ अनिवार्य हैं। जिस अंगका जन्मकालमें ही अभाव होता है, उसकी पूर्ति पीछे नहीं हो सकती। जन्मका, लंगड़ा, अंधा, लूला, काना अच्छा नहीं किया जा सकता। परन्तु शरीरके अंग-प्रत्यंगोंके पूर्ण होते हुए भी उसमें पहिलेका मल और विष संचित रहता है इसे उपाय करके दूर कर सकते हैं। कंठमाला, खुजली, गर्मी आदि जो ऊपरी शरीर तलपर उग्र रूप धारण करते हैं यह केवल विषविसर्जनका उपाय है। किन्तु साथ ही इस बातकी सूचना है कि शरीरके भीतर इस जातिके विष मौजूद हैं जिनके लिये स्वभावने शरीर रचनाके समयसे ही उद्योग कर रखा है। इसी लिये चिकित्सक यदि प्रकृतिकी सहायता यथेष्ट कर सके तो यह आवश्यक नहीं है कि निराकरणीय दोष जीवन भर बने रह जायं। अमेरिकामें जहाँ स्वाभाविक चिकित्साका थोड़ा बहुत प्रचार हो गया है, अनेक बच्चोंका जीवन स्वाभाविक रीति-से पालन पोषण द्वारा निर्दोष बनाया जा रहा है।

गौण हेतुओंमें दूसरा नम्बर कीटाणुओं, जीवाणुओंमें परसत्वादोंका आता है। साथ ही ज्वर, शोथ, दाने, आंव, कफ़, थूक, व्रण, फोड़े फुन्सियाँ आदि भी सम्मिलित हैं। जीवाणु-विज्ञानियोंने उत्तमसे उत्तम अणुवीक्षण यंत्रोंका प्रयोग करके जीवमूलकी तलाश की और यह सिद्धान्त निकाला कि जिस तरह प्रत्येक भौतिक पदार्थ परमाणुओंका बना हुआ है उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी जीवाणुओंसे बना है। प्रत्येक जीवाणु भौतिक मूल पदार्थोंसे निर्मित अणुरूप शरीर है, जिसमें आहार और मल त्याग एवं जननशक्ति है। उन्होंने यह भी देखा कि जहाँ कहीं कोई शरीर रोगी होता है, वहां विशेष प्रकारके जीवाणुओंका जमघट पाया जाता है इससे यह अनुमान किया गया कि यही रोग विशेषके कारण होंगे। यदि इन्हें विषोंके प्रयोगसे नष्ट कर डाला जाय तो अवश्य ही रोग नष्ट हुये। रोगके बाह्य लक्षण भी दूर होगये। यह प्रतीत हुआ कि हमने रोगपर विजय पायी। परन्तु वस्तुतः क्या हुआ? उस रोगके मूल कारणने बाहर निकलनेका एक द्वार पाया और फिर शरीरके भीतर फैल कर जीर्ण रूपमें धीरे धीरे प्रगट हुआ। उपदंश रोगमें पारेकी दवायें देकर उसके जीवाणु नष्ट तो किये गये परन्तु रोगका मुख्य हेतु, रोगका विष शरीरसे बाहर तो न हो पाया बल्कि पारेका विष और ऊपरसे शरीरमें डाल दिया गया। अब प्रकृतिको और प्राणशक्तिको एकके बदले दो विषोंको निकाल बाहर करनेकी चिन्ता हुई, और वह भांति भांतिके उपाय करने लगी जिन्हें चिकित्सकोंने भिन्न भिन्न नाम दिये हैं।

"एक न एक आरज़ा रहा हमको।
थम गये दस्त तो बुखार आया॥"

विज्ञानके ले भगनेवालोंने जीवाणु-विज्ञानका चिकित्सा शास्त्रमें एक प्रकारसे दुरुपयोग किया है। इस बातका प्रमाण अनेक परीक्षाओंसे हुआ है। रोगका मूल कारण यदि जीवाणु होते तो जल वायु, अन्न, जो कुछ हम अपने शरीरके भीतर ले जाते हैं सबमें असंख्य जीवाणु रहते हैं जो सैकड़ों प्रकारके रोग उत्पन्न कर सकते हैं, परन्तु उनसे यदि रोग फैलता होता तो संसारका कभी नाश हो चुका होता। जब प्लेग फैला था, तो हज़ारोंकी संख्यामें लोग मरते थे। उस समयके रोगीकी शुश्रूषा करने वाले लाखों जीवित हैं, जिन्हें उस समय ज्वर भी नहीं आया। और जो प्लेगकी टीका लगवाते थे, छः महीनेसे अधिक प्लेगके आक्रमणसे सुरक्षित नहीं समझे जाते थे। यह तो साधारण अनुभवकी बात है। अब कुछ वैज्ञानिक परीक्षाओंकी बात सुनिये। यूरोपके वीना विश्वविद्यालयके प्रोफ़ेसर और बड़े प्रसिद्ध चिकित्सक एवं खोजी डाक्टर पेटेनकोफ़रकी यह धारणा है कि जीवाणु स्वयं रोग पैदा नहीं कर सकते। उन्होंने कई वर्षतक व्याख्यान दिये तथा लेख लिखे यद्यपि यूरोपका चिकित्सक संसार उनके विरुद्ध रहा। एक दिन उन्होंने अपने विद्यापीठमें

व्याख्यान देते हुए श्रोता समाजको चकरा दिया। उन्होंने एक कांचका वर्तन उठाया, जिसमें हैज़ेके करोड़ों कीटाणु थे और वह विद्यार्थियोंके देखते २ सारेका सारा घोल कर पी गये? देखनेमें यह परीक्षा बड़ी भयानक थी, परन्तु इससे ज़रा मतलीके सिवाय और कुछ नहीं हुआ। ऐसा ही चमत्कारिक उदाहरण लिन्डलारने अपनी पुस्तकमें डाकूर रोडमन्डका दिया है। यह अमेरिकाके विस्कन्सन प्रान्तमें डाकूर थे। उन्होंने अपने डाकूर भाइयोंके सामने यह सिद्ध करनेके लिये, कि स्वस्थ शरीरमें चेचककी छूतका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, अपने सारे शरीरमें विस्फोटकों-का मवाद मल लिया। वहांके आईनके अनुसार वह पकड़कर जेलमें बंद कर दिये गये, परंतु गिरफ्तारीके पहिले बहुतसे आदमियोंसे स्पर्श हो चुका था तो भी विसफोटक रोग न तो उन्हें हुआ और न किसी औरको उनकी छूतसे हुआ।

साधारण सफ़ाई, बलवती प्राण शक्ति, शुद्ध रक्त और तन्तु, मल विसर्जनोंके साधनोंका उत्तम दशामें होना और सबसे बड़ी बात मनकी निर्भयता, इन पांचों बातोंके होनेसे शरीरमें बाहरसे रोगोंका आक्रमण होनेपर भी शरीरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। और यदि किसी कमज़ोरीसे प्रभाव पड़ा भी तो स्वभाव स्वयं शोथ आदि उत्पन्न करके और ज्वर अतीसार आदि लाकर विषों और जीवाणुओंको निकाल बाहर करता है।

अदृश्य जीवाणुओंका भय जहां निर्मूल है वहां यह भी याद रखना चाहिये कि कीड़े मकोड़े, सांप बिच्छू आदि विषैले प्राणियोंके काटने या डसनेसे जो जीवन हानिका भय होता है, यह भी वास्तविकतासे अत्यधिक बढ़ा हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि अनेक उग्र विष वाले प्राणी मानव जीवनके लिये बड़े भयानक हैं, पर साथ ही यह भी देखा गया है कि युक्ताहार विहारसे रहने वाले लोगोंपर ऐसे विषोंका या तो प्रभाव उग्र नहीं पड़ता या स्वभाव उनके शरीरसे उन विषोंको सहज ही निकाल बाहर करता है।

(७) सड़ानेकी क्रिया और रोगाणु

जब गुड़ सड़ाकर सिरका बनाते हैं या आटे में खमीर उठाते हैं अथवा किसी प्रकार आंगारिक पदार्थ सड़ता है तो क्या क्रिया होती है? इस क्रियाको यदि पाठक समझ लें तो जीवाणुओंकी गौणता स्पष्ट हो जायगी। सड़ना क्या है? खानेके योग्य पदार्थ आर्द्रतायुक्त वायुके सम्पर्कमें यदि पड़े रहें और लवण, तेल आदि उग्र अभोज्यों या विषोंसे मिले न हों तो उनके खानेवाले जीवाणु वायुमेंसे भोज्य पदार्थमें पड़ जाते हैं और उनका वियोजन करके भोजन करते जाते हैं और साथ ही साथ मल विसर्जन भी करते जाते हैं। भोजन और मल त्यागपर ही वह अपना काम पूरा नहीं करते, वह बड़े वेगसे जनन कार्य करते रहते हैं। प्रतिक्षण हज़ारसे दो हज़ार, दो हज़ारसे चार हज़ारके हिसाबसे देश काल निमित्तके अनुसार बढ़ते जाते हैं। और ज्यों ज्यों बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों सड़नेका भी वेग बढ़ता जाता है। जबतक भोज्य पदार्थका अंत नहीं हो जाता या जबतक, तेज़ आंच, तेज़ रोशनी, कृमिनाशक औषधियां इस कार्यमें बाधा नहीं डालतीं तबतक सड़ना जारी रहता है। हमने जो यह प्रक्रिया बताई है सर्व-विज्ञसम्मत वैज्ञानिक तथ्य है। इससे किसी को इन्कार नहीं है। अब इसी तथ्यको लेकर शरीरके जीवाणु जनित रोगोंपर विचार कीजिये।

अंतड़ियोंके भीतर सड़नेके लिये उपर्युक्त सारे साधन प्रस्तुत हैं। आमाशयमें भोज्य पदार्थोंके साथ पहुँच कर लवण आदि अधिकांश वियुक्त होजाते हैं और अंतड़ियोंमें सबसे अधिक अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो जाती हैं और जीवाणुओंको समस्त क्रियायें चलाती रहती हैं। सांससे जो वायु हम भीतर ले जाते हैं जो अन्न और जल हमारे शरीरके भीतर पहुँचते हैं जीवाणु-

ओंसे कोई खाली नहीं। प्रत्युत हम चाहें कि अन्न, जल, सांसमें एक भी जीवाणु शरीरके भीतर न जाने पावे तो पहिले तो यह एक असाध्य बात है, दूसरे यदि किसी तरहसे हमने इसे साध्य कर लिया तो हमारा जीवन ही असम्भव हो जायगा। इसलिये ठीक जैसे हमारे शरीरके रोग उत्पन्न करने वाले शत्रु जीवाणु जाते हैं, उसी तरह स्वास्थ्य और जीवन शक्तिके सहायक जीवाणुओंकी संख्या प्रायः शत्रुओंकी अपेक्षा अत्यधिक होती है। शरीरके भीतर मल विसर्जनके साधनोंमें जीवाणुओंकी क्रिया भी एक साधन है। भोजनके जिन अंशोंको रस बना कर काममें नहीं लासकता उन अंशोंको बाहर निकालनेमें इन जीवाणुओंसे विश्लेषकका काम लेता है। जीवाणु ही मलविभाग करते हैं। किसी परिस्थिति विशेषसे, जिसका कारण मनुष्यकी उपेक्षा हो सकती है जब जीवाणु मल विसर्जनमें समर्थ नहीं होते, तब यही मल या तो विषका रूप धारण करता है अथवा मलसे ये जीवाणु विष बनाते हैं जो अपनी उग्रताके कारण शरीरमें शोथादि अनेक उग्र विकार उत्पन्न करते हैं और उन्हींके मार्गसे दूर हो जाते हैं।

जिस तरह ख़मीरके जीवाणु शकरको खाते भी हैं और सड़ाते भी हैं उसी तरह रोगके जीवाणु मलको खाते भी है और सड़ाते भी हैं। जिस तरह ख़मीरके जीवाणु ख़मीरसे ही अपनी सन्तान बढ़ाते हैं उसी तरह रोगके जीवाणु भी मलसे ही अपनी सन्तति बढ़ाते हैं। यह बात स्पष्ट है कि रोगाणु रोगोंके कारण भी हैं और कार्य भी। साथ ही शरीरको मृत्युके जोखिमसे बचानेके लिये स्वभाव शोथ उत्पन्न करता है और विषोंका मारक बनता है।

स्वाभाविक उपचार उन सभी उपायोंका नाम है, जिनसे (१) रक्त शुद्ध रूपसे बनता है, (२) मलका पूरा परित्याग होता है, (३) नाशक रोगोंकी क्रिया सीमासे बाहर नहीं जाने पाती, और (४) प्राणशक्तिका ह्रास नहीं होने पाता।

यद्यपि रोगाणुओंसे या जीवाणुओंसे हम सर्वथा संपृक्त नहीं रह सकते, तथापि हमारा कदापि यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य शौचाचारकी परवा न करे। विशुद्ध शौचाचार, पूरी सफ़ाई, छूतसे परहेज़, आवश्यक बातें हैं जिनकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं और जिन्हें हम दीर्घायु और सुखी जीवनके आवश्यक अंग बता चुके हैं।

(८) दबाना और उभारना

सारे संसारके चिकित्सक दो प्रकारकी चिकित्सा करते हैं। किसी अवस्थामें रोगको दबाते हैं और किसीमें उभारते हैं। साधारणतः यह समझा जाता है कि वमन विरेचन आदिके द्वारा रोग उभार कर दूर किये जाते हैं। शोथ ज्वर आदिके द्वारा बहुधा दवा देनेके उद्योग करते हैं। परन्तु वमन विरेचनादि उत्पन्न करने वाली औषधियां अधिकांश उलटा प्रभाव रखती हैं। पहिले विरेचन होता है, परंतु शीघ्र ही बद्धकोष्ट हो जाता है। कब्ज़ स्वयं रोगके दबानेका कारण हो जाता है। तीव्र और नवीन रोगोंकी चिकित्सामें साधारणतः बैठाने वाली औषधियां ही सेवन कराते हैं। किसी विशेष अंगके फोड़ेको, जिसके चीर फाड़में जोखिम होता है बैठानेका ही उपचार करते हैं। हम यह अन्यत्र बता चुके हैं कि फोड़ा विषय विषके निकालनेके लिये प्रकृतिकी नये सिरेसे बनाई हुई गली है। यदि शरीरमें प्राणशक्तिकी नितान्त कमी है तो इस गलीकी तयारीमें या इसके मार्गसे विषके निकालनेके उद्योगमें मृत्यु हो सकती है। परंतु मृत्युका कारण इस दशामें भी प्राण शक्तिका दौर्बल्य ही हुआ। डाक्टरी या पाश्चात्य चिकित्सा प्रणालीमें तो त्वचाके रोग प्रायः दबा दिये जाते हैं, सरदी जुकाम, ज्वर, रोक दिये जाते हैं। जिससे उभरता और शरीरसे बाहर जाता हुआ विष फिर शरीरके भीतर घुसकर भांति भांतिके विकार उपजाता और अधिकाधिक भयंकर रूप धारण करता है। सरदी, जुकाम, खांसी, ज्वर, हैज़ा, प्लेग, चेचक, दस्तोंका आना, आंव, आखों-

का उठना, खूनी बवासीर, गंठिया आदि तीव्र रोग वस्तुतः शरीरसे विष या मलको निकालनेको प्रयत्न है। इन्हें दबाना मूर्खता नहीं वरन जीवन तथा प्राणशक्तिके साथ पूरी शत्रुता है। पहिले तो कोई समझदार डाक्टर इन तीव्र रोगोंके दबानेका उपचार करता ही नहीं, परंतु यदि ऐसा दुरुपचार हुआ भी तो फल यह होता है कि विषको दबानेको जिस विषका औषधिके नामसे प्रयोग करते हैं, वह स्वयं शरीरके भीतर जाकर हानिकर बिषैली द्रव्य बनकर भविष्यके किसी भीषण रोगका बीज बन जाता है। रोग दबानेके लिये जो शल्य चिकित्सा की जाती है, वह भी उसी तरह भयानक परिणाम दिखाती है। गलेके भीतर कौवेसे दहिने बायें दो गाठें होती हैं, जो कफ़ विकारसे प्रायः फूल कर खांसी पैदा करती हैं। साधारणतया इनके संकोचनके लिये संकोचक औषियां लगा दी जाती हैं, उनसे कुल्ली कराई जाती है, और इतनेपर भी लाभ नहीं होता तो गांठें कटवा दी जाती हैं। परन्तु यह एक विपज्जनक उपचार है। बुद्धिमान चिकित्सक देखता है कि बिगड़े हुये कफ़के निकालनेके लिये स्वभाव या जीवन शक्ति मार्ग बना रही थी। गांठें सूजकर उस कफ़को खांसीके द्वारा दूर करती हैं। कफ़ निकालनेमें हमें सहायक होना चाहिये था, उसने जो परनाला बनाया, उसे जारी करना था। हमने नालीका मुँह बन्द कर दिया और फिर इतनेसे संतुष्ट न हो कर हमने बाहरी भीतोंको काटकर फेंक दिया और क्षत उत्पन्न करके प्रकृतिको लाचार किया कि इस बुरी तरहसे ढाही हुई दीवारकी मरम्मत करे और परनालेको बन्द करदे क्योंकि चाहे घर गिर जाय, पर किरायादार उधरसे परनाला नहीं चाहता।

कुछ बरसोंसे शल्य चिकित्साका प्रचार इतना अधिक हो गया है कि अमेरिकामें तो उन्माद आदि मस्तिष्क एवं नाड़ीके रोगोंपर भी चीड़फाड़से काम लिया जाने लगा है। दांतकी चिकित्सा वाले दांतकी नाड़ीको नष्ट करके दांतको पीड़ा हीन कर देते हैं। परंतु पीड़ाका वास्तविक तात्पर्य क्या है? पीड़ा द्वारा हमें स्वाभावकी ओरसे यह सूचना मिलती है कि अमुक स्थानपर पीड़ाका कारण मौजूद है, अमुक स्थानपर क्षत है, या विष है वा विजातीय द्रव्य है। नाड़ियां हमें समाचार पहुँचानेमें वही काम देती हैं जो संसारमें बिजलीके तार देते हैं। सच पूछिये तो मानव शरीरमें नाड़ियोंकी उपयोगिता तारकी अपेक्षा कई गुणा अधिक है। दांतकी नाड़ीको नष्ट कर देना दांतके पासके तारघरको नष्ट कर देना अथवा तार काट देना है। इस विधिके पीछे पीड़ा तो नहीं होती परंतु दांत अब पेट और आंतके विकारोंका पता नहीं देते, अब वह नाड़ीके विकारका समाचार नहीं पहुँचाते। जोखिमको जानकर उससे बचनेका उपाय हो सकता है। बे जाने जोखिम भीषण रूप धारण कर सकता है और कल्पनातीत हानि पहुँचा सकता है। नाड़ी नष्ट हो जानेसे हम बड़े काम सम्वेदना साधन को खो बैठते हैं।

जिन डाक्टरोंको शल्य चिकित्साका बहुत कालसे अनुभव है, उनका कहना है कि भारी चीरफाड़के पीछे मनुष्यकी प्राण-शक्ति कुछ ऐसी क्षीण हो जाती है कि वह बहुत कालतक नहीं जीता। लिंडलार तो बड़े ज़ोरोंसे कहता है कि मेरा पन्द्रह बरसका अनुभव है और सभी तरहके चिकित्सकोंके निकट यह बात सिद्ध है कि उत्तम अंगों और इन्द्रियोंके भारी चीरफाड़के पीछे कोई दश बरससे अधिक नहीं जीता और जितने दिन जीता है उतने दिन उसका स्वास्थ्य पहिलेकी अपेक्षा प्रायः गिरा ही रहता है।

उग्र, तीव्र वा नवीन रोगोंको दबा देनेसे, अथवा उग्र दशामें विषके बाहर किलनेमें किसी तरहकी रुकावट डालनेसे, ऊपरी लक्षण तो शान्त हो जाते हैं। रोग दीखनेमें मिट जाता है परंतु उसका विष भीतर समाकर किसी और अंगमें और ही रूपमें दिखाई पड़ता है। और प्रायः जीर्ण एवं दुर्दमनीय प्रतीत होने लगता है। रोगी

मोहवश उसे नया रोग समझ कर उसकी चिकित्साके पीछे पड़ जाता है और प्रायः अनुचित उपचारसे उसे और भी भयंकर कर डालता है। कोई दश वर्ष हुए लेखककी टांगोंमें बड़ी खुजली हुई। उसपर सीसासिरकेतका घोल लगा कर लेखकने खुजली अच्छी कर ली। खुजली दबते दबते उसे चक्करका रोग हो गया, जिससे लेखक पांच छः बरस बराबर तंग रहा। अन्तमें होमियोपैथिक गंधकके प्रयोगसे और दूसरे सभी उपचारोंसे कड़ा परहेज़ करनेसे खुजली फिर निकली। अब चक्करकी शिकायत घटने लगी। लेखकका यह निजी अनुभव है कि खुजली और चक्करका उसके शरीरमें घनिष्ट संबंध है। खुजलीसे शरीरका विष निकलता है। यह विष जब नहीं निकलने पाता तो नाड़ी मण्डलपर वही प्रभाव डालता है जो विषैले या मादक पदार्थोंका शरीरपर हुआ करता है। विषके निकलनेके मार्ग न होनेसे यह अनिष्ट प्रभाव स्थायी होजाता है और "जीर्ण" रोगका एक ऐसा रूप देख पड़ता है जो नवीन रोगके रूपसे नितान्त भिन्न है।

खुजलीके रोगोंमें बहुधा देखा गया है कि कीड़े पड़ जाते हैं जो कभी दिखाई पड़ते हैं और कभी ऐसे सूक्ष्म होते हैं कि अणुवीक्षण यंत्रसे ही दीखते हैं। डाक्टरोंके मतसे यह कीड़े ही रोगके कारण हैं। परंतु हालके वैज्ञानिक विचारकोंकी दृष्टिमें यह कीड़े स्वभाव इसलिये पैदा करता है कि विष या मलका विश्लेषण करके उसका विषत्व दूर कर दें। बहुत सफ़ाईसे रहने वालेके शिरमें जूं पड़ गयीं और कुछ काल पीछे अपने आप ग़ायब हो गयीं। जूंने खुजलीके विषैले पदार्थका विश्लेषण किया, उसे खा डाला। जब जूं का काम समाप्त हो गया जूं स्वयं नष्ट हो गयीं। बहुतसे लोग जूंके नाशके लिये बहुतसे बिषैली वस्तु और तेल डालते हैं। यह अत्यन्त हानिकारक विधि है। इसमें शरीरके भीतरी विष शरीरमें ही समा जाते हैं और जूं जोकि स्वाभाव द्वारा नियुक्त भंगियोंकी एक जाति है, व्यर्थ मर जाती है। ठंडे जलसे खूब यत्न कर कंघी करनेमें हानि नहीं है। क्योंकि इस विधिसे जैसे अनेक जूं दूर हो जायगीं, वैसे ही विष और मल भी दूर हो जायगा। केशोंका पूरा मुण्डन और शुद्ध जलसे अच्छी तरह नित्य धोना भी उत्तम उपाय है, जिससे विष भी दूर हो जायगा और जूंकी आवश्यकता और स्वयं जूं न रह जांयगी।

आजकलके अस्वाभाविक पाश्चात्य जीवनसे, मांसके अधिक सेवनसे, गरम मसाले और चटपटे पदार्थोंके दासत्वसे, मद्य, चाय, कहवा, तमाकू, भंग, चरस, अफ़ीम, कोकेन आदि विषोंके खानपानसे, अत्यधिक दिन और रातके परिश्रमसे, काम, क्रोध, लोभ, भय, चिन्ता आदि विकारोंसे, अनुचित आसन, वसन, श्वसन आदि शरीरके हानिकर व्यवहारोंसे, पारिवारिक जीवनकी निरानन्दता और दरिद्रतासे, और सबसे बड़ी बात परतंत्रताके अथवा उच्छृङ्खलताके अथवा संयमहीनताके बुरे प्रभावसे मनुष्यका जीवन अप्राकृतिक और बनावटी हो गया है, उसका अधःपतन होगया है, प्रकृति—वह जगन्माता जो सदा इस सन्तानकी रक्षामें तत्पर रहती है—इस नटखट सन्ततिकी कुचालसे उसकी रक्षा पूर्णतया नहीं कर सकती। माता पद पदपर उसकी रक्षाके लिये पुकारती रहती है, पर मनुष्य है कि अपने धुनमें मस्त हैं, उसके कान बहरे हो रहे हैं, वह सुनता ही नहीं। जो सुन पाता है संभल जाता है। उसकी रक्षा भी हो जाती है। जो अन्ततक नहीं सुनता, अपने बनाये गर्त्तमें गिरता है आप ही अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारता है, आत्महत्याका दोषी होता है।

(७) उभारकी भिन्न दशाएं

शरीरके मलों और विषोंको निकलनेको जब साधारण राह नहीं मिलती तो उन्हें दूर करनेके लिये स्वभावको विशेष उपाय करने पड़ते हैं। इस उपायकी प्रायः पांच अवस्थाएं होती हैं।

पहिली अवस्था रोगकी तैय्यारी कही जा सकती है। कोई बाहरी या भीतरी कारण उपस्थित होता है, जिससे किसी अंग या सारे शरीरमें रोगकी उत्तेजना होती है। धीरे धीरे वा जल्दी जल्दी शरीरके भीतर ऐसी क्रियायें होने लगती हैं जिनसे रोग विशेष रूप धारण करता है। यह अवस्था कुछ मिनटोंमें ही पूरी हो सकती है, और कई दिन, कई सप्ताह, कई मास और कभी कभी कई बरस लग सकते हैं। इस अवधिमें पैदा करने वाले मल, विष, रोगाणु आदि किसी अंगमें इकट्ठे होते रहते हैं।

जब इनकी मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि स्वभावके कामोंमें रुकावट होने लगती है, प्राणीका जीवन संकटमें पड़ जाता है, शरीरकी सारी शक्तियां उसी रोगी अंगकी ओर लग जाती हैं, रक्तका संचार उसी ओर बेगसे होता है, इसीलिये वह अंग लाल हो जाता है, फूल आता है, उसका ताप बढ़ जाता है, तनाव होता है पीड़ा होती है। यह सभी बातें दूसरी अवस्थाकी सूचना देती हैं।

दूसरी अवस्था कष्टके उग्र रूप धारण करनेकी है। तकलीफ़ बढ़ जाती है। तनाव, सूजन, सुर्खी, ज्वर सभी बढ़ आते हैं। पीड़ा भी साथ साथ बढ़ती जाती है। जिस स्थानमें रोगका उभार होता है, उसके भीतर देशमें श्लैष्मिक मलसे भरे हुए रुधिरका संचार होता है, परन्तु श्लैष्मिक मल सूक्ष्म केशिकाओंमेंसे अच्छी तरह निकल नहीं सकता और उसमें इकट्ठा होकर रास्तेमें रुकावट डालता है। रक्तके गाढ़े हो जानेके सिवाय प्राण शक्तिकी कमी या किसी बाहरी रुकावटसे भी वमन हो जाता है। रक्त पीछेको हटता है, केशिकाओं, शिराओं और धमनियोंको भी फुला देता है। केशिकाएं ऐसी तन जाती हैं कि श्वेताणु आसपासके प्रदेशमें दब कर निकल पड़ते हैं।

तीसरी अवस्था अंगके कणोंके नाशकी है, जिससे राह बन जाती है, पीब और लोहु बहने लगता है, मवाद निकलने लगता है, सांससे दुर्गन्ध आती है, और मलके निकलते रहनेकी सूचना देती है, दस्त जारी हो जाते हैं, वमन होने लगता है, निदान स्वभावके इस घोर प्रयत्नमें कि मल और विष दूर हो, बहुतसा उपयोगी भाग भी शरीरसे नष्ट होकर निकल जाता है। कूड़ेके साथ अच्छी चीज़ें भी छीजती हैं। इस दशामें पीड़ा असह्य हो जाती है, दुर्बलता बढ़ जाती है, शरीर शिथिल होजाता है दिमाग़ काम नहीं करता। यही रोगकी सबसे उग्र दशा है। संकटकी अवस्था है। जोखिमकी घड़ी है। प्राणशक्तिकी जांच है। प्राण शक्ति दुर्बल हुई या क्षीण हो चुकी है तो स्वभावका प्रयत्न निष्फल जाता है। शरीरान्त हो जाता है। प्राण शक्ति प्रबल हुई तो इस संकटकी घड़ीको पार कर जाती है। प्राण शक्तिको ऐसे अवसरपर बाहरी मदद मिले तो संकट सहज ही मिट सकता है। यह बाहरी मदद ठीक इलाज या उपचार है।

चौथी अवस्था रोगका उतार है। प्राणशक्तिकी प्रबलता और ठीक इलाजकी मददसे रोगके घटनेके लक्षण दीखते हैं। ठीक इलाज वह उपचार है जिससे रक्तके सोधनेमें, मलके दूर करनेमें, बल लानेमें सहायता मिले। इस अवस्थामें सूजन घटती है, तनाव घटता है, नाड़ी धीमी हो जाती है, ज्वर कम हो जाता है, सांसकी दुर्गन्ध घट जाती है, दस्त मामूली हो जाते हैं, वमन बन्द हो जाता है, पसीना साधारण हो जाता है।

पांचवी अवस्था रोगके शमनकी है। जब विष और मलोंसे शरीर शुद्ध हो गया तो जहां जहां किसी तरहकी क्षति हुई होती है वहां क्षतिकी पूर्ति हो जाती है। शरीर अन्ततः निरोग होजाता है।

यह पाँच अवस्थायें प्रोफ़ेसर मेचनीकाफ़के अनुसार रोगाणुओं और श्वताणुओंकी समर लीला हैं। पहिलीमें रोगाणु शत्रुका शरीर गढ़में प्रवेश, दूसरीमें श्वेताणुओंसे मुठभेड़, तीसरीमें तुमुल युद्ध और वास्तविक हार जीतका फ़ैसला,

चौथीमें मलकी सफ़ाई और पाँचवींमें पूर्वावस्था-का पुनः स्थापन, बड़ी विचित्र रीतिसे बताते हैं। परंतु जिन्हें यह रोगाणु वा शरीरके वैरी बताते हैं उन्हें ही हम भंगी या सफ़ाई करने वाले दिखा आये हैं। वह रोग उपजाने वाले नहीं हैं, बल्कि मल या विषको पचाने वाले या नाश करने वाले हैं।

अमेरिकाके डाक्टर लिंडलारके अतिरिक्त डाक्टर पावेल* ने भी अपने ग्रन्थमें दिखाया है कि श्वेता-णुओंको रक्तका रक्षक या पुलीस समझना भूल है। यह रक्षक नहीं किन्तु भक्षक हैं, रक्तके शत्रु हैं, विषके कण हैं, मलके द्रव हैं, जो सड़कर यह अवस्था लाते हैं जिसमें कीटाणुओंकी उत्पत्ति होती है। यह कीटाणु ही अन्तमें मलको सड़ा सड़ा कर खाते हैं, पचाते और शरीर भरमें संकट फैलाते हैं और जब इन विकृत पदार्थोंका अत्यन्त विकार हो जानेसे उन्हें भोजन नहीं मिलता तब मवाद हो होकर या मलके साथ मिल कर शरीरसे निकल जाते हैं, और जो कहीं निकलनेका मार्ग नहीं मिला तो यही विष और विकार शरीरमें फैलकर "जीर्ण रोग" का रूप पकड़ते हैं। डाक्टर पावेलने इस सम्बन्धमें जो बहस की है और जिस प्रकार अबतकके प्रचलित डाक्टरी श्वेताणुवादका खंडन किया है, वैज्ञानिकों और डाक्टरोंको अवश्य पढ़ना चाहिये। खंडन मंडन विशेष प्रयोजनीय न होनेके कारण हम यहाँ उस पुस्तकसे कोई अवतरण नहीं देते। आयुर्वेदके सिद्धान्तोंसे पावेल और लिंडलारके ही मत मुझे अधिक अनुकूल जँचे, इसलिये रोगके उभारके संबन्धमें इतना ही मत यहां पुष्ट माना गया है।

(१०) रोगके मूल कारण

पास्ट्यूर, मैचनीकाफ़, रैट और बुलककी खोजोंका फल साधारणतःयह है कि मनुष्यके शरी-रमें रोगाणुओंका प्रवेश बाहरसे होता है। शरीरके श्वेताणु लड़ते और उन्हें पचाते हैं, उन्हें नष्ट करनेको प्रतिविष बनाते हैं। परन्तु जब यह प्रश्न होता है कि वायुमंडलमें ही रोगाणु कहांसे आते हैं, किसी विशेष देशकालमें ही क्यों देख पड़ते हैं, उनका प्रभाव विशेष व्यक्तियोंपर ही क्यों देख पड़ता है, फैलना आरंभ होसे पहिले यह कैसे और क्यों होते हैं, तो इन विद्वानोंके सिद्धान्तसे संतोष जनक उत्तर नहीं मिलता। प्लेगके कीड़े यदि रोगी चूहेकी मक्खी द्वारा मनुष्योंमें फैलते हैं तो चूहोंमें आखिर वह क्यों और कैसे फैलते हैं। आस पास सेकड़ों मीलके चक्करमें जहां रेलों-की गुजर नहीं, प्लेग देवताका आविर्भाव क्यों होता है? फिर एक ही प्रकारके रोगाणु यदि एक ही प्रकारके रोग उपजाते हैं तो भिन्न जातियोंमें उनसे ही भिन्न रोग क्यों होते हैं? इस सिद्धान्तकी परीक्षामें जब वायुमण्डलसे लिये हुये रोगाणुओं-से रोग नहीं उपजते, बल्कि रोगीसे मवाद लेकर उसकी टीका लगाई जाती है और इसी तरह पैदा किये जाते हैं, तो यह कैसे निश्चय हुआ कि वायुमण्डलसे लिये हुए रोगाणुओंसे भी यही फल होता है? इन प्रश्नोंके उत्तर देनेके प्रयत्न हुए हैं, परन्तु संतोषदायक एक भी उत्तर नहीं ठहरता। रोगकी उत्पत्तिका यह पाश्चात्य सिद्धा-न्त मानवशरीरको बाह्य और आकस्मिक दुर्घट-नाओंका शिकार बनाता है। प्राच्य सिद्धान्तको इससे संतोष नहीं हो सकता।

प्रत्येक प्राणी अपने शरीरके भीतर इष्ट अनिष्ट सभी निमित्तोंके साधन रखता है। जैसे मनुष्य इस पृथ्वी रूपी महापिण्डका एक प्रकारका जीवाणु है, और यह भूमंडल बसके जैसे असंख्य जीवपिण्डोंसे भरा हुआ है, उसी तरह मानव शरीर रूपी महापिंड भी असंख्य जीवाणुओंका बना है, उसमें अगणित जातियां है, उनके विविध व्यापार हैं, उनका व्यक्तिगत पोषण भिन्न भिन्न प्रकारसे होता है। परन्तु यह कीटाणु वा जीवाणु

*Dr. Thomas Powell—Fundamentals and requirements of Health and Disease.

स्वयं असंख्य सजीव परमाणुओंके बने हैं। इन्हें हम प्राणकण* कहेंगे। प्रत्येक जीवाणुमें यह उसी प्रकार होते हैं जैसे हमारे शरीरमें जीवाणु। यह प्राणकण जीवमात्रके परमाणु हैं। उद्भिज, कीट, पशु, मनुष्य सभी इन प्राणकणोंसे बने हुए हैं। जहां कहीं उद्भिज या दूसरे प्राणी नहीं होते वहां यह प्राणकण भी नहीं पाये जाते हैं। जहां कहीं कोई कोई आंगारिक पदार्थ सड़ता है, जहां किसी सजीव पदार्थमें विकार होता रहता है, वहां इन्हीं प्राणकणोंकी क्रिया समझनी चाहिये। सजीव पदार्थोंके सड़नेसे यही प्राणकण वायुमंडलमें मिल जाते हैं, उड़ते रहते हैं, गर्द गुबारमें पाये जाते हैं, सड़ान, उफान या उठानके कारण होते हैं। गुड़-रस सड़ता है तो उसमें वायुसे भी प्राणकण पड़ते हैं और रसमें तो मौजूद होते ही हैं। इन्हीं प्राणकणोंके दो दो या अधिक संख्यामें मिल जानेसे जीवकेन्द्र† जीवमूल‡ आदि सूक्ष्म प्राणी बनते हैं। इन्हीं असंख्य प्राणकणोंसे जीवाणुका एक सेल बनता है। मनुष्यका वीर्याणु इन्हीं प्राणकणोंसे बना हुआ है। असंख्य प्राणकणोंके संयोगसे जीवाणुके सेल, और असंख्य सेलोंके संयोगसे अंडोंके भीतर पक्षीका बच्चा बनता है। यही क्रिया "प्रकृति" है, सृष्टि है, संसारका बनना है। इन्हीं प्राणकणोंके वियोगसे सेल नष्ट हो जाते हैं और सेलोंके बिखरनेसे उनसे बना बड़ा पिंड नष्ट हो जाता है। यह वियोगकी क्रिया "विकृति" या विकार है, प्रलय है, संसारका नष्ट होता है। "प्रकृति" और "विकृति" शरीरके भीतरके ही प्राणकणोंके सहारे होती रहती है।

देश काल निमित्तके अनुसार "प्रकार" और "विकार" दोनों सभी प्राणियोंके शरीरोंमें होते रहते हैं। जिन क्रियाओंसे भोजनका पाचन होता है, रस बनता है, रक्त एवं वीर्य बनता है, यह सभी प्रचित विकार है, प्रकृति है। जिन क्रियाओंसे शरीरमें मल या विष भोजन-के पदार्थोंसे अलग होकर मल द्वारोंसे निकल जाते हैं वह भी "प्रकृति" है। परंतु ऐसी स्थिति आ पड़नेपर, जब कि विष या मल साधारण मार्गों वा उपायोंसे दूर नहीं होते, स्वभाव स्वयं उनमें विकार उत्पन्न करता है। प्राणशक्तिसे प्रेरित प्राणकण विषोंको तोड़ते फोड़ते सड़ते और रोगाणुनक उत्पन्न करनेके कारण बन जाते हैं। विषों और मलोंका एकत्र होना और उनके विकारको और शरीरको बाहरी विकारी रोगाणुओंका क्षेत्र बना देना है। परंतु रोगमूल-का कारण कहीं बाहर नहीं है। यदि शरीर विषका क्षेत्र तय्यार न हो तो बाहरी फैलनेवाली बीमारी-के कीटाणु असर नहीं कर सकते। इसके कई उदाहरण हम अन्यत्र दे आये हैं। संक्षेपमें, प्रोफ़ेसर बीशम्पने * इसी तरहकी व्याख्या की है, जो सर्वथा समीचीन जान पड़ती है। रोग बाहरसे आकर हमारे ऊपर आकस्मिक आक्रमण नहीं करते, बल्कि हम स्वयं जब प्रकृतिके नियमोंको तोड़ते हैं, संयमसे नहीं रहते, मिथ्याहार विहारमें फंसे रहते हैं, तो हमारे शरीरमें विष इकट्ठा होता है और उग्र या जीर्ण रूप धरता है और हमें सताने लगता है।

जर्मनीके प्रसिद्ध जल चिकित्सक लूई कूने†का भी यही मत है कि शरीरमें विजातीय द्रव्योंके जमा होनेसे ही रोग होता है और उन्हें शरीरके बाहर निकाल देना ही प्रकृतिका प्रयत्न है जिसमें जल चिकित्सा और प्राकृतिकआहार-विहारसे सहायता मिलती है।

प्रोफ़ेसर बीशम्पके सिद्धान्तोंसे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि रोगाणु वस्तुतः हमारे शत्रु नहीं वरन् हमारे संगी हैं। यह जब अपना काम पूरा

*प्राणकण=Microgerm or Microcosm
† जीवकेन्द्र=Nucleus ‡ जीवमूल=Protoplasm

* Bechamp: Les Microzymas.
†Louis Kuhne: New Science of Heoling.

नहीं कर पाते तभी शरीरको हानि पहुँचाती हैं। इसपर यह प्रश्न हो सकता है कि यदि रोगाणु इतने उपयोगी हैं तो इन्हें शरीरमें प्रवेश करानेके उपाय क्यों न किये जायँ। इसका यह अर्थ होगा कि हम अस्वाभाविक रीतिसे या असंयमसे क्यों न रहें, जब कि विकारोंको निकाल बाहर करने को रोगाणु मौजूद ही हैं, जब डाक्टर हमारे पड़ोसमें मौजूद है और हमें अच्छा कर ही सकेगा तो हम क्यों न अपनी जीभके गुलाम बन जाँय। कोई कोई जीभके दास उलटी करते हैं और फिर फिर खाते हैं। इस आशापर कि भंगी साफ़ कर देगा हम गंदगी बढ़ायें और अपना स्वभाव बिगाड़ें इसे कोई अच्छी नीति न कहेगा। हमें तो ऐसे संयमसे रहना चाहिये कि रोग पैदा न हो, हमें हितमित आहार करना चाहिये कि वैद्यकी ज़रूरत न पड़े। वैद्यकी ज़रूरत हमारे असंयम, हमारी नैतिक कमज़ोरी, हमारे सदाचारमें कमीका प्रमाण है। हम अपना जीवन स्वाभाविक बनावें कि शरीरमें विष जमा न होने पावे, मलका संचय न हो, रोग बन कर उसे शरीरमें नये मार्ग न बनाने पड़ें। संयममें हमने त्रुटि की तो हमें उन रोगोंका स्वागत करना ही चाहिये क्योंकि शरीरसे विष दूर होनेके लिये उग्र रोगसे बढ़ कर कोई उपचार नहीं है। उग्र रोगको दबानेका कदापि उपाय न करना चाहिये, क्योंकि यदि घरमेंसे गंदगी बहानेकी कोई नयी नाली खुल गयी तो उसे तब तक खुली रहने देना चाहिये जबतक कि सारी गंदगी न बह जाय। जब गंदगी बह जायगी, नालीका बहना रुक जायगा और नाली स्वयं बन्द हो जायगी।

स्वाभाविक जीवन संयमका जीवन है। दिनचर्य्या और ऋतुचर्य्यामें यदि पूरी स्वाभाविकता बरती जाय तो आदर्श है निरोगता। परंतु अनन्तकालसे मनुष्य संयमके मार्गसे विचलित चला आता है। दिन दिन सभ्यताके भ्रामक चक्रमें पड़कर अधिकाधिक बनावटी और व्यसनी होता आता है। असंयम उसकी घुट्टीमें अक्षरशः पड़ा हुआ है। उसके संस्कारमें ही दोषने घर कर लिया है। अगर किसी मनुष्यने आज अपनेको संभाला और पूरी तौरसे संयमसे रहने लगा, तो आजके संयमका फल उसे कल मिलेगा परंतु आज तो उसे पिछले असंयमोंका फल भुगतना ही है। वह पिछली भूलोंकी ठोकरोंसे बच नहीं सकता। हां पहले वह बेजाने ठोकर खाता और अपने शरीरको संभाल न सकता, औंधा गिर जाता, पर संयमी होनेके कारण यह पिछली भूलोंसे अनभिज्ञ नहीं है, उसे ठोकर लगेगी तो भी वह अपनेको संभाल लेगा। स्वाभाविक जीवन सदाचारका ही नाम है। संयम, सदाचार, सच्चरित्रता एक ही तथ्यके नामान्तर हैं। सदाचारसे बढ़कर कोई उपचार नहीं। ब्रह्मचर्य स्वास्थ्यकी कुञ्जी इसी लिये समझा जाता है कि वीर्य्यकी रक्षा ही उसका अर्थ नहीं है। स्वाभाविक और सदाचारी जीवन उसका अनिवार्य्य अङ्ग है। असंयम और दुराचार ही वस्तुतः समस्त रोगोंकी जड़ है और यह व्यक्तिसे भिन्न कोई बाहरी चीज़ नहीं है।

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न देखा कोय।
मुझसे बुरा न है कोई मैं देखा सब कोय॥

(११) उग्र जीर्ण रोग

खानेसे, पीनेसे, सांस लेनेसे जितने घन द्रव्य वायव्य पदार्थ हमारे शरीरके भीतर जाते हैं उनमेंसे कुछ अंशका रस बनता है। शेष मलके रूपसे बाहर निकल जाता है। जिन वस्तुओंकी आवश्यकता शरीरमें नहीं है वह सब मल हैं। हम अन्यत्र दिखा आये हैं कि मल कितने प्रकारके हो सकते हैं और किन किन अङ्गोंसे निकल जाते हैं। साथ ही शरीरके भीतर प्रमित विकार भी होते रहते हैं जिनसे शरीरके नन्हें नन्हें कणोंका भी क्षय होता रहता है। अन्नके कणोंका रस बननेमें तो प्रमित विकार होते हैं, रस बनता है, गरमी पैदा होती है, और कोयलेका अंश जलता है और कर्बनद्विओषिद बन कर अधिकांश साँससे बाहर निकलता है। मिथ्या-

हार-विहारसे इतना अधिक मल अलग होता है और प्रायः ऐसी दशामें अलग होता है कि मल विसर्जन करने वाली इन्द्रियां सबका त्याग नहीं कर सकतीं, मल रह जाता है और शोषण करने वाली झिल्लियां उनके हानिकर अंशोंको भी अच्छे अंशोंकी तरह खींच ले जाती हैं। इस सोखे हुये अंशको हम मल इत्र या विष कहें तो अनुचित न होगा। घाव होजानेपर खुले हुए द्वारसे, या खाने पीने या सांस या रोमकूपोंसे भी रोगाणु शरीरमें प्रवेश करते हैं और जब शरीरमें भोजनके अनुकूल मल जमा पाते हैं तो विकार आरम्भ करते हैं, मलका नाश करनेमें विष भी उपजाते हैं। विष अत्यन्त उग्र मलका नाम है जिसका अनिष्ट प्रभाव नाड़ी जालोंपर बड़े वेगसे पड़ता है और जिसके मुकाबिलेमें प्रकृतिको असाधारण शक्ति लगानी पड़ती है और उन्हें जल्दीसे जल्दी शरीरसे निकाल बाहर करना पड़ता है। इसी प्रयत्नका नाम "उग्ररोग" है। उग्र रोगका किस प्रकार विकास होता है, यह हम इसलेखके नवें प्रकरणमें दिखा आये हैं। उग्ररोग वस्तुतः शरीरके लिये अत्यन्त हितकारी हैं और शरीरकी शुद्धिके लिये सर्वोत्तम स्वाभाविक साधन हैं। उग्ररोग मलों और विषोंको बटोर कर किसी न किसी मार्गसे निकाल बाहर करते हैं। नयी नाली बनानेमें जैसे घरोंमें तोड़ फोड़ करनी पड़ती है वैसे ही शरीरमें नया मार्ग बनानेमें प्रकृति तोड़ फोड़ करती है। कभी कभी साधारण रीतिसे मल त्यागमें भी मिथ्याहारके कारण पेटमें पीड़ा हो जाया करती है। जब नया मार्ग बन रहा है तब पीड़ाका अधिक होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। उग्ररोगसे अधिक पीड़ित होकर रोगी घबड़ा जाता है, धैर्यसे काम नहीं लेता। संकटकी अवस्थामें तो उसके आस पास समझदार शुश्रूषा करने वाले भी धैर्य छोड़ देते हैं। यही पीड़ा, यही घबराहट, यही अधीरता प्रचलित डाक्टरी प्रथाका कारण हो रही है। वैद्य और हकीम भी इसीके शिकार हैं। वही चिकित्सक सबसे चतुर समझा जाता है जो पीड़ा जल्दी दूर कर सके। चिकित्सक भी रोगी और उपचारियोंके संतोषके लिये प्रायः तात्कालिक ही उपाय करता है। उग्ररोगकी पीड़ा दूर करना ही जिनका उद्देश्य नहीं है, जो उचित रीतियोंको बर्त्तते हैं, उनका लक्ष्य यद्यपि तत्काल कष्टको कम करना भी रहता है तो भी वह वास्तविक लाभको और स्वाभाविक उपचारको नहीं भूलते। डाक्टरी प्रथामें पीड़ा दूर करनेके जितने उपाय हैं, प्रायः सभी रोगको दबा देने वाले होते हैं। तत्काल पीड़ा हट जाती है, रोग शान्त होता दीखता है, ऊपरसे रोगीकी दशा संतोष जनक जान पड़ती है पर भीतर क्या हाल है? प्रकृति जो नई नाली बना रही थी वह काम एकाएकी बन्द कर दिया गया। मल जहाँतक निकल चुका था, वहीं रुक गया। विष ज्योंका त्यों रहा, बल्कि ओषधि रूपी बाहरी विष भी वहां पहुंच गये, जिनसे और भी प्रमित और अप्रमित विकार उत्पन्न हुए, परन्तु बाहरी विषोंने भीतर प्राण शक्तिको इतना स्तब्ध कर दिया कि अब उसने मल और विषोंके दूर करनेका काम स्थगित कर दिया। बारंबार दबाने वाली ओषधिके सेवनसे स्वाभावने मलको अपनी तजबीजी हुई राहसे निकालनेका इरादा छोड़ दिया। अब मल और विष वहांसे खसकने लगा और शरीरमें रक्त आदिके मार्गोंसे धीरे धीरे निकलनेका प्रयत्न होने लगा। इस प्रकार विष और मलका धीरे धीरे निकलनेमें बहुत काल लगता है। उग्ररोगकी अपेक्षा पीड़ा कम होती है, परन्तु विष शरीरके भीतर फैल कर अनेक अप्रमित विकार उत्पन्न करता है, एक उग्ररोगके दबनेसे अनेक जीर्ण दोष दिखाई पड़ते हैं, प्राणशक्ति बहुत कालतक विषोंका व्यर्थ ही मुकाबिला करते करते जर्जर हो जाती है अन्तमें प्राणशक्ति एक बार फिर विषोंको दूर करनेके उद्योगमें लड़ाई छेड़ती है, और उग्रता पैदा करती है, संकट उपस्थित होता है, परन्तु इस संकटावस्थाको रोगी पार नहीं कर सकता और

शरीरान्त हो जाता है। जीर्णरोग इसी प्रकार आयु क्षयका कारण होता है, उग्र दशामें कोई औषधि न सेवन करना ही सबसे उत्तम उपाय है और मलोंके निकाल बाहर करनेके लिये पीड़ा सह लेना सबसे उत्तम उपचार है। जीर्ण रोगसे विदीर्ण शरीर बहुत दिनोंतक नहीं चलता इसीलिये चतुर और हितैषी चिकित्सक जीर्ण रोगको उभार कर उग्र दशामें लानेका उपाय करता है। सूजन, उभार, ज्वर आदि उग्र लक्षणोंको फिरसे लौटाता है, रोगीको फिर पीड़ायें होती हैं, अन्तमें शरीरका पूरा संशोधन करना अपना कर्तव्य समझता है।

डाक्टरीमें जीर्णसे उग्र लक्षणोंके लानेके कुछ उपाय हैं सही परन्तु वह उपाय हैं उग्रसे उग्र विष, जिनसे ऊपरी लक्षण तो वही दीखते हैं, पर वह स्वाभावके अनुकूल मल शोध वा विष शोधका लक्षण नहीं है। नाड़ी जाल विषोंसे स्तब्ध होकर बिलकुल निकम्मा सा हो जाता है। विषाक्त औषधियोंसे उपजाये लक्षण थोड़े समयमें शान्त हो जाते हैं और ठीक उल्टे प्रतिक्रियात्मक लक्षण पैदा हो जाते हैं। इस तरह शरीर शोधक उग्ररोग डाक्टरी उपचारसे नहीं होता। उसके बदले औषधिके रूपमें दिया हुआ विष शरीरमें इकट्ठा होकर पीछेसे अपना अनिष्ट प्रभाव दिखाता है और जीर्ण रोगोंकी शक्ति और संख्या बढ़ा देता है। इस लिये स्वाभाविक चिकित्साके सिवा जीर्ण रोगीके लिये दूसरा मार्ग ही नहीं है।

स्वाभाविक जीवन और स्वाभाविक उपचारोंसे प्राण शक्तिको बल मिलता है, उसे साहस होता है कि फिरसे विषोंके लिये उचित मार्ग बनावे और फल यह होता है कि इस उपायसे उग्र रोग फिरसे उभरता है और उभारकी पूर्व कथित दशाओं द्वारा संचित विष दूर हो जाते हैं। जब विष दूर हो जाते हैं तब आपसे आप शरीर निरोग हो जाता है। अब रोगीको चाहिये कि दीर्घायु भोग करनेके लिये स्वाभाविक जीवनको अपना आदर्श बनाले।

विषोंके उभर कर निकलनेकी उग्रदशाका नाम जिस तरह उग्र रोग है उसी तरह उसको दबाकर भीतर प्रवेश करने, शरीरमें अनिष्ट दशा उत्पन्न करने और धीरे धीरे थोड़े कष्टके साथ बहुत कालतक देहमें पड़े रहनेकी दशाका नाम जीर्ण रोग है। होमयोपैथिक आचार्य हानिमानने जीर्ण रोगोंपर एक बड़ी पोथी लिखी है। उन्होंने एवं स्वाभाव चिकित्सकोंने भी जीर्ण रोगोंको उग्ररूप देकर ही दूर करना एक मात्र उपाय बताया है।

(१२) साध्य और असाध्य रोग

उग्र रोगोंमें संकटावस्था वह दशा है जिसमें वस्तुतः किसी उपचारकी आवश्यकता है। वह उपचार भी ऐसा हो जिसमें स्वभावके काममें तनिक भी रुकावट न पड़े, बल्कि उसे पूरी सहायता मिले। इस दृष्टिसे उग्र रोगोंको साध्य समझना चाहिये। हैज़ा, प्लेग, चेचक आदि यद्यपि अत्यन्त भयानक समझे जाते हैं सभी साध्य हैं। शरीरकी अवस्था अनुकूल होनेपर इन रोगोंसे शरीरकी सफ़ाई सफलता पूर्वक हो जाती है। अवस्था प्रतिकूल होनेसे,—अर्थात् प्राणशक्तिकी क्षीणता, उपचारका उल्टा बढ़ना आदि—इन रोगोंमें अधिकांश मृत्यु होती है। उग्ररोग अधिकांश चिकित्सकोंके हाथमें पड़कर बिगड़ जाते हैं। यदि स्वभावपर छोड़ दिये जायं और रोगी ईश्वरपर और अपनी प्राण शक्तिपर विश्वास करता हुआ धैर्य्यपूर्वक सह ले, तो बिना उपचार अथवा चिकित्साके अच्छा हो जाय। देहातोंमें गरीबोंको दवा करनेको धन कहां मिले। एक बार पेट भर खानेको मिलना कठिन है। ऐसी दशामें प्रायः लोग उपवास करते हैं, एक पैसेकी दवा नहीं खाते और अच्छे हो जाते हैं। धनवान नित्य औषधि सेवन करता रहता है और रोगसे उसका पिण्ड नहीं छूटता। जीभके पीछे स्वाभावसे सदा अत्याचार और अपनी प्राणशक्तिको दुर्बल करता

रहता है। यह जानते हुये भी कि कोई औषधि देनेकी ज़रूरत नहीं है, चिकित्सक जब बुलाया जाता है तब कोई न कोई औषधि देता ही है। यदि औषधि न दे तो रोगी और हितू चिकित्सकको फ़ीस देना व्यर्थ समझें और चिकित्सकका रोज़गार मारा जाय। औषधि भी अगर सस्ती, सुलभ और जानी हुई दी जाय तो लोग उसका और वैद्यका आदर न करें। इसीलिये डाकृरी और वैद्यकका रोज़गारी लाचार हो ढोंग रचता है, और परिणाम जो होता है, प्रगट ही है।

सचिव, वैद्य, गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धर्म, तन तीनि कर होइ बेग ही नास॥

प्रयागकी बात है। एक रानीके जांघमें फोड़ा था। बड़ी पीड़ा थी। एक प्रसिद्ध डाकृरको बुलाया गया। वह सीधे साधे भले मानुस थे। बताया कि पाव पाव घंटेपर गरम गरम पुलटिस लगाओ रानीको संतोष न हुआ। उनकी फ़ीस सोलह रुपया देकर विदा किया। एक और नामी डाकृरको बुलवाया। वह बड़े चालाक थे। आतेके साथ इतिहास मालूम कर लिया। स्थिति समझ गये। कंपौडरको हुक्म दिया, "लाल दवाई गरम करके लाओ"। इसे फोड़ेपर लगाया। बैठ गये। इधर उधरकी कुछ बातें कीं। पाव घंटेपर बोले, "दवा बदलो, नीला मलहम लगाओ। खूब गरम कर लेना।" इसी प्रकार चार घंटे बैठ कर रंग बिरंगी पुलटिस लगाते गये। सिवाय पुलटिसके और कोई उपाय करना न था, परन्तु पुलटिसको रंगीन दवाके नामसे असाधारण बना दिया। रानीकी पीड़ा पुलटिससे घटती गई। फोड़ा फूट गया। रानी बड़ी प्रसन्न हुई। डाकृरको बड़े विनयसे दो सौ रुपये देकर विदा किया।

चिकित्सकके ऊपर नैतिक दायित्व रोगी और उसके हितुओंकी अपेक्षा अधिक है। परंतु नीतिमान चिकित्सक कितने हैं? ऐसे गिरे हुए चिकित्सककी संख्या थोड़ी नहीं है जो रुपयाके लालचसे रोगीके धन और प्राणकी परवा नहीं करते, रोगको जीर्ण बना देते हैं, असाध्य कर देते हैं।

जिन जीर्ण रोगोंका प्रभाव केवल अंगों और इन्द्रियोंकी क्रियापर पड़ता है, वह भी साध्य समझे जाने चाहियें। रोगके कारण क्रियामें जो बाधा पड़ती है वह मल और विषके निकल जानेपर दूर हो जाती है। परन्तु जीर्ण रोग जहां अङ्गके क्षयका कारण होजाते हैं वहां दोनों बातें संभव हैं। स्वाभाविक उपचारोंसे प्राण शक्तिको इतनी सहायता जहां पहुँचती है कि रोग दूर हो जाय और नये मांस तन्तु वा अस्थिकण बन सकें तो क्षीण अङ्ग भी पूरा हो जाता है। जहाँ इतनी सहायता नहीं पहुँच सकती, या जहां स्वयं प्राण शक्ति क्षीण हो गई है वहां रोगके दूर होजानेपर भी अङ्गकी पूर्ति नहीं हो सकती। कभी कभी तो प्राणशक्ति इतनी कम होजाती है कि क्षयकारी रोग स्वाभाविक उपचारोंके हाथसे भी निकल जाता है। अतः क्षयरोगोंमें,—जैसे राजयक्ष्मा, हड्डीकी क्षयी, संग्रहणी, कुष्ठ—स्वाभाविक उपचार लाभ अवश्य पहुँचाते हैं, पर रोगीकी प्राणशक्तिपर ही रोगका साध्य या असाध्य होना निर्भर है। जो फेफड़ा गल कर नष्ट हो गया उसे फिरसे बनाकर लगा देना संभव नहीं। प्राणशक्ति भी बनानेमें अभीतक समर्थ नहीं पायी गई है। जो हड्डी या अङ्ग कुष्ठसे गल कर गिर गया उसे उगा देना प्राणशक्तिको संभव नहीं है, परन्तु रोग दूर करके एक ही फेफड़ेसे सांस लेने वाला निरोग मनुष्य या हाथ पाँवसे लुंज निरोग मनुष्य स्वाभाविक उपचारका फल हो सकता है। जहां इन रोगोंको और चिकित्सायें नितान्त असाध्य मानती हैं, स्वाभाविक उपचार इस दरजेतक साध्य बना देते हैं। साधारण घाव तो लोग नित्य पूरा होते हुये देखते हैं। भेद इतना ही होता है कि बच्चों और जवानोंके घाव कितने जल्दी पूरते हैं, पर बूढ़ोंके घाव बहुत समय लेते हैं। घावतक अंग पूर्ति नित्य देखी जाती है परन्तु जो अंगुलियाँ कोढ़से गिर गयीं फिरसे जमती नहीं देखी गयीं। जो

दांत गिर गये—यदि दूधके दांत न हों तो—प्रायः फिरसे नहीं जमते। हमने "प्रायः" इस लिये कहा कि कहीं कहीं इसका अपवाद भी सुननेमें आया है

(१३) रोगके रासायनिक रूप

हम लोग साधारणतया जो कुछ भोजन करते हैं अधिकांश खटाई पैदा करने वाली चीज़ होती है। दाल, भात, बारीक आटेकी रोटी, आलू, शकरकंद, शक्कर सभी खटाई पैदा करनेवाली चीज़ें हैं। इसके साथ चटनी आचार आदिके क्या कहने हैं। यह तो खटाई ही ठहरी। शाकोंमें अवश्य ही क्षार पदार्थोंका आधिक्य रहता है, पर खटाई डाल कर उसके क्षारत्वको भी मिटा दिया जाता है।

इसमें संदेह नहीं कि पाचनके लिये आमाशयके भीतर जो रस निकल कर अन्नके साथ सन जाते हैं, उनका अम्ल होना अनिवार्य है। इस अम्लताको पूरा करते रहनेके लिये आम्लोत्पादक मंडमय पदार्थोंका खाना ज़रूरी है। रोटी चांवल इस कामके लिये पर्याप्त हैं। फलोंमें भी अधिकांश अम्ल या अम्लोत्पादक होते हैं। हर सड़ने या पचनेकी क्रियामें अम्ल अलगा जाता है। जब कभी कोई सेल सड़ता है तो उससे अम्ल अलग होता है। यह अलगाया हुआ पदार्थ शरीरसे अम्लके रूपमें भी निकलता है और लवण होकर भी। यह मशहूर है कि गठियाका कारण है चूरिकाम्ल जिसके रवे गांठोंमें जम जाया करते हैं। यही क्षारोंके मिलनेसे चूरेत नामके लवण बनकर पेशाबमें घुले हुए निकल जाते हैं। हमारे भोजनके साथ जो क्षार शरीरमें पहुँचते हैं, अम्लोंसे मिलकर लवण बनाते हैं और यही लवण पसीने और पेशाबमें शरीरके बाहर निकल जाते हैं। शरीरके सूक्ष्मकण या सेल भी सड़ते हैं तब अम्ल बनता है। समस्त प्रमित और अप्रमित विकारोंका परिणाम श्लैष्मिक पदार्थ और अम्ल होता है। यही मल और विष हैं जिनकी चर्चा हम कर आये हैं।

सेलोंके भोजन देनेके लिये (१) मनुष्य कर्बोज्जेत खाते हैं जैसे चांवल, गेहूँ, मका, आलू आदिके मंड, (२) कर्बोज्ज खाते हैं जैसे घी, चर्बी, तेल आदिकी चिकनाई, (३) नत्रजनीय पदार्थ खाते हैं जैसे दाल, तैलमय मेवे, मांस, मछली आदि। इससे मांसके कण या सेलोंका पोषण इसलिये होता है कि इनमें और मांसके सेलोंमें कर्बन, ओषजन, उज्जन, नत्रजन, स्फुर और गंधक यह छः मौलिक पदार्थ संयुक्त होते हैं। परन्तु जैसे सातों धातुओंके कणोंमें भेद है और सब मिलाकर प्रायः सत्रह मौलिक पदार्थ पाये जाते हैं, उसी तरह हमारे भोजनमें भी अनेक लवण, क्षार और अम्ल मिले हुए हैं और इन छः के सिवाय अन्य मौलिक भी संयुक्त दशामें हमारे शरीरमें जाते हैं और विविध सेलोंके वृद्धिक्षयमें काम आते हैं। क्षयके क्रममें प्रायः यह अम्ल निकलते हैं:—

कार्बनिकाम्ल, क्षीराम्ल, अक्सलिकाम्ल, द्विसिरकाम्ल, आज्याम्ल, नत्रिकाम्ल, नत्रसाम्ल, मूत्राम्ल, ग्लैकोहलिकाम्ल, विलिवर्डिनिकाम्ल, इंडोल, स्केटोल, स्फुरिकाम्ल, स्फुराम्ल, गंधकाम्ल, गंधसाम्ल, और लवणाम्ल।

भोजनके पदार्थोंमें लोहा, चूना, सज्जीखार, जवाखार, म्रावा, मगनीस, मांगल आदि क्षार शरीरमें पहुँचते हैं और उपर्युक्त अम्लोंके साथ पानीमें घुलने वाले और कठिनाईसे घुलनेवाले या न घुलनेवाले लवण बनाते हैं जो मल, मूत्र, प्रस्वेद आदि मलोंके साथ बाहर निकलते हैं। साथ ही अधिकांश विष और मल श्लैष्मिक रूपमें बनते हैं जिनमें अम्ल बनानेवाले ही मौलिकोंका आधिक्य होता है*। यह सब मल विविध रूप धर शरीरसे

---

* विकारजन्य श्लैष्मिक मल और विष यह हैः—

Cadaverin, Cholin, Amylamin, Gadinins, Betain, Hydrocolloidin, Putrescin Neurin, Mydatoxin, Guawidin, Gerontion, Paraxeanthin, Xan thin, Xanthocereation and Ruducin इनके नाम और सांकेतिक चिन्ह हिन्दीमें देना व्यर्थ है। अंग्रजोमें भी वही समझ सकते हैं जिनका देहरसा

निकला करते हैं। रवादार और श्लैष्मिक पदार्थोंमें यह अन्तर है कि यद्यपि दोनों जलमें घुल जाते हैं, तथापि झिल्लीमेंसे रवादार लवणका घोल तो आरपार रसरसकर निकल जाता है, पर श्लैष्मिक पदार्थ झिल्लीके पार नहीं जाता। रस रसकर निकल जानेके कारण यह झिल्लीकी दिवारोंपर दबाव डालता है, नलिकाओंमें इकट्ठा होकर राहमें रुकावट डालता है। श्वेतकण या श्वेताणु भी डाक्टर पावलके अनुसार श्लैष्मिक विषके कण हैं, जो बालसे भी बारीक नलिकाओं या केशिकाओंके भीतर घँसकर रक्त राह रोक देता है। इसीसे सूजन या वरम दिखाई पड़ता है, पीड़ा और तनाव मालूम होता है। इस दशाके उत्पन्न होनेसे वही सड़ना और उभारकी क्रिया होती है जिसे हम पहिले दिखा आये हैं। इसमें प्रमित और अप्रमित काममें लगे प्राणकण बढ़ विकासकर रोगाणु हो जाते हैं जो श्वेत कणों और श्लैष्मिक मलोंको तोड़ तोड़ कर, खा खाकर, पचा पचाकर, छोटे छोटे यौगिक अम्ल रूपी मल बनाते और त्याग करते हैं, जिनकी सूची हम ऊपर दे चुके हैं। अब इन यौगिक मलोंका अम्लोंके मौलिक वा मूलकल्प क्षारोंसे संयोग होता है जिनसे लवण बनते हैं। मलों या विषोंके समाप्त हो जानेपर या तो रोगाणु उनके साथ ही बाहर निकल जाते हैं, जो बाहरी रोगाणु बन जाते हैं या स्वयं मर जाते हैं, शरीरके भीतर ही खंडखंड होकर पुनः प्राणकण बन जाते हैं।

आधुनिक डाक्टरी चिकित्सा विपरीत है। डाक्टरने कफ़की परीक्षा करके देखा कि राजयक्ष्माके कृमि मौजूद हैं, और अत्यधिक हैं। उन्होंने इन कृमियों या रोगाणुओंके नाशके लिये हरिण-जलकी योग वाली दवाएं दीं। हरिण उग्र विष है, प्राणनाशक है। उसने राजयक्ष्माके रोगाणुओंका नाश करना शुरू किया। यह रोगाणु क्या करते थे? वस्तुतः फुप्फुसमें इकट्ठे श्लैष्मिक मलको खा रहे थे। अप्रमित विकारोंसे, विषोंसे फुप्फुस भरा हुआ है, सड़ रहा है, उसके मांस कणोंका जो क्षय हो रहा है, वह भीतर प्राण कणोंके अप्रमित विकारोंसे हो रहा है, वह मिथ्याहार विहारसे हो रहा है, अस्वाभाविक जीवनसे हो रहा है, विषोंका और मलोंका फुप्फुसमें इकट्ठा होना जारी है। रक्तके शोधनका स्थान फुप्फुस है, यदि रक्तका मल यहां ओषजन रूपी (incinerator) जलाने वाली वायुसे भी बच जाय तो उसके साफ करनेको भंगी ज़रूर चाहिये। वह सूक्ष्म भंगी है जिन्हें डाक्टर "रोगोत्पादक" कहते हैं और जिनको मारनेका उपाय करते हैं। फलतः भंगियोंकी मृत्युसे शरीर भरमें मल इकट्ठा होता है। देखनेमें रोगीका वज़न बढ़ता है परंतु विष इकट्ठा होता रहता है, शरीरमें रूपान्तर करता रहता है, रोग जीर्ण हो जाता है, डाक्टर परीक्षा करके यही कहता है कि "क्षयरोग जड़से तो कभी अच्छा होता ही नहीं, मरीज़को हर हालतमें होशियार रहना चाहिये"। क्षय रोगी बीसों बरस जीता है, पर सदा उसकी जान जोखोंमें रहती है और क्षयरोगके बदले और रोग, जीर्णताके रूपान्तर, तो उसे सताते ही रहते हैं। जितनी चिन्ता उसे ऐसी दशामें करनी पड़ती है, उससे कम ही चिन्तासे स्वाभाविक जीवन संयमसे बिता सकता और निरोग भी रहता और दीर्घायु भी होता।

हम देखते हैं कि जहां कहीं मल देरतक पड़ा रहता है शूकरादि बड़े जानवर उसे पहिले ही साफ़ कर डालते हैं। उनकी पहुँच न हुई तो छोटे कीड़े और गुबरीले अपना काम शुरू कर देते हैं। यदि गंदगी मलके कारण है तो मलको ही दूर करना बुद्धिमानी है। कीड़े और गुबरीलोंपर विष डालने या सूकरोंको हांक देनेसे और मैलेको केवल ढांक देनेसे तो गंदगी पलेगी, दूर कदापि नहीं होगी। गंदगीसे जो कुछ बिगाड़ है, इस बुद्धिहीनतासे बढ़ता ही है, घटता नहीं। देखा जाता है

यनमें अच्छा (Physiological Chemistry) प्रवेश है। ले०

कि रोगियोंके विषकी उग्रता बढ़ गयी है। उनके रोगाणुओंको विषसे नष्ट करनेसे कुछ लाभ नहीं होता प्राणशक्ति जब देखती है कि उधर बाहरसे हमारे काममें बाधा पड़ रही है और इधर जीवनका जोखिम है, तो हज़ार भंगियोंके विषसे मारे जानेपर वसिष्ठकी कामधेनुकी तरह दस हज़ारकी भंगी सेना तैयार करती है। डाक्टर घबराता है कि अब रोग असाध्य है क्योंकि रोगाणु बाढ़पर हैं। यद्यपि कारणके संबंधमें उसकी कल्पना ठीक नहीं है, तथापि कार्य्यका अनुमान, अर्थात् रोगकी असाध्यता नहीं तो भयंकरता अवश्य ही ठीक है। अपनी जान वह स्वाभावकी सहायता करना चाहता है, पर उसीके अज्ञानसे उसके सारे जतन उलटे पड़ते हैं।

शरीरमें जो सत्रह मौलिक पदार्थ हैं उनमें अधिक मात्रा उन्हींकी है जिनसे अम्ल बनता है। नित्यके होते रहनेवाले विकारोंमें क्षारों, अम्लों और लवणोंकी रासायनिक क्रिया बराबर होती रहती है। देह रसायनकी दृष्टिसे अम्लों और क्षारोंका सामंजस्य मात्र ही स्वास्थ्य है, असामंजस्य ही रोग है। इस असामंजस्यके हम यहां थोड़ेसे उदाहरण देंगे।

स्वस्थ शरीरमें साधारणतया मूत्राम्ल बहुत थोड़ी मात्रामें पाया जाता है। इसके बढ़नेसे शरीरमें गठिया बात रोग हो जाता है, तथा और रोगोंके कष्ट भी बढ़ जाते हैं। रक्तमें बहुत अल्प मात्रामें इसका रहना कुछ हितकारी है, पर अधिकमात्रामें होना ही कष्ट कर है। रक्त क्षारमय होनेके कारण मूत्राम्ल खींच लेता है, मूत्रेत नामक लवण बनाकर प्रस्वेद और प्रस्रावसे निकाल देता है। परंतु यदि स्थिति ऐसी हो कि मूत्रेत बन कर बाहर उचित और पर्य्याप्त मात्रामें निकल न जाने पावें अथवा अधिक नत्रजनमय पदार्थ जैसे दाल वा मांसादि खानेसे मूत्राम्लकी मात्रा अत्यधिक हो जाय, तो रक्त इस अम्लको न तो घुला सकता है, न लवण बना सकता है, बल्कि नत्रजनीय और मूत्राम्लमय पदार्थोंका श्लैष्मिक मल बन जाता है जो रक्तके मार्गमें रुकावट डालता है और धमनियोंसे शिराओंतक भी पहुँचने नहीं देता, केशिकाएँ भठ जाती हैं। हृदय यन्त्रकी जितनी दूरीपर यह घटना होती है उतनी ही अधिक रुकावट होती है क्योंकि रक्तकी धाराका वेग उतना ही कम होता जाता है। यही बात है कि शरीरके ऊपरी तलोंपर और हथेलियों और तलवोंमें रक्त प्रवाहका वेग कम रहता है। इसकी जाँच सहज ही हो सकती है। तलवेके बीच भागमें दहिने हाथकी बिचली अँगुलीसे ज़ोरसे दबाइये और कुछ सेकंडोंके बाद छोड़ दीजिये। तुरन्त देखिये, दबाने वाली जगहपर एक सफ़ेद दाग बन जाता है। यह दाग एक दो सेकंडमें लाल हो जायँ तो ठीक है। यदि चार पांच या अधिक सेकंड लगें तो समझिये कि मूत्राम्लके रक्तमें इकट्ठे होनेका यह लक्षण है। यह डाक्टर हेगने बताया है। डाक्टर हेगपर टिप्पणी करते हुए लिंडलार कहता है कि कर्ब निकाम्लके इकट्ठे होने और ओषजनकी कमीसे भी श्लेष्मा इकट्ठा होती है और इसी प्रकार रक्तका वेग (blood pressure) हृदयसे दूर प्रदेशोंमें घट जाता है।

श्लेष्म या कफ़के कारण अथवा अन्य मलोंके अवरोधसे जब केशिकाएं भरी रहती हैं तब धमनियोंमें रक्तका वेग और दबाव बढ़ जाता है, दिमाग़ दिल, फेफड़े आदि भीतरी अङ्गोंमें दबाव अधिक हो जाता है, नाड़ीका वेग बढ़ जाता है। ऊपरी तलोंपर हाथ पाँव आदिमें और शिराओंमें वेग इतना घट जाता है कि हाथ पाँव शिथिल जान पड़ते हैं। दिमाग़ गरम हो जाता है चाँदपर गरमी मालूम होती है। शिराओंसे हृदयको लौटता हुआ नीला गन्दा खून धीरे धीरे मलसे लदा आता है क्योंकि उसपर धमनियोंके रक्तके वेगका प्रभाव नहीं पड़ता, केशिकाओंपर ही वेगका बहुत सा बल नष्ट हो जाता है। इस तरह रक्तका उचित संचार और उसके द्वारा पोषण रुकता है, और मलोंका अवरोध

अनेक भयंकर लक्षण दिखाता है। गांठोंमें दर्द, सिरमें पीड़ा, मांसपेशियोंका दुखना, सिरमें रक्त-का आधिक्य, शरीरका लाल पीला होता रहना, चक्करका आना, जीका उदास रहना या डूबना और मिरगीतक इनका कुफल होता है।

मूत्राम्ल और श्लेष्मिक विकारोंसे ही फुप्फुसमें, वायु रंध्रोंमें, आमाशयमें, अन्तड़ियोंमें, मूत्र और जननेन्द्रियोंमें जलन पैदा हो जाती है, कफकी झिल्लियां सूज आती हैं, दाने पड़ जाते हैं, मवाद इकट्ठा होने लगता है, नाड़ीकी गति तीव्र होती जाती है, धुकधुकी बढ़ जाती है, हृदयमें पीड़ा आदि रोग हो जाते हैं। श्लैष्मिक विकारोंसे यकृत, वृक्क आदिकी सूक्ष्म नालियां भी भठ जाती हैं, जिससे यह अंग अपने कर्तव्य पालन नहीं कर सकते और शरीरमें मलों और विषोंका संचय अधिकाधिक होने लगता है।

गन्धकाम्ल, स्फुरिकाम्ल और टोमेन लूके-मेन आदि अन्य विषों और मलोंके कारण भी, जो पाचन क्रियासे एकत्र होते हैं, यह सारे उपद्रव बढ़ जाते हैं। इन सबका एक नाम "श्लैष्मिकरोग" वा "श्लेष्मा" है।

रक्तमें श्लेष्माके घुलानेकी शक्ति परिमित होती है। श्लेष्माके अधिक घुले रहनेकी दशामें "श्लेष्मा" रोगके ऊपर बताये हुए कष्ट थोड़े बहुत होते रहते हैं। परन्तु ऐसी दशामें जब दाल, मांस मद्य कहवा आदि नत्रजनीय पदार्थ प्रचुर परिमाण-में भोजन द्वारा पहुँचाये जाते हैं, तो मूत्राम्ल तथा श्लैष्मिक मलोंकी मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि रक्त उनसे "संपृक्त" हो जाता है और संपृक्त होते ही श्लेष्माका अधिकांश मांस कणोंपर पतित हो जाता है और रक्तमें थोड़े ही परिमाणमें श्लेष्मा रह जाती है। एकाएकी तबियत अच्छी हो जाती है, मानों कोई शिकायत ही न थी। शराब पीनेपर सरूर गठनेका कारण यही है। चा, कहवा, मांसादि पी खा कर इसीसे ताज़गी मालूम होती है। पी खाकर रातभरके आराममें फिर रक्तमें क्षारपन एकत्र होता है, फिर श्लेष्मा खिंचकर रक्तमें घुलने लगती है, फिर "श्लेष्मा" रोगके लक्षण खड़े होते हैं। यही खुमारी कहलाती है। यही दशा कहती है कि और मदिरा लाओ और मांस लाओ। मदिरा मांससे जंथिन नामक पदार्थ बन कर रक्तकी श्लेष्माको पतित करके सरूरकी दशा पैदा करता है और फिर यही खुमारी आती है। शराबीकी आदत पड़नेका कारण यही है। इस तरह मलपर मल और विषपर बिष जमा होकर गठिया बात पैदा होती है और शराबी कबाबीकी बुरी हालत हो जाती है। परन्तु कोई ऐसा न समझे कि दाल आदि नत्रजनीय पदार्थों-को अधिक मात्रामें खाने वाला इससे बचा रहता है। अम्ल, जंथिन और खटिक अक्सलेत धम-नियों और शिराओंकी दीवारपर चिप्पड़ जमा देते हैं, रक्त वाहिनियोंका व्यास और आयतन घट जाता है, कड़ी पड़ जातीं हैं, उनका लचीला-पन नष्ट हो जाता है, और अन्तमें कम रक्तके संचारसे दिमाग़ और दूसरे महत्वके अंगोंका पोषण घट जाता है। वाहिनियोंका लचीलापन नष्ट होनेसे भजनशील हो जाती हैं टूट जाती हैं और नकसीर फूटना आदि रक्तस्रावकी शिकायतें अक्सर होने लगती हैं। ऐसी दशामें दिमाग़का सुस्त हो जाना, पक्षाघात आदि रोगोंके लक्षण पैदा होते हैं। कुछ स्वभावके लोगोंको इन्हीं कारणोंसे अश्मरी (पथरी) आदि मसाने और गुरदेके रोग हो जाते हैं।

डाक्टर हेगका मत है कि मूत्राम्लजनित रोग दो श्रेणियोंके हो सकते हैं। अस्थायी वह जिनका सम्बन्ध रक्त संचारतक रहता है। स्थायी वह जिनमें कि मूत्राम्ल पतितावस्थामें मांस कणोंपर इकट्ठा हो जाता है। परन्तु रोग एक ही है, दो नहीं। हाँ स्थायी दशामें मूत्रमें अम्लत्व अधिक रहता है, क्योंकि मूत्राम्ल घुलित होता है, पतित नहीं। स्थायी दशामें मूत्रका अम्लत्व घट जाता है

मूत्राम्लके साथ जंथिनोंकी भी चर्चा हम करते हैं। चा, कहवा, तमाखू, मटर, सेम, मसूर, चना, अरहर, मोथी, मांस इत्यादि दालोंमें जंथिनकी प्रचुर मात्रा है। यह मांससे बढ़ कर है, घट कर नहीं। इनका अधिक सेवन भी विचारणीय है। तमाखू तो पूर्णतया विष है। चा, कहवा थोड़े थोड़े। इनका सेवन सर्वथा वर्ज्य है। दालोंका सेवन भी बहुत थोड़ा करना चाहिये। "प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महा फला।" दालोंकी जगह सब्ज़ी, फलादिका व्यवहार अधिक करे। परन्तु इस विषय-पर भोजन विचारमें विस्तार पूर्वक चर्चा होगी।

(१४) निर्णयावसर और बारी

हमने अन्यत्र संकट कालकी चर्चा की है। रोगीकी उस दशामें एक समय अत्यन्त कष्टका आ जाता है जो इस पार या उस पारका निर्णय करता है। जिस संकटके बीतनेपर स्वभावकी जीत होती है और रोगका शमन होने लगता है उसे स्वास्थ्य संकट, और जब रोगकी जीत होती है और मृत्यु हो जाती है उसे मृत्यु संकट कहा गया है। यही संकटका समय इस बातके निर्णयका समय होता है कि रोगी बचेगा या न बचेगा, रोग साध्य है, कष्टसाध्य है, वा असाध्य है। इस निर्णयावसर रोगके शासन और मृत्यु दोनों ही दशाओंके पूर्व ऐसा सामान होताहै कि यह कहना कठिन होता है कि परिणाम क्या होगा। भयानक ज़ुकाम, खूनी बवासीर आदिसे रक्तस्राव, फोड़े, नासूर, ज़हरबाद, चेचक, आदि विस्फोटक, अतीसार, अत्यधिक प्रस्वेद, आदि सभी तरहके उभार दोनों दशाओंमें होते हैं। जो मनुष्य स्वाभाविक जीवन बिताता है, शुक्राहार-विहारके नियमोंका कुछ न कुछ पालन करता है, मिथ्याहार-विहारसे भरसक बचता रहता है, उसके शरीरमेंसे भी थोड़े बहुत संचित मलों और विषोंका उद्धार होना कभी कभी आवश्यक है। यह उद्धार उग्र रूप धारण करता है। इसकी संकटावस्था स्वास्थ्यकी ओर ले जाने वाली है। इसमें स्वभाव भावी रोग निवारणके लिये सफ़ाई करता है। स्वभाव प्रबल रूपसे रोगपर चढ़ाई करता है और रोगका निवारण करके रणभूमिसे विजयी लौटता है। इस तरह सदैव स्वाभाविक जीवन बिताने वाला कभी कभी इन छोटी छोटी उग्र व्याधियों द्वारा शरीरका शोधन करता रहता है। मनुष्य जब संयमको भूल जाता है, विषयोपभोगमें लिप्त होकर शरीरको विषोंसे भर लेता है। उग्र व्याधियोंका तात्कालिक प्रतीकार करके उन्हें दबाता रहता है तो उसके शरीरमें जीर्ण व्याधियां अपना घर कर लेती हैं, भाँति भाँतिके जीर्ण रोगोंसे पीड़ित रहता है। परन्तु शरीरके भीतर मल और विषोंकी मात्रा एक हदतक रह सकती है। अपरिमित विष और मल-के एकत्र होनेकी समाई कहां है? जब हदसे ज्यादा विष एकत्र हुआ तो अन्ततः फिर उग्र रोग-की अवस्था आ जाती है। स्वाभावको विषम उपचारों और कड़ी औषधियोंसे बराबर दबाया गया है। प्राणशक्ति दिनपर दिन क्षीण होती आयी है, स्वभाव अब यथेष्ट काम नहीं कर सकता। ऐसी दशामें रोगकी उग्रावस्था विषोंके अनिवार्य्य उभारके कारण हुई है, स्वभावके सफ़ाईके प्रयत्न-से नहीं हुई है। विषकी स्वभावपर चढ़ाई होती है, स्वभाव अपनी रक्षाके लिये उद्योग करता है। परन्तु विषोंकी प्रबलताके आगे अब स्वाभाव दब जाता है। विष निकलते हैं सही, पर प्राणके साथ ही साथ निकलते हैं। संखिया खाने वालेके शरीरसे दस्तोंकी राहसे संखिया विष निकलता है अवश्य, परन्तु जब सारे शरीरमें उसका संचार हो चुका है तब केवल दस्तोंसे निकल जाना संभव नहीं, इसी लिये संखियाके साथ ही साथ प्राण भी निकल जाते हैं, इसी तरह शरीरके भीतर भरे हुए विषकी मात्रा जब शरीरकी सहन शक्तिसे अधिक हो जाती है और वह विष पर्य्याप्त परिमाण-में निकल नहीं सकता, तब मृत्यु हो जाती है। संकट काल इस तरह निर्णयावसर है। प्रत्येक

रोगीका निर्णयावसर रोगकी अवस्था पर निर्भर है। परन्तु उसके लिये निश्चित काल है और अनुभवी चिकित्सक रोगीकी अवस्थापर पूर्ण विचार करके इस निर्णयावसरको पहिलेसे बता भी सकता है। निदानकी रीतियोंसे यह वर्तमान और भावी लक्षणोंको भी बता सकता है।

विषों और मलोंके उद्गारमें स्वभावकी शक्तियोंको निश्चित कालतक काम करना पड़ता है। सारे अंगमें फैले हुए पदार्थको निकालनेकी हर तय्यारीमें समय लगता है और हर तय्यारीके बाद संकटावस्था आती है। जब मलेरिया ज्वरकी चढ़ाईमें उसे दबानेके उपाय किये जाते हैं तो बहुधा, अँतरा, तिजारी, चौथियाका रूप धारण करता है, या बराबर बना रहा तो सात सात दिनपर अपने लक्षण बदलता है और संकटावस्था उपस्थित हुए बिना यह परिवर्तन संभव नहीं है। प्रत्येक स्वास्थ्य संकट तन्दुरुस्तीकी राहकी एक मंजिल है, स्वास्थ्यकी एक चट्टी है। यहाँ हम तीव्र दुःखके बाद ही आराम पाते हैं और भावी अधिक सुखकी नींव पड़ जाती है। बारीके रोगोंमें एक विशेषता होती है, प्रायः सात घंटे या सातके पहाड़े वाले घंटे, अथवा सात घड़ी, सात पहर, या सात दिन या सात सप्ताह आदिके हिसाबसे संकटावस्था आकर पड़ जाती है। इसे ही बारी बारीसे रोगका आना कहते हैं। परन्तु वह वस्तुतः रोगकी उग्रताका भिन्न कालोंमें विभक्त हो जाना है। सातका अंक प्रकृतिमें बड़े महत्वका अंक है। शब्द, रूप, रस तो सात अंकोंमें विभक्त हैं ही, यदि स्पर्श और गंधकी भी अधिक विवेचना करें तो सम्भवतः सात श्रेणियोंमें वह भी विभक्त हो जाँय। सात संखियाके वाचक द्वीप, सिन्धु, अश्व, अर्चिष् जिह्वा इत्यादि इतने हैं, कि यहां उनपर इशारा काफी है। संकटावस्था भी इसी संख्या पर आती है, यह बात भी अत्यन्त स्वाभाविक है।

अन्तिम संकटावस्था नहीं है जिनके साथ मृत्यु होती है। यद्यपि हम कह आये हैं कि यहां रोगकी शक्ति प्रबल होती है, परन्तु यह याद रहे कि शरीरकी अयोग्यताके कारण ही मृत्यु होती है। अतः मृत्युद्वारा प्रकृति आत्माको निकम्मे शरीरसे अलग करके अच्छे शरीरमें ले जाती है। इस क्षुद्र पार्थिव जीवनसे हटा कर ऊँचे स्वर्गीय जीवन अथवा नये शरीर वाले पार्थिव जीवन पहुँचाती है। अतः मृत्यु उसी तरह स्वागतके योग्य है जिस तरह संकटावस्था। सातकी संख्या बारी बारीसे अवस्थामें जैसा परिवर्तन लाती है—मानव जीवन में भी उसी तरहका परिवर्तन स्पष्ट है। सात बरस तक बच्चा एक दम निस्सहाय होता है। चौदह बरस तक कुमारावस्था, इक्कीस बरसतक किशोरावस्था, अट्ठाइस बरस तक जवानी, पैंतीस बरस तक जवानीकी बाढ़ पूरी होती है। बयालीसवें बरस तक पूरी प्रौढ़ावस्था होकर मनुष्य अपने जीवन मार्गको बदलनेकी तय्यारी कर लेता है। उनन्चासवें बरस तक स्थिर प्रौढ़ बुद्धि हो जाती है अनुभव उसका रङ्ग बदल देता है। रूपका बहुत परिवर्तन हो जाता है। फिर दूसरा सप्तक चलता है। मनुष्यका जीवन १२० वर्षका समझा जाता है। ११९ पर तीसरे सप्तकका इक्कीसवां वर्ष पूरा हो जाता है। शरीरका अन्त होने पर फिर और चक्रोंका आरम्भ होता है—

> देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
> तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(१५) प्राणशक्ति

मानव शरीरके अद्भुत यंत्रका संचालन जन्मसे लेकर मरणतक बहुत उत्तमतासे होता रहता है, पर मनुष्य नहीं जानता कि इस सुन्दर प्रबन्धका करने वाला कौन है। मनुष्यकी चेतनाका विकास जन्मसे ही होने लगता है। शरीरका भी विकास साथ ही साथ चलता है। पर प्रत्येक व्यक्तिमें, प्रत्येक प्राणीमें, बल्कि भूतमात्रमें व्यक्तिगत जीवनका निरन्तर विकास या विकार होता रहता है, एक ओर चेतनाका दूसरी ओर शरीरका। इस विकास या विकारका प्रेरक चेतना शक्तिसे अधिक बुद्धिमान है, अधिक ज्ञानवान है इस बातका निश्चय उसके कामोंसे होता है। वैद्य, हकीम,

डाक्टर सभी इस विचित्र यंत्रको ही आश्चर्यवत देखते हैं, आत्माकी तो बात न्यारी है। बुकरातने कहा है कि हमारा इलाज करना अँधेरेमें ढेला मारना है। परन्तु सभी प्रत्यक्ष देखते हैं कि व्यक्तिकी भीतरी शक्ति उसके जीवनकी रक्षा बड़ी दृढ़तासे, बड़े निश्चयसे, बड़ी समझ बूझसे करती रहती है। बहुधा उसे सहायता पहुँचानेके बदले चिकित्सक अपनी मूर्खतासे उसकी रक्षामें बाधक हो जाता है। इस शक्तिको हम बराबर प्राणशक्तिके नामसे चर्चा करते आये हैं। यह वही प्राण शक्ति है जिसके लिये गीतामें कहा हैः—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूता महाबाहो ययेदं धार्य्यते जगत्॥

और अन्यत्र भी "कूटस्थोऽक्षर उच्यते" से इसी ओर इशारा किया है। हमारे शरीरमें हृदयको हिलाने वाली, भोजनको पचाने वाली, सांसकी भाथीको चलाने वाली, रक्तका शोधन और संचार करने वाली, मलों और विषोंको दूर कराने वाली प्राण कणोंसे लेकर शरीरके बड़ेसे बड़े अविज्ञात कर्म्मोंकी संचालिका, जिनपर अहंभाव रखने वाली चेतनाका भी बस नहीं चलता,—वही शक्ति है जिसे भगवानने अपरा प्रकृति कहा है। हम जो कर्म अपने संकल्पसे करते हैं, जिनपर हमारा काबू कुछ न कुछ अवश्य है—

पश्यन् शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि॥

यह भी इसी भीतरी शक्तिकी प्रेरणा समझी जानी चाहिये क्योंकि हमारे संकल्पकी उत्पत्ति जिस अन्तःकरणसे होती है वह भी भीतरी इन्द्रियां ही हैं जिनके पीछे वही शक्ति लगी हुई है। जिन जिन भीतरी और बाहरी इन्द्रियोंतक उस प्रेरणाके स्फुरणको चलाना पड़ता है उनकी कमज़ोरी और अपवित्रता कर्म्मके रूपको थोड़ा बहुत विकृत या अनिष्ट कर देती है। ठीक प्रेरणाके रूपके अनुकूल हमारे कर्म्म नहीं हो पाते हैं। भीतरसे भोजनके लिये प्रेरणा हुई। यह शरीरके पोषणके लिये आवश्यक समझा गया। इन्द्रियोंके द्वारा यह प्रेरणा जब चेष्टाके रूपमें परिणत हुई, तो मन अपनी कुप्रवृतिसे स्वादोंकी ओर झुका। इन्द्रियोंने भोजनके चुननेमें अपनी पसंदसे काम लिया। यहीं आकर हाथों प्रकृतिके प्रतिकूल आचरणसे शरीरका अनिष्ट हुआ। यदि चेतना शक्तिसे इन व्यापारियोंको चुनावकी इतनी स्वतन्त्रता न दी जाय तो फिर उस शक्तिका विकास कैसे हो? चेतना-शक्तिका विकास सृष्टिका उद्देश्य जान पड़ता है। और इसे भी एक प्रकारसे अभिन्न समझना चाहिये उधर प्रेरणा हुई कि भोजन न किया जाय, भूख नहीं लगती है, अरुचि है। पर इधर इन्द्रियां स्वादकी ओर झुक रही हैं, मन स्वादिष्ट भोजन माँग रहा है। चिकित्सक भी मोह वश कहता है कि रोगी कमज़ोर हो जायगा, मर जायगा, इसे पथ्य अवश्य दो। भीतरकी अरुचिकी और निषेधकी परवा न करके वह स्वभावका विरोध करता है। इस प्रकार भीतरी शक्ति और बाहरी प्रवृत्तिमें झगड़ा होने लगता है, शरीरकी दुर्दशा हो जाती है। इस दुर्दशासे चेताना शक्तिको पता लगता है कि बाहरी प्रवृति अनिष्ट थी। अनुभवके कड़वे फल चखकर बुद्धि बढ़ती है और आगे इन कुवृत्तियोंका दमन करती है।

इस प्रकार स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरोंपर एवं अन्नमयादि पंचकोशोंपर उनकी रक्षाकी दृष्टिसे अपरा प्रकृतिका शासन है। तो भी इन्द्रियोंको, भीतरी हों या बाहरी, उनकी मर्य्यादाके भीतर ही भीतर पूरी स्वतंत्रता है। विकासक्रम सृष्टिका उद्देश्य है। यह विकास बिना विकारोंके संभव नहीं। विकार जीवणका लक्षण है? प्रमित विकारोंका होते रहना ही प्रकृतिको अभीष्ट है, परंतु अन्तःकरण और बाहरी इन्द्रियोंकी स्वतंत्रता अप्रमित विकार किये बिना रह नहीं सकतीं। यह अप्रमित विकार ही शरीरमें "रोग" का रूप धारण करते हैं। अप्रमित विकारोंको घटाना और प्रमित बिकारोंको होने देना ही आरोग्य

साधन है, सृष्टिका अभीष्ट है और वास्तविक विकास है।

इस प्रकार रोगको पैदा करने वाली इन्द्रियां हैं और इन्द्रियोंका राजा मन उनका प्रेरक है। मन ही अप्रमित विकारोंका उत्पन्न करनेका प्रधान कारण है। मन ही विषयोंका उपभोग करता है उनपर दौड़ता रहता है। समस्त रोगोंका यही कारण है। प्राणीका आचरण जब प्रकृतिके अनुकूल होता है, सदाचार कहाता है। प्रकृतिके विपरीत आचरण करना ही कदाचार है। जिस तरह कदाचार रोगोंका कारण है, सदाचार उनका शमन करने वाला है, स्वास्थ्यका साधन है, रोगोंका इलाज है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्षा, मद, मात्सर्य्य, हिंसा, असत्य, चंचलता, पिशुनता, क्रूरता, निर्लज्जता, द्रोह आदि मनके रोग हैं। इन्हींसे शरीरके रोगोंका आरंभ होता है। विषयवासनायें प्राणीको आत्मसंयमसे दूर रखती हैं। वासनाएं ही मिथ्याहार विहार, अनिष्ट चेष्टा, अपकर्म अत्यधिक निद्रा आलस्य, प्रमाद, और अत्यन्त श्रम या शक्तियोंका दुरुपयोग कराती हैं। और इन वसनाओंका पिता है मन। इसीलिये रोगोंका परम कारण मन ही ठहरा। इसीलिये सबसे उत्तम चिकित्सा है "मनः संयम" मनका साधन।

कूने आदि स्वाभाविक चिकित्साके आचार्य्योंने एक ही रोग और एक ही चिकित्साका प्रतिपादन किया है। इसमें संदेह नहीं कि रोग एक ही है, परंतु उसके रूप अनेक हैं, सिलसिला स्वभावतक जाता है। इसी सिलसिलेसे यह पता लगता है कि रोगका मूल कारण है आत्मसंयमका आभाव। जो जितना संयमसे रहता है वह उतना ही अधिक रोगसे बचा रहता है। योगसाधन स्वास्थ्य रक्षाका सर्वोत्तम उपाय इसीलिये है कि इससे अन्तःकरण और इन्द्रियां सर्वथा वशमें रखी जाती हैं। साधारण मनुष्य संयमसे नहीं रहता, इसीलिये रोग नियम हो गया है और आरोग्य अपवाद।

विषयवासनामें लिप्त होकर मनुष्य मिथ्याहार करता है तो शरीरमें अप्रमित विकार होते हैं और विषों और मलोंका संचय होता है, रस बिगड़ जाते हैं और कामवासनामें लिप्त होकर अपनी शक्तिको क्षीण करता है, वात रोग बढ़ाता है। पाश्चात्य सभ्यताकी वासना उसे ऐसे कर्म और ऐसी चेष्टामें लगनेको लाचार करती है कि वह अपनी परिस्थितिको अस्वाभाविक कर डालता है। इस प्रकार त्रिदोषकी उत्पत्ति मन और इन्द्रियोंकी उच्छृङ्खलतामें ही है।

लोग विस्मरण, उन्माद भ्रम आदिको मानसिक रोग समझते हैं। पाश्चात्य वैद्य प्रवरोंकी रायमें चोरी, ठगी, डाका, लालच आदि भी मानसिक रोग हैं। वैज्ञानिक पत्रोंमें अभी हालमें एक मानसिक रोगीका विवरण छपा था। एक लड़का बड़ा सौम्य, सुशील, सदाचारी था। ग्यारह वर्षकी उमरमें उसे सिरमें भीतरी चोट आयी। दूसरे दिनसे ही वही लड़का आलसी, शरीर, चोर, ठग और पढ़नेसे दूर भागने वाला दुराचारी हो गया। इस तरह यह दुराचारी ३५ वर्षकी उमरको पहुँचा। इस बीच दुराचारोंके लिये अनेक बार दण्ड भुगते। एक दिन हालकी ही बात है कि उसे फिर सिरमें चोट आयी और एकाएकी पूर्वकी सदाचारकी अवस्था फिरसे लौट आयी। चेहरेकी आकृति, जब ग्यारह बरसका था, चोटसे कुछ बदल गयी थी। इस बार उसकी आकृति कुछ फिर बदली। अब केवल सदाचारी, सौम्य, शान्त ही नहीं हुआ वरन् अपनी इससे पूर्वकी दुराचारकी दुर्दशाको स्वप्न मानने लगा। इसमें संदेह नहीं कि अनेक रोगजो पाश्चात्य पद्धतिमें मानसिक कहे जाते हैं, वस्तुतः मस्तिष्कके रोग हैं, परंतु यह मानना पड़ेगा कि शरीरकी बनावटपर, दिमाग़के कोषोंके क्रम और रचनापर, सदाचारकी अनेक बातें निर्भर हैं। जो उदाहरण हमारे साम्हने है उसमें रोगीको बाहरी चोट लगी थी, परंतु चोटके सिवाय आहार, विचार, संगति कर्म्म आदिके सात्विक, राजस और तामास भाव आ सकते हैं। बुरे अन्न या तामसिक भोजन प्रमाद, आलस्य, निद्रा और अकर्म्मोंकी ओर रुचि और कुसंगतिकी ओर प्रवृत्ति बढ़ती है। इस लिये चोरी आदिको भी मानसिक रोग मानना अनुचित नहीं है।

यह शरीर विकासका साधन है। जबतक इससे जीवका विकास होता रहता है तबतक इसकी रक्षा होती रहती है। शरीरका विकासके उपयुक्त बना रहना ही दीर्घायु है। प्रत्यगात्मा या प्राणशक्ति इस शरीरमें तभीतक रहनेको तय्यार है। जब शरीरमें विकास संभव नहीं होता, जब जीवित रहनेका उद्देश्य नष्ट हो जाता है, तो प्रत्यगात्मा उसे छोड़कर नया शरीर धारण करता है।

जिमि नूतन पट पहिरि कै नर परिहरइ पुरान।

ज्यों ज्यों शरीरमें विकासके साधन हटते जाते हैं त्यों त्यों प्रत्यगात्माके रहनेकी रुचि भी घटती जाती है अर्थात् त्यों त्यों प्राणशक्ति क्षीण होती जाती है। प्राण शक्तिके प्रबल रहनेका साधन है आत्मसंयम या योग। यही बात है कि योग साधनसे योगी अपनी आयु बढ़ा लेता है और दीर्घकाल तक व्याधि और जरासे मुक्त रहता है, बीमारी और बुढ़ापेका उसे अनुभव ही बहुत काल नहीं होता।

पश्चात्य वैज्ञानिक भी "कलावन्नगत प्राणा" कहने वालोंकी तरह समझते हैं कि जीवन भोजनपरही निर्भर है। यदि दो चार दिन भोजन न करें तो मर जायं। जन साधारणके विकासके लिये अन्नके द्वारा देहका पोषण अनिवार्य्य है। पर जिन्होंने तत्वको समझा है, जिन्होंने संयम किया है, वह जान बूझकर विधिपूर्वक उपवास करते और कई महीनेतक उपवास करके भी केवल जीते ही नहीं, बल्कि ज्यादः तन्दुरुस्त हो जाते हैं। उनकी प्राणशक्ति बढ़ जाती है। तपस्वी और योगी अपनी आयु इसी तरह बढ़ाते हैं। इन बातोंसे स्पष्ट है कि दुर्भिक्षसे या फ़ाक़ोंसे लोग नहीं मरते, बल्कि असंयमसे मर जाते हैं। फ़ाके करते करते झटपट कहीं मिलते ही बुरी विधिसे अन्न खा लेते हैं। यही "लग" जाता है और मृत्युका कारण हो जाता है।

मृत्युका कारण उसी तरह रोग नहीं होता, जिस तरह जन्मका कारण कोई रोग नहीं होता। लोगोंकी समझमें रोग इसीलिए मृत्युका कारण समझा जाता है कि मरनेके पहिले कोई न कोई रोगप्रायः होता ही है। परन्तु असलियत यह है कि जब शरीरमें जीवात्माको रहना मंजूर नहीं होता—चाहे शारीरकी खराबीके कारण हो, चाहे उस शरीरमें जीवात्माका काम पूरा हो जानेके कारण हो,—तभी जीवात्मा शरीरको छोड़ देता है। व्याधि या बुढ़ापा या दोनोंसे शरीर अगर रहनेके लायक न रह जाय तो जीवात्माको छोड़ना शरीरकी खराबीके कारण जरूरी है। परन्तु ऐसा भी देखनेमें आया कि मनुष्य आरामसे सोया और नहीं उठा या बैठे बैठे समाप्त हो गया। गरज कि बिना किसी रोग या बुढ़ापेकी शिकायतके "अकारण" ही मृत्यु हो गयी। डाक्टर देखकर कहता है कि धुक-धुकी बन्द हो जानेसे मृत्यु हुई। परन्तु यह कैसे भोले-पनका उत्तर है! मृत्युके बाद क्या किसीकी धुकधुकी चलती रहती है? उसका बन्द होना ही तो मृत्यु है। वह तो कारण नहीं है, प्रत्युत कार्य्य है। डाक्टरके इस तर्कहीन उत्तरका अर्थ यही है कि वह कारण नहीं जानता। प्रत्येक व्याधिसे मृत्यु भी नहीं होती। इसीलिये ऊपर जो दो कारण हमने दिखाये वही शरीर-त्यागके वास्तविक कारण हो सकते हैं। यों सिलसिलेमें तो रोगके लिये कारण होगा अप्रमित विकार और उसका कारण होगा असंयम, इत्यादि।

योग द्वारा जरा भी टाली जा सकती है। परन्तु जरा कोई रोग नहीं है। बुढ़ापाका अर्थ यही है कि शरीरका उद्देश्य शीघ्र ही पूरा होने वाला है। जन्म और मृत्यु अनिवार्य्य है। जरा और व्याधि निवार्य्य है। जन्म और मृत्युके बीच जरा और व्याधिका आना आवश्यक नहीं है।

हमने यह देखा कि जन्म मृत्यु जरा व्याधिका कारण खोजें तो अन्तमें हमको परमात्माकी प्रकृति-तक जाना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि हमारीबुद्धि-की दौड़ बहुत थोड़ी है। जन्म, मृत्यु, जरा व्याधिके रहस्यका भी यह यथावत पता नहीं लगा सकती। अन्तमें यही मानना पड़ेगा।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयान् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

काचका चूर्ण (Pounded glass)

[लेखक कविराज श्री प्रतापसिंहजी]

भारतवर्षमें सर्वत्र लोगोंका विश्वास है कि यह अति भयंकर विष प्रभाव करता है। बहुत मनुष्य इसको आत्महत्या करने या दूसरोंको मारनेके लिये प्रयोग करते हैं। दस वर्षके अन्दर बम्बई नगरमें रासायनिक विश्लेषक (केमिकल एनेलाइज़र) के पास ३१ रोगियोंके अभियोग (Case) आये। खोज करनेसे उनकी रोटी मिठाई आदि खानेकी वस्तुओंमें तथा वमनके द्रव्योंमें मिला हुआ काच प्राप्त हुआ।

प्राय: स्त्रियां ही अपने पतियोंको मारनेके लिये इस विषका प्रयोग करती हैं, और कहीं नोकरोंने भी मालिकोंको मारनेके लिये इस विष-का प्रयोग किया है। इस कार्यके लिये साधारण-तया स्त्रियां अपने हाथोंकी काली चूड़ियां पीसकर खिला देती हैं। बहुत बारीक पिसा हुआ काच अधिक हानिकारक नहीं होता क्योंकि वह पेटमें जाकर श्लेष्माके साथ मिलकर बाहर निकल जाता है।

एक बार एक मनुष्यने एक काचके गिलास-को चबाकर खा लिया। उससे थोड़ी ही देरके पश्चात् उसके हाथ पैरोंमें भयंकर शूल, और ऐंठन होने लगी। उसकी चिकित्सा करनेके लिये उसको उबली हुई गोभीके फूल खिलाये जिससे कांचके टुकड़े उसके अन्दर लग जायँ। कुछ देर पश्चात् उसको वमनकारक औषधि खिलाई गई वमन करानेसे वमनके द्रव्यमें काच मिलकर निकल गया। इस प्रकार चिकित्सा करनेसे वह मनुष्य बच गया।

एक बार एक स्त्री मोटा मोटा पिसा हुआ काच खा गई उसके पेटमें भयंकर शूल, नाड़ीकी तीव्रता (प्रति मिनट १०० बार गति करना) प्यासका अधिक लगना, आदि लक्षण प्रगट होकर सारा बदन पीला पड़ गया। वमनकारक औषधि देनेसे जब काच पेटसे निकल गया तब सब विष लक्षण शान्त हो गये और वह स्त्री बच गई।

एकबार पेरिस नगरमें खाना खानेके बाद ही एक स्त्री रुग्ण होगई, और प्रातःकाल उदरमें भयंकर शूल, वमन और हाथ पैरोंमें ऐंठन होनेके बाद वह मर गई। डाकृरोंमें मत भेद होनेके कारण उसका शरीर (मृत शरीर) बहुत दिनोंतक रक्खा गया। उसके शरीरमें बड़ा परिवर्त्तन हुआ। उसका शरीर बिलकुल नीला पड़ गया ४२ दिनके पीछे जब परीक्षाकी गई तब उसके मलाशयमें काले रंगके चकत्ते और निशान मालूम हुए और बहुतसे काचके टुकड़े भी निकले। इसी प्रकार एक ग्यारह मासका लड़का कुछ दिनके पश्चात् मर गया। विष सन्देह होनेपर जब उसका शरीर छेदन कर देखा गया तो उसके पेटके अन्दर बहुतसे काचके टुकड़े भिन्न भिन्न लम्बाई चौड़ाई वाले दृष्टि पड़े जिनमेंसे बहुतसे अन्दर घुसे हुए थे, और कुछ बाहर लगे हुए थे। इसके अतिरिक्त मृत्यु होनेका अन्य कोई कारण विदित नहीं हुआ।

इसी प्रकार बम्बई नगरमें एक युवा हस्पतालमें आया। ज्वालोत्पादक विषके सब लक्षण उसपर विदित होते थे। वह ४८ घन्टेके अन्दर मर गया। शवच्छेदन करनेपर सिवाय टूटे हुए काचके टुकड़ोंके उसके पेटके अन्दरसे अन्य कोई वस्तु नहीं मिली। सम्भव है कि काचके खानेसे ही उसकी मृत्यु हुई हो। काचके विषकी चिकित्सा यह है कि विष रोगीको साधारणतया खानेके लिये मोटी मोटी चीज़ें दे। ऐसी वस्तुएं खानेको देनेके घन्टे भर बाद वामक और विरेचक औषधि दे। वमन और विरेचनके द्वारा जब काचके टुकड़े निकल जाते हैं तो रोगीका विषप्रभाव नष्ट हो जाता है।

कड़वे बादामका उड़नेवाला तेल

(Essential oil of bitter almonds)

[लेखक कविराज श्री प्रतापसिंहजी]

बादामोंके अन्दरसे जब बिना उड़नेवाला तेल निकाल लिया जाता है तब बादाममें बची हुई खलीके अन्दर यह तेल रह जाता है। कड़ुए बादामोंमें अमिग्दलिन(Amygdalin) नामक जो वस्तु होती है उसीमें यह तेल रहता है। जब उस खलीमें सड़ाइन्द उत्पन्न होती है तो हैडरो सायनिक एसिड (Hydrocyanic acid) भी उत्पन्न होता है। यदि यह एसिड तेलसे निकाल कर अलग न किया जाय तो भयंकर विष हो जाता है। बाज़ारोंमें जो कड़ुए बादामोंका अशुद्ध तेल बिकता है उसके अन्दर आठसे पन्द्रह फ़ी सदीतक हैडरो सायनिक एसिड नामक विषात्मक अम्ल मिला रहता है। एक बार इस तेलकी १७ बूंद खिलानेसे एकबूंद मनुष्य मर गया था। इससे न्यून मात्रामें खिलानेसे भी मृत्यु हो जाना सम्भव है। कड़ुए बादामोंका उड़नेवाला तेल भी पिचनट ओयल (Peachnut oil) के नामसे बिकता है। उसके खानेसे भी एक मनुष्यकी मृत्यु हो गई थी। यह तेल एक भागसेलेकर चार भागसे आठ भागतक रेकटीफाइड स्पिरिटमें मिलाकर बाज़ारोंके लोग मिठाईमें मिलानेवाली बादाम की खुशबू बनाते हैं फिर उसको खानेकी मिठाईयोंमें मिलाते हैं। एक बार एक स्त्री एक छटांक कड़ुए बादाम खानेसे मर गई थी। कड़ुए बादामोंका शुद्ध तेल भी विषात्मक होता है, और उसके सेवन करनेसे भी एक प्रकारका नशा उत्पन्न होता है। उसके विष लक्षण यह होते हैं।

खाते ही मुखका स्वाद कड़ुआ होना, गरमी प्रतीत होना, चक्कर आना, शिरमें दर्द होना, बुद्धिमें भ्रम होना, उसके बाद बेहोशी होकर शरीरके

मांसोंकी गतिकरण शक्तिका नष्ट हो जाना, आंखें बहुत चमकदार और बाहरको निकली हुई सी प्रतीत होना, मुखसे लालास्राव होना, मुखमें घाव पड़ जाना श्वासका कठिनाईसे चलना, और श्वाससे हैडरो सायनिक एसिडकी गन्ध आने लगती है। मुखमण्डल (चेहरा) पीला पड़नेके पश्चात कुछ देरमें मृत्यु हो जाती है। मृत्युके समय जबड़ा बन्द हो जाता है, और हाथ पैरोंमें धनुष टङ्कार सदृश खिचाव होता है। अज्ञात दशामें मल मूत्र भी निकल पड़ता है। किसी किसी रोगीको वमन होती हुई भी देखी गई है किन्तु, यह लक्षण सब रोगियोंमें नहीं मिलते। यदि मनुष्य बहुत बड़ी मात्रा खाले तो थोड़े ही समयमें हृदयस्पन्दके बन्द होनेसे वह मर जाता है।

जब अत्यन्त शीघ्र मृत्यु होती है तो हाथ पैरोंमें ऐंठन आदि नहीं होतो किन्तु अज्ञात दशामें मल मूत्रका त्याग अवश्य हो जाता है।

मारक समय—इस विषके प्रयोगसे छोटे छोटे जानवर तत्क्षण ही मर जाते हैं किन्तु मनुष्य कुछ देर बाद मरते हैं। कभी कभी मनुष्योंपर भी ऐसा प्रभाव होता है कि वह एक दो मिनटके अन्दर ही मर जाते हैं। यदि अधिकसे अधिक समय लगे तो डेढ़ घन्टेके अन्दर मनुष्य इसके विषसे मर सकता है। ६ माशेके लगभग मात्रा पीनेसे दोसे दस मिनटके अन्दर मनुष्य मर जाता है।

चिकित्सा—इसका प्रतिविष लोह है। यदि कसीस आदि सोडेके साथ मिला कर उचित मात्रामें दिया जाय तो विशेष लाभ होता है।

इसके साथ सोडा कास्टिक या पुटासियम कास्टिक मिला देनेसे और भी लाभ करता है। चूना और नौसादर मिलाकर अमोनिया उत्पन्न करके हलका अमोनिया सुघाना भी अच्छा है। मुखपर शीतल जलके छींटे देना कृत्तिम श्वास प्रश्वास क्रिया करना भी बहुत उपयुक्त होता है।

सुरमा (Antimonium Nigrum)

[लेखक कविराज श्री प्रतापसिंहजी]

सुरमा हिमालय तथा बर्माकी सुरमा वेलीमें मिलता है। भारतवर्षके मनुष्य इसको नेत्रोंमें डालनेके लिये प्रयोग करते हैं। यह नीला रंग लिये हुये काला दानेदार चूर्ण होता है। इसमें लोग संखिया आदिका गन्धित मिला देते हैं। इसकी मात्रा आधी रत्तीसे एक रत्तीतक है बालकोंके लिये $\frac{1}{16}$ रत्तीसे $\frac{1}{8}$ रत्तीकी मात्रा है।

शरीरके अवयवोंपर प्रभाव—सुरमेके क्षार शरीरपर लगनेसे स्थानीय शोथ और दाने उत्पन्न करते हैं जो चेचकके समान प्रतीत होते हैं। चर्मकी स्वेद ग्रन्थियोंकी नालियोंके मुखपर पसीनेकी तलछट बननेसे यह दाने उत्पन्न हो जाते हैं। अतः सुरमेके क्षार ज्वालोत्पादक तथा पीब उत्पन्न करने वाले होते हैं।

यदि चिरकालतक यह औषध मात्रामें प्रयोग किया जाय तो मुख, कण्ठ अन्न प्रणाली और आमाशय आदिपर वही प्रभाव उत्पन्न करता है जो चर्मपर लगानेसे करता है। अल्प मात्रामें सेवन करनेसे आमाशयके अन्दर ऊष्णता और व्रण शोथ उत्पन्न करता है। बड़ी मात्रामें सेवन करनेसे, अग्नि मांद्य, उत्क्लेर, आन्तरिक श्लेष्मा (Mucus) को अधिक उत्पन्न करता है। उससे भी बड़ी मात्रामें सेवन करनेसे वमनोत्पादक प्रभाव करता है। इसका कुछ अंश महास्रोतकी श्लेष्म धरा कला द्वारा स्रवित होता है इस कारण फिर वमन उत्पन्न करता है। यदि यह अधिक पानीमें मिलाकर दिया जाय तो वमनकी अपेक्षा विरेचन अधिक करता है।

विषात्मक मात्रामें देनेसे आमाशय और आंतोंमें प्रदाह उत्पन्न करता है जिससे विषूचिकाके सदृश लक्षण उत्पन्न होते हैं।

हृदय और रक्त परिगमन—सुरमेके घुलनशील क्षार रक्तमें शीघ्र ही प्रविष्ट हो जाते हैं। यह

अल्प मात्रमें ही हृदयकी स्पन्दताको न्यून करता है और धीरे धीरे यहांतक मंद कर देता है कि हृदय रुक रुक कर गति करने लगता है तथा नाड़ीकी गति भी मन्द हो जाती है और रक्तका दबाव बहुत कम हो जाता है। यह हृदय और रक्त संचालनकी गतिको अवसन्न करता है।

फुप्फुस और श्वास क्रिया—इससे श्वास क्रिया प्रारम्भमें कुछ उत्तेजित होती है, किन्तु अन्तमें अत्यन्त अवसन्न हो जाती है। उच्छ्वास निश्श्वास क्रिया होने लगती है। यह श्वास पथकी श्लेष्म धरा कला द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है अतः वहां शोथ हर और श्लेष्म सारक कार्य करता है।

शारीरिक ताप—स्वस्थ दशामें इसका शारीरिक तापपर कोई प्रभाव नहीं होता। परन्तु ज्वर होनेपर शरीरके तापको न्यूय करता है। स्वेद उत्पन्न करता है और शारीरिक धातुओंकी क्रियाको भी किसी अंशतक न्यून करता है।

यकृत—सुरमेके क्षार पित्तको अधिक उत्पन्न करते हैं अतः इसको पित्त निस्सारक कहते हैं। यह यूरिया नामक मूत्रक्षार अधिक बनाता है, अम्लक्षार भी अधिक बनाता है और यकृतकी शर्कराजनक (Glycogen) क्रियाको बन्द करता है। चिरकालतक सेवन करनेसे यह यकृतमें संखिया तथा फासफरसके सदृश वसाकी विकृति उत्पन्न करता है।

चर्मपर प्रभाव—यह तीव्र स्वेदोत्पादक है। संखियाकी भांति मेंढककी चर्मपर यह भी ऐसा प्रभाव करता है कि जिससे उसकी चमड़ी झिल्लीकी भांति आसानीसे उतर आवे।

वृक्कपर प्रभाव—टारटर इमेटिक (Tartar emetic) नामक सुरमेका क्षार, शरीरसे गुरदोंके द्वारा निकलते समय, कुछ मूत्रोत्पादक प्रभाव उत्पन्न करता है।

वात संस्थान—इसका टारटर इमेटिक नामक क्षार वात संस्थानको विशेष रूपसे अवसन्न करता है। सुषुम्ना काण्डकी ज्ञानवह और चेष्टावह नाड़ियोंपर इसका विशेष प्रभाव होता है। यह प्रभाव रक्त द्वारा न होकर सीधा उक्त नाड़ियोंपर ही होता है। साधारण तया मस्तिष्क भी अवसन्न हो जाता है जिससे अकर्मण्यता शिथिलता और तन्द्रा सी प्रतीत होती है।

मांस संस्थान—यह स्वतन्त्र और परतन्त्र मांसपेशियोंपर उग्र अवसादक प्रभाव उत्पन्न करता है।

शरीरिक धातु—यह शरीरके सब अवयवोंपर फासफरस तथा संखियाके सदृस प्रभाव उत्पन्न करता है परन्तु यदि कुछ मासतक बराबर सेवन किया जाय तो यकृतमें वसाकी विकृति करता है और यूरिया, यूरिक एसिड आदि पदार्थोंको अधिक बनाता है और शरीरमें अल्प ओषजनीकरण करता है। यदि अल्प मात्रमें सेवन किया जाय तो अल्प रासायनिक प्रभाव करता है।

डाक्टर रिंगर (Ringer) का अनुभाव है कि सुरमा संखिया मीठा तेलया आदिके सदृश जीवन द्रव विष (Protoplasmic poison) और मांसीय धातुओंके कार्यको लकवा करने वाला है।

संशोधन—सुरमेंके क्षार, वृक्क, यकृत, चर्म, श्लेष्मधरा कला, श्वासाशय महास्रोत, और स्तन द्वारा शरीरसे बाहर निकलते है। परन्तु कुछ अंश शरीरमें रह भी जाता है।

क्षमता—इसकी बड़ी मात्रा दिनमें कई बार देनेसे भी वमनकारक प्रभाव उत्पन्न नहीं होता और इस प्रकार शरीरमें इसकी सहन करनेकी क्षमता उत्पन्न होती है। इसका कारण यह विदित होता है कि यह अपने दाहात्मक गुणके कारण आमाशयिक अम्लरसकी उत्पत्ति कम कर देता है।

तात्कालिक विषलक्षण—इसके विषलक्षण संखियाके विषके समान होते हैं, किन्तु शवच्छेदन करनेसे शरीरके अन्दर संखियाके सदृश परिवर्त्तन दृष्टि नहीं पड़ता।

प्रतिविष—वमनकारक औषधें खिलावे, आयाशयमें पम्पका प्रयोग करे, यदि लगातार वमन न हो तो, माजूफलका अम्ल (Tannic acid) का प्रयोग करे। तेज़ चाय (Strong tea) काफ़ी (Coffee) त्रिफला आदिका संकोचक क्वाथ, और स्नेहन पेयका अधिक प्रयोग करे। शक्ति उत्पन्न करनेके लिये चर्म द्वारा, स्ट्रिकनिया (Strychnine) और डिजिटलीन Digitalin का इन्जेकशन करे।

आजकलके समयमें सुरमेके चिरकालिक विषलक्षण बहुत कम देखनेमें आते हैं।

टारटर एमेटिक नामक सुरमेके क्षार और एकोनाइटके लक्षण परस्पर बहुत कुछ मिलते हैं। इस कारण नीचे लिखे हुए लक्षण विद्यार्थियोंके लिये तारतम्य पूर्वक विचारना परम उपयोगी होगा।

टारटर एमेटिक	एकोनाइट
१—चर्म और श्लेष्म धरा कलापर ज्वालोत्पादक और शैथिल्य कारक है।	१—चर्म और श्लेष्म धराकलकी ज्ञानवह नाड़ियोंको अवसन्न और निचेष्ट करता है।
२—दीर्घ मात्रामें वामक और विरेचक प्रभाव करता है।	२—विषात्मक मात्रामें आमाशाय और आंतोमें दाह उत्पादक (Irritant) है।
३—तीव्र हृदय रक्त परिगमन और श्वास क्रियाको असन्न करता है।	३—इससे भी यही प्रभाव होता है।
४—रक्तके दबावको न्यून करता है।	४—इसका भी यही प्रभाव होता है।
५—शोथ हर और कफ़ निस्सारक है।	५—इसका यह प्रभाव नहीं होता।
६—सुषुम्ना काण्ड, मस्तिष्क और मांसपर उग्र अवसादक प्रभाव करता है।	६—ज्ञानवह नाड़ियोंके अन्तिम किनारोंपर उग्र अवसादक प्रभाव करता है और दीर्घ मात्रामें मांसोमें दुर्बलता करता है।
७—तीव्र स्वेदोत्पादक है।	७—इसमें उसके समान स्वेद उत्पादनकी उग्रता नहीं है।
८—ज्वरघ्न है।	८—ज्वरघ्न है।
९—पित्तसारक है।	९—इसमें यह गुण नहीं है।
१०—त्वचाविकृतिकारक और धातुओंमें जमा होनेवाला है।	१०—इसमें यह गुण नहीं।

खुरासानी अजवायन Hyoscyamus

[लेखक कविराज श्रीप्रतापसिंह]

पश्चिमी हिमालय, तिब्बत, पंजाब, सिन्ध, काबुल, बिलोचिस्तान और एशिया माइनरमें यह औषधि अधिक उत्पन्न होती है। विषात्मक प्रभाव होनेके कारण इसको कोही भांग अथवा पहाड़ी भांग भी कहते हैं क्योंकि यह भांगकी शक्लसे कुछ कुछ मिलती हुई होती है। बदमाश फ़क़ीर लोग भी इसको गांजेकी भांति पीते हैं। दुष्ट मनुष्य अपने शत्रुओंको पिलाकर हानि पहुंचाते हैं। इसके पीने या खानेसे गला सूखता है, उसमें खिचाव होता है और मनुष्य ज्यादा बकने लगता है। सिन्धके कमिश्नरने १८६४ की रिपोर्टमें लिखा था कि सिन्धके किनारेपर रहनेवाली जातियां

इसके पत्ते और फूलोंको सुखाकर गांजेकी भांति पीते हैं। यह गांजेसे अधिक उग्र होता है। इसके पीनेसे मनुष्य अधिकतर पागल हो जाता है। उस नशेकी दशामें वे नंगे होकर खूब नाचते कूदते रहते हैं। किरतार पहाड़में यह बहुतायतसे आपसे आप उत्पन्न होता है।

खुराशानी अजवायनकी जातिके जितने द्रव्य मिलते हैं उन सबमें एक विशेष विषात्मक वस्तु होती है, उसको हायोस्यामीन और हायोसीन कहते हैं। इसके विष लक्षण एटरोपीन नामक धतूरेके सतके विषसे कुछ न्यून होते हैं। इसके पत्तोंकी रसक्रियाकी (extract) मात्रा दोसे पांच रत्तीतक होती है। टिंगचरकी मात्रा दो माशेसे चार माशेतक होती है। हायोस्यामीन की मारक मात्रा चौथाई रत्तीसे आधी रत्तीतक होती है। इसके विषलक्षण साधारणतया धतूरेके विषके समान होते हैं। विशेष लक्षण, सन्ताप, शरीरोंमें उत्तेजना, शरीरका भारी होना, मूर्च्छा और सर्वाङ्गमें लकवा होना आदि होते हैं। यह लक्षण प्रगट होकर फिर कुछ घन्टोंके अन्दर मृत्यु हो जाती है। इसके विषके रोगी यूरोपमें ही अधिक होते हैं। एकबार एक स्त्री तीन तोलेके लगभग इसका टिंगचर पीनेपर भयंकर विष लक्षण उत्पन्न होनेपर भी बच गई। एक बार छः युवा पुरुषोंने भूलसे इसकी जड़को खा लिया उनमें से एक तो मर गया परन्तु पांच बच गये। एक बार एक मनुष्य ने दो बच्चोंको खुरासानी अजवायनके बीजोंका विष खिलाया जिनमें एक बच गया और दूसरा मर गया।

सिरका इमली और नींबूका तेज़ाब

Acetic acid, Tartaric acid, Citric acid

[लेखक कविराज श्री प्रतापसिंहजी]

सिरकेका तेज़ाब जब बहुत तेज़ होता है तब दाहक प्रभाव करता है। किन्तु जब पानी मिला हुआ होता है तब ज्वालोत्पादक प्रभाव करता है।

अबतक इसके विषके दो रोगी देखे गये हैं जिनमें एक १६ वर्षकी कन्या थी और दूसरा दो वर्षका बालक था। सिरकेमें तेज़ाब पांच फी सदीके हिसाबसे होता है। इस कारण बड़ी मात्रा खिलानेसे सिरका भी विषात्मक प्रभाव करता है।

इमली और नींबूका सत भी अधिक मात्रामें विषात्मक प्रभाव करते हैं। एक बार एक युवा मनुष्य ढाई तोले इमलीका सत अर्थात् टारटरिक एसिड Tartaric acid खानेसे मर गया।

लोगोंका विश्वास है कि नींबूका सत इससे (इमलीके सतसे) भी अधिक विषात्मक होता है।

मिट्टी का तेल

(Kerosene or Petroleum)

[लेखक कविराज श्री प्रतापसिंहजी]

यह तेल ज़मीनसे निकाल कर मुकत्तर (Fractional distillation) किया जाता है। जो अधिक पतला होता है उसको, पेट्रोल, स्पिरिट आदि नामसे व्यवहारमें लाते हैं। जो मध्यम श्रेणीका द्रव होता है कैरोसीन आयल (Kerosene oil) के नाम से लेम्प आदि जलानेके व्यवहारमें लाते हैं। जो गाढ़ा होता है वह मैशीनोंमें चिकनाई देनेके काममें आता है। कुछ मनुष्य पेट्रोलियमके व्यवहारसे हानि उठा चुके हैं क्योंकि इसके विष लक्षण मद कारक विषोंके समान होते हैं और इसके विषसे हृदय स्पन्दके बन्द हो जानेसे मृत्यु भी हो जाती है। भारतवर्षमें कम अवस्थाके बालकोंमें ही इसका विष प्रभाव देखनेमें आता है। इसका कारण यही है कि बालक इधर उधर खेलते हुये अज्ञानतासे पानीके धोखेमें इसको पी जाते हैं।

विषलक्षण—इसके विषसे दाह, वमन, मूर्च्छा हृदय दौर्बल्य और श्वास (केरोसिनकी गन्धयुक्त) आदि लक्षण प्रगट होते हैं।

चिकित्सा—उष्ण जलके द्वारा आमाशयको धोवे, रेंडीका तैल पिलावे, विशेष कर शक्ति-

प्रद औषधोंका प्रयोग करे और लक्षणोंके अनुसार चिकित्सा करे।

कमसे कम बारह घंटेतक रोगीका निरीक्षण करे क्योंकि इसके विषसे सहसा मृत्यु भी हो जाती है।

उदाहरण—एक डेढ़ वर्षकी आयुका बालक ११ अप्रैल १६०१ को चार बजकर चालीस मिनटपर हस्पतालमें लाया गया। उसका समाचार यह मालुम हुआ कि उसने एक घंटे पहले मिट्टीका तेल पिया है और उस समयसे कई बार वमन कर चुका है। उस समय बच्चा कुछ मूर्छित था, हाथ पैर ठण्डे थे, नाड़ीकी गति दुर्बल (अर्थात् प्रति मिनट ६२ बार होती थी) श्वास कठिनतासे लेता था और श्वासकी गति प्रति मिनट ३२ बार होती थी। उसकी चिकित्सा नीचे लिखे अनुसार की गई।

चिकित्सा—गरम जलके द्वारा बालकके आमाशयको धोकर उसे एक गरम कम्बलमें लपेट दिया तदंतर गरम दूध पिलाया गया, सायंकाल ७ बजे उसका शरीर स्वस्थ प्रतीत होने लगा और नाड़ीकी गति प्रति मिनट १३२ बार और श्वास प्रति मिनट ३५ बार चलने लगा। १२ तारीखको बच्चा स्वस्थ दशामें हस्पतालसे भेज दिया गया।

दूसरा उदाहरण—एक एक वर्ष आठ महीनेका हिंदू बालक मूर्छित अवस्थामें ८ जुलाई १६०१ को सायंकाल ५ बजे हस्पतालमें लाया गया। माता पितासे पूछनेपर विदित हुआ कि यहाँ आनेसे दो घंटे पूर्व मकानमें रक्खे हुए एक लेम्पमेंसे बालकने मिट्टीका तेल पी लिया है और उसके बाद दश बार वमनकर चुका है। उस समय वह बेहोश था, नाड़ीकी गति दुर्बल तथा शीघ्र गामी (अर्थात् प्रति मिनट १५० बार) श्वास प्रति मिनट ५४ बार चलता था और पेट तना हुआ था। उसकी चिकित्सा इस प्रकार की गई।

चिकित्सा—गरम जलके द्वारा आमाशयको धोनेपर तेलकी तीव्र दुर्गन्ध युक्त जल आमाशयसे निकला। आमाशय धोनेके बाद रोगीकी मूर्छा कम हो गई, शक्ति प्रद औषधोंका बराबर प्रयोग किया गया। ७ बजे सयंकाल बालककी दशा कुछ सुधरती हुई दीख पड़ी तब छोटी मात्रमें रेंडीका तेल पिलाया। रात्रिके पिछले पहरमें वह अर्द्ध मूर्छित सा हो गया शक्ति प्रद औषधोंके देते रहनेपर भी नाड़ीकी गति अत्यन्त दुर्बल थी। प्रातः ७ बजे उसकी दशामें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ इसी प्रकार ८ बजके १० मिनटपर उसकी मृत्यु हो गई। आमाशयसे द्रव निकाल कर अफ़ीम आदिकी जांच की गई किन्तु किसी प्रकारका विष नहीं मिला, और शवच्छेदन करनेपर भी सिवाय मिट्टीके तेलके विष लक्षणोंके और कोई परिवर्त्तन नहीं मिला।

परमाणु भार

[ले० श्री सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद]

रासायनिक विश्लेषणसे यह सरलतया ज्ञात हो सकता है कि अमुकतत्व कौनसे अनुपातमें दूसरे तत्वोंसे संयुक्त होकर यौगिक बनावेगा। इन अनुपातोंके लिये किसी इकाईका कल्पित करना अत्याआवश्यक है। प्रारम्भमें उज्जन तत्वको इकाई मानते थे पर अब वैज्ञानिकोंने ओषजनको अपना आदर्श स्वीकृत किया है। इस आदर्श का उन्होंने १६ परमाणु भार निश्चित किया है जिसके अनुसार उज्जनका परमाणु भार १·००८ के लगभग निश्चित हुआ है। साधारणतः उज्जन या अभिद्रवजनका परमाणु भार १ माना जा सकता है।

रासायनिक संयोग-तुल्यांक—जलके ऊपर सोडियमका प्रभाव होनेसे अभिद्रवजन उत्पन्न होता

है। प्रयोग द्वारा यह ज्ञात हो सकता है कि कितना सोडियममेंसे जल १ ग्राम अभिद्रवजन दे सकेगा। यह उपलब्ध संख्या सोडियमका रासायनिक-संयोग-तुल्यांक कहला सकती है। परीक्षा करने पर यह संख्या २३ निकलेगी। यहां हम उस संख्याको निकालते हैं जो अभिद्रवजनके इकाई-भारका स्थान ले सतकी है। यदि शनैः शनैः २३ ग्राम सोडियमके टुकड़े जलमें छोड़े जायँ और सम्पूर्ण अभिद्रवजन संकलित कर लिया जाय तो सामान्य तापक्रम और वायवीय दाबपर इस गैसका घनफल ११·२ लीटर तथा इसका भार १ ग्राम होगा।

२३ ग्राम सोडियम १ ग्राम अभिद्रवजनके तुल्य है अतः सोडियमका संयोग तुल्यांक २३ है। इसी प्रकार अन्य धातु-तत्त्वोंके, जो जल या अम्लों-मेंसे अभिद्रवजन पृथक कर देते हैं संयोग तुल्यांक निकाले जा सकते हैं।

इसी प्रकार ३२·५ ग्राम यशदको गन्धकाम्ल-में डालनेसे १ ग्राम अभिद्रवजन उपलब्ध होता है अतः यशदका संयोग तुल्यांक ३५·५ है। इसी प्रकार मग्नका १२ है।

दूसरी विधि जिससे संयोग तुल्यांक निकाले जा सकते हैं उन यौगिकोंकी परिक्षा करनेकी है जिसमें तत्त्व अभिद्रवजनमें संयुक्त हो सकते हैं।

उदाहरणतः जलमें १६ भाग ओषजन २भाग अभिद्रवजनसे संयुक्त है अतः ओषजनका ८ भाग अभिद्रवजनके एक भागके तुल्य है इस लिये ओषजनका संयोग-तुल्यांक ८ है। इसी प्रकार गन्धित-अभिद्रवजनमें १६ भाग गन्धक १ भाग अभिद्रवजनसे संयुक्त है अतः गन्धकका संयोग तुल्यांक १६ है। इसी प्रकार अभिद्रहरिकाम्लकी परीक्षासे हरिणका संयोग तुल्यांक ३५·६ निकाल-ता है।

बहुतसे तत्त्व अभिद्रवजनसे सरलतया न तो संयुक्त होसकते हैं और न उनके द्वारा किसी यौगिकमेंसे अभिद्रवजन पृथक हो सकता है। ऐसी अवस्थामें संयोग-तुल्यांक दूसरी रीतिसे निकाला जावेगा। पहली बात तो यह देखनी चाहिये कि यह तत्त्व किसी ऐसे तत्त्वके साथ संयुक्त होता है या नहीं जिसका संयोग तुल्यांक उपर्युक्त विधियोंसे निकाला जाचुका हो। बहुधा अनेक तत्त्व ओषजन और हरिणके साथ संयुक्त होसकते हैं। हम ऊपर ओषजन और हरिणके संयोग तुल्यांक क्रमानुसार ८ और ३५·६ लिख आये हैं। अतः किसी तत्त्वका संयोग तुल्यांक जो इनसे संयुक्त होसकता है वह संख्या होगी जिसमें वह तत्त्व ८ भाग ओषजन या ३५·६ भाग हरिणसे संयुक्त होता हो। उदाहरणतः १०७·६ भाग रजत ८ भाग ओषजनके साथ संयुक्त होकर रजत ओषित बनाता है तथा इतना ही भाग ३५·६ भाग हरिणके साथ रजत हरिद बनाता है। अतः रजतका संयोग तुल्यांक १०७·६ है।

इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत सी विधियां हैं जिनसे किसी तत्त्वका संयोग-तुल्यांक निकाला जासकता है। विद्युत्-प्रभावके द्वारा विद्युत प्लेटों-पर संचित धातुकी मात्रा निकालकर तुल्यांक निकाल सकते हैं। यदि समान विद्युत धारा दो विद्युत-घटोंमें प्रवाहित की जाय जिनमें भिन्न भिन्न धातुयें प्लेटोंपर संचित होती हों तो संचित धातुओंके भारका अनुपात उन धातुओंके संयोग-तुल्यांकके अनुपातके बराबर होता है। इस प्रकार भार निकालकर संयोग तुल्यांक निकाला जासक-ता है। उदाहरणके लिये यदि अम्लयुत जल वाले घटमें उतनी ही विद्युत प्रवाहित की जाय जितनी ताम्र-गन्धित-घोल वाले घटमें तो जितने-में पहले घट में १ ग्राम अभिद्रवजन जनित होगा उतनेमें ही दूसरेमें ३१·८ ग्राम ताम्र संचित होगा। अतः ताम्रका संयोग तुल्यांक ३१·८ हुआ। इस प्रकार अन्य बहुतसे तत्त्वोंका संयोग तुल्यांक निकाला जा सकता है।

बहुतसे ऐसे यौगिक हैं जिनकी परीक्षा करनेसे विदित होता है कि किसी किसी तत्त्वके दो या अधिक संयोग तुल्यांक हैं, जैसे जल (अभिद्रव ओषित) में १ भाग अभिद्रवजनसे ८ भाग ओषजन संयुक्त हैं पर अभिद्रव द्विओषित नामक यौगिकमें १ भाग अभिद्रवजनसे १६ भाग ओषजन संयुक्त हैं। इन दो उदाहरणोंसे प्रकट है कि ओषजनका संयोग तुल्यांक ८ और १६ दोनो हैं। इसी प्रकार लोह-ओषित कई प्रकारके होते हैं। किसीमें ८ भाग ओषजनसे २७.६ भाग लोहा संयुक्त रहता है, और किसीमें १८.६ भाग लोहा ८ भाग ओषजनसे संयुक्त रहता है। अतः लोहेका संयोग-तुल्यांक २७.६, १८.६ आदि संख्याओंमेंसे कोई भी माना जा सकता है।

संयोग तुल्यांक ज्ञात होनेपर भी परमाणुभार निकालनेके लिये दूसरे साधनोंका आश्रय लेना पड़ता है। यह निश्चय है कि परमाणुभार इन संयोग तुल्यांकोंका ही कोई गुणक होगा। परमाणुभार निकालनेकी विधियोंकी विवेचनाके पूर्व यह अत्यावश्यक है कि गैस सम्बन्धी कुछ आवश्यक सिद्धान्त विदित हो जायं जिनका उपयोग परमाणुभार निकालनेमें करना पड़ेगा।

गैसोंके आयतन और तापक्रममें सम्बन्ध—साधारण प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि गरम करनेपर प्रत्येक गैसका आयतन बढ़ता है और तापक्रमको कम देनेसे गैस भी सिकुड़ जाती है। इस अवस्थामें दबावको एक सा ही रखना पड़ता है। द्रव और ठोस पदार्थ भी गरम करनेपर बढ़ते हैं और ठंडे होनेपर सिकुड़ जाते हैं। इनके विस्तार और संकोचपर वायुमंडलके दबावका कोई भी प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रत्येक पदार्थ-(ठोस और द्रव) के विस्तार और संकोचकी मात्रा तापक्रमकी अपेक्षासे भिन्न है। १ घन इञ्च सोना और १ घन इञ्च लोहा १००° तक गरम करनेपर एक समान ही विस्तृत नहीं होवेंगे। इसी प्रकार १ घन इञ्च जल और एक घन इञ्च पारदमें समान तापक्रमके बढ़नेसे भिन्न भिन्न विस्तार होगा।

पर गैसोंके लिए यह देखा गया है कि तापक्रमके बढ़ानेपर प्रत्येक गैस एकही प्रकार अपने आयतनकी वृद्धि करती है। १ लीटर अभिद्रवजन वायुमंडलके दाबपर, एक अंश तापक्रम बढ़ानेपर जितना बढ़ जाता है उतना ही १ लीटर ओषजन एक अंश तापक्रमकी वृद्धि होनेपर बढ़ेगा।

डाल्टनका सिद्धान्त—गैस सम्बन्धी इस प्रस्तारको डाल्टन महोदयने बड़ी सावधानीसे नापा और उन्होंने अनेक गैसोंपर परीक्षा करनेके पश्चात् यह सिद्धान्त निश्चित किया कि यदि दबाव स्थिर रक्खा जाय तो प्रत्येक गैस ०° श से १०° श तक तापक्रम बढ़ानेपर अपने आयतनका $\frac{१}{२७३}$ भागके लगभग बढ़ेगी, इस प्रकार जिस गैसका आयतन ०° श पर २७३ है उसका आयतन

१° श पर २७४
२° श पर २७५
३° श पर २७६
त° श पर (२७३ + त)

हो जावेगा। इस सिद्धान्तका ध्यान रखनेसे तापक्रमकी अपेक्षासे किसी गैसके आयतनका वृद्धिका अनुमान सरलतया निकाला जा सकता है।

उदाहरण—किसी गैसका आयतन ५° श पर ५७६ घन शतांशमीटर है तो बताओ कि २५° श पर उसका क्या आयतन होगा।

जिस गैसका आयतन ०° श पर २७३ होता है उसका ५° श पर आयतन २७८ होगा और २५° श पर २९८ होग।

∴ तापक्रममें ५° श से २५° श तक वृद्धि होनेपर २७८ आयतन २९८ हो जाता है।

$$\therefore ५७६ \quad " \quad \frac{२९८ \times ५७६}{२७८} = ६१७ \text{ हुआ}$$

गैसोंके आयतन और दबावमें सम्बन्ध—यदि तापक्रम स्थिर रक्खा जाय तो दबावके बढ़ानेपर गैसका आयतन कम होता जायगा। यदि दबावको दुगणा कर दिया जाय तो आयतन आधा रह जाता है। यदि दबाव तिगुना कर दिया जाय तो आयतन एक तिहाई हो जावेगा। इसी प्रकार दबावको आधा करनेपर आयतन दुगना हो जायगा और दबाव यदि तिहाई कर दिया जाय तो आयतन तिगुना हो जायगा। इस प्रभावको देखकर बायलने यह सिद्धान्त निकाला कि जब तापक्रम स्थिर रहता है तो गैसके आयतन और दबावमें व्युत्क्रम अनुपात रहता है। चाहे कोई गैस क्यों न ली जाय। यह सिद्धान्त सबके लिये एकसा रहेगा। बायलके इस सिद्धान्तसे यह भी स्पष्ट है कि दबावको जितना ही बढ़ावेंगे गैसका घनत्व उतना ही बढ़ेगा।

भिन्न भिन्न दबावोंपर गैसोंका आयतन निकालना—कल्पना करो कि किसी गैसका आयतन ७८० मिलीमीटर दबावपर ५३० घन शर्मी० है तो बताओ कि ७६० मिलीमीटर दबावपर उसका आयतन क्या होगा? इस प्रश्नके निकालनेके लिये बायलके सिद्धान्तका उपयोग करना चाहिये। गैसके आयतन और दबावमें व्युत्क्रम अनुपात होता है। अतः ऐच्छित आयतन $\frac{५३० \times ७८०}{७६०}$ घन श मी० होगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि दबाव अधिक किया जायगा तो आयतनकी मात्रा कम हो जावेगी और यदि दबाव कम कर दिया जावेगा तो आयतन बढ़ जावेगा। यदि क मिलीमीटर दबावपर गैसका आयतन च घन श मी० है तो ख मिलीमीटर दबावपर आयतन $\frac{क \times च}{ख}$ घन श मी० होगा।

भिन्न भिन्न दबाव और तापक्रमपर गैसोंका आयतन निकालना—यदि किसी गैसका किसी ज्ञात तापक्रम और दबावपर आयतन दिया हुआ है तो किसी अन्य तापक्रम और दबावपर उस आयतनको परिवर्त्तित कर सकते हैं। बायल और डाल्टनके सिद्धान्तोंका उपयोग करनेसे ऐच्छित परिणाम प्राप्त हो सकता है।

उदाहरण—२५° श तापक्रम और ४६० मिली मीटर दबावपर किसी गैसका आयतन ३५० घन श० मी० है तो ३०° श और ५०० मिली मीटर दबावपर इसका आयतन क्या होगा?

उपर्युक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसे, यदि दबाव ४६० मिलीमीटर पर स्थिर हो तो जिस गैसका आयतन २५° श पर ३५० घन श है उसका आयतन ३०° श पर यह होगा—

$$\frac{(२७३ + ३०) \times ३५०}{(२७३ + २५)} = \frac{३०३ \times ३५०}{२९८} \text{ घन श}$$

अब यदि दबाव ४६० मिलीमीटर से ५०० मिलीमीटर हो जाय तो आयतन बायलके सिद्धान्तके अनुसार होगा—

$$\frac{३०३ \times ३५०}{२९८} \times \frac{४६०}{५००} \text{ घन श}$$

सामान्यतः यदि त° श तापक्रम और द मिली मीटर दबावपर आयतन स घन श हो तो थ° श तापक्रम और ध मिली मीटरपर दबाव आयतन

$$\frac{(२७३ + थ^\circ) \times स \times द}{(२७३ + त^\circ) \times ध} \text{ घन श मी० होगा।}$$

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस समय सामान्य तापक्रम और सामान्य दबावका निर्देश किया जाय उस समय ०° श और ७६० मिली मीटर दबावका तात्पर्य्य समझना चाहिये।

गेलूजकका सिद्धान्त—सं १८६४ ई०में गे-लूज़कने एक उपयोगी सिद्धान्तकी खोज की जो इस प्रकार है—यदि कुछ गैसोंमें रासायनिक सम्मिलन होता हो तो उनके आयतनोंमें एक निश्चित सरल अनुपात विद्यमान रहता है और यदि सम्मिलन द्वारा कोई गैस पदार्थ प्राप्त होता हो तो उसके आयतन और पूर्व गैसोंके आयतनोंमें भी एक

सरल अनुपात विद्यमान रहेगा, निस्सन्देह ये आयतन एक ही तापक्रम और दबावपर नापे जाने चाहियें।

इस सिद्धान्तका लाभ यह है कि यदि गैस-तत्वोंका घनत्व ज्ञात हो और यदि यह ज्ञात हो कि उनके सम्मिलनमें आयतनोंका अनुपात क्या है तो प्राप्त सम्मिलनका घनत्व निकाला जा सकता है। उदाहरणतः—

दो आयतन अभिद्रवजन गैस १ आयतन ओषजन गैससे संयुक्त होकर २ आयतन भाप देता है। अभिद्रवजनका घनत्व वायुकी अपेक्षा ·०६६३ है अर्थात् किसी स्थिर दबाव और तापक्रमपर जिस आयतनमें १ ग्राम हवा आवेगी उतनेमें ही ·०६६३ ग्राम अभिद्रवजन आवेगा इसी प्रकार ओषजनका घनत्व १·१०५६ है। अतः—

२ आयतन अभिद्रवजनका भार ·१३८६ ग्राम है।
१ " ओषजन " १·१०५६ " "।

अतः २ आयतन भापका भार १·२४४२ ग्राम है।
∴ १ " " " ·६२२१ ग्राम है।

अतः वायुकी अपेक्षा भापका घनत्व ·६२२१ है।

दूसरा उदाहरण—१ आयतन अभिद्रवजन १ आयतन हरिण गैसके साथ संयुक्त होकर २ भाग अभिद्रव हरिकाम्ल देता है। अभिद्रवजनका घनत्व ·०६६३ है और हरिणका घनत्व २·४४३५ है तो अभिद्रव हरिकाम्लका घनत्व क्या होगा?

१ आयतन अभिद्रवजनका भार ·०६६३ ग्राम है।
१ " हरिण गैसका " २·४४३५ " "

∴ २ आयतन अभिद्रव हरिकाम्लका भार २·५१२८ ग्राम है।

अतः अभिद्रव हरिकाम्लका घनत्व १·२५६४ है।

यहां हम एक सरिणी देते हैं जिसमें कुछ तत्व गैसोंके आपेक्षिक घनत्व (वायुका घनत्व १ और अभिद्रवजनका ·०६६३ मान कर) दिये गये हैं।

तत्व	आपे० घन०	तत्व	अपे० घन
१. ओषजन	१·१०५६	८. स्फुर	२·१४८३
२. अभिद्रवजन	·०६६३	९. ताल	५·१६७५
३. नत्रजन	·९७०२	१०. पारद	१३·८६००
४. हरिण	२·४४३५	११. कादमियम	७·७६१६
५. ब्रम	५·५४४०	१२. यशद	४·५३२२
६. नैल	८·८०११	१३. सोडियम	१·५९३९
७. गन्धक	२·२११२	१४. पोटाशियम	२·७०७२

एवोगैड्रोका सिद्धान्त—डाल्टनके परमाणुवादके समान ही एक उपयोगी सिद्धान्त एवोगैड्रोने निश्चित किया। उसका कथन है कि प्रत्येक गैस (चाहे वह एक तत्व हो या कोई सम्मिलन हो) के समान आयतनमें जब वे स्थिर तापक्रम और दबाव-पर होंगे, अणुओंकी संख्या समान होगी। तात्पर्य्य यह है कि जितने आयतनमें किसी दिये हुए तापक्रम और दबावपर जितने अभिद्रवजनके अणु आवेंगे उतने आयतनमें उतने ही अणु हरिण, ओषजन, नत्रजन आदि तत्व गैसोंके आवेंगे। इसी प्रकार उतने ही आयतनमें योगिक-गैस जैसे अमोनिया, अभिद्रव हरिकाम्ल आदिके उतने ही अणु आवेंगे।

चित्र द्वारा स्पष्ट है कि यदि कोष्ठोंका आयतन बराबर हो तो नत्रजन और ओषजनके अणुओंकी संख्या भी दोनों कोष्ठमें बराबर होगी। यह तो कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि दोनों गैसोंका तापक्रम और दबाव एक ही होना चाहिये। यहां यह भी समझ लेना चाहिये कि अणु और परमाणुमें क्या भेद है। जलके यदि विभाग करते जावें तो एक अन्तिम जलकी अवस्था आवेगी। इस जलके सूक्ष्मतम कणको जलका अणु कहेंगे। इस अणु-

को और विभाजित करनेपर जल तो न मिलेगा पर प्रत्येक अणुमें २ परमाणु अभिद्रवजन और एक परमाणु ओषजनका मिलेगा। अतः अणु किसी पदार्थकी वह सूक्ष्मतम अवस्था है जिसमें पदार्थके परमाणु मिलकर रह सकते हैं। अणु यौगिकों और तत्त्वों दोनोंके हो सकते हैं पर परमाणु केवल तत्त्वोंके होते हैं। अभिद्रवजन ($अ_2$), ओषजन ($ओ_2$), हरिण ($ह_2$) नत्रजन ($न_2$), अभिद्रवहरिकाम्ल ($अ ह$) आदि पदार्थके अणुओंमें दो परमाणु हैं और कर्बन् द्विओषित ($क\ ओ_2$), ओज़ोन ($ओ_3$) आदि पदार्थोंके अणुमें ३ परमाणु हैं। इसी प्रकार अमोनिया ($न\ अ_3$), स्फुर ($स्फु_4$)आदिके अणु में ४ परमाणु होते हैं।

एवोगैड्रोके उपर्युक्त सिद्धान्तका समर्थन इस बातसे होता है कि प्रत्येक आदर्श गैसपर तापक्रम और दबावका प्रभाव एक ही प्रकारका पड़ता है। तापक्रमके बढ़ानेपर प्रत्येक गैसका विस्तार समान ही होता है जैसा कि डाल्टनके सिद्धान्त द्वारा पहले दिखाया जाचुका है। इसी प्रकार दबावका प्रभाव भी प्रत्येक गैसपर एक सा ही होता है। यह तभी सम्भव होसकता है जब प्रत्येक गैसके समान आयतनमें अणुओंकी संख्या समान ही हो। यदि संख्या समान न होगी तो बराबर तापक्रम या दबावमें वृद्धि करनेसे आयतनके प्रस्तारकी मात्रा भी भिन्न भिन्न होती। पर ऐसा नहीं होता है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। वह यह कि आपेक्षिक घनत्व और अणुभारमें क्या सम्बन्ध है यह भी एवोगैड्रोके सिद्धान्तसे पता चल सकता है। साधारण विचारसे ही यह पता चल जावेगा कि दो गैसोंके आपेक्षिक घनत्वमें वही अनुपात है जो उन गैसोंके अणु-भारमें है। यह बात ठीक ही है क्योंकि गैसोंके समान आयतनोंमें अणुओंकी संख्या समान है और इन समान आयतनोंके भारके अनुपातका नाम ही आपेक्षिक घनत्व है।

गैसोंके आपेक्षिक घनत्व और परमाणुभारमें सम्बन्ध —दो गैसोंके आपेक्षिक घनत्व और अणुभारमें समान अनुपात रहता है, अतः आपेक्षिक घनत्व निकालनेसे अणुभार निकाले जासकते हैं। दबाव और तापक्रम इन प्रयोगोंमें स्थिर रखने चाहियें। यह देखा गया है कि ओषजन अभिद्रवजनकी अपेक्षा १६ गुणा भारी है अतः अभिद्रवजनका अणुभार ओषजनका १६ गुणा होगा।

गे-लूज़कके सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट है कि साधारण गैसोंके संयोगभार उनके आपेक्षिक घनत्वके समानुपाती हैं और एवोगैड्रोके सिद्धान्त द्वारा गैस पदार्थोंके अणुभार उनके आपेक्षिक घनत्वोंके समानुपाती हैं। यदि अभिद्रवजनको इकाई मान कर किसी गैस पदार्थका आपेक्षिक घनत्व यदि क हो तो उसका अणुभार २ क होगा क्योंकि एक अभिद्रवजनके अणु में २ परमाणु होते हैं अर्थात् अभिद्रवजनका अणुभार २ होता है।

परमाणुभार निकालनेके लिये यह आवश्यक है कि तत्त्वके भारका वह सबसे छोटा अनुपात निकाल लिया जाय जिसमें यह तत्त्व भिन्न भिन्न यौगिकोंमें संयुक्त पाया जाता हो। कल्पना करो कि किसी यौगिक में क, ख और म तत्त्वोंके क्रमानुसार च, छ और ज संख्यामें परमाणु विद्यमान हैं और इन तत्त्वोंका अणुभार क्रमानुसार त, थ और द है तो इसका परमाणुभार (च.त + छ.थ + ज.द) होगा। हमको इन तत्त्वोंके अन्य यौगिक प्राप्त करने चाहियें और देखना चाहिये कि अमुक तत्व किस सबसे छोटे अनुपातमें विद्यमान है। यह छोटेसे छोटा अनुपात ही परमाणुभार होगा।

एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है—स्फुर अन्य तत्त्वोंके साथ संयुक्त हो कर ऐसे यौगिक बनाता है जिनका गैस रूपमें

आपेक्षिक घनत्व निकाला जा सकता है। जैसे स्फुरीन, स्फुरका द्रव अभिद्रविद, स्फुर हरिद, स्फुरील हरिद, गन्धि स्फुरील हरिद, इत्यादि। स्फुरीनका गैस-आपेक्षिक घनत्व निकालनेसे विदित होता है कि इसका अणुभार ३४के लगभग है। रासायनिक विश्लेषण द्वारा यह पता चलता है कि ३३.७७ भाग यौगिकमें ३ भाग अभिद्रवजन है। अतः स्फुरका परमाणुभार ३०.७७ से अधिक नहीं हो सकता, यह अवश्य सम्भव है कि परमाणुभार ३०.७७ का आधा, तिहाई, चौथा कोई अवगुणक हो। इसी प्रकार अन्य यौगिकोंके विश्लेषणसे निम्न संख्याएं प्राप्त होती हैं।

	द्रवअभिद्रविद	स्फुरहरिद	स्फुरीलहरिद	गन्धिस्फुरीलहरिद
अणुभार	६५.५४	१३६.३१	१५२.१६	१६८.१३
स्फुरका अणुअनुपात	६१.५४	३०.७७	३०.७७	३०.७७

इन सब संख्याओंमें ३०.७७ संख्या द्वारा सूचित अणु अनुपात सबसे छोटा है। इससे सम्भावना हो सकती है कि स्फुरका परमाणुभार ३०.७७ हो। यह भी स्पष्ट है कि द्रवअभिद्रविद्में स्फुरके दो परमाणु हैं। इस प्रकार गैस-आपेक्षिक घनत्व ज्ञात होनेपर तत्वका परमाणुभार सरलतया कल्पित किया जा सकता है। यह परमाणुभार निकालनेकी प्रथम विधि है। अन्य विधियां आगे दी जावेंगी।

डूलंग और पेटीटका सिद्धान्त—सन् १८१८ में डूलंग और पेटीटने एक उपयोगी सिद्धान्तकी खोज की। उसका कथन है कि प्रत्येक तत्वके परमाणुओंकी तापशक्ति समान होती है अर्थात् परमाणुभार और आपेक्षिक तापको गुणा करनेसे सदा एक ही संख्या प्राप्त होगी। प्रयोग द्वारा यह देखा गया है कि यह गुणनफल बहुधा ६.४ के निकट होता है। इस गुणनफलको परमाणुताप कहते हैं।

परमाणुभार × आपेक्षिक ताप = परमाणुताप = ६.४.

∴ परमाणुभार = ६.४ / आपेक्षिक ताप

इस प्रकार यदि किसी तत्वका आपेक्षिक ताप ज्ञात हो तो उसका परमाणु भार निकाला जा सकता है।

हम पहले संयोग-तुल्यांकका वर्णन कर आये हैं, और यह भी कहा जा चुका है कि यह बहुत सरलतासे निकाला जा सकता है। इस संयोग-तुल्यांक और परमाणुभारमें भी बहुत सरल सम्बन्ध है। परमाणुभार इसका कोई न कोई गुणक होता है। अतः निश्चित करना यही शेष है कि इस तुल्यांकका कौनसा गुणक लिया जाय। डूलंग और पेटीटके सिद्धान्त द्वारा परमाणुभार अनुमान रूपसे निकाला जा सकता है और उसका संशोधन तुल्यांकको उस संख्यासे गुणा कर देनेसे किया जा सकता है जिसके द्वारा गुणन फल परमाणुताप द्वारा निकाले हुए परमाणुभारके निकट आ जाय।

निम्न सारिणी द्वारा कुछ उदाहरण डूलंग और पेटीटके सिद्धान्तके पोषक प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

तत्व	आपेक्षिक ताप	परमाणुभार	परमाणुताप
ताम्र	.०९३६	६३.५	५.९
सीस	.०३१०	२०७	६.४
पारद	.०३१९	२००	६.२
सोडियम	.२९३०	२३	६.६
ब्रम	.०८४३	८०	६.६
लोह	.११६२	५५.८	६.५
स्वर्ण	.०३१६	१९७.२	६.२

इस प्रकार उपर्युक्त सारिणीसे डूलंग और पेटीटका सिद्धान्त स्पष्ट हो सकता है। कुछ तत्व ऐसे हैं जिनका परमाणुताप सामान्य परमाणुताप ६.४ से बहुत ही भिन्न है। इन तत्वोंके परमाणुभार २० से कम हैं। नीचे कुछ वे तत्व

दिये जाते हैं जिनका परमाणुताप डूलंग और पेटीटके नियमका अनुसरण नहीं करता है—

	परमाणुताप		परमाणुताप
गन्धक	५.४	ओषजन	४.०
स्फुर	५.४	शैल	३.८
नत्र	५.०	टंक	२.७
अभिद्रवजन	२.३	कर्बन	१.८

बहुतसे तत्त्व ऐसे भी हैं जिनका परमाणुताप तापक्रममें वृद्धि होनेपर बढ़ जाता है। साधारण तापक्रमपर बहुतसे तत्व डूलंग और पेटीटके सिद्धान्तका विरोध करते हैं। पर तापक्रमकी वृद्धिहोनेपर वे भी उसी सिद्धान्तका अनुसरण करने लगते हैं। वैज्ञानिक वीबरने कर्बन, शैल और टंकके विषयमें ऐसा ही देखा, यही अवस्था बेरीलियम तत्वकी भी पाई गई। ५०° श तापक्रमके नीचे तो बेरीलियमका आपेक्षिक ताप ·३९७३ है अतः परमाणुताप ३.५७ के लगभग हुआ। पर यह आपेक्षिकतापक्रम बढ़ानेसे बढ़ता जाता है और ४००° और ५००° के बीच में यह स्थिर होजाता है। इस समय आपेक्षिक तापकी मात्रा ६.२ हो जाती है अतः अब परमाणुताप ५.६ के लगभग हो जाता है जो पूर्वकी अपेक्षा अब सामान्य परमाणुतापसे अधिक मिलता है। टंक और कर्बनका आपेक्षिक ताप १०००° तापक्रमके निकट स्थिर हो जाता है। इस समय आपेक्षिक ताप टंकका ·५० और कर्बन का ·४६ होता है। अतः इस समय परमाणु ताप टंकका ५.५ और कर्बनका भी ५.५ के लगभग हो जाता है जो पूर्वकी अपेक्षा अब सामान्य परमाणुतापके अधिक निकट है। इसी प्रकार शैलका आपेक्षिक ताप २००° श तापक्रमपर ·२०३ हो जाता है और यह आगे स्थिर रहता है। इस समय इसका परमाणु ताप ५.६ हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि ये परमाणुताप वर्त्तमान समयके निश्चित परमाणुभारोंकी अपेक्षासे निकाले गये हैं। यह बात तो ठीक ही है कि धातुओंकी अपेक्षा उपर्युक्त उपधातुओंके परमाणुतापकी मात्रा बहुत कम है। इस प्रकारके भेदका कारण कदाचित अणुओंके निर्माणकी भिन्नता होगी।

समाकृतित्वका सिद्धान्त—संयोग तुल्यांकका वह गुणक निश्चित करनेमें जिससे परमाणुभार स्थिर किया जा सकता है, रवोंके सामाकृतत्वकी विधि भी बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। गत शताब्दिके आरम्भमें हौई आदि वैज्ञानिकोंका यह मन्तव्य था कि प्रत्येक वस्तुके रवेकी केवल एक निश्चित आकृति होती है अतः भिन्न भिन्न रवोंकी आकृतियाँ भिन्न भिन्न होंगी ही। पर कुछ दिनों बाद इस सिद्धान्तका विरोध किया गया। बहुतसे ऐसे पदार्थ पाये गये जिनका एकसा ही संघटन था पर तब भी वे भिन्न प्रकारके थे। इसके अतिरिक्त बहुतसे ऐसे भी पदार्थ उपलब्ध हुए जिनके रवे एक ही आकृतिके थे पर तो भी उनका संघटन भिन्न प्रकार का था।

सन् १८२० ई० में मिटशरलिचने एक सिद्धान्त निर्धारित किया जिसे समाकृतित्वका सिद्धान्त कहते हैं। उसका कथन है कि जब किसी विशेष यौगिकमें एक तत्त्वके स्थानमें दूसरे तत्त्वको रखनेपर सम्मिलनके रवेकी आकृतिमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता हो तो पूर्व तत्त्व और पश्चात् वाला स्थापित तत्त्व रासायनिक रूपमें एकसे होंगे और इनके यौगिक भी एक ही प्रकारके होंगे एक उदाहरण द्वारा इस सिद्धान्तको व्यक्त किया जा सकता है।

गन्धितोंमें गओ$_3$ ओषित विद्यमान रहता है। क्रोमितोंके रवे और गन्धितोंके रवे समाकृतिके होते हैं अतः क्रोमितोंमें भी क्रओ$_3$ ओषित होना चाहिये न कि क्रओ$_6$ या अन्य कोई। अतः क्रोमिक ओषित क्र$_2$ ओ$_3$ होना चाहिये न कि क्रिओ$_3$। क्रोमिक और लोहिक लवणके रवे भी समाकृति वाले होते हैं अतः समाकृतित्वके सिद्धान्तका उपयोग करनेसे लोहिक ओषित लो$_2$ ओ$_3$ होना चाहिये और इसी प्रकार लोहस ओषित लो ओ

होना चाहिये। मग्न, यशद, निकल और कोबल्ट-के लवण भी समाकृतिक होते हैं अतः उनके ओषित कओ और कओ₂ रूपके होने चाहिये। क से तात्पर्य उपर्युक्त किसी समाकृतिक तत्वसे है। इस प्रकारके रूप इस सिद्धान्तसे निर्धारित होनेके पश्चात् परमाणुभार निश्चित् किया जासकता है क्योंकि यदि एक तत्वके संयोगतुल्यांकका गुणक जिससे परमाणुभार निकाला जासकता है, ज्ञात हो तो उसी गुणकका उपयोग समाकृतिक तत्वमें भी होगा। उदाहरणतः यदि लोहके संयोग-तुल्यांकको ३ से गुणा करनेपर यदि लोहका परमाणुभार निकलता है और यदि कोबाल्ट लोहका समाकृतिक है तो कोबाल्टका परमाणुभार निकालनेके लिये भी उसके संयोग तुल्यांकको ३ से गुणा करना होगा।

यह उदाहरण इस सिद्धान्तके उपयोगको और स्पष्ट कर देगा। गेलियम तत्वकी अमोनियम-फिटकरी स्फट-अमोनियम फिटकरीके समाकृतिक है। स्फट अमोनिम फिटकरीका संघट्टन [स्फ₂ (गओ₄)₃ (न अ₄)₂ ग ओ₄, २४ अ₂ ओ] है अतः गेलियम गंधितका संघटन गै₂(गओ₄)₃ होना चाहिये और इसका ओषित गे₂ ओ₃ हुआ। गेलियमका संयोग-तुल्यांक २३ निकाला गया है अतः इसका परमाणुभार २३ × ३ = ६६ हुआ। नीचे समाकृतिक तत्वोंकी एक सारिणी दी जाती है—

१. ह, ब्र, नै, स; मा (परमांगितोमें)

२. ग, से; ते (तेलुरिदोंमें) ; क, मा, ते (अ₂ र ओ₄ रूपके अम्लोंमें)

३. ल, ज, बि; ते (तत्त्व रूपमें) ; स्फु, वा, (लवणोंमें) ; न, स्फु (आंगनिक भस्मोंमें)

४. पो, सो, श्य, रू, ग्रा; थे, र

५. ख, भ, स्त, सी; लो, य, मा, म; नि, को, ता; श्री, ले, प, इ (ख के साथ) ; ता, पा (सी के साथ); का, बे, हि (य के साथ); थे (सी के साथ)

६. स्फ, लो, क, मा; श्री, यु (एकार्ध ओषिदोंमें)

७. ता, र, (लघुतर ओषिदोंमें); स्व

८. स, इ, प, रो, ह, ओ; स्व, लो, नि; ब, ते

९. क, मौ, ती, जि, यो, ब, लो, ती।

१०. तं, नो

११. मो, तु, क।

अब हम यहां एक अन्य सारिणी देते हैं जिसमें प्रत्येक तत्वका संकेत तथा परमाणु भार दिया गया है। यह सारिणी आगेके पृष्ठपर देखिए।

तत्वोंके नाम, संकेत और परमाणुभार

तत्व	संकेत	परमाणुभार	तत्व	संकेत	परमाणुभार	तत्व	संकेत	परमाणुभार
अज्ञन	ज	१२०·२	थेलियम	थे	२०४·०	रजत	र	१०७.८८
उज्जन	उ	१·००८	थोरियम	थो	२३२·४	रूपद	रू	८५·४५
आर्गन	आ	३९·८८	नत्रजन	न	१४·०१	रेडियम	रे	२२६
इत्रियम	इ	८८·७	निकल	नि	५८·६८	रैनियम	रै	७५
इन्द्र	इं	१९३·१	नैल	नै	१२६·९२	रोडियम	रो	१०२·९
पर्बियम	प	१६७·७	नोबियम	नो	९४	लेथनम	ले	१३९·०
ओषजन	ओ	१६	नौदिमम	नौ	१४४·३	लोह	लो	५५·८४
ओसमम	ओस	१९०·८	न्योन	न्यो	२०·२	वान्दियम	वा	५१
कर्बन	क	१२·००५	पलेदियम	प	१०६·७	शर्म्म	श	७२·५
काद्मियम	का	११२·४	पारद	पा	२००·६	शैल	शै	२८·३
कृप्तन	कृ	८२·९२	पोटाशियम	पो	३९·१	श्याम	श्य	१३८·८१
कोबल्ट	को	५८·९७	प्रसेद्रियम	प्र	१४०·९	श्रीयम	श्री	१४०·२५
क्रोम	क्र	५२·०	प्लव	प्ल	१९	सीस	सी	२०७·२
खटिक	ख	४०·०७	प्लाटिनम	प्ला	१९५·२०	सेलेनम	से	७९·२
गन्धक	ग	३२·०६	बंग	ब	११८·७	सोडियम	सो	२३
गेलियम	गे	६९·९	बिस्मत	बि	२०८॥ *	स्कन्ध	स्क	४४·१
ग्रात्र	ग्र	६·९४	बेरीलियम	बे	९	स्तंत्रम	स्त	८७·६३
जिरकोनियम	जि	९०·६	ब्रम	ब्र	७९·९२	स्फट	स्फ	२७·१
जीनन	जी	१३०·२	भारियम	भ	१३७·३७	स्फुर	स्फु	३१·०४
टंक	ट	११	मग्न	म	२४·३२	स्मेरियम	स्म	१५०·४
तंतलम	तं	१८१·५	मसवीरियम	वी	४३	स्वर्ण	स्व	१९७·२
ताम्र	ता	६३·५७	माँगल	मा	५४·९३	हरिण	ह	३५·४६
ताल	ल	७४·९६	मोलद	मो	९६·०	हिन्दम	हि	११४·८
तीतेनियम	ती	४८·१	यशद	य	६५·३७	हेल	हे	४
तुङ्गस्त	तु	१८४·०	यन्त्रबयम	यं	१७३ ५	होफनियम	हो	७२
तेलुरियम	ते	१२७·५	युरेनियम	यु	२३८·२	हृथेनियम	हृ	१०१·७

सूर्य-सिद्धान्त

यह २१वें श्लोकसे मिलता जुलता है। इसलिए इसकी उपपत्ति भी उसी तरह है।

उदाहरण—जब सूर्यकी क्रान्ति १५° उत्तर या दक्षिण हो तो प्रयागमें (अक्षांश २८° २५′) कोण शंकु और दृग्ज्या क्या होंगे ?

प्रयाग का विषुवत्कर्ण = १३·२८ अंगुल (देखो पृष्ठ ३८१)

" की पलभा = ५·६८ अंगुल

इसलिए उस दिनकी उदयकालिक अग्राज्या

$$= \frac{\text{ज्या } १४^\circ \times १३\cdot२८}{१२} \quad [\text{देखो श्लो० २२}$$

$$= \frac{८६० \times १३\cdot२८}{१२} = ६८५'$$

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^2}{२} - \text{अग्राज्या}^2\right) \times १४४}{७२ + \text{पलभा}^2}$$

$$= \frac{(५६०६६२२ - ६७०२२५)\ १४४}{७२ + ३२\cdot२६}$$

$$= \frac{४६३६६६७ \times १४४}{१०४\cdot२६}$$

$$= ६८२२५२४$$

$$\text{फल} = \frac{१२ \times \text{पलभा} \times \text{अग्राज्या}}{७२ + \text{पलभा}^2}$$

$$= \frac{१२ \times ५\cdot६८ \times ६८५}{१०४\cdot२६}$$

$$= ६४४$$

$$\therefore \text{कोणशङ्कु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^2} \pm \text{फल}$$

$$= \sqrt{६८२२५२४ + ४१४७३६} \pm ६४४$$

$$= \sqrt{७२३७२६०} \pm ६४४$$

$$= २६९० \pm ६४४$$

$$= ३३३४' \text{ या } २०४६'$$

इसलिए जब क्रान्ति उत्तर होगी तब कोणशंकु ३३३४' और जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब कोणशंकु २०४६' होगी।

यह बतलाया गया है कि कोणशंकु नतांशकी कोटिज्या अथवा उन्नतांशकी ज्याको कहते हैं इसलिए यदि नतांश या उन्नतांश जानना हो तो कोणशंकु का धनु बनाना होगा।

यहाँ, कोणशंकु = उन्नतांशकी ज्या = ३३३४'

$$\therefore \text{उन्नतांश} = ७५^\circ५७'$$

$$\therefore \text{नतांश} = ९०^\circ - ७५^\circ५७' = १४^\circ३'$$

जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब

$$\text{उन्नतांशकी ज्या} = २०४६'$$

$$\therefore \text{उन्नतांश} = ३६^\circ३२'$$

$$\text{और नतांश} = ९०^\circ - ३६^\circ३२' = ५३^\circ२८'$$

जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होगी तब,

$$\text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{कोणशंकु}^2}$$

$$= \sqrt{३४३८^2 - ३३३४^2}$$

$$= \sqrt{(३४३८ + ३३३४)(३४३८ - ३३३४)}$$

$$= \sqrt{६७७२ \times १०४}$$

$$= ८३९ \text{ कला}$$

$$\text{परन्तु दृग्ज्या} = \text{नतांशकी ज्या}$$

$$= ८३९'$$

$$\therefore \text{नतांश} = १३^\circ५९'$$

दोनों उत्तरोंमें ४ कलाका अंतर है क्योंकि वर्गमूल निकालनेमें दशमलवके अंक छोड़ दिये गये हैं।

यदि यह जानना हो कि कोणों (विदिशाओं) पर शंकु-की छाया या छायाकार्ण क्या होंगे तो ३३ वें श्लोकसे काम लेना होगा। जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होगी तब

$$\text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$= \frac{८३९ \times १२}{३३३४}$$

$$= ३\cdot०२ \text{ अंगुल}$$

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$= \frac{३४३८ \times १२}{३३३४}$$

$$= १२\text{'}३७ \text{ अंगुल}$$

नवीन रीतिसे कोणशंकुका मान जाननेमें कोई विशेष सुबिधा नहीं है। फिर भी उदाहरण दे देना अच्छा होगा। यह पहले सिद्ध हो चुका है कि जब सूर्य ईशान या वायव्य कोणमें होगा तब अग्राकी ज्या $+\sqrt{\frac{१}{२}}$ और जब अग्नि या नैऋत्य कोणमें होगा तब अग्राकी ज्या $-\sqrt{\frac{१}{२}}$ होगी (देखो चित्र ५७,५८) इसलिए २२—२४ श्लोकोंके समीकरण (ग) के अनुसार,

$$\pm\sqrt{\frac{१}{२}} = \frac{+\text{ज्या } १५^\circ - \text{कोज्या (न)} \times \text{ज्या } २१^\circ २५'}{\text{ज्या (न)} \times \text{कोज्या } २१^\circ २५'} \dagger$$

$$\text{या} \quad \pm\text{'}७०७१ = \frac{\pm\text{'}२५८८ - \text{कोज्या (न)} \times \text{'}४२६२}{\text{ज्या (न)} \times \text{'}६०३२}$$

$$\therefore \pm\text{'}७०७१ \times \text{'}६०३२ \times \text{ज्या (न)}$$
$$= \pm\text{'}२५८८ - \text{'}४२६२ \times \text{कोज्या (न)}$$

दोनों पक्षोंका वर्ग करनेपर,

$$\text{'}४०७६\text{ज्या}^२ \text{(न)} = \text{'}०६७० \mp \text{'}२२२२\text{कोज्या (न)} + \text{'}१८४२ \text{ कोज्या}^२ \text{(न)}$$

$$\text{या } \text{'}४०७६ (१ - \text{कोज्या}^२ \text{ न})$$
$$= \text{'}०६७० \pm \text{'}२२२२ \text{ कोज्या न} + \text{'}१८४२ \text{ कोज्या}^२ \text{ न}$$

$$\therefore \text{'}५६२१ \text{ कोज्या}^२ \text{ न} \pm \text{'}२२२२ \text{ कोज्या न} - \text{'}३४०६ = ०$$

$$\therefore \text{कोज्या न} = \frac{\pm\text{'}२२२२ \pm \sqrt{(\text{'}२२२२)^२ + ४ \times \text{'}५६२१ \times \text{'}३४०६}}{२ \times \text{'}५६२१}$$

$$= \frac{\pm\text{'}२२२२ \pm \text{'}६२५६}{१\text{'}१८४२}$$

$$= \frac{१\text{'}१४७८}{१\text{'}१८४२} \text{ या } \frac{\text{'}७०३४}{१\text{'}१८४२}$$

$$\therefore \text{उन्नतांशकी ज्या} = \text{'}९६९३ \text{ या } \text{'}५९४०$$

$$\therefore \text{उन्नतांश} = ७५^\circ ४६' \text{ या } ३६^\circ २७'$$

इससे दृग्ज्या, छाया, इत्यादि भी जानी जा सकती हैं।

इष्टकाल, अक्षांश और क्रान्ति जानकर उन्नतांश, नतांश, छाया इत्यादि जाननेकी रीति—

त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता।
अन्त्यानतोत्क्रमज्योनास्वाहोरात्रार्धसंगुणा ॥३४॥
त्रिज्याभक्ता भवेच्छेदो लम्बज्याघ्नोऽथभाजितः
त्रिभज्यया भवेच्छंकुस्तद्वर्गं परिशोधयेत्।
त्रिज्यावर्गात्पदं दृग्ज्या छायाकर्णौ तु पूर्ववत् ॥३५॥

अनुवाद—(३४) यदि सूर्य उत्तर गोलमें हो तो चरज्याको त्रिज्यामें जोड़ने और यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो तो घटाने से अन्त्या आती है। इससे नत कालकी उत्क्रमज्याको घटाकर शेषको द्युज्यासे गुणा कर दो (३५) और त्रिज्यासे भाग दे दो तो छेद आता है। इसको लम्बज्यासे गुणा करके त्रिज्यासे भाग दे देनेपर शंकु (इष्टकालकी उन्नतांशकी ज्या) आता है। शंकुके वर्गको त्रिज्याके वर्गसे घटाकर शेषका वर्गमूल निकालनेपर जो आता है वह दृग्ज्या (इष्टकालकी नतांश ज्या) है जिनसे छाया और छायाकर्ण पहलेकी तरह जान लेना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकों का सार यह है:—

(१) $\text{अन्त्या} = \text{त्रिज्या} \pm \text{चरज्या}$

---

† १५° क्रान्तिकी ज्या धनात्मक तब होगी जब क्रान्ति उत्तर होगी अर्थात् जब सूर्य उत्तर गोलमें होगा। परंतु जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब इसकी ज्या ऋणात्मक होगी।

$$(२)\ \text{छेद} = \frac{(\text{अन्त्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$(३)\ \text{शंकु} = \frac{\text{छेद} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$(४)\ \text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{शंकु}^२}$$

समीकरण (३) में समीकरण (२) और (१) के मान उत्थापन करनेसे,

$$\text{शंकु} = \frac{(\text{अन्त्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{(\text{त्रिज्या} - \text{चरज्या} \pm \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{(\text{त्रिज्या} - \text{नतोत्क्रमज्या} \pm \text{चरज्या})\ \text{द्युज्या} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}^२}$$

$$= \frac{(\text{नतकोटिज्या} \pm \text{चरज्या})\ \text{द्युज्या} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}^२} \dagger$$

$$= \frac{(\text{नतकोटिज्या} \pm \text{चरज्या}) \times \text{क्रान्तिकोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}^२} \times \text{अक्षांशकोटिज्या} \ldots\ldots\ (\text{क}) *$$

यह बात गोलीय त्रिकोणमितिसे सहज ही सिद्ध हो सकती है। यहां कुछ नये शब्द आये हैं इसलिए पहले उनका समझाना आवश्यक है:—

अन्त्या—पृष्ठ ३०० के चित्र ४२ में चरज्या चाश और चश है और विश त्रिज्या है। इसलिए चावि और चवि क्रमसे अन्त्या हुए।

नतकाल—किसी समयसे जितनी देरमें कोई ग्रह या तारा याम्योत्तर वृत्तपर आता है उसको उह ग्रह या तारेका पूर्व नतकाल कहते हैं और उस तारे या ग्रहके याम्योत्तरवृत्त लांघनेके बाद जितना समय बीता रहता है उसको उस तारे या ग्रहका पश्चिम नतकाल कहते हैं। किसी ग्रह या तारेका नतकाल hour angle और क्रान्ति दी हुई हो तो उसका स्थान सहज ही निश्चय किया जा सकता है। नतकालका परिमाण उस कोणसे जाना जाता है जो ग्रह या तारेके ध्रुवप्रोतवृत्त और याम्योत्तरवृत्तके बीचमें होता है। ध्रुवप्रोतवृत्त विषुद्वृत्तसे समकोण बनाता है, इसलिए नतकाल विषुद्वृत्तके उस धनुसे भी जो तारे या ग्रहके ध्रुवप्रोतवृत्त और याम्योत्तरवृत्तके बीचमें होता है, जाना जा सकता है। चित्र ५७ में ख ध र, ख ध स और ख ध रा कोण सूर्य के नतकाल हैं जबकि सूर्य क्रमसे र, स और रा विन्दुओंपर रहता है। यह स्थान याम्योत्तरवृत्तके पूर्व हैं इसलिए यह सूर्यके पूर्वनतकाल हैं। जब ग्रह या तारा याम्योत्तरवृत्त पर होता है तब उसका नतकाल शून्य होता है। नतकाल साधारणतः अंशोंमें लिखा जाता है। यदि किसी तारे या ग्रहका पूर्व नतकाल १५° हो तो समझना चाहिए कि वह १५×४ मिनट अथवा १ घंटे (नाक्षत्र) में याम्योत्तरवृत्तपर आवेगा।

उन्नतकाल—दिनमानके आधेसे नतकाल घटानेपर जो आता है वह उन्नतकाल कहलाता है। पूर्व उन्नतकाल ग्रह या तारेके उदयकालसे इष्टकालतकके समयको कहते हैं और पश्चिम उन्नतकाल इष्टकालसे अस्त होनेतकके समयको कहते हैं। पश्चिम उन्नतकाल उस समय होता है जब ग्रह या तारा याम्योत्तरवृत्तके पश्चिम होता है। उन्नतकाल या इसके संक्षिप्त रूप उन्नतको उन्नतांशसे भिन्न समझना चाहिए जैसे नतको नतांशसे।

३४-३५ श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि यदि किसी

† देखो चित्र २४ और पृष्ठ १७६-१७७

* देखो पृष्ठ ३०४

ग्रह या तारेका नतकाल, अक्षांश और क्रान्ति ज्ञात हो तो उसका उन्नतांश, नतांश इत्यादि कैसे जान सकते हैं। इसकी उपपत्ति गोलीय त्रिकोण मितिके आधारपर यह है। देखो चित्र ५७।

मान लो सूर्य र पर है। गोलीय त्रिभुज ध ख र में कोज्या ∠ख ध र

$$= \frac{\text{कोज्या (ख र)} - \text{कोज्या (ध ख)} \times \text{कोज्या (ध र)}}{\text{ज्या (ध ख)} \times \text{ज्या (ध र)}}$$

∴ कोज्या (नतकाल)

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)} - \text{कोज्या (लम्बांश)} \times \text{कोज्या (ध्रुवांतर)}}{\text{ज्या (लम्बांश)} \times \text{ज्या (ध्रुवांतर)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)} - \text{ज्या (अक्षांश)} \times \text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}} \ldots\ldots(१)$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या अक्षांश} \times \text{कोज्या क्रान्ति}} - \frac{\text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}} - \text{स्परे (अक्षांश)} \times \text{स्परे (क्रान्ति)} \ldots(२)$$

और चरज्या* = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्श रेखा...(३)

समीकरण (२) और (३) के समान पक्षोंको जोड़नेसे,

कोज्या (नतकाल) + चरज्या

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

अथवा नतकोटिज्या + चरज्या

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{अक्षांश कोटिज्या} \times \text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

∴ नतांश कोटिज्या

= (नतकोटिज्या + चरज्या) × अक्ष कोटिज्या × क्रान्ति कोटिज्या............(ख)

नतांश कोटिज्याको भी शंकु कहते हैं। इस सूत्रसे शंकुका मान आज कलकी रीतिके अनुसार दशमलव भिन्नमें होगा। यदि भारतीय रीतिके अनुसार लिखना हो तो इसको त्रिज्या (३४३८) के वर्गसे भाग देना होगा।

यह सूत्र उस समय काम देगा जब कि सूर्य उत्तर गोलमें हो। यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो तो चरज्या ऋणात्मक होगी (देखो चित्र ४२ की व्याख्या)। ऐसी दशामें ध्रुवांतर धर ९०° से अधिक होगा जिससे कोज्या (धर) ऋणात्मक होगी। इसलिए समीकरण (२) के दाहनेपक्षका—स्परे (अक्षांश) × स्परे (क्रान्ति) भी धनात्मक होगा जिससे समीकरण (ख) में चरज्या ऋणात्मक रहेगी परन्तु और कहीं अंतर न पड़ेगा। इसलिए समीकरण (ख) का व्यापक रूप यह होगा—

नतांश कोटिज्या

= (नत कोटिज्या ± चरज्या) × अक्षकोटिज्या × क्रान्ति-कोटिज्या.....(ग)

जिसमें धन चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्य या ग्रहकी क्रान्ति उत्तर होगी और ऋण चिह्न उस समय जब क्रान्ति दक्षिण होगी।

नतांश कोटिज्या अथवा शंकुका मान जान लेनेपर दृग्ज्या, छाया, छायाकर्ण इत्यादि पहलेकी ही तरह जाने जा सकते हैं इसलिए विस्तारकी आवश्यकता नहीं है।

उदाहरण—यदि सूर्यकी क्रान्ति १५° उत्तर या दक्षिण हो

* देखो पृष्ठ ३०६

तो प्रयागमें जिस समय सूर्यका पूर्वनतकाल ३ घंटा ३० मिनट होगा उस समय सूर्यका नतांश क्या होगा ?

सूर्य सिद्धान्त की रीतिसे—

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{१२ \times \text{क्रान्तिकोटिज्या}}$$ [देखो पृष्ठ ३०५

$$= \frac{\text{ज्या } १५^\circ \times ५\text{·}७ \times ३४३८}{१२ \times \text{कोज्या } १५^\circ}$$

$$= \frac{८९० \times ५\text{·}७ \times ३४३८}{१२ \times ३३२१}$$

$$= ४३८$$

परन्तु अन्त्या = त्रिज्या $\pm$ चरज्या

$\therefore$ अन्त्या = ३४३८ $\pm$ ४३८

= ३८७६ या ३०००

नतकाल = ३ घंटा ३० मिनट = ५२°३०′

$\therefore$ नतोत्क्रम ज्या = उज्या ५२°३०′

= १३४५

$$\therefore \text{ छेद} = \frac{(३८७६-१३४५) \times ३३२१}{३४३८} \text{ या } \frac{(३०००-१३४५) \times ३३२१}{३४३८}$$

$$= \frac{२५३१ \times ३३२१}{३४३८} \text{ अथवा } \frac{१६५५ \times ३३२१}{३४३८}$$

$$\therefore \text{ परन्तु शंकु} = \frac{\text{छेद} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{२५३१ \times ३३२१ \times ३१०६}{३४३८ \times ३४३८} \text{ अथवा } \frac{१६५५ \times ३३२१ \times ३१०६}{३४३८ \times ३४३८}$$

= २२०६ अथवा १४४४

परंतु यहां शकु उन्नतांशकी ज्याके लिए प्रयुक्त है। इसलिए जब सूर्य उत्तर गोलमें होगा तब इष्टकालमें उन्नतांशकी ज्या २२०६ कला और जब सूर्य दक्षिण गोलमें होगा तब उन्नतांशकी ज्या १४४४ कला होगा। इसलिए पहली दशामें—

उन्नतांश = ४०° और नतांश = ९०°–४०° = ५०°

और दूसरी दशामें उन्नतांश = २४° ५२′ और नतांश = ६५°८

$$\text{पहली दशामें दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{शंकु}^२}$$

$$= \sqrt{११८१९८४४ - २२०६^२}$$

$$= \sqrt{११८१९८४४ - ४८७६६८१}$$

$$= \sqrt{६६४०१६३}$$

$$= २६३४$$

$$\therefore \text{ पहली दशामें छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$$

$$= \frac{२६३४ \times १२}{२२०६}$$

= १४·३१ अंगुल

$$\text{दूसरी दशा में दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - १४४४^२}$$

$$= \sqrt{११८१९८४४ - २०८५१३६}$$

$$= ३१२०$$

$$\therefore \text{ दूसरी दशामें छाया} = \frac{३१२० \times १२}{१४४४}$$

= २५·९३ अंगुल

नवीन रीति से—

समीकरण (ख) के आधार पर,

नतांश कोटिज्या = (नतकोटिज्या) $\pm$ चरज्या × अक्षकोटिज्या × क्रान्तिकोटिज्या

परंतु चरज्या = स्परे क्रान्ति × स्परे अक्षांश [देखो पृष्ठ ३०६

= स्परे १५° × स्परे २५°२५′

= ·२६७६ × ·४७५२

= ·१२७३

∴ नतांश कोटिज्या

= (कोज्या ५२°३०′ ± ·१२७३) × कोज्या २५°५′ × कोटिज्या १५°

= (·६०८८ + १२७३) × ·६०३२ × ·६६५६

= ·७३६१ × ·६०३२ × ·६६५६ या ·४८१५ × ·६०३२ × ·६६५६

= ·६४२२ या ·४२०१

∴ जब क्रान्ति उत्तर होगी तब नताँश ५०°३′ होगा, और जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब नतांश ६५°६′ होगा ।

पहली दशामें १२ अँगुल शंकुकी छाया = १२ स्परे ५०°३′

= १२ × १·१९५०

= १४·३२८ अंगुल

दूसरी दशामें, छाया = १२ × स्परे ६५°६′

= १२ × २·१५६४

= २५·८७३ अंगुल

किसी समय की छाया नापकर नतकाल जानना—

अभीष्टच्छाययाभ्यस्तात्रिज्यातत्कर्णभाजिता ।

दृग्ज्या तद्वर्गसंशुद्धात्त्रिज्यावर्गाच्चयत्पदम् ॥३६॥

शंकुः सांत्रभजीवाघ्नः स्वलम्बज्या विभाजितः

छेदः स त्रिज्ययाभ्यस्तः स्वाहोरात्रार्धं भाजितः ॥३७॥

उन्नतज्यातया हाना स्वान्त्याशेषस्य कार्मुकम् ।

उत्क्रमज्याभिरेवंस्युः प्राक्पश्चार्धनतासवः ॥३८॥

अनुवाद—(३६) इष्टकालकी छायाको त्रिज्यासे गुणा करके छायाकर्णसे भाग देनेपर दृग्ज्या आती है । त्रिज्या-के वर्गसे दृग्ज्याके वर्गको घटा कर वर्गमूल निकालनेसे (३७) शंकु प्राप्त होता है । शंकुको त्रिज्यासे गुणा करके इष्ट स्थानकी लम्बज्यासे भाग देनेपर छेद आता है । छेदको त्रिज्यासे गुणा करके द्युज्यासे भाग देनेपर (३८) उन्नतज्या आती है । इसको अन्त्यासे घटानेपर जो शेष बचता हो उसको उत्क्रमज्या समझकर उत्क्रमज्या पिंडसे धनु बनावे तो पूर्व या पच्छिम नतकाल ज्ञात होता है ।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकोंका साराँश यह हैः—

(१) $\frac{\text{छाया × त्रिज्या}}{\text{छाया कर्ण}} = \text{दृग्ज्या}$

(२) $\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{दृग्ज्या}^2} = \text{शंकु}$

(३) $\frac{\text{शंकु × त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \text{छेद}$

(४) $\frac{\text{छेद × त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{उन्नतज्या}$

(५) अन्त्या–उन्नतज्या = नतोत्क्रमज्या

इन तीन श्लोकोंके नियम ३४-३५ श्लोकोंमें लिखे हुए नियमके विलोम हैं इस लिए इनकी उपपत्ति भी वही है । हाँ, यहाँ छायासे दृग्ज्या अर्थात् नतांशज्याका मान १३ वें श्लोकमें बतलाये गये नियमकी तरह जानना चाहिए । यह पहले ही बतलाया गया है कि शंकु और छायाकर्णके बीच-का कोण नताँश होता है इसलिए छायाको छायाकर्णसे भाग देनेपर दशमलव भिन्नमें तथा इस फलको त्रिज्यासे गुणा करनेपर कलाओंमें नतांशज्याका मान निकल आवेगा ।

इस रीतिके सम्बन्धमें पंडित इन्द्रनारायण जी द्विवेदी लिखते हैं, यद्यपि ३४-३५ श्लोकोंके विपरीत गणनासे ही

ऊपरके श्लोकों में नतकाल बनानेकी विधि कही गयी है तथापि इसी रीतिसे नतकालमें कुछ अंतर आ जाता है इसीसे भास्कराचार्यने इसे सुधार दिया है देखो सिद्धान्त शिरोमणि ।"*

परन्तु मेरी समझमें यह अंतर इसलिए नहीं पड़ता कि नियम अशुद्ध है वरन् इसका कारण छायाकी नापकी स्थूलता है। यदि छाया दो तीन दशमलव स्थानतक ठीक ठीक नापी जाय और गुणा भागमें भी स्थूलता न आने पावे तो इस रीति से नतकाल जाननेमें कोई अशुद्धि नहीं हो सकती ।

उदाहरण १—यदि प्रयागमें किसी समय छाया १४·३३ अंगुल हो और सूर्यकी क्रान्ति १५° उत्तर हो तो पूर्व या पच्छिम नतकाल बतलाओ और यह भी बतलाओ कि घड़ीमें क्या बजा है ।

सिद्धान्तीय रीति—

छाया = १४·३३ अंगुल

$\therefore$ छाया कर्ण $= \sqrt{१२^२ + (१४·३३)^२} =$ १८·६६ अंगुल

$\therefore$ दृग्ज्या $= \frac{१४·३३ \times ३४३८}{१८·६६} =$ २६३६ कला

$\therefore$ शंकु $= \sqrt{३४·३८^२ — २६·३६^२} =$ २२०७ कला

$\therefore$ छेद $= \frac{२२०७ \times ३४३८}{३१०६}$

और उन्नतज्या $= \frac{२२०७ \times ३४३८}{३१०६} \times \frac{३४३८}{३३२१} =$ २२ ६ल ाक५

अन्त्या = ३८७६ (पहिलेकी तरह)

$\therefore$ नतोत्क्रमज्या = ३८७६–२५२९ = १३४७ कला

$\therefore$ नतकाल = १३४७ कलाका (उत्क्रमज्याके अनुसार) धनु

= ५२°३२′ [देखो पृष्ठ १७१

= ३ घंटा ३० मिनट ८ सेकंड

यदि नतकाल पूर्व हो तो १२ घंटेमेंसे घटानेपर और पच्छिम हो तो १२ घंटेमें जोड़नेपर धूप घड़ीका समय ज्ञात होगा ।

$\therefore$ यदि पूर्व नतकाल हो तो धूप-घड़ीमें

१२ घंटा–२ घंटा ३० मि० ८ सेकंड = ८ घंटा २९ मिनट ५२ सेकंड होगा ।

और यदि पच्छिम नतकाल हो तो धूप-घड़ीमें मध्याह्नके उपरान्त ३ घंटा ३० मिनट ८ सेकंड बीता है अर्थात् ३ बजकर ३० मिनट और ८ सेकंड हुआ है ।

यह ध्यान रखना चाहिए कि घड़ीका यह समय शुद्ध स्थानीय काल है । इसको रेलवेके समयसे मिलानेके लिए काल समीकरण संस्कार तथा देशान्तर संस्कार करना पड़ेगा जिसकी चर्चा इसी अध्यायके अंतमें की जायगी ।

नवीन रीति—

स्पर्श (नतांश) $= \frac{छाया}{१२} = \frac{१४·३३}{१२} =$ १·१९४१

$\therefore$ नतांश = ५०°३′

$\therefore$ शंकु = नतांश कोटिज्या = कोज्या ५०°३′ = ·६४२१

समीकरण (ख) में सिद्ध किया गया है कि

नतांश कोटिज्या

= (नत कोटिज्या + चरज्या) × अक्षकोटिज्या × क्रान्ति कोटिज्या

$\therefore$ ·६४२१ = (नत कोटिज्या + ·१२७३) × ·९०३२ × ·९६५९

= (नत कोटिज्या + ·१२७३) × ·८७२४

*देखो हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे प्रकाशित सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ ६६···

$$\therefore \text{नत कोटिज्या} + \text{'१२७३} = \frac{\text{'६४२१}}{\text{'८७२४}} = \text{'७३६०}$$

$$\therefore \text{नत कोटिज्या} = \text{'७३६०} - \text{'१२७३} = \text{'६०८७}$$

$$\therefore \text{नतकाल} = ५२^\circ ३०'$$

$$= \text{३ घंटा ३० मिनट}$$

इसलिए यदि पूर्व नत है तो समय होगा ८ बज कर ३० मिनट और पश्चिम नत है तो साढ़े तीन बजा रहेगा।

नवीन रीतिसे नतकाल निकालनेमें और सरलता होगी यदि समीकरण (१) से सीधे ही काम लिया जाय। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

उदाहरण २—छाया = १४'३३ अंगुल और क्रान्ति = १५° उत्तर तो प्रयागमें नतकाल क्या है?

$$\text{स्परे (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{१४\text{'}३३}{१२} = १\text{'}१६४१$$

$$\therefore \text{नतांश} = ५०^\circ ३'$$

$$\therefore \text{कोज्या (नतकाल)}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } ५०^\circ ३' - \text{ज्या } २५^\circ २५' \times \text{ज्या } १५^\circ}{\text{कोज्या } २५^\circ २५' \times \text{कोज्या } १५^\circ}$$

$$= \frac{\text{'६४२१} - \text{'४२१२} \times \text{'२५८८}}{\text{'९०३२} \times \text{'९६५९}}$$

$$= \frac{\text{'६४२१} - \text{'११११}}{\text{'८७२४}}$$

$$= \frac{\text{'५३१०}}{\text{'८७२४}}$$

$$= \text{'६०८७}$$

$$\therefore \text{नतकाल} = ५२^\circ ३०' = \text{३ घंटा ३० मिनट}$$

उदाहरण ३—यदि छाया २५'६१३ अंगुल और सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति १५° हो तो नतकाल बतलाओ—

$$\text{स्परे नतांश} = \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{२५\text{'}६१३}{१२} = २\text{'}१५६४$$

$$\therefore \text{नतांश} = ६५^\circ ९'$$

यहां क्रान्ति दक्षिण है इसलिए ध्रुवाँतर ९०° से अधिक है और समीकरण (१) में कोज्या (ध्रुवाँतर) अथवा ज्या (क्रान्ति) ऋणात्मक होगी।

इसलिए कोज्या (नतकाल)

$$= \frac{\text{कोज्या नतांश} + \text{ज्या (अक्षांश)} \times \text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } ६५^\circ ९' + \text{ज्या } ५२^\circ २५' \times \text{ज्या } १५^\circ}{\text{कोज्या } २५^\circ २५' \times \text{कोज्या } १५^\circ}$$

$$= \frac{\text{'४२०२} + \text{'४२१२} \times \text{'२५८८}}{\text{'९०३२} \times \text{'९६५९}}$$

$$\frac{\text{'४२०२} + \text{'१११?}}{\text{'८७०४}} = \frac{\text{'५३१३}}{\text{'८७२४}} = \text{'६०९०}$$

$$\therefore \text{नतकाल} = ५२^\circ २९' = \text{३ घंटा २९ मिनट ५६ सेकंड}$$

किसी समयकी कर्णाग्रा जानकर सूर्य का सायन भोग निकालना—

इष्टाग्राघ्नी तु लम्बज्या स्वकर्णाङ्गुलभाजिता।
क्रान्तिज्या सात्रिजीवाघ्नी परमापक्रमोद्धृता ॥४०॥
तच्चापं भादिकं क्षेत्रं पदैस्तत्र भवो रविः।

अनुवाद—(४०) इष्टकालकी अग्रा अर्थात् कर्णाग्राको लम्बज्यासे गुणा करके इष्टकालके छाया कर्णसे भाग दे दो तो भागफल सूर्यकी क्रान्तिज्या होगी। इसको त्रिज्यासे गुणा करके परमापक्रमज्यासे भाग देकर भागफलका धनु बनाओ। फिर सूर्य जिस राशिमें हो उसका पद बनाकर सायन भोगका निश्चय (१७-१९) श्लोकोंके अनुसार करो।

विज्ञान भाष्य—इसका सारांश यह है:—

$$\frac{\text{कर्णाग्रा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{छायाकर्ण}} = \text{क्रान्तिज्या}$$

$\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{परमापक्रमज्या}}$ = सूर्यका सायन भोगांश

पहले नियममें इष्टकालकी अग्रा (अर्णाग्रा अथवा कर्ण-वृत्ताग्रा) से सूर्यकी क्रान्ति जाननेकी रीति बतलायी गयी है जो २७ वें और २२ वें नियमोंका विलोम रूप है [देखो २२ वें नियमका समीकरण (४)]

दूसरा नियम जिससे क्रान्ति जानकर सूर्यका सायन भोगांश निकाला जाता है इसी अध्याय के १७-१६ श्लोकोंमें तथा स्पष्टाधिकार के २८ वें श्लोकोंमें आगया है। इसलिए यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

छाया की नोक जिस मार्ग पर चलती है वह खींचना—

इष्टेह्नि मध्ये प्राक्पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे ॥ ४१ ॥
मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक् सूत्रेण भाभ्रमः ।

अनुवाद—जिस दिन शंकुकी छायाकी नोकका मार्ग खींचना हो उस दिन मध्याह्नके पहले और पीछे छायाकी नोकके तीन विन्दु निश्चित करो। पहले और दूसरे तथा दूसरे और तीसरे विन्दुओंसे तिमि बनाओ। प्रत्येक तिमि-के सामान्य विंदुओंपर जाती हुई रेखाओंको इतना बढ़ाओ कि वे मिल जाँय। जिस विन्दुपर मिलें उसको केन्द्र मान-कर छायाकी नोकके तीनों विन्दुओंपर जाती हुई एक परिधि खींचो। बस यही परिधिखंड छायाकी नोकका मार्ग भाभ्रम रेखा उस दिन होगा।

विज्ञान भाष्य—यथार्थमें छायाकी नोकका मार्ग वृत्ता-कार नहीं होता वरन् अतिपरवलय (hyperbola) के आकार-का होता है। इसलिए यह नियम अशुद्ध है जिसको भास्करा-चार्य, रंगनाथ जी इत्यादि सभीने स्वीकार किया है। इस-लिए इसपर बहुत विचार करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

लंका और इष्ट स्थानोंमें सायन मेषादि राशियोंके उदयकाल जाननेकी रीति—

त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः स्वाहोरात्रार्धभाजिताः ॥४१॥
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तचापानि पृथक् पृथक् ।
स्वाधोऽधः परिशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ॥४२॥
खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः शरत्र्यङ्क हिमांशवः ।
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ॥ ४३ ॥
व्यस्ताव्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः ।
उत्क्रमेणषडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः ॥ ४४ ॥

अनुवाद—(४१, ४२) एक, दो और तीन राशियोंकी ज्याओं-को क्रमसे तीन राशियोंकी द्युज्यासे गुणा कर दो और गुणन-फलोंको क्रमसे एक, दो और तीन राशियोंके अहोरात्रार्धों (द्युज्याओं) से भाग दे दो, भजनफलोंके धनु बनाकर अलग अलग रखो। पहला लंकामें मेष राशिका उदयासु है, पहले-को दूसरेसे घटानेपर जो शेष आता है वह लंकामें वृष राशिका उदयासु है और दूसरेको तीसरेसे घटानेपर जो शेष होता है वह लंकामें मिथुन राशिका उदयासु है। (४३) इनके मान क्रमानुसार १६७०, १७९५ और १९३५ असु अथवा प्राण हैं। इनसे इष्ट स्थानके अपने अपने चरखण्ड घटानेपर इष्ट स्थान के मेष, वृष और मिथुन राशियोंके उदयासु जाने जाते हैं। (४४) यही उलटे क्रमसे कर्कादि तीन राशियोंके लंकामें उद-यासु हैं। इन्हींमें उलटे क्रमसे अपने अपने चरखंडोंको जोड़नेसे इष्ट स्थानके कर्क, सिंह और कन्याके उदयासु होंगे। यही ६ उदयासु उलटे क्रमसे तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीनके उदयासु हैं।

विज्ञान भाष्य—सायन मेष अर्थात् वसंत संपात विन्दु क्षि-तिजके पूर्व विन्दुपर जिस क्षण आता है उस समयसे सायन

मेष राशिका उदय होने लगता है और जिस क्षणतक वसंत सम्पातसे क्रान्तिवृत्तका ३० अंश क्षितिजके ऊपर नहीं आ जाता उस समयतक सायन मेष राशिका उदय होता रहता है। जितने समयमें वसंत सम्पात विन्दुसे क्रान्तिवृत्तका ३० अंश उदय होता है उसको सायन मेष राशिका उदयकाल कहते हैं। यह सूक्ष्मताके लिए असुओंमें प्रकट किया जाता है। इसीलिए इस समयको सायन मेषराशिका उदयासु कहते हैं। इसके पश्चात् क्रान्तिवृत्तका अगला ३० अंश जितने समयमें उदय होता है उसको सायन वृष राशिका उदयकाल या उदयासु कहते हैं। इसी प्रकार अन्य सायन राशियोंके उदयासुओंके बारेमें समझना चाहिए।

किसी स्थानमें कौन राशि कितने समयमें उदय होती है यह जाननेके लिए पहले यह जानना सुगम होता है कि वह राशि विषुवत् रेखा (निरक्षदेश equator) पर कितने समय में उदय होती है। जब यह ज्ञात हो गया तब अपने स्थानका उदयकाल जाननेके लिए निरक्षदेशके उदयकालमें कुछ संस्कार करना पड़ता है। हमारे ज्योतिष सिद्धान्तमें विषुवत् रेखा और उज्जैनको जाती हुई देशान्तर रेखाके सामान्य विन्दुपर लंका स्थित मानी गयी है। इसलिए निरक्षदेशके उदयासुको लंकाके उदयासु कहा गया है। लंकामें मेष, वृष और मिथुन राशियोंके उदयासु जाननेका नियम ४१ श्लोकके उत्तरार्ध और ४२वें श्लोकमें दिया हुआ है जिसकी उपपत्ति चित्र ५८ से समझमें आवेगी।

पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण जितने समयमें विषुवद्वृत्त का व पू भाग क्षितिजके ऊपर आता है उतने ही समयमें क्रान्तिवृत्तका व का भाग भी क्षितिजके ऊपर आता है। इसलिए व का के उदय होनेमें उतना ही समय लगता है जितना पूव के उदय होनेमें लगता है। परन्तु पूरे विषुवद्वृत्त (३६०°) के उदय होनेके समयको एक नाक्षत्र दिन* कहते हैं

चित्र ५८
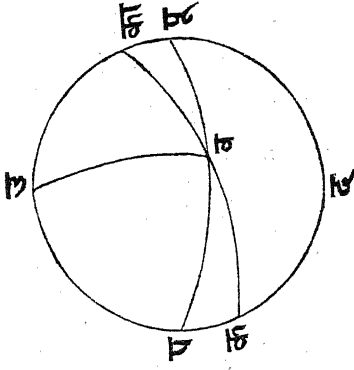
उ, प, द, पू—लंकाके क्षितिजके क्रमसे उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व विन्दु।

प व पू—विषुवद्वृत्त जो लंकामें सममण्डल भी होता है।

क व का—क्रान्तिवृत्त।

व—वसन्त सम्पात अथवा सायन मेषराशिका आदि विन्दु।

उ—उत्तरी ध्रुवका भी स्थान है।

---

* पृष्ठ ११ पर बतलाया गया है कि किसी तारेके उदय होनेके समयसे उसके फिर उदयतकके समयको **नाक्षत्र अहोरात्र या नाक्षत्र दिन** कहते हैं। इसलिए वसन्त सम्पात विन्दुके उदय होनेके समयसे उसके फिर उदय होनेतकके समयको भी नाक्षत्र दिन नहीं समझना चाहिए क्योंकि इतने समयमें यह विन्दु **अयन चलन** के कारण लगभग ०·१४ विकला पश्चिम हो जानेके कारण ०·००२ असु पहले उदय होगा। परन्तु यह भेद इतना सूक्ष्म है कि व्यवहारमें दोनों परिभाषाओंको एक ही समझ लेनेमें कोई हानि नहीं। आजकल पाश्चात्य ज्योतिषी नाक्षत्र दिनकी परिभाषा वही करते हैं जो पीछे दी हुई है।

जो २१६०० असुओंके समान होता है (पृष्ठ ९, १०); इसलिए विषुवद्वृत्तके ३६०° अथवा २१६०० कलाके उदय होनेमें जब २१६०० असुओंका समय बीतता है तब १ कलाके उदय होने-में १ असुका समय लगेगा। इसलिए यदि व पू का मान कलाओंमें ज्ञात हो जाय तो उतने ही असुओंमें व का का उदयकाल निकल आवेगा।

अब देखना है कि व का और व पू का परस्पर क्या सम्बन्ध है। व पू का एक समकोण गोलीय त्रिभुज है जिसका व पू का कोण समकोण है और पू व का कोण विषुवद्वृत्त और क्रान्ति वृत्तके बीचका कोण अर्थात् सूर्यकी परम क्रान्ति है। इस गोलीय त्रिभुजका भुज पू का क्रान्तिवृत्तके का बिन्दुकी क्रान्ति, भुज व का, का बिन्दुका सायन भोगांश और भुज व पू, का बिन्दुका विषुवांश है (देखो पृष्ठ २६४) इसलिए नेपियरके पहले नियमके आधारपर व का और व पू का सम्बन्ध जाना जा सकता है क्योंकि कोटिज्या ∠ का व पू = स्पर्श रेखा (व पू) × कोटि स्पर्शरेखा (व का)

$$\text{अथवा, विषुवांशकी स्पर्श रेखा} = \frac{\text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{सायन भोगांशकी कोटि स्पर्श रेखा}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } २३^\circ\ २७'}{\text{कोस्परे (सायन भोगांश)}}$$

परन्तु हमारे आचार्य स्पर्शरेखा या कोटि-स्पर्श-रेखाका व्यवहार नहीं करते थे इसलिए उन्होंने गोलीय त्रिभुज उ व का से इनका सम्बन्ध इस प्रकार निकाला था :—

$$\frac{\text{ज्या (उ का)}}{\text{ज्या(उ व का)}} = \frac{\text{ज्या (व का)}}{\text{ज्या (व उ का)}}$$

परन्तु कोण व उ का = धनु व पू

$$\therefore \frac{\text{ज्या (उ का)}}{\text{ज्या (उ व का)}} = \frac{\text{ज्या (व का)}}{\text{ज्या (व पू)}}$$

$$\therefore \text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या (व का)} \times \text{ज्या (उ व का)}}{\text{ज्या (उ का)}}$$

परन्तु व का = 'का' का सायन भोगांश

$$\angle \text{ उ व का} = \angle \text{ उ व पू} - \angle \text{ का व पू}$$

$$= ९०^\circ - \text{सूर्यकी परम क्रान्ति}$$

$$\therefore \text{ज्या (उ व का)} = \text{सूर्यकी परमक्रान्ति कोटिज्या}$$

$$= २४^\circ\text{की कोटिज्या(सिद्धान्तीय मतसे)}$$

$$= \text{तीन राशिकी द्युज्या (पृष्ठ ३०४)}$$

$$\text{ज्या (उ का)} = \text{ज्या (उ पू — का पू)}$$

$$= \text{ज्या (} ९०^\circ - \text{'का' की क्रान्ति)}$$

$$= \text{'का' की क्रान्ति कोटिज्या}$$

$$= \text{'का' की द्युज्या}$$

इसलिए, ज्या (व पू)

$$= \frac{\text{'का' के भोगांशकी ज्या} \times \text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{'का' की क्रान्ति कोटिज्या}} \quad \ldots\ldots (१)$$

इससे व पू का जो मान कलाओंमें आवेगा वही असुओंमें 'का' के भोगांशका उदयकाल होगा। इस साधारण समीकरणमें 'का' के भोगांश की जगह जो धनु रखा जायगा उसीसे लंकाके उदयासु ज्ञात हो जायंगे। यदि इसकी जगह ३०°, ६०° और ९०° रखे जायं तो ३०, ६० और ९० अंशोंके भोगांशोंके उदयासु अर्थात् सायन मेष राशि, सायन मेष और वृष राशि तथा सायन मेष, वृष और मिथुन राशियोंके उदयासु क्रमसे आ जायंगे। सायन मेष और वृष राशियोंके उदयासुओंमेंसे सायन मेष राशिके उदयासु घटाये जायं तो सायन वृष राशिके उदयासु और सायन मेष, वृष और मिथुन

राशियोंके उदयासुओंमेंसे सायन मेष और वृषके उदयासु घटाये जायं तो सायन मिथुनके उदयासु प्राप्त होंगे।

यदि समीकरण (१) में 'का' का भोगांश ९०° हो तो 'का' की क्रान्ति सूर्यकी परम क्रान्ति होगी। ऐसी दशामें 'का' के भोगांशकी ज्या का मान सिद्धान्तीय रीतिसे ३४३८ कला और आधुनिक रीतिसे १ होगा। इसलिये 'का' की क्रान्ति कोटिज्या परम क्रान्ति कोटिज्या के समान होनेसे समीकरणका दाहना पक्ष ३४३८ या १ के समान होगा जिससे व पू का मान भी ९०° के समान होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब व का ९०° होगा तब व पू भी ९०° होगा। इसलिये मेषादि तीन राशियोंके उदयासु ९० × ६० = ५४०० होंगे, जो १५ नाक्षत्र घड़ी या ६ नाक्षत्र घंटोंके समान हैं।

४२वें श्लोकके पूर्वार्धमें लंकामें मेष, वृष और मिथुन राशियोंके उदयासु क्रमसे १६७०, १७९५ और १९३५ दिये गये हैं जो समीकरण (१) से उपर्युक्त नियमके अनुसार प्राप्त हुए हैं जो नीचे लिखे उदाहरणसे स्पष्ट होंगे :—

उदाहरण—लंकामें वृष राशिके उदयासु क्या हैं ?

पहले मेष राशिके उदयासु जानना चाहिए। इसके लिए समीकरण (१) में 'का' का भोगांश ३० रखना होगा। इस समय 'का' सायन मेषका अन्तिम विन्दु और सायन वृषका आदि विन्दु है जिसकी क्रान्ति स्पष्टाधिकारके २८वें श्लोकसे जानी जा सकती है।

$$\text{'का' की क्रान्तिज्या} = \frac{\text{ज्या } ३०^\circ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= \frac{१७१९ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= ६९८ \text{ कला}$$

$\therefore$ का की क्रान्ति = ७०३ कला = ११°४३′

७०३ कलाकी उत्क्रमज्या = ७२ कला

$\therefore$ का की क्रान्ति कोटिज्या = ३४३८ — ७२ [देखो पृष्ठ २०४

= ३३६६ कला

परम क्रान्ति कोटिज्याका मान जाननेके लिए पहले परम क्रान्ति अर्थात् २४° की उत्क्रमज्या जानना चाहिए जो २९८ कला है।

इसलिए परम क्रान्ति कोटिज्या = ३४३८ — २९८ = ३१४० कला

$\therefore$ समीकरण (१) से

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ३०^\circ \times ३१४०}{३३६६}$$

$$= \frac{१७१९ \times ३१४०}{३३६६}$$

$$= १६०४'$$

$\therefore$ व पू = २७°५०′ = १६७०′

अर्थात् मेष राशिके उदयासु १६७० हैं।

अब सायन मेष और वृष राशियोंके सम्मिलित उदयासु जानना चाहिए।

इस समय 'का' का भोगांश ६०° और इसकी क्रान्ति सायन वृषके अंतिम विन्दुकी क्रान्ति होगी।

सायन वृषके अन्तकी क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ६०^\circ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= \frac{२९७८ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= १२१० \text{ कला}$$

नवीन रीतिसे २३°२७′ की ज्या = ०·३९७९ जिसे नवीन रीतिसे सूर्यकी परम क्रान्ति ज्या समझना चाहिए।

स्पष्टाधिकारके २८वें श्लोकके अनुसार सायन मेषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ३०° \times ·३९७९}{१} \quad [\text{ नवीन रीतिसे त्रिज्या} = १ \,]$$

$$= ·५ \times ·३९७९ = ·१९९०$$

∴ सायन मेषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति = ११°२९′

इसी प्रकार सायन वृषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ६०° \times ·३९७९}{१}$$

$$= ·८६६ \times ·३९७९ = ·३४४६$$

∴ सायन वृषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति = २०°९′·७

क्रान्तियोंके इन मानोंसे उदयासु जाननेके लिए समीकरण (१) में उचित संशोधन करनेपर, सायन मेषके लिए

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ३०° \times \text{कोज्या } २३°२७′}{\text{कोज्या } ११°२९′}$$

$$= \frac{·५ \times ·९१७५}{·९७९८}$$

$$= ·४६८२$$

$$\therefore \text{ व पू} = २७°५५′$$

∴ सायनमेषके उदयासु = १६७५

सायनमेष और वृषके सम्मिलित उदयासुके लिए

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ६०° \times \text{कोज्या } २३°२७′}{\text{कोज्या } २०°९·७}$$

∴ सायन वृषके अन्तकी क्रान्ति = २०°३८′

परन्तु २०°३८′ की उत्क्रमज्या = २२२′

∴ २०°३८′ की कोटिज्या = ३४३८ − २२२ = ३२१६′

∴ समीकरण (१) से,

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ६०° \times ३१५०}{३२१६}$$

$$= \frac{२९७८ \times ३१५०}{३२१६}$$

$$= २९०८ \text{ कला}$$

$$\therefore \text{ व पू} = ५७°४८′ = ३४६८′$$

∴ मेष और वृष राशियोंके सम्मिलित उदयासु	= ३४६८
परन्तु मेष राषिके उदयासु	= १६७०
∴ वृष राशिके उदयासु	= १७९८

श्लोकमें इसकी जगह १७९५ असु लिखे हैं।

यह ऊपर बतलाया ही जा चुका है कि सायन मेष, वृष और मिथुनके सम्मिलित उदयासु ५४०० हैं और यह सिद्ध हुआ है कि सायन मेष और वृषके सम्मिलित उदयासु ३४६८ हैं, इसलिए मिथुनके उदयासु इन दोनोंके अंतर अर्थात् १९३२ के समान है। श्लोकमें १९३५ दिया है। यह अंतर गणनाकी स्थूलताके कारण है।

अब यह सिद्ध हो गया है कि सूर्यकी परम क्रान्ति २४° नहीं है वरन् सं० १९८० वि० में २३°२६′५७″·३५ है और प्रतिवर्ष ०″·४६८ के लगभग घटती जाती है [देखो पृष्ठ ३९४—३९५]। इस प्रकार परम क्रान्तिमें १ कलाकी कमी प्रायः सवा सौ वर्षोंमें होती है। इसलिए विक्रमकी २१वीं शताब्दीके पहले ५० वर्षोंतक परम क्रान्तिको २३°२७′ मान कर सायन मेष इत्यादिके उदयासु जाननेमें पर्याप्त सूक्ष्मता होगी।

$$= \frac{\cdot ८६६ \times \cdot ६१७५}{\cdot ९३८७}$$

$$= \cdot ८४६४$$

$\therefore$ व पू $= ५७^\circ ४९'$

$\therefore$ सायनमेष और वृषके उदयासु $= ३४६९$

$\therefore$ सायन वृषके उदयासु $= ३४६९ - १६७५$

$= १७९४$

और मिथुनके उदयासु $= ५४०० - ३४६९$

$= १९३१$

नेपियरके पहले नियमके आधार पर सायनमेषके उदयासु इस समीकरणसे भी ज्ञात हो सकते हैं

$$\text{विषुवांशको स्पर्शरेखा} = \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्पर्श } ३०^\circ}$$

$$= \frac{\cdot ९१७५}{१\cdot ७३२१}$$

$$= \cdot ५२९७$$

$\therefore$ विषुवांश $= २७^\circ ५४'\cdot ५ = १६७४\cdot ५$

$\therefore$ सायनमेषके उदयासु $= १६७४\cdot ५$

सायनमेष और वृषके विषुवांशकी स्पर्शरेखा

$$= \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्पर्श } ६०^\circ}$$

$$= \frac{\cdot ९१७५}{\cdot ५७७४} = १\cdot ५८९०$$

$\therefore$ विषुवांश $= ५७^\circ ४९'$

$\therefore$ सायनवृषके उदयासु $= ३४६९ - १६७४\cdot ५$

$= १७९४\cdot ५$

परन्तु उन कोणों या धनुओंकी स्पर्शरेखाओंके मान सूक्ष्मतापूर्वक नहीं निकल सकते जो ६०° से अधिक हैं इसलिए यह रीति व्यापक नहीं है।

इस प्रकार लंकामें मेषादि तीन सायन राशियोंके उदयकाल यह हुए :—

सायन राशियां	प्राचीन रीतिसे			नवीन वेधोंके अनुसार		
	असुओंमें	पलोंमें	मिनटोंमें	असुओंमें	पलोंमें	मिनटोंमें
मेष	१६७०	२७८	१११	१६७५	२७९	१११·७
वृष	१७९५	२९९	१२०	१७९४	२९९	११९·६
मिथुन	१९३५	३२२	१२९	१९३१	३२२	१२८·७

अब यह देखना है कि विषुवत् रेखाके सिवा किसी अन्य स्थानमें जिसका अक्षांश अ है सायन मेषादि तीन राशियोंके उदयासु क्या हैं।
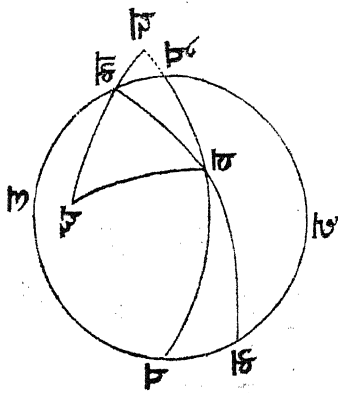
चित्र ६०

उ पू द प उस स्थानका क्षितिजवृत्त जिसका अक्षांश अ है

ध—उत्तरी आकाशीय ध्रुव

व—वसन्त सम्पात

प व पू—विषुवद्वृत्त

क व का—क्रान्तिवृत्त

पू च—का विन्दुका चर जो क्षितिजके नीचे है।

जिस समय वसन्त सम्पात विन्दु उदय होता रहता है उस समय वह ठीक पूर्व विन्दुपर होता है। इसलिए इस समय क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त दोनों पूर्व विन्दुपर रहते हैं। जितने समयमें क्रान्तिवृत्तका व का भाग क्षितिजके ऊपर आता है उतने ही समयमें विषुवद्वृत्तका व पू भाग क्षितिजके ऊपर आता है इसलिए व का के उदयासु व पू के उदयासुके समान है। क्रान्तिवृत्तके का विन्दुसे जो ठीक क्षितिज पर है ध का च ध्रुवप्रोतवृत्त खींचा गया है जो विषुवद्वृत्तसे क्षितिजके नीचे च विन्दुपर मिलता है। इसलिए विषुवद्वृत्तका व पू च भाग का विन्दुका विषुवांश है। लंकामें क्रान्तिवृत्तका का विन्दु और विषुवद्वृत्तका च विन्दु एक साथ क्षितिजपर आते हैं जैसा कि अभी बतलाया गया है। परन्तु अ अक्षांशपर पू च भाग क्षितिजके नीचे ही रहता है जब का विन्दु अ अक्षांशमें क्षितिजपर आ जाता है। इसलिए अ अक्षांशके स्थानमें व का के उदयासु व पू के उदयासुओंके समान हैं जो व पू च से पू च घटाने पर आता है। पृष्ठ ३००—३०७में बतलाया गया है कि का विन्दुका चर-काल है। इसलिए यह सिद्ध हुआ यही पू च कि लंकाके उदयासुओंमेंसे चरकाल घटानेपर इष्ट स्थानके उदयासु निकलेंगे। पृष्ठ ३०७में बतलाया गया है कि चरज्या = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा।

(१) जब व का = ३०°

तब का की क्रान्ति = ११°२९′

इसलिए प्रयागमें जिसका अक्षांश २५°२५′ है, का विन्दुकी चरज्या

= स्परे ११°२९′ × स्परे २५°२५′

= ·२०३२ × ·४७५२

= ·०९६६

∴ चरांश = ५°३३′

∴ का विन्दुके चरासु = ३३३

∴ प्रयागमें व का के उदयासु = १६७५ − ३३३ = १३४२

अर्थात् प्रयागमें सायनमेषके उदयासु = १३४२

(२) जब व का = ६०°

तब का की क्रान्ति = २०°९′·७ = २०°१०′

इसलिए तब प्रयागमें का की चरज्या

= स्परे २०°१०′ × स्परे २५°२५′

= ·३६७१ × ·४७५२

= ·१७४५

∴ का का चरांश = १०°३′

∴ का के चरासु = ६०३

∴ प्रयागमें व का के उदयासु = ३४६६ — ६०३

= २८६६

अर्थात् प्रयागमें सायनमेष और वृष राशियां २८६६ असुओंमें उदय होंगी। परन्तु सायनमेष राशि १३४२ असुओंमें उदय होती है। इसलिए सायन वृष राशि २८६६ — १३४२ = १५२४ असुओंमें उदय होगी।

(३) जब व का = ६०°

तब का की क्रान्ति = २३°२७′

∴ प्रयागमें का की चरज्या

= स्परे २३°२७′ × स्परे २५°२५′

= ·४३३७ × ·४७५२ = ·२०६१

∴ का का चरांश = ११°५४′

∴ का के चरासु = ७१४

∴ प्रयागमें व का के उदयासु = ५४०० — ७१४

= ४६८६

अर्थात् प्रयागमें सायनमेष, वृष और मिथुन राशियां ४६८६ असुओंमें उदय होंगी। परन्तु सायन मेष और वृष राशियां २८६६ असुओंमें उदय होती हैं, इसलिए सायन मिथुन राशि ४६८६ — २८६६ = १८२० असुओंमें उदय होगी।

इस तरह यह प्रकट है कि सायन मेषके अन्तिम विन्दुके चरासु ३३३, सायन वृषके अन्तिम विन्दुके चरासु ६०३ और सायन मिथुनके अन्तिम बिन्दुके चरासु ७१४ हैं। पहले और दूसरेका अन्तर २७०, तथा दूसरे और तीसरेका अन्तर १११ है। इन्हींको वृष और मिथुनके चरखंड ४३वें श्लोकके उत्तरार्धमें कहा गया है जिसका तात्पर्य नीचेके कोष्ठकसे स्पष्ट हो जायगा :—

सायन राशियां	लंकामें उदयासु	चरखंड असुओंमें	प्रयागमें उदयासु
मेष	१६७५	— ३३३	१३४२
वृष	१७९४	— २७०	१५२४
मिथुन	१९३१	— १११	१८२०

४४वें श्लोकके पूर्वार्धमें यह बतलाया गया है कि सायन कर्क, सिंह और कन्या राशियोंके उदयासु किस प्रकार ज्ञात होंगे। लंकामें कर्कके उदयासु वहीं होंगे जो मिथुनके हैं, सिंहके वह होंगे जो वृषके हैं और कन्याके वह होंगे जो मेषके हैं। इनमें अपने अपने चरखंड जोड़नेपर इष्ट स्थानके उदयासु निकल आवेंगे जो नीचेके कोष्ठकसे स्पष्ट होगा :—

सायन राशियां	लंकामें उदयासु	चरखंड असुओंमें	प्रयागमें उदयासु
कर्क	१९३१	+ १११	२०४२
सिंह	१७९४	+ २७०	२०६४
कन्या	१६७५	+ ३३३	२००८

इसकी उपपत्ति यों है :—

क्रान्तिवृत्तके किसी विन्दु का का विषुवांश जाननेके लिए समीकरण (१) का प्रयोग किया जाता है जो यह है

ज्या (व पू) = (का के भोगांशकी ज्या × परमक्रान्ति कोटिज्या) / (का की कान्ति कोटिज्या)

प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनो रीतियोंसे यह सिद्ध है कि किसी कोणकी ज्या उसके परिपूरक (Supplementary) कोण की ज्याके समान होती है [देखो पृष्ठ १८६—१८६] अर्थात् ज्या (क) = ज्या (१८०° — क) जहाँ क किसी कोणका मान है। इसलिए यह सिद्ध है कि

ज्या (व पू) = ज्या (१८०° — व पू)
और ज्या (काका भोगांश) = ज्या (१८०° — काका भोगांश)
इसलिए ज्या (१८०° — व पू)

= (ज्या (१८०° — का का भोगांश) परम क्रान्ति कोटिज्या) / (का की कान्ति कोटिज्या) ...(२)

ऊपर बतलाया गया है कि जब का का भोगांश अर्थात् वका ६०° होता है तब का का विषुवांश अर्थात् व पू ५७°४६′ होता है, इसलिए समीकरण (२) के अनुसार जब का का भोगांश १८०° — ६०° = १२०° होगा तब इसका विषुवांश १८०° — ५७°४६′ = १२२°११′ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जितने समयमें वसंत संपातसे क्रान्ति वृत्तका १२० अंश लंकामें उदय होता है उतने समयमें विषुवद्वृत्तका १२२°११′ उदय होता है। परन्तु क्रान्तिवृत्तकी पहिली तीन राशियां जितनी देरमें उदय होती हैं उतनी देरमें विषुवद्वृत्तका भी ६०° उदय होता है। इसलिए चौथी राशि जितने समयमें उदय होती है उतने समयमें विषुवद्वृत्तका १२२°११′ — ६०° = ३२°११′ उदय होता है।

परन्तु विषुवद्वृत्तका ३२°११′ = १६३१′, इसलिए इसके ३२°११′ के उदय होनेका समय = १६३१ असु। इसलिए सायन कर्क राशिके उदयासु १६३१ हैं जो सायन मिथुनके भी उदयासु हैं।

इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि सायन सिंह राशिके उदयासु सायन वृष राशिके उदयासुओंके और सायन कन्या राशिके उदयासु सायन मेष राशिके उदयासुओंके समान हैं।

अब यह जानना है कि सायन कर्क राशिके उदयासु किसी अन्य स्थानमें, मान लो प्रयागमें, क्या होंगे।
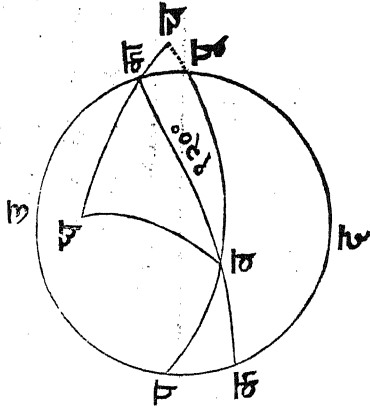
चित्र ६१

यह चित्र ६०वें चित्रके ही समान है अन्तर केवल यह है कि उसमें व का ६०° से कम है और यहां व का १२०° के समान है।

चित्रसे यह प्रकट है कि व का जो १२०° के समान है प्रयागमें उतने ही समयमें उदय होगा जितने समयमें व पू उदय होता है। परन्तु व का का विषुवांश व पू च के समान है जिसमें पू च चरांश क्षितिजके नीचे है। इसलिए

व पू = व पू च — पू च

परन्तु का विन्दुकी क्रान्ति सायन वृषके अंतिम विन्दु की क्रान्तिके समान अर्थात् २०°१०′ है क्योंकि वसंत संपात विन्दुसे ९०° के भोगांश तक क्रान्ति जिस क्रमसे बढ़ती है उसी क्रमसे ९०° से १८०° तकके भोगांश तक वह घटती भी है अर्थात् सायन वृषके अन्तिम विन्दुकी कान्ति सायन कर्कके अन्तिम विन्दुकी क्रान्तिके समान होती है और सायन मेषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति सायन सिंहके अन्तिम विन्दुकी क्रान्तिके समान होती है, इत्यादि।

इसलिए पू च = १०°३′

परन्तु व पू च = १२२°११′

क्योंकि यह १२०° के भोगांशका विषुवांश है।

इसलिये व पू = १२२°११′ — १०°३′

= ११२°८′

= ६७२८′

∴ १२० भोगांशके उदयासु = ६७२८

परन्तु प्रथम तीन राशियोंके उदयासु = ४६८६

∴ कर्क राशिके उदयासु = ६७२८ — ४६८६

= २०४२

जो लंकामें कर्कके उदयासुओंमें १११ जोड़नेसे आता है।

इसी प्रकार यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि १५० भोगांश अर्थात् मेषसे सिंह ५ राशियोंतकके उदयासु प्रयागमें क्या होंगे। फिर प्रथम चार राशियोंके उदयासु घटानेपर सिंह राशिके उदयासु निकल आवेंगे जो लंकामें सिंहके उदयासुओंमें २७० जोड़नेसे भी प्राप्त हो सकते हैं।

सायन कन्या राशिका अन्तिम विन्दु जिसका भोगांश १८० है विषुवद्वृत्तसे फिर मिल जाता है अर्थात् यही शरद संपातका स्थान है इसलिए यह वसंत संपातकी तरह ठीक पूर्वमें उदय होता है और इसका विषुवांश भी १८०° होता है।

इसी प्रकार सायन मेषसे सायन कन्या तकको प्रत्येक राशिके उदयासु लंकामें तथा उत्तरी गोलार्द्धके अन्य स्थानोंमें क्या होते हैं जाना जा सकता है। अब यह दिखलाना है कि सायन तुलासे लेकर सायन मीन तककी प्रत्येक राशिके उदयासु क्या हैं। ४४वें श्लोकके उत्तरार्द्धमें इसके लिए बहुत ही सरल नियम यह दिया हुआ है कि मेषसे कन्या तकके जो उदयासु हैं वही उलटे क्रमसे तुलासे मीन तकके उदयासु हैं अर्थात् कन्याके उदयासु तुलाके उदयासुके समान हैं, सिंहके उदयासु वृश्चिकके समान हैं, इत्यादि।

नीचेके कोष्ठकसे यह और भी स्पष्ट होगा:—

सायन राशियां	लंकामें उदयासु	चरखंड असुओंमें	प्रयागमें उदयासु	सायन राशियां
१ मेष	१६७५	— ३३३	१३४२	१२ मीन
२ वृष	१७९४	— २७०	१५२४	११ कुंभ
३ मिथुन	१९३१	— १११	१८२०	१० मकर
४ कर्क	१९३१	+ १११	२०४२	९ धनु
५ सिंह	१७९४	+ २७०	२०६४	८ वृश्चिक
६ कन्या	१६७५	+ ३३३	२००८	७ तुला

इसकी उपपत्ति बतलानेके लिये केवल यह बतलाना पर्याप्त होगा कि तुलाके उदयासु क्या हैं।
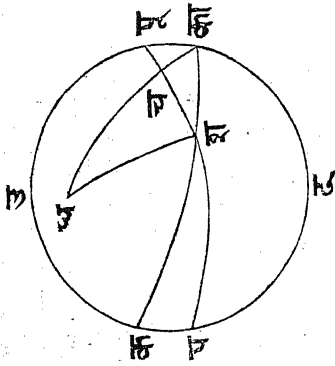
चित्र ६२

यह चित्र ५६, ६० चित्रोंके समान हैं अन्तर केवल इतना है कि यहां श शरद सम्पात का स्थान है जहांसे क्रान्तिवृत्त विषुवद्वृत्तके दक्खिन हो जाता है। का च ध क्रान्तिवृत्तके का विन्दुका ध्रुवप्रोतवृत्त।

चित्र ६२ से प्रकट है कि जितनी देरमें शरद-संपातसे क्रान्ति वृत्तका श का भाग प्रयागके क्षितिज पर आवेगा उतनी ही देरमें विषुवद्वृत्तका श पू भाग भी क्षितिजपर आवेगा।

परन्तु श पू = श च + च पू

यदि का विन्दु सायन तुलाका अन्तिम विन्दु माना जाय तो श का ३० अंशके समान होगा। श च का समकोण गोलीय त्रिभुज है क्योंकि का च ध, का विन्दुका ध्रुवप्रोतवृत्त है जो विषुवद्वृत्तसे समकोण पर होता है। इसलिए इस समकोण गोलीय त्रिभुजमें नेपियरके नियमोंके अनुसार

कोज्या (चशका) = स्परे (चश) × कोस्परे (शका)

$$\text{अर्थात् स्परे (चश)} = \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्परे } ३०^\circ}$$

= ·५२९७ [देखो पृष्ठ ४५३

∴ चश = २७°५४′·५ = १६७४·५ जो लंकामें कन्याके उदयासु हैं।

चरांश चपू का मान जाननेके लिए समकोण गोलीय त्रिभुज पू च का से काम लेना चाहिए जिसमें चका का विन्दुकी दक्षिण क्रान्ति है। यह ११°२६′ के समान होती है जब श का ३०° के समान होता है। च पू का कोण विषुवद्वृत्त और क्षितिज वृत्तके बीचका कोण है जो प्रयागके लम्बांशके समान होता है (देखो पृ० ३७६)

इसलिये नेपियरके नियमके अनुसार

ज्या (च पू) = स्परे (चका) × कोस्परे (च पू का)
= स्परे ११°२६′ × कोस्परे (९०° — २५°२५′)
= स्परे ११°२६ × स्परे २५°२५′
= ·०९६६

∴ च पू = ५°३३′ = ३३३′ [देखो पृष्ठ ४५६

इसलिए श पू = १६७४·५ + ३३३
= २००८ कला

इसलिए श का अर्थात् सायन तुलाके उदयासु (प्रयागमें) वही हैं जो सायन कन्याके उदयासु हैं।

इसीप्रकार यह भी सिद्ध हो सकता है कि सायन वृश्चिक, धनु इत्यादिके उदयासु भी क्रमानुसार सायन सिंह, कर्क इत्यादिके उदयासु हैं।

से विषुवांश आते हैं। परन्तु यह ध्यान रहे कि यदि क्रान्ति-वृत्तके किसी ऐसे विन्दुका विषुवांश जानना है जो उपर्युक्त १२ प्रधान विन्दुओंके सिवा अन्य विन्दु हैं तो अनुपातकी रीतिसे काम नहीं चलेगा, क्योंकि कुछ स्थूलता हो जाती है। इसके लिए सबसे अच्छी रीति यही है कि चित्र ५६ और समीकरण (१) की रीतिसे काम लिया जाय।

अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे सायन राशियोंके उदयास्तु जाने जा सकते हैं परन्तु आजकल निरयन राशियों-का भी प्रचार है जिनका आरम्भ मेष तथा अश्विनीके आदि विन्दुसे होता है। यह विन्दु विक्रमकी ६ठीं शताब्दीमें वसंत संपातका स्थान था (देखो ६–१० श्लोकोंका विज्ञानभाष्य)। इसलिये आवश्यक है कि निरयन राशियोंके उदयास्तु भी संक्षेपमें बतला दिये जांय।

यह बतलाया गया है कि सायन भोगांशसे अयनांश घटा दिया जाय तो निरयन भोगांश आता है, परन्तु अयनांश प्रति-वर्ष ५८″·६६ के लगभग बढ़ता है (देखो पृष्ठ ३६८) और १९८२ वि० की मेष संक्रान्तिके समय यह २२°४१′ के लगभग था (देखो पृष्ठ ३७२)। सुविधाके लिये विकलाओंकी गणना छोड़ दी गई है जिससे व्यवहारमें बहुत कम अन्तर पड़ता है। अयनांश २२°४१′ माननेका अर्थ यह है कि जब सायन भोगांश २२°४१′ होता है तब निरयन भोगांश शून्य होता है अर्थात् तब निरयन मेष राशिका आरम्भ होता है, और जब सायन भोगांश ५२°४१′ होता है तब निरयन मेष राशिका अंत तथा निरयन वृषका आरम्भ होता है। इसी तरह मिथुन, कर्क इत्यादि निरयन राशियोंका निश्चय कर लेना चाहिए।

निरयन मेष राशिके उदयास्तु जाननेके लिए यह देखना पड़ता है कि क्रान्तिवृत्तका वह भाग जो २२°४१′ और ५२°५१′

नीचेकी सारिणीसे यह प्रकट होगा कि क्रान्तिवृत्तके १२ प्रधान विन्दुओंके भोगांश, विषुवांश, क्रान्ति क्या हैं :—

भोगांश		विषुवांश		क्रान्ति उत्तर	
अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला
०	०	०	०	०	०
३०	०	२७	५५	११	२६
६०	०	५७	४६	२०	१०
९०	०	९०	०	२३	२७
१२०	०	१२२	११	२०	१०
१५०	०	१५२	५	११	२६
१८०	०	१८०	०	०	०
				क्रान्ति दक्षिण	
२१०	०	२०७	५५	११	२६
२४०	०	२३७	४६	२०	१०
२७०	०	२७०	०	२३	२७
३००	०	३०२	११	२०	१०
३३०	०	३३२	५	११	२६
३६०	०	३६०	०	०	०

इससे प्रकट है कि लंकामें सायन मेष; वृष इत्यादि राशियोंके जो उदयास्तु हैं उन्हींको कला समझकर जोड़ लेने-

सायन भोगांशोंके बीचमें है कितने समयमें उदय होता है। इसलिये पहले यह जानना आवश्यक है कि वसंत सम्पात और निरयन मेषके आदि विन्दुके बीचका भाग कितने समय-में उदय होता है। फिर यह जानना पड़ता है कि वसंत सम्पात और निरयन मेषके अन्तिम विन्दुके बीचका भाग कितने समयमें उदय होता है। दोनोंका जो अन्तर आता है वही निरयन मेषके उदयासु हैं। इसके लिए निरयन मेषके आदि और अन्तिम विन्दुकी कान्तियां भी जाननी पड़ती हैं।

निरयन मेषके आदि विन्दुकी क्रान्तिज्या

= ज्या २२°४१′ × ज्या २३°२७′ [पृष्ठ ४५१

= ·३८५६ × ·३९७९

= ·१५३४

∴ निरयन मेषके आदि विन्दुकी क्रान्ति = ८°४९′

निरयन वृषके आदि विन्दुकी क्रान्तिज्या

= ज्या ५२°४१′ × ज्या २३°२७′

= ·३१६५

∴ निरयन वृषके आदि विन्दुकी क्रान्ति = १८°२७′

यही निरयन मेषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति भी है।

निरयन मेषके आदि विन्दुके विषुवांशकी ज्या

= (ज्या २२°४१′ × कोज्या २३°२७′) / (कोज्या ८°४९′)

= (·३८५६ × ·९१७५) / (·९८८२)

= ·३५८०

∴ विषुवांश = २०°५९′ = १२५९′

∴ लंकामें अयन भागके उदयासु = १२५९

प्रयागमें निरयन मेषके आदि विन्दुकी चरज्या

= स्परे ८°४९′ × स्परे २५°२५′

= ·१५५१ × ·४७५२

= ०७३७

∴ चरांश = ४°१४

∴ निरयनमेषके आदि विन्दुके चरासु = २५४

∴ प्रयागमें अयन भागके उदयासु = १२५९ − २५४

= १००५

इसी प्रकार निरयन मेषके अन्तिम विन्दु अथवा निरयन वृषके आदि विन्दुके विषुवांशकी ज्या

= (ज्या ५२°४१′ × कोज्या २३°२७′) / (कोज्या १८°२७′)

= (·७९५३ × ·९१७५) / (·९४८६)

= ·७६९२

∴ विषुवांश = ५०°१७′ = ३०१७′

इसलिए लंकामें अयन भाग और निरयन मेषके उदयासु

= ३०१७

परन्तु प्रयागमें निरयन मेषके अन्तिम विन्दुकी चरज्या

= स्परे १८°२७′ × स्परे २५°२५′

= ·३३३७ × ·४७५२

= ·१५८६

∴ चरांश = ९°७′ = ५४७′

निरयन राशियां	आदिविंदुकी क्रान्ति अंश	आदिविंदुकी क्रान्ति कला	प्रयागमें आदि विंदुका चरांश अंश	प्रयागमें आदि विंदुका चरांश कला	प्रयागमें चर खंड अंश	प्रयागमें चर खंड कला	आदिविंदुका विषुवांश अंश	आदिविंदुका विषुवांश कला	लंकामें उदयांश अंश	लंकामें उदयांश कला	प्रयागमें उदयांश अंश	प्रयागमें उदयांश कला	प्रयागमें उदयकाल (नाक्षत्र) घड़ी	प्रयागमें उदयकाल (नाक्षत्र) पल	प्रयागमें मेषके आदिसे राशिके उदय तकका समय घड़ी	प्रयागमें मेषके आदिसे राशिके उदय तकका समय पल
मेष	+ ८	४६	— ४	१४	— ४	५३	२०	५६	२६	१८	२४	२५	४	४	४	४
वृष	+ १८	२७	— ६	७	— २	४०	५०	१७	३१	४३	२६	३	४	५१	८	५५
मिथुन	+ २३	१५.३	— ११	४७	+ ०	५८	८२	०	३२	३०	३३	२८	५	३५	१४	३०
कर्क	+ २१	३२.७	— १०	४६	+ ४	२	११४	३०	३०	३३	३४	३५	५	४६	२०	१६
सिंह	+ १३	५८	— ६	४७	+ ५	२४	१४५	३	२८	१४	३३	३८	५	३६	२५	५२
कन्या	+ २	५४	— १	२३	+ ५	३७	१७३	१७	२७	४२	३३	१६	५	३३	३१	२५
तुला	— ८	४६	+ ४	१४	+ ४	५३	२००	५६	२६	१८	३४	११	५	४२	३७	७
वृश्चिक	— १८	२७	+ ६	७	+ २	४०	२३०	१७	३१	४३	३४	२३	५	४४	४२	५१
धनु	— २३	१५.३	+ ११	४७	— ०	५८	२६२	०	३२	३०	३१	२८	५	१५	४८	६
मकर	— २१	३२.७	+ १०	४६	— ४	२	२६४	३०	३०	३३	२६	३१	४	२५	५२	३१
कुम्भ	— १३	५८	+ ६	४७	— ५	२४	३२५	३	२८	१४	२२	५०	३	४८	५६	१६
मीन	— २	५४	+ १	२३	— ५	३७	३५३	१७	२७	४२	२१	५	३	४१	६०	००
मेष	+ ८	४६	— ४	१४			३८०	५६								

∴ प्रयागमें अयन भाग और निरयन मेषके उदयासु

= ३०१७ — ५४७ = २४७०

परन्तु प्रयागमें अयन भागके उदयासु = १००५

∴ „ निरयन मेषके „ = १४६५

∴ „ „ „ का उदयकाल= २४४ पल

= ४ घड़ी ४ पल

यदि प्रत्येक निरयन राशिके उदयासु जाननेकी रीति उपर्युक्त विवरणके साथ लिखी जायगी तो पुस्तकका आकार बढ़नेके सिवा कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इसी रीतिसे आगेकी सारिणी बनायी गयी है जिससे यह पता चल जायगा कि निरयन राशिके उदयासु या उदयकाल किसी स्थानमें कैसे निकाले जा सकते हैं:—

दूसरे स्तम्भमें क्रान्तिके पहले धनका चिह्न यह प्रकट करता है कि क्रान्ति उत्तर दिशामें हैं और ऋणका चिह्न यह प्रकट करता है कि क्रान्ति दक्षिण दिशामें है। सातवीं राशि तुलासे क्रान्तियोंका क्रम पहली ६ राशियोंके क्रमकी तरह है केवल दिशामें भिन्नता है।

तीसरे स्तम्भमें प्रत्येक राशिके आदि विंदुका चरांश दिया हुआ है जिसको कलाओंमें लिखनेसे जो संख्या मिलती है वही उस विंदुके चरासु अथवा चरप्राण है। जब क्रान्ति उत्तर होती है तब उत्तरी गोलार्धमें चरासु घटाने पड़ते हैं और जब क्रान्ति दक्षिण होती है तब उत्तरी गोलार्धमें चरासु जोड़ने पड़ते हैं (देखो पृष्ठ ३००–३०७)। इसीलिए चरांश पहली ६ राशियोंमें ऋणात्मक और पिछली ६ राशियोंमें धनात्मक लिखा गया है। यह प्रयागके चरांश है। अन्य स्थानके चरांश जाननेके लिए चरज्या=क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्शरेखावाले सूत्र-

में इष्ट स्थानका जो अक्षांश हो वह लिखकर गणना करना चाहिए।

४थे स्तम्भमें जो चरखंड दिया हुआ है वह पासवाली दो राशियोंके आदि विंदुओंके चरांशोंका अन्तर है जिससे जाना जाता है कि पहली राशिके आदि विंदुसे अन्तिम विंदु तक चरांशमें क्या अन्तर पड़ता है। जैसे मेषराशिका चरखंड

= वृषराशिके आदि विन्दुका चरांश
−मेषराशिके आदि विंदुका चरांश
$= -९^\circ ७' - (-४^\circ १४')$
$= -९^\circ ७' + ४^\circ १४'$
$= -४^\circ ५३'$

सिंह राशिका चरखंड
= कन्या राशिके आदि विंदुका चरांश
−सिंहराशिके आदि विंन्दुका चरांश
$= -१^\circ २३' - (-६^\circ ४७')$
$= -१^\circ २३' + ६^\circ ४७'$
$= +५^\circ २४'$

ध्यान देनेसे प्रकट होता है कि पहली ६ राशियोंके चरखंड दूसरी ६ राशियोंके चरखंडोंके परिमाणमें क्रमानुसार समान हैं। केवल + या − चिह्नोंमें अन्तर है।

५वें स्तम्भमें प्रत्येक राशिके आदि विन्दुका विषुवांश दिया हुआ है। यदि इसको कलाओंमें लिखा जाय तो इतने ही असुओंमें वसन्त सम्पातसे उस राशिका आदि विन्दु लंकामें उदय होगा। यदि पास वाली दो राशियोंके विषुवांशोंका अन्तर निकाला जाय तो यही ऊपरवाली राशिके उदयांश लंकामें होंगे जो ६ठें स्तम्भमें दिया हुआ है। इसको कलामें लिखा जाय तो यही संख्या लंकामें उस राशिके उदयासु होंगे। लंकामें राशिका जो उदयांश हो उसमें उसी राशिका चरखण्ड यदि धनात्मक हो तो जोड़ने और ऋणात्मक हो तो घटानेसे इष्ट स्थानमें उस राशिका उदयांश आता है जिसको कलामें लिखनेसे उस राशिके उदयासुओंकी संख्या भी प्राप्त हो जायगी। ८वें स्तम्भमें प्रत्येक राशिका उदयकाल उदयासुओंमें न लिखकर घड़ी, पलोंमें लिखा गया है जो अधिक व्यवहारात्मक है परन्तु कुछ स्थूल है क्योंकि ६ असुओंका १ पल होता है और ६ से भाग देनेपर पूरे पल जब नहीं आये हैं तब आधेसे अधिकको १ मान लिया गया है और आधेसे जो कम आये हैं उनको छोड़ दिया गया है।

९वें स्तम्भमें यह दिखलाया गया है कि मेषके आदिसे पूरी राशिके उदय होनेमें क्या समय लगता है। जैसे यदि जानना है कि मेषके आदिसे पूरे सिंहके उदय होने तक क्या समय लगता है तो सिंहके सामने ९वें स्तम्भमें २५ घड़ी ५२ पल इसका उत्तर है अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियां प्रयागमें २५ घड़ी ५२ पलमें उदय होती हैं। इस स्तम्भसे लग्न जाननेमें बड़ी सहायता मिलेगी। इसलिए यह भी यहां दे दिया गया है।

यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि यह समय नाक्षत्र मानके अनुसार है जो सावन मानसे कुछ भिन्न होता है। (देखो पृष्ठ ११, १२)।

इस सारिणीसे यह बात सिद्ध होती है कि किसी स्थानमें राशियोंके उदयासु जाननेके लिये केवल चरांश जान लेनेसे आवश्यक संशोधन सुगमता पूर्वक हो सकते हैं। परन्तु यह सारिणी सदैव काम नहीं दे सकती क्योंकि अयन चलनके कारण प्रत्येक निरयन राशिके आदि विन्दुके भोगांश और

क्रमशः

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २१ { सिंह और कन्या संवत्, १९८२ } संख्या ५, ६

संगीतका प्रभाव

[ले० श्रीनत्रनिद्धि राय, एम. ए.]

भारतवासियोंने संगीतको बहुत ऊँचा स्थान दिया था। शिक्षाका परमावश्यक अङ्ग, सभ्यताकी निशानी संगीतको समझते थे। एक कविने कहा है,—'साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।' अर्थात् जो व्यक्ति साहित्य, संगीत तथा कलासे अनभिज्ञ हो वह बिना सींग पूँछका बैल है। देखिये संगीतको कितना ऊँचा स्थान दिया गया है। आर्योंका साम गायन जगत विख्यात है। भारतवासियोंने इस शास्त्रका बहुत विस्तृत और सूक्ष्म अध्ययन किया था। परमात्माकी पूजा और उपासना बिना गानके होती ही न थी। विस्तारसे वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि भारतीयोंकी संगीत विद्यामें निपुणता सर्व मान्य है। पर दुर्भाग्य है हमारा कि राष्ट्रीय अधोगतिके साथ साथ जैसे हमारे देशमें शास्त्रोंका अध्ययन घटता गया वैसे ही इस नैसर्गिक विद्याका प्रचार भी जन समूहसे उठ गया। शुद्ध संगीत जाननेवाले देशमें अब ढूंढ़े नहीं मिलते। राष्ट्रीय जीवनकी हीनता इसीसे स्पष्ट है कि हमारे संगीतमें अश्लीलता मिल गई है। जहां अश्लीलता नहीं है वहां गँवारूपन है। देशके शिष्ट और सभ्य समाजमें संगीतके ज्ञानका सर्वथा अभाव है। आधुनिक भारतीय सभ्यताकी अधोगति स्पष्ट है। हृदयमें शुद्ध भावोंका संचार करने वाला, भक्ति ज्ञान और वैराग्य हृदयमें भर कर धार्मिक त्याग उत्पन्न करने वाला, संगीत जब हमारे देशमें रहा ही नहीं तो आजकलका हिन्दू समाज तेजहीन, बलहीन और पुरुषार्थ-

हीन दिखलाई पड़े तो आश्चर्य ही क्या ? शताब्दियों पहले आर्योंने जो पद्धति स्थापित की थी वह टूट गई है, साथ ही आज कल भारतवर्ष अकर्मण्य डांवाडोल अवस्थामें पड़ा हुआ पाश्चात्य देशोंका मुँह ताक रहा है। अपने पुराने आदर्शों और आर्यों द्वारा संचित ज्ञान भाण्डारमें हम लोगोंको विश्वास रह नहीं गया। शिक्षाकी परम्परा टूट जानेके कारण आर्योंकी बातें पूर्ण रूपसे हमारी समझमें आती नहीं। पाश्चात्य सभ्यताकी अत्यन्त तीव्र उन्नतिको देखकर हम प्रत्येक पाश्चात्य वस्तुके अनन्य भक्त बन गये हैं। भारतवर्ष मानसिक दासताकी अवस्थामें है। हमारे राष्ट्रको अपने पूर्वजोंकी शक्तियोंमें अविश्वास है, स्वयं अपनी शक्तिमें अविश्वास है। विश्वास है पाश्चात्य सभ्यतामें, पाश्चात्य राष्ट्रोंकी शक्तिमें।

जो बात पश्चिमके वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर देते हैं वह हमें माननी ही पड़ती है परन्तु दुर्भाग्यवश पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानसे हमारा राष्ट्र कोई लाभ नहीं उठा सकता। अपनी चाल हमने छोड़ ही दी, अपनी पद्धति हमने तोड़ ही डाली, दूसरोंकी चाल हम चल नहीं पाते, नवीन पद्धति स्थापित करनेमें हम असमर्थ हैं। फल है हमारे राष्ट्रीय जीवनका ह्रास। संगीतकी महिमा हमारे पूर्वजोंने मुक्त कंठसे गाई। संगीतको मनुष्यत्वकी आवश्यक सामग्री बतलाया। बतलाया, कि संगीत मनुष्यको पाशविक जीवनसे उठाकर देवताओंकी श्रेणीमें स्थापित कर देता है। इसी सिद्धान्तकी ओर पाश्चात्य वैज्ञानिक भी बढ़ते आ रहे हैं। मनुष्यके मन, मष्तिष्क और शरीरपर संगीतका क्या प्रभाव पड़ता है ? किस प्रकारके संगीतसे मनुष्यकी मानसिक और शारीरिक शक्तियोंका किस प्रकार विकास किया जा सकता है ? यह सब प्रश्न कुछ पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके मस्तिष्कमें उपस्थित हो रहे हैं। अध्ययन और प्रयोग किये जा रहे हैं। विशद रूपसे अनुसन्धान हो रहा है। नटराजके डमरूका रहस्य जो भारतवासियोंको पहले मालूम था अब पाश्चात्योंके हाथ लग जायगा। भारतवर्षसे साम गायन उठ गया। शायद बहुत जल्द पश्चिममें साम गायनकी पुनरावृत्ति होगी। आज कलके भारतवासी अकर्मण्यताकी पराकाष्ठातक पहुँच गये हैं। पूर्वजोंसे ज्ञानका इतना अनन्त भाण्डार प्राप्त करनेपर भी भूमण्डलके राष्ट्रोंमें भारतवर्षका स्थान बहुत नीचा है क्योंकि उस भाण्डारका उपयोग नहीं किया जा रहा है। पाश्चात्य लोग अपने परिश्रमके कारण हमारे पूर्वजोंके सिद्धान्तोंको फिरसे ढूँढ़ कर उन्नति करते जा रहे हैं।

विज्ञान शीघ्र ही बहुतसे रहस्योंका उद्घाटन कर देगा। मनुष्य शरीरपर स्वरोंका और संगीतका क्या प्रभाव पड़ता है ? इस प्रभावका विश्लेषण करके व्यक्त रूप दरशाया जायगा। सिद्ध हो गया है कि शरीरके गठनपर संगीतका बड़ा प्रबल प्रभाव पड़ता है। संगीतकी सहायतासे पहलवानोंमें बलका विकाश शीघ्रतासे होता है। बीमार मनुष्य संगीतकी सहयतासे शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ कर सकता है। प्रसवकालमें संगीतसे स्त्रीको बड़ी शान्ति मिलती है। नट और बाज़ीगर संगीतके ज़ोरसे ही बड़े विचित्र खेल दिखला लेते हैं। परन्तु शुद्ध और ठीक ढङ्गका संगीत होना आवश्यक है, तभी प्रभाव पड़ सकेगा। बाज़ारू ग़ज़लों और ठुमरियोंसे कोई लाभ होना सम्भव नहीं।

कई वर्षोंके अनुसन्धानके बाद एक प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता डा० हवेलाक एलिस (Dr. Havelock Ellis) ने "जीवनका नृत्य" नामक पुस्तक लिखकर यह दिखलाया है कि हमारे चारों तरफ़ स्वरोंका साम्राज्य है और सफल जीवनका रहस्य यह है कि हम अपने जीवनको इन स्वरोंके अनुकूल बनायें, अपने जीवन और इन स्वरोंमें साम्य स्थापित करें। परन्तु स्वरोंके इस साम्राज्यकी तालें, और लय हमें मालूम नहीं हैं इसलिये हमारा जीवन तालबद्ध नहीं हो सकता और इसीलिये हमारा जीवन अधिकतर सौन्दर्य

विहीन रह जाता है। मनुष्यको वास्तविक सुन्दर जीवन प्रदान करनेके लिये यही अव्यक्त ताल समर्थ हो सकते हैं। बड़े गुणी प्रभावोत्पादक जीवन प्रदाता गायक इन्हीं गुप्त तालों, लयों और स्वरोंको व्यक्त करके जन समूह और राष्ट्रोंको ज्ञान और धर्मके नये रास्ते दिखलाते हैं तथा नैसर्गिक गानका निर्माण करके मानव हृदय-पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लेते हैं और बहुत थोड़े समयमें मानव समाजमें आश्चर्य-जनक विप्लव उपस्थित कर देते हैं। संसारके इतिहासको देखिये, हमारे शब्दोंकी सत्यता तुरन्त स्पष्ट हो जायगी। वैदिक कालको छोड़ दीजिये, पौराणिक कालको भी जाने दीजिये, आधुनिक भारतवर्षके मीरा, तुलसी, और सूरके पद्योंपर दृष्टि डालिये। कैसा चमत्कार है ? कैसा सौन्दर्य है ? इन्होंने शब्दों द्वारा काव्य नहीं लिखा है। शब्द वाह्य आडम्बर मात्र हैं। नैसागिर्क संगी-तको शब्दोंकी सीमामें बांध दिया है। मीराका एक पद जिस भक्तिका संचार हमारे अन्दर कर देता है, सूरके दो चार वाक्य हमारे हृदयमें जिस सौन्दर्य राशिका प्रादुर्भाव कर देते हैं, तुलसीकी दो एक चौपाइयां जो ज्ञान हमारे हृदयमें उत्पन्न कर देती हैं वह क्या किसी दूसरे लेखककी लम्बी चौड़ी कृति-से प्राप्त होना सम्भव है ? इसमें सन्देह नहीं कि माधुर्य्य, सौन्दर्य और शक्तिका समावेश जैसा मीरा, सूर और तुलसीमें पाया जाता है किसी दूसरे लेखकमें नहीं है। कारण इसका यही है कि जीवनके संगीतमें जो स्वर, ताल और लय हैं उनको विधि पूर्वक व्यक्त कर सकनेके कारण इन्हें इतनी सफलता प्राप्त हुई है।

डा० हैरल्ड काक्स (Dr. Harold Cox) ने प्रयोग करके सिद्ध किया है कि बीमार मनुष्यों-के ऊपर और प्रसवकालमें स्त्रियोंके ऊपर तथा नवजात शिशुके ऊपर संगीतका स्वास्थ्यकर प्रभाव पड़ता है। श्रीमती अडेला हैच (Mrs-Adela Hatch) कहती हैं कि उनकी लड़की ओलाइवके (Olive) सौन्दर्य और तैरनेमें निपुणताका कारण संगीत है। श्रीमती हैच बड़ी निपुण गाने बजानेवाली स्त्री हैं। गर्भकालमें और कुमारी हैचके उत्पन्न होनेके बाद भी प्रति दिन कई घण्टे यह उच्च कोटिका संगीत प्यानो-(Piano) पर बजाया करती थीं। इनका विश्वास है कि जन्म-से पहले ही संगीतने गर्भमें बालकपर बड़ा प्रभाव डाला। जन्मके बाद उच्च कोटिका संगीत सुननेके कारण कुमारी ओलाइवका शरीर संगीत-के सौन्दर्यके कारण सुन्दर होता गया। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें कुमारी ओलाइव अत्यन्त सुन्दरी होगई। साथ ही केवल तीन दिन शिक्षा प्राप्त करने के बाद बड़ी निपुण तैराक हो गई और अच्छे अच्छे तैराकोंसे बाज़ी मार ले गई। तैरनेमें निपुणताका कारण भी संगीत ही है, क्योंकि जब ये तैरती हैं तो इनके हाथ किसी निश्चित ताल-के अनुसार पानीपर पड़ते हैं। जब किसी होड़-में ये तैरती हैं तो संगीतकी किसी तालके अनुसार हाथ मारती हैं।

अभीतक विज्ञानने मनुष्य शरीरपर संगीत-के प्रभावका पूरा ज्ञान नहीं प्राप्त किया है और न प्रभावका कारण ही जान पाया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि संगीतकी सहायतासे बड़े विचित्र फल प्राप्त किये गये हैं। न्यूयार्क नगर-के किट्रिज स्कूलमें (Kittredge School) तैरना सिखलाते समय वाइलिन पर (Violin) संगीत बजाया जाता है। शिक्षकगण संगीतका प्रभाव प्रत्यक्ष देखते हैं कि तैरनेवालोंकी भुजाओंमें तेज़ी और शक्ति आ जाती है। यह नहीं मालूम कि संगीत मस्तिष्कको उत्तेजित करके भुजाओंपर प्रभाव डालता है या सीधे नसोंपर प्रभाव डालकर भुजाओं-में तेज़ी उत्पन्न करता है। कुछ वैज्ञानिकोंकी राय है कि संगीतके ताल और लय मनुष्यकी उन इन्द्रियों पर प्रभाव डालते हैं जो मनुष्यकी जीवन कालको बढ़ाती हैं और जिनसे वीरता, प्रेम, विवेक और संकल्प इत्यादिका प्रादुर्भाव होता है।

यह बात प्रायः सब लोग जानते हैं कि किसी लयके साथ कुछ गीत गाते हुये मनुष्य ऐसे कामोंको जल्दी कर लेते हैं जिनमें बहुत शक्ति लगानेकी ज़रूरत होती है। देखा गया है कि बड़े बड़े बोझ उठाने और ले चलनेमें संगीत और लयसे सहायता ली जाती है। मज़दूरोंमेंसे एक नेता बनकर कुछ शब्दोंको एक लयसे उच्चारण करता है और दूसरे मज़दूर किसी तालपर कुछ शब्द दोहराते जाते हैं जिससे भारी भारी बोझ बड़ी सुगमतासे उठ जाते हैं और एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँच जाते हैं। पलटनके सिपाही संगीतकी सहायतासे बड़ी सुगमतासे मीलों चले जाते हैं और संगीतके कारण थकान उन्हें कम सताती है। नट लोग छोटे छोटे बच्चोंसे ऐसे ऐसे खेल कराते हैं जिनसे देखने वालोंको डर मालूम होता है। संगीतकी सहायतासे ही बाज़ीगरीके खेल उन्हें सिखलाये जाते हैं और यदि संगीत साथमें न हो तो वे सफलता पूर्वक खेल कभी न दिखला सकें।

कुछ दिन पहले भारतीय सभ्य समाजमें संगीतका जो विरोध था, अब घटता जा रहा है। शिक्षित समुदाय संगीतकी शक्तिका अनुभव करके अब शुद्ध संगीतके प्रचारकी ओर ध्यान दे रहा है, आशा बंधती है कि अब हमारे देशके राष्ट्रीय और धार्मिक जीवनके विकाशमें संगीत उचित स्थान प्राप्त कर लेगा।

वृत्तच्छेद

[ले० श्री अवध उपाध्याय]

१

वृत्त, गोल, समबहु-भुज तथा सम-बहु फलकमें बड़ा ही घनिष्ट संबंध है। गणितीय दृष्टिसे यह संबंध और भी अधिक घनिष्ट हो जाता है। समबहुभुज क्षेत्रोंमें समत्रिबाहु-त्रिभुज वर्ग तथा सम-षट्-भुज क्षेत्र बहुत ही प्रधान हैं क्योंकि धरातल इनमेंसे किसी एकके सदृश आकारवाले पत्थरके टुकड़ोंसे ढका जा सकता है।

यदि कोई सम-षड्भुज क्षेत्र किसी वृत्तके भीतर बनाया जाय, तो षट्-भुजकी भुजा वृत्तके अर्द्धव्यासके समान होती है। यह एक बहुत ही सुन्दर साध्य है और इसका आविष्कार अति प्राचीन कालमें ही हो गया था।

इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है कि वृत्तच्छेद्के साथ भी इन सब बातोंका बड़ा घनिष्ठ संबंध है।

यहांपर समबहु-फलकके अति संक्षिप्त इतिहासका वर्णन अनुचित न होगा।

यों तो इनके संबंधमें एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखा जा सकता है, परन्तु यहांपर केवल इतना ही लिख देना पर्य्याप्त होगा कि उक्लैदसने पाँच उन्नतोदर सम बहु-फलकका वर्णन किया है, उनके नाम ये हैं—

(१) समचतुष्फलक (२) सम घन (३) सम अष्ट फलक (४) सम-द्वादश फलक और (५) सम-विंशति फलक।

इन फलकोंका यूनानके दर्शनिकोंसे भी बड़ा घनिष्ट संबंध है, क्योंकि इनका विचार उनके दर्शन शास्त्रोंमें भी किया गया था। परन्तु यहांपर उसका विशेष वर्णन नहीं किया जायगा और न तो मिश्र देशके संबंधमें ही यहांपर कुछ लिखा जायगा क्योंकि ऐसा करनेसे ग्रंथका आकार बढ़ जायगा।

यहांपर केवल इतना ही लिखा जाता है कि अति प्राचीन कालसे इन फलकोंके विषयमें विचार किया गया था और तबसे सब लोग प्रायः विचार करते ही चले आते थे। परन्तु इनके संबंधमें कोई ऐसी समस्या नहीं उत्पन्न हुई जो युगान्तर कारी कही जा सके।

सं० १९१२ वि० में द्विग्-चतु-र्गणित (Quaternions) का जन्म हुआ और तब इन फलोंके

संबंधमें एक ऐसी समस्या उत्पन्न हुई कि उसे फलकोंके इतिहासमें युगान्तर कारी कहनेमें कोई क्षति नहीं है।

समुदाय-सिद्धान्त (The theory of groups) तथा दिग्गणित (Theory of Vector Analysis) की सहायतासे फलकोंके संबंधमें ऐसे आविष्कार हुए जिनका महत्व बहुत गंभीर तथा विशद है।

संसारके लोग निराश हो चुके थे कि पंचक। समीकरण किसी प्रकारसे हल नहीं हो सकता वर्ग समीकरणका साधारण प्रश्न बहुत ही पहले हल हो चुका था। इसके बाद घन समीकरणका साधारण प्रश्न भी हल होगया और चतुर्थ घातिक साधारण समीकरणका भी साधारण उत्तर आ गया था।

इन प्रश्नोंके हल हो जानेपर लोगोंने 'पंचम'-को भी हल करना चाहा, परन्तु यह प्रश्न किसी-से हल नहीं हो सका।

उक्त प्रत्येक घातके समीकरणोंके विषयमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु स्थानके संकोच-वश ऐसा नहीं किया जाता।

जब पाँचवें घातका साधारण समीकरण किसीसे हल नहीं होसका तब संसारके लोग हताश हो गए।

इसी समय एन्-एच्-एबेलने गणितके रंगमंच-पर पैर रक्खा। पूर्वार्जित ज्ञानका भली भाँति अध्य-यन करनेके पश्चात् उन्होंने 'पञ्चक' के विषयमें सोचना प्रारम्भ कर दिया।

अन्तमें इन्होंने सिद्ध कर दिया कि पञ्चकका साधारण प्रश्न वीजगणितीय क्रियायोंकी सहा-यतासे नहीं हल हो सकता।

इसके बाद अनेक गणितज्ञोंके परिश्रमसे यह बात सिद्ध होगई कि यद्यपि किसी बीज गणितीय नियमोंकी सहायतासे पंचकका प्रश्न नहीं लग सकता तथापि दैर्ध्य-फल (Elliptic Function) की सहायतासे यह प्रश्न सुगमतासे हल हो सकता है परन्तु उत्तरमें भी दैर्ध्य-फल रहेंगे।

इसी समयमें क्लायन (Klien) का, विंशति-फलक (Cosahedron) संबंधी आविष्कार हुआ।

इस पुस्तकको केवल वे ही समझ सकते हैं, जो वीजगणितके सब अंगों, समुदाय-सिद्धान्त-गणित तथा दैर्ध्य फल आदि विषयोंसे भली भाँति परिचित हैं। क्लायनकी उक्त पुस्तकमें फलकोंका बहुत अच्छा वर्णन समुदाय-सिद्धान्तकी दृष्टिसे किया गया है। क्लायनका नाम गणित संसारमें विंशतिफलक संबंधी आविष्कारके कारण अमर हो गया। ये जर्मनीके रहने वाले हैं और संसार-के प्रधान गणितज्ञोंमें आपका स्थान बहुत ही ऊंचा है। दो वर्ष पहलेतक ये जीवित थे। इधर-का मुझे पता नहीं।

प्रायः संसारभरके लोग विद्याध्ययन करनेके लिये जर्मनी जाते हैं। यद्यपि सापेक्ष्यवादके (Theory of Relativity) आविष्कर्त्ता अलबर्ट आइंस्टाइन (Albert Einstien) भी बहुत लोगोंको जर्मनीकी ओर विद्याध्ययनके लिये आकर्षित कर रहे हैं, तथापि यह बात निस्संकोच भावसे कही जा सकती है कि श्रीमान् क्लायनने, अपने स्वच्छ, विशद्, उच्च तथा मोहिनी व्यक्तित्वके कारण जितने लोगोंको गणितके अध्ययनके लिये अपनी ओर तथा अपने देशकी ओर आकर्षित किया है, उतने लोगोंको आकर्षित करना किसी भी दूसरे विद्वानको कठिन होगा। इनके जीवन चरित्र तथा अन्य मनोरंजक बातोंके लिखनेकी प्रबल उत्कण्ठा रहते हुए भी स्थान संकोच अधिक न लिखनेको बाध्य करता है।

इन्होंने अपनी पुस्तकमें सिद्ध किया है कि पंचकका प्रश्न १२० घातके समुदायकी सहायतासे सिद्ध हो सकता है। १२० घातके समुदायका प्रश्न उन लोगोंके लिये तो बहुत ही सुगम है जो (theory of groups) समुदाय-सिद्धान्त-गणितसे परिचित हैं।

(Theory of groups) समुदाय—सिद्धान्त भी गणितका एक नया भाग है। इसपर बहुत आविष्कार पत्र छपते हैं।

१२० घातके समुदायके प्रश्नके साथ एक ऐसी करणी-गत संख्याका जन्म हुआ है, जो बीजगणितीय-करणीगत संख्याओंके पदोंमें कही नहीं जा सकती। उसका नाम विंशतिफलक करणीगत संख्या है।

इस प्रकार विंशति-फलक-करणी गत संख्याओंकी सहायतासे पंचकका प्रश्न हल हो जाता है।

हैमिल्टनने द्विचतुर्गणितसे भी फलकोंके प्रश्नोंका विचार किया है और वह संक्षेपमें यों है।

$$१ = \text{ई}^{२} = \text{क}^{३} = \text{ल}^{\text{र}}$$

$$\text{ईक} = \text{ल}$$

$$\text{र} = ३, ४, ५,$$

इनकी सहायतासे फलकोंका संबंध उक्त गणितसे हो जाता है। यह एक प्रकारका गणित है। इसकी बहुतसी विशेषताएँ हैं। उन विशेषताओंमेंसे एकका वर्णन किए बिना रहा ही नहीं जाता। मुझे डर लगता है कि बहुत लोग कह बैठें कि यह बात अशुद्ध है। मैं पहले ही उनसे निवेदन कर देता हूं कि यह अशुद्ध नहीं है। उक्त गणितमें ऐसी ही बात मानी जाती है।

सब लोग जानते हैं कि $४ \times ५ = ५ \times ४$

$$\frac{१}{२} \times \frac{१}{३} = \frac{१}{३} \times \frac{१}{२}$$

$$\text{अ} \times \text{व} = \text{व} \times \text{अ}$$

परन्तु द्विचतुर्गणितमें ऐसी संख्याओंका वर्णन होता है जिनमें $\text{अ} \times \text{व}$ और $\text{व} \times \text{अ}$ दोनों परस्पर तुल्य नहीं हैं। अर्थात् गुणनफलका उक्त नियम अशुद्ध हो जाता है। यह बड़ा गहन विषय है और बड़े बड़े लेखक लोग इनके संबंधमें अशुद्धियां कर बैठते हैं।

इसी विषयसे संबंध रखता हुआ लेखकका एक पत्र अभी जापानमें स्वीकृत हुआ है जिसमें एक प्रधान गणितज्ञकी कुछ ऐसी अशुद्धियोंका भी वर्णन है।

अभीतक बहुफलकोंका दिग्दर्शन कराया गया है। अब मैं पाठकोंका ध्यान बहुभुज-क्षेत्रोंकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।

बहुभुज-क्षेत्रोंका वर्णन

सम बहुभुज क्षेत्रोंके साथ भी समुदाय-सिद्धान्तका बहुत ही घनिष्ठ संबंध हो गया है। परन्तु यहाँपर समुदाय-सिद्धान्त संबंधी, बहुभुज क्षेत्रोंके गुणका वर्णन स्थानके अभावके कारण नहीं किया जायगा।

वृत्तके भीतर समबहुभुज क्षेत्रोंके बनाने तथा वृत्तच्छेदमें बहुत ही घनिष्ठ संबंध है। जो लोग थोड़ा भी रेखागणित जानते हैं वे इस विषयसे भली भांति परिचित हैं।

यूनान देशमें वृत्तके अन्तर्गत समबहुभुज क्षेत्रोंको बनानेके विषयमें विचार गया था। यूनान देशके लोग प्राचीन कालमें रेखागणितकी बनावटोंमें केवल रूल और कम्पासका ही प्रयोग करते थे। इस प्रकारसे अर्थात् रूल और कम्पासकी सहायतासे उक्लैदसने वृत्तके भीतर समकोण त्रिभुज, वर्ग समपँचभुज तथा समपञ्चदशभुजोंको बनाया था।

अब यहांपर एक बातका और विचार कर लेना चाहिये और वह यह है। यदि किसी वृत्तके भीतर न भुजोंके क्षेत्रका बनाना संभव है तो उसके भीतर २ न भुजोंके क्षेत्रका बनाना भी संभव है। इससे यह फल निकलता है कि वृत्तके भीतर निम्नलिखित प्रकारके क्षेत्र बन सकते हैं—

$$३ \times २^{\text{न}},\ \ ४ \times २^{\text{न}},\ \ ५ \times २^{\text{न}} \text{ और } १५ \times २^{\text{न}}$$

जब न शून्य अथवा कोई धनात्मक पूर्णांक है।

उक्त समस्याको तो उक्लैदसने ही हल कर दिया था। थोड़ा विचार करनेसे स्पष्ट हो जायगा कि ७, ९, ११, १३ और १४ आदि उक्त प्रकारके अंकोंमें

नहीं हैं। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या वृत्तके भीतर ७, ६ आदि समभुजोंके क्षेत्र बन सकते हैं अथवा नहीं? लगभग दो सहस्र वर्ष-तक इन प्रश्नोंका अखंड राज्य था। किसीसे इनका यथेष्ट उत्तर नहीं निकल सका। इन प्रश्नों-की कठिनताओंका भी विशेष ज्ञान किसीको नहीं हुआ। इतने समयके बीचमें संसारभरके विद्वानों-ने मिलकर एक भी ऐसे बहुभुज क्षेत्रको नहीं बनाया जिसका अस्तित्व उक्त गणनामें न हो।

गणितके इस विशेष-संसारमें उक्लैदसकी तूती बोलती रही। यहांतक कि बहुत लोगोंने ऐसा भी सोचना प्रारंभ कर दिया था कि जिन बहुभुज क्षेत्रोंके विषयमें उक्लैदसने नियम लिख दिया है, उनके अतिरिक्त और बहुभुज क्षेत्रोंका वृत्तके भीतर बनना असंभव है।

इसी प्रकार उक्लैदसकी तूती और भी कई प्रकार-से बोलती थी। सब लोग उसके रेखागणितके क्रमपर मुग्ध थे। सब लोग सोचते थे कि ऐसा कोई रेखागणित हो ही नहीं सकता जो उसके रेखागणित-के विरुद्ध हो। परन्तु अनुक्लैदसीय-रेखागणितका भी अब जन्म होगया है जिसकी स्वयंसिद्धियां रेखागणितके विरुद्ध हैं। इस रेखागणितका वर्णन एक दूसरी पुस्तकमें किया जायगा, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी। अस्तु।

उक्त प्रश्नका संबंध रेखागणितसे ही था। परन्तु रेखा-गणितीय नियमोंने इसको हल करना अस्वीकार कर दिया।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि इस प्रश्नका उत्तर बीजगणितने आकर दिया। बीजगणितकी सहायतासे गाउसने इस प्रश्नको हल कर दिया। सी. एफ. गाउस (१८३३-१६११ वि०) जर्मनीका एक बहुत ही प्रसिद्ध गणितज्ञ होगया है। इसने यह भी सिद्ध किया कि वृत्तके भीतर सम-सत्रह-भुज-क्षेत्रका बनाना रूल और कंपासकी सहायतासे संभव है। इस प्रश्नके हल करनेपर गाउसको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह आनन्द-सागरमें डूबने-उतराने लगा।

यह लिखना व्यर्थ जान पड़ता है कि यह एक ऐसा साध्य था जिसके विषयमें उक्लैदसने भी विचार नहीं किया था।

गाउसके विचारमें इस प्रश्नका बहुत महत्व था। उसने कहा कि मेरे मरनेके बाद मेरे स्मारक चिन्हपर एक समसत्रहभुजके क्षेत्रका निर्माण होना चाहिए। एच्. वेबरने लिखा है कि मरनेके अनन्तर उसकी यह अभिलाषा पूरी नहीं की गई। परन्तु उसकी इस अभिलाषाकी पूर्ति उस स्मा-रक चिन्हपर की गई जो ब्राउन्सवीगमें बनाया गया है। गाउसकी यह अभिलाषा प्राचीन-गणितज्ञ अर्कमीदस (Archimedes) का स्मरण दिलाती है।

गाउसने बीजगणितकी सहायतासे सिद्ध कर दिया कि केवल रूल और कम्पासकी सहायतासे यदि कोई ऐसा समबहुभुज क्षेत्र वृत्तके भीतर बनाया जाय जिसकी भुजाओंकी संख्या दृढ़ हो, तो उस दृढ़ाङ्कका आकार अवश्य ही ($२^म + १$) होना चाहिए। उसके विलोम साध्यको भी उसने सिद्ध कर दिया।

यह तो एक साधारण-सिद्धान्त हुआ। तब उस साधारण सिद्धान्तसे गाउसने इस विशेष सिद्धान्तको भी सिद्ध किया कि वृत्तके भीतर सम-सप्तदश-भुज क्षेत्र केवल रूल और कंपास-की सहायतासे बन सकता है।

इसके बाद गाउसने सिद्ध किया कि यदि स भुजोंका क्षेत्र वृत्तके भीतर बनाया जा सकता है तो स का आकार निम्नलिखित प्रकारसे प्रकट किया जा सकता है—

$$अ \times २^न, \quad ४ \times २^न, \quad अ \times व \times \ldots\ldots \times २^न।$$

जब अ, व आदि भिन्न भिन्न दृढ़ अंक हैं और सबका आकार $२^म + १$ है जहाँ पर न शून्य अथवा अन्य कोई धनात्मक पूर्णाङ्क हो।

इस प्रकार गाउसने उस प्रश्नको हल कर दिया, जिसे दो हज़ार वर्षसे लोग हल करनेमें असमर्थ थे। यद्यपि गाउसने निश्चयात्मक रूपसे उक्त प्रश्नको हल कर दिया, परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि समबहुभुज क्षेत्रोंके विषयमें गाउसने सब कुछ हल कर दिया। इस प्रश्नके हल होनेपर एक और प्रश्न उत्पन्न हो गया और वह यह है कि म के किन किन मानोंके लिये $(२^म + १)$ एक दृढ़ संख्या है ?

यह तो बहुत ही सुगम बात है कि म को २ का कोई घात ही होना चाहिए, क्योंकि मान लिया कि म दोका कोई घात नहीं है, तो, या तो, यह विषम (ताख) होगा अथवा सम (जुस) और विषमका गुणनफल; और तब यह दृढ़ अंक हो ही नहीं सकता क्यों कि यह प्रत्यक्ष है कि

$\frac{२न + १}{क} + १$ में (क + १) का भाग लग जायगा।

तब, उक्त प्रश्न ऐसा रूप धारण कर लेता है कि, ल के किस मानके लिये $(२^{२^ल} + १)$ एक दृढ़ संख्या है।

ऐसे अंकोंको जिनका आकार $(२^{२^ल} + १)$ हो फ़र्माका (Format) अंक कहते हैं। यहांपर फ़र्माके अंकोंका अति-संक्षिप्त विवरण बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है। फ़र्माके अंकोंका इतिहास भी बहुत ही मनोरंजक है।

फ़र्मा फ्रांस देशका सत्रहवीं शताब्दीका सबसे बड़ा गणितज्ञ कहा गया है। परन्तु फ़र्माके अंकके विषयमें लिखनेके पूर्व इस विषयकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना उचित जान पड़ता है, कि वास्तवमें गाउसके इस अविष्कारका बड़ा ही महत्व है और यह इस बातका एक अच्छा उदाहरण है कि शुद्ध बीजगणितीय नियमोंकी सहायतासे भी शुद्ध रेखागणितके प्रश्नोंका हल हो जाना संभव है। कभी कभी तो ये दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। बीजज्यामितिके जानने वाले यह अच्छी तरहसे जानते हैं।

उक्त कथनसे स्पष्ट है कि वृत्तके भीतर समभुज क्षेत्रोंके बनाने और फ़र्माके अंकोंमें बहुत ही बड़ा घनिष्ट संबंध है। अतएव यहांपर फ़र्माके अंकोंका अति संक्षिप्त वर्णन कर दिया जाता है।

फ़र्माके अंकोंका वर्णन

फ़र्माके अंकोंसे उन सब अंकोंका अभिप्राय है जो सूत्र $(२^{२^न} + १)$ में शामिल हैं, न कोई धनात्मक पूर्णांक अथवा शून्य है। इन अंकोंको इस लेखमें एक ही अक्षर फ से प्राकाशित किया जायगा अर्थात् फ से फ़र्माके अंकका बोध होगा।

अतएव $फ_न = (२^{२^न} + १)$

$$\therefore फ_० = २^{२^०} + १ = ३$$

$$फ_१ = २^{२^१} + १ = ५$$

$$फ_२ = २^{२^२} + १ = १७$$

$$फ_३ = २^{२^३} + १ = २५७$$

$$\text{और } फ_४ = २^{२^४} + १ = ६५५३७$$

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये।

फ़र्मा (Fermat) ने अपना विश्वास प्रकट किया कि प्रत्येक फ एक दृढ़ अंक है, परन्तु उसने इसका कुछ भी प्रमाण नहीं दिया और उसने सबसे स्पष्ट रूपसे कह दिया कि मैं इसका प्रमाण नहीं दे सकता।

थोड़े दिनोंके बाद उसने कहा कि मेरा पूर्ण विश्वास है कि प्रत्येक फ एक दृढ़ संख्या है।

सं० १७१० वि० में फ़र्माने प्रसिद्ध गणितज्ञ पसकल (Pascal) को लिखा कि आप इसे सिद्ध कीजिए कि प्रत्येक फ एक दृढ़ संख्या है।

इसके कुछ दिनोंके बाद उसने यह लिखा कि यह प्रश्न एक विशेष नियमसे लग सकता है।

उसने उस नियमको लिख दिया परन्तु स्वयं कुछ भी सिद्ध नहीं कर सका।

फ्रैंकिलने फ़र्माको लिखा कि 'हां आपका साध्य ठीक है, मैं इसे सिद्ध कर सकता हूं'।

फ़र्माने कई बार फ्रैंकिलको लिखा कि आप अपने प्रमाणको प्रकाशित कर दीजिये। फ़र्माने यह भी लिखा कि यदि आप इसे सिद्ध करदें तो मैं इस साध्यकी सहायतासे और कई बातोंको सिद्ध कर दूंगा।

इसके बाद सी. एफ. गाउसने लिखा कि फ़र्माका कहना अशुद्ध है प्रत्येक फ़र्मांक दृढ़ संख्या नहीं हो सकता। परन्तु पी. मैनसन तथा आर. आर ने गाउसके इस कथनका खंडन किया।

इसके बाद एफ. एम. मरीसीनने फ़र्माके कथनका समर्थन किया। इसके बाद एल. आश्रोलरने सिद्ध कर दिया कि

$$फ_{५} = २^{३२} + १$$
$$= ६४१ \times ६७००४१७$$

यहांपर स्थान संकोचवश उस नियमका वर्णन नहीं किया जा सकता जिनकी सहायतासे यह फल निकाला गया।

इस प्रकार फ़र्माके मतका खंडन हो गया।

इसके बाद गाउसने सिद्ध किया कि सम-बहुभुज-क्षेत्र वृत्तके भीतर उसी दशामें बन सकता है, जब म का खंड २ या २ का कोई घात हो और दूसरा खंड एक ऐसा दृढांक हो जिसका आकार 'फ' हो और यदि म के खंड ऐसे न हों तो बनावट असंभव है।

इसके बाद जी. आइन्स्टाइन, ई. लूका तथा टी. पिपिनके पत्र इस संबंधमें छपे हैं।

सं० १६३३ वि० में जे. पी. ने लिखा कि $फ_{१२}$ का एक खंड ११४६६८६ है।

इसके बाद प्राथ, गेलिन तथा सिमेरका आदि गणितज्ञोंके लेख इस विषयपर छपे। एफ़्. लैंड्री फ्रांस देशका एक बहुत ही बुड्ढा गणितज्ञ था। फ़र्माके अंकोंके विषयमें बुढ़ापेमें काम करने लगा। उसने सोचा कि यदि एक भी प्रश्न हल होजायगा तो मेरा नाम गणित-संसारमें अमर हो जायगा। अतएव वह बुढ़ापेका एकदम ध्यान न करके सवाल लगानेमें भिड़ गया। जब इसने इस प्रश्नके विषयमें सोचना प्रारंभ किया तब इसकी अवस्था ८२ वर्षकी थी। कई महीनोंके परिश्रमके बाद उसने सिद्ध कर दिया कि

$$फ_{६} = २७४१७७ \times ६७२८०४२१३१०७२१ ।$$

उक्त बुड्ढेने यह भी सिद्ध कर दिया कि इन दोनों खंडोंमेंसे पहला दृढ़ है।

इसके बाद एल्. लेसर तथा जिराडीनने सिद्ध किया कि एफ़्. लैंड्का दूसरा खंड भी दृढ़ संख्या ही है।

इसके बाद ई० लूकाने कहा कि एफ़्. लैंड्के फल निकलनेके पूर्व ही मैंने सिद्ध कर दिया था कि $फ_{६}$ दृढ़ संख्या नहीं है।

सं० १६४२ वि० में पी. सीलोफ़ने कहा कि $फ_{३६}$ का एक खंड $५ \times २^{३६} + १$ है

इसके बाद इस विषयपर जे. हरमे, आर. एल., ई. लूका, एच्. शेफलर, डबल्यू २. आर. वाल, टी. एम्. पी., मालवीके पत्र छपे।

इसके बाद सं० १६५६ में क्लायनने कहा कि $फ_{७}$ दृढ़ अंक नहीं है। इसके बाद ए. हरविज़, जे. हेडामार्डके पत्र छपे।

सं० १६५५ वि० में ए. कनिंघमने सिद्ध किया कि $फ_{११}$ के दो खंड ३१६४८६ और ६७४८४६ हैं

सं० १६५६ वि० में ए. ई. वेस्टर्नने सिद्ध किया कि $फ_{६}$ का एक खंड $२^{१६} \times ३७ + १$ है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि $फ_{१८}$ का एक खंड $१३ \times २^{२०} + १$ और $फ_{१२}$ के खंडके भी दो खंड हैं। सं० १६६० वि० में एम्. सिपोला तथा नज़रवसकीके पत्र छपे। इसी समय कनिंघमका भी एक त्रप छपा।

सं० १६६१ वि० में थेरोल्डगासेटका पत्र छपा।

सं० १९६१ वि० में जे. सी. मोरहेडने क्लायनके मतका समर्थन किया। इसके बाद ए. ई० वेस्टर्नका पत्र छपा।

इसके बाद सं० १९६२ वि० में जे. सी. मोरहेडने सिद्ध किया कि $फ_{७१}$ का एक खंड $२^{७४} \times ५ + १$ है और यह एक दृढ़ अंक है।

इसके बाद कनिंघमका पत्र सं० १९६१ वि० तथा १९६३ वि० में, एच्. जे. उडलका सं० १९६३ वि० में, जे. सी. मोरहेडका १९६५ वि० में छपा था। कनिंघम के और कई पत्र इस बीच में छपे थे। इसके बाद वाकमैन और बिस्मनके पत्र छपे थे। (सं० १९६७ वि०)

सं० १९६७–६८ वि० में ए. जेराडिनने कहा कि $फ_{न} = (२४० य + ९७) \times (२४० र + १६१)$

सं० १९६८ वि० में सी. हेनरीने ज्ञात बातोंका उल्लेख किया।

सं० १९६९–७० वि० में आर. डी. कारमाइकलने एक पत्र लिखा था।

सं० १९७० वि० में आर. सी. आरचिबाल्डने ज्ञात बातोंका उल्लेख किया। इसके बाद इस ग्रंथके लेखकने एक पत्र कलकत्ताकी गणित-सभामें पढ़ा था।

यहींपर प्रथम भागका अन्त समझना चाहिए। अब दूसरे भागका वर्णन किया जायगा। यहांपर यह लिख देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है कि जिन बातोंका वर्णन अब आगे किया जाता है, उनके विषयमें संसारभरके किसी गणितज्ञने अभीतक विचार नहीं किया है और संसारकी किसी भाषामें इनका वर्णन अभीतक नहीं हुआ है।

लेखकको इस बातकी बड़ी प्रसन्नता है कि सबसे पहले हिन्दी भाषामें अभीष्ट सामयिक समीकरणका वर्णन किया गया। परन्तु यह विषय इतना कठिन है कि जो लोग वृत्तच्छेद (Cyclotomy) से भली भाँति परिचित नहीं हैं वे इसे समझ ही नहीं सकते। वृत्तच्छेदके अतिरिक्त समुदाय-सिद्धान्त गणित आदि विषयोंका जानना इसके समझनेके लिये अत्यावश्यक है।

२

बीजगणितीय वृत्तच्छेद

बीजगणितीय वृत्तच्छेदका प्रश्न बहुत पुराना नहीं है। वृत्तच्छेदीय समद्विभाग तथा समत्रिभागका प्रश्न बहुत ही सुगम है। इनका साधारण वर्णन सं० १९४२ वि० के पहले ही हो चुका था। वृत्तच्छेदीय सम चतुर्भागका वर्णन भी सं० १९२२ वि० में ही प्रारंभ किया गया परन्तु उस समय इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर नहीं दिया जा सका। इसके अनन्तर इस प्रश्नको ए. केलीने हल किया।

वृत्तच्छेदीय पञ्चविभाग

वृत्तच्छेदीय पञ्चविभागके विशेष प्रश्नका वर्णन ए. केलीके आविष्कार पत्रोंके पहले भी हो चुका था। परन्तु इसके साधारण प्रश्नका वर्णन केलीने लन्दनकी प्रधान गणितीय सभाके मुख पत्रके बारहवें तथा सोलहवें भागमें किया था। परन्तु केली इसे पूर्ण नहीं कर सका।

फिर इस प्रश्नका विचार टैनर तथा रोज़र आदि लोगोंने भी किया था। तदनन्तर इस प्रश्नका विचार अमेरिकाकी एक देवी ने अमेरिकाके एक प्रधान आविष्कार पत्रमें किया था। परन्तु उक्त देवीजीसे भी यह प्रश्न पूर्ण रूपसे हल नहीं हो सका।

इन सब लोगोंके अनन्तर सं० १९७१ वि० में इँगलैंडके प्रधान गणितज्ञ श्रीमान् डबल्यू. बर्नसाइडने वृत्तच्छेदीय-पञ्चविभागके प्रश्नोंको पूर्ण रूपसे हल कर दिया।

श्रीमान् बर्नसाइडने साधारण प्रश्नके विचार करनेके अनन्तर इस सिद्धान्तका प्रयोग विशेष दृढ़ संख्याओंके लिये किया था।

केलीने भी सौसे कम वाले संभाव्य सब दृढ़ संख्याओंका वर्णन किया था। इसके अनन्तर इस ग्रंथके लेखकने वृत्तच्छेदके कठिन प्रश्नोंका भी विचार प्रारम्भ कर दिया।

मुझे श्रीमान् बर्नसाइडके साधारण सूत्रमें अशुद्धता मालूम हुई। तब मैंने प्रारंभसे इन प्रश्नोंपर विचार किया और उक्त अशुद्धताकी ओर इँगलैंडके गणितज्ञोंका ध्यान आकर्षित किया तथा कई प्रबल युक्तियोंसे अपने कथनका समर्थन किया। मैंने उदाहरण देकर सिद्ध किया कि पांच सौसे कम वाले सब संभाव्य दृढ़ांकोंके लिये मेरा परिमार्जित सूत्र ठीक तथा श्रीमान् बर्नसाइडका सूत्र अशुद्ध है। मैंने यह सब बातें लिखकर इँगलैंडकी प्रधान गणित सभाके मंत्रीके पास भेज दिया। सभाके एक अधिवेशनमें मेरे अविष्कार-पत्रपर विचार किया गया और सभाके लोगोंमें मेरे पत्रके विषयमें तर्क वितर्क हुए। अन्तमें सभाने मेरे पत्रको प्रमाणित स्वीकार किया तथा अपने प्रधान मुख पत्रमें उसे छाप कर प्रकाशित कर दिया।

इस विषयपर मेरे कुछ और पत्र अमेरिका, जापान तथा भारतवर्षमें छपे हैं।

वृत्तच्छेदीय षट्विभाग

वृत्तच्छेदीय षट्विभागके विषयमें संसार भरके किसी गणितज्ञने अभीतक पूर्ण विचार नहीं किया है। संभव है कि किसी विशेष प्रश्नका विचार किया गया हो, परन्तु साधारण प्रश्नके विषयमें अभीतक विचार नहीं किया गया है।

इस छोटी पुस्तकमें वृत्तच्छेदीय षट्विभागके साधारण प्रश्नका विचार किया जायगा।

वस्तुतः, वृत्तच्छेद अङ्क सिद्धान्तका ही एक अंग है, परन्तु इस ग्रन्थमें समुदाय-सिद्धान्तकी सहायता ली गई है। अतएव जो लोग समुदाय-सिद्धान्त (Theory of groups) से परिचित नहीं हैं, वे इस पुस्तकको समझ ही नहीं सकते। जो लोग इसे समझना चाहते हों उन्हें अंग्रेज़ीमें समुदाय-सिद्धान्तकी पुस्तकोंको पढ़ना चाहिये। यों तो अंग्रेज़ी भाषामें भी समुदाय-सिद्धान्त संबंधी उत्तम पुस्तकोंका अभाव है क्योंकि इस विषयपर जर्मन तथा फ़रासीसी भाषाओंमें ही उत्तम उत्तम पुस्तकें लिखी गई हैं, तथापि वर्तमान पुस्तकके समझनेके लिये अंग्रेज़ी भाषामें प्राप्त पुस्तकें भी पर्याप्त होंगी।

उक्त कथनसे प्रकट है कि वृत्तच्छेद संबंधी पुस्तकोंके समझने तथा प्रश्नोंके हल करनेके लिये अंक सिद्धान्त तथा समुदाय-सिद्धान्त दोनोंसे परिचित होना चाहिये।

ऊपर लिखा गया है कि अमेरिकाकी एक देवीने 'वृत्तच्छेदीय पञ्चविभाग' के विषयमें एक आविष्कार पत्र अमेरिकाके एक प्रधान गणित-पत्रमें प्रकाशित किया था, मैंने भी 'वृत्तच्छेदीय षट्विभाग' सम्बन्धी एक पत्र उसी पत्रमें प्रकाशित करनेकी इच्छा की और उक्त पत्रके संपादकके यहाँ उक्त पत्र भेज दिया।

परन्तु संपादक महोदयने मेरे पास यों लिखा— 'कृपया इस पत्रको आप इङ्गलैंडके लन्दनकी प्रधान गणित सभामें भेज दीजिये, वहांसे श्रीमान् बर्नसाइडके पास पहुँच जायगा।'

मैं भी जानता था कि श्रीमान् बर्नसाइडके पास ही उक्त पत्रको भेजना चाहिये, क्योंकि अङ्क सिद्धान्त तथा समुदाय-सिद्धान्त सम्बन्धी उनके आविष्कार पत्रोंको मैंने पढ़ा था।

इसपर मेरे बहुतसे लेख जापान देशमें प्रकाशित हो चुके हैं और अब भी होते जाते हैं, परन्तु उन पत्रोंमें 'वृत्तच्छेदीय-षड्विभाग' सम्बन्धी विशेष प्रश्नोंका ही वर्णन किया गया है।

इस पुस्तकमें 'समुदाय' शब्दका प्रयोग इसके साधारण अर्थमें नहीं किया जायगा वरन् इसका प्रयोग उसी अर्थमें किया जायगा जिस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग समुदाय-सिद्धान्त सम्बन्धी पुस्तकोंमें होता है।

यदि यह पुस्तक 'समुदाय-सिद्धान्त' पर लिखी जाती तो इन अर्थोंकी व्याख्या की जाती परन्तु इसमें तो केवल 'समुदाय सिद्धान्त' का प्रयोग किया गया है वर्णन नहीं। तथापि समुदाय संबन्धी उन सिद्धान्तोंका संक्षिप्त वर्णन बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है जिनका प्रयोग इस ग्रन्थमें किया गया है।

जो लोग वृत्तच्छेदीय समीकरणों तथा समुदाय-सिद्धान्तसे परिचित हैं वे भली भाँति जानते है कि वृत्तच्छेदीय समीकरणोंका समुदाय चक्रीय होता है।

इस षड्विभागमें जिन समुदायोंकी आवश्यकता पड़ती है वे सब छः भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं, जिनका अति संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया गया है।

(१)

प्रथम समुदाय

भिन्न भिन्न प्रयोगोंके लिये स, स², स³...सⁿ आदिका प्रयोग किया जायगा।

उदाहरणके लिये वह समुदाय जिसका वीज स = ०१ लिया जा सकता है

इस प्रकार स = ०१
स² = १२
स³ = २३
स⁴ = ३४
स⁵ = ४५
और स⁶ = ५०

इस समुदायका प्रधान वीज और कोई लिया जा सकता है उक्त समुदायका घात ६ है। इस समुदायके सब घात भिन्न भिन्न हैं।

(२)

द्वितीय समुदाय

इस भागमें इस समुदायका वर्णन किया जायगा जिसका वीज स = ०१२३४५ है।

इस समुदायमें स = ०१२३४५
∴ स² = ५०१२३४
स³ = ४५०१२३
स⁴ = ३४५०१२
स⁵ = २३४५०१
स⁶ = १२३४५०

इस समुदायमें सब घात समान ही हैं और वृत्तच्छेदके प्रश्नके लिये सब क्रियाएं और भी सुगम हो जायंगी। इस समुदायका घात ६ है।

(३)

तृतीय समुदाय

इस समुदायका प्रधान वीज स = ०३, स = १४, स = २५ } में से कोई एक लिया जा सकता है।

यदि स = ०३ को लें
तो स = ०३
स² = ३०

यदि स = १४ को लें
तो स = १४
स² = ४१

यदि स=२५ को लें
तो स = २५
स² = ५२

इस प्रकार स = ०३
स = १४
स = २५

प्रत्येक वीजसे एक समुदाय बनता है जिसका घात दो है।

ये तीनों समुदाय एक ही बड़े समुदायके अङ्ग हैं अतएव इनको समुदाय-भाग कहनेकी प्रथा है।

(४)

चतुर्थ समुदाय

इस भागमें उस समुदायका विचार किया जायगा जिसके समुदाय भागोंका प्रधान वीज स = ०२४ अथवा स = १३५ है

जब स = ०२४

$स^२$ = ४०२

$स^३$ = २४०

जब स = १३५

$स^२$ = ५१३

$स^३$ = ३५१

बीज स = ०२४ से वह समुदाय बनता है जिसका घात ३ है। इसी प्रकार बीज स = १३५ से वह समुदाय बनता है जिसका घात ३ है।

यह दोनों समुदाय एक ही समुदायके अंग हैं। अतएव इन्हें समुदाय भाग ही कहना चाहिये।

तीसरे समुदायमें तीन छोटे छोटे समुदाय भाग हैं परन्तु वर्तमान समुदायमें केवल दो ही समुदाय भाग हैं।

(५)

पञ्चम समुदाय

इस भागमें उस समुदायका विचार किया जायगा जिसका प्रधान बीज स = १३४० है

जब स = १३४०

$स^२$ = ०२३५

$स^३$ = ५१२४

$स^४$ = ४०१३

$स^५$ = ३५०२

और $स^६$ = २४५१

इस प्रकार इस समुदाय का घात ६ है। परन्तु इसमें केवल तीन ही भिन्न भिन्न पद हैं।

(६)

षष्ठ समुदाय

इस समुदायके प्रधान बीज ०२ और १३ हैं

जब स = ०२

$स^२$ = २४

$स^३$ = ४०

जब स = १३

$स^२$ = ३५

$स^३$ = ५१

इस प्रकार इस समुदायमें दो समुदाय-भाग हैं।

अभीतक उन समुदायोंका वर्णन किया गया है जिनकी आवश्यकता पड़ती है। अब उस समीकरणके बनानेका वर्णन किया जायगा जो सामयिक समीकरण कहलाता है।

जो लोग सामयिक समीकरण (Periodic equation) से परिचित नहीं हैं उन्हें वृत्तच्छेद संबंधी पुस्तकोंको पढ़ना चाहिये।

वृत्तच्छेदीय सिद्धन्तोंके अनुसार यह प्रगटी ही है कि वृत्तच्छेदीय षड्विभावके सामयिक समीकरण-का घात ६ होगा और प्रत्येक सामयिक समीकरण-के मूलोंकी संख्या भी ६ होगी।

मान लिया कि साधारण सामयिक समीकरण-के मूल $य_०$, $य_१$, $य_२$, $य_३$, $य_४$, और $य_५$ हैं।

अब $य_०$ के लिये ०, $य_१$ के लिये १, $य_२$ के लिये २, $य_३$ के लिये ३, $य_४$ के लिये ४, $य_५$ के लिये ५ आदिका भी प्रयोग किया जायगा।

सामयिक समीकरणके सब बार द्योतक केवल ६ अक्षरोंके पदोंमेंही प्रकाशित किये गए हैं। यों तो पहले २१ अक्षर लिये गए हैं, परन्तु ये सब स्वतंत्र नहीं हैं, उनमें संबंध है और बीजगणित तथा वृत्तच्छेदके सिद्धान्तोंकी सहायतासे ये संबंध मालूम किए जा सकते हैं। अन्तमें ये सब २१ अक्षर ६ अक्षरोंमें परिणत हो जाते हैं।

एक प्रकारसे यह ६ अक्षर भी स्वतंत्र नहीं हैं क्योंकि इनमें भी सम्बन्ध हैं, जो साधारण समीकरण तथा वर्गादि समीकरणकी सहायतासे प्रकाशित किए जा सकते हैं।

सामयिक समीकरणके सब बार द्योतक ६ से भी कम अक्षरोंके पदोंमेंही प्रकाशित किये जा सकते हैं परन्तु कई कारणोंसे उन्हें ६ अक्षरोंके पदोंमें प्रकाशित करना अधिक अच्छा है।

अब पाठकोंका ध्यान उक्त सम्बन्धोंकी ओर आकर्षित किया जाता है। यहांपर इतना और लिख देना उचित जान पड़ता है कि संकेतोंके लिये अंग्रेज़ी आविष्कार पत्रोंको पढ़ना चाहिए

क्योंकि उन्हींके अनुसार यहांपर भी संकेतोंका प्रयोग किया गया है। यदि प्रत्येक संकेतके लिये कुछ कुछ लिखा जाय तो बहुत लिखना पड़ेगा, अतएव केवल उन्हीं संकेतोंके विषयमें थोड़ा लिख दिया जायगा जो बहुत प्रसिद्ध नहीं हैं।

उदाहरणके लिये एक संकेतका वर्णन दिया जाता है।

मान लिया कि $य_०^२ = अ\, य_० + व\, य_१$

इसे निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित करनेकी प्रथा है—

$$य_०^२ = (अ\ व)(य_०\ य_१)$$

इसी प्रकार $य_१\, य_२ = अ\, य_१ + व\, य_२ + स\, य_३ + द\, य_४$ को

$$य_१\, य_२ = (अ\ व\ स\ द)(य_१\ य_२\ य_३\ य_४)$$

से प्रकाशित करनेकी चाल है।

इसी प्रकारसे और भी समझना चाहिये।

मान लिया कि $य_०, य_१, य_२, य_३, य_४$ और $य_५$, साधारण 'वृत्तच्छेदीय षड्विभाग' के सामयिक समीकरणके मूल हैं और यह भी मान लिया कि

$$य_०^२ = (अ\ व\ स\ आ\ द\ इ)(य_०\ य_१\ य_२\ य_३\ य_४\ य_५)$$

$$य_०\, य_१ = (फ\ ज\ ह\ ई\ जे\ क)(य_०\ य_१\ य_२\ य_३\ य_४\ य_५)$$

$$य_०\, य_२ = (ल\,म\,न\,ओ\ प\ कू)(य_०\ य_१\ य_२\ य_३\ य_४\ य_५)$$

$$य_१\, य_३ = (कू\,ल\,म\,न\ ओ\,प)(य_०\ य_१\ य_२\ य_३\ य_४\ य_५)$$

$$और\ य_०\, य_३ = (र\,स\,त\ र\,स\,त)(य_०\ य_१\ य_२\ य_३\ य_४\ य_५)$$

जहांपर अ व स द......आदि अंक हैं। संभव है कि ये किसी विशेष दृढ़ अंकके लिये शून्य हों।

चक्रीय विचारोंकी सहायतासे, उक्त समीकरणोंसे और भी बहुत समीकरण उत्पन्न होंगे। इन समीकरणोंकी सहायतासे इन अक्षरोंके गुण मालूम किये जा सकते हैं।

इस पुस्तकमें उन सब दृढांकोंका ही वर्णन है जो (२ न+१) से प्रकाशित किये जा सकते हैं ऐसे अंकोंके लिये इसमें ख का प्रयोग किया जायगा और $\frac{ख-१}{६}$ के लिये ग का प्रयोग किया जायगा। इस बातका सर्वदा ध्यान रखना चहिये कि किसी दृढ़ांकके लिए ग एक बहुत ही प्रधान अंक है।

$$\frac{ख-१}{६} = ग$$

वृत्तच्छेदीय विचारोंसे प्रकट है कि

$$अ + व + स + आ + द + ई = ग - १$$

$$फ + ज + ह + ई + जे + क = ग$$

$$ल + म + न + ओ + प + कू = ग$$

$$और\quad र + स + त = \frac{ग}{२}$$

$$\left.\begin{aligned} \therefore \Sigma\, अ &= ग - १ \\ \Sigma\, फ &= \Sigma\, ल = ग \\ और\ \Sigma\, र &= \frac{ग}{२} \end{aligned}\right\} \cdots\cdots\cdots अ$$

यह बात भी सुगमतासे सिद्ध की जा सकती है कि

$$\left.\begin{aligned} \Sigma\, य_०\, य_१ &= \Sigma\, य_०\, य_२ = \Sigma\, य_०^२ = -ग \\ और\ \Sigma\, य_०\, य_३ &= \frac{५\, ग + १}{२} \end{aligned}\right\}$$

जो लोग समुदाय-सिद्धान्तसे परिचित हैं वे जानते हैं कि वृत्तच्छेदीय-समीकरणोंके समुदाय चक्रीय होते हैं।

$$\therefore य_०\, य_१\, य_५ = य_१\, य_०\, य_५ = य_५\, य_०\, य_१$$

$$\therefore य_०(य_१\, य_५) = य_१(य_०\, य_५) = य_५(य_०\, य_१)$$

पहले य० ($य_१\, य_५$) के विषयमें विचार किया जायगा।

$$\Sigma\, य_०\, (य_१\, य_५) = \Sigma\, य_०\, (मनओपकूल)(य_०\, य_१\, य_२\, य_३\, य_४\, य_५)$$

$$= -ग^२ + ५.\, ख.$$

इसी प्रकार Σ य$_1$ (य$_0$ य$_5$) = Σ य$_1$ (ज ह ई जे क फ) (य$_0$ य$_1$ य$_2$ य$_3$ य$_4$ य$_5$)

$$= -ग^2 + क. ख$$

इसी प्रकार Σ य$_5$ (य$_0$ य$_1$) = Σ य$_5$ (फजह ईजेक) (य$_0$ य$_1$ य$_2$ य$_3$ य$_4$ य$_5$)

$$= -ग^2 + ह. ख.$$

परन्तु प्रत्येक दशामें मान एक ही होना चाहिये।

$$\therefore प = क = ह$$

इस प्रकार प, क और ह में संबंध मालूम हो गया और यह सिद्ध हो गया कि तीनो आपसमें समान हैं और तीनोंके लिये किसी एक ही अक्षर का प्रयोग किया जा सकता है। इन संबंधोंकी सहायतासे इन २१ अक्षरोंकी संख्या घटाई जा सकती है।

इसी प्रकार यदि य$_0$ य$_3$ य$_5$ का विचार किया जाय तो सिद्ध हो सकता है कि

$$त = ज = ल।$$

प्रत्येक दशामें क्रिया स्पष्ट करनेसे ग्रंथका आकार बढ़ जायगा अतएव केवल फल मात्र यहां दिये जाते हैं। परन्तु जो लोग उन क्रियाओंको करना चाहें, वे उक्त नियमानुसार सुगमतासे क्रिया कर सकते हैं।

इसी प्रकार यदि य$_1$ य$_4$ य$_5$ का विचार किया जाय तो सिद्ध हो सकता है कि

$$स = फ = न।$$

अब य$_0$ य$^2_5$ के विषयमें विचार किया जायगा।

य$_0$ (य$^2_5$) = य$_5$ (य$_0$ य$_5$)

$\therefore \Sigma$य$_0$ (य$^2_5$) = Σय$_0$ (ब स आ द इ आ) (य$_0$ य$_1$ य$_2$ य$_3$ य$_4$ य$_5$)

$$= -ग^2 + द. ख.$$

और Σ य$_5$ (य$_0$ य$_5$) = Σय$_5$ (जहई जे कह) (य$_0$ य$_1$ य$_2$ य$_3$ य$_4$ य$_5$)

$$= -ग^2 + ई. ख.$$

$\therefore$ द = ई

इसी प्रकार क्रिया करनेसे हम लोग सिद्ध कर सकते हैं कि

स = जे; (य$_5$ य$^2_0$ से)

इ = अ; (य$_2$ य$^2_0$ से)

क़ = ब; य^2 य$_0$ से

र = अ; य$_0$ य$^2_3$ से

इन संबंधोंकी सहायतासे उक्त समीकरण निम्न लिखित रूप धारण कर लेते हैं—

य$^2_0$ (अ व स आ द इ) (य$_0$ य$_1$ य$_2$ य$_3$ य$_4$ य$_5$)

य$_0$ य$_1$ = (फ ज ह द स ह) (य$_0$ य$_1$ य$_2$ य$_3$ य$_4$ य$_5$)

य$_0$ य$_2$ = (ज म फ इ ह ब) (य$_0$ य$_1$ य$_2$ य$_3$ य$_4$ य$_5$)

य$_0$ य$_3$ = (अ फ ज अ फ ज) (य$_0$ य$_1$ य$_2$ य$_3$ य$_4$ य$_5$)

इस प्रकार अक्षरोंकी संख्या बहुत ही कम हो गई और सब वार द्योतक इन अक्षरोंके पदोंमें प्रकाशित किये जा सकते हैं।

अब वारद्योतकोंके निकालनेका प्रयत्न किया जायगा।

य^6 का वारद्योतक

जो लोग वृत्तच्छेदके साधारण सिद्धान्तोंसे परिचित हैं वे जानते हैं कि य^6 का वारद्योतक १ होगा।

य^5 का वारद्योतक

य^5 का वारद्योतक = −(य$_0$ + य$_1$ + य$_2$ + य$_3$ + य$_4$ + य$_5$)

$$= -(-1)$$

$$= 1$$

य^4 का वारद्योतक

य^4 के वार द्योतकके निकालनेके लिये पन्द्रह पदोंका विचार करना पड़ेगा। जो लोग अंक पाश नामक गणित विभागसे परिचित हैं वे सुगमतासे इसे समझ सकते हैं।

इन पन्द्रह पदोंमें केवल तीन ही स्वतंत्र हैं। और सब, इन्हीं पदोंसे चक्रीय परिवर्त्तनों की सहायतासे निकाले जा सकते हैं।

$य_0 य_1, य_0 य_2$ और $य_0 य_3$ स्वतंत्र पद हैं और सब इनसे चक्रीय परिवर्त्तनोंकी सहायतासे निकाले जा सकते हैं।

समीकरण (ब) की सहायतासे

$$\therefore \Sigma य_0 य_1 + \Sigma य_0 य_2 + \Sigma य_0 य_3$$

$$= (-ग) + (-ग) + \frac{५ग+१}{२}$$

$$= \frac{ग+१}{२}$$

अतएव $य^४$ का वारद्योतक $\frac{ग+१}{२}$ हुआ।

$य^३$ का वारद्योतक

$य^३$ का वारद्योकक निकालनेके लिये बीस पदोंका विचार करना पड़ेगा। पहले पहल $य_0 य_1 य_2$ का विचार किया जायगा। इस पदसे पाँच और पद प्राप्त हो सकते हैं। इसलिये चक्रीय परिवर्त्तनकी सहायता लेनी होगी।

इसी प्रकार $य_0 य_1 य_3$ से भी चक्रीय परिवर्त्तनोंकी सहायतासे पाँच और पद प्राप्त हो सकते हैं।

उक्त रीतिके अनुसार $य_0 य_1 य_4$ से भी पाँच और पद प्राप्त हो सकते हैं।

इस प्रकार अठारह पदोंका विचार हो गया। केवल $य_0 य_2 य_4$ और $य_1 य_3 य_5$, दो पद विचारनेके लिये रह गए हैं।

०२४ से चक्रीय परिवर्त्तनकी सहायतासे ४०२ और २४० प्राप्त होते हैं। अतएव इस समुदायका घात ३ है और प्रत्येकमें एक ही विषय आता है।

इसी प्रकार १३५ से ५१३ और ३५१ प्राप्त होता है। इस प्रकार उस समुदायका घात भी ३ ही है जिसका बीज १३५ है और प्रत्येकमें एक ही पद आता है भिन्न भिन्न नहीं।

अतएव इन दोनोंका मान निकालकर तीनसे भाग दे देना चाहिए।

पहिले $\Sigma य_0 य_1 य_2$ का विचार होना चाहिए।

$$\Sigma य_0 य_1 य_2 = फ \Sigma य_2 य_0 + ज \Sigma य_2 य_1 + ह \Sigma य^२_2 + द \Sigma य_2 य_3 + स \Sigma य_2 य_4 + ह \Sigma य_2 य_5$$

$$= फ (-ग) + ज (-ग) + ह (-ग) + द (-ग) + स (-ग) + ह (५ग+१)$$

$$= -ग^२ + ह.ख$$

$$\Sigma य_0 य_1 य_3 = फ \Sigma य_3 य_0 + ज \Sigma य_3 य_1 + ह \Sigma य_0 य_3^२ + स \Sigma य_3 य_4 + ह \Sigma य_3 य_5$$

$$= फ (५ग+१) + ज (-ग) + ह (-ग) + द (-ग) + स (-ग) + ह (-ग)$$

$$= -ग^२ + फ.ख.$$

इसी प्रकार $\Sigma य_0 य_1 य_4 = -ग^२ + ज.ख$ [थोड़ेमें लिखनेके लिये पूर्ण क्रिया नहीं दिखलाई गई]

$$\Sigma य_0 य_2 य_4 + \Sigma य_1 य_3 य_5 = ज \Sigma य_4 य_0 + म \Sigma य_4 य_1 + फ \Sigma य_4 य_2 + इ \Sigma य_4 य_3 + ह \Sigma य^२_4 + ब \Sigma य_4 य_5$$

$$= ज(-ग) + म(५ग+१) + फ(-ग) + इ(-ग) + ह(-ग) + ब(-ग)$$

$$= -ग^२ + म.ख$$

$$\therefore य_0 य_2 य_4 + य_1 य_3 य_5 = \frac{-ग^२ + म.ख}{३}$$

$$\Sigma य^३ \text{ का वारद्योतक} = \frac{१०ग^२}{३} - (ह + भ + ज + \frac{म}{३}) ख$$

$य^२$ का वारद्योतक

$य^२$ के वारद्योतकके निकालनेके लिये पन्द्रह पदोंका विचार करना पड़ेगा। परन्तु इन पन्द्रह पदोंमें केवल तीन ही स्वतंत्र हैं और सब इन्हीं तीन पदोंसे चक्रीय परिवर्त्तनकी सहायतासे प्राप्त हो सकते हैं—

तीनों स्वतंत्र पद ये हैं—

$य_0 य_2 य_4 य_5$, $य_0 य_3 य_4 य_5$ और $य_1 य_3 य_4 य_0$

$$\Sigma य_0 य_2 य_4 य_5 = फ \Sigma य_0 य_2 य_4 \Sigma + ज \Sigma य_0 य_2 य_5 + ह \Sigma य^२_0 य_2$$

$$+ द\Sigma य_० य_२ य_१ + स\Sigma य_० य_२^२ + ह\Sigma य_० य_२ य_३ + फ\Sigma य_४ य_३ य_५$$

$\Sigma य_० य_२ य_४$, $\Sigma य_१ य_३ य_५$, $\Sigma य_० य_२ य_५$, $\Sigma य_० य_२ य_१$ और $य_० य_२ य_३$ का मान $य^३$ के वारद्योतकके निकालनेके समय निकाला गया था। यहांपर केवल दो पदोंका मान निकालना चाहिए।

ये दोनों पद $\Sigma य_०^२ य_२$ और $\Sigma य_२^२ य_०$ हैं।

इनका मान निम्नलिखित प्रकारसे निकल सकता है—

$$\Sigma य_०^२ य_२ = अ\Sigma य_० य_२ + ब\Sigma य_२ य_१ + स\Sigma य_२^२ + आ\Sigma य_२ य_३ + द\Sigma य_२ य_४ + इ\Sigma य_२ य_५$$

$$= अ(-ग) + ब(-ग) + स(-ग) + आ(-ग) + द(-ग) + इ(५ ग + १)$$

$$= -ग^२ + इ.ख.$$

इसी प्रकार $\Sigma य_० य_२^२ = अ\Sigma य_० य_२ + ब\Sigma य_० य_३ + स\Sigma य_० य_४ + आ\Sigma य_० य_५ + द\Sigma य_०^२ + ई\Sigma य_० य_१$

$$= अ(-ग) + ब(५ ग + १) + स(-ग) + आ(-ग) + द(-ग) + इ(-ग)$$

$$= -ग^२ + ब\cdot ख\cdot$$

$$\therefore \Sigma य_० य_२ य_४ य_५ = फ(-ग^२ + म\cdot ख) + ज(-ग_२ + फ\cdot ख) + ह(-ग^२ + इ\cdot ख) + द(-ग^२ + ह\cdot ख) + स(-ग_२ + ब\cdot ख) + ह -ग^२ + ज\cdot ख)$$

$$= -ग^२ + (फम + जफ + हई + दह + सब + हज)\cdot ख$$

$$= -ग^२ + म_१\cdot ख$$

जब $म_१ = फम + जफ - हइ + दह + सब + हज$

$$\Sigma य_० य_३ य_४ य_५ = फ\Sigma य_० य_५ य_३ + ज\Sigma य_० य_५ य_४ + ह\Sigma य_० य_५^२ + द\Sigma य_०^२ य_५ + स\Sigma य_० य_५ य_१ + ह\Sigma य_० य_५ य_२$$

इनमें चार पदोंका मान मालूम है। परन्तु दो पदोंका मान निकालना है। ये दोनों पद $य_०^२ य_५$ $\Sigma य_०^२ य_५$ हैं। और पदोंका मान $य^२$ के वारद्योतकके निकालनेमें निकाला गया है।

$$\Sigma य_० य_५^२ = अ\Sigma य_० य_५ + ब\Sigma य_०^२ + स\Sigma य_० य_१ + आ\Sigma य_० य_२ + द\Sigma य_० य_३ + इ\Sigma य_० य_४$$

$$= अ(-ग) + ब(-ग) + स(-ग) + आ(-ग) + द(५ग + १) + इ(-ग)$$

$$= -ग^२ + द\cdot ख\cdot$$

$$\Sigma य_०^२ य_५ = अ\Sigma य_५ य_० + ब\Sigma य_५ य_१ + स\Sigma य_५ य_२ + आ\Sigma य_५ य_३ + स\Sigma य_५ य_३ + इ\Sigma य_५^२$$

$$= अ(-ग) + ब(-ग) + स(५ग + १) + आ(-ग) + द(-ग) + इ(-ग)$$

$$= -ग^२ + स\cdot ख$$

$$\therefore \Sigma य_० य_३ य_४ य_५ = फ(-ग^२ + ज\cdot ख) + ज(-ग^२ + ह\cdot ख) + ह(-ग^२ + द\cdot ख) + द(-ग^२ + स\cdot ख) + स(-ग^२ + ह\cdot ख) + ह(-ग^२ + फ\cdot ख)$$

$$= -ग^२ + (फज + जह + हद + दस + सह + हफ)\cdot ख$$

$$= -ग^२ + म_२\cdot ख$$

जब $म_२ = फज + जह + हद + दस + सह + हफ$

$$\Sigma य_१ य_२ य_४ य_५ = फ\Sigma य_२ य_५ य_१ + ज\Sigma य_४ य_५ य_२ + ह\Sigma य_४ य_५ य_३$$
$$द\Sigma य_४^२ य_५ + स\Sigma य_४ य_५^२ + ह\Sigma य_४ य_५ य_०$$

$$= फ(-ग^२ + फ\cdot ख) + ज(-ग^२ + ज\cdot ख) + ह(-ग^२ + ह\cdot ख) + द(-ग^२ + द\cdot ख) + स(-ग + स\cdot ख) + ह(-ग^२ + ह\cdot ख)$$

$$= -ग^३ + (फ^२ + ज^२ + ह^२ + द^२ + स^२ + ह^२)\cdot ख\cdot$$

परन्तु $\Sigma य_१ य_२ य_४ य_५ = य_१ य_३ य_४ य_० + य_० य_२ य_३ य_५ + य_५ य_१ य_२ य_४ + य_४ य_० य_१ य_३ + य_३ य_५ य_० य_२ + य_२ य_४ य_५ य_१$

$य_१ य_२ य_४ य_५ + य_५ य_० य_२ य_३ + य_३ य_४ य_० य_१$ का मान

$$= \frac{-ग^३ + (फ^२ + ज^२ + ह^२ + द^२ + स^२ + ह^२)\cdot ख}{२}$$

$$= -\frac{ग^२}{२} + म_३ \cdot \frac{ख}{२}.$$

जब $म_३ = फ^२ + ज^२ + ह + द^२ + स^२ + ह^२$

$\therefore य^२$ का बारद्योतक $= \frac{-५य^२}{२} + (म_१ + म_२ + \frac{म_३}{२}) \cdot ख.$

य का बारद्योतक

य के बारद्योतकके निकालनेके लिये ६ पदों-का विचार करना पड़ेगा। परन्तु उनमेंसे केवल एक ही पद स्वतन्त्र है। उसीसे सब दूसरे पद चक्रीय परिवर्त्तनकी सहायतासे प्राप्त हो जायँगे। वह स्वतन्त्रपद $य_०य_१य_२य_३य_४$ है।

$$\Sigma य_०य_१य_२य_३य_४$$
$$= फ\Sigma य_२य_३य_४य_० + ज\Sigma य_२य_३य_४य_१ + ह\Sigma य^२_२य_३य_४ + द\Sigma य_२य^२_३य_४ + स\Sigma य_२य_३य_४य_४ + ह\Sigma य_२य_३य_४य_५$$

इनमें तीन पदोंका ही मान निकालना होगा और तीन पदोंका मान $य^२$के बार द्योतकके निकालनेमें ही निकाला जा चुका है।

जिन तीन पदोंका मान निकालना है वह $\Sigma य^२_२य_३य_४ + \Sigma य_२य^२_३य_४$ और $\Sigma य_२य_३य^२_४$ हैं

प्रत्येकका मान लिम्नलिखित प्रकारसे निकाला जा सकता है।

$$\Sigma य^२_२य_३य_४ = फ\Sigma य^२_२य_४ + ज\Sigma य_२य_४य_३ + ह\Sigma य_२य^२_४ + द\Sigma य_२य_४य_५ + स\Sigma य_२य_४य_० + ह\Sigma य_२य_४य_१$$
$$= फ(-ग^२ + ह\cdot ख) + ज(-ग^२ + ह\cdot ख) + ह(-ग^२ + ब\cdot ख) + द(-ग^२ + ज\cdot ख) + स(-ग^२ + म\cdot ख) + ह(-ग^२ + फ\cdot ख)$$
$$= -ग^२ + (फह + जह + हब + दज + सम + हफ)\cdot ख$$
$$= -ग^२ + स_१\cdot ख.$$

जब $स_१ = फह + जह + हब + दज + सम + हफ$

$$\Sigma य_२य^२_३य_४ = फ\Sigma य_३य_४य_२ + ज\Sigma य^२_३य_४ + ह\Sigma य_३य^२_४ + द\Sigma य_३य_४य_५ + स\Sigma य_३य_४य_० + ह\Sigma य_३य_४य_१$$
$$= फ(-ग^२ + ह\cdot ख) + ज(-ग^२ + द\cdot ख) + ह(-ग^२ + स\cdot ख) + द(-ग^२ + ह\cdot ख) + स(-ग^२ + फ\cdot ख) + ह(-ग^२ + ज\cdot ख)$$
$$= -ग^२ + (फह + जद + हस + दह + सफ + हज)\cdot ख$$
$$= -ग^२ + स_२\cdot ख$$

जब $स_२ = फह + जद + हस + दह + सफ + जह$

इसी प्रकार

$$\Sigma य_२य_३य^२_४ = फ\Sigma य_२य_४य_३ + ज\Sigma य_२य^२_४ + ह\Sigma य_२य_४य_५ + द\Sigma य_२य_४य_० + स\Sigma य_२य_४य_१ + ह\Sigma य^२_२य_४$$
$$= फ(-ग^२ + ह\cdot ख) + ज(-ग^२ + ब\cdot ख) + ह(-ग^२ + ज\cdot ख) + द(-ग^२ + म\cdot ख) + स(-ग^२ + फ\cdot ख) + ह(-ग^२ + ह\cdot ख)$$
$$= -ग^२ + (फह + जब + हज + दम + सफ + हह)\cdot ख$$
$$= -ग^२ + स_३\cdot ख$$

जब $स_३ = फह + जब + हज + दम + सफ + हह$

$$\therefore \Sigma य_०य_१य_२य_३य_४ = फ(-ग^२ + म_१ ख) + ज(-ग^२ + म_२\cdot ख) + ह(-ग^२ + स_१ ख) + द(-ग^२ + स_२\cdot ख) + स(-ग^२ + स_३\cdot ख) + ह(-ग^२ + म^२ ख\cdot)$$
$$= -ग^४ + (फम_१ + जम_२ + हस_१ + दस_२ + सस_३ + हम_२)$$
$$= -ग^४ + न_१\cdot ख$$

जब $न_१ = फम_१ + जम_२ + हस_१ + दस_२ + सस_३ + हम_४$

$\therefore$ य का बारद्योतक $= ग^4 - न_1 \cdot ख$

अन्तिम पदका मान

इस भागमें केवल एक ही पदका विचार करना है। परन्तु बीज $य_0, य_1, य_2, य_3, य_4, य_5$ एक ऐसे समुदायका बनानेवाला है जिसका घात ६ है।

$$स = ०१२३४५$$
$$\therefore स^2 = ५०१२३४$$
$$स^3 = ४५०१२३$$
$$स^4 = ३४५०१२$$
$$स^5 = २३४५०१$$
$$स^6 = १२३४५०$$

इस प्रकार सिद्ध हो गया कि उक्त समुदायके सब घातोंमें कोई विभिन्नता नहीं है। अतएव समुदायका मान निकालकर ६ से भाग दे देनेसे अन्तिम पदका मान निकल सकता है।

$$\Sigma य_0 य_1 य_2 य_3 य_4 य_5 = फ\Sigma य_0 य_1 य_2 य_3 य_4 + ज\Sigma य_0 य_1 य_2 य_3 य_5 + ह\Sigma य_0 य_0 य_1 य_2 य_3 + द\Sigma य_0 य_1 य_1 य_2 य_3 + स\Sigma य_0 य_1 य_2 य_2 य_3 + ह\Sigma य_0 य_1 य_2 य_3 य_3$$

जिनमें वर्ग हैं केवल उन्हीं पदोंका मान निकालना होगा, क्योंकि शेष पदोंका मान निकाला जा चुका है।

$$\Sigma य^2_0 य_1 य_2 य_3 = अ\Sigma य^2_0 य_1 य_2 + फ\Sigma य_0 य^2_1 य_2 + ज\Sigma य_0 य_1 य^2_2 + अ\Sigma य_0 य_1 य_2 य_3 + फ\Sigma य_0 य_1 य_2 य_4 + ज\Sigma य_0 य_1 य_2 य_5$$
$$= -ग^4 + (अस_1 + फस_2 + जस_3 + अम_2 + फम_1 + जम_2) \cdot ख$$
$$= -ग^4 + न'_1 \cdot ख$$

जब $न'_1 = अस_1 + फस_2 + जस_3 + अम_2 + फम_1 + जम_2$

इसी प्रकार $\Sigma य_0 य^2_1 य_2 य_3 = -ग^4 + (जस_2 + मस_3 + फम_2 + इम_1 + हम_2 + वस_1) \cdot ख$
$$= -ग^4 + न'_2 \cdot ख$$

जब $न'_2 = जस_2 + मस_3 + फम_2 + इम_1 + हम_2 + वस_1$

इसी प्रकार $\Sigma य_0 य_1 य^2_2 य_3 = -ग^4 + (फस_3 + अम_2 + हम_1 + दम_2 + सस_1 + हस_2) \cdot ख$
$$= -ग^4 + न'_3 \cdot ख$$

जब $न'_3 = फस_3 + अम_2 + हम_1 + दम_2 + सस_1 + हस_2$

इसी प्रकार $\Sigma य_0 य_1 य_2 य^2_3 = -ग^4 + (अम_2 + फस_1 + जस_2 + अस_3 + फम_2 + जम_1) \cdot ख$
$$= -ग^4 + न'_4 \cdot ख$$

जब $न'_4 = अम_2 + फस_1 + जस_2 + अस_3 + फम_2 + जम_1$

$$\therefore \Sigma य_0 य_1 य_2 य_3 य_4 य_5 = -ग^5 + (फन_1 + जन_1 + हन'_1 + दन'_2 + सन'_3 + हन'_4) \cdot ख$$

$$\therefore अन्तिमपद = \frac{1}{6}\{-ग^5 + (फन_1 + जन_1 + हन'_1 + दन'_2 + सन'_3 + हन'_4)\}$$

अब सामयिक समीकरणके सब बारद्योतकोंका मान मालूम हो गया तथा अन्तिम पदोंका भी मान मालूम हो गया। अतएव साधारण सामयिक समीकरणका पूर्ण रूप निश्चित किया जा सकता है।

अब प्रकट है कि अभीष्ट समीकरणका रूप निम्नलिखित होगा—

$$य^6 + य^5 + \left(\frac{ग+१}{२}\right)य^4 + \left\{\frac{१०ग^2}{३} - \left(ह+फ+ज+\frac{म}{३}\right)\cdot ख\right\}य^3 + \left\{-\frac{५ग^3}{२} + \left(म_1+म_2+\frac{म_3}{२}\right)\cdot ख\right\}य^2 + \left\{ग^4 - न_1 \cdot ख\right\}य + \frac{1}{6}\left\{-य^5 + (फन_1 + जन_1 + हन'_1 + दन'_2 + सन'_3 + हन'_4)ख\right\} = ०$$

मिथ्योपचार

[ले० श्री० रामदास गौड़, एम० ए०]

(१) मिथ्योपचार क्या है ?

वास्तविक चिकित्सक स्वभाव है जो शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए भरपूर उद्योगमें रहता है, और सबसे उत्तम चिकित्सा वही है जिससे स्वभावको सहायता मिले। जिस किसी उपायसे स्वभावके काममें बाधा पड़े वह अवश्य ही मिथ्या उपचार है और वर्ज्य है। चिकित्साके जितने उपाय प्रचलित हैं उनमें अनेकका लक्ष्य स्वभावकी सहायता है, परन्तु उन उपायोंका देश काल पात्र के अनुसार सदुपयोग करने वाले चिकित्सक कम हैं। ज्वर आया हुआ है, भूख नहीं लगती परन्तु अनेक डाक्टर लंघनके बदले दूध साबूदाना आदि देते हैं और उसे कुपथ्यके बदले "पथ्य" कहते हैं। प्यास तेज़ लग रही है, ठंढा जल देनेसे गरमी कुछ शान्त होगी, ताप मिटेगा, परन्तु या तो पानी मना कर देते हैं या गरम दिलवाते हैं। शुद्ध वायु और रोशनी लाभकारी है, परंतु रोगी बेचारेको ईश्वरकी दी हुई यह नियामतें, जो स्वभावको सहायता देने वाली हैं, कम मिलती हैं। यह मिथ्योपचारके दो एक उदाहरण हैं जिसके दोषी साधारणतया वैद्य, डाक्टर, हकीम सभी पद्धतिके चिकित्सक होते हैं। यह प्रायः व्यवहारका दोष होता है, सिद्धान्तका नहीं। आयुर्वेद-में प्रकृतिकी सहयता तो एक खास बात है। परन्तु पाश्चात्य पद्धतिमें भी यह बात पूरी तौरसे मानी जाती है। यूनानी हकीमोंका यही सिद्धान्त है। सबसे पुराने हकीम बुकरात मशहूर हैं। संभव है कि इन्होंने आयुर्वेदकी शिक्षा पायी हो। एंसाइक्लोपीडिया ब्रिटा-निका में इनके सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन करते हुए उस निबन्धके लिखने वालेने कहा है—'बुकरातका एक दूसरा सिद्धान्त है जिसका प्रभाव अभी बना हुआ है। यह है, स्वभावकी स्वयं रोग निवारण की शक्ति। परन्तु बुकरातकी यह शिक्षा न थी कि रोग निवा-रणके लिये प्रकृति काफी है, क्योंकि बुकरात चिकित्सा और उपचारकी कलाको मानता था। उग्र रोगोंमें तो वह इतना जरूर मानता था कि वात, पित्त, कफमें स्वाभाविक विकार उत्पन्न होते हैं, पहिले यह विकार विष और मलके रूपमें होते हैं, फिर इनका पाचन होता है, और अन्तमें वह शरीरके किसी न किसी मार्गसे निकल जाते हैं। चिकित्सकका कर्तव्य है कि इन विकारोंको पहिलेसे समझ ले, स्वभावकी सहायता करे, या कमसे कम स्वभावके काममें बाधा न डाले, जिसमें चिकित्सककी सहायतासे रोगी रोगपर विजयी होजाय। संकट काल चिन्ताका विषय था और बुकरातके अनुयायी हकीमोंमें यही विशेषता थी कि संकट कालका आन्दाज़ा पहिलेसे कर लेते थे और ठीक ठीक बतला देते थे। कहा जाता है कि बुकरात फीसागोरसके सांख्यतत्वको भी मानता था और उसके अनुसार वह यह स्पष्ट बता देता था कि कितने युग्म या फूट दिनोंके पीछे संकट काल आवेगा। इसके लिये कुछ हिसाब था। अंकगणितकी सहायता ली जाती थी। बुकराती हकीमोंमें "बुहरान" अर्थात संकट कालका भविष्यवाद एक विशेषता थी। इस गुणमें उनके मुकाबलेका आजतक कोई हुआ ही नहीं। निदानकी रीतियां अवश्य ही अपूर्ण रही होंगी। क्योंकि रोगोंका वैज्ञानिक विवेचन, और देह व्यव-च्छेद आदिके आजकलकेसे उत्तम साधन उपलब्ध न थे। तो भी रोगके लक्षणोंपर बड़ी गंभीरतासे और शुद्धता और बारीकीसे विचार किया जाता था और बड़ी चतुराई और कौशलसे उनका अर्थ लगाया जाता था। आजकल बुकरातकी रचनाओंमें नाड़ी विज्ञान नहीं पाया जाता, परंतु उनके अनुयायियोंमें नाड़ी विज्ञानपर अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं।

चिकित्साके सिलसिलेमें उनके अनुयायी पथ्य-पर विशेष ध्यान देते थे। रोग भेदसे बड़ी बारीकीके साथ पथ्य भेद भी होता था। जीर्ण रोगोंमें तो पथ्यो-पचार, विशेष ढंगसे व्यायामादि और स्वभाविक रीतियोंपर निर्भर करते थे।'

इस अवतरणसे इतना तो स्पष्ट होजाता है कि आधुनिक डाक्टरी उपचारोंके जन्मदाता बुकरात

नहीं हैं। हमारे देशमें जिस तरह चरककी काष्ठ औषधि प्रधान चिकित्सा प्रमुख रसायनिक नागार्जुनके समयमें रस प्रधान चिकित्सासे बदल गयी, उसी तरह पाश्चात्य देशोंमें भी यूनानके चरक बुकरातकी स्वभाव-प्रधान चिकित्सा आधुनिक रासायनिक रीतियोंमें डूब गई। इस स्थलपर हमारा-विषय यह निर्णय नहीं है कि किस किस प्रकारसे भारतीय आयुर्वेद प्रकृत वा विकृत रूपमें पाश्चात्य देशोंमें पहुँचा और किस प्रकार आधुनिक डाक्टरी प्रथा विज्ञानके उत्तरोत्तर विकासके कारण अपने पुराने आयुर्वैदिक रूपसे नितान्त भिन्न पद्धति बन गयी है। हम इतना ही कहेंगे कि प्रचलित पाश्चात्य अलोपैथी बुकरातके सिद्धान्तोंसे बिलकुल अलग होते हुए भी इस बातको मानती है कि डाक्टरका काम है प्रकृतिकी सहायता। परन्तु व्यवहारमें इस बातपर अत्यन्त कम ध्यान देते हैं। प्रकृति तो चाहती है कि रोग उग्र रूप धारण करके मलों और विषोंको दूर करे। इसमें रोगीको अत्यन्त कष्ट होना बिलकुल स्वाभाविक है, एक दम अनिवार्य्य है। परन्तु रोगीका लक्ष्य होता है कष्ट निवारण। चाहे जैसा हो, वह यही चाहता है कि हम कष्टसे बचे रहें। विषयका अनावश्यक उपभोग करके जो अधिक अनुर्बर्जित सुख भोग चुका है उसके प्रायश्चित्तमें दुःख भोगना पसन्द नहीं। इस बातको वह बिलकुल भूल जाता है कि हमें पूर्व कर्मोंका प्रायश्चित्त ज़रूरी है। सरकी पीड़ा दूर करनेको चन्दन घिसनेकी दर्दसरी भी औरोंके माथे मढ़ता है।

लोग कहते हैं कि सन्दल दर्दसरकी है दवा।
कूटना घिसना लगाना दर्दसर यह भी तो है?

रोगी बिलबिलाता है, छटपटाता है, और उसकी सेवा करनेवाले हितू उसका कष्ट देख नहीं सकते। वह इसी उद्देश्यसे डाक्टर, हकीम, वैद्यको बुलाते हैं कि रोगीकी घबराहट और पीड़ामें, कष्टमें कमी हो। इस प्रधान लक्ष्यके साथ यह गौण उद्देश्य तो रहता ही है कि रोग दूर हो जाय। सच्चा समझदार और योग्य चिकित्सक तो स्वाभावकी सहायता करने वाली चिकित्सा करता है। रोगीका उपस्थित कष्ट उसके उपचारसे दूर भी होजाता है और कभी प्रकृति द्वारा प्रेरित स्वास्थ्य संकटकी उग्र दशा लाचार करती है कि चिकित्सक छेड़ छाड़ न करे। ऐसी दशामें सच्चा चिकित्सक कष्ट निवारणको अपना प्रधान उद्देश्य नहीं रखता और उपचारकी दशाको दबानेकी चेष्टा नहीं करता। उसका लक्ष्य होता है स्वाभाव की सहायता परन्तु रोगी और उसके दुर्बुद्धि हितैषी प्रत्यक्ष देखते हैं कि चिकित्सकके उपायोंसे कष्ट रत्ती भर घटा नहीं तो समझते हैं कि चिकित्सक अयोग्य है। दूसरा डाक्टर आया। इस बीच यदि संकटावस्थाका अन्त हुआ तो परमेश्वरकी दया और पहिले डाक्टरका प्रभाव समझा जाता है। अन्त न हुआ तो दूसरा डाकटर भी उपाय करता है। बुद्धिमान डाकटर रोगको दबानेकी चेष्टा नहीं करता। यदि संकटावस्थाका अन्त हो गया तो दूसरे डाक्टरको रोग निवारणका यश मिलता है। न हुआ तो तीसरा आया। परन्तु संसारमें सच्चे और निर्भीक बुद्धिमान चिकित्सकों की संख्या बहुत नहीं है। प्रायः अपने पेशे और नामके लिये चिकित्सक ऐसी औषधि देता है, ऐसे उपचार करता है कि रोगकी उग्रता दब जाय और रोगीको कुछ आराम मिले। ऐसे उपायसे डाक्टरमें तुरन्तु विश्वास उत्पन्न हो जाता है। साथ ही उग्रताके दब जानेसे या तो किसी और अंगमें उग्रतर रूपमें रोग उत्पन्न होता है, या जीर्ण रोग होकर शरीरको स्थायी रूपसे रुग्ण कर देता है। रोगीको यह पता नहीं कि प्रकाश रूपसे चंगा करने वाले डाक्टरकी ही यह करतूत है। ऐसे प्रिय दिखा अहित करने वालोंकी संख्या थोड़ी नहीं है।

सचिव वैद्य गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेग ही नास।

रोगसे व्याकुल होकर रोगी केवल कुपथ्य ही नहीं माँगता, कभी कभी तो आत्महत्याके लिये तैयार होजाता है, परंतु सच्चे वैद्यका काम है कि हित उपचार करे, चाहे वह कितना ही अप्रिय क्यों न हो। अपयश और रोजगारके न चलनेके डरसे रोगीका अहित नहीं करना चाहिये।

अनेक चिकित्सक बुरी शिक्षा और अपने अज्ञानके कारण भी रोगीका अनिष्ट करता हैं। चेचकका टीका प्लेगका टीका या अन्य टीके, रोग निवारणके लिये विषोंकी पिचकारियां, अंग हीन कर डालने वाली शल्य चिकित्सा, कड़ी कड़ी विषमय औषधियां, उलटे प्रकारका पथ्य, इत्यादि अनेक मिथ्योपचार आजकलके सभ्य कहलाने वाले देशोंमें केवल प्रचलित ही नहीं हैं वरन कानूनके बलसे जारी किये जाते हैं। इनसे क्या क्या दोष उत्पन्न होते हैं, इनका वर्णन अलग अलग प्रकरणोंमें किया जायगा।

(२) टीका और विषकी पिचकारी

भारतमें कानूनके* बलसे भ्रष्ट और सबसे अधिक हानिकर उपचार जो प्रचलित है, वह शीतलाका टीका है। गायके थनपर विस्फोट हो जाते हैं, उसका मवाद लेते हैं। मनुष्यकी बाँहपर दोहरा स्वस्तिक सुईसे बनाते हैं, और जब ज़रा ज़रा रक्त इस स्वस्तिकपर निकलता है, वही मवाद लगा देते हैं। हिन्दूके लिये तो यह रीति अत्यन्त गन्दी है, परन्तु हानि यहींतक मर्यादित हो तो कुशल है। जिस प्राणीसे यह मवाद लिया है उसके अनेक तरहके विषका भी शरीरमें इस तरह प्रवेश होता है। यह अत्यन्त घृणित और अत्यन्त हानिकर किया है।

विस्फोट क्या है? उग्ररोगके द्वारा शरीरके विषोंका उद्गार। उसका मवाद उन विषोंसे भरा रहता है जिसे प्रकृति गायके शरीरसे बाहर कर रही है। मनुष्यकी अपेक्षा पशुओंका जीवन अधिक स्वाभाविक है। इसीलिये उनके शरीरके विष जो कुछ होते हैं प्रायः उग्र उद्गारसे शीघ्र निकल जाते हैं। विस्फोटका मवाद शुद्ध एक ही प्रकारके विषका मवाद तो होता नहीं। फोड़ा तो ज़हर दूर करनेका साधन है, ज़हर चाहे जिस प्रकारका हो। इसलिए गायके स्तनके विस्फोटके विषोंका संमिश्रण मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट कराया जाता है। पंच गव्यकी रीतिपर तो अनेक नई रोशनीके लोग हँसते हैं, पर उन्हें टीकाकी रीतिपर, जो विदेशी सभ्यताका हमारे ऊपर अत्याचार है, रोना चाहिये। इससे बालकके कोमल पवित्र शरीरमें अनेक तरहके विष इसलिये डाले जाते हैं कि वह चेचकके विषके आक्रमणसे बचा रहे। परन्तु बाहरसे आनेवाले काल्पनिक और आकस्मिक विषके लिये वास्तविक और उग्र विषोंका मिश्रण ज़बर्दस्ती उसके रक्तमें डाल दिया जाता है। इसके लिये कांटेसे कांटा निकलनेकी या "विषस्य विषमौषधम्" की अयुक्त युक्ति पेशकी जाती है। यह बात हमें बिसर जाती है कि दुश्मन भी चढ़ाई कर सकता है, इस डरसे खलिहान जला डालना, खेतोंको ऊसर कर देना, गृहस्थी बरबाद कर देना बुद्धिमानी नहीं है, इसी तरह यह भी अक़्लमंदी नहीं है, शायद कभी चेचक न हो जाय इसलिये उससे भी भयानक विषोंको अपने पवित्र शरीरमें स्थान दे दें। पहिले तो हम स्वाभाविक युक्ताहार-विहारसे जीवन रखें तो हमें बाहरी आक्रमणका भय होना ही न चाहिये, क्योंकि कोई रोग बाहरी आक्रमणसे (बाहरी चोट आदिको छोड़) नहीं हो सकता है। यदि हमारे घरके भीतर कूड़ा या मैला है, तो बाहरसे मक्खियां आकर भिनकेंगी और हमसे देखा न जायगा। हम ज़रूर कूड़ेको दूर कर देंगे। हम यदि कूड़ेको घरकी सफ़ाईके लिये फेंकें और इसका कारण कोई मक्खियोंको समझ ले तो उसकी बुद्धिका क्या इलाज है! शरीरमें विष और मल अप्रमित मात्रामें मौजूद होनेकी हालतमें, चेचक, हैज़ा, प्लेग इत्यादि रोगोंका होना अनिवार्य है।

*सन् १८८० का ऐक्ट १३ वेक्सीनेशन ऐक्ट कहलाता है। टीका लगवानेसे पहिली बार इनकार करनेवालेको पचास रुपयातक जुर्माना होता है—दोबारा इनकार करने वालेको छः महीनेतककी कैद या एक हज़ार रुपयातक जुर्माना, अथवा दोनों। बारबार वही पिछली सज़ा हो सकती है।

लोग घबड़ायें नहीं और स्वाभाविक जीवन और स्वाभाविक चिकित्सासे काम लें तो इसमें उतनी मौतें न हों जितनी होती हैं। चेचक बाहरसे आक्रमणका फल कदापि नहीं है। हम पहले चर्चा कर आये हैं कि जब उसके विषका लेप कर लेनेसे भी ऐसे शरीरपर कभी नहीं प्रभाव पड़ता जो विषसे लदा नहीं है तो उसे छूतकी बीमारी कहना तो डाक्टरीका प्रमाद है।

इसपर प्रश्न होता है कि प्लेग, हैज़ा, चेचक ख़ास ख़ास मौसिमोंपर फैलते क्यों हैं? अलग रखने और दूर रहनेसे यह रोग घट क्यों जाते हैं? यदि भीतरी कारणोंसे होते हैं तो इनका फैलना असंगत है। इन बातोंपर विचार करना आवश्यक है।

देश, काल और निमित्तके अनुसार ही मनुष्य अपनी वृत्ति बनाता है। एक देश काल और निमित्तवाले मनुष्योंका जीवन प्रायः समान होता है। उनके आचार-विचार प्रायः समान होते हैं, उनके आहार-विहारमें भी प्रायः एकता होती है, उनके दोष भी तारतम्यके साथ एक ही होते हैं। इतनी समानताके होते इसमें आश्चर्य ही क्या है कि सबको एक ही तरहके उग्र रोग प्रायः एक ही कालमें हों। बात यह है कि स्वभाव भी सबके शरीरमें समान रीतिसे काम करता रहता है और रोगको उग्रता और विषोंका उद्गार लगभग एक ही मौसिममें होता है। देश, काल निमित्तकी समानताके कारण रोगका रूप भी समान होना स्वाभाविक है। हां, पशुमें जो विषोद्गार एक रूप धारण करता है, मनुष्यमें उसका दूसरा रूप धारण करना भी स्वाभाविक है। किसी किसी बातमें देश, काल और "स्वभाव" की समानतासे विषोद्गारमें भी समानता हो सकती है। प्लेग-के विषयमें चूहे और मनुष्यमें समानता है। परन्तु और प्राणियोंमें कम है वा नहीं है। साथ ही समानता-मात्रसे सबका विषसे बराबर बराबर लदा रहना भी आवश्यक नहीं है। मेरे भाईको प्लेग हुआ था उसकी शुश्रूषामें मैंने कोई बात उठा न रखी। वह मर गये। परन्तु विष्ट पिष्टके होते हुये भी मुझे सिरमें पीड़ा भी नहीं हुई। शहरमें कोसों आस पास एक भी चेचकका मरीज़ नहीं होता तो भी चेचक निकलती ही है। डाक्टर लिंडलार-ने उदाहरण दिया है कि मेरे पुत्रको ऐसी ही अवस्थामें देखनेमें अकारण ही चेचक निकली। इस तरहके एक नहीं सैकड़ों उदाहरण हैं। पहले पहल कहीं देशमें चेचक न होते हुए भी आरम्भ होती है तो कहांसे होती है? प्लेग चूहोंसे फैलता है तो आखिर चूहोंमें उसका आरम्भ कैसे होता है? अन्तमें अपना असंयम या अपने अपराध ही रोगका कारण ठहरते हैं। बाहरी आक्रमण एक भारी भूल है जिसके पीछे लोग अपनी देहमें चेचक, प्लेग, राजयक्ष्मा, गरमी, कोढ़ आदि बड़े विषम रोगोंके विष डलवाकर अपनी दीर्घायुको खोकर अकाल ही कालके गालमें चले जाते हैं। बुद्धिमान गृहस्थ चोर डाकुओंके डरसे अपना धन नष्ट नहीं करता और एक डाकूसे अपनी रक्षा करनेके लिये घरमें बीसों डाकू नहीं बसाता। वह अपना किला मज़बूत रखता है, अपनेको सुरक्षित रखनेके वह उपाय करता है जिससे धनकी वास्तविक रक्षा होती है, बरबादी नहीं होती।

भीतरी कारण जब एक ही देश, काल निमित्त-में एकसे होते हैं, तब विषोद्गारका उग्र रूप भी एक सा हुआ करता है। इसे ही लोग फैलता समझते हैं। वस्तुतः रोगका फैलना कोई बात नहीं है। जिस मुहल्लेमें फैलता है उसमेंके सब लोग नहीं मर जाते। भयके मारे बहुतसे लोगोंके भाग जानेसे महल्ला सूना हो जाता है। लोग समझते हैं कि अब मौतें कम हो रही हैं। परन्तु कारण यह है कि बीमार होनेवाले भी भाग गये और ऐसी जगहोंमें भागे जहां शायद जलवायु अच्छी मिली, प्रकाशमें, खुले मैदानमें, स्वास्थ्यकर जगहों-में रहने लगे, संयम बढ़ गया, विषका लादना कम हो गया। तबदीली न हुई होती तो सबकी तरह

इन भगोड़ोंकी देहमें भी विष लदते लदते प्लेगके रूपमें उग्र विषोद्गार आरम्भ हो जाता। किसी किसीके शरीरमेंसे विषोद्गारके श्रीगणेशमें भीतरी उभार आरम्भ हो गया और ऐसी दशामें उन्होंने स्थान त्याग किया। फलस्वरूप भागनेवालोंके भी और स्थानमें जाकर प्लेग हुआ। तीव्र प्लेगके समयमें अनेक काशीनिवासी सज्जनोंने अपने अपने मुहल्लेके समस्त रोगियोंकी शुश्रूषा और शवोंकी दाह क्रिया करना अपना धार्मिक कर्त्तव्य बना लिया था। अनेकको मैं अच्छी तरह जानता हूं, जिन्हें बराबर यही काम करते रहते भी ज्वर न आया।

चेचकका टीका पुराना हो गया है। इसकी अपेक्षा क्षय रोग डिफ़थेरिया, प्लेग आदिके टीके हालके हैं, यह सब परीक्षाकी अवस्थामें हैं। परन्तु परीक्षाके लिए जो साधन चाहिएँ वह उपलब्ध नहीं हैं। कौनसा देश या जाति केवल परीक्षाके लिए अपने जीवनको ऐसे अभ्यासकी पटिया बनावेगी जिसका सुफल निश्चित नहीं है। परन्तु लोभी और अदूरदर्शी डाकूर समुदाय और रोज़गारी लोगोंने जिन्हें धन कमाना ही इष्ट है और पाप पुण्यसे कोई मतलब नहीं, अपने प्रभावसे, व्यापारी कल-बल-छलसे, राज्यशक्तिसे अनेक देशोंको और जातियोंको अभ्यासकी पटिया बना रखा है। यदि धन कमाना ही उद्देश्य न होता, यदि परीक्षाका सत्य परिणाम जानना ही इष्ट होता तो यह परीक्षाएँ जिस परिस्थितिमें की जाती हैं न की जातीं। टीका लगवानेवाले बड़ी असावधानी और असंयमसे दिन बिताते और बहुत अस्वास्थ्य स्थानमें अस्वाभाविक ही सिद्धान्तोंपर रखे जाते, धूप, हवा, रोशनी स्वच्छ जल आदिका सुभीता नहीं होता तो समझा जाता कि टीका रोगकी रक्षाका सच्चा उपाय है। फल तो विपरीत यह होता है कि स्वास्थ्यके सभी सुभीतेसे रहते हुए टीका लगाये लोग रोगके शिकार हो जाते हैं। अतः समझना चाहिये कि परीक्षाका सुखान्त होना किसी प्रकार सिद्ध नहीं है। फिर ऐसी अनिश्चित परीक्षाके लिए हमारी देह अभ्यासकी पटिया क्यों बनाई जाय और विषोंसे अकारण क्यों दण्डित की जाय?

कहा जाता है कि पाश्चात्य देशोंमें टीकेके प्रचारके बाद चेचक कितनी घट गई? परन्तु क्या केवल चेचक घट गई? और रोग नहीं घटे? यदि सभी रोग घटे, तो और सबके घटनेका क्या कारण है? यदि वह स्वास्थ्य साधनोंकी उत्तरोत्तर उन्नति और स्वाभाविकताकी ओर अधिक झुकाव है, तो चेचकके लिए भी यही बात क्यों न कारण समझी जाय? चेचकके टीकेका प्रचार हुए भारतवर्षमें भी एक युग गुज़र गया, क्या आये दिन चेचक नहीं फैलती? क्या साथ ही और फैलनेवाले रोग नहीं फैलते? किस टीकेकी यहां कौन सी सुकीर्ति है? कई बार टीका लगवाये हुओंको क्या चेचक नहीं होती और नहीं मार डालती? बात यह है कि यहां अस्वास्थ्यकर दशा सभी रोगोंका कारण है। स्वाभाविक जीवनके और सफ़ाईके नियमोंका अपालन जबतक न मिटेगा, तबतक रोग न घटेगा। टीकेसे तो किसी दशामें लाभ नहीं। हानि उस दशामें अवश्यम्भावी है, जिसमें शरीरकी प्राणशक्ति घटी हुई है और विषसे शरीर लदा हुआ है, जीर्ण रोग घर बनाये हुए हैं। स्वस्थ शरीरमें टीका लगते ही उभार हो जाता है और विष शरीरके भीतर रहने नहीं पाता। अनेक लोगोंको बारम्बार टीका लगाया जाता है पर उभरता नहीं, जीर्ण रोग अथवा विषाधिक्य अथवा प्राणशक्तिकी क्षीणता उभार, उग्रता उत्पन्न होने नहीं देती। इनका उलटा अर्थ लगाया जाता है कि शरीर इतना पुष्ट है कि ऐसे उग्र विषका प्रभाव ही नहीं होता।

संवत् १९२७ में जर्मनीमें चेचक इतनी ज़ोरसे फैली कि एक लाख बीस हज़ार बीमार हुए और एक लाख मरे जिनमेंसे लगभग ९६ हज़ारके टीका लगवाये हुए थे और केवल चार हज़ार बिना

टीका लगवाये थे। १८ वर्षकी लगातार खोज और अनुसन्धानके फलस्वरूप साम्राज्यके प्रधान अमात्य प्रिन्स बिस्मार्कने अपने अधीन समस्त राज्योंको लिखा कि "असंख्य चर्म रोगोंका, जो देशमें फैले हैं, प्रत्यक्ष कारण टीका है, और चेचकका कारण और चिकित्सा अभीतक अज्ञात नहीं हैं। गोस्तन विस्फोटकके मवादसे जिस सुफलकी आशा की जाती थी और समझा जाता था कि चेचक बन्द हो जायगी, वह पूरा धोखा साबित हुआ"* इसी तथ्यके आधारपर सभी जर्म्मन राज्योंने या तो टीका उठा दिया या क़ानूनको अत्यन्त ढीला कर दिया।

कण्ठमाला और गरमी पैदा करनेवाले विषोंका समूह ही चेचकके विस्फोटकका मवाद है। जिस शरीरमें यह विष नहीं हैं, उसमें भी टीका द्वारा इनका प्रवेश करा दिया जाता है। इस तरह इन विषोंको निर्मूल करनेके बदले पाश्चात्य डाक्टरी उपचार इन विषोंको जीवित रखता और फैलाता है। स्वाभाविक जीवन इन्हें निर्मूल करनेमें यत्नशील है, परन्तु पाश्चात्य डाक्टर विषोंके प्रचार और वृद्धिमें तत्पर हैं। इसीलिए जितने प्रकारके टीके हैं सभी मिथ्योपचार हैं, अत्यन्त अपवित्र हैं, मल और विष हैं, अत्यन्त घृणित हैं, इनसे सम्पर्क भी पाप है। चीन और तिब्बतवालोंकी मलमूत्रमय ओषधि और भारतकी मूत्रमें शोधी ओषधियोंपर हँसनेवाले पाश्चात्य देशीयोंकी यह वीभत्स चिकित्सा हर शौचप्रियके घृणाका पात्र है और पाश्चात्य सभ्यताके शौचाचारका एक नमूना है।

डाक्टर (Cruwell)* क्रुवेलने लिखा है—"प्रत्येक गोस्तन टीकाका अर्थ है, उपदंश रोगका संचार। गोस्फोटक ढोरोंमें ही नहीं पैदा होता, मनुष्यके गरमीके विषसे संयुक्त हाथोंसे स्तनतक पहुंचता है, क्योंकि यह उन्हीं दूधारी गायोंके स्तनोंपर मिलता है जो दूही जाती हैं। जंगलमें चरनेवाली गायोंमें और घरेलू बैलोंमें कभी यह रोग नहीं पाया जाता। यदि ढोरोंका रोग विशिष्ट होता तो सबमें पाया जाता। ग्वालिन सारेबेनेज़के गरमीवाले हाथोंसे ही डाक्टर जेनरवाले गोस्तन स्फोटकोंकी उत्पत्ति हुई थी।"

टीका लगाये हुए स्त्रियोंको प्रातः स्तन रोग हो जाता है। दूध सूख जाता है। बच्चे पाले पोषे नहीं जा सकते। स्काटलैण्डमें कुछ वर्ष हुए ऐसा ही रोग भेड़ोंमें फैला। टीका लगाया गया। परणामतः भेड़ें दूध नहीं पिला सकती थीं। टीका बन्द हो जानेपर धीरे धीरे यह शिकायत मिट गयी।

अनेक बालकोंके शरीरमें टीकेके बाद गरमी रोगके लक्षण दीखते हैं। शुद्ध और निरोग जीवन वाले मां बापको डाक्टर दोष लगाता है कि बालकका रोग उनके कदाचारका फल है। परन्तु वस्तुतः वह अपने दोषको मां-बापके शिर ठोंक रहा है। उसका कारण टीका है।

देखा गया है कि स्वस्थ और निरोग मनुष्यके टीका लगा और उसे किसी न किसी विषम जीर्ण रोगने धर दबाया। मिरगी, क्षय, श्वासमार्ग, श्वासप्रणाली और गलेके रोग, पक्षाघात, पोषापस्मार आदि बहुधा चेचककी टीकाके बाद ही पैदा हो जाते हैं।

और और टीके जो अब प्रचलित हैं, सभी इसी प्रकारके घृणित विष हैं और उनका परिणाम गोस्तन टीकेसे किसी प्रकार कम भयंकर नहीं है।

जिस तरह टीकेसे अपवित्र घृणित विष शरीरके भीतर पहुंचाया जाता है, उसी तरह सूईकी पिचकारीसे विष और प्रतिविष भी रक्तमें पहुचाये जाते हैं, इनका परिणाम भी महा भयानक होता है। धुकधुकी बन्द होना सुन्न, बहरी, फ़ालिज मिरगी, मूर्छा आदि रोग इन विषों और प्रतिविषों-

* लिंडलारसे उद्धृत।

की पिचकारीके बुरे परिणाम हैं। यह रोग यों न होते, परन्तु इन विषोंने एक रोग रोकनेको अनेक पैदा कर दिये।

हमने सूईकी पिचकारी द्वारा रोगोपचारको सूईसे टीका लगानेकी ही कोटिमें इसलिए रखा कि दोनोंमें रक्तमें विषका प्रवेश कराया जाता है। विधिमें तनिकसा अन्तर है। परिणाम एक ही है। हम इन सब रीतियोंको मिथ्योपचार कहते हैं, अत्यन्त दूषित ठहराते हैं और इनसे बचनेकी सलाह हर आत्मसंयमी और सत्याग्रहीको देते हैं।

(३) शल्य चिकित्साका दुरुपयोग

शल्य कर्म्म अत्यन्त उपयोगी विधि है और शरीरकी रक्षाके लिये अनेक अवसरोंमें इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं। आजकल यह विधि इतने अद्भुत चमत्कार कर रही है कि पुरानी कहानियां सच्ची जँचने लगी हैं। हम इस विधिके विरोधी नहीं हैं। परन्तु आजकल इसका दुरुपयोग भी अत्यन्त बढ़ गया है। जितनी इसकी उपयोगिता मनुष्यको लाभ पहुँचा रही है उससे हज़ारों गुना अधिक इसका दुरुपयोग हानि कर रहा है। लगभग सौ बरसोंके भीतरकी ही बात है कि इधर, क्लोरोफ़ार्म, कोकेन, स्टोवेन आदि संज्ञाहीन करनेवाली औषधियोंके आविष्कारसे शल्य क्रिया बहुत आसान हो गयी है। इन ओषधियोंसे ज्ञान नाड़ियां स्तब्ध हो जाती हैं और रोगी निश्चेष्ट और बेहोश रहता है अथवा उसका अंग विशेष बेहोश रहता है। मोतियाबिन्दकी पथरी निकालते कोकेन डालकर आंखकी ज्ञान-नाड़ियां ऐसी स्तब्ध कर दी जाती हैं कि होशमें रहते हुए भी रोगीको इस बातकी सुध नहीं होती कि आंखके कोयेपर क्या क्रिया हो रही है। क्लोरोफ़ार्मसे बेहोश किये हुए रोगीका अंग काट डालते हैं, उसे ज़रा भी सुध नहीं होती। इस सुभीतेके साथ साथ हानि यह है कि क्लोरोफ़ार्मका प्रधान असर शरीरपर अनिष्ट पड़ता है, और यदि इस विषको प्रकृतिने निकाल न दिया तो यह भी शरीरस्थ विषोंकी भयंकरताको बढ़ा देता है। हृदयके ऊपर इसका अत्यन्त अनिष्ट फल होता है। यह तो हुई बेहोश करनेवाली दवाकी बात।

पहिले जब बेसुध करनेवाली दवाएँ न थीं, शल्यकर्मसे रोगीको कष्ट होता था। इस वेदनाको सहनेके लिए रोगी तैयार है या नहीं, वह इस वेदनाके पार जा सकेगा या नहीं, यह सब प्रश्न उस समय आजकी अपेक्षा अत्यधिक महत्वके थे और यों ही कभी कोई बड़ी शल्य क्रिया होती थी। आज भी इन प्रश्नोंपर ध्यान देते हैं, पर स्पष्टतः उतना नहीं। आजकल अधिक प्रवृत्ति इस ओर है कि रोगीका अमुक अंग बेकार हो गया है, अच्छा होना असम्भव है, उसे काटकर निकाल देनेसे ही रोगी अच्छा होगा, जीभकी जड़की गांठें सूज आई हैं कितनी दवा की गई अच्छी नहीं होती, डाक्टर उन्हें काटकर निकाल देता है। पेटकी उपांत्रमें सूजन है, पीड़ा है काटकर अलग करो। खूनी बवासीर है काटकर अलग कर दो। मैं एक रोगीको जानता हूं, जिसकी गुदानलिकाको डाक्टरने काटकर निकाल दिया था, और एक नली अँतड़ीसे लगाकर एक थैलीमें मलसंचय कराते थे। यदि बेहोशीकी दवाएँ न फैलतीं तो इस तरह सहज ही अंगहीन करनेवाले शल्यकर्मका भी उतना प्रचार न होता। मैं एक वैद्य मित्रको जानता हूँ कि जिनके दांतोंमें पीड़ा हुआ करती थी। उनके डाक्टर मित्रने उनको राज़ी करके सारे दांत निकालकर फेंक दिये और नक़ली दांत लगा दिये जिनमें पीड़ा नहीं होने की।

प्रकृतिने सब अंगोंको काम सौंपा है। जब कभी विषोद्गार साधारण द्वारोंसे होना कठिन हो जाता है, स्वभाव नये अंगोंसे नये रास्ते बनाकर विषोंको निकाल बाहर करनेका प्रयत्न करता है, गांठमें पीड़ा और सूजन इसी कारण है। पीड़ा को "वेदना" कहते हैं, क्योंकि वह सूचना देती है कि अमुक अंगकी असाधारण दशा है और हो सके

तो बाहरसे भी मदद पहुँचाओ। यह गोहार है। आपने इस गोहारको कैसे सुना और क्या मदद पहुँचायी? आप उठे और दोहाई देनेवालेका ही सिर काट लिया। न रहेगा और न दोहाई देगा। दांतमें पीड़ा हुई, जो आपके पेटके बिगाड़की सूचना दे रही है, आपको सावधान कर रही है। आपने दांतोंको उखाड़ फेंका। न रहेगा बांस न बाजेगी बांसुरी। परन्तु आपने यह क्या किया? तारके चपरासीने बुरी खबर पहुँचायी तो आपने उठकर चपरासीको मार डाला, तारघरको नष्ट कर दिया। स्वभावने आपके शरीरमें अधिक विष-के निकालनेका उपयुक्त मार्ग न पाकर दाँतोंकी जड़मेंसे और मसूड़ोंके द्वारा दूर करना चाहा और नाली बनायी। आपने खामखाह उसके काम-में बाधा डाली और नाली बनती बनती आपने बिगाड़ दी। नये दांत या नक़ली हाथसे वैसे काम कदापि नहीं होनेके। जैसे बिजलीके काम करने-वाले और रोशनीवाले तार आप अपने नये घरमें लगा लेते हैं वैसे ही नक़ली अंगोंमें नाड़ियों और धमनियों, शिराओं आदिका सम्बन्ध संभव ही नहीं। अंगके निकल जानेसे स्वभावके काममें गड़बड़ पड़ जाता है। जो कमी आ जाती है, कदापि दूर नहीं हो सकती। इसलिए झटपट अंग कटवाकर फेंकना सब दशाओंमें बुद्धिमानी नहीं है।

रोगको दूर करनेका प्रयत्न अंगको दूर करनेमें नहीं है। सूजनसे अंग बताता है विषोद्गारका मुख उसी जगह बननेवाला है। पीड़ासे गुहार लगाता है कि स्वाभाविक उपचारोंसे सहायता करो। इसका उत्तर सहायता करना है। काटना नहीं है। इसीलिए उत्तम उपचार है सहायता। शल्य चिकित्साके कारण भी उपस्थित हो सकते हैं। चोट लगनेमें, गोली खानेमें, जल जानेमें शल्य क्रिया लाभ पहुँचा सकती है। शरीरके भीतरसे बाहरी द्रव्योंके दूर करनेमें तो यह विद्या अद्वितीय है। इससे वहीं काम लेना चाहिये जहां बिना इसके उपकारका और कोई साधन ही न बचा हो।

(४) दबानेवाली उग्र ओषधियों और विषोंका व्यवहार

डाक्टरी इलाजका आजकल हमारे अभागे देश-में क़ानूनके सहारे प्रचार हो रहा है। बीमारीका इलाज ग़रीब आदमी करना चाहे तो अस्पताल जाये। देशके धनका एक बड़ा अंश डाक्टरी द-वाओं और उपकरणोंको ख़रीदनेके लिए विदेशोंमें खिंचता चला जाता है। हर जगह भरसक डा-क्टरी, अलोपैथीको ही प्रोत्साहन मिलता है। अलोपैथ ही सरकारी नौकर होता है। उसीकी सनदपर छोटेसे बड़े सरकारी नीम-सरकारी कर्मचारियोंको छुट्टियां मिलती हैं, नौकर रखे जाते हैं। भले चंगेको बीमार या पागलको भी भला चंगा बनाना इन्हींके हाथोंमें है। इस पद्धति-की रक्षाके लिए क़ानून बनाया गया है। डाक्टरी संघ बना हुआ है। अलोपैथीकी शिक्षाके लिए बड़े ख़र्चसे मेडिकल कालेज बने हुए हैं जिनसे वि-देशी व्यापारको सहायता मिलती है। शिक्षाकालमें कोई कोई अच्छा ईमानदार अध्यापक ठीक सि-द्धान्तोंकी शिक्षा देते और डाक्टरी पद्धतिकी त्रुटियां जानते भी हैं, परन्तु धनका लोभ और पेशेकी कमज़ोरियां उन्हें लाचार कर देती हैं और वह मिथ्योपचारके शिकार बन जाते हैं। हम अ-न्यत्र दिखला आये हैं कि रोगको उभारकर विष-को दूर करना और शरीर शोधन द्वारा वास्तविक रोगका शमन ठीक चिकित्सा है, परन्तु यह जानते हुए भी अनेक अलोपैथ ठीक रीतिका इसलिए अनुसरण नहीं कर सकते कि रोगी लक्षणोंके उभारको देखकर समझेगा कि चिकित्सकने रोग बढ़ा दिया है और फिर डाक्टरके हाथोंसे रोगी निकल ही न जायगा बल्कि डाक्टरकी बदनामी भी हो जायगी। इस दबावमें स्वयं पड़कर डाक्टर प्रायः ऐसी दवा देता है कि रोगके लक्षण दब जाते

हैं, विकार भितरा जाता है और रोग जीर्ण रूप धारण कर लेता है। रोगी समझता है कि डाक्टर-ने अद्भुत चमत्कारिक चिकित्सा की है और दवा देते ही आराम हो गया। डाक्टरमें उसे विश्वास हो जाता है और यह चिकित्सा पद्धति उसे भा जाती है।

स्वभाव बराबर इस कोशिशमें रहता है कि शरीरके भीतरी विषोंको फोड़े, फुंसी, ज़हरबाद, खुजली आदि चर्म्म रोगोंके रूपमें निकाल बाहर करे, परन्तु डाकृर पारा, सीसा, जस्ता, चांदी आदि उग्र विषोंकी औषधियां देकर उन्हें दबा देता है और निकलते हुये विष भितरा जाते हैं। सरदी, जुकाम आदिपर भी अफ़ीम आदि मादक और दूसरे उग्र संकोचक द्रव्य देकर जुकाम बन्द कर देना ही डाकृरी विधि है। दस्त आने लगते हैं तो भी अफ़ीम आदि रोकनेवाली औषधियां देकर बन्द कर देते हैं। इनसे कोठा स्थिर हो जाता है। और सदाके लिये कुब्ज़की बीमारी हो जाती है। सूज़ाक आदि मवाद या गरमीके नासूर या तो पिचकारी देकर, या जलाकर, या पारा, संखिया, अयोडीन (तैल), आदि उग्र विषमय दवाएं खिलाकर बन्द कर दिये जाते हैं और स्वभाव शरीरके भीतरके उग्र मलों और विषोंको बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाता है। ज्वरवाले रोगोंको कृमिनाशनी, शीतकारणी, दवाओंसे अथवा विषों और प्रतिविषोंकी पिचकारियां दे देकर दबा देते हैं। डाकृरी निघंटु साफ़ कहता है कि यह ओषधियां रक्त कणोंको स्तब्ध और बेसुध कर देती हैं, हृदयकी गतिको मन्द कर देती हैं और सभी प्राण चेष्टाओंको दबा देती है—और हम कह आये हैं कि शरीरको शुद्ध करने और मल-को निकालनेके यही उत्तम शस्त्र हैं जो इन औष-धियोंसे बेकार और अकर्मण्य हो जाते हैं। पीड़ा, निद्राभंग आदि भी मादक द्रव्यों द्वारा दूर किये जाते हैं, सो दूर करना तो क्या है रोगी नशेमें हो जाता है और विष निकलनेके बदले दब जाता है।

मिरगी आदि मूर्च्छा रोगोंकी चिकित्सा प्रसिद्ध मिली औषधियोंसे की जाती है जिनका काम है नाड़ी चक्रोंको और दिमाग़को स्तब्ध और संज्ञा शून्य कर देना। इनसे पक्षाघात, उन्माद, आदि रोग पैदा हो जाते हैं। रोगी अच्छा नहीं होता—

मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की

डाकृरीमें चाई चूआं, बाल खोरा, गंजेपन आदि रोगोंका इलाज भी ऐसा है कि दिमाग़में समा-कर चक्कर, सिरदर्द, अपस्मार, बहरापन आंखके रोग पैदा करता है। डाक्टरी पद्धतिके हमने कुछ ही उदाहरण यहां दिए हैं। शायद ही कोई प्रसिद्ध इलाज होगा जिसमें डाक्टर दबानेवाले उपचार न करता हो। उसकी पद्धति ही ऐसी है। उग्र विषोंका प्रयोग ही यह परिणाम लाता है। मनुष्य-का शरीर विषोंका ख़ज़ाना बन जाता है। परन्तु फैशनेबिल रोगी मरनेकी भी इच्छा करेगा तो इन्हीं विद्वानोंके हाथ! पाश्चात्य सभ्यताका यही फल है।

पाश्चात्य ओषधियोंने भारतकी प्राचीन आयु-र्वेद विद्यापर भी चढ़ाई की है। वैद्य भी चोरी चोरी कुनेन और टींकचर अयोडीन इत्यादि काम-में लाते हैं। रोगियोंसे अपनी इस कुप्रवृत्तिको छिपाते हैं। कुनैनके रूप बदल देते हैं। हकीम भी डाकृरी दवाओंका प्रयोग करने लगे हैं। इस बिषय-पर उर्दू पुस्तकें तैयार हैं। वैद्यों और हकीमोंमें डाकृरी पद्धतिके यह अवगुण क्यों आये? यह क्यों डाकृरीकी नकल करते हैं?

लगभग डेढ़ हज़ार बरस हुये कि औषध निर्माणके रूपमें भारतवर्षमें आधुनिक रसायन-शास्त्रका प्रचार हुआ। यद्यपि नागार्जुनके पहिले भी अनेक रसायन शास्त्री हो गये हैं, तो भी पारे आदि धातुओंके रसों और यौगिकोंकी परीक्षाएं और प्रयोग नागार्जुनके समयमें इतना हुआ कि रसोंके प्रचारका आरम्भ यदि उसी समयसे माना जाय तो अनुचित न होगा। सभी रस बड़े उग्र विष हैं इसलिये इनकी अत्यन्त थोड़ी मात्रा रोगी-

को दी जाती है। रोगको दबाने और उग्र लक्षणों-को शमन करनेमें रस जादूका असर रखते हैं। अन्तिमकालमें भी यह एक बार बुझते हुए दीपक-में तेज़ झलक ला देते हैं*। परन्तु रस है विष। यह वास्तविक शमन करनेवाली दवाएं नहीं हैं। इनका काम विषको दूर करना नहीं है। शरीरमें यदि यह दवाएं ठहर गयीं तो विषोंकी संख्या और मात्रा बढ़ कर प्राणकणों और रक्तकणोंको स्तब्ध, अचेत और प्राणशक्तिको क्षीण कर देती हैं और अगर न ठहरीं, स्वभावने वमन, विरेचन, स्वेदन आदिके द्वारा इन्हें निकाल बाहर भी किया तो प्राणशक्तिका अधिक परिश्रमके कारण ह्रास हुआ। सारा शरीर थक जाता है। साथ ही उलटी प्रति-क्रियाका आरम्भ होता है। जैसे अगर वमन विरे-चन हुआ तो भूख मर जाती है और क़ब्ज़ हो जाता है। डाक्टर वैद्य प्रायः वमन विरेचन आदि क्रियाएं इसी रीतिसे पैदा करते हैं और क़ब्ज़ दूर करनेके लिये इस विधिको अदुपचार ठहराते हैं। डाक्टर पारेका एक लवण देता है जिसे केलोमेल कहते हैं। यह पेटमें ठहर नहीं सकता। पेट और अँतड़ियोंके मलोंको अवश्य ही यह लिये दिये निकलता है परन्तु इसे निकालती है प्राणशक्ति। विष खाकर हम प्राणशक्तिको लाचार करते हैं कि उसे चाहे इच्छा या समय हो या न हो, वह अवश्य ही इस विषको निकाल बाहर करे। पेटमें जो कुछ पका या कच्चा द्रव्य होता है उसमें पहिले केलोमेल मिलता है और अन्तमें उनको लिये दिये बाहर होता है। अब थकी हुई प्राणशक्ति और बेगारसे थकी अँतड़ियां विश्राम लेती हैं। इसीको क़ब्ज़ कहते हैं। यह रस इस तरह क़ब्ज़का निवारण करनेवाली दवा नहीं है। इसकी प्रतिक्रिया स्वयं क़ब्ज़ पैदा करना है।

इस बहसपर कि विषको शरीरसे दूर करने-के लिये उद्योग करना चाहिये, न कि उसे दबाकर भीतर रखनेका प्रयत्न—वैद्य और डाक्टर कह बैठते हैं कि हम तो वमन विरेचन स्वेदन आदिसे विष-को निकालनेका ही जतन करते हैं, हम तो स्व-भावकी सहायता करते हैं। डाक्टर और वैद्य यद्यपि सहायता करनेकी ही नियतसे वमन विरे-चन कराते हैं, तथापि व्यवहारमें वह चूक जाते हैं। शरीरमें विष किस स्थानपर है, क्या जिस अंगमें विष है उस अंगसे प्रकृति निकालनेका कोई यत्न कर रही है, क्या वमन या विरेचन या स्वेदनसे यह विष बाहर हटाया जा सकेगा या कमसे कम स्वभावको कुछ सहायता दी जा सकेगी? इन बातोंपर पूरा विचार कम ही चिकि-त्सक करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि विरेचनादि क्रियाओंके बारम्बार होनेसे कभी कभी लाचार होकर स्वभावको और और अङ्गोंसे हटाकर विरे-चन मार्गसे ही विषको दूर करना पड़ता है, पर इसमें कितनी प्राणशक्ति लगती है, कितनी कम-ज़ोरी आती है। यह रोगी ही अपनी दशासे स्पष्ट कर देता है। स्वभावके साथ इस क्रियामें दशमें नव प्रयोगोंमें तो अवश्य ही बलात्कार होता है। कभी कभी इस ज़बरदस्तीको जब प्राणशक्ति बर-दाश्त नहीं कर सकती तो विरेचन नहीं होता, जुल्लाब पच जाता है, और विष अधिक उग्र रूप धारण करके और राह पकड़ता है, प्राणशक्तिका अत्यन्त ह्रास और जीवनका अन्त हो जाता है। औषधोपचार या अस्वाभाविक रीतिसे लाये हुये पेशाब और पसीनेकी परीक्षा करनेसे पता लगता है कि इस विधिसे उतना मल नहीं निकलता जितना स्वाभाविक स्वेद और प्रस्रावसे निकला करता है! बलात्कार जनित अधिक स्वेद और स्रावसे शक्ति क्षीण होती है। इसलिये वमन विरे-चनादि उपचारोंका प्रयोग वैद्योंको अत्यन्त साव

*इसके सिवा वैद्योंको एक बड़ा सुभीता यह है कि सैकड़ों ओषधियां एक बटुएमें लिये फिरते हैं। रोगीको नुसखा बंधवानेका बखेड़ा कम पड़ता है। रोगी समझता है कि हकीम डाक्टरकी अपेक्षा वैद्य अधिक सस्ता पड़ेगा और इसका इलाज छू मन्तरकी तरह लगता भी है।

धानीसे खूब समझ बूझ कर करना चाहिये। जब विष आमाशय या पक्वाशयमें हो अथवा अन्न मार्गमें हो तब तो उसे निकालनेको वमन, विरेचन वस्तिकर्म आदि देशकालके अनुकूल करना ही चाहिये, परन्तु ऐसी दशामें भी रसों और घातक विषोंके बदले काष्ठौषधियों और वाह्योपचारोंसे काम लेना ही बुद्धिमानी है।

हैज़ा अत्यन्त उग्र रोग है। जहां इसमें दस्त और कै बहुत होते हैं, वहां प्रायः रोगी बच जाता है। जहां वमन विरेचन अत्यन्त कम नहीं होता, वहां हैज़ेका रोगी, उसके उग्र लक्षणोंके स्पष्ट या प्रकट होनेके पहिले ही चल बसता है। शरीरके भीतर विषका संचय पहिलेसे हुआ है, उसपर मिथ्याहार विहार, अशुद्ध सम्पर्क आदि द्वारा विशेष विषोंका प्रवेश होनेसे सहन परिमाणसे अधिक विष एकत्र हो जाता है। यदि रक्तमें प्रविष्ट विष असह्य मात्रामें है तो उलटकर अन्यमार्गकी ओर प्रवृत्त होता है और स्वभाव उसे वमन विरेचनादिसे दूर करता है। परन्तु प्राणशक्ति जितनी बलवती होगी उतना ही इस क्रियामें सौंदर्य होगा। जिसकी शक्ति प्रबल है उसकी संकटावस्थाको पार करके जीवनका दीपक फिर जलने लगता है। पर प्राणशक्ति क्षीण हुई तो यहांतक कमज़ोरी हो सकती है कि शरीर रोगकी पहिली चढ़ाईको, उभारकी अवस्थाको ही नहीं सह सकता और उग्र लक्षणोंके प्रकट होनेके पहिले शरीरान्त हो जाता है। यहां लाख ओषधि कीजिये, कोटि उपचार कीजिये, सारा उद्योग निष्फल हो जाता है। जीवनरक्षा उसके हाथोंमें नहीं है।

जहां कहीं बीमारी फैलती है वहां वस्तुतः शरीरोंकी परीक्षा हो जाती है। शुद्ध अथवा प्रायः शुद्ध शरीरवालोंको विशूचिका होती ही नहीं। विशूचिकाके जीवाणुओंसे भरा गिलास पीकर स्वस्थ रहनेवाले प्रोफ़ेसरका उदाहरण हम अन्यत्र दे चुके हैं। क्षीण प्राणशक्तिवाले विषोंसे लदे शरीर बाहरी चढ़ाईको सह नहीं सकते और धड़ाधड़ मृत्यु होने लगती है। जितनी ही अधिक सहनशक्ति हुई उतने ही अधिक उग्र लक्षण प्रकट होते हैं। यह लक्षण भी विषोद्गारके ही हैं। विष पर्याप्त परिमाणमें निकल गया और प्राणशक्ति अभी प्रबल है तो उन लक्षणोंका शमन हो जाता है और धीरे धीरे सुस्ता सुस्ताकर जीवनकी प्रमित और साधारण क्रियाएँ फिर होने लगती हैं। इस उग्रतासे प्रायः शरीर शुद्ध हो जाता है। स्वास्थ्य संकटके बीत जानेपर रोगी इतना थका होता है, स्वभाव इतना हारा होता है कि उसे विश्राम चाहिये। स्वास्थ्य संकटके समय चिकित्सककी चतुराई और बुद्धि सबसे अधिक काम कर सकती है। यह ताड़ जाना सहज नहीं है कि प्रकृतिको इस समय कैसी सहायता चाहिये। प्रायः दस्त कै बन्द होनेकी दवा दी जाती है। कभी कभी अन्तमें ऐसी दवा संकटावसरमें लाभदायक हो सकती है, परन्तु आरम्भमें ही वमन विरेचनके बन्द होनेका विष संचय भी हो सकता है जिसका परिणाम आगे जाकर घातक हो सकता है।

मेरी दोनों लड़कियोंको १९७७ के सौर भाद्रपद मासमें हैज़ा हो गया। बड़ी लड़की बिना किसी ओषधोपचारके अच्छी हो गयी। उसे ७-८ घंटेतक कै दस्त हुआ, फिर अपने आप बन्द हो गया और शरीरमें गरमी आ गयी। बच जानेवालेके लिए डाक्टर कहते हैं कि इसे हैज़ा न था, हैज़ेका अतिसार था। अस्तु, तीन वर्षकी छोटी लड़कीके दस्त कैके बन्द होनेके कोई लक्षण नहीं दीखते थे। दो दिनतक यही दशा रही। रोगीकी दशा बिगड़ती ही जाती थी। अन्तमें बन्द करनेकी दवा दी गयी। वमन विरेचन दोनों बन्द हो गये। परन्तु एक दिन रातके बाद ही उसकी सांस तेज़ हो गयी और डाक्टरने देखकर बताया कि दोनों फुफ्फुस प्रदाहकी दशामें हैं। कारण स्पष्ट था। विष रक्त और पेटमें रह गया था। अन्नमार्ग रुक जानेसे श्वास मार्गमें जमा हुआ और श्वास यंत्र बिगड़े। अब प्रदाहका इलाज होने लगा।

हकीम और डाक्टर दोनोंने सलाह करके लक्षणोंको शमन करनेके उपाय किये। अन्तमें दोनोंकी राय हुई कि बच्चेसे हाथ धोना ही पड़ेगा। निराशाकी दशामें ओषजन वायुका मैंने स्वयं ३६ घण्टेतक भिन्न भिन्न मात्राओंमें साधारण वायु द्वारा हलकी करके सेवन कराया। अन्तमें डाक्टरने देखकर कहा फुफ्फुस प्रदाह बिलकुल शान्त हो गया। अब बच गयी।

दो घंटे बाद ही आँखें चढ़ गयीं, शरीर अकड़ गया, पीला और नीला पड़ गया, श्वास और हृदयकी गति बन्द हो गयी। देखनेमें मृत्यु हो गयी। इस समय झट उसके हाथ पैर कृत्रिम श्वास-प्रश्वासके लिए डुलाये गये और ओषजन वायुका प्रयोग किया गया। प्राण लौट आये। मेरे विचारमें आया कि पेटका विष फुफ्फुसको छोड़ अब दिमाग़पर प्रभाव डाल रहा है। वस्ति-कर्मसे यदि पेट साफ़ कर दिया जाय तो शायद कुछ लाभ हो। साथ ही फिर उसी मृतवत् दशाका भय था। जब दिमाग़पर पड़े हुए विषके प्रभावसे कोई अनिष्ट दशा एकाएकी उपस्थित हो तब नीचेवाले अंगोंकी नाड़ियोंको एक दम चौंका देनेसे दिमाग़ बहुधा ठीक हो जाया करता है और विषका प्रभाव नीचेकी ओर प्रवाहित होने लगता है। इस हेतुसे मैंने तप्त जल तैयार किया और वस्तिके प्रबन्धमें ही था कि फिर वही दशा उपस्थित हुई। देहके अकड़नेके साथ ही खींचकर उसकी दोनों टांगें तप्त जलमें डाल दी गयीं, तुरन्त ही पेटसे पिचकारीकी तरह बहुत अधिक परिणाममें मल निकल पड़ा और रोगीकी अवस्था सुधर गयी। चार बार इसी प्रकार अत्यधिक विषैले दस्त हुए। बस इन्हीं दस्तोंसे दशा वस्तुतः सुधरने लगी और धीरे धीरे लड़की अच्छी हो गयी। दवाओंने लक्षणोंको केवल दबा दिया था। परन्तु विषके निकलनेका प्रयत्न स्वभावतः अन्नमार्गसे ही होनेके कारण जबतक विरेचनसे नेचर निकाल न पायी तबतक बराबर बच्चेके प्राणोंका संकट बना रहा। विष गया और जानका जोखिम गया। प्रायः दवा देना वास्तवमें दबा देना है और दवाका नाम दवा या दबा सचमुच बहुत ही सार्थक है।

पढ़नेवालेको भ्रम न हो इसलिए हम कह देना चाहते हैं कि हम ओषधिके व्यवहारके सर्वथा विरोधी नहीं हैं। ओषधिके उचित व्यवहारको हम आवश्यक समझते हैं। उग्र और विषैली ओषधियोंसे जिनसे विष बढ़ता है और लक्षण दबते हैं, हमको घोर विरोध है। परन्तु हम काष्ठ ओषधियोंको अनेक अवसरोंपर आवश्यक समझते हैं। इसका विस्तृत वर्णन हम अन्यत्र करेंगे।

(५) वाह्योपचारोंकी भूलें

रोगी ज्वरमें भुन रहा है, पीड़ासे तड़प रहा है, प्याससे कण्ठ सूखा जा रहा है, पसीना नहीं होता, वह जलन है कि शरीरपर पतला दुपट्टा भी सह नहीं सकता, पर उसकी शुश्रूषा करनेवाले उसे उढ़ाते जाते हैं, ठंडा जल नहीं देते, ताज़ी ठंडी हवा उसे लगने नहीं देते। समझते हैं कि किसी तरहकी ठंडक उसे हानि पहुँचावेगी, यह कितनी भारी भूल है! स्वभाव भीतरी जलनको घटानेके लिये बाहरी त्वचाकी राहसे गरमीको निकाल रहा है, और मांग रहा है ठंडा जल कि भीतर कुछ ठंडक आवे और ज्वर घटे, मांगता है हवा कि त्वचाकी गरमीको उड़ा ले जाय और घटा दे, परन्तु रोगीके मित्र उलटा समझ रहे हैं। साथ ही इसका उलटा उपचार करनेवाले भी स्वभावके विरोधी हैं। जहाँ केवल साधारण ठंडे पानीसे काम चल सकता है, वहां बरफ़की तहकी तह चढ़ाकर केवल ठंडा ही नहीं करते बल्कि नाड़ीको ज्ञान शून्य और स्तब्ध कर देते हैं। पहला वाह्योपचार तो स्वभावकी सहायता नहीं करता था, परन्तु दूसरा तो निकलते हुए विषको दबा देता है और उग्रताके लक्षणोंका शमन करके जीर्ण रोगकी नींव रखता है।

ज्वरके रोगीको थोड़ा थोड़ा ठंडा जल धीरे धीरे पिलाइये कि उसे भीतरी शान्ति हो। पसीना

ज़बरदस्ती लानेके लिये ठीक उग्र जलनके समय उसे कपड़ोंसे लादकर तंग न कीजिये। उसके शरीरका ताप बाहरी हवासे घटेगा। ताप यदि बहुत ऊंचे दरजेका हो गया है, तब भी उसके शिरपर बरफ़ न बांधिये। ठंडे जलकी पट्टी बाँधना, सारे शरीरको ठंडे जलकी पट्टीसे ढककर ऊपरसे सूखे कपड़े लपेट देना इसलिये अधिक लाभकर है कि शरीरसे विषोद्गारकी यह उग्रता इस उपचारसे घट जायगी जो इन्द्रियोंको बेबस कर डालती है और संकटावस्थाको चिकित्साके क़ाबूमें नहीं रखती परन्तु साथ ही साथ उग्र दशाका शमन भी नहीं होता। कुछ हरारत घटकर ताप इतना हो जाता है कि रोगी सहज ही सह सकता है। १०७ से लेकर १०५ या १०४ तकका ज्वर इस ठंडे जलके उपचारसे घटाकर १०२ तक लाया जा सकता है। जलकी पट्टी स्वभावकी सहायता करती है। स्वभाव त्वचाको उसके चारों ओरके पदार्थोंसे अधिक गरम करके कुछ गरमी निकाल बाहर करना चाहता है। जलकी पट्टीने इस कामको आसान कर दिया। शरीरसे अधिक तापके लिए एक सहज मार्ग मिल गया। बरफ़ तो एकाएकी इतनी ठंडक लाता है कि सम्पर्कके स्थानपर रक्तका प्रवाह ही बन्द सा हो जाता है, राह ही रुक जाता है, विष या विषकी गरमी निकलना चाहे तो किस मार्गसे जाय। उसे भीतर जाना पड़ता है। इसीलिए बरफ़से वही हानि होती है जो उग्रता के लक्षणोंको शमन करनेवाली या रोगोंको दबाकर भीतरा देनेवाली दवाओंसे होती है। रोगी पानी मांगता है तो स्वाभाविक चिकित्सा यह भी नहीं कहती कि संयमसे काम न लिया जाय, पानी एक दम अधिकसे अधिक मात्रामें रोगीको पीने दिया जाय, या उसे बरफ़के पानीसे नहलाता रहे। असंयमसे वही परिणाम होगा जो बरफ़ या दबानेवाली दवाओंसे होता है। नहला देनेसे ज्वर बहुत घट जाता है, परन्तु प्रतिक्रिया बहुत भयानक होती है, ज्वर कभी बहुत ऊंचे चढ़ जाता है। पट्टीमें यह गुण है कि वह स्वयं जल्दी ही तापके कारण गरम हो जाती है और शरीरसे थोड़े थोड़े परिमाणमें धीरे ही धीरे गरमीको निकालती है।

रोगाक्रान्त शरीरमें, विशेष रूपसे उग्र दशामें, शरीरके और सभी व्यापार शिथिल हो जाते हैं और उभारकी ओर सारी शक्तियां प्रवृत्त हो जाती हैं। इसलिये बहुधा उभारकी दशामें भूख प्यास नहीं लगती। कमज़ोरी मालूम होना तो उभारकी दशाका एक आनुषंगिक लक्षण है। परन्तु डाक्टर प्रायः कोई न कोई पथ्य अवश्य दिलवाता है कि रोगी कमज़ोर न हो जाय और रोगकी चढ़ाईका सामना करनेको शरीर सबल रहे। पहिले तो डाक्टर यह भूल जाता है कि प्रकृति स्वयं अपना भोजन भण्डार बन्द किये हुए है, इस समय अगर हम अन्न पहुँचाकर उसे रसोईका बन्दोबस्त करनेको लाचार करते हैं तो चढ़ाईके मैदानमें गये हुए काम करनेवालेको लौटना पड़ता है और महानसमें लगना पड़ता है। इस उथल पुथलसे चढ़ाईका सामना करनेमें असलमें स्वभाव कमज़ोर पड़ जायगा। दूसरे वह यह सैद्धान्तिक बात भूल जाता है कि प्राणशक्ति वस्तुतः अन्न या पथ्यपर निर्भर नहीं है। अन्नसे हम उसे बढ़ा नहीं सकते, उपवाससे घटा नहीं सकते। प्राणशक्ति संयम और योगसे बढ़ती है और असंयम और अयुक्त जीवनसे अवश्य घटती है। डाक्टरके सिवा शुश्रूषा करनेवाले भी इसी भ्रममें रोगीको पथ्य लेनेके लिए प्रलोभन दे देकर प्रवृत्त करते हैं और जिस समय रोगीको अन्न जल न चाहिये उस समय अन्न जल देकर रोगको अधिक कुपित कर देते हैं। उभारकी अवस्थामें लंघन ही रोगीके लिए सबसे उत्तम पथ्य है और प्रकृतिके सर्वथा अनुकूल है। जहां भूख प्यास अधिक लगती हो वहाँ काष्ठौषधियोंके रूपमें हकीम वैद्योंका काढ़ा और जोशांदा ओषधि और पथ्य प्रायः दोनोंका काम करता है, यदि उभारकी अवस्थाको

दबानेवाला न हो बल्कि संकटावस्थाको पार करनेमें प्रकृतिका सहायक हो।

लंघन या उपवास करनेवाले अपने शरीरको प्रायः असंयमसे भी बिगाड़ देते हैं। उपवास तोड़नेमें समयपर जितना ही ज़ोर दिया जाय उतना ही थोड़ा है। पहिले तो उपवास तोड़नेका उपयुक्त समय आया कि नहीं, यही विचार परमावश्यक है। आनेपर भी उपवास तोड़ना वस्तुतः स्वभावको अपने असाधारण व्यापारोंसे हटाकर साधारण नितके व्यवहारोंमें लगाना है, इसलिए बहुत हलका जलसोरवा, अत्यन्त थोड़ा अच्छी तरह चबाकर या लालासे मिलाकर उदरके भीतर पथ्य ले जाना आवश्यक है। उपवास या लंघनपर तेज़ भूख लगती है तो रोगी सारा समय भूल जाता है और जो पाता है, अपनी उदरदरीमें बड़े वेगसे पहुँचाता है। ऐसी दशामें उपचारिकोंको उचित है कि रोगीकी पूरी रक्षा करें कि संयमके नियम टूटने न पावें।

किसीका सिर दुखने लगता है कि तुरन्त ही वैद्य या डाक्टर या औषधि ढूंढ़ने लगता है। उपचारी बन्धु तुरन्त ही पीड़ा 'बन्द' करनेके उपाय करने लगते हैं। पीड़ा तो भीतरी रोग जनित या अप्रमित विकारोंकी उग्र सूचना है। यह दूत है जो संदेसा लेकर आया। इसे दूर नहीं करना है। इसका सँदेसा सुनिये यह प्रकृतिका पैग़ाम लेकर आया है कि देह देशमें अमुक अंगमें अप्रमित विकार हो रहे हैं; मल या विष संचित है; आप स्वभावकी सहायता कीजिये; उपचारोंकी कुमक भेजिये। परन्तु उपचारी और चिकित्सक प्रायः रोगीकी पीड़ाका अर्थ न समझकर स्थानीय व्यथाको दूर करनेमें लग जाते हैं। प्रायः वह ओषधियाँ लगा देते हैं जिससे स्थानीय ज्ञान नाड़ियां बेसुध हो जाती हैं और यद्यपि पीड़ा होती रहती है, तथापि मालूम नहीं होती। मादक ओषधियाँ पिला या खिला कर भी इसी तरहकी बेसुधी पैदा की जाती है। इससे वास्तविक रोगमें स्वभावको यथेष्ट सहायता नहीं मिलती। प्रकृतिकी अपील बेकार जाती है।

मिट्टी, जल, वायु प्रकाश आदि हमारे संसारकी नींव हैं; हमारे शरीर इन्हींसे बने हैं। इन्हींसे स्थिर हैं। इन्हींके सदुपयोगसे हम शरीरकी रक्षा कर सकते हैं। इनके उपयोगमें संयम अवश्य चाहिये।

> ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
> होहिं कुवस्तु जग लखहिं सुलक्खन लोग॥

असंयमसे अच्छी वस्तु कुवस्तु हो जाती है। सूतिका गृहके भीतर नवजात बालकके लिए तेज़ रोशनी नहीं चाहिये। अत्यधिक ठंडक या गरमी भी नहीं चाहिये, आँधी ऐसी हवा नहीं चाहिये, सौड़के घरमें पूरी सफ़ाई परम आवश्यक है। पर साथ ही इसके हमारे देशके लोग सौड़का घर निहायत गंदा चुनते हैं, जो अँधेरा हो, जिनमें हवा न जाती हो, नीचे शील हो। यों पोतलीप तो कर दी जाती है, परन्तु साधारण दशा जैसी रहती है वैसा काला चित्र यहां नहीं खींचा गया है। जम्बुएके डरसे सब दरवाज़े बन्द रहते और आने जानेवाले दरवाज़ेपर आग जलायी रहती है जिसमें अजवायन जलायी जाती है। अजवायनका जलाना बुरा नहीं है; इसका धुआँ और वायु कृमिनाशक हैं। परन्तु यदि पूरी सफ़ाई रखी जाय, हवा रोशनी शुद्ध स्वच्छ आनेका बन्दोबस्त रहे तो घरमें धुआं करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। पूरी सफ़ाई घरमें हो, नाल काटनेवालीके हाथ धुले हों, नाखून कटे और साफ़ हों, जितने सौड़में जायँ सभी शुद्ध स्वच्छ दशामें हों तो जम्हुआ सपनेमें भी नहीं जा सकता, अजवायनका धुआं कुछ थोड़ासा धूपकी तरह हो तो हर्जकी बात नहीं है। परन्तु साधारणतया जितना धुआं होता है उससे दम घुटने लगता है चमायन जो सौड़में बच्चेकी सफ़ाई सेवा आदिके लिये रहती है उसे भी नहा धोकर साफ़ कपड़े पहन कर ज़च्चे ख़ानेमें रहना चाहिये। हिन्दुओंमें जन्म

और मरण दोनोंको अशौचकी अवस्था मानते हैं। अशौचकी अवस्थामें जो लोग रहते हैं वह न तो किसीको छूते हैं, और न उन्हें कोई छूता है। न कोई उनके यहां खाता है न वह किसीके यहां खाते हैं। भिक्षातक न दी जाती है और न ली जाती है। कपड़ोंतककी धुलाई विशेष रूपसे होती है। यह सब इसीलिये होती है कि पुराने शरीरके विष और मलका सम्पर्क नष्ट हो जाय, और नये शरीरमें या औरोंकी देहमें विषों और मलोंका प्रवेश न हो। दोनों अवस्थाओंमें हमारा शौच विधान और स्पर्शका बचाव सराहनीय है। परन्तु इस विधानको समझदारीसे बर्तनेकी ज़रूरत है और स्पर्शका बचाव करना उचित ही है। मिथ्योपचारके ही कारण हज़ारों बालकोंको जम्हुआ दबा देता है, और अजवायनका धुआँ बचा नहीं सकता, बल्कि यह धुआँ, बन्द दरवाज़े और गन्दगी ही जम्हुआका कारण होती हैं। जम्हुआ और कोई चीज़ नहीं बालकके शुद्ध रक्तमें बड़ोंकी असावधानीसे (प्रायः नाल काटनेके समय) बड़ोंके शरीरसे विषका प्रवेश है। एकाएकी गर्भावस्थासे निकलनेसे प्राणशक्तिपर बड़ा धक्का पहुँच रहता ही है, माता पिता और पूर्व संस्कारके कारण प्रायः प्राणशक्ति दुर्बल रहती है। बाहरका विष उसके लिये घातक हो जाता है।

नितके रहन सहनमें यदि मनुष्य शौचके नियमोंसे रहे और युक्ताहार-विहार और युक्त चेष्टाका पूरा ध्यान रखे तो रोगी होनेकी नौबत न आवे। रोगी होनेपर तो वाह्य और आभ्यन्तरिक संयम एवं स्वाभाविक उपचार ही जीवनकी रक्षाका कारण हो सकते हैं।

वृक्षोंका वृत्तान्त

[ले० श्री जी० एल० सिंह]

वृक्ष भी पशुओंकी भांति जाति विस्तारक हैं

संसारमें जितने पशु हैं सबको प्रकृतिने इस योग्य बनाया है कि सब एक स्थानसे दूसरे स्थान आ जा सकें। पृथ्वीपर रहनेवाले जानवर हज़ारों कोस ऐसे स्थानमें जहां उनके खानेकी सामग्री और रहनेका सामान मिल सके चले जाते हैं। पक्षी अपने परोंके बलसे बड़े बड़े समुद्र और घाटियोंको पार करते हैं, मछलियां और अन्य जलमें रहनेवाले पशु एक समुद्रसे दूसरे समुद्रमें तैर कर चले जाते हैं। इससे यह विदित है कि हरएक पशुको अपनी जातिको पृथ्वीपर फैलाना कुछ कठिन नहीं है। यही कारण है कि एक क़िस्मके जानवर पृथ्वीके भिन्न भिन्न भागोंमें मिलते हैं। अब प्रश्न यह है कि वृक्षोंमें तो चलनेकी शक्ति नहीं होती वे अपनी जातियोंको किस प्रकार फैलाते हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि बागों और खेतोंमें किसी साल ऐसे वृक्ष उपजने लगते हैं जो पहले कभी नहीं जमे थे। मकानोंके ऊपर पीपल बरगद या कुछ ऐसे पेड़ोंका जमना एक साधारण बात है। इस बातपर प्रायः लोग ध्यान नहीं देते मगर यह वृक्षोंकी अद्भुत शक्तिका एक उदाहरण है।

मंदारके वृक्षको बहुत लोग जानते हैं। इसकी छीमी बड़ी बड़ी हरे रंगकी होती है। और सूखनेपर भूरे रंगकी हो जाती है। यदि आप उनको चीर कर देखें तो बहुत से मिर्चके समान काले काले बीज दिखाई देंगे और हरएक बीजके ऊपर रूईके समान सफ़ेद रंगका भूआ दिखलाई देगा। इस भूयेके कारण बीजोंमें ऐसी शक्ति आ जाती है कि यह उड़ सकते हैं। यह वृक्ष अपने

बीजोंको भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजकर अपनी जातिको फैलाता है। सेमल, कपास और मुलहठी पर भी इसी प्रकारका भुआ होता है।

शीशम, बिलबिलके बीजोंमें भी उड़नेकी शक्ति होती है मगर इनमें भूआ नहीं होता बल्कि इनके बीज सूख कर कागज़की भांति हलके हो जाते हैं और हवामें उड़ सकते हैं।

बीछू एक ऐसा वृक्ष है जो बहुधा खेतोंमें जमा करता है। इसके फल प्रथम हरे होते हैं मगर सूखनेपर ऊपरकी खोलराई गिर जाती है और भूरे रंगके बीज लटका करते हैं। यदि इन बीजों पर आप ध्यान दें तो देखेंगे कि नीचेवाले सिरेपर दो तीव्र टेढ़े और कठोर कांटे होते हैं। यदि आप सावधान न रहें तो यह कांटोंके द्वारा आपके वस्त्रोंको छेदकर लटक जायँगे। यदि कोई चलने फिरनेवाला रोयेंदार पशु वृक्षके निकट जायं तो बीज उनके बालोंमें फँस जायंगे और जहां कहीं वह पशु जायगा वहाँ उसके साथ जायँगे। वहां अनुकूल जल वायु और पृथ्वीके मिलनेपर जमेंगे।

गोखरूमें भी कांटे होते हैं जो पशुओंके खुर और बालोंमें सहज ही फँस जाते हैं। चिड़चिड़ा और टूँगवाले दरख़्त भी इसी प्रकारसे अपनी जातिको फैलाते हैं। बरगद, पीपर, पाकड़ इत्यादिके फलोंको पक्षी भोजन करती हैं, किन्तु उनके बीज ऐसे कठोर होते हैं कि पेटकी पाचन शक्ति उनको नहीं पचा सकती, और पक्षीकी बीटमें वे ज्योंके त्यों निकल जाते हैं। पक्षी प्रायः इधर उधर घूमा करते हैं और बहुधा बहुत दूर दूरतक निकल जाते हैं इसी कारणसे वृक्ष ऐसे स्थानोंमें जा जमता है जहां मनुष्यका लगाना सम्भव नहीं।

पाइन और अन्य इस जातिके वृक्षोंके भी बीज इतने छोटे और हलके होते हैं कि हवा उनको भली भांति उड़ा सकती है

नारियल बहुधा समुद्रके किनारेवाले देशोंमें होता है। इसके फलके ऊपर एक विचित्र जटा होती है जिसके कारण वह पानीमें भली प्रकार तैर सकता है और भीतरका खोपड़ा ऐसा कठोर और बलिष्ट होता है कि पानीका कुछ भी उसपर प्रभाव नहीं होता। यह फल समुद्रकी लहरोंमें पड़ कर दूर देशोंमें जा लगता है और वहाँ जमता है।

वृक्ष भी जानवरोंकी भांति स्वयं रक्षक हैं

जितने जानवर हम लोग साधारण रीतिसे देखते हैं उनमेंसे अधिकतर ऐसे हैं जिन्होंने अपनेको अपने शत्रुओंसे बचानेके लिए कोई न कोई प्रबन्ध कर रखा है। यदि हम उन पशुओं पर ध्यान दें जो पृथ्वीपर रहते हैं तो जान पड़ेगा कि ये और पशुओंसे इस विषयमें अधिक परिपूर्ण हैं। हाथी और अन्य बड़े बड़े जानवर अपने प्रबल शरीर और बच बलसे और पशुओंको दबाए रहते हैं। गाय, बैल, हिरन इत्यादि अपने सींगोंके बलसे अपने शत्रुओंको भयभीत करते हैं। साहीमें इतने बड़े बड़े और नोकदार कांटे होते हैं कि अन्य जानवर उससे दूर रहते हैं। बिच्छू अपने अत्यन्त पीड़ित करनेवाले डंककी चोटसे मार भगाता है, छछून्दर अपनी दुर्गन्धके कारण बची रहती है। साँप मस्तकमें रहनेवाले विषके ज़ोरसे अनेक पशुओंका नाश करता है। सूंड़ीके रोओंके बदनमें लग जानेसे अत्यन्त खुजली पैदा होती है। चींटे और अन्य इस प्रकारके जानवर अपनी छोटी छोटी कांटेके समान सूड़ोंसे काटकर शत्रुको बेचैन कर देते हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या वृक्षोंने भी अपनी रक्षाका कुछ प्रबन्ध कर रखा है या नहीं? बड़े बड़े वृक्ष जैसे साखू, पीपल, महुआ इतने विशाल और मज़बूत होते हैं कि कोई पशु उनके लिए हानिकारक नहीं हो सकता। आँधी तूफ़ान भी उनकी कुछ हानि नहीं कर सकते। बबूल बेल अकोल इत्यादि वृक्षोंमें इतने बड़े बड़े कांटे होते हैं कि बहुत कम पशु उनके पास जाते हैं। नागफनीके

तेज़ काँटोंसे हर एक जानवर कोसों भागता है। गंधरसायन और हुरहुरकी दुर्गन्धके कारण सब जानवर अलग रहते हैं। पोस्ता, कुचिला इत्यादिके वृक्ष ऐसे विष पैदा करते हैं कि उनके खानेसे तुरंत मौत होती है। केवांचकी छीमी छू लेनेसे तमाम शरीरमें, अत्यन्त दुःख देनेवाली खुजली पैदा होती है।

हैंसा, भटकटैया और भड़भांडकी पत्तियोंमें कांटे तो अवश्य छोटे छोटे होते हैं परन्तु इस तरह ज़्यादा और तेज़ होते हैं कि तमाम बदनमें धँस जाते हैं, जिसके कारण बड़ी तकलीफ़ होती है। बकरी, गाय, बैल, भैंस जो पत्ती खानेवाले पशु हैं वह। ऐसे वृक्षोंकी पत्तियोंको कदापि नहीं छूते। इसके अतिरिक्त और बहुत से उपाय हैं जो जानने योग्य हैं

पक्षीगण अपने परोंके बलसे धरतीपर रहने वाले पशुओंके आक्रमणसे निश्चिन्त रहते हैं और वायुमें उड़ कर या वृक्षोंपर घोसला बना कर निर्भय रहते हैं। जलके भीतर रहनेकी योग्यताके कारण पशु और पक्षी दोनोंसे जलचर बचे रहते हैं। वृक्षोंमें भी बहुतसे ऐसे वृक्ष हैं जिनका जीवन इसी प्रकारका है। कोहँणा लौकी कीपिङ्गपाम और अन्य बेल और लता, वृक्ष या अन्य वस्तुके सहारे ऊपर वायुमें चढ़कर साधारण पशुओंके आक्रमण से बचते हैं और इस योग्य न होते हुए भी कि स्वयं अपनेसे ही ऊपर बढ़ सकें अत्यन्त बेगसे फलते तथा फूलते हैं। सेवार, जलकुम्भी, कमल इत्यादि जलके वृक्ष हैं और बहुधा गहरे ताल या तलइयोंमें जमते हैं जहाँ चौपायोंको कौन कहै मनुष्य भी नहीं पहुँच सकते हैं, यह जो पानीमें डूबे रहते हैं। इनके अतिरिक्त आलू, ज़मीकंद, हल्दी, कच्चूर ऐसे पौधे हैं जिनका जीवन एक अनोखे प्रकारका है। आप यह जानते होंगे कि जिन खेतोंमें ऐसे पौधे लगाए जाते हैं या जम जाते हैं उनमेंसे इनका निकलना सहज नहीं है। इसका कारण यह है कि ऊपरकी तरफ़ पत्ते और फल निकलनेके अतिरिक्त इनमें जड़ भी बैठती हैं जिनमें नए नए अखुओंके पैदा करनेकी शक्ति होती है। अगर इनकी पत्तियाँ और डंठल चर जावें तो अनुकूल समयके आनेपर इन जड़ोंसे नए नए पौधे फिर निकल आते हैं।

पाठकोंको यह बात मालुम हो जायगी कि वृक्ष बिलकुल जड़ जीव नहीं हैं परन्तु पशुओंके समान समय और देशके अनुकूल अपने जीवकी रक्षाके लिए विचित्र प्रबन्ध करते हैं।

रसायनके कुछ प्रारम्भिक सिद्धान्त

[ले० श्री सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद]

प्रकृतिके गुप्त रहस्योंको प्रकट करनेके लिये रसायनशास्त्रका जन्म हुआ है। लगभग ढाई सौ वर्षोंमें ही इसने विज्ञानके अन्य अंगोपर अक्षुण्ण-आधिपत्य जमा लिया है। इसका आरम्भ वैद्योंकी प्रयोगशालाओंमें हुआ और आज यह अपने विस्तार और उपयोगिताके कारण एक स्वतंत्र शास्त्र होगया है। भारतवर्ष और यूरोपमें रोगोंके निवारणार्थ अनेक औषधियां तैयारकी जाती हैं, धातुओंसे रस बनाये जाते हैं, भिन्न पदार्थोंके संयोगसे विचित्र गुणोंसे संयुक्त चीज़ें तैयारकी जाती हैं। वे नियम जिनके कारण प्रकृति अपने परमाणुओंका संयोग और विच्छेद करके चमत्कारिक पदार्थोंमें परिणत होती है, रसायन विज्ञानके मौलिक सिद्धान्त कहलाते हैं।

प्रकृति अविनाशी है— इस विज्ञानके अन्य सिद्धान्तोंकी मीमांसा करनेके पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि प्रकृतिमें परिवर्तन हो सकता है, यह अपना रूप बदल सकती है, वाह्य आकृति और आन्तरिक-गुण दोनोंमें भेद उत्पन्न हो सकते हैं, पर इसका कभी नाश नहीं होसकता। कोई भी वस्तु, जिसमें कुछ बोझ या भार हो, प्रकृतिका रूपांतर है। लकड़ीको हम तोल सकते हैं, कोयलेमें भी भार है, शक्कर और नमक भी तो लेजा सकते हैं, अतः ये सब प्रकृतिके बने हुए हैं। यह कभी सम्भव नहीं है कि हम एक

छटांक प्रकृतिके परमणुओंमे दो छटांककी वस्तु बनालें। जो भार रासायनिक संयोगके पूर्व दो पदार्थोंका था वही भार संयोगके पश्चात् भी रहेगा। सात सेर लोहा औ चार सेर गन्धकके मिलानेसे ग्यारह सेर लोह गन्धिद ही बनता है। यद्यपि लोहगन्धिदमें न तो लोहेके गुण प्रत्यक्ष होते हैं और न गन्धकके, पर तो भी भारमें कोई परिवर्त्तन इस यौगिकसे नहीं होसकता है। तात्पर्य्य यह है कि प्रकृतिने अपने गुण परिवर्त्तन कर दिये हैं पर उसका नाश नहीं हुआ है। दीपकको हम जलते हुए देखते हैं तो हमें यह जान पड़ता है कि तेल और बत्ती दोनों नष्ट होते जा रहे हैं, पर यदि हम विचार पूर्वक अनुसन्धान करें तो पता चलेगा कि ये दोनों अपना रूप ही बदल रहे हैं, कुछ धुआँ बन रहा है, कुछ अन्य ऐसे पदार्थ बन रहे हैं जो हमें साधारणतया दिखाई नहीं देते। इसी प्रयोगको सावधानीसे करनेसे पता चलेगा कि इसमें तीन वस्तुएँ अपना कार्य्य कर रही हैं तेल, बत्ती और वायु। यदि इनका भार जलानेसे पूर्व ज्ञात हो और जलानेके पश्चात् भी हम प्रत्येक पदार्थको जो संयोग द्वारा उत्पन्न हुए हैं, इकट्ठा करके तोलें तो हमको दोनों भारोंमें कोई भी अन्तर नहीं मिलेगा इससे स्पष्ट है कि प्रकृति अविनाशी है पर परिवर्त्तन शील भी है।

संयोग और मिश्रण—लोह चूर्ण और गन्धकको यदि खूब पीसकर मिला दिया जाय तो मिश्रणका रंग कुछ हरा प्रतीत होता है। साधारणतया लोहे और गन्धकके कण दिखाई नहीं पड़ेंगे पर वास्तवमें दोनोंके कण पास पास विद्यमान है। एक अच्छे सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा इसकी परीक्षा की जा सकती है। शक्तिमान चुम्बकके उपयोगसे लोहेके कण खींच कर अलग किये जासकते हैं। कर्बन-द्विगन्धिदमें इस मिश्रणका घोल बनाकर छाननेसे लोहेके कण छन्नेके ऊपर रह जायंगे और गन्धक कर्बन-द्वि-गन्धिदमें नीचे चला आवेगा। इस प्रकार लोहे और गन्धकको घुलकर मिश्रणमेंसे अलग कर सकते हैं। पर यदि गन्धक और लोह चूर्णको हम इतना गरम करें कि मिश्रण लाल हो जाय, तो ठण्डा होनेपर काला ठोस पदार्थ दिखाई पड़ेगा। यह भी लोहे और गन्धकसे मिलकर बना है पर अच्छेसे अच्छे सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा भी दोनोंके अलग अलग कण दिखाई नहीं पड़ सकते। कितना ही शक्तिमान चुम्बक क्यों न हो वह इस काले ठोस पदार्थमेंसे लोहेको नहीं खींच सकता है। कर्बन-द्वि-गन्धिद द्वारा घोल बनानेसे भी लोहा और गन्धक अलग नहीं किये जा सकते।

इस प्रकार लोहे और गन्धकमें दो प्रकारका मेल हो सकता है। एक तो जिसमें लोहे और गन्धकके कण अलग अलग रहते हैं और साधारण साधनोंसे ही अलग किये जा सकते हैं। इन प्रकारके मेलको मिश्रण कह सकते हैं। दूसरे प्रकारके मेलमें दोनों पदार्थोंके कणोंमें इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया है कि वे साधारणतया अलग नहीं किये जा सकते। इस प्रकारके मेलको संयोग कहते हैं। लोहे और गन्धकके मिश्रणमें लोहे और गन्धक दोनोंके गुण विद्यमान रहते हैं पर इन्हीं दोनोंके यौगिकमें न तो लोहेके गुण दिखाई पड़ते हैं और न गन्धकके। तीसरी ही वस्तु बन जाती है जिसे हम लोह-गन्धिद कह सकते हैं। इसके गुण मूल पदार्थोंसे सर्वथा भिन्न होते हैं।

तत्व और यौगिक—संसारके सब पदार्थों परीक्षा करनेपर पता चलेगा कि उनके दो विभाग किये जा सकते हैं। कुछ पदार्थ तो ऐसे हैं जिनका सूक्ष्मसे सूक्ष्म विभाग करनेपर और उनपर रासायनिक क्रियाके किये जाने पर भी दो भिन्न पदार्थ नहीं पाये जा सके हैं। उदाहरणतः, सोनेको लेकर हम उसके कणोंमें चाहे कितना ही विच्छेद क्यों न करें हमें सोनेके अतिरिक्त और कोई पदार्थ नहीं मिलेगा। इसी प्रकारकी अवस्था चांदी, तांबा, कर्बन, ओषजन, पारद आदि वस्तुओं की है। इनके छोटेसे छोटे भी विभाग करनेपर भिन्न पदार्थ उपलब्ध नहीं हो सके हैं। अतः इस प्रकारके पदार्थ जो दो अधिक भिन्न गुणों वाले पदार्थोंमें विभाजित नहीं किये जा सके हैं, तत्व कहलाते हैं।

दूसरे प्रकारके पदार्थ वे हैं जो कई तत्वोंसे मिलकर बने हैं, और किसी न किसी प्रकार उनमेंसे तत्व अलग भी किये जा सकते हैं। इन्हें यौगिक कहते हैं। कर्बन द्वि-ओषित एक यौगिक है जो कर्बन और ओषजन नामक दो तत्वोंसे मिलकर बना है। इसी प्रकार नमक भी यौगिक है क्यों कि इसमें सोडियम और हरिण नामक दो तत्व विद्यमान है। शकर में तीन तत्व कर्बन, उज्जन और ओषजन हैं। इस प्रकार तत्व अविभाजनीय पदार्थ हैं और यौगिक विभाजनीय पदार्थ हैं।

तत्व तीनों अवस्थाओंमें पाये जाते हैं—ठोस, द्रव, और वायव्य। इनमें कुछ धातु हैं और कुछ उपधातु (अर्धधातु) और कुछ अधातु हैं। पारदको छोड़कर, जो द्रव होता है, अधिकतर धातु-तत्व वायुके साधारण तापक्रमपर ठोस हैं। उपधातु सिलीकन (शैल) आर्सनिक आदि ठोस हैं। अधातुओंमें ओषजन, उज्जन, हरिण, नत्रजन आदि वायव्य हैं, ब्रम द्रव है कर्बन, स्फुर, गन्धक आदि तत्व ठोस हैं।

इन तत्वोंमेंसे अधिकांश तो संसारमें यौगिक अवस्थामें पाये जाते हैं, परन्तु फिर भी अवश्य कुछ ऐसे हैं जो तत्व रूपमें भी उपलब्ध होते हैं। वायुमें ओषजन और नत्रजन तत्व रूपमें विद्यमान हैं। ज्वालामुखी पहाड़ोंके निकट स्वच्छ गन्धक भी मिल जाता है। कर्बन भी हीरेके रूपमें खदानमें पाया जाता है। सोना चांदी, तांबा, और पारा भी कहीं कहीं स्वच्छ अवस्थामें मिलते हैं। पर तत्वोंकी अपेक्षा यौगिक अधिक पाये जाते हैं। धातु गन्धक, कर्बन, ओषजन, हरिन, प्लव, स्फुर, आदि तत्वोंके साथ मिले हुए पाए जाते हैं। संसारमें कर्बन, ओषजन और उज्जनसे बने हुये सहस्रों यौगिक हैं।

इसके अतिरिक्त पृथ्वीमें ये तत्व इस प्रकार फैले हैं कि उनके क्रमका कोई निश्चित विधान नहीं है। धरातलमें तत्वोंका आनुमानिक विधान निम्न प्रकार है।

ओषजन	४४ से ४८·७ प्रति शतक तक
शैल (सिलीकन)	२२·८ से ३६·२ ”
स्फट (अलुमिनियम)	९·९ से ६·१ ”
लोहा	९·६ से २·४ प्रति शतक तक
खटिक	६·६ से ०·९ ”
मैगनीशियम	२·७ से ०·१ ”
सोडियम	२·७ से २·५ ”
पोटेशियम	१·७ से ३·१ ”

भिन्न भिन्न स्थानोंमें यह अनुपात भिन्न भिन्न है। भूमण्डलका अधिक भाग सामुद्रिक है जिसके जलमें उज्जन और ओषजन नामक तत्व विद्यमान हैं। पहाड़ोंमें सिलीकन तत्वकी समुचित मात्रा उपस्थित है।

इस समय अस्सीके लगभग तत्वोंकी खोज हो चुकी है और आशा की जाती है कि भविष्यमें अन्य बहुतसे तत्व और पाये जावेंगे। इनकी खोजका इतिहास भी बड़ा विचित्र है। बहुतसे पदार्थ जो किसी समय तत्व समझे जाते थे, इस समयके अन्वेषणने उन्हें यौगिक प्रमाणित कर दिया है। जल, पोटाश, सोडा आदि आज कल तत्व नहीं माने जाते हैं।

संकेत—इन तत्वोंके इतने बड़े नामोंका प्रयोग करना बड़ा कठिन कार्य्य है, इस लिये प्रत्येक तत्वका एक संकेत चिन्ह बनाया गया है। इनके उपयोगसे जो लाभ है वह आगे जाकर स्वयं ही स्पष्ट हो जायगा। ये चिह्न बहुधा तत्वोंके नामोंके प्रथमाक्षर हैं। कुछ संकेत यहां दिये जाते हैं—

तत्व		संकेत
उज्जन	—	उ
ओषजन	—	ओ
कर्बन	—	क
कोबल्ट	—	को
खटिक	—	ख
गन्धक	—	ग
ताम्र	—	ता
तैल	—	तै
नत्रजन	—	न
पारद	—	पा
पोटेशियम	—	पो
प्लाटिनम	—	प्ला
मग्न [मैगनीशियम]	—	म

रजत	—	र
लोह	—	लो
शैल	—	शै
सीस	—	सी
स्फट	—	स्फ
स्फुर	—	स्फु
सोडियम	—	सो
हरिण	—	ह

इन संकेतोंसे बड़ा लाभ है। दो या अधिक तत्वोंके संकेत साथ लिख देनेसे हमारा तात्पर्य उस यौगिक से होता है जो उन तत्वोंसे मिलकर बना है। इस प्रकार ताम्र ओषितको हम (ता ओ) लिखेंगे क्योंकि यह ताम्र और ओषजनका यौगिक है। लोह गन्धिदका संकेत (लो ग) है। इस प्रकार बड़े बड़े यौगिकोंको हम इन संकेतों द्वारा थोड़ेसे स्थानोंमें लिख सकते हैं। इन संकेतोंका उपयोग समीकरणों के रूपमें भी किया जाता है जिसके द्वारा रसायन शास्त्रकी अनेकानेक प्रक्रियायें स्पष्ट की जा सकती हैं। यह कहा जा चुका है कि जब लोहा और गन्धक गरम किया जाता है तो लोह-गन्धिद नामक यौगिक उपलब्ध होता है। इसी परिवर्त्तनको हम इस समीकरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं—

लो + ग = लोग
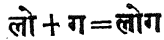
पारदओषितको गरम करनेपर हमें पारद और ओषजन प्राप्त होता है। यह बात भी समीकरण द्वारा बताई जा सकती है—

पा ओ = पा + ओ
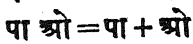
इसी प्रकार आगे पता चलेगा कि समीकरणों और संकेतोंका उपयोग रसायन विज्ञानके लिये अनिवार्य्य है। हम आरम्भमें हो कह आये हैं कि प्रकृति अविनाशी है। अतः यह बात ध्यान रखने योग्य है कि समीकरणोंके दोनों ओरोंके भार समान होने चाहियें। यह प्रत्यक्ष है कि उपर्युक्त समीकरणमें (पा ओ) अर्थात् पारदओषितका भार पा (पारद) और ओ (ओषजन) के बराबर ही है।

निश्चित अनुपातका सिद्धान्त—जब हम सोडियमको हरिण गैसमें जलाते हैं तो हमको एक सफेद चूर्ण सा पदार्थ मिलता है। इसी प्रकारका चूर्ण हमको समुद्रके जलको औटानेके पश्चात् मिलता है। दोनों प्रकारके चूर्ण स्वादमें नमकीन होते हैं। वे पानीमें घुल जाते हैं और उनकी घुलनशीलता भी समान है, उनके रवे भी एक से ही होते हैं। गुरुत्व आदि अन्य जितने भी गुण हैं उनमें कोई भेद नहीं प्रतीत होता है। इससे यह कहा जा सकता है कि दोनों एक ही पदार्थ हैं। समुद्रसे निकला हुआ चूर्ण भी सोडियम और हरिणसे मिलकर बना होगा। इस चूर्णको इसलिये सोडियम हरिद कह सकते हैं। विश्लेषणसे पता चल सकता है कि दोनों प्रकारके चूर्णोंमें सोडियम और हरिणकी मात्राका अनुपात भी एक ही है। दोनों प्रकारसे सोडियम हरिदके १०० भागोंमें ३९·३ भाग सोडियमका और ६०·७ भाग हरिणका है। सोडियम हरिदके, चाहें कभी और कहीं बनाया जाय, तत्त्वोंका अनुपात एकसा ही मिलेगा। यह कभी नहीं हो सकता है कि यदि २३ भाग सोडियम ३५·५ भाग हरिणसे मिलकर सोडियम हरिद बनाता है, तो कभी ३५ भाग सोडियम २५ भाग हरिणसे मिल जाय। इसी प्रकार रजतका १०७·९ भाग हरिणके ३५·५ भागसे ही मिलकर रजत हरिद बनायेगा। सारांश यह है कि रासायनिक संयोगमें तत्त्वोंका अनुपात निश्चित रहता है। अतः स्मरण रहना चहिये कि किसी यौगिकमें तत्त्व और उन तत्त्वोंके भारका पारस्परिक अनुपात सदा एक ही रहता है।

कोई कोई तत्त्व ऐसा होता है जो अनेक अन्य तत्त्वोंके साथ मिल सकता है। ओषजन लगभग प्रत्येक तत्त्वके साथ ओषित बनाता है। २१६ भाग पारद ओषितको गरम करनेसे हमको २०० भाग पारा और १६ भाग ओषजन मिलेगा। इसी प्रकार से २४० भाग मग्न-ओषित में १६ ओषजन और २४ भाग मग्न होता है। यदि हम ८० भाग काले ताम्र ओषितमेंसे सब तांबा और ओषजन अलग कर लें तो हमें ६४ भाग तांबा और १६ भाग ओषजन मिलेगा। इस

प्रकार इन ओषितों से प्रकट होता है कि १६ भाग ओषजनसे संयुक्त होनेके लिये २०० भाग पारद २४ भाग मग्न और ६४ भाग ताम्रका होना आवश्यक है।

पारद, मग्न, और ताम्र ये तीनों पदार्थ गन्धकसे संयुक्त होकर गन्धिद भी बनाते हैं। इन गन्धिदोंकी परीक्षा करनेपर एक विचित्र बात प्रकट होती है। २०० भाग पारद ३२ भाग गन्धकसे मिलकर पारद गन्धिद बनाता है। साथ ही साथ २४ भाग मग्न भी ३२ भाग गन्धकसे संयुक्त होकर मग्न गन्धिद बनाता है। इसी प्रकार ताम्र गन्धिदमें ६४ भाग ताम्र और ३२ भाग गन्धक होता है।

इसी प्रकार हरितों के विषय में भी देखा जाता है कि पारद हरित में २०० भाग पारद और ७१ भाग हरिण होता है, मग्न हरितमें २४ भाग मग्न और ७१ भाग हरिण है और ताम्र हरितमें ६४ भाग ताम्र और ७१ भाग हरिण है।

इन उदाहरणोंसे पता चलता है कि यदि हम तीनों तत्त्वोंको एक निश्चित अनुपातमें लें तो हमको दूसरे तत्त्व जो इन तीनोंमें संयुक्त हो सकते हैं एक स्थिर मात्रामें मिलते हैं। अर्थात् २०० भाग पारद, २४ भाग मग्न या ६४ भाग ताम्र; १५ भाग ओषजन, ३२ गन्धक या ७१ भाग हरिणमें संयुक्त होसकते हैं,

गुणक अनुपात का सिद्धान्त—प्रत्येक यौगिकके तत्त्वोंकी मात्राका पारस्परिक अनुपात तो स्थिर रहता ही है पर यह भी बहुधा देखा गया है कि एक तत्त्व दूसरे तत्त्वोंसे दो या अधिक प्रकारकी मात्रा-में भी संयुक्त हो सकता है। कर्बन और ओषजनसे संयुक्त दो भिन्न यौगिक पाये गये हैं। एक यौगिक-में तो १०० भागमें ४२·८६ भाग कर्बन है और ५७·१४ भाग ओषजन। दूसरे प्रकारके यौगिकके १०० भागमें २७·२७ भाग कर्बन और ७२·७२ भाग ओषजन है। कर्बन और उज्जन भी कई परिमा-णमें संयुक्त होते पाये गये हैं। एक यौगिकके १०० भागमें ८५·६८ भाग कर्बन और १४·३२ भाग उज्जन है। दूसरे यौगिकके १०० भागमें ७४·९५ भाग कर्बन और २५·०५ भाग उज्जन है। इन उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि एक तत्त्व दूसरे तत्त्वसे एक-से अधिक मात्राओंमें भी संयुक्त हो सकता है। ऊपर दी हुई संख्याओंसे कोई सिद्धान्त ऐसा प्रकट नहीं होता जिसमें दो तत्त्वोंके भिन्न भिन्न यौगिकोंमें कोई नियम स्थापित हो सके। उपर्युक्त संख्याओंके रूपको थोड़ा सा परिवर्तित कर देनेपर हमें इस विषयके सिद्धान्तके खोजनेमें सहायता मिलेगी।

(क) कर्बन और ओषजनके एक यौगिकोंमें—

कर्बन ४२·८६ भाग ओषजन ५७·१४ भाग है।
„ १ „ „ १·३३ „

दूसरे यौगिकमें

„ २७·२७ „ „ ७२·७३ „
„ १ „ „ २·६६ „

इस प्रकार यदि दोनों यौगिकमें कर्बनकी मात्रा समान हो तो ओषजनकी मात्रा एक यौगिकसे दूसरेमें दोगुनी है।

(ख) कर्बन और उज्जनके एक यौगिकमें—

कर्बन ८५·६८ भाग उज्जन १४·३२ भाग है।
„ १ „ „ ०·१६७ „

दूसरे यौगिकमें

„ ७४·९५ „ „ २५·०५ „
„ १ „ „ ०·३३४ „

इस उदाहरणसे भी स्पष्ट है कि यदि दोनों यौगिकोंमें कर्बनकी मात्रा समान ली जाय तो उज्जनकी मात्रा एक यौगिकसे दूसरेमें दुगनी है।

इसी प्रकार नत्रजन और ओषजनमें पांच प्रकारसे संयोग पाया गया है। इन पांचों यौगिकोंमेंसे प्रत्येकके १०० भागमें नत्रजन और ओषजनका परि-माण निम्न प्रकार है।

	(१)	(२)
नत्रजन	६३·६	४६·६
ओषजन	३६·४	५३·४
	१००·०	१००·०

	(३)	(४)	(५)
नत्रजन	३६·८	३०·४	२५·९
ओषजन	६३·२	६९·६	७४·१
	१००·०	१००·०	१००·०

इन पांचों यौगिकोंमें नत्रजनको मात्रा समान लेनेसे पता चलता है कि ओषजनकी मात्राओंमें एक नियम व्यापक है। नत्रजन यदि एक भाग लिया गया तो क्रमानुसार—

ओषजन ·५७, १·१४, १·७, २·२८, २·८५।

इस प्रकार ओषजनकी संख्याओंसे प्रतीत होता है कि इनमें १: २: ३: ४: ५ का अनुपात है। इसी प्रकारके अनेक उदाहरणोंकी परीक्षा करनेके उपरान्त डाल्टन महोदयने 'गुणक अनुपातका सिद्धान्त' निकाला कि 'जब दो तत्व संयुक्त होकर एकसे अधिक यौगिक बनाते हैं और उन तत्वोंमेंसे यदि एककी मात्रा सब यौगिकोंमें स्थिर हो तो दूसरे तत्वकी मात्राओंमें गुणक अनुपात होता है।'

व्युत्क्रम अनुपातका सिद्धान्त—बहुतसे तत्व ऐसे होते हैं कि वे दो भिन्न तत्वोंसे संयुक्त होकर भिन्न यौगिक बनाते हैं। उदाहरणके लिये, १ भाग उज्जन ३५·१८ भाग हरिणसे संयुक्त हो सकता है और यही १ भाग उज्जन १०·२५ भाग स्फुरसे भी संयुक्त हो सकता है। प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ है कि स्फुर भी हरिणसे मिलकर एक यौगिक बनाता है। इस यौगिकमें हरिण और स्फुरमें ३५·१८ भाग और १०·२५ भागका अनुपात है। हम यह कह सकते हैं कि ३५·१८ भाग हरिण १ भाग उज्जनके तुल्य-शक्तिक है, और स्फुरका १०·२५ भाग उज्जनके १ भागके तुल्य-शक्तिक है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि दो तत्वोंकी जो मात्रायें किसी तीसरे तत्वकी किसी स्थिर मात्राके तुल्य-शक्तिक होती हैं वे मात्रायें परस्परमें भी तुल्य-शक्तिक होती हैं। यह बात निम्न चित्रसे स्पष्ट है—

इस त्रिकोणमें उ, ह, और स्फुर उज्जन, हरिण और स्फुरके संकेत हैं। चित्रके तीर चिह्नोंसे स्पष्ट है कि १ भाग उ १०·२५ भाग स्फुरसे संयुक्त हो सकता है, १०·२५ भाग स्फु ३५·१८ भाग ह से संयुक्त हो सकता है अर्थात् १ भाग उज्जन, ३५·१८ भाग हरिण और १०·२५ भाग स्फुर परस्परमें तुल्य शक्तिक हैं। रासायनिक यौगिकोंके दो सिद्धान्त निश्चित अनुपात और गुणक अनुपातके हम दे चुके हैं। उपर्युक्त उदाहरणमें तीसरा सिद्धान्त व्युत्क्रम अनुपातका इस रूपमें दिया जा सकता है—

३५.१८← →१०.२५
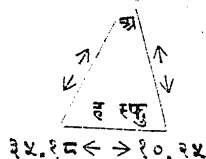
भिन्न तत्वोंकी जो मात्रायें पृथक पृथक किसी अन्य तत्वकी एक निश्चित मात्रासे संयुक्त हो सकती हैं, वे उन मात्राओंके समान होंगी या उनकी गुणक होंगी, जिन मात्राओंमें वे तत्त्व परस्परमें मिल सकते हैं। इस सिद्धान्तकी पुष्टिमें कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं। १भाग उज्जन ८ भाग ओषजन और१६ भाग गन्धकसे पृथक पृथक संयुक्त हो सकताहै। प्रयोगसे पाया गया है कि १६ भाग गन्धक १६ओषजनसे संयुक्त हो सकता है। उज्जनका १ भाग ओषजनके ८ भागसे संयुक्त होता था अतः इस उदाहरणमें उज्जन और ओषजनके यौगिकमें जितना ओषजन उपयुक्त होता था उसका गुणक दो गुना ओषजन और गन्धकके यौगिकमें लगता है। इसी प्रकार १६ भाग गन्धकके साथ ६ भाग कर्बन संयुक्त होता है और १६ भाग गन्धकके साथ २० भाग खटिकभी संयुक्त होता है। प्रयोग द्वारा पता चला है कि २० भाग खटिकके साथ १२ भाग कर्बन जो उपर्युक्त कर्बनके ८ भागका गुणक (अर्थात् दो गुना—है) संयुक्त होता है; ये दो उदाहरण गुणकके हैं। समान मात्राका उदाहरण ऊपर त्रिकोण द्वारा स्पष्ट किया जा चुका है।

डाल्टनका परमाणुवाद—रासायनिक यौगिकोंके उपर्युक्त तीन सिद्धान्तोंको दृष्टिमें रखते हुये डाल्टन

नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिकने अपने परमाणुवादका उद्घाटन किया। इसका सिद्धान्त रसायन शास्त्रमें सर्वोपरि विराजमान है।

परमाणुओंका विचार भारतवर्ष और यूनानमें बहुतप्राचीन कालसे प्रसिद्ध था। इसी भावका आधार लेकर डाल्टनने परमाणुवादको प्रयोगात्मक उपयोगी रूप प्रदान किया। उसका कथन था कि प्रत्येक तत्त्व और प्रत्येक पदार्थ असंख्यों छोटे छोटे कणोंसे मिलकर बना है। नमकके किसी टुकड़ेके हम विभाग करना आरम्भ करें तो हमें बहुत छोटे छोटे कण प्राप्त होंगे। प्रत्येक कणमें नमकके गुण होंगे। हम लिख चुके हैं कि नमक सोडियम और हरिणसे मिल कर बना है। अतः विभाजन करते करते एक अवस्था ऐसी आसकती है जब आगे विभाजन करनेपर नमकके सोडियम और हरिण दोनों अलग अलग हो जायें और उपलब्ध पदार्थोंमें नमकके गुण न मिलें। अतः प्रत्येक यौगिकका विभाजन करके ऐसा सूक्ष्म कण मिल सकता है जिसमें फिर थोड़ा सा भी और विभाग करनेपर यौगिकका गुण न रहे। इस सूक्ष्म कणका नाम अणु है। प्रत्येक यौगिक छोटे छोटे ऐसे अणुओंसे मिलकर बना हुआ है जिसमें उस यौगिकके तत्त्व संयुक्त हैं।

इसी प्रकार इन अणुओंको भी आगे विभाजित करनेपर बहुत ही छोटे कण रह जाते हैं। यह माना गया है कि अणु भी कई परमाणुओंसे मिलकर बने हैं और ये परमाणु प्रकृतिकी सूक्ष्मतम अवस्था है जिससे रसायनज्ञोंको काम पड़ता है। नमकके एक अणुमें दो परमाणु होते हैं, एक तो सोडियमका और दूसरा हरिणका। इसी प्रकार जलके अणुमें तीन परमाणु होते हैं, दो उज्जनके, और एक ओषजन का। गन्धकाम्लमें सात परमाणु होते हैं—दो उज्जनके, एक गन्धकका और चार ओषजनके। यौगिकोंको तत्त्वोंके संकेतों द्वारा प्रकट करनेकी कुछ विधि पहले लिखी जा चुकी है। यौगिकके एक अणुके प्रत्येक तत्वमें जितने परमाणु होते हैं वे तत्वोंके संकेतके समीप नीचे लिख देते हैं। नमक या सोडियम हरितमें १ परमाणु सोडियमका और एक हरिणका है। एक परमाणु बतानेके लिये कोई संख्या नहीं दी जाती। अतः जिस तत्त्व संकेतके सामने कोई संख्या नहीं है वहां समझना चाहिये कि एक अणुमें उस तत्त्वका एक परमाणु है। कुछ यौगिक संकेतों सूत्रों सहित लिखे जाते हैं—

सोडियम-हरित—(सो ह)
जल (उज्जोषित)—($उ_2$ओ)
गन्धकाम्ल ($उ_2$ग$ओ_4$)
ताम्रहरित (ता $ह_2$)
अमोनिया (न $उ_4$ओ उ)
खटिक कर्बनित (ख क $ओ_3$)

इस प्रकार इन संकेत सूत्रोंसे अणुओंके तत्वोंके परमाणुओंकी संख्या भी विदित होती है। इस प्रकार परमाणुवादके विषयमें डाल्टनका यह सिद्धान्त है—

प्रत्येक तत्व अविभाजनीय एक रूप परमाणुओंसे मिलकर बना हुआ है और प्रत्येक परमाणुकी मात्रा या भार बराबर है। यह परमाणुभार प्रत्येक तत्वके लिये भिन्न भिन्न है। तात्पर्य्य यह है कि सोडियमके प्रत्येक परमाणुका भार आपसमें बराबर है। इसी प्रकार गन्धकके परमाणुओंका भार आपसमें बारबर है। पर गन्धकका परमाणुभार सोडियमके परमाणुभारसे सर्वथा भिन्न है। जो उज्जनका परमाणु भार है वह ओषजनका नहीं, और जो ओषजनका है वह हरिण, खटिक, मग्न आदिका नहीं।

(२) भिन्न भिन्न तत्वोंके पमाणुओंके संयोगसे रासायनिक यौगिक बनते हैं। इन परमाणुओंकी संख्यामें एक निश्चित अनुपात होता है। उदाहरणतः खटिक कर्बनित एक यौगिक है जिसके अणुमें एक खटिकका परमाणु एक कर्बनका और ३ ओषजनके परमाणु होते हैं। अतः खटिक कर्बनितके लिये (ख क $ओ_3$) यह स्थिर संकेत सूत्र है।

इसी परमाणुवादपर रसायन-शास्त्रकी नीव है। ये परमाणु केवल काल्पनिक ही नहीं हैं, प्रत्युत इनका वास्तविक उपयोगका आगे पता चलेगा। हमने लिखा है

कि प्रत्येक तत्वका परमाणुभार एक समान नहीं होता है। पर प्रश्न है कि किस प्रकार परमाणुओंका भार निकाला जा सकता है। ये परमाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि आंखोंका क्या कहना, सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रोंकी सहायतासे भी नहीं देखे जा सकते हैं। तो फिर तोलनेकी बात ही अलग है। अच्छी सी अच्छी रासायनिक तुलाओंमें भी इन्हें नहीं तोला जा सकता है। पर रसायन-शास्त्र वेत्ता इन कठिनाइयोंका सामना करते हुए भी परमाणुभार निकालनेमें सफली भूत हुए हैं। उन्होंने जिन उपायों और साधनोंकी सहायता ली है उनका वर्णन आगे किसी लेखमें दिया जायगा। यहां केवल इतना ही जान लेना चाहिये कि तोलनेके लिये सबसे पहले किसी एक इकाईकी आवश्यकता होती है।

भारतवर्षमें मन, सेर, छटाकमें वस्तुयें तोली जाती हैं और कहीं पौण्ड, ग्राम, हेक्टोग्राम आदिसे। पर परमाणुओंके भारका विचार करते हुए ये तोलें सर्वथा अनुपयुक्त हैं। अतः तत्वोंके परमाणु भारके लिये यह आवश्यक हुआ कि कोई अच्छी इकाई होनी चाहिये। संसारके उपलब्ध तत्वोंमेंसे उज्जन नामक तत्व सबसे हलका होता है। अतः कुछ वैज्ञानिकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्हींके परमाणु भारको नापनेके लिये उज्जनके अणुको इकाई माना। इसीकी अपेक्षासे अन्य तत्वोंके परमाणुभार निकाले जाने आरम्भ हुए।

पर, जैसा आगे जाकर पता चलेगा, बहुत कम तत्व उज्जनसे संयुक्त होते हैं, अतः परमाणुभार सीधे मार्गसे न निकाले जा सके और एक टेढ़ा मार्ग लिया गया। ओषजन और अन्य तत्वोंमें बड़ी सरलतासे बहुधा संयोग हो सकता है। अतः ओषजनकी अपेक्षा पहिले परमाणुभार निकाला गया, और फिर उससे उज्जनकी अपेक्षा परमाणुभारका पता लगाया गया। इसमें यह सर्वथा आवश्यक था कि पहले ओषजनका परमाणुभार ज्ञात हो। वैज्ञानिकोंने ओषजनका परमाणुभार १६ निकाला। कुछ कालान्तरमें रसायनने अपने अन्वेषणों द्वारा यह सिद्ध किया कि ओषजन उज्जनकी अपेक्षा पूर्णतः १६ गुण भारी नहीं है। इस समय तक ओषजनका परमाणुभार १६ मान कर अन्य तत्वोंका परमाणुभार निकाला जा चुका था। अतः इसी नई खोजके अनुसार सब तत्वोंके परमाणुभार अशुद्ध प्रतीत होने लगे। अतः वैज्ञानिकोंने अपनी इकाईको परिवर्तित करके निश्चय किया कि आदर्श परिमाण ओषजन माना जाय और यह १६ ही माना जाय। इस आदर्शके अनुसार उज्जनका परमाणुभार नियत करके १·००८ ठहराया गया। इस प्रकार आजकल ओषजनको परिमाण-आदर्श माना जाता है और इसीकी अपेक्षासे अन्य तत्वोंका परमाणुभार नियत किया जाता है।

दिगम्बरी देवीका इतिहास

[ले०—श्री० आर. सी. भार्गव, एम. बी., बी. एस.]

हिन्दुओंको और चीनियोंको शीतलाका ज्ञान ईसाके १०, १२ शताब्दी पहिले भी था। चीनी भाषामें 'टियेन्टा हिन्फा' नामकी पुस्तकमें शीतलाका वर्णन दिया है। मिस्रमें इस रोगकी उपस्थितिका ज्ञान २०वें कुलकी ईसाके १२००-१३०० वर्ष पहिलेकी एक मम्मीपर दाने मिलनेसे होता है। प्राचीन यूनानी और रोमन इस रोगसे अनभिज्ञ थे। इन लोगोंमें इस रोगका सबसे पहिला वर्णन ईसाकी पांचवीं शताब्दीमें, अहरोनकी लिखी 'पैन्डेक्टस' नामकी पुस्तकमें मिलता है। इसके पश्चात् रेजीजने दशवीं शताब्दीमें शीतलाका विस्तारपूर्ण वर्णन लिखा।

भारतवासी शीतलाको देवी मानकर अत्यन्त प्राचीन समयसे पूजते चले आ रहे हैं। स्कन्द पुराणके काशीखण्डमें शीतलाकी एक बहुत अच्छी स्तुति लिखी है।

नमामि शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बरीम्।
मार्जनी कलशोपेतां सूर्पालंकृत मस्तकाम्॥

वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्व रोग भयापहम् ।

... ...

न मन्त्रो नौषधं तस्य पाप रोगस्य विद्यते ।

त्वमेका शीतले त्राती नान्यो पश्यामि देवताम् ॥

गदहेपर चढ़ी हुई दिगम्बरी, झाड़ू, घट धारण किये हुए और मस्तकपर सूप (छाज) से अलंकृत देवीको नमस्कार करता हूं। इस पाप रोगका न मन्त्र, न औषध है। हे शीतला देवी! तुम्हीं अकेली रक्षा करनेवाली हो, और कोई रक्षा करने वाला देवता मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता। शीतलाका वास जलमें है इसलिए देवीकी पूजामें मशक छुड़वाते हैं। वास्तवमें शीतलाके भेषमें शीतलासे बचनेके उपायोंका समावेश है। हिन्दुओंको रोगके संचारकी विधि अच्छी तरह ज्ञात थी।

प्रसङ्गाद् गात्र संस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात् ।

एक शय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥

कुष्ठं ज्वरश्चशोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।

औपसर्गिक रोगाश्चसंक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ (निदाने०) ॥

झाड़ूसे यह अभिप्राय है कि रोगीका कमरा साफ़ रखो, पानीके घड़ेसे भी यही अभिप्राय है। सूप भी पवित्रता सूचक है। हिन्दू इस बातको अच्छी तरह समझते थे कि रोगीके गात्र स्पर्शसे, रोगीके पास आने जानेसे, रोगीके साथ खानेपीनेसे, रोगीकी चारपाईपर बैठनेसे, और श्वासतकसे भी इस रोगका संचार होता है। यह रोग मनुष्यसे मनुष्यको लगता है। स्कन्द पुराणमें जो यह बात लिखो है कि इस पाप रोगकी कोई औषध नहीं है अक्षरशः अब भी सत्य है। किन्तु इससे बचनेके उपाय निकाले गये हैं जो आगे दिये जाते हैं।

रोगोत्पादक टीका

इससे क्षुद्र(mild)रोग हो जाता है और फिर वह प्राकृतिक कठिन रोगसे अभय प्रदान करता है। इस प्रथाकी सबसे प्राचीन साक्षी चीनियोंमें मिलती है। लोकहार्ट चीनी भाषाके अत्यन्त प्राचीन हस्तलेखका अनुवाद देते हुए लिखते हैं कि इस टीकेकी प्रथा चीनमें लिंग कुलके चुआङ्सुङ्गके राज्य समयसे चली आ रही है। जब रोग अपने आप होता है तो कठिन और प्राणघातक होता है; किन्तु जब रोग टीकेसे उत्पन्न किया जाता है तो बहुत क्षुद्र होता है और मृत्यु १ प्रति दश सहस्रसे अधिक नहीं होती। चीनमें रोगोत्पादक टीकेके लगानेकी विधियें ये हैं:—

१. सूखे हुए कछुओं (रन; देवली; Scab) का चूर्ण नाकमें श्वास द्वारा चढ़ाना।

२. नाकमें कछुओंके चूर्णसे सने हुए सूतको चढ़ा देना।

३. रोगीको दूषित कपड़े पहिना देना।

४. त्वचाके नीचे या कुरेदी हुई त्वचापर रोगाकीर्ण पदार्थ लगा देना।

सन् १७६७ ई० में मि. जे. जेड. हौलवेलने लण्डनमें एक निबन्ध पढ़ा। हौलवेल हिन्दुस्तानमें तीस वर्ष रह चुके थे। इनका असली पेशा डाक्टरी था जो कि इन्होंने यहां १८ वर्ष तक किया फिर बङ्गालके गवर्नर रहे। उनके निबन्धका सारांश नीचे दिया जाता है। 'वह टीका लगानेकी विधि जोकि उस समय इङ्गलैण्डमें इतनी सफलतासे प्रयोगमें लाई जा रही थी भारतवर्षमें अत्यन्त प्राचीनकालसे चली आ रही थी। लगातार पाँच छै सालतक शीतला बहुत कम मनुष्योंको होती थी और बहुत क्षुद्र होती थी इस कारण लोगोंका इस ओर बहुत कम ध्यान आकर्षित होता था। प्रत्येक ७वें वर्ष मार्च, अप्रेल और मईके महीनेमें इस रोगका बड़ी ज़ोरोंके साथ संचार होता था और कभी कभी तो वर्षा ऋतुतक चलता रहता था। इस समय रोग बहुत दुष्ट (malignant) होता था और दाने मिले हुए होते थे। प्रायः केवल वे ही रोगी बचते थे जिनको एक बार शीतला निकल चुकी होती थी। अधिकांश रोगी दाने निकलनेके दो तीन दिन पीछे मर जाया करते थे। फ़िरंगी अपना निवास छोड़कर भाग

जाते थे और संचारके अन्त होनेके पहिले नहीं वापिस आते थे। सैन्ट हेलेनाके निवासियोंमें स्त्री या पुरुष जिसपर बंगालमें प्राकृतिक विधिसे शीतलाका आक्रमण हुआ वही मर गया।* उनमेंसे कोई भी नहीं बचा। वृन्दावन, प्रयाग इत्यादिके ब्राह्मण समस्त देशमें टीका लगाते फिरते थे। ये फ़रवरी या मार्चमें रोगके ऋतुके पहिले ही बंगालमें आ पहुँचते थे। ये ब्राह्मण टीका लगवानेवाले मनुष्योंसे टीका लगवानेके पहिले खानेका कुछ परहेज़ कराते थे। ये ब्राह्मण घर घर जाते थे और वहां बच्चोंके मां बापसे पूछ लेते थे कि कितने कितने टीके लगवाने हैं। मनुष्योंमें कूर्पर (कोहनी) और मणिबन्ध (wrist) के बीचमें टीके लगाये जाते थे और स्त्रियोंके कूर्पर और स्कंध (कन्धा) के बीचमें टीके लगाये जाते थे। एक लोहेके यन्त्रसे १५–२० जगह थोड़ी थोड़ी त्वचा कुरेद ली जाती थी और इन ज़ख्मोंपर पिछले वर्षके रोगियोंके कच्छुओं (Scab) के चूर्णसे सना हुआ कपड़ा छः घण्टे तक रहने दिया जाता था। ज़ख्ममें कपड़ा लगानेके पहिले कुछ गङ्गाजल लगा दिया जाता था और फिर सात आठ मिनटतक रगड़कर उसे सुखा लेते थे। ये सब कार्य करते समय शीतलाकी प्रार्थना करते रहते थे। फिर जबतक कि ज्वर न चढ़ आये ठंडा पानी टीका लगवानेवालेपर डालते रहते थे। और फिर दाने निकल आनेके समयसे कच्छु बँध जानेके समयतक ठंडा पानी फिर डालते थे। एक मासतक खानेका परहेज़ रखा जाता था। फिर एक तीव्र कांटेसे दानोंको खोल देते थे। रोगीको घरके बाहर खूब हवा खिलाते थे। ज्वर इतना कम होता कि किसी ख़ास परहेज़की आवश्यकता नहीं रहती थी। असफलता कभी भी नहीं होती थी और दाने पचाससे कम और १०० से अधिक कभी नहीं होते थे।

हौलवेल पहिले तो ठंडे पानी और हवाके प्रयोगके बहुत विमुख थे परन्तु उनको पीछेसे ये ज्ञात हुआ कि जो कोई ऐसा नहीं करता उसको बहुत मरीज़ोंसे हाथ धोना पड़ता। शीतलाके मुख्य कारणका निवास शरीरमें ही समझा जाता था*। और यह विचार था कि यही कारण जन्तुओंके शरीरमें भी रहता है। शीतलाके संचारके दिनोंमें टर्की और मुर्गोंमें भी इस रोगसे बहुत संख्यामें मृत्यु होती थी। हौलवेलके तोतेको शीतलाके दाने निकले। तोतेके विच्छेदनके पश्चात् आहार पथमें उतनी ही बहुसंख्यामें दाने मिले कि जितनी शरीरमें बाहर थे। शीतलाका दूसरा कारण वायुमें उड़ते हुए अदृश्य जीवाणु समझे जाते थे और ये पहिले कारणको उत्तेजित करनेवाला कारण समझे जाते थे। ब्राह्मण इन जीवाणुओंको ही अब संचारिन् रोगोंका मुख्य कारण समझते थे। विचार यह था कि ये जीवाणु विना कोई हानि पहुंचाये श्वासमें बाहर निकलते हैं और अन्दर जाते हैं परन्तु ये जीवाणु दूध इत्यादि उन पदार्थोंमें चिपट जाते हैं जिनको ब्राह्मण खानेसे मना करते थे।

हौलवेलकी समझमें नहीं आता था कि यदि इन जीवाणुओंको वायुके साथ इधर उधर उड़ते समझ लें और स्थिर पानी और वायुमें उत्पन्न होता हुआ समझ लें और शरीरमें भोजनके साथ घुसता हुआ समझ लें तो फिर इन्हीं जीवाणुओंको विशेष ऋतुमें प्रचलित होनेवाले सब संचारिन रोगोंका कारण क्यों नहीं समझा जाय।

---

* यह बात अच्छी तरह ज्ञात है कि इ० श्री जातिके लिये शीतला और जातियोंकी अपेक्षा अधिक प्राणघातक होती है। ले०

* इस कारणको रोग शीतला कहते हैं। कोई २ % मनुष्योंमें यह सदासे ही नहीं होती। इनमें कोई टीका सफल नहीं होता और न इन्हें किसी टीकेकी आवश्यकता ही होती है। ले०

हौलवेलका विचार था कि गंगाजलको लगाकर रगड़नेसे कछुओंके विष शरीरमें समावेश होनेमें कुछ सहायता मिलती थी और गंगाजलके प्रयोगसे बड़ी श्रद्धा उत्पन्न होती थी। हौलवेल ठंडे पानी और हवाके प्रयोगकी और दानोंके खोलनेकी विधिकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। हौलवेलका विचार था कि दानोंको खोलनेसे द्वितीय ज्वरमें कमी आ जाती थी। वह कांटेके खोलनेमें यह लाभ समझते थे कि छिद्र बहुत छोटा होता है इस कारण वायु प्रवेश करने नहीं पाती।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि ब्राह्मणोंने जीवाणुओंकी कल्पना अत्यन्त प्राचीन कालमें की थी। रोगोत्पादक टीकेमें एक बहुत बड़ा दोष यह है कि इससे रोग उत्पन्न होता है, और उस उत्पन्न किये रोगसे किसी भी स्थानमें और किसी रोगीकी अनुपस्थितिमें भी रोगके संचारका भय रहता है।

ऊपर लिखे हुए वृत्तान्तसे यह स्पष्ट है कि भारत और चीनमें रोगोत्पादक टीकेका ज्ञान अत्यन्त प्राचीन कालसे है। वेद और पुराणमें इसका उल्लेख न होनेसे समयका निर्दिष्ट करना कठिन है। इन्हीं दो देशोंसे रोगोत्पादक टीकेकी विधि फ़ारस और ग्रीसमें होती हुई पश्चिमीय देशोंमें फैली। भारतमें इसका प्रचार अब भी कहीं कहीं है। टीका अग्रबाहु (पंजाबमें) और मणिबन्धपर लगाया जाता है। फ़ारसमें टीका लगानेकी विधि यह थी कि पहिले बाहुकी त्वचा कुरेदते थे। फिर रुधिर बन्द हो जानेपर रनोका बनाया चूर्ण उस स्थानमें रगड़ देते थे। अशान्तिमें हब्शी अपनी जंघा और बाहुओंमें सात स्थानोंपर टीका लगाते थे। श्याममें रनका चूर्ण नाकमें चढ़ाते थे।

सन् १७१७ में एक चतुर अंग्रेज़ी रमणी टर्कीमें अंग्रेज़ी राजदूतकी स्त्री लेडी मेरी बार्टले मांटेगने एड्रियानोपिलमें प्रचलित रोगोत्पादक टीकेकी विधिकी प्रशंसा इङ्गलैण्डको लिखी। इन्होंने अपने छः वर्षके लड़केके भी टीका लगवाया था। लेडी मांटेगका इङ्गलैण्डमें बहुत प्रभाव होनेसे इङ्गलैण्डमें यह टीका बहुत प्रचलित हो गया।

रोग प्रतिरोधक टीका

कई शताब्दियोंसे कृषक जनतामें यह विचार चला आया था कि गोमसूरिका (Cow-pox, गायके थनके फफोलोंसे होनेवाला रोग) का आक्रमण शीतलाके आक्रमणसे रक्षा करता है। डचेज़ औफ़ क्लीवलैण्डसे जो कि अपने समयमें बड़ी विख्यात थी, एक मज़ाकियेने कहा कि यदि तुम्हें शीतला निकल आई तो अपना पेशा न कर सकोगी। डचेज़ने उत्तर दिया कि मुझे ऐसा रोग हो चुका है कि जिसका आक्रमण शीतलासे रक्षा करता है। किन्तु इस भूल विचारके आधारपर टीका निकालना जेनरके ही भाग्यमें बदा था।

एडवर्ड जेनरका जन्म १७ मई १७४६ ई० को गलौसेस्टर शायरके बर्कले नामक गांवमें हुआ। सन् १७७० में उसे विख्यात जहौन हण्टरसे पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय उसने जहौन हण्टरसे वह मित्रता की कि जिससे उसे कभी निराश न होना पड़ा। तीन वर्ष पश्चात् वह अपनी जन्म भूमिको लौट आया और बड़ी सफलतासे अपना पेशा करने लगा। इस समय एक युवा ग्वालिन दवा लेने आई। जब शीतलाकी वार्ता छिड़ी तो उसने कहा कि मुझे शीतला नहीं हो सकती क्योंकि मुझे गोमसूरिका हो चुकी है। इस समय शीतला यूरोप भरमें अत्यन्त साधारण और महा कठिन रोग था और इसमें बहुत मृत्यु होती थी। युवा ग्वालिनकी बात जेनरके ध्यानमें बैठ गई। जेनरने अपने विचार जहौन हैण्टरके प्रति प्रकट किये। उसने एक अत्यन्त विख्यात परामर्श दी 'बहुत सोचो मत, करके देखो'। सब लोग जेनरके इस अनुसन्धानके प्रयत्नको केवल जिज्ञासा समझते थे। किसीका सफलताकी ओर ध्यान नहीं था। उसने अपने पेशेके कई और लोगोंसे अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने इसका बहुत

मज़ाक़ उड़ाया और धमकी दी कि यदि तुम इस विषयमें फिर वार्ता करोगे तो हमको तुम्हें अपनी संगतमेंसे निकालना पड़ेगा।

पहिले पहिल जेनरने गायके थनके फफोलोंका अच्छी भांति पठन किया। उसने यह बात निकाली कि गायके थनके फफोले दो भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। एकके लिम्फ (रस) से टीका लगानेपर रोग अभय होता है, दूसरेसे टीका लगानेपर कोई फल उत्पन्न नहीं होता। यह दाने बहुत समान हैं परन्तु तब भी पहचाने जा सकते हैं।

अनुसन्धानके आरम्भ करनेके बीस वर्ष पश्चात् जेनरने परीक्षण द्वारा यह दिखला दिया कि गोमसूरिकाके आक्रमणमें शीतलासे रक्षा करनेकी शक्ति है। १४ मई १७९६ को जेनरने सैराटनेलमीज़ नामकी एक ग्वालिनके हाथसे, जिसको गोमसूरिका हो रही थी, रोगाकीर्ण पदार्थ लेकर, उस पदार्थसे जेम्स फिलिप नामके आठ वर्षके एक लड़केके टीका लगा दिया। १ली जुलाईको जेनरने इस लड़केको शीतलाके दानोंसे रोगाकीर्ण पदार्थ लेकर रोगोत्पादक टीका लगाया। किन्तु रोग उत्पन्न करनेमें असफलता हुई।

पहिले तो जेनरके अनुसन्धानका स्वागत लापरवाहीसे हुआ। जेनर अपने अनुसन्धानका प्रचार करनेके लिए लण्डनमें जाकर तीन महीनेतक रहा किन्तु एक भी डाक्टर उसकी परीक्षा करनेके लिए उद्यत नहीं हुआ। व्यर्थ तीन महीने नष्ट करके विचारा अपने गाँवको लौट आया। किन्तु धीरे धीरे जब कुछ उत्साही अदीक्षित (laymen) व्यक्तियोंके प्रयत्न द्वारा कुछ प्रचार हुआ तो द्वेषके कारण विरोध होने लगा।

जेनरके बहुतसे व्यङ्ग चित्र बनाये गये। जेनरपर गायके थनकी बीमारीका अंश डालकर अपनी जातिवालोंको पशु बनानेका दोषारोपण किया गया। पादरियोंने टीका लगाना शैतानका काम ठहराया। यह कहा गया कि टीका लगवानेवालेका मुह बैलका सा हो जायगा। फोड़ोंका उत्पन्न होना सींगोंका आरम्भ बतलाया गया और यह भी कहा गया कि बोली भी धीरे धीरे बैल जैसी हो जायगी।

एक गाँवमें जब एक उत्साही अदीक्षित मनुष्यके प्रयत्नसे कुछ निवासियोंने जेनरका टीका लगवाया तो टीका लगवानेवालोंपर जब वे बाहर निकलते थे पत्थर फेंके जाने लगे। दो अन्य न प्रतिष्ठित महिलाओंने जिनका नाम डूसी और काऊन्टेस औफ़ बर्कले था अपने लड़कोंको टीका लगवाया। इस घटनासे टीकेके प्रति बहुतसे झूठे विचार कम हुए। इन महिलाओंका नाम उनके साहसके लिये बहुत आदरणीय है।

धीरे धीरे छः वर्षके भीतर भीतर इस टीकेका प्रचार प्रत्येक सभ्य देशमें हो गया। बहुतसे डाक्टरोंको इस टीकेके अनुसन्धानकी कीर्ति अपनानेकी इच्छा होने लगी और उनमेंसे कई तो इ
छलमें लगभग सफल होनेको थे। जेनरके जीवनकालमेंही उसे मानवोपकारीकी पदवी दी जाने लगी। जेनरकी जन्मगांठ जर्मनीमें बहुत वर्षों तक दावतके साथ मनाई जाती थी। इसका फलस्वरूप यह है कि जर्मनीमें शीतला लगभग बन्द हो गई है। रोमन कैथोलिक देशोंमें इस टीकेके सौभाग्यको प्राप्त करनेके लिए धार्मिक जलूस बनाये जाते थे। इङ्गलैण्डकी राष्ट्रीय सभाने १५०,००० रु० १८१२में और ३००,००० रु० फिर एक वर्ष पश्चात् जेनरको प्रदान किये।*

जेनरके बराबर अभीतक यूरोप भरमें किसीका इतना आदर नहीं हुआ था। किन्तु इङ्गलैंडमें भी उसका किसी प्रकार भी उतना ही आदर नहीं हुआ। राष्ट्रीय सभाने इतना रुपया तो प्रदान किया परन्तु लेडी मान्टेगूकी चलाई प्रथाके विरुद्ध १८४०

* जनताकी इतनी कृतज्ञताका कारण समझनेके लिये यह ध्यानमें रखना चाहिये कि उस समय रोग बड़ा भयंकर और बहुत फैला हुआ था। जेनरके टीकेके प्रयोगके कारण अब यह रोग सब जगह कम हो गया है।

तक कोई नियम नहीं बनाया। रोगोत्पादक टीकेसे संचारका भय रहता है, जैसा कि ऊपर बतला चुके हैं और राष्ट्रीय सभाको इस प्रथाको चलने देनेके लिये न कोई आवश्यकता थी, न बहाना। इसी कारण देशमें रोग बहुत दिनोंतक फैला रहा।

जेनरको देहातसे ही प्रेम था। वह अपनी इतनी उन्नत दशामें भी अत्यन्त नम्र था। जब उससे कहा गया कि यदि वह लण्डनमें डाक्टरी करे तो १ लाख रुपये साल कमा सकता है तो उसने जवाब दिया कि जब मैंने अपनी युवावस्था अपने घर ही पर निकाल दी तो अब घर छोड़ कर अपनी वृद्धावस्थामें धन और यशका दास बन जाना उचित नहीं है। द्वेषके कारण इस टीके-का विरोध और उसकी कीर्ति अपनानेके बहुत प्रयत्न होते रहे और इस कारण जेनरके लण्डनमें न रहनेसे इसके अनुसन्धानके प्रचारको बहुत हानि पहुँचती रही। १८१४ में जेनरका लण्डनमें अन्तिम बार गया। इस अवसरपर उसकी कई सम्राट् और रानियोंसे भेंट करायी गयी। १८२३ की २६ जनवरीको जेनरका स्वर्गवास हो गया।

आजकल जेनरका टीका लगभग प्रत्येक देशमें अनिवार्य बना दिया गया है इस कारण टीका लगानेके लिये बहुत लिम्फकी आवश्यकता होती है। इसके प्राप्त करनेकी विधि संक्षेपसे यह है कि एक निरोगी बछड़ेके उदरके चर्मके बालोंको मूंड कर और चर्मको शुद्ध करके एक छुरीसे कई स्थानों में लिम्फके टीके लगा देते हैं। फिर आघातोंपर एक शुद्ध वस्त्र बांध देते हैं। ५ दिन बाद आघातों परसे कच्छु हटाकर उसके नीचेकी मज्जाको संचय कर लेते हैं। इस गूदेको टीकेकी मज्जा कहते हैं। मज्जाको खूब बारीक करके उसे गिली-सिरीनमें मिला लेते हैं। इसको टीकाका लिम्फ कहते हैं यह ठंडी जगह या बरफ़में रक्खा जाता है। एक महीने बाद इसकी पवित्रताकी आगर प्लेटपर परीक्षाकी जाती है। बरफ़से निकालनेपर यह १०,११ दिनमें और गरमीमें तो और भी शीघ्र ४,५ दिनमें ख़राब हो जाता है। मांग आनेपर लिम्फ़को ऐसी ट्यूब (नली) में, जिसे पिचका कर लिम्फ़ निकाला जा सके, भर कर भेज देते हैं।

शीतलासे बचनेके उपाय

सारांश यह है कि शीतलासे बचनेके उपाय दो हैं; एक करंटीन, दूसरा टीका।

(१) करंटीन

करंटीनका मतलब यह है कि रोगीको अन्तिम कच्छु गिर जानेके २१ दिन पीछे तक पृथक् रखना चाहिये। जो रोगीसे सम्बन्धमें आये हों, उन्हें १४ दिनतक पृथक् रखना चाहिये। रोगीके बर्त्तनोंको उबलते हुये पानीसे साफ़ करना चाहिये। कमरेको पवित्र करनेके लिये फ़र्श, दीवारोंको, मेज़ कुर्सीको साईलिन (१:१५०) या पारदिक द्विहरितसे धोना चाहिये। वायुको पवित्र करनेके लिये गन्धक द्विओषिद गैसका प्रयोग करना चाहिये। कमरेके कुल दरवाज़े और सूराख़ बन्द कर देने चाहिये। गन्धक द्विओषित गैस या तो गन्धक जलानेसे बनाई जा सकती है, या दबाव लगा कर बनाया हुआ तरल पदार्थ जो बाज़ारमें मिलता है उससे बनाई जा सकती है। आधा सेर गन्धक १,००० घन फ़िट वायुके लिये पर्याप्त होगी।

(२) जेनरका टीका

टीके लगे हुओंको बहुत कम रोग होता है और यदि होता भी है तो बहुत क्षुद्र। टीके लगे हुओंमें शीतलाके आक्रमणके दिनोंमें केवल दश या इससे भी कम दाने देखना कोई असाधारण घटना नहीं है। टीका बच्चेके करवट लेना सीखनेके पहिले अर्थात् ४ महीनेके भीतर भीतर लगवाना चाहिये। टीकेसे उतना भय नहीं होता जितना कि रोग होनेसे होता है। टीकेसे १०,१२ वर्ष-तकके लिए रोगका डर जाता रहता है। बच्चोंको प्रायः टीका पहिले वर्षके भीतर लगाया जाता है। इस कारण पहिले दश वर्षकी आयुतक

शीतलासे मृत्यु बहुत कम होती है। दश वर्षके पश्चात् फिर मृत्यु संख्या बढ़ जाती है। इसलिये ११ वर्षकी आयुमें फिर द्वितीय टीका लगवाना चाहिये।

शीतला छूत लगनेके कोई १४ दिन पश्चात् प्रकट होती है। छूत लगनेके दो दिनके भीतर भीतर टीका लगवानेसे शीतलाका आक्रमण बिल्कुल रुक जाता है। जब किसी घर, छात्रालय इत्यादिकोंमें एक निवासीको भी शीतला निकल आये तो वहांके शेष सब निवासियोंको टीका लगाना चाहिये। दश वर्षके पश्चात् यदि द्वितीय टीका न लगा हो तो नगरमें आक्रमण होनेपर तुरन्त टीका लगवा लेना चाहिये।

जिन देशोंमें इन दो उपायोंका पालन होता है वे शीतलासे मुक्त हो जाते हैं। जर्मनीकी उपमा हम पहिले ही दे चुके हैं। हमारा देश भी इन्हीं उपायोंसे शीतलाको विदाकर सकता है। हमारे देशमें जहां सौ आदमी बैठे कि दो चारके चेहरे-पर शीतलाके दाग अवश्य मिल जायंगे।

संख्याओंसे ज्ञात होता है कि टीका लगे हुए मनुष्योंमें शीतलासे मृत्यु बहुत कम होती है। कलकत्तेमें १८८० में जेनरका टीका लगवाना अनिवार्य किया गया। इसके पहिलेके १९ वर्षोंके लिये मृत्यु संख्या ११६८ प्रतिलक्ष थी। १८८० के पीछेके १९ वर्षोंके लिये मृत्यु संख्या ४४५ प्रतिलक्ष थी। करंटीनकी उपेक्षामें भी इतना अन्तर हो गया। मद्रासमें जेनरका टीका १८८४ में अनिवार्य किया गया। १८७५-१८८४ में मृत्यु संख्या ४२ प्रतिलक्ष थी। १८८५-१४ में मृत्यु संख्याका औसत केवल ६ प्रतिलक्ष रहा। यह भी करंटीनकी उपेक्षामें। १९१० में भारतीय जेलोंमें शीतलासे मृत्यु केवल १ प्रतिलक्ष हुई। सेनामें भी यही संख्या रही।

१८७६ तक माण्टरोलमें शीतला लुप्त हो चुकी थी। १८७६ के पश्चात् जेनरके टीकेके विरुद्ध वहम फैल गया और धीरे धीरे बहुत जनता अरक्षित रहने लगी। २८ फ़रवरी १८८५ को शिकागोसे आए हुए एक मोटर हांकने वालेको शीतला हो गई। दश महीनेके भीतर भीतर हज़ारोंको शीतला निकल आई और ३१६४ रोगियोंकी मृत्यु हो गई। यह अच्छी भांति समझ लेना चाहिये कि जो टीका नहीं लगवाता वह अपने देशको भी अपने साथ ख़तरेमें डालता है। इसी कारण जेनरका टीका लगवाना अनिवार्य किया गया है।

हमारे देशमें कितने ही साधु, संत, महात्मा, नेता और अन्यान्य महानुभाव जेनरके टीकेका विरोध अपनी साधुताके परिचयको दृढ़ करनेके लिये आवश्यक समझते हैं। इनको जेनरके समय-के पादरियोंका ही अवतार समझना चाहिये और इन अनभिज्ञोंकी सम्मतिकी ज़रा भी क़दर नहीं करनी चाहिये। जेनरका टीका लगवाना अनि-वार्य क़ानून होनेसे महात्मा गांधी भी आरोग्य-दर्पण नामकी पुस्तकमें सबसे यह टीका लगवानेके लिये अनुरोध करते हैं।

अब तो आप समझ गये होंगे कि दिगम्बरी-का अर्थ यह है कि रोगीके कपड़ोंमें भी छूत होती है। और अब यह भी समझमें आ जायगा कि शीतला गदहे (मूर्खों) पर क्यों चढ़ी करती है। इसका कारण यह है कि मूर्ख लोग प्रतिरोधक नियम नहीं पालन करते।

हमारे पूर्वज शीतलाके ज्ञानमें और सब देशों-से बढ़े हुए थे। वे इसका कारण जीवाणु ही सम-झते थे। किन्तु आजकलके वैद्योंने इस कारणको भुला दिया। हम लोगोंको मूर्खता बिल्कुल शोभा नहीं देती।

पाठकोंको यह भी ज्ञात होगा कि हब्शी लोग भी शीतलाको रोकनेके लिये क्या क्या प्रयत्न करते थे। क्या हम लोगोंको इस मामलेमें चुप-चाप रहना शोभा देता है? यह भी पाठकों ने देखा होगा कि जेनरका टीका किस विरोधको जीत चुका है। हमारे युवा वैज्ञानिकोंको जेनरके जीवन-से धीरता (patience) का पाठ लेना चाहिये।

हमारे घरोंमें जहां एक बच्चेको शीतला निकली कि फिर सब बच्चोंको बिना गिराये पीछा नहीं छोड़ती। करंटीनका प्रयोग करनेसे और बाक़ी सब घरवालोंको टीका लगवानेसे यह बात बिल्कुल बन्द हो जायगी। जिस प्रकार कि पहिले रोगोत्पादक टीका लगाते गुणमुण प्रार्थना करते जाते थे इसी प्रकार अब जेनरके टीकेको ही शीतलाकी असली पूजा समझना चाहिये।

स्वच्छता

[ले० श्री कृष्णगोपाल माथुर, विशारद, साहित्यरत्न]

स्वच्छता

अंगरेज़ीमें एक कहावत है :—'ईश्वर भक्तिसे उतरकर स्वच्छताका ही स्थान है।' परन्तु देखा जाता है कि लोग प्रायः स्वच्छतापर बहुत कम ध्यान देते हैं। हमारे यहांके घरोंकी बनावट तो ऐसी है कि प्रायः हवा आनेका काम नहीं और वहीं कूड़ा कर्कट पड़ा रहता है जिससे हमारे बच्चे और स्त्रियां जो रात दिन वहीं रहती हैं बहुत हानि उठाती हैं। हमसे ज़्यादा दुर्दशा किसानोंकी है, उन्होंने अपने घरोंकी सफ़ाई न रखनेकी हद ही कर डाली है। इतना ज़रूर है कि वह दिन भर बाहर खेतोंमें काम करते हैं और वहां उन्हें शुद्ध वायु, धूप और शुद्ध जल मिलता रहता है। इसलिये उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है; पर उनके घर भी अच्छे हों तो उनके स्वास्थ्य-का क्या कहना है। लेकिन हम लोगोंमें अज्ञानता भरी हुई है। हमारे देश वासियोंकी भयंकर मृत्यु संख्यापर विचार करते हुए एक डाक्टरने कहा है कि 'मैं यहां प्लेगको सबसे बड़ा रोग नहीं कहूंगा; पर उससे भी बढ़कर यहांके लोगोंकी अज्ञानता है।' वास्तवमें बात बहुत सही है। स्वच्छता स्वास्थ्य-रक्षाका मुख्य काम है। इसलिये शहर, गांव, घर और प्रत्येक मनुष्यका स्वच्छ रहना बहुत ज़रूरी बात है।

शहरोंकी सफ़ाई

यह काम सरकारके करनेका है। यह म्यूनिसिपैलिटीका मुख्य कर्तव्य है। यदि म्यूनिसिपैलिटी शहरकी सफ़ाईमें अपने कर्त्तव्यका लक्ष्य करके काम करती रहे तो शहरका स्वास्थ्य अच्छा ही नहीं बना रहे, बल्कि उसमें कोई रोग शायद ही आवे। वैसे तो आजकल म्यूनिसिपैलिटी-में बहुतसा रुपया ख़र्च होता है, पर म्यूनिसिपैलिटी प्रायः जैसा चाहिये वैसा काम करके नहीं दिखाती। यह देशके लिये बहुत बुरी बात है। म्यूनिसिपैलिटीके प्रत्येक सभासदका मुख्य कर्तव्य है कि वह शहरकी सफ़ाईके सम्बन्धमें जी तोड़ परिश्रम करता रहे।

गांवोंकी सफ़ाई

शहरोंकी सफ़ाईके बाद गांवोंकी सफ़ाईका नम्बर है। गांवोंमें सफ़ाईकी अधिक आवश्यकता है। क्योंकि यहांपर पशु अधिक होनेसे उनका मलमूत्र भी अधिक होता है। दूसरे, कृषक लोगों-को कृषि कार्यसे कम अवकाश मिलता है, तीसरे वह स्वच्छताके लाभसे अनभिज्ञ रहते हैं। इस-लिये वहांपर पटेल, पटवारी, शहना आदिको म्यूनिसिपैलिटीका काम देना चाहिये। इन लोगों-का पूरा कर्त्तव्य होना चाहिये कि, यह गांवके लोगोंको सफ़ाई और स्वास्थ्यके लाभ समझाते रहें। गांवके स्वास्थ्य सुधारके लिये नगर-म्यूनिसिपैलिटीकी शाखाएँ भी गांवोंमें होनी चाहियें।

घरोंकी सफ़ाई

प्रत्येक मनुष्यका पहला कर्त्तव्य है कि अपने घरको साफ़ रक्खे। स्त्रियोंको इस काममें बहुत होशियार चतुर और आलस्यहीन होना चाहिये। स्त्रियोंके ऊपर ही घरका सारा भार होता है और विशेषकर वह ही इसका अधिक ध्यान रख भी सकती हैं। प्रतिदिन दिनमें दो बार या कभी इस-

से अधिक बार घरोंकी सफ़ाई करनेकी आवश्यकता है। झाड़ूसे कूड़ा करकट साफ़ करके घरसे बहुत दूर फेंकना चाहिये। झाड़ू लगाते समय जल्दी करना अच्छा नहीं। जिससे धूल उड़कर एक जगहसे दूसरी जगह जा जमती है। इसलिये धीरे धीरे झाड़ूको दबादबाकर घरका कूड़ा करकट ख़ूब साफ़ करना चाहिये। सफ़ाईके बाद सजावटका होना बहुत आवश्यक है। हरघड़ी घरकी प्रत्येक वस्तु सजी होनी चाहिये ताकि देखनेवालोंको भी प्रसंशा ही करते बने।

इसके सिवा नाबदानोंकी मोरियां साफ़ रखवाना, जाज़रू साफ़ रखवाना भी बहुत ज़रूरी है। घरमें या घरके आसपास कोई ऐसी चीज़ न सड़ने पावे जिससे वायु अशुद्ध होकर स्वास्थ्य बिगड़ जानेका भय रहे। इस बातकी बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये।

घरोंकी बनावट

सबसे पहिली बात तो यह है कि हमारे घर इस ढंगके बने हों जिनमें कुछ स्वाभाविक तौरपर भी सफ़ाई रह सके। जैसे मकानमें यदि सूर्यका प्रकाश आनेके अच्छे मार्ग हों, तो धूप आकर घरकी वायुको शुद्ध रखेगी और कई प्रकारके जीवजन्तुओंको पैदा न होने देगी। इससे घरकी कोई वस्तु बिगड़ने न पावेगी। क्योंकि प्रायः सील अधिक रहनेसे, कपड़े अन्न आदिमें कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं मिट्टीके बरतनोंपर काई जम जाती है, लोहेके बर्तनोंपर ज़ंग लगने और पीतलके बर्तनोंके काले पड़नेकी अधिक सम्भावना रहती है और कपड़ोंमें सीलकी बू आने लगती है। इस बातका अनुभव हमें वर्षा ऋतुमें, जब कि सूर्यका प्रकाश बहुत कम होता है—करनेको मिलता है। इसलिये हमारे घर ऐसे बने होने चाहियें, जिनकी कुर्सी ऊंची हो, ताकि उनमें शील न फूटे। उनमें स्वच्छ वायु, सूर्यका प्रकाश आने और घरकी अशुद्ध वायु जानेको खिड़की आदि अच्छे मार्ग हों जिनका द्वार शुभ दिशामें हो और जिनको स्वच्छ रखनेमें हर प्रकारका सुभीता हो। 'सरस्वती' में 'गृह निर्म्माण' एक बहुत ही उत्तम लेख निकल चुका है। उसको पढ़नेसे इस विषयकी प्रायः सब आवश्यक बातें मिल जाती हैं।

शरीर और वस्त्रोंकी स्वच्छता

शरीरके ही लिये सब चीज़ोंको स्वच्छ रखनेकी आवश्यकता है, तो फिर शरीरको क्यों न स्वच्छ रखा जावे। शरीरको स्वच्छ रखनेका उपाय स्नान है और वस्त्रोंको स्वच्छ रखनेका धोना और धूप देना। यह बात स्मरण रहे कि मैले कपड़ोंका व्यवहार बहुत बुरा होता है। वस्त्रोंको हर समय साफ़ रखना चाहिये। चाहे वस्त्र रेज़ीका मोटा ही क्यों न हो, उसे धोबीसे धुलाकर या स्वयं अपने हाथोंसे धोकर साफ़ रखना चाहिये। साफ़ धुला हुआ कपड़ा सभ्यता सूचक और स्वास्थ्यके लिये बहुत हितकारी है। जिस प्रकार ऋतुके अनुसार वस्त्र पहिननेकी आवश्यकता है, उसी प्रकार वस्त्रोंको साफ़ रखनेकी भी है। ऊनी और हर प्रकारके कपड़ोंको धूप देना बहुत ज़रूरी है। इससे वस्त्रोंमें कीड़े नहीं लगने पाते। 'विज्ञान' मासिक पत्रमें 'वस्त्रोंके कीड़े' नामका एक लेख, कुछ दिन हुए, निकला था। उसके पढ़नेसे मालूम हुआ कि वस्त्रोंमें कई प्रकारके गुप्त और अगुप्त कीड़े पड़ जाते हैं जो आगे चलकर स्वास्थ्यको बहुत हानि पहुँचाते हैं; इसलिये कपड़ोंको साफ़ रखना और धूप देना कभी भूलनेकी बात नहीं है।

जलकी स्वच्छता

जलकी आवश्यकता

शरीर धारण करनेके लिये भोजन करना बहुत ही आवश्यक है। परन्तु हमारे शरीरके लिये भोजनसे भी पानी अधिक आवश्यकता रखता है। भोजन न मिलनेसे तो मनुष्य कई दिनोंतक जी सकता है, पर जल न मिलनेसे कुछ

ही घंटोंमें उसके प्राण निकलने लगते हैं। शरीरमें तीन चौथाई पानी है और एक चौथाई अन्य सब चीज़ें हैं। मदनपाल निघंटुमें लिखा है कि पानी प्राणियोंका प्राण है, संसार पानीसे ही उपजता है।* पानी पीनेसे शरीरके रक्तको बड़ी सहायता मिलती है; यदि आवश्यकतानुसार जल हमारे शरीरमें न हों तो हमारा रक्त गाढ़ा हो जावे और शरीरकी छोटी छोटी नालियोंमें उसका प्रवाह रुक जावे।

जल कैसा हो

स्मरण रखना चाहिये कि बुरा जल विषके समान है। आयुर्वेदमें दो प्रकारका जल लिखा है (१) आकाशका जल और (२) पृथ्वीका जल। परन्तु जीवके लिये वही जल हितकारी है जो शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल, दुर्गन्धरहित, स्वाभाविक वर्षाका, और सुस्वादु है।

जलका व्यवहार

वैसे तो पानीको औटाकर ठंडा करके पीना हर हालतमें अच्छा है, पर यदि पानीमें कुछ भी दोष दीख पड़े तो उसे अवश्य ही औटाकर ठंडा-कर छानकर पीना चाहिये। पानीको फ़िलटर आदिसे शुद्ध करनेकी तरकीबें प्रायः सभी जानते हैं।

पानी पीना वर्जित

प्यासको बुझानेके लिये पानीका पीना आवश्यक है, पर भोजनके पहले, और भोजन कर चुकते ही खूब पानी पीना मना है। इससे पाचन क्रियामें हानिकारक फेरफार हो जाता है। इसी प्रकार रातमें जागते ही पानी पीनेसे नज़ला हो जाता है। परिश्रम, मैथुन, स्नान, और खरबूजे, तरबूज आदि तर मेवोंके पीछे भी तत्काल जल पीना अच्छा नहीं है। हारीत संहितामें इसकी हानियां अच्छी तरह बताई गई हैं। पानी हर हालतमें थोड़ा पीना अच्छा होता है। इससे पाचन क्रिया ठीक रहती है, और जठराग्नि दीप्त होती है। परन्तु अधिक पानी पीना कभी अच्छा नहीं। जैसे थोड़ा पानी डालनेसे खीरे फिर सुलग जाते हैं किन्तु अधिक डालनेसे बिल्कुल बुझ जाते हैं, उसी प्रकार पानीका अधिक कम पीना जठराग्निसे सम्बन्ध रखता है। पानी पीकर तत्काल ही किसी काममें लगजाना अच्छा नहीं है।

वायु

वायु क्या है और उसकी क्यों आवश्यकता है? बिना खाये पिये हम कई दिनोंतक जी सकते हैं, पर बिना वायुके थोड़ी देर रहना भी कठिन हो जाता है। जन्मसे मरण पर्य्यन्त हम सांस लेते हैं, बल्कि सांसका निकल जाना ही मरण है। वायुका स्थान एक जगह नहीं, समस्त भूमि इससे ढकी है। वैसे तो इसका मण्डल ही अलग है, जिसे हम 'वायु मण्डल' कहते हैं, पर वह दिखाई नहीं देता। वायुमें बड़ी भारी ताक़त होती है। बातकी बातमें बड़े बड़े वृक्षोंको उखाड़ डालना, छप्परोंको उड़ा ले जाना यहांतक कि आदमियों और पशुओं-को उड़ा ले जानेका इसका काम थोड़ा आश्चर्य नहीं देता। हमारे शरीरमें इसका पूरा पूरा अधि-कार है और निवास है। साधारण तौरपर यों कहना चाहिये कि हम वायुसे ही जीते हैं। यदि हमें वायु न मिले तो फिर हम शीघ्र ही मृत्युके मुखमें चले जाते हैं।

वायु सेवन

जिस प्रकार हमें खाने, पीने, सोने और जागनेकी आवश्यकता है, उसी प्रकार वायुका सेवन करना भी स्वास्थ्यके लिये परमावश्यक है। वैसे तो घरमें भी हम बिना वायुके नहीं रह सकते। घर हमारे यदि हवादार हों, तो शुद्धवायु-के मिलनेसे हम निरोग बने रहें। परन्तु घरमें चाहे कैसा ही वायुका आगमन हो, पर बाहर मैदानकी हवा खाना बहुत ही स्वास्थ्यप्रद है। जब हम वायु सेवनके लिये बाहर आते हैं, तो चलनेके

* पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेवहि तन्मयम्।

कारण एक प्रकारका व्यायाम भी हो जाता है पर इसमें भी नियमोंके पालनेकी आवश्यकता है। साधारण नियम इसके यह हैं—इनपर ध्यान देना चाहिये—

(१) चलते समय शरीर सीधा रक्खो।

(२) छाती आगेको तनी रक्खो।

(३) पांव इस तरह रक्खो कि कमरपर बल पड़े।

(४) घुटने बहुत ही थोड़े झुकाओ और पंजा रखते समय उन्हें ढीला कर दो।

(५) क़दम इस क़दर रक्खो कि पंजेकी गोलाईपर ज़ोर पड़े।

(६) पंजेकी अंगुलियोंको सीधा रक्खो।

इस तरह चलनेसे शरीर सीधा रहता है और सांस भी ठीक रीतिसे ली जा सकती है। खुली हवामें श्वासोच्छ्वास करना भी स्वास्थ्यके लिये बहुत ही लाभदायक है, परन्तु पहले पहल इस काममें कुछ कठिनता पड़ती है और पावोंको थकान भी मालूम होती है पर कुछ दिनोंके अभ्याससे ये सारी बातें चली जाती हैं और शरीरको बहुत ही लाभ होने लगता है।

दिशाओं, ऋतुओं, समयों और कालके अनुसार भी वायुमें अन्तर होता रहता है। शीतल और उष्ण वायुसे मनुष्यकी प्रकृतिका बहुत कुछ संबंध है। शीत कालमें कई अमीर लोग बाहर जाना तो दूर रहा ऐसे बन्द होकर बैठते हैं कि उनको हवाकी आवाज़तक सुनाई नहीं देती, यह अच्छा नहीं है। अमीरोंको खाने, पीने, पहनने और आराम करनेको सब चीज़ें अच्छी मिलती हैं, इसलिये सच पूछो तो साधारण मनुष्यसे उनके लिये स्वास्थ्य रक्षाकी सब बातें अधिक होनी चाहियें। जैसे व्यायाम, वायु सेवन आदि कुछ अधिक रूपमें किये जावें।

आजकल हम लोग बड़े बड़े शहरोंमें रहना अच्छा समझते हैं बल्कि ज़िन्दगीकी सार्थकता ही इसे माने बैठे हैं। पर ध्यान रखना चाहिये कि घनी आबादीके कारण कितनी ही सफ़ाई रखने पर भी शहरोंमें गन्दगी रहे बिना नहीं रहती और इसीसे वहांकी वायु हमेशा ख़राब रहती है। आप देखते हैं कि एक ग्रामीण एक शहरके निवासीसे कितना बलिष्ठ और तन्दुरुस्त होता है। इसका कारण क्या? इसका कारण यही है कि वह प्राकृतिक खुली और शुद्ध हवामें रहता है। हज़ारों रुपया ख़र्च करके बिजलीके पंखोंसे हवा करनेकी उसे ज़रूरत नहीं होती।

सारांश यह है कि स्वास्थ्यरक्षाके लिए जैसे शुद्ध आहारकी ज़रूरत है, वैसे ही शुद्ध जल वायुकी भी है और इनकी शुद्धताका पूरा पूरा ख़याल रखना प्रत्येक मनुष्यका पहला और मुख्य कर्त्तव्य है।

आइन्स्टाइनका सिद्धान्त
और
मन

जिसको लिखने पढ़नेका या लिखे पढ़ोंसे मिलनेका कुछ भी शौक़ है उसने न्यूटनका नाम तो अवश्य सुना ही होगा। यह एक बड़े भारी ज्योतिषी हो गये हैं। यहांपर ज्योतिषी शब्दके अर्थ वह नहीं हैं जो कि तक़दीरका हाल बतानेवालोंके वास्ते इस्तेमाल किया जाता है। न्यूटनने ज्योतिष विद्याके जो नियम मालूम किये थे वे अभीतक अटल माने जाते थे, और किसीको भी इस बातकी आशा न थी कि उसमें भी परिवर्तन होगा।

परन्तु आइन्स्टाइन (Einstein) ने अपने गणितके बलसे उनमें भी परिवर्तन कर ही दिया। आप जर्मन हैं और आधुनिक समयके एक बड़े भारी वैज्ञानिक माने जाते हैं। आइन्स्टाइन (Einstein) के सिद्धान्तकी सचाईमें अब कोई शक नहीं है क्योंकि दो दफ़ा सूर्य ग्रहणमें उसकी परीक्षा हो चुकी है और अब बहुत जल्द ही स्कूल-

के लड़कोंको बिलकुल नयी भूगोल व रसायन आदि विद्याएं सिखलायी जाया करेंगी।

आकाश टेढ़ा मेढ़ा है, रोशनी मुड़ सकती है सीधी लकीरें हैं ही नहीं, समानान्तर लकीरें भी मिल सकती हैं। चीज़ोंका क़द उनकी गतिके अनुसार छोटा बड़ा हो सकता है। समय भी वापिस आसकता है। कोपरनिकस(Copernicus) का ख्याल था कि मैंने यह बात साबित कर दी है कि पृथ्वी एक बड़े चक्रके समान है, जो कि एक कीलीपर घूम रहा है। सूर्य इसके बीचमें है और पृथ्वी इसके सिरेपर है और इस वास्ते सूर्यके चारों ओर घूम रही है। आइंस्टाइनने उस कीली-को निकाल दिया है अर्थात् कोई भी चीज़ ठहरी हुई नहीं है। एक फुट रूल हमेशा एक फुट ही लम्बा नहीं होता है। एक घंटा अधिक व कम भी हो सकता है। एक सेरका वज़न हमेशा एक सेर ही नहीं रहता है। ये कुछ विचार हैं जो कि बुद्धि-से बाहर मालूम होते हैं। परन्तु यह बात नहीं है, ये बिलकुल सच हैं, क्योंकि बड़े बड़े ज्योतिषियोंने हालके ही सूर्य ग्रहणोंमें इसकी सचाईकी जांच कर ली है। उन लोगोंने सूर्यके पीछेके तारोंका फ़ोटो खींचा और मालूम किया कि वे उस जगह-पर नहीं थे जहाँ कि पुरानी गणितके अनुसार होने चाहिएँ। परन्तु वे वहाँपर थे जहां कि आइंस्टाइनने हिसाब लगाकर बतलाया था। इन बातोंसे यह समझना चाहिये कि तारोंकी जगहमें अन्तर हड़ जाता है, बल्कि बात यह है कि रोशनी जोकि उन तारोंसे आती है वह सूर्यके पास आकर अपने रास्तेसे मुड़ जाती है, और चूंकि रोशनी-की सीधमें तारे दिखलाई देते है इस कारण तारों-की जगह हटी हुई मालूम होती है।

इन बातोंके अतिरिक्त डाक्टर हेल (Heyl) वाशिन्गटनमें बड़े बड़े रवों (Crystals) को एक ख़ास तुलामें भिन्न भिन्न हालतोंमें तोला है। पुराने क़ायदोंके अनुसार किसी वस्तुका वज़न किसी एक जगहमें वही रहता है चाहे किसी तरह-से तोली जावे। परन्तु आइंस्टाइन कहते हैं कि यदि एक दशामें तोलनेसे वज़न कुछ है तो दूसरी-में उससे भिन्न होगा। डाक्टर हेलने मालूम किया है कि आइंस्टाइनका मत ठीक है, क्योंकि वज़नमें कुछ कुछ अन्तर पाया गया है।

विचार करो कि आप इलाहाबादसे कानपुर-की पंजाब मेलसे सफ़र कर रहे हैं। ज्योंही गाड़ी किसी छोटे स्टेशनसे होकर गुज़रती है, आप खड़े होकर पीछेकी तरफ़ चले। आपका चलना दो तरहसे हुआ। एक तो ऊपरको जब कि आप खड़े हुए और दूसरा जब कि आप पीछेको हटे। मानलो कि कुल आप १२ फ़ीट २० सेकंडमें चले। यह आपको भी मालूम हुआ और आपके साथके मुसाफिरोंको भी। परन्तु यदि आपका कोई मित्र उस छोटे स्टेशनपर खड़ा होता तो उसको आप पीछेकी ओर चलते दिखाई न देते बल्कि आगेकी ओर ५० मील फ़ी घंटाकी गतिसे लेकिन स्टेशन तो स्थिर है। मान लो कि एक मनुष्य सूरजपर बड़ी भारी दूरबीन लिए हुए पृथ्वीको देख रहा है। उसको तमाम स्टेशन व डाक गाड़ी एक विन्दुके समान पृथ्वीकी सतहपर चक्कर खाती हुई व सूर्यके चारों ओर घूमती हुई मालूम होगी।

यदि दूरबीन वाला मनुष्य सूरजको छोड़ कर किसी और दूरवाले सितारेपर चला जावे (जैसे केनिस मेजर Canis Major) तो उसको क्या दिखाई देगा? वह सूरजको अपने ग्रहोंके साथ अपने चारों ओर हज़ारों मील फ़ी सेकंडकी चाल-से घूमता हुआ देखेगा। केनिस मेजर भी स्थिर सितारा नहीं है। वह भी किसी और ग्रह समूहकी ओर भागा चला जा रहा है। यह ग्रह समूह भी स्थिर नहीं है बल्कि किसी अन्य समूहकी ओर खिंच रहा है। सो इस सृष्टिमें किसी स्थिर-वस्तु-का मिलना असम्भव है।

अब क्या आप बता सकते हैं कि आप कितनी चालें चल रहे हैं और कितना तेज़ घूम रहे हैं। आप सिर्फ़ इतना ही कह सकते हैं कि जितनी

देरमें आपने इस वाक्यको पढ़ा है आप हज़ारों या लाखों मील दूर चले गये हैं तब भी आपको यह मालूम होता है कि आप ठीक उसी जगहपर अपने पढ़नेके कमरेमें बैठे हुए हैं। आप यह नहीं कह सकते कि आप चल रहे हैं। अगर आप किसी रेलमें सफ़र कर रहे हों तो आप यह नहीं बता सकते कि आपकी गति क्या है जबतक कि आप खिड़कीके बाहर झाँक कर न देख लें यदि बराबरकी पटरीपर दूसरी रेलगाड़ी उसी गतिसे उसी ओर जा रही हो तो आप अपनेको एक जगह ठहरा हुआ समझेंगे। परन्तु जब आप आपको अपनेसे दूर करके अपनेको घूमता हुआ देखें तो आपको मालूम होगा कि आपकी नन्हीं जगह भी किसी तीसरी चीज़के मुक़ाबलेमें घूम रही है। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि इस सृष्टिमें सर्वथा स्वाधीन absolute motion नहीं है क्योंकि सृष्टिमें कोई भी स्थिर विन्दु नहीं है। आइंस्टाइनका गतिकी सापेक्षताके सिद्धान्तका यही अर्थ है।

फ़र्ज़ करो कि जब आप आज सुबह उठे तो किसीने सृष्टिकी घड़ीको ऐसा कर दिया कि कलकी अपेक्षा हर एक बात १००० गुना तेज़ीसे होने लगी। क्या आप ख्याल करते हैं कि आपको यह अन्तर मालूम हो जावेगा। अगर मालूम भी हुआ तो कैसे ? क्या अपनी जेब घड़ी देख कर ? परन्तु आपकी घड़ी नहीं नहीं सारे संसारकी घड़ियाँ भी तो १००० गुना तेज़ीसे चलेंगी। क्या सूर्य्यकी चालसे ? नहीं वह भी १००० गुना तेज़ चलता होगा। गाड़ियां, रेल व नाव इत्यादि भी १००० गुना तेज़ीसे चलेंगी। आपको तनिक भी नहीं मालूम होगा कि कोई कलसे अन्तर हो गया है। यही दशा तब भी होगी जब कि सृष्टिकी घड़ी १००० गुना धीमी गतिसे चलने लगे। आप समयका अन्दाज़ केवल किसी और चीज़से तुलना करके ही कर सकते हैं और यदि आपकी सारी नापनेकी तरकीबें भी साथ साथ बदल जावें तो आपके पास जांच करनेको कुछ भी नहीं रह जाता है। अगर समय घटता व बढ़ता रहे तो आप कदापि नहीं जान सकते, और आइंस्टाइन कहते हैं कि वास्तवमें ऐसा होता है।

कुछ जानवरोंकी ज़िन्दगी चन्द रोज़की होती है, कुछ कीड़े चन्द ही घंटोंमें अपनी तमाम जीवन क्रिया समाप्त करते हैं और कुछ छोटे छोटे जीव चन्द ही मिनटके वास्ते संसारमें आते हैं। जीवको जो कि चन्द ही मिनटोंमें मर जाता है वही चन्द मिनट ऐसे हैं जैसे कि हमको अपना सारा जीवन काल लगता है। उनका एक सेकण्ड हमारे कई सप्ताहके बराबर है। इसके विपरीति वह समय जिसको हम एक साल कहते हैं किसी और सितारेपर रहने वालोंको केवल चन्द सेकण्डके बराबर मालूम हो सकता है और ऐसा भी सम्भव है कि कुछ मनुष्य इस सृष्टिमें ऐसे हों जिनको इस पृथ्वीकी सारी उम्र जिसको कि वैज्ञानिक लोग लगभग कुछ अरब सालकी बतलाते हैं केवल एक चुटकी मारनेके समयके बराबर लगती हो। यही अर्थ आइंस्टाइनका समयकी सापेक्षताके सिद्धान्तसे है।

यदि हम चीज़ोंको बहुत तेज़ गतिसे चलता हुआ देखें तो हमको अजीब बातें मालूम होंगी, जैसे जैसे उनकी गति रोशनीकी गतिके बराबर होती जायगी तैसे उनकी लम्बाई और चौड़ाईमें बहुत अन्तर मालूम होता जायेगा। मसलन अगर एक बन्दूकके ज़रियेसे हम एक छड़ीको १६०००० मील फ़ी सेकण्डकी गतिसे छोड़ सकें तो उसकी लम्बाई पृथ्वीपरके मनुष्यको केवल आधी ही मालूम होगी परन्तु उस मनुष्यको जो कि उसके साथ साथ चल रहा है उसकी लम्बाईमें कुछ भी अन्तर नहीं मालूम होगा। आइन्स्टाइन कहते हैं कि कोई भी शक्ति ऐसी नहीं है जो कि किसी वस्तुको रोशनीकी गतिसे ज़्यादा तेज़ फेंक सके। यदि कोई मनुष्य अपने आपको रोशनीकी गतिसे अधिक चला सकता है तो वह दूसरे मनुष्यको जिस तरफ़ वह दौड़ रहा है उसके खिलाफ़ दिशा-

में दौड़ता हुआ मालूम होगा। यह बात असम्भव सी अवश्य मालूम होती है परन्तु इसकी सत्यता कुछ समयमें स्पष्ट हो जायेगी।

इससे भी अधिक आश्चर्यजनक, घटनाएँ निम्नलिखित बातोंसे प्रगट होंगी। यदि आप आकाशमें रोशनीकी रफ़्तारसे २००००० वां भाग कम चल सकें और दो वर्षमें किसी सितारेपर जा उतरें और फिर वापिस आ जावें तो आपकी आयुमें केवल दो वर्षका अन्तर होगा परन्तु पृथ्वीपर २०० वर्षका अन्तर पड़ जावेगा। यानी बजाए सन् १९२७ के सन् ११२५ होगा। इस प्रकारसे आपको पृथ्वीका भविष्य काल मालूम हो जावेगा। इसी तरह आप रोशनीकी गतिसे अधिक चलनेसे भूत कालकी बातें जान सकते हैं।

रोशनी, समय, आशकाश और प्रकृतिमें अजीब सम्बन्ध है। उदाहरणतः सूर्य्यके जोकि एक प्राकृतिका बड़ा टुकड़ा है आसपासके आकाशमें रोशनी सीधी नहीं चल सकती है बल्कि कुछ मुड़कर चलती है यह बात सूर्य्य ग्रहणके समयमें सूर्य्यके पीछेके सितारोंके फ़ोटो लेनेसे सिद्ध हो चुकी है। इसी बातको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकारसे प्रकट कर सकते हैं कि रोशनीकी किरणोंपर प्राकृतिके आकर्षणका इतना असर पड़ता है कि वह सीधे रास्तेको छोड़ देती है। यही कारण है कि हम सूर्यके पीछेके सितारोंका भी फ़ोटो ले सके। जब आकाश (space) ही टेढ़ा मेढ़ा है क्योंकि उसमें असंख्य प्राकृतिके बड़े बड़े टुकड़े मौजूद हैं तो यह नतीजा निकलता है कि बिलकुल सीधी लकीरका होना असम्भव है। समानान्तर (parallel) रेखाएं भी आपसमें मिल सकती हैं क्योंकि दोनोंकी जगह भिन्न भिन्न तरीक़ेमें मुड़ी तुड़ी होगी। यह ज़रूरी नहीं है कि दो विन्दुके बीचमें सबसे कम फ़ासला उनको मिलानेवाली सीधी रेखाकी लम्बाई है और जब इस सृष्टिमें कोई भी सीधी रेखा नहीं है तो यह सृष्टि किसी भी एक दिशामें अपरिमित नहीं हो सकती। आइन्स्टाइनने कहा है कि ब्रह्माण्ड अनन्त नहीं है पर सीमा रहित है (The universe is finite but boundless)।

नीचेका उदाहरण इस बातको दिखलाएगा कि दो विन्दुओंमें सबसे कम फ़ासला उनके बीचकी सीधी रेखा ही नहीं होती। आप एक पत्तेपर एक चींटीका विचार करें, वह डंठलसे लेकर पत्तीके सिरेतकका फ़ासला नापना चाहती है, वह फ़ासला उसको सिरेसे लेकर डंठलतक चलनेसे ज्ञात होगा और यह फ़ासला सबसे कम तबही हो सकता है जब कि पत्ता बिलकुल सीधा व चौरस रक्खा जावे परन्तु यदि पत्तेको ऐसा मोड़ें कि डंठल सिरेसे क़रीब क़रीब मिल जावे तो चींटीको तो फ़ासला उतना ही मालूम होगा और आपको ज़रा सा ही अन्तर मालूम होगा। इसका कारण यह है कि चींटी तो दो ही (dimensions) दिशावाले आकाशमें चल फिर सकती है और आप तीन दिशावाले आकाश (dimensions) में चल फिर सकते हैं और जब चौथी दिशा (dimension) में कोई मामला आ पड़ता है तो आप उस चींटीके समान ना समझ हो जाते हैं। चौथी दिशा (dimension) समय है। जो व्यक्ति चार दिशाओं (dimensions) में काम कर सकता है उसको इस पृथ्वीपर चलने फिरनेकी ज़रूरत नहीं है वह बैठे बैठे सब जगह पहुंच सकता है और समय भी कुछ नहीं लगता। वह व्यक्ति मन है—अभी वह कलकत्तेकी सैर कर रहा है तो तनिक देरमें बम्बईकी सैर करने लगेगा। यदि वह अब पहाड़की चोटीपर है तो समुद्रकी तलीमें झट जा सकता है, यदि वह सूर्यमें चक्कर लगा रहा है तो तुरन्त ही ध्रुव तारेपर जा आसन जमावेगा। यह स्पष्ट है कि इतने बड़े बड़े फ़ासले भी मनके लिए कुछ भी नहीं हैं। अब यह देखना है कि मन भी कभी चक्करमें पड़ सकता है कि नहीं। जैसे मनुष्यका शरीर चौथी दिशा (dimension) में कुछ नहीं कर सकता वैसे मन भी पांचवीं दिशा (dimension) में कुछ नहीं

कर सकता है वह पांचवीं दिशा (dimension) कौन सी है ? वह ईश्वर है जिसका आरपार मनकी शक्तिसे बाहर है। बड़े ऋषि मुनि हज़ारों वर्ष प्रयत्न करनेपर भी हार मान गये हैं और सर्वदा मानते रहेंगे। अब यह प्रश्न हो सकता है कि जब मनुष्यको जो कि त्रिदिक् आकाशमें चलता फिरता है चौथी दिशाका ज्ञान हो गया तो क्या यह सम्भव नहीं है कि मनको भी ईश्वरका पूर्ण ज्ञान हो जावे जो कि पांचवीं दिशामें है। इसका उत्तर नहीं है, कारण, कि मनुष्यको चतुर्दिक् आकाश का ज्ञान मनके द्वारा ही हुआ है परन्तु मनके पास कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो कि पंचदिक् आकाशकी हो, इसलिये इसका ईश्वरके ध्यानसे निकलना असम्भव है। पाठकगण यदि आपका मन सांसारिक बातोंके कारण एकाग्र नहीं होता है तो इसको ईश्वरके ध्यानमें लगा दीजिये जहांसे निकलना इसकी शक्तिसे बाहर है। इस प्रकारसे आप पूर्ण आनन्दको प्राप्त हो सकेंगे।

इस छोटेसे लेखसे यह विदित होता है कि हमारे पूर्वजोंने इन बातोंका ज्ञान पहिले ही कर लिया था, जो आजकल आइन्स्टाइनने भिन्न शब्द व भाषामें प्रातिपादित किया है। परन्तु भाव एक ही था। आइन्स्टाइनने इनको प्रत्यक्ष वा स्थूल रूपमें रखकर संसारको अति लाभ पहुँचाया है।

—श्रीशंकरलाल जींदल, एम. एस-सी.

रँगनेकी विधि

[ले० श्रीसत्येश्वर घोष, एम. एस-सी.]

कई परीक्षित रंगनेकी रीतियां यहां पर दी जायँगी। रंग बनानेके लिए जिन पदार्थोंका जो परिमाण (fromula) यहांपर दिया गया है उससे एक साड़ी (१०-११ हाथ लम्बी × ४४-४६ इञ्च चौड़ी) अच्छी तरह रंगी जा सकेगी। यदि कपड़ा या सूत कम या ज़्यादा हो तो उसीके अनुसार रंगका परिमाण भी कम या ज़्यादा कर लेना आवश्यक है।

रंगनेके पहिले यहांपर दिये हुए नियमोंका अच्छी तरह समझ लेना उचित है। नये सीखनेवालोंको पहले पुराने कपड़ोंके टुकड़ोंको रंगकर सीखना उचित हैं। इन विधियोंमें देशी और अंगरेज़ी दोनों तोल दी गयी हैं। अपनी अपनी इच्छानुसार दोनोंमेंसे किसी एक तोलका व्यवहार किया जा सकता है।

(१) मटीला या गेरुआ (Drab) पक्का :—

हर्रा चूर्ण— ½ छटाक; १ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक खौलाकर सत बनाकर गरम सतमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोवें। उसके बाद—

लाल कसीस (Bichromate)—½ छटांक; १ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें फिर १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

(२) खाकी (Khaki) पक्का :—

हर्रा चूर्ण— २ छटाक; ४ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घंटे खौलाकर सत बनावें, और उस सतमें आध घंटा कपड़ेको डुबोकर रक्खें। फिर निचोड़कर

लाल कसीस— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटेतक भिगोकर साफ़ पानीसे धो डाल।

(३) गाढ़ा खाकी (Deep khaki) पक्का :—

हर्रा चूर्ण— ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इनको आध घंटेतक खौलाकर सत निकालें। इस गरम सतमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

तूतिया— ½ छटाक; १ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको १५ मिनट भिगोकर निचोड़ डालें।

लालकसीस— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक कपड़ेको इसमें डुबाकर साफ़ पानीसे धो डालें।

तूतिया देनेसे ख़ाकी रंगके साथ थोड़ा लाल (warm shade) आ जाता है। तूतियाके साथ थोड़ासा हीराकष (½ तोला) देनेसे ख़ाकी रंग बहुत गाढ़ा बन जाता है।

(४) गेरुआ (Salmon) पक्का :—

गरानकी छाल— ½ सेर; १ पाउंड
पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक पानीमें इन छालोंको उबालकर उनका सत बना लेवें। इस गरम सतमें कपड़ोंको आध घंटे भिगोकर निचोड़ डालें।

फिटकिरी— २ छटाक; ४ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

सोडा— २ छटाक; ४ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक कपड़ेको इसमें भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

(५) बैगनी रंग (Plum colour) पक्का :—

गरानकी छालका चूर्ण— ½ सेर; १ पाउन्ड
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घंटेतक पानीमें उबालकर सत निकालें और इस गरम सतमें आध घंटे कपड़ोंको भिगोकर निचोड़ डालें। यह सत एक बार व्यवहार कर लेनेपर भी काममें लाया जा सकता है।

हीराकष— ¾ छटाक; १½ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

१५ मिनट इसमें कपड़ोंको भिगोकर निचोड़ डालें। (हीराकषका पानी फिर काममें लाया जा सकता है) इसके बाद कपड़ोंको गरानके छालके गरम सतमें फिर १५ मिनट भिगो देवें और निचोड़कर फिर १५ मिनट हीराकषके पानीमें भिगोकर निचोड़ डालें। इस तरह कपड़ोंको दो बार रंगकर—

सोडा— २ छटाक; ४ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इस खारे पानीमें कपड़ोंको आध घंटेतक भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें। लोहेका पानी हीराकषके बदले गरम पानीमें घोलकर व्यवहार करनेसे पक्का रंग बन जाता है।

(६) बदामी (Buff; light ochre) पक्का :—

हीराकष— ½ छटाक; १ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

१५ मिनट इसमें कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

चूना— १ छटाक; २ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

चूनेको पानीमें छोड़कर उसे दूधकी तरह बना डालें। कपड़ेको खोलकर इस चूनेके पानीमें अच्छी तरह भिगो लेवें। अब इसे निचोड़कर सुखा लेना चाहिए। कपड़ेपर पहिले कच्चे घासका रंग आता है, इसके बाद अच्छी तरह सूखनेपर बादामी रंग खिलता है। अब कपड़ेको फिर पानीसे धोकर सुखा डालें।

इस तरह बादामी रंगको दो या तीन बार कपड़ेपर चढ़ानेसे बसन्ती रंग आ जायगा, परन्तु कपड़ा कुछ कड़ा पड़ जाता है।

(७) काला (Black) पक्का :—

हीराकषका पानी और हर्राके सतके द्वारा बहुत सहज उपायसे काला रंग रँगा जा सकता है, परन्तु यह रंग पक्का नहीं बनता है। हीराकष (ferrous sulphate) की जगह लोहेके पानी (ferrous acetate) से कपड़े रंगनेपर अच्छा पक्का रंग कपड़ेपर चढ़ाया जा सकता है। हिन्दुस्तानके रंगरेज़ जिन पुराने नियमोंसे लोहेका पानी (ferrous acetate) बनाते हैं वह बहुत

अच्छा और सुगम उपाय है। यहांपर उनकी प्रचलित रीति लिखी जाती है।

गुड़ (तम्बाकूका गुड़) १ सेर। पानी १० सेर। लोहेके टूटे फूटे वर्त्तन, परेक इत्यादि १ या २ सेर। गुड़को पानीमें घोलकर एक मिट्टीके वर्तनमें रखिए। लोहेके टुकड़ोंको एक कपड़ेमें बांधकर इस गुड़के पानीमें भिगो देवें, और घड़ेको एक पतले कपड़ेसे ढांक देवें। यदि लोहेपर मोर्चा पड़ गया हो तो उसे गरम करके पीट लेनेपर मोर्चा छूट जाता है। पुराने टीनके डिब्बे या कनस्टारोंको काटकर छोटे छोटे टुकड़ोंसे भी काम चल सकता है। मुर्चा लगा हुआ लोहा व्यवहारमें नहीं लाना चाहिए।

पांच छ दिन बाद गुड़ सड़कर सिरका (vinegar) बन जाता है। सिरकेमें अधिकांश असीतिकाम्ल (acetic acid) रहता है, इस अम्ल (acid) और लोहेके रासायनिक संयोग (Chemical Combination) से लोह-असीतेत (acetate of iron) बनता है। बीच बीचमें इन्हें एक लकड़ीसे अच्छी तरह हिला देना बहुत ज़रूरी है।

रंगनेकी रीति :—

हर्रेका चूर्ण—	४ छटांक;	८ आउन्स
पानी—	५ सेर;	१ गैलन

आध घंटेतक चूर्णको पानीके साथ उबालकर सत बना डालें। इस सतमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें। कपड़ेको सुखाकर लोहेके पानीसे रँगें।

लोहेका पानी—	५ सेर;	१ गैलन

इसमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर सुखा डालें। एक दिन (२४ घंटे) बाद फिर इसी रीतिसे हर्रेके सत और लोहेके पानीके द्वारा फिर कपड़ेको रंगकर सुखा डालें। इसी रीतिसे तीसरी बार भी कपड़ेको रंगनेसे अच्छा पक्का काला रंग कपड़ेपर आ जायगा। एक ही लोहेका पानी और लोहेका सत तीनों दफ़े काममें लाया जा सकता है, परन्तु प्रत्येक बार थोड़ा थोड़ा हर्रेका सत और लोहेका पानी और मिला लेनेसे अच्छा है। हर दफ़े लोहेके पानीमें कपड़ेको भिगोनेपर कपड़ेको अच्छी तरह सुखा लेना आवश्यक है। इससे कपड़ेपरका सब असीतिकाम्ल या सिकाम्ल (acetic acid) उड़ जाता है, और लोहेके साथ हर्रेका कषाय वस्तु (tannin) मिलकर अच्छा पक्का काला रंग बनता है।

तीन बार इस तरह कपड़ेपर काला रंग चढ़ा लेनेपर १ या २ दिन धूपमें सुखा कर साफ़ पानीसे धो डालें। धोनेपर पहिले कुछ काला रंग घुल जाता है, परन्तु इसके बाद अच्छा पक्का काला रंग निकल आता है।

(८) काला रंग (Black) आधा पक्का :—

नीचेके दिए हुए सहज उपायसे बहुत जल्द काला रंग कपड़ेपर चढ़ाया जा सकता है, परन्तु यह पक्का नहीं होता और खारे पानीसे धोनेपर बहुत साफ़ हो जाता है।

हर्रेका चूर्ण—	४ छटांक;	८ आउन्स
पानी—	५ सेर;	१ गैलन

इसको आध घंटेतक उबालकर सत निकालें और इस गरम सतमें कपड़ेको आधे घंटेतक भिगोकर निचोड़ डालें। कपड़ेको धूपमें सुखाकर

हीराकष—	२ छटाक;	४ आउन्स
गरम पानी—	५ सेर;	१ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटे भिगोकर निचोड़ डालें। जब कपड़ा सूख जावे तो ऊपरके नियमानुसार फिर दो बार रंग चढ़ावें। एक ही हीराकषका पानी और हर्रेका सत प्रत्येक बार काममें लाया जा सकता है, परन्तु कपड़ा भिगोनेसे पहिले थोड़ा नया हीराकष और हर्रेका सत इसमें मिला लेना उचित है। रंगनेके बाद कपड़ेको साफ़ पानीसे धोकर सुखा लेना आवश्यक है।

(९) राखका रंग (Ash colour; grey) पक्का:—

हर्रेका चूर्ण—	१ छटाक;	२ आउन्स
पानी—	५ सेर;	१ गैलन

आध घंटेतक इस चूर्णको उबालकर सत निकालें। इस गरम सतमें कपड़ेको आध घन्टे भिगो कर निचोड़ कर कपड़ेको सुखा डालें।

लोहेका पानी— १¼ सेर; ¼ गैलन
पानी— ३¾ सेर; ¾ गैलन

इसमें कपड़ेको भिगोकर सुखा डालें। एक दिन बाद कपड़ेको साफ़ पानीसे धोना आवश्यक है।

हर्रेका चूर्ण और लोहेके पानीकी मात्राको कम ज़्यादा करके इच्छानुसार कपड़ेपर फीका या गाढ़ा रंग चढ़ाया जा सकता है। हर्रेके साथ थोड़ा सा (¼ तोला) गरानकी छाल मिला देनेसे फ़ाखतई (dove colour) रंग बन जाता है।

(१०) फीका कत्थई (Light brown) पक्का:—*

कत्थेका चूर्ण— २ छटाक; ४ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घंटेतक उबाल कर सत तैयार करें। गरम सतमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

लालकसीस या बाइक्रोमेट—½ छटाक; १ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

(११) कत्थई रंग (Warm Brown) पक्का:—

कत्थेका चूर्ण— ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक उबालकर सत निकालें, फिर इस गरम सतमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

तूतिया— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी—५ सेर; १ गैलन

इसमें १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

* न छूटनेवाला

लालकसीस या बाइक्रोमेट—१ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर साफ़ पानीमें धो डालिए।

(१२) गाढ़ा कत्थई (Deep Brown) पक्का:—

पूर्वोक्त नियमसे कपड़ेपर दोबारा कत्थई रंग चढ़ानेसे अच्छा पक्का गाढ़ा रंग कपड़ेपर चढ़ता है। एक बार रंग चढ़ा कर, कपड़ेको अच्छी तरह साफ़ पानीसे धोकर फिर रंग चढ़ावें। प्रत्येक बार इसी कत्थेके सतसे काम चल सकता है, परन्तु तूतिया या लालकसीसका पानी प्रत्येक बार नया बनाना पड़ेगा।

(१३) घना कत्थई (Dark brown; Coffee or Snuff Colour) पक्का:—

कत्थेका चूर्ण— ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घंटेतक उबाल कर सत बनाइए। कपड़ेको आध घंटेतक गरम सतमें भिगोकर निचोड़ डालें।

तूतिया— १ छटाक; २ आउन्स
हीराकष— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटेतक भिगोकर निचोड़ डालें।

बाइक्रोमेट— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटेतक भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

तूतिया— १ छटाक; २ आउन्स
हीराकष— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी—५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटे भिगोकर निचोड़ डालें।

बाइक्रोमेट या लालकसीस—१ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटे भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

कत्थेके साथ ही थोड़ी सी (½ तोला) गरान-की छाल मिला लेनेसे कपड़ेपर गेरुआ, चकोलेट (Chocolate) रंग चढ़ेगा।

(१४) नीला रंग (Indigo blue) पक्का:—

जिस रीतिसे नीलसे रंग निकाला जाता है वह पहिले ही बता दी गयी है। नील पानीमें नहीं घुलता परन्तु कई रासायनिक उपायोंसे नीलको पानीमें घोला जा सकता है। यहाँपर एक बहुत ही सुगम उपाय दिया जाता है।

नील—	२ छटाक;	४ आउन्स
हीराकष—	४ छटाक;	८ आउन्स
फूला चूना (Slaked)—	½ सेर;	१ पाउन्ड
पानी—	५ सेर;	१ गैलन

इनको पानीके साथ अच्छी तरह मिलानेके लिए एक बड़ा मिट्टीका बर्तन चाहिये। एक बड़े चौड़े मुंहकी नाँद या घड़ा इसके लिए ठीक है, जिसमें कपड़ोंको डुबानेपर रंग न गिरे और अच्छी तरह भीग जाय। नील बाज़ारमें महँगा बिकता है और यह कई एक कामोंमें लाया जाता है, इस-लिए जिसमें नीलका पानी ख़राब न हो वैसा उपाय करना चाहिए।

एक बड़े पत्थर या चिनिया मिट्टीके खरिल (Poncelain motar) में नीलके ढेलेको एक रात भिगोनेके बाद उसे धीरे धीरे पीस कर नील-के पानीको एक घड़ेमें डाल देवें। नीलको खूब अच्छी तरह भिगोना बहुत ही आवश्यक है। खरिलको कई एक बार धोकर सब नील निकाल लेवें।

सब नील घड़ेमें डाल लेनेपर पानीमें हीराकष छोड़ देवें। इसके बाद चूनेको पानीके साथ मिला-कर दूधकी तरह चूनेके पानीको नीलके साथ मिला देवें। चूनेमें पत्थरके टुकड़े या दूसरा कोई और मैल साफ़ करके नीलमें मिलाना चाहिए। नील और चूनेके लिए जो पानी चाहिए वह परि-माणमें दिए हुए २५ सेर पानीसे लेना आवश्यक है। अब घड़ेमें बाक़ी पानी मिला देवें।

परिमाणमें दी हुई सब वस्तु घड़ेमें छोड़ देनेके बाद एक लम्बी लकड़ीसे सबको अच्छी तरह मिलाकर मिट्टीके बर्तनका मुंह एक गमलेसे ढांक देना चाहिए। दूसरे दिन इस नीलके पानीको एक लकड़ीसे फिर अच्छी तरह मिलाकर रख देने-से तीसरे दिन यह कपड़े रंगनेके लिए तैयार हो जाता है। बर्तनके तलमें मैल जम जायगा और ऊपर एक उज्वल नीली सी मलाई पड़ी रहेगी। इस मलाईको हटानेपर नीचे उज्वल कच्चे हरे घास का रंग दिखलाई देगा। यदि अब इस पानीमें कपड़ा भिगोया जाय तो वह पहिले फीका हरा और फिर धीरे धीरे सूखनेपर नीला पड़ जायगा।

जिस कपड़ेपर नीला रंग चढ़ा है वह बहुत साफ़ और माड़ रहित होना आवश्यक है—यह बात बहुत पहिले कह दी गई है। माड़ रहनेसे रंग सूतके भीतर भिदेगा नहीं और धोनेसे ही छूट जायगा। रंगनेके पहले कपड़े या सूतको पानीसे धो डालना चाहिए। छोटे कपड़ेको रङ्गने-के लिए मैलको न छू कर ऊपरके पानीसे कपड़ेको रँगा जा सकता है। परन्तु बड़े कपड़ेको दूसरे उपायसे रंगना पड़ेगा। ऊपरके साफ़ पानीको एक दूसरे मिट्टीके बर्तनमें निकालकर कपड़ेको पानीमें भिगोकर उसे अच्छी तरह निचोड़ डालें। निचो-ड़नेसे कपड़ेके चारों ओरसे हवा निकल जावेगा और कपड़ेपर सब जगह अच्छा रंग चढ़ेगा।

अब कपड़ेको दो मिनट नीलके पानीके भीतर रखकर निचोड़ डालें। फिर कपड़ेको सुखाने-से धीरे धीरे नीला रंग चमकेगा। कपड़ेको फिर रंगमें भिगोकर सुखा लेनेसे और गाढ़ा रंग चढ़ेगा। यह हरा नीलका पानी हवा लगनेसे थोड़ी देरमें सब नील हो जावेगा और इस पानी-को अब नीलके घड़ेमें फिर डाल दें और लकड़ीसे अच्छी तरह हिलाकर घड़ेका मुँह बन्द करके रख देना चाहिए। दूसरे दिन यह नीलका पानी फिर

काममें लाया जा सकता है। एक बात यहांपर कहना बहुत ही आवश्यक है कि इस हरे रंगके पानीमें नील घुली हुई अवस्थामें रहता है और हवा लगनेसे ओषजन (Oxygen) के द्वारा धीरे धीरे नीला पड़ जाता है। यह नील अनघुल (insoluble) होनेके कारण सूतके भीतर नहीं जाता और इसलिए यह कपड़ेपर नहीं चढ़ता। यह हरा रंग सूतके भीतर घुस जाता है और सूखनेपर हवा लगनेसे नीला पड़ जाता है और अनघुल होनेके कारण कपड़ेको अब धोनेसे रंग साफ़ नहीं हो सकता। कपड़ेको नीलके हरे रंगके पानीमें छोड़कर उसको उलटने पलटनेसे हवा लगनेके कारण यह हरा रंग देखते देखते नीला पड़ जाता है। इस नीले रंगको घड़ेमें चूने और हीराकषके साथ देनेसे यह फिर घुल जाता है। यदि खूब हलका नीला रंग कपड़ेपर चढ़ाना हो तो नमूनेके लिए एक कपड़ेके टुकड़ेको रंग कर देख लेवें और आवश्यकतानुसार इसमें गरम जल मिला लेना चाहिए। रंगको हलका करनेके लिए गरम पानी काममें लावें क्योंकि ठंडे पानीमें हवा घुली हुई रहनेके कारण हरा रंग अनघुल होकर कुछ नीला पड़ जाता है।

पूर्वोक्त नियमके अनुसार कपड़ेपर दो बार रंग चढ़ानेसे कपड़ेपर फ़िरोज़ी या आसमानी रंग (Pale blue, sky blue) आवेगा। तीन या चार बार रँगनेसे गाढ़ा नीला (bright blue) और कई बार रँगनेसे कपड़ेपर काला नीला रंग (blue black) आवेगा। प्रत्येक बार रँगनेके बाद कपड़ेको हवामें पाँच मिनट सुखाकर फिर उसे रँगा जा सकता है। रंग जानेपर कपड़ेको एक दिन हवामें सुखाकर दूसरे दिन साफ़ पानीसे धो डालना चाहिए।

कुछ लोग यह कह सकते हैं, कि गाढ़ा नीला रंग रँगनेके लिए परिमाणमें दी हुई मात्राको बढ़ा लेनेसे कपड़ेको बारबार हल्के रंगसे रँगना नहीं पड़ेगा। परन्तु इससे कपड़ेपर अच्छा रंग नहीं आता क्योंकि कपड़ेपर धीरे धीरे रंग न चढ़ानेसे एकसा (uniform) रंग नहीं चढ़ता और कपड़े को धोनेसे कुछ घुलकर निकल भी जाता है।

कपड़ोंको रँग लेनेके बाद रंगको फिर घड़ेमें रखकर एक लकड़ीसे चूने और हीराकषके साथ उसे मिलाकर घड़ेका मुँह बन्द करके रख दें। घड़ेके पेंदेमें मैलके साथ कुछ अनघुल नील पड़ा रहता है। इसे अच्छी तरह एक लकड़ीसे हिला देनेसे सब नील घुल जाता है। कई बार नीलके पानीसे कपड़े रंग लेनेपर रंग फीका पड़ जाता है, इसलिए दो एक दिन बाद थोड़ा नया नील हीराकष और चूना (ऊपर लिखे परिणामके अनुसार) घड़ेमें मिला देना आवश्यक है।

रंगरेज़ लोग इसलिए कई घड़ोंमें नीलके रंगको रखते हैं। इन घड़ोंको वह मिट्टीमें आधेसे ज़्यादा गाड़ देते हैं जिससे वह बैठ कर ही कपड़े रंग सकते हैं। जिस घड़ेमें सबसे पुराना रंग है (कई बार रंग चढ़ानेसे जिसका रंग बहुत फीका पड़ गया है) उसीमें कपड़ोंको पहिले भिगोया जाता है। इसके बाद उन्हें नए रंगमें भिगोया जाता है, और इस तरह सबसे फीके रंगसे आरम्भ करके अन्तमें सबसे गाढ़े रंगमें कपड़ेको रंगा जाता है। इसमें थोड़ा भी रंग नष्ट नहीं होता और सब काममें आ जाता है।

(१५) पीला या बसन्ती (Yellow) कचा :—

पीसी हल्दी—	½ छटाक;	१ आउन्स
पानी—	५ सेर;	१ गैलन
फिटकिरी—	½ तोला;	१½ ड्राम

हल्दीको अच्छी तरह पीसकर पानीमें छान लेवें। फिटकिरीको एक दूसरे कटोरेमें घोलकर हल्दीके पानीमें छोड़ देवें, और कपड़ेको इसमें भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ डालें। कपड़ा जितना रंगमें भीगेगा उतना ही अच्छा गाढ़ा रंग चढ़ेगा। । रंगनेपर कपड़ेको निचोड़कर छाँहमें सुखा लेना चाहिए।

हल्दीका रंग पक्का नहीं होता और धूपसे फीका पड़ जाता है। क्षार (alkali) लगनेसे रंग लाल हो जाता है, परन्तु धोनेसे फिर थोड़ा फीका पीला रंग पड़ जाता है। कपड़ेको केवल पानीसे धोनेसे रंग फीका नहीं पड़ता। फिटकिरी देनेसे रंग उज्वल और कुछ पक्का होता है।

(१६) पक्का धानी रंग या सुनहरी (Old gold)—

अनारकी छाल—४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक उबालकर सत निकालें। इस गरम सतमें आध घंटेतक भिगोकर निचोड़ डालें।

फिटकिरी— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

सोडा— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी—५ सेर; १ गैलन

इसमें १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर निचोड़ कर साफ़ पानीसे धो डालें।

अनारकी छालके बदले हर्राका प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु इससे अच्छा उज्वल रंग नहीं आता।

(१७) हरा (Green) पक्का :—

नीले और पीले रंगके संयोगसे हरा रंग होता है। पहिले कपड़ेको नीले रंगमें रंगना चाहिए, क्योंकि किसी दूसरे रंगके ऊपर नीला रंग नहीं आता।

ऊपर बताए हुए नियमोंके अनुसार पहले कपड़ेपर उज्वल नीला रंग चढ़ाकर एक दिन बाद उसे धोकर कपड़ेको सुनहरी रंगसे रंगना चाहिए। यहां अनारकी छालके बदले हर्रसे काम चल सकता है।

(१८) फीका हरा या घासका रंग (light green) पक्का :—

पहले दिये हुए नियमानुसार पहले नीलसे कपड़ेको आसमानी रंगमें रंगकर सुनहरी रंगसे रँग लेवें। परन्तु अनारकी छालसे और वस्तुओंकी मात्रा परिमाण (Formula) में दी हुई मात्राओं की आधी कर देनी चाहिएं।

(१६) गुलाबी (Pink) कच्चा :—

यह रंग कुसुमके फूल (Safflower; Carthamus) से निकलता है। कुसुमके फूलमें दो प्रकारके रंग होते हैं—एक पीला और दूसरा लाल। पीला रंग पानीमें घुल जाता है, और लाल रंग अनघुल है। क्षार (alkali) युक्त पानीमें यह लाल रंग घुल जाता है। कपड़ेपर गुलाबी रंग रँगनेसे पहिले कुसुमके फूलका पीला रंग पानीसे धो डालना चाहिए।

कुसुमके फूल— ५ छटाक; १० आउन्स

इसे एक मिट्टीके बर्तनमें थोड़ी देरतक भिगो दीजिए, इसके बाद इन फूलोंको निचोड़कर पीला रंग निकाल डालिए। जबतक पानीसे धोनेपर पीला रङ्ग निकलता रहे तबतक फूलोंको धोते रहिए।

सोडा— ¼ छटाक; ½ आउन्स
पानी— २½ सेर; ½ गैलन

अब यह धुले हुए कुसुमके फूल सोडेके पानीमें भिगो दीजिए। क़रीब १० मिनटके बाद फूलोंको निचोड़कर सब रंग निकाल कर इसे दूसरे बर्तनमें रक्खें। इस रंगमें १० मिनटतक कपड़ेको भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ना चाहिए। अब कपड़ेपर कुछ सुनहली चमक आ जाती है। कपड़ेको निचोड़कर निम्नलिखित पानीमें भिगोना चाहिए।

नींबूका रस— ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— २½ सेर; ½ गैलन

खट्टे नींबूके रससे काम अच्छा होगा। यदि नीबू न मिले तो ४।५ छटाँक कच्ची या पक्की इमली या कच्चे आमको पीसकर पानीमें घोलकर एक पतले कपड़ेसे छान लीजिए। यह खट्टा पानी कपड़ेपर लगते ही कपड़ेपर लाल रंग आ जावेगा। कुछ समयतक कपड़ेको अच्छी तरह निचोड़कर

साफ़ पानीसे धो डालें। यदि रंग और गाढ़ा करना हो तो पूर्वोक्त विधिसे कपड़ेको कुसुमके फूलके पानीसे और फिर नींबूके पानीसे एक बार और कपड़ेको लाल रंगमें रँग लेवें। नींबूका रस खूब खट्टा होना अति आवश्यक है, नहीं तो कपड़े-पर अच्छा लाल रंग नहीं आता।

कुसुमके फूलका रंग लाल और उज्वल होता है, परन्तु साबुनसे और धूप लगनेसे बहुत फीका पड़ जाता है। हाँ केवल साफ़ पानीसे धोनेसे रंग नहीं छूटता।

(२०) बैंगनी (Mauve, Purple or violet) पक्का:—

पतंग चूर्ण—	२ छटाक;	४ आउन्स
पानी—	५ सेर;	१ गैलन
फिटकिरी—	¼ छटांक;	½ आउन्स

१५ मिनट इसे पानीमें उबालकर छान डालिए। इस गरम सतमें १५ मिनट कपड़ा भिगोकर निचोड़ डालिए।

सोडा—	¼ छटाक;	½ आउन्स
पानी—	५ सेर;	१ गैलन

इसमें कपड़ेको भिगोकर १० मिनट बाद निचोड़ डालिए। छांहमें कपड़ेको सुखाना चाहिए।

यह रंग साबुनसे धोनेसे स्थायी नहीं रहता, केवल पानीसे ही धोनेसे कुछ रंग जाता रहता है। रँगनेके समय सोडा न देनेसे भी काम चल सकता है, परन्तु सोडाके न रहनेसे रंग बैंगनी न बनकर लाल बनता है।

(२१) गुलाबी (Pink) पक्का :—

साबुन—	½ छटाक;	१ आउन्स
गरम पानी—	१¼ सेर;	¼ गैलन

साबुनके छोटे छोटे टुकड़े काटकर पानीमें घोल दीजिए। इसमें क़रीब १५ मिनटतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें और साफ़ पानीसे बिना धोये सुखा डालें।

मंजिष्ठा चूर्ण—	४ छटाक;	८ आउन्स
पानी—	५ सेर;	१ गैलन
फिटकिरी—	½ छटांक;	१ आउन्स

एक ऐसे बर्तनमें जिसमें दस सेर जल आसके इन्हें चूल्हेपर चढ़ा दीजिए। कपड़ेको पानीमें छोड़कर एक लकड़ीसे अच्छी तरह हिलाते रहिये जिसमें मंजिष्ठा (मजीठ) का चूर्ण कपड़ेपर अच्छी तरह लग जावे। एक घंटेतक खूब धीमी आंचमें कपड़ेको पानीमें गरम करें, और बीच बीचमें लकड़ीसे चलाते रहिए। अब इसे निचोड़कर १ छटांक सोडा और ५ सेर पानीमें आध घंटेतक उबालकर सुखा डालना चाहिये।

(२२) लालरंग (Turkey red) पक्का :—

यहांपर कपड़ेको मंजिष्ठासे लाल रगमें रँगनेकी विधि लिखी जायगी, परन्तु इस रीतिसे रंग कुसुमके फूलके रंगसे उज्वल नहीं होगा। मंजिष्ठासे कपड़ेको रंगनेके लिए निम्नलिखित वस्तुएँ चाहिएँ :—फिटकिरीका पानी, सोडेका पानी, साबुनका पानी, मंजिष्टाका चूर्ण (मंजिष्ठाके बारेमें पहले लिखा गया है)।

फिटकिरीका पानी (Alum solution)—फिटकिरी ५ छटाक, पानी पांच सेर या एक गैलन। फिटकिरीको महीन पीसकर पानीमें छोड़ते ही घुल जायगा। जब फिटकिरी पानीमें घुल जाय तो उस पानीको एक मिट्टीके घड़े या गमलेमें रक्खें।

सोडाका पानी (Soda solution)—सोडा ½ सेर या १ पाउंड, पानी ५ सेर या १ गैलन। सोडेको पानीमें घोलकर एक मिट्टी या कोई दूसरे बर्तनमें रक्खें। यदि सोडेके साथ मैल मिला हो तो उसे छान डालें।

साबुनका पानी (Soap solution)—अच्छा कपड़ा धोनेका साबुन (bar soap) १½ पाव या १२ आउन्स, पानी ५ सेर या एक गैलन। साबुनके छोटे छोटे टुकड़े काटकर पानीके साथ गरम करनेसे सब साबुन घुल जावेगा।

रँगनेकी विधि—

(१) फिटकिरीका पानी—	५ सेर;	१ गैलन
सोडेका पानी—	१½ पाव;	१२ आउन्स

फिटकिरीका पानी एक चौड़े मुंहके बर्तनमें रक्खें, और सोडेके पानीको इस फिटकिरीके पानीमें धीरे धीरे छोड़ते जायँ। सोडेके पानीको पहिले छोड़ते ही फिटकिरीका पानी सफ़ेद हो जायगा और दहीकी तरह एक सफ़ेद वस्तु बर्तनके तलेपर बैठ जावेगा। फिटकिरीके पानीको एक लकड़ीसे खूब चलाते रहिए। सोडेका पानी और छोड़नेपर फिटकिरीका पानी धीरे धीरे साफ़ हो जायगा। सोडेका पानी बहुत थोड़ा थोड़ा यहांतक कि एक एक बूंद करके अब फिटकिरीके पानीमें छोड़ते रहिए। यदि सब सोडेके पानीसे फिटकिरीका पानी साफ़ न हो जावे तो फिर और सोडेका पानी मिलाना आवश्यक नहीं है। यही मिलाया हुआ पानी काम दे सकेगा। इसे ज़्यादा देरतक रख छोड़नेसे यह ख़राब हो जाता है और काममें न आ सकेगा। इस तरह बनाए हुए पानीमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ कर सुखा डालें। इसके बाद १२ घंटे कपड़ेको हवामें फैला रक्खें।

(२) विधि नं० (१) के अनुसार सोडा और फिट्किरीका पानी बना कर कपड़ेको आध घंटेतक भिगोकर निचोड़ कर सुखा डालें। सुखा कर कपड़ेको १२ घंटे हवामें रक्खें।

(३) साबुनका पानी— ५ सेर; १ गैलन

अब कपड़ेको साबुनके पानीमें छोड़ कर आध घंटेतक हिलाते रहिए। सुखा कर कपड़ेको १२ घंटेतक हवामें छोड़ रक्खें। इसके बाद विधि (१) के अनुसार फिर फिट्किरी सोडेका पानी बनाकर आध घंटे कपड़ेको भिगोकर सुखा डालें। सुखाकर कपड़ेको आध घंटेतक हवामें फैला रक्खें। अब इस कपड़ेपर रंग चढ़ाया जा सकता है। नं० (१), (२) और (३) विधियोंके अनुसार सब काम करना बहुत ही आवश्यक है, नहीं तो कपड़ेपर अच्छा रंग नहीं चढ़ेगा।

(४) मंजिष्ठा चूर्ण (महीन)–४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

मंजिष्ठाका चूर्ण मैदेके समान महीन होना चाहिए। मंजिष्ठाका चूर्ण पानीमें छोड़ कर एक लकड़ीसे कपड़ेको अच्छी तरह चलाते रहिए, जिसमें चूर्ण कपड़ेमें सर्वत्र अच्छी तरह लग जावे। इसके बाद कपड़ेको बर्तनमें रखकर धीमी आंचपर गरम कीजिए। कपड़ेको लकड़ीसे हिलाते रहिए। इस तरह तीन घंटेतक उबाल कर कपड़ेको निचोड़ कर अच्छी तरह झाड़ डालिए। उबालनेके समय लकड़ीको चला कर जितना कपड़ेको हिलाते रहियेगा उतना ही एक सा (uniform) रंग कपड़ेपर चढ़ेगा।

(५) सोडा— १ छटांक; २ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको और आध घंटेतक उबाल लेनेसे कपड़ेपर अच्छा पक्का रंग चढ़ेगा। इसके बाद ३, ४, और ५ नियमोंसे कपड़ेपर दो बार रंगनेसे और अधिक गाढ़ा रंग कपड़ेपर आता है।

गरानकी छाल—ऊपर लिखे प्रयोगोंमें इसका केवल दो बार वर्णन आया है। इसके द्वारा और कई प्रकारका रंग बनाया जा सकता है। विधि नम्बर ३ में हर्रांके चूर्णके साथ उतनी ही गरानकी छाल मिला लेनेसे अच्छा कत्थई रंग बनता है। विधि नं० १३ में क़रीब ½ तोला गरानकी छाल मिला देनेसे चकोलेट (Chocolate) रंग बनता है। विधि नम्बर १४ के द्वारा उज्वल नील रंग चढ़ाकर विधि नं० ४ से गेरुआ रंग चढ़ानेसे पक्का बैंगनी रंग बनेगा।

बदामी रंग—विधि नम्बर ६ में हीराकष प्रयुक्त होता है। कपड़ेपर हीराकषका पानी अच्छी तरह न लगनेसे चूना देनेपर कपड़ेपर जगह जगह धब्बे पड़ जाते हैं। ऐसा होनेपर कपड़े परका रंग साफ़ करना बहुत ज़रूरी है। पानीमें ओग्ज़ेलिक सिड (Oxalic acid) घोलकर (पानी २० भाग, अम्ल १ भाग) इसमें कपड़ेको भिगोनेसे सब रंग धुल जाता है। इस अम्लकी जगह नीबूका रस काममें लाया जा सकता है, परन्तु इससे बहुत देरमें रंग छूटता है।

चूनाके बदले सोडाका प्रयोग करनेसे काम चल सकता है और कपड़ेपर सहज ही रंग चढ़ाया जा सकता है।

नीलका रंग—विधि नं० १४ से कपड़ेको घना नीला या काला-नीला (blue-black) रँगनेमें कपड़ेको कई बार नीलके पानीमें रँगना पड़ेगा, इसलिए इस रंगमें बहुत व्यय होगा। यदि तीन बार रँगनेसे कपड़ेपर उज्वल नीला रंग आ जावे तो विधि नं० ७ के अनुसार कपड़ेपर केवल एक बार काला रंग चढ़ानेसे बहुत अच्छा काला चमकेगा।

वस्तुओंका परिमाण—प्रयोगोंमें दिये हुए परिमाणों (formulae) में जो तोल दिये गये हैं, उनसे केवल एक साड़ी रँगी जा सकती है, क्योंकि एक समयमें एक कपड़ेपर सहजमें रंग चढ़ सकता है। जो लोग रँगनेके काममें निपुण हो गये हैं वह परिमाणकी दी हुई मात्राओंको बढ़ाकर दो या तीन साड़ी एक साथ रंग सकते हैं।

नील (Indigo)—नीलको पानीमें घोलकर नीलका पानी तैयार करनेके लिए केवल एक ही उपाय बतलाया है। हिन्दुस्तानमें अक्सर नीलको सड़ाकर (fermentation) नीलका पानी बनाया जाता है। नील एक भाग, चूना एक भाग, सज्जी मट्टी दो भाग, पानी २०० या ३०० भाग, इन सबको एक साथ मिलाकर एक मिट्टीके घड़ेमें रखिये। इसमें कुछ गुड़ और कुछ नीलका सड़ा पानी मिला देनेसे नील घुल जाता है। नील घुल जानेपर विधि नं १४ से कपड़ा रंगा जा सकता है। पुराना नीलका पानी किसी रंगरेज़से मिल जायगा। इस प्रकारसे नीलका पानी बनाकर कपड़ा रंगनेसे वैसा उज्वल नहीं होता, परन्तु ज्यादा पक्का होता है।

इस नियमसे या विधि नम्बर १४ से नीलका पानी बनानेसे घड़ेके तलेपर बहुत मैल पड़ जाता है, और इसलिए बड़ा कपड़ा या सूत रंगनेके समय हर रंगके नीलके पानीको एक दूसरे घड़ेमें रखना पड़ेगा। इस पानीमें हवा लगनेसे धीरे धीरे नीला पड़ जायगा और इससे अब कपड़ा रंगा नहीं जा सकता। इस नीले पानीको फिर घड़ेमें छोड़कर मैलके साथ खूब मिलाकर रख देना चाहिए। दूसरे दिन फिर यह काममें आ सकता है।

इस्तिरी करना (Ironing)—यदि कोई बेचनेके लिए कपड़ा रंगे तो इस्तिरी करना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि इससे कपड़ेपरका रंग चमकदार (glazed) दीखता है।

सत बनाना—बहुत जगहपर सत निकालनेके लिए आध घंटेतक उबालनेके लिए लिखा गया है। जिस समयसे पानी खौलना (boil) आरम्भ हो उस समयसे आध घंटा लगना चाहिए।

मुग़ल-साम्राज्य और बुन्देले राजा

[ले०—श्री चिरंजीलाल माथुर, बी. ए., एल. टी.]

यों तो मुग़ल-साम्राज्यसे सभी राजाओंका सम्बन्ध था और कुछ न कुछ प्रत्येक जातिके राजाओंकी कहानी मुग़ल-सम्राटोंसे मिलाई जा सकती है। परन्तु बुन्देले राजाओंका उक्त सम्राटोंके साथ कुछ विशेष रूपसे सम्बन्ध रहा है। उसीको दिखानेके लिये यह लेख लिखा जाता है।

मुग़ल-सम्राट्, जिनको वास्तवमें सम्राट् कह सकते हैं, बाबरसे प्रारम्भ होकर औरंगज़ेबपर समाप्त हो जाते हैं। बाबर केवल विजयी था। हुमायूँको इधर उधर भागनेमें ही समय बिताना पड़ा। वास्तविक मुग़ल-साम्राज्य अकबरसे आरम्भ होता है। और इसी सम्राट्के समयसे मुग़लोंका इतिहास रोचक हो जाता है। रोचक होनेका एक कारण यह भी है कि अकबरके समयसे ही मुग़ल शासनमें राजपूती तत्व सम्मिलित होने लगा। यही एक बड़ी भारी बात है जिससे मुग़लकाल अन्य मुसलमानी राज्यकालोंसे अधिक महत्वका बन जाता है।

भिन्न भिन्न राजपूत राजाओंने भिन्न भिन्न ऐतिहासिक अङ्गोंकी पूर्ति की है। सीसौदिया[1] जातिने तो दिखा दिया कि राजपूत जाति मर मिटनेको तैयार है परन्तु दासत्व स्वीकार नहीं करेगी। मेवाड़के राजाओंने अपनी यह लटक अन्ततक बनाये रक्खी और मुसलमान सम्राटोंको भलीभांति जतला दिया कि क्षत्रिय जातिको दासत्वमें लेना कोई बच्चोंका खेल नहीं है। कदाचित् अन्य राजपूत भी इसी नीतिको मानते तो राजपूत जातिका नाश भले ही हो जाता, परन्तु दासत्वमें नहीं दिखलाई पड़ती।

राठौर[2] और कछवाहोंने[3] इसीमें अपना कल्याण समझा कि मुग़लोंको अपनी वीरतासे लाभ पहुँचाते हुए अपने अस्तित्वको बनाये रक्खें। हाड़ा[4] भी औरंगज़ेबकी ढाल कहलानेके अधिकारी हुए।

अब सुनिये बुन्देले राजाओंने कैसा सम्बन्ध रक्खा।

सीसौदियोंकी तरह इन्हें भी अपनी ठसकका सदा ख़याल रहा परन्तु ये सहायक बने और जब यह ज्ञात होने लगा कि हम मातहतकी निगाहसे देखे जाते हैं तो पालक होनेके स्थानपर घालक भी बन जाते रहे। राठौड़ों, कछवाहों और हाड़ांकी तरह इन्होंने सेवक भाव अपने चित्तमें न आने दिया। अकबरके समयमें महाराजा मधुकरशाह, जो प्रतापी होनेके सिवाय बड़े भारी भक्त भी हुये हैं, दरबार शाहीमें अवश्य जाते थे, परन्तु सेवककी तरह सहनशक्ति नहीं थी। जब इन [5]'ग्रह निवार बुन्देल मणि, ओड़छेन्द्र कुल दीप। रविवंशी काशीश पद मधुकरशाह महीप॥' से अकबरशाहने ऊंचे जामे पहिननेका कारण पूछा—[5]'तब कहत भयव बुन्देल मणि मम सुदेश कटक अघन। कोप (अकबर) बोले बचन, मैं देखौं तेरौ भवन॥' महाराजा संकेत समझ गये। जान लिया कि अकबरने सीधे उत्तरमें टेढ़ा अर्थ निकाला और दबाना चाहता है। उन्होंने चापलूसीके शब्दोंका प्रयोग न किया किन्तु चुप रहे। और तुरन्त अपने पुत्र रतनसेनको लिख दिया।

[1]सुनत चवन मधुशाहके तीर समानहिं,
लिखव पत्र तत्काल हाल तेहि बचन प्रमानहि।
जुरहु युद्ध कर क्रुद्ध जोर सेना इक ठौरय,
तोर तोर तन रोर शोर करिये चहुओरय।
तुव भुजन भार है कुँवर यह, रत्नसेन शोभा लहिय।
कछु दिवस गये गढ़ ओड़छौ, दिल्लीपति देखन चहिय॥

युद्ध हुआ, कुँवर मारे गये। यह सब ठसक ही थी।

मधुकरशाहके पश्चात् इनके प्रथम पुत्र रामशाह गद्दीपर बैठे। इन्होंने कुछ अधिक वीरताके चिन्ह प्रकट नहीं किये। परन्तु उनके छोटे भाई वीरसिंह देव सेवककी गतिको प्राप्त होना अपने कुलकी प्रथाके विरुद्ध समझते थे। छोटे भाईकी अवस्थामें ही इन्होंने अकबरको अपनी वीरताका परिचय दिया। इनका साहस सराहनीय है। कहां शाह अकबर जिसने बड़े बड़े शेर राजपूत इस तरह निःशक्ति कर रक्खे थे जैसे सरकसके शेर या अजायब घरके हिंसक जीव और जिसके डरसे समस्त भारत कांपता था और कहां ये अकेले छोटेसे 'बड़ौत'के जागीरदार।

[2]बड़ौत बेठके लई जलालसाहि की मही।
सुकृत्ति तितिके गईं दसौं दिसा नईं नईं॥

अकबरके दरबारियोंने अकबरसे कहा—

[2]'वीरसिंह अति जौंरमें, सुनो साहि सिरताज।
ता उमरावहि सौंपजे जाहि राजकी लाज॥'

कई सेनाएं अकबरने भेजीं और कई बड़े बड़े खानखाना और रायराया जैसे सेनापति आये परन्तु वीरसिंह देवसे हार मानकर लौटना पड़ा। अन्तमें अकबरको यह कहना पड़ा—

---

१ मेवाड़-उदयपुर। २ जोधपुर या मडौर। ३ जयपुर या आंबेर। ४ बून्दी। ५ कवि केशव रचित 'रतन बावनी'।

१ कवि केशव रचित 'रतनबावनी'।

२ कवि केशव रचित 'वीरसिंह चरित्र'।

"उमरावनिको प्रगट प्रमान, यह लिखि पठे दियौ फरमान।
कै तुम गहियौ इनको राहु, कै उनकी बसहिनि पर जाहु'

ये ही वीरसिंह शाहज़ादा सलीमके बड़े भारी सहायक हो गये। राजपूती अकड़ तो इसीको कहते हैं कि जो अकड़े उससे अकड़नेमें भी पूरे और जो नम्रतासे सहायता मांगे उसको सहायता देनेमें अपनी जानका भी ख़याल नहीं करते! सलीमने इनके पास मित्रताके समाचार भेजे और इनको बुलाया। शाहज़ादेने साफ़ कहा कि मेरे बादशाह होनेकी कोई आशा हो सकती है तो तब ही जब कि अब्बुलफ़ज़ल अकबरसे न मिलने पावे।

"हजरति सौ जो मिलिहै आनि, तौ तुम छानहु मेरी हानि।
जौ लगि यह जीवित है सेख, तौ लगि मोहि मुआ ही लेख'

वीरसिंहदेवका अबुलफ़ज़लसे युद्ध करना और उसको मारना तो इतिहासके पढ़नेवाले सब जानते ही हैं। यहां इसके लिखनेका अभिप्राय केवल यह है कि यदि वीरसिंहदेव सलीमको मदद न देते तो शाहज़ादा सलीम बादशाह जहांगीर कभी नहीं हो पाता। जहांगीर कृतघ्न नहीं था। वीरसिंह देवको उसने अपना हितैषी माना।

"वीरसिंहकी यहई ठई, हमको सकल साहिबी दई।
वीर हमें है लीनौ मोल, करी साहिबी निपट निडोल।
राख्यौ आज हमारो राज, अब हम दे हैं इनको राज।'

शाहजहांने जहांगीरकी तरह मित्रताका भाव न रखकर अन्य राजपूतोंकी भांति महाराज जुझार सिंहको भी रखना चाहा। इन्होंने कुलकी रीतिके अनुसार शाहजहांसे विरोध रक्खा और अपनी सारी आयु युद्धस्थलमें ही बिताई। शाहजहां यदि इनकी शक्तिका अच्छा उपयोग करनेकी योग्यता रखता होता तो इनसे बहुत लाभ उठा सकता था। ये ऐसे वीर थे कि इन्होंने एक समय बिना हथियार एक शेर मारा था। वह शेर बादशाहके दरवाज़ेपर एक पिंजरेमें रहा करता था। और किसी कारण बादशाहके हुकमसे महाराज जुझारसिंहके पिंजरेके निकट पहुंचनेपर छोड़ दिया गया था।

औरंगज़ेबने फिर जहांगीरकी तरह बुन्देलोंसे सहायता चाही और नम्रतासे 'तब औरंग मती यह कीना, विमल चित्तमें चंपत दीना। हितसों लिख फरमान पठायौ, चम्पत राय सुनत सुख पायौ।'

यह वह समय है जब कि दारा और औरंगज़ेबमें युद्ध हुआ था।

दाराने चम्बल नदीके किनारे बड़ी सेना लगाई थी और तोपोंसे तमाम घाट रोक लिये थे। जब औरंगज़ेबके पास कोई सहारा नहीं रहा था और सब उपाय थक गये थे तो चम्पत रायको बुलाया था। इनकी मददसे औरंगज़ेबकी सेना चम्बलके उस पार पहुंच गई।

"चम्पति मुख औरंगके, भजी चढ़ाई ओप।
मातर बह जातै सबै, छुटै तोप पर तोप॥
चामिल पार भईं सब फौजें, तब औरङ्ग मन मानी मौजें।'

यह तो सबको ज्ञात ही है कि फिर औरंगज़ेबकी जीत हुई।

"बैठे तखत बजे संयानै। चम्पति राय साह मन मानै॥
औरङ्ग साहि कृपा करि भारी। मनसब दीनौ दुदश हजारी॥

यदि चम्पत राय औरंगज़ेबको चम्बल पार न कराते तो औरंगजेबका सम्राट् होना असम्भव था। एक बुन्देला वीरने जहांगीरको सम्राट् बनाया। दूसरे ने औरंगज़ेबको। फिर जब औरंगज़ेबका बर्ताव इनकी शानके अनुसार न रहा तो यह विरोधी भी हो गये। और लड़ते लड़ते ही जान दी। इन्हीं चम्पत रायके पुत्र महाराजा छत्रशाल हुए जिन्होंने मुगल सेवासे असंतुष्ट हो कर विरोध किया। और यह दिखला दिया कि वह दब कर रहने वाले न थे और स्वतंत्र हो कर देश-विजय करनेकी शक्ति रखते थे। यदि बादशाह अच्छे बरतावसे इस शक्तिको अपने काममें लानेकी योग्यता

१ कवि केशव रचित 'वीरसिंह चरित्र'।

१ लाल कवि रचित 'छत्र प्रकाश'।

रखते होते तो यही शक्ति बादशाहके लिये उपयोगिनी हो सकती थी। इन्हीं महाराजा छत्रशालसे बहादुर मूगहने लोहागढ़की विजयमें सहायता चाही तो इन्होंने दी। लाल कविके अनुसार इस प्रकार हुआ कि एक दिन खानखानाने

'पातसाह ढिंग तिन हित पाई। चम्पति रायकी करी बड़ाई॥
चम्पति राई बड़े अनियारे। हजरतके बहुकाम सँभारे॥
दारासाह दुन्द जब कीनौ, चम्पत वीर समर जस लीनौ।
रन हरौल ह्वै फते लिवाई, औरङ्गजेब दिल्ली तब पाई।
तिनके तनय छत्रपत भारी, छत्रशाल सोहत भट भारी।
सुभट सिरोमनि समुझि अगौवा, करिये उनको बेग बुलौवा।

छता वीर बुलवाइये, करिहै काम अनेक।
हाल लोहागढ़की विजै, वे दैहैं करि टेक।

छत्रशालको आदर सहित पत्र भेजकर बुलाया गया।

'सादर साहि मिले हरषाई, भई प्रीति-युत भेंट भलाई।'

लोहागढ़की विजय छत्रशालकी सहायतासे हुई।

'पन्द्रह सै बुन्देल कुल, घाइल जूझे वीर।
मार लोह गढ़की फतै, लई छत्ता रणधीर॥'

इस लेखमें बुन्देला कुलके दो अमूल्य रत्नोंका कुछ वर्णन आया है। यह दोनों बड़े महापुरुष हुए हैं। इनका पूर्ण वर्णन किसी आगामी लेखमें दिया जावेगा। इस लेखका उद्देश्य तो केवल यही दिखानेका है कि बुन्देलोंने अपनी राजपूती टेक सदा बनाये रक्खी। यदि मुगल सम्राट्ने मित्रताका बरताव किया तो इन्होंने सहायता भी भली भांति दी। और जब अनुचित दबाव डाला गया तो विरोध भी पूरा किया।

आलसी समुदाय

[ले०—डा० रामचन्द्र भार्गव, एम. बी., बी. एस.]

वायुमेंसे अमोन्यम्, कर्बन द्विओषिद, सजलता और ओषजन अपद्रव्य निकालकर १८९३-९५ में रेलेने जब नत्रजन बनाया, उसका आपेक्षिक घनत्व उज्जनका आपेक्षिक घनत्व १ मानकर १४.०७० था। किन्तु जब नत्रस ओषिद, नत्रिक ओषिद, अम्मोन्यं नत्रित, मूत्रिया (urea) या मगनीसम् नत्रिद्से नत्रजन बनाया गया तो उसका आपेक्षिक घनत्व केवल १५.००५ था। इतना अन्तर केवल प्रयोगकी त्रुटिके कारण नहीं हो सकता इससे यह सोचा गया कि वायुमें या तो कोई नत्रजनका इतरभेष (Allotropic form) या और और कोई गैस है। मई १८९४में रैमज़े (Ramsay) ने इसको पृथक् किया। यह एक नई गैस निकली इसका नाम आर्गन अर्थात् आलसी रखा गया।

आलसीका पृथक्करण–यह गैस पृथक् करनेकी एक विधि यह है। मागनीसम्की रेतन १ भाग, लावण्यं (Na) २५ भाग और चूना ५ भागके मिश्रणपर वायुसे बनाए हुए नत्रजनकी धारा बहाइये। मगनीसम्के प्रभावसे चूनेसे चूर्णजम् (Ca) बन जाता है। चूर्णजम् नत्रजनको और यदि कुछ ओषजन भी उपस्थित हो तो उसे भी सोख लेता है। इस विधिसे आलसी अलग हो जाता है। दूसरी विधिमें एक ८००° तक तप्त नलीमें रखे हुए चूर्णजम् अंगारिद पर नत्रजनकी धारा बहाते हैं। ओषजन और नत्रजन दोनों सोख लिये जाते हैं और आलसी प्रथक् हो जाता है।

ओषजनसे चूना बन जाता है। २ चू अं$_2$ + ओ$_2$ = २ चू ओ + ४ अं और नत्रजनसे श्यामिद (Cyanide) बन जाता है।

च अं$_2$ + न$_2$ = च अं न$_2$ + अं

यदि अंगारिदमें ११% चूर्णजं हरिद मिला दिया जाय तो और भी अच्छा है।

रेलेने वायु और ओषजन मिलाकर मिश्रणमें विद्युत्की चिङ्गारियें छोड़ीं और नत्रजनके ओषिदों-को बनते बनते क्षार द्वारा हटाते गये। वायुका लगभग १/८४ भाग शेष रह जाता है यह ओषजन-से नहीं जुड़ सकता। ऐसी विधिका कवेन्डिशने १७८५ में प्रयोग किया था। वह भी इस अन्तको पहुँचे कि वायुका भाग जो और बाकी नत्रजनसे भिन्न है १/२४ से अधिक नहीं है। उस समयकी परीक्षण सामग्रीको देखते हुए फल लगभग वही है।

आलसीके गुण—आलसीमें न कोई रंग होता है न कोई स्वाद न कोई गंध। न यह दाह्य है न किसी और पदार्थके ज्वलनको चला ही सकती है। यह किसी भी और मौलिकसे नहीं जुड़ सकती जलके १०० घनफल (Volume) में ०°श पर आलसीके ४·४ घनफल घुल सकते हैं, और १०° पर आलसी पानीमें वायुसे २·८ घनफल अधिक घुलनशील है, इस कारण जब वर्षाके पानीको उबालके गैसें निकाली जाती हैं तो इन गैसोंमें आलसी साधारण वायुसे अधिक होता है। आलसी समुद्र नदी और झरनोंके जलोंमें उपस्थित रहती है और आलसी कई खनिजोंमेंसे भी निकाली जा सकती है।

वायुसे निकाली हुई आलसीमें और कई गैस मिली होती है क्योंकि जब जमी हुई गैसका भागिन् निष्कर्ष किया जाता है तो इसमेंसे चार और गैस निकलती हैं हिमजन, नवीनम्, गुप्तं और अन्यजन। भागिन् निष्कर्षमें हिमजन नवीन और आलसी और बचा हुआ नत्रजन पहिले निकलते हैं और फिर अन्यजन और गुप्तं बचे हुए कम उड़नशील द्रवसे आवर्तित भागिन् निष्कर्षसे अन्यजन और गुप्तं पहिले आलसी इत्यादि और गैसोंसे और फिर एक दूसरेसे अलग किये जा सकते हैं। यदि उड़ी हुई गैसोंको दबाकर तरल करते जायँ तो इस द्रवमेंसे नवीन और हिमजनको आवर्तित भागिन् निष्कर्ष द्वारा पृथक् कर सकते हैं। हिमजन और नवीनके मिश्रणको तरल उज्जनमें रखते इससे नवीन जम जाती है। तरल हिमजनको वायु पम्प (air pump) द्वारा पृथक् कर सकते हैं। यह गैस और किसी भी मौलिकसे नहीं जुड़ती।

इनके भौतिक गुण नीचेकी सारिणीमें दिये जाते हैं।

गैसका नाम	१,००० घनफल वायुमें कितनी होती है	आपेक्षिक घनत्व ओ$_2$ = ३२ मानकर	हिमांक तापक्रम	कथनांक तापक्रम	संदिग्ध (critical) तापक्रम
हिमजन	०·००१४	३·९६	—	—२६७°	—२६८°
नवीन	०·०१५	२०·२	—२५३°	—२३३	—२२०°
आलसी	९·३७	३९·८८	—१८८°	—१८६	—११७°
गुप्तम्	०·००००५	८२·९२	—१६८°	—१५२	—६३
अन्यजन	०·००००००६	१३०·२२	—१४०	—१०९	+१५°

इन गैसोंको विद्युतसे उत्तेजित करके इनके विशिष्ट रश्मि-चित्र देख सकते हैं। साधारण आणविक नत्रजन रसायनिक भावमें बड़ा निश्चेष्ट रहता है किन्तु परमाणिवक दशामें बहुत चुस्त होता है। इसलिये आर्मस्ट्रौंगने यह विचार निकाला कि आलसी समुदायकी गैसोंके अणु दो या अधिक परमाणुओंकी बनी है और यह परमाणु इतनी दृढ़तासे जुड़े हैं कि किसी भी प्रकार जुदा नहीं किये जा सकते हैं।

हिमजन—१८६४ में जेन्सनने सूर्यके प्रकाश मण्डलके रश्मिचित्रमें एक नारंजी रेखा निकाली। यह किसी भी मौलिककी रश्मिरेखासे नहीं मिलती थी। इसलिये सूर्यमें एक नए मौलिककी उपस्थितिका अनुमान किया गया। वही रेखा कुछ तारोंमें और विसूवियस ज्वालामुखीकी जलती हुई गैसोंमें दिखलाई दी। प्रपातीट, (cleveite) फरगुसनीट, बरोगरीट इत्यादि खनिजोंमें जो नत्रजन निकलता है इसमें आलसीको खोजते समय, रेमेजेको एक नई गैस मिली जो न नत्रजन और न आलसी थी। इस गैसका रश्मि-चित्र जैनसनवाला ही था। इसलिये इसका नाम अंग्रेज़ीमें Helios (सूर्य) से Helium रखा। यही गैस कुछ निर्झरोंके जलमें भी मिली और ऊपर लिखे अनुसार वायुमेंसे भी निकाली गई।

तरल हिमजनके वाष्पीकृत होनेसे —२७३ अर्थात् वास्तविक 0° के 2° नीचे तक तापक्रम पहुँच जाता है। हिमजनसे इतनी ठंडकके कारण इसका नाम हिमजन हुआ।

आलसी भी कुछ काम तो आ ही सकता है। क्योंकि इसके बिजलीके लैम्पोंके अंगार और टंगसटनसे मिलनकी कुछ भी सम्भावना नहीं होती। इसलिये आलसीको लैम्पोंमें भर कर बड़े अच्छे लैम्प बनाये जा सकते हैं।

नवीन भी इसी काममें लाई जाती है।

विसूचिका

[ले०—डा० रामचन्द्र भार्गव, एम. बी., बी. एस.]

विसूचिका एक दारुण और संचारिन् रोग है जिसके मुख्य लक्षण हैं—चांवलके मांडके सदृश-सीरमी पदार्थका मलोच्चार तथा वमन द्वारा अपरिमित प्रवाह, पेशियोंमें उद्वेष्टन, मूत्रावरोध, भीषण दारुणता, शक्तिपात, अन्त्र तथा मलमें विशेष जीवाणुकी उपस्थिति और बहुत प्राण घातकता।

विसूचिकाका संचार जल द्वारा होता है

अगस्त १८५४ में विसूचिका लण्डनके कुछ भागोंमें विशेषतः गोलडन स्कायर, सोहोके पास फैला हुआ था। यहाँ ४० ब्रौड स्ट्रीटमें एक बच्चा तीन दिनकी बीमारीके पश्चात् ८ सितम्बरको मरा। इस रोगीका मल और वमन एक स्रवणशील चौबच्चेमें फेंक दिये गये। इस चौबच्चेके समीप तीन फ़ीटपर एक कुँआं था। चौबच्चेका सम्बन्ध तलाश करनेपर इस कुंएसे भी निकला। आस पासके निवासी इस ही कुंएका जल पीते थे। ३१ अगस्तकी रातको इस कुंएके पानी पीने वालोंमें विसूचिका फैल गया। बहुत ही कम उनमेंसे विसूचिकाके आक्रमणसे बचे। २ सितम्बरको एक स्त्री हैम्पस्टैडमें विसूचिकासे मरी। यह हैम्पस्टैडमें विसूचिकाकी पहिली रोगिणी थी। पूछनेपर यह पता चला कि यह स्त्री ब्रोडस्ट्रीटके कुंएका पानी पीती थी, क्योंकि वहांपर निवास कर चुकी थी और उस कुंएका पानी बहुत पसन्द करने लगी थी। ३१ अगस्तको लाया हुआ पानी इसने उस दिन भी पिया और १ सितम्बरको भी पिया। एक सितम्बरको ही उसे विसूचिका हो गया। इस स्त्रीकी भतीजीने भी वही पानी पिया और उसे भी विसूचिका हुआ। एक नौकरने भी वह पानी पिया और उसे भी यह रोग हुआ। किन्तु वह अच्छा हो गया। जहांतक पता चला

इन लोगोंका वहांके पानी पीनेके अतिरिक्त विसूचिका ग्रसित भागसे कोई सम्बन्ध नहीं था।

दूसरा विसूचिकाका पानीसे फैलनेका उदाहरण हैम्बर्गके आक्रमणमें मिलता है। उस समय स्वास्थ्य सम्बन्धी और सब प्रबन्ध आलटोना, वण्डस्बेक, और हैम्बर्गमें एक सा था केवल जल प्रबन्धमें ही अन्तर था। आल्टोना और हैम्बर्ग दोनोंमें ही एल्ब नदीका जल प्रयोगमें लाया जाता था किन्तु हैम्बर्गमें पानी साफ़ नहीं किया जाता था, सीधा नदीसे नलमें भेज दिया जाता था। आल्टोनामें पानी सावधानीसे छाना जाता था। वण्डस्बेकका जल प्रबन्ध एक झीलसे था और जल छानकर नलोंमें भेजा जाता था। हैम्बर्गमें आक्रमणके समय विसूचिकासे ८६०५ अर्थात् १३·४ प्रति सहस्र मृत्यु हुई। आल्टोनामें केवल २·१ प्रति सहस्र मृत्यु हुई। आल्टोना और हैम्बर्ग बिल्कुल मिले हुए हैं और इनको एक ही नगरके भाग समझना चाहिये। एक गलीमें दोनों भागोंकी प्रबन्ध-कारिणी समितिकी सरहद मिलती है। इस गलीके दोनों ओर वही एक प्रकारके मकान हैं और वही एक प्रकारके निवासी रहते हैं। गलीके एक ओर बड़ी जोरोंसे विसूचिका फैला और दूसरी ओर बिल्कुल शान्ति रही। जहांतक खोज करनेसे ज्ञात हुआ जल प्रबन्धका अन्तर ही इस संचारके अन्तरका कारण था। हैम्बर्गकी ओर वाले कुछ घर रोगसे बचे रहे। खोज करनेपर ज्ञात हुआ कि यहांपर आल्टोना वाला ही पानी प्रयोग किया जाता था।

इस ही प्रकार कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जिनसे जल ही विसूचिका वाहक सिद्ध होता है। जब कि जीवाणु जलमें मिल जाते हैं तो रोगका संचार बहुत बढ़ जाता है। गांवोंमें यह रोगके संचारका अत्यन्त साधारण कारण है, क्योंकि गांवोंमें कोई सुरक्षित जल प्रबन्ध नहीं रहता। पानीके तालाब दूषित वस्त्र इत्यादि धोनेसे दूषित हो जाते हैं। कलकत्तेमें युरोपीय सेनामें १८२६ से १८६३ तक विसूचिकासे मृत्यु संख्या २० प्रति सहस्र थी। जबसे पवित्र जलका प्रबन्ध हो गया मृत्यु संख्या १ प्रति सहस्र हो गई।

विसूचिकाके जीवाणु मल और वमनमें रहते हैं

इस बातकी पूर्ण साक्षी मिल चुकी है कि विसूचिका जीवाणु जलमें पिये जानेके पश्चात् आहार पथमें खूब बढ़ते हैं। फिर मल और वमनमें बाहर निकलते हैं। फिर कहीं जलमें पहुँचकर अच्छा अवसर मिलनेपर और बढ़ते रहते हैं। डाक्टर मकनामाराके एक उदाहरणसे यह लगभग सिद्ध हो जाता है। एक रोगीका वमन अकस्मात् कुछ सेर पानीमें मिल गया। यह जल १२ घंटेतक रखा रहा। अगले दिन प्रातःकाल १९ आदमियोंमेंसे प्रत्येकने इस जलका ½ छटांक पिया। ३६ घंटेके भीतर १९मेंसे पांच मनुष्योंको विसूचिका होगया।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि विसूचिका जीवाणुका अन्दर पहुँचना रोगके होनेका एक आवश्यक कारण है। किन्तु बहुतसी बातोंसे यह ज्ञात होता है कि केवल विसूचिकाके जीवाणु अन्दर पहुँचनेसेही विसूचिका नहीं होता नहीं तो ऊपरके दृष्टान्तमें प्रत्येक मनुष्यको रोग अवश्य होता। और और जो बातें मनुष्यको रोगशील बनानेके लिये आवश्यक हैं, वह आगे चलकर कुछ कुछ बतलाई जायँगी।

विसूचिका जीवाणुको पृथक् करने की विधि

पहिले मलको अणुवीक्षण यन्त्रसे परीक्षा कीजिये। पहिले सूक्ष्मस्तर (Film) बनाइये और उसे किसी साधारण रंगसे रंग लीजिये किन्तु इस कामके लिये सबसे उपयुक्त तनू (१:४) अंगारोल-फकसिन (Carbol fuchsin) है सूक्ष्मस्तरके अणुवीक्षणीय दृश्यकी समांतर पंक्तियोंमें बहती हुई असंख्य मछलियोंसे उपमा दी गई है। यह

दृश्य स्वीय है। फिर उत्वंधित (Hanging drop) विन्दुकी विधिसे परीक्षा कीजिये। विन्दुमें जैन्शन नील (Gentian violet) अथवा और कोई रंग मिला सकते हैं। इस विधिसे जीवाणुकी चालक शक्ति देखी जा सकती है। इतनी परीक्षासे ज्ञात होगा कि धन्वाकार जीवाणु उपस्थित हैं और उनकी संख्याका कुछ पता लग जायगा। मलमें जीवाणु बहुत संख्यामें होते हैं और ५० प्रतिशत रोगियोंमें केवल अणुवीक्षणीय परीक्षा ही निदानके लिये पर्याप्त होती है।

यदि जीवाणु बहुत संख्यामें है तो शैवलिन पट्ट (Agar plate) या डिओडीनके आहारपर एक दम कृषि बो दीजिये फिर संघकी सहायतासे विशुद्ध कृषि प्राप्त कर लीजिये।

यदि जीवाणु बहुत अधिक संख्यामें नहीं हैं तो इसे १ प्रतिशत पाच्योन (Peptone) के घोलमें बोइये और पांच छः घंटेतक पालक यन्त्रमें (Incubator) रखिये। यदि ऊपरके पृष्ठपर कुछ दिखे या द्रवके ऊपरी भागको अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर जीवाणु मिले तो फिर शैवलिन् पट्टपर कृषि कर लीजिये यदि जीवाणु और भी कम संख्यामें हों तो पाच्योनके घोलकी समय समयपर परीक्षा करनी चाहिये। जब जीवाणु दिखने लगें परन्तु विसूचिका जीवाणु फिरभी कम हो तो फिर दूसरे और आवश्यकतानुसार तीसरे पाच्योनकी सुराही (फ्लास्क) में बोइये। फिर इससे प्लेट बना लीजिये।

विसूचिका जीवाणुके पृथक् करनेके लिए ओटोलेंघीका आहार भी बहुत अच्छा है। यह गायके पित्तका बना होता है जिसमें ३°/० १०°/० लावणयम् अंगारेत (Na_2CO_3) का घोल मिला देते है। इसमें अन्य आन्त्रिक जीवाणु सुविधासे नहीं उगने पाते।

हालके विसूचिकाके कई आक्रमणोंमें अन्त्रके बहुत क्षुद्र विकारोंके रोगियोंके मलमेंसे भी विसूचिका जीवाणु निकाले गये हैं। विसूचिकाके आक्रमणके दिनोंमें बहुतसे स्वस्थ पुरुषोंके मलमें भी विसूचिका जीवाणु मिलते हैं। इन लोगोंको 'वाहक' कहते हैं। बहुतसे बीते रोगियों और रोगीसे सम्बन्धमें आए हुए मनुष्योंके मलकी परीक्षासे यह ज्ञात होता है कि मलमें विसूचिका जीवाणुकी उपस्थिति दो तीन सप्ताहमें बन्द होती है। वाहकके मलमें विसूचिका जीवाणु केवल समय समयपर निकलते हैं इसलिये जबतक कई परीक्षा न कर ली जायँ यह नहीं कहा जा सकता कि मलमें विसूचिका जीवाणु बिलकुल नहीं हैं। विसूचिका जीवाणुको पहिले पहिल कौकने मिस्र देशमें १८८३ में निकाला था। फिर उसने कलकत्तेमें आ कर और वहां विसूचिकाके प्रत्येक रोगीमें विसूचिका जीवाणु दर्शा कर अपनी खोजको दृढ़ किया।

विसूचिका जीवाणुका वर्णन

विसूचिका जीवाणुकी लम्बाई क्षय रोगके जीवाणुकी लम्बाईसे आधी और मोटाई द्विगुण होती है। विसूचिका जीवाणुकी आकृति धनुषके सदृश्य कुछ टेढ़ी होती है। उपयुक्त रंगके प्रयोगके पश्चात् इसमें कशा (Flagellum) देखी जा सकती है। कभी कभी दोनों ओर कशा होती हैं और कभी एक ही ओर दो कशाएं होती हैं। कशा जीवाणुके शरीरकी एकसे पांच गुनीतक लम्बी होती है किन्तु बारीकीके कारण इनका दिखना बड़ा कठिन होता है। यह कशा जीवाणुके जीवनमें हर समय नहीं होती है। इस कशाके कारण जीवाणु बड़ी शीघ्रतासे चलते हैं। कभी कभी दो जीवाणु मिल जाते हैं जिससे S अक्षरकी आकृति उत्पन्न हो जाती है। तरल आहारपरकी हुई कृषिमें कहीं कहीं इसी प्रकार कई जीवाणु जुड़े हुए मिल सकते हैं। पुरानी कृषियोंमें विसूचिका जीवाणु कई आकृतियोंके हो सकते हैं। कुछ विरूपतासे मुड़े होते हैं। कोई गोल होते हैं। किसी किसीके दोनों सिरे मोटे हो जाते हैं। कोई कोई बीचमें कहीं कहीं फूले दीखेंगे। कोई बहुत छोटे और मोटे होते हैं। कोई कोई विन्दुके आकारके हो सकते हैं। इन जीवाणुओंपर रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ता

है। इन रूपोंको पतित (Involution forn) कहते हैं।

रंगशीलता—विसूचिका जीवाणु अंगराल फकसिनके (Carbol fuchsin) तनूघोलसे अथवा लौफलरकी दार्वलीन नील (Methyylene blue) से बड़ी सुभीतासे रंग जाते हैं। ग्रामकी विधिसे उनका रंग उड़ जाता है।

कृषि—विसूचिका जीवाणुकी कृषि आलूके अतिरिक्त जीवाणुओंके लिये प्रयोग किये जाने वाले किसी साधारण आहारपर साधारण कमरेके तापक्रमपर की जा सकती है। सबसे उपयुक्त तापक्रम शरीरका तापक्रम ही है। १६° श. पर विसूचिका जीवाणुओंकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है। उस क्षारस्वभाविक आहारपर जिसमें और आन्त्रिक जीवाणुओंकी वृद्धि बन्द हो जाती है विसूचिका जीवाणुओंकी वृद्धि खूब होती है।

पाच्योन सान्द्रिन (Peptone gelatin)—इस आहारपर जीवाणुओंकी खूब वृद्धि होती है और सान्द्रिन (Gelatin) तरल हो जाती है। छिद्र कृषिमें २२°श पर सुईके मार्गपर एक श्वेत रेखा बन जाती है। इस रेखाके ऊपरी भागमें साथ साथ ही आहारका तरल होना आरम्भ होता है। जैसे जैसे सान्द्रिनका जल वाष्पी भाव होता जाता है ऊपरके भागमें गर्त (गड्ढा) होता जाता है। और यहांपर सान्द्रिन अधिक घन हो जानेसे शीघ्र तरल नहीं होती। इस कारण चौथे पांचवे दिनका दृश्य यह होता है—सबसे ऊपर एक गर्त रहता है उसके नीचे कुप्पीकी आकृतिका तरल क्षेत्र रहता है बिना तरल हुई सान्द्रिनका गर्त वायुके बुद बुदके सदृश्य दीखता है। द्रव बहुत ही कम मेघाकीर्ण (गदमैला) होता है किन्तु तरल रेखाके नीचेके भागमें कुछ कुछ सर्पिल (Spiral) आकृतिके संघ (Colony) दिखते हैं। किसी किसी नसलके विसूचिका जीवाणु बहुत अधिक अवसरके पश्चात् यह दृश्य उत्पन्न करते हैं, विशेषतः जबकि सान्द्रिन और किसी किसी नसलमें तरलता बहुत धीरे धीरे उत्पन्न होती है और यह दृश्य बिलकुल ही नहीं दिखलाई देता है। कुछ दिनोंके पश्चात् तरलता नलीकी भित्तीतक फैल जाती है। बार बार अनुकृषि करनेसे जीवाणुओंकी तरलता उत्पन्न करनेके लक्षणमें बहुत कमी हो जाती है।

सान्द्रिन पट्टपर उत्पन्न हुए संघोंमें कुछ स्वीय लक्षण रहते हैं। २४ से ४८ घंटेमें संघ (Colony) श्वेत विन्दुके रूपमें दिखलाई देने लगते हैं। अणुवीक्षण यंत्रसे देखनेपर इनका ऊपरी पृष्ठ कणमय (दानेदार) अथवा हलयवत् (furrowed) दिखलाई देता है। संघके चारों ओर तरलता उत्पन्न हो जाती है। और फिर संघ द्रवमें डूब जाता है अणुवीक्षण यंत्रसे गर्तकी बाहरी सीमा चक्राकृतिसी दिखती है। गर्तके भीतर द्रवका एक मंडल हो जाता है जोकि कणमय दिखलाई देता है। संघोंका सिरा विघिन्न होता है।

आगरके पृष्ठपर कृष पारदर्शिन स्तर (layer) बन जाता है जिसके कोई स्वीय लक्षण नहीं होते। घन रक्त सीरमपर वृद्धि पहले वैसी ही होती है किन्तु इसके पश्चात् जीवाणु आहारमें तरलता उत्पन्न कर देते हैं। शैवलिन् पट्टपर ऊपरके संघ अनुवीक्षण यंत्रसे चक्राकार और बादामी मायल पीले दिखते हैं और बहुतसे दूसरे जीवाणुओंके संघोंसे अधिक पारदर्शिन होते हैं।

आलूपर साधारण तापक्रमपर वृद्धि नहीं होती किन्तु ३०°—३७°श पर एक आर्द्र स्तर उत्पन्न होता है। यह स्तर धीरे धीरे बादामी रंगका हो जाता है। रंगत जीवाणुकी नसल और आलूकी किसमपर निर्भर है।

क्षार स्वभाविक जूष (Bouillon) में जीवाणु बड़ी शीघ्रतासे उत्पन्न होते हैं। १२ घंटेके भीतर भीतर मेघाकीर्णता उत्पन्न हो जाती है और पृष्ठपर एक कृष स्तर दिखलाई देने लगता है, जिसके भीतर बड़ी शीघ्रतासे चलनेवाले जीवाणु रहते हैं। पाच्योनके घोलमें (१ प्रतिशत पाच्योन और ·५ प्रतिशत लवण) में भी उतनी ही शीघ्रतासे वृद्धि

होती है। विसूचिका जीवाणु द्राक्षाशर्करा, इक्षु-शर्करा, यवशर्करा, (mlatose) और वंश शर्करामें (mannose) बिना गैस बनाये अम्ल उत्पन्न करते हैं। शर्कराके भी फेन (fermentation) में अम्ल उत्पन्न होता है। किन्तु २—३ दिन लगते हैं। दूधमें जीवाणु खूब बढ़ते हैं किन्तु दूधके देखनेमें कमसे कम कई दिनतक कोई अन्तर नहीं होता।

सब प्रकारके आहारपर और विशेषतः जूष और पाच्योनके घोलमें जीवाणुओंकी वृद्धि अत्यन्त शीघ्रताके साथ होती है। विसूचिका जीवाणु ओषजनकी अनुपस्थितिकी अपेक्षा ओषजनकी उपस्थितिमें बड़ी शीघ्रतासे बढ़ते हैं। ओषजनकी पूर्ण अनुपस्थितिमें वृद्धि बहुत कम होती है।

विसूचिका जीवाणुकी लाल प्रतिक्रिया—असली विसूचिका जीवाणुके साथ इस परीक्षणमें अवश्य सफलता होती है। यद्यपि इस परीक्षणमें सफलतामें सहायता विसूचिका जीवाणुका स्वीय लक्षण नहीं है तथापि बहुत ही कम और जीवाणुओंमें यह लक्षण होता है। परीक्षणकी विधि यह है—पाच्योन के घोल या जूषकी ३७°श पर पालन की हुई २४ घंटेकी कृषिमें कुछ बूँद गन्धकाम्लकी डालिये। विसूचिका जीवाणुकी कृषिके साथ नीलाई लिये गुलाबी रंगत उत्पन्न हो जायगी। इसका कारण यह है कि जीवाणु द्वारा तन्द्रालु (Indol) और नत्रित दोनों बन जाते हैं। यह आवश्यक है कि गन्धकाम्ल बिलकुल विशुद्ध हो क्योंकि यदि नत्रितका सूक्ष्मसे सूक्ष्म भाग भी गन्धकाम्लमें हुआ तो ये परीक्षण उन जीवाणुओंके साथ भी जो नत्रित नहीं उत्पन्न करते सफल हो जायगा।

रक्ताणुलय (Haemolytic) परीक्षण—ये परीक्षण क्राऊसने निकाला था। शैवलिन् पट्ट बनाते समय यदि कुछ कुछ सूत्रिन् रहित (defibrinated) रक्त अच्छी तरह मिला दिया जाता है, यदि किसी जीवाणुमें रक्ताणुलयके लक्षण होते हैं तो प्रत्येक संघके इर्द गिर्द रक्त गोलिन (Haemoglobin) के व्यापनेसे (diffusion) स्पष्ट मंडल बन जाता है। विसूचिका जीवाणु रक्ताणुलय नहीं करते किन्तु केवल २४ घंटेतकका फल देखना चाहिये। क्योंकि इसके पश्चात् फिर विसूचिका जीवाणुओंके संघोंके इर्द गिर्द भी स्पष्ट मंडल बन जा सकता है।

रक्ताणुलयका परीक्षण तरल कृषिके प्रयोगसे अच्छी तरह किया जा सकता है। क्षार स्वाभाविक जूषकी तीन दिनकी विसूचिका जीवाणुकी कृषि का १ घन शतांशमीटर रक्ताणुओंके ५ प्रतिशत पायस (Suspension) के १ घन शतांशमीटरके साथ एक नली (ट्यूब) में मिला दीजिये। नलीको दो घंटेतक पालन यन्त्रमें ३७°श पर रखिये। फिर रातभर बर्फमें रखे रहिये। प्रातः फल देखिये। यह परीक्षण विसूचिका जीवाणुकी ३०० नस्लोंके साथ किया गया किन्तु एकमें भी रक्ताणुलय नहीं हुआ। एलटूर समुदायमें रक्ताणुलयके लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार हम इस क्रियासे असली विसूचिका जीवाणुको उस श्रेणीके जीवाणुओंसे पहचान सकते हैं।

जीवन दृढ़ता

तापके विमुख विसूचिका जीवाणुकी जीवन दृढ़ता उतनी ही है जितनी और बिना बीजकोष वाले जीवाणुओंकी होती है। विसूचिका जीवाणु ५५°श तापक्रमपर एक घंटेमें मर जाते हैं, इससे ऊँचे तापक्रमपर और भी जल्दी मरते हैं। शीतमें उनकी जीवन दृढ़ता बहुत अधिक है। वे अधिकसे अधिक शीतमें भी जीवित रह सकते हैं। −१०°श पर भी ये एक घंटेतक जीवित रहते देखे गये हैं। किन्तु बरफमें रखनेसे कुछ दिनोंमें ही मर जाते हैं। साधारण जीवाणुनाशक औषधियोंकी विमुखतामें विसूचिका जीवाणुकी जीवन दृढ़ता बहुत ही कम है। एक प्रतिशत चूनेके पानीमें मिलानेसे विसूचिका जीवाणु एक घंटेमें मर जाते हैं।

साधारण कमरेके तापक्रमपर मलमें और और हिलनकारी जीवाणु बहुत अधिक शीघ्रतासे

बढ़ते हैं। इस कारणसे विसूचिका जीवाणु बहुत स्वाधीनतासे नहीं बढ़ सकते हैं। किन्तु कभी कभी विसूचिका जीवाणु मलमें दो दो तीन तीन महीने-तक जीवित रहते देखे गये हैं। किन्तु अधिकांश परीक्षणोंमें इससे कहीं थोड़े समयके पश्चात् भी मलमेंसे विसूचिका जीवाणुकी कृषि करनेमें सफलता नहीं होती। साधारण पाखानेके पानीमें भी विसूचिका जीवाणु बड़ी शीघ्रतासे बढ़ते हैं। यह भली भाँति ज्ञात है कि विसूचिका जीवाणुकी वृद्धिके लिए आवश्यक दशाएँ यह हैं—जीवप्रभव पदार्थ, साधारणके लगभग तापक्रम, नमी और ओषजनकी उपस्थिति। किन्तु यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि किन किन दशाओंमें विसूचिका जीवाणु विगलिताहारी बनकर अपरिमित समय तक जीवित रह सकते हैं। विसूचिकाका स्थिर निवास स्थानका क्षेत्र बहुत कम है। इससे तो यह ज्ञात होता है कि साधारणतः विसूचिका जीवाणुके लिये शरीरके बाहर निरन्तर वृद्धिके लिये उपयुक्त दशा अधिकतर नहीं मिल सकती। विसूचिका जीवाणु निष्कर्षित जलमें शीघ्र मरते हैं, लवणमय जल जैसे सामुद्रिक जलमें बहुत दिन जीवित रहते हैं।

विसूचिका जीवाणु सूखेमें बहुत जल्दी मर जाते हैं। इस कारणसे वायु द्वारा विसूचिकाका संचार सम्भव नहीं है। यह बात संचार मार्ग देखनेसे भी ज्ञात होती है। दूषित जल और भोजनसे ही विसूचिका फैलता है। मक्खियोंको दूषित भोजन खिलाकर मक्खियोंके शरीरमेंसे विसूचिका जीवाणु २४ घंटेतक जीवित देखे गये हैं। अन्धेरेमें विसूचिका जीवाणु ४ घंटेमें मर जाते हैं।

इसमें संशय नहीं है कि विसूचिकाका जन संख्यामें बहुत शीघ्रतासे संचारका कारण जल प्रबन्धका दूषित होना होता है। पवित्र दूध यदि विसूचिका ग्रसित स्थानमें खुला हुआ रक्खा जाय तो मक्खियों द्वारा विसूचिका जीवाणुसे दूषित हो जाता है। इस विधिसे कभी कभी तो इस रोगका संचार अवश्य होता है।

अब हम यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि विसूचिकाको संचारमें किन किन स्थानीय अवस्थाओंसे सहायता मिलती है।

(१) मल इत्यादिक जीव प्रभव पदार्थोंसे धरतीका दूषित होना।

(२) नमी और कुछ गरमीसे विसूचिकाके संचारमें बहुत सहायता मिलती है। किन्तु बहुत ठंडमें विसूचिकाका बन्द होना ज़रूरी नहीं है। पञ्जाबमें कभी कभी उस समय भी विसूचिका प्रचलित रहता है जब तापक्रम ०°श तक हो जाता है।

(३) ऊँची और शुष्क धरतीकी अपेक्षा नीचे और नदीके किनारेवाले ज़िलोंमें विसूचिका अधिक होता है।

(४) अधिकतर विसूचिका गरमीके अन्तमें आरम्भ होता है और सर्दीके आरम्भ होते ही बन्द हो जाता है। बंगालमें अप्रेल, मई और पंजाबमें वर्षाऋतु विसूचिका फैलनेके साधारण महीने हैं।

जीवाणु द्वारा रोग उत्पन्न करनेके परीक्षण

रोगोत्पादनके परीक्षणोंके फलको समझते समय यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जन्तुओंमें प्राकृतिक दशामें यह रोग कभी नहीं होता है।

नीकेटी और रीशने कुत्ते और शशकके पक्वाशय (duodenum) में विसूचिका जीवाणु अन्तः क्षेपण (Injection) किये, और वह बहुतसे पशुओंकी अन्त्रोंमें विसूचिकाके समान परिवर्तन उत्पन्न करनेमें सफल हुए। यह सोचकर कि विसूचिकाके जीवाणु आमाशयके अम्लसे नाश हो जाते हैं कौकने गिनी शूकर (guinea pig) के आमाशयका अम्ल नाश करनेके लिये ५ प्रतिशत लावणयम् अंगारेत ($Na_2 Co_3$) के घोलका ५ घन शतांशमीटर पिलाया और फिर एक नलीसे विसूचिका जीवाणुकी विशुद्ध कृषि आमाशयमें

चढ़ा दो। इस प्रकार सफलता नहीं प्राप्त हुई तो लावणयम् अंगारेत ($Na_2 Co_3$) पिलानेके अतिरिक्त आन्त्रकी कृमिवत आकुञ्चन रोकनेके लिये उदरस्थ आवरण (Peritoneum) में (१ घन शतांशमीटर प्रति २०० ग्राम जन्तु तोलके हिसाबसे) अहिफेन आसव (Tr. Opii) अन्तः क्षेपण कर दिया। ३५ में से ३० पशुओंमें शक्तिपातसे मृत्यु हुई। मृत्यु कुछ घंटे पश्चात् हुई और मृत्युके पश्चात् अन्त्र फूली हुई पाई गई, अन्त्रकी श्लेष्मल कलाप रक्तपूर्ण पाई गई। अन्त्र रंगहीन द्रवसे भरी हुई थी। इस द्रवमें कुछ छिछड़े भी थे, और अणुवीक्षण यन्त्रसे परीक्षा करनेपर इस द्रवमें विसूचिका जीवाणु विशुद्ध कृषिमें पाये गये। फिंकलर, प्रायर, मिल्लर, डनीकेके जीवाणु प्रयोग करनेपर इतनी मृत्यु नहीं हुई। इन परीक्षणोंसे यह प्रकट होता है कि विसूचिका जीवाणु और विसूचिकामें घनिष्ठ सम्बन्ध है।

जिन शशकोंमें विसूचिका नाशक सीरम बनानेके लिये जीवाणुओंका शिरामें अन्तः क्षेपण किया जाता है उनमें पित्ताशयमें भी जीवाणु मिलते हैं और पित्ताशयमें पित्ताश्मरी (Gall stones) भी मिलते हैं। यह बड़ी रोचक बात है। क्योंकि शायद वाहकके मलके जीवाणुओंका स्रोत भी पित्ताशय है।

इस ही सम्बंधके और भी रोचक परीक्षण दिये जाते हैं। सोबोल्टनीने मारमट (marmot) पर परीक्षण किया। मारमटमें केवल विसूचिका जीवाणु खिलानेसे ही अन्तमें रोग उत्पन्न हो जाता है और अन्तमें वही स्वीय परिवर्तन पाये जाते हैं। कभी कभी रक्तरक्षणिक उदरस्थ आवरण प्रदाह भी मिलती है और जीवाणु शरीर भरके रक्तमें पाये जाते हैं।

मैचिनीकाफने यह अनुसन्धान किया कि शशकके (rabbit) बच्चेमें विसूचिका जीवाणुओंको केवल दूधके साथ पिलानेसे ही रोग उत्पन्न हो जाता है। यह परीक्षण मांके थनमें विसूचिका जीवाणु लगानेसे किया जा सकता है, और फिर प्राकृतिक विधिसे अपने आप संचार आरम्भ हो सकता है। सुस्सेके बच्चोंमें विसूचिकाके प्रायः सभी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

गिनी शूकरमें उदरस्थ आवरणीय अन्तःक्षेपण करनेसे लगभग सब विषज लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। मुख्य लक्षण होते हैं उदरका फूल जाना, शीतज्वर और शक्तिपात। उदरस्थ आवरणमें अवस्थाके अनुसार आकर्षित पदार्थ स्वच्छ द्रव हो, मेघाकीर्ण पदार्थ हो अथवा उसमें कुछ लसीकाके छिछड़े हो सकते हैं। यदि जीवाणुओंकी मात्रा अधिक दी जाय तो क्षुद्रान्त्र और रुधिरमें भी जीवाणु बहुसंख्यामें मिलते हैं। कोलने यह मालूम किया कि यदि कमसे कम विनाशक मात्राका प्रयोग किया जाय तो मृत्युके समीप जीवाणु नाश हो जाते हैं। मृत्यु केवल विषके समावेश होनेसे ही होती है। इससे सिद्ध हुआ कि परीक्षणोंमें जीवाणुकी संख्या बढ़ती तो है, किन्तु विसूचिका जीवाणुओंमें तन्तुओंपर आक्रमण करनेकी शक्ति बहुत अधिक नहीं होती। विष समावेशके लक्षण सदा स्पष्ट रहते हैं।

मनुष्यपर परीक्षण

मनुष्यपर कुछ परीक्षण असावधानीके कारण हो गये हैं और कुछ जान बूझकर किये गये हैं। कौफकी प्रयोगशालाके एक काम करनेवालेको विसूचिकाके लक्षण हो गये। मलमें विसूचिका जीवाणु बहुत संख्यामें थे। रोगी अच्छा हो गया। इस रोगीमें उन कृषियोंके अतिरिक्त जिनसे कि वह काम करता था और कोई कारण विसूचिकाका नहीं हो सकता क्योंकि उस समय जर्मनीमें विसूचिकाका नाम भी नहीं था। मनुष्योंपर इसी प्रकार बहुत परीक्षण हो चुके हैं। जिनसे यह ज्ञात होता है कि कभी कभी विसूचिकाके जीवाणुओंसे बहुत कठिन लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और कभी कभी कोई लक्षण नहीं होते। इमरिख और पेत्त कोवर ने अपने ऊपर परीक्षण

किये और दोनों बहुत बीमार हो गये। दोनोंमें प्रवाहिका बहुत कठिन थी, मलमें विसूचिका जीवाणु बहुत संख्यामें थे किन्तु विष समावेशके लक्षण इतने कठिन नहीं थे। मैचनीकौफने भी अपने ऊपर और औरोंपर परीक्षण करके विसूचिका और विसूचिका जीवाणुका सम्बन्ध सिद्ध किया। हैम्बर्गके डाक्टर औगेंलको विसूचिका जीवाणुकी कृषिसे परीक्षण करते समय यह रोग लगा और चिकित्सा होनेपर भी उनकी मृत्यु हो गई। विसूचिका जीवाणु युक्त कुछ उदरस्थ आवरणीय द्रव पिपेटसे खींच रहे थे और उसमें कुछ उनके मुँहमें चला गया था। यह सितम्बर १८९४ की बात है, जिस समय जर्मनीमें विसूचिका नहीं था। यह हम पहिले भी देख चुके हैं कि प्रत्येक मनुष्य-परीक्षण सफल नहीं होता विसूचिकाके संचारके दिनोंमें भी उन्हीं अवस्थाओंमें रहते हुए भी बहुतसे मनुष्य विसूचिकासे विमुक्त रहते हैं। विसूचिकाके वाहक मनुष्योंकी ओर भी ध्यान देते हुए इसी परिणामपर पहुँचते हैं कि कुछ मनुष्य विसूचिकाके लिये बहुत ही रोगशील होते हैं।

विष

छनी हुई कृषि बहुत कम विषैली होती है अर्थात् बहिर्कोषीय विष विसूचिका जीवाणुओंमें बहुत कम होता है। फाईफरने यह सिद्ध किया कि मृतक जीवाणु बहुत विषैले होते हैं। उनके अन्तःक्षेपणसे गिनी शूकरमें वही लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जोकि जीवित जीवाणुओंके अन्तःक्षेपणसे होते हैं। शीत ज्वर और शक्तिपातका बहुत आधिक्य रहता है। फाईफरका विचार है कि विष जीवाणुके भीतर रहता है, अर्थात् विष अन्तःकोषीय होता है, और जीवाणुओंके लयके कारण विमुक्त हो जाता है। फाईफरने यह सिद्ध किया कि यदि जीवाणुओंका अन्तःक्षेपण जीवाणुओंके उदरस्थ आवरणमें किया जाय और फिर कुछ विसूचिका नाशक सीरमका भी अन्तःक्षेपण कर दिया जाय तो जीवाणुओंका लय होने लगता है, और विष विमुक्त हो जाता है और फिर विषके समावेश होनेसे बड़ी शीघ्रतासे शक्तिपात होता है। मृत कृषि खिलानेपर अन्त्रकी पृष्ठीय कोषस्तर (Epithe lium) में कोई क्षति न हो तो कोई प्रभाव नहीं होता। यदि पृष्ठीय कोषस्तर (Epithe lium) में कोई क्षति हो तो विष समावेश हो जाता है। फाईफरका विचार है कि पृष्ठीय कोषस्तरमें क्षति होना मनुष्यमें रोग होनेके लिये आवश्यक है। फाईफरने मालूम किया कि ६०°श पर अधिकांश विष नाश हो जाता है किन्तु बचा हुआ विष १००°श पर भी नाश नहीं होता। दूसरे विषका भी प्रभाव वही है। मकफेडियनने कृषिको तरल वायुसे जमाकर, और उसे पीसकर विष निकाला। यह विष शिरामें अन्तःक्षेपणपर अत्यन्त विषैला सिद्ध हुआ। अभी कृषिसे निकाले विषका भी अधिकांश भाग ६०°श पर नाश हो जाता है।

इसके विरुद्ध और वैज्ञानिकोंने छनी हुई कृषिमें भी विष पाया है। मेचनीकाफ, सेलिम्बेनीने यह सिद्ध किया कि तरल आहार व्यापी (diffusible) विष बनते हैं। लेपोपम् (Collodion) की थैलीमें जीवाणुकी कृषि भरकर उदरस्थ आवरणमें रख दी। उन्होंने यह सिद्ध किया कि ऐसे विष बनते हैं जो थैलीकी भित्तीके भी पार जा सकते हैं और विषैले लक्षण उत्पन्न कर सकते हैं। जीवाणुके प्राबल्यको बढ़ाकर फिर उसे जूषमें उगाकर ३रे या ४थे दिन छाननेपर उनको एक विष मिला। यह बहुत विषैला था। १/५ घ. श. मी. प्रति १०० ग्राम जन्तु बोझके हिसाबसे गिनी शूकरको मार सकता था। लक्षण फाईफरके परीक्षण वाले ही थे। इस विषका विषैलापन उबालनेसे भी कम नहीं होता। इससे यह मालूम होता है कि यह कोई दूसरा विष है। हंटमूलने विसूचिका की कई नस्लोंसे एक बहिर्कोषीय विष निकाला जिसको कि वह रक्ताणुलयकारी समझते हैं। यह विष बड़ा अस्थिर होता है। उन्होंने इस विषका एक विषनाशक भी बनाया। इन फलोंके

परस्पर विरोधका कारण यह मालूम होता है कि विसूचिका जीवाणुओंकी भिन्न नस्लोंमें वाहिर्कोषीय विष उत्पन्न करनेकी शक्ति एक समान नहीं होती। तो भी अधिकांश विष सदा अन्तः कोषीय होता है। [क्रमशः]

समालोचना

सूर्य्य-सिद्धान्त

संस्कृत ग्रन्थ सूर्य्य-सिद्धान्तके प्रथम और द्वितीय अध्यायोंका भाषान्तर राष्ट्रभाषा हिन्दीमें पृथक् पृथक् दो भागोंमें हमारे पास आलोचनाके लिये आया है। पृष्ठ संख्या ८+११६+८ प्रथम भाग 'मध्यमाधिकार'में और १०+२०४+८ द्वितीय भाग 'स्पष्टाधिकार' में है। प्रस्तावना नहीं है। छपाई साधारण है। मूल्य मध्यमाधिकारका ॥=) एवं स्पष्टाधिकारका ।॥) है, जो लेखकके परिश्रमके विचारसे कम समझ पड़ता है।

सूर्य्य-सिद्धान्तसे ज्योतिष शास्त्रमें प्रामाणिक ग्रन्थका राष्ट्रभाषा हिन्दीमें भाषान्तर करणका भार विज्ञान परिषद् इलाहाबाद ने ग्रहण करके एक परम प्रशंसनीय कार्य्यारम्भ किया है।

मध्यमाधिकारमें विषयारम्भसे क्रान्ति वृत्तके उत्तर या दक्षिण ग्रहोंके गति पर्य्यन्तका वर्णन है और स्पष्टाधिकारमें ग्रहोंके शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पातसे लेकर योग तिथि, अर्द्धतिथि और करण तकका कथन आया है।

लेखकने मूलका प्रति श्लोक मोटे टाइपमें देकर इसके नीचे हिन्दीमें सरल अनुवाद करके अपना विज्ञान भाष्य लिखा है। विषयके गहन होनेसे उसका केवल भाषान्तर द्वारा समझना कठिन है। एतदर्थ लेखकने विज्ञान भाष्य द्वारा इसको बहुत कुछ सुगम कर दिया है। ग्रहोंकी गति तथा उनके मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और पातका समझना कुछ कठिन है। अनुवादक ने इन्हें गणित द्वारा अच्छी तरहसे समझाया है। आवश्यकता नुसार परिलेख (diagram) भी दिये गये हैं। इससे विषय समझनेमें सरलता मालूम पड़ती है। दिनपति, मासपति तथा वर्षपतिकी उपपत्ति जाननेके नियम और ग्रहोंके वक्री और मार्गी होनेके कारण मनोरञ्जक मालूम होते हैं। गणितकी जिन रीतियोंका उपयोग इन दो भागोंमें हुआ है, उनके कुछ अङ्कोंको देख कर मन ऊब उठता है। उदाहरणार्थ संवत् १९७९ की वसन्त पञ्चमी तक सृष्टिके कितने दिन बीते। यह विषय देखने योग्य है। साथ ही साथ सरल और व्यावहारिक रीतियां भी दी गई हैं। हमारे आचार्य्योंके सिद्धान्तोंमें मतभेद, युरोपीय ज्योतिष शास्त्रके सिद्धान्त और आधुनिक ज्योतिष शास्त्रकी तुलनात्मक चर्चाकी गई है। जिससे ग्रन्थमें व्यापकता व रोचकता आ गई है और जिन बातोंके समझनेमें हमारे आचार्य्योंको कठिनता बोध होती थी वह सुगमता पूर्वक समझमें आ जाती हैं।

इन भागोंके पठनसे यह भी ज्ञात होता है कि हमारे आचार्य समय समयपर ग्रहोंके वेध लेते थे, और कई आचार्य्य भविष्यमें भी वेध लिये जाने का आदेश दे गये हैं।

कुछ गाणित्य सिद्धान्त जिनका उपयोग इस पुस्तकमें किया गया है, ऐसे हैं जो केवल हिन्दी पढ़े लिखे ज्योतिष प्रेमियोंके समझमें शायद न आ सकें।

अच्छा होता यदि जिनका उपयोग ग्रन्थमें हुआ है ऐसे भूगोल और गणित सम्बन्धी कठिन वैज्ञानिक शब्दोंकी एवं कुछ ज्योतिष सम्बन्धी ऐसे ही शब्दोंकी व्याख्या पुस्तकके आरम्भ में दी गई होती।

ऐसे ग्रन्थोंमें शुद्धिपत्रकी लम्बाई जितनी कम हो उतना ही अच्छा होता है।

हमारा मत है कि विज्ञान परिषद्ने अपने कार्य्यमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है और हम आशा करते हैं कि हिन्दी और ज्योतिष शास्त्रके प्रेमी इस पुस्तकसे लाभ उठायेंगे और परिषद्को उत्साहित करेंगे।

यह ग्रन्थ परीक्षाओं और पाठ ग्रन्थ बनाये जानेके योग्य समझ पड़ता है। हम ऐसा उपयोगी एवं ज्ञान पूर्ण ग्रन्थ लिखनेपर बाबू महावीर प्रसाद श्रीवास्तवको हृदयसे धन्यवाद देते हैं। ऐसे ग्रन्थों-से हमारी हिन्दीका गौरव है।

—श्रीशुकदेव बिहारी मिश्र, बी. ए.

क्षयरोग और लहसुन

गत २री संख्यामें उपर्युक्त शीर्षक लेखके बारे-में दो चार बातें कहनी ज़रूरी समझता हूँ। ऐसा मालूम होता है कि लेखक महाशय 'याह-दिल' कम्पनीके विज्ञापनोंपर अन्ध विश्वास रखते हैं। यदि ऐसा नहीं है तो लहसुनका वर्णन करते हुए क्यों बारम्बार 'याहदिल' के गुण बखानते ?

पहले तो लहसुनके गुण सुन लीजिये। आयु-र्वेदमें 'रशोनपिण्ड' गठिया आदि रोगोंमें अनेक कालसे व्यवहार होता हुआ चला आ रहा है। अमरीकामें लहसुनका शर्बत बच्चोंको खांसीमें दिया जाता है। निमोनिया आदि अन्य फेफड़ेके रोगोंमें भी लहसुन उपयोगी साबित हुआ है। अतएव क्षय रोगमें जब बलग़म पककर दुर्गन्धित हो जाता है, तब लहसुन बहुत लाभदायक होता है। तीव्र गन्धके कारण इसका व्यवहार ज़रा दुःसाध्य है। परन्तु इसमें एक गुण यह भी है कि इसको तेलके साथ खरलमें रगड़ लेनेसे उसको मक्खनकी तरह बना देता है। अतएव असली मछलीके तेलके साथ इसको रगड़कर नमक मिर्च मिलाकर रोटीके साथ सुगमतासे खिला सकते हैं। इसका उड़ायी (Volatile) तैल भी पाकस्थली (मेदे) को उत्तेजित करके अन्य मसालोंकी तरह हाज़मेमें मदद देता है। सम्भवतः इसका गन्धक भागका भी जैविक (Organic) होनेके कारण, शरीरमें अधिक परिमाणसे आत्मीकरण (assimilation) होता है और इसीलिये गठिया आदि रोगोंमें लाभदायक है।

हमारे ब्राह्मणोंने इसको मसालोंसे इसलिए ख़ारिज कर दिया होगा कि इसमें बड़ी दुर्गन्ध होती है और यह कुछ वृष्य भी है। प्राचीन ग्रंथों-में भी देखनेमें आया है कि जो लोग अधिक प्याज़, लहसुनका सेवन करते थे उनकी शीलता कुछ शिथिल होती थी। आजकल भी समाजपर पर्य्या-वेक्षण करनेसे प्राचीन ग्रन्थोंकी बातें सच पाई जाएँगी। इसलिए ब्रह्मचारियोंके और सात्विक भोजनमें इसका स्थान नहीं है। अलबत्ता राजसिक और तामसिक वृत्तिवालोंके लिए कोई मनाही नहीं।

अब 'याहदिल' का क़िस्सा सुनिये। इसके विज्ञापनोंसे हमारे लेखक महाशय ही नहीं, बल्कि पश्चिमी जगत्के लोग भी चकित रह गए। केवल इसके प्रचारके कामके लिए एक छापेख़ानेकी लि-मिटेड कम्पनी खोली गई। अस्तु विद्वानोंके इसके दावोंमें बड़ी शंका पैदा हुई। यहांतक कि किसी विश्वविद्यालयके एक अध्यापकने इसका विश्ले-षण किया और साबित कर दिया कि इसका रासायनिक संगठन जैसा कि ये बता रहे हैं (Allyic-carbide) बिलकुल ग़लत है। यह एक साधारण मिश्रण (nixture) है जिसके अवयव न्यूनाधिक (याददाश्तसे लिख रहा हूं) निम्न लिखित हैं :— फ़ौरमलीन (formaline) १% ग्लीसरीन (glycetine) ५% बाक़ी जल; गन्धके लिए नाममात्र लहसुनका इत्र मिला रक्खा है। अतएव यह (Trimethenol allylic carbide) न हुआ, जैसा कि कम्पनीवाले दावा करते हैं। यह रिपोर्ट समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होते ही हलचल मचगई। मुक़दमे चले। आख़िर 'याहदिल' का याहअल्ला बोल गया।

—एक 'मुनि'

[लहसुनका क्षयरोगसे क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्नपर 'मुनि' महोदय तथा हमारे देशके आयुर्वेद विशारदोंको प्रकाश डालना चाहिये—सम्पादक]

सूर्य-सिद्धान्त

[गताङ्कके आगे]

विषुवांश, बढ़ते रहते हैं। इससे क्रान्ति, चरांश और चर-खण्डोंमें कुछ अन्तर होता जाता है। परन्तु यह अन्तर बहुत सूक्ष्म होता है क्योंकि अयन चलनके कारण भोगांशमें प्रतिवर्ष केवल १ कलाके लगभग वृद्धि होती रहती है इसलिए कमसे कम २५ वर्षके बाद सारिणीमें एक बार संशोधन कर देना आवश्यक है।

यह जानना कि किस समय क्रान्तिवृत्तका कौन विन्दु पूर्व क्षितिजमें लग्न है।

गतभोग्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात्।
स्वोदयासुहता भुक्त भोग्या भक्ताः खवह्निभिः॥४५॥
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून् प्रविशोधयेत्।
तद्वत्तदेष्य लग्नासूनेवं यातांस्तथोत्क्रमात्॥४६॥
शेषं चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम्।
भाग हीनं च युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तदा॥४७॥

अनुवाद—(४५) जिस समयका लग्न जानना हो उस समयके स्पष्ट सूर्यसे गतासु और भोग्यासु जानना चाहिये। सूर्य राशिके जितने अंशपर होता है उसको गतांश और राशिका जितना अंश सूर्यके भोगनेको शेष रह जाता है उसको भोग्यांश कहते हैं। राशिके उदयासुओंको गतांशसे गुणा करके ३० से भाग देनेपर गतासु और भोग्यांशसे गुणा करके ३० से भाग देनेपर भोग्यासु जाने जाते हैं। (४६) सूर्योदयसे जितनी घड़ी (समय) इष्ट काल तक बीत चुकी हो उसमेंसे भोग्यासुओंको घटा देना चाहिये। जो शेष हो उसमेंसे आगे आनेवाली राशिके उदयासुओंको घटाना चाहिये। शेषमें से इससे आगेकी राशिके उदयासुओंको घटाना चाहिये। इसी प्रकार आगे आनेवाली राशियोंके उदयासुओंको घटाते जानेसे जब शेष इतना रह जाय कि फिर आगेकी राशिके उदयासु न घटें तो यही अशुद्ध राशि (न घटने वाली राशि) कही जायगी। परन्तु यदि गतासुसे लग्न जानना हो तो जो राशियां सूर्योदयके पहले उदय हो चुकी रहती हैं उनके उदयासुओंको सूर्योदय होनेमें जितना समय हो उसमेंसे उलटे क्रमसे घटना चाहिये अर्थात् पहले तो गतासु घटावे, फिर सूर्यकी राशिसे जो राशि पीछे हो उसके उदयासुओंको घटाना चाहिये फिर उससे पीछेकी राशिके उदयासुओंको घटाना चाहिये इत्यादि, (४७) अंतमें यदि कुछ शेष रह जाय तो उसको ३० से गुणा करके अशुद्ध राशिके उदयासुओंसे भाग देना चाहिये। यदि क्रिया गतासुसे की गयी हो तो भागफलको अशुद्ध राशिसे घटानेपर और यदि यह क्रिया भोग्यासुसे की गयी हो तो भागफलको जोड़नेसे यह ज्ञात हो जाता है कि उस समय क्षितिजमें क्रान्तिवृत्तका कौन विन्दु लग्न है।

विज्ञान भाष्य—४७वें श्लोकके उत्तरार्द्धका अर्थ करनेमें कई टीकाकारोंने अयनांशके जोड़ने घटानेकी भी चर्चाकी है जो मेरी समझमें व्यर्थ है क्योंकि जब स्पष्ट सूर्यकी राशिसे लग्न जाना जाता है और सभी ग्रहोंका स्पष्ट निरयन राशियोंमें किया जाता है तब सायन सूर्यसे लग्न जाननेकी क्या आवश्यकता है। इसके अर्थमें भ्रम इसलिए होता है कि इन तीन श्लोकोंमें लग्न निकालने की दो रीतियां जो प्रायः एक ही सी हैं दी हुई हैं। यदि सूर्योदयसे इष्ट काल तकका समय ३० घड़ीसे कम हो तो भोग्यासुओंसे काम लेना सुगम होगा और यदि इष्ट काल अगले सूर्योदयके निकट हो तो अगले सूर्यो-

दयके गतासुओंसे काम लेनेमें सुविधा होगी। इसीलिए अन्तिम लब्धिके जोड़ने घटानेकी आवश्यक पड़ती है। यह बात नीचेके २ उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगी।

उदाहरण—सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पल और ५२ घड़ी १० पल पर कौन कौन लग्न होंगे जब कि सूर्योदय कालमें सूर्यका निरयन भोगांश ३रा५°१′६″ और सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है।

विकलाओंकी गणना करनेमें गुणा भाग बहुत करना पड़ेगा इसलिए आगे चलकर सूर्यका निरयन भोगांश केवल कलाओं तक लिया जायगा।

१ली रीति—

पहिले यह जानना चाहिए कि सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पलपर सूर्यका निरयन भोगांश क्या होगा।

६० घड़ीमें	सूर्य	५७′२१″	आगे बढ़ता है
∴ १५ घड़ीमें	”	१४′२०″१५‴	” *
और १ घड़ीमें	”	५७″२१‴	”
और १५ पलमें	”	१४″२०‴	”

∴ १६ घड़ी १५ पलमें १५′३२″ सूर्य आगे बढ़ता है। इसलिए सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पलपर सूर्यका निरयन भोगांश

$=$ ३रा५°१६′३८″

$=$ ३रा५°१७′

* जैसे कलाके ६०वें भागको विकला कहते हैं वैसे ही विकलाके ६०वें भागको प्रतिविकला समझना चाहिए जिसके लिए तीन चिन्हों (‴) का प्रयोग किया गया है।

∴ इष्ट कालमें कर्क राशिमें सूर्यका गतांश ५°१७′ और भोग्यांश ३०° − ५°१७′ = २४°४३′ = १४८३′

परन्तु कर्क राशिके उदयासु† (प्रयागमें) २०७५ हैं। इसलिए जब कर्कके ३०° अंश अथवा १८०० कला २०७५ असुओंमें उदय होता है तब २४°४३′ या १४८३′ कितने समय-में उदय होगा, अर्थात्

$$\text{भोग्यासु} = \frac{१४८३ \times २०७५}{१८००}$$

$=$ १७१०

∴ भोग्यकाल = २८५ पल

$=$ ४ घड़ी ४५ पल

अर्थात् सूर्योदयसे ४ घड़ी ४५ पलतक कर्क राशि उदय होती रहेगी। फिर सिंह राशिका उदय आरम्भ होगा।

इष्टकाल	१६	घड़ी	१५	पल
कर्कका भोग्यकाल	४	”	४५	”
अंतर	११	”	३०	”
सिंहका उदयकाल	५	”	३६	”
अंतर	५	”	५४	”
कन्याका उदयकाल	५	”	३३	”
अंतर			२१	पल।

यही तुलाका गत काल है।

† यदि उदयासुकी जगह उदयकाल पलमें लिखा जाय तो गणनामें सरलता होगी परन्तु कुछ स्थूलता आ जायगी।

इसलिए इष्टकालमें तुला राशि २१ पल तक उदय हो चुकी है और ५ घड़ी २१ पल तक और उदय होगी क्योंकि तुलाका उदयकाल प्रयागमें ५ घड़ी ४२ पल है। इसलिए इष्टकालमें तुला राशि पूर्व क्षितिजमें लगी हुई है अर्थात् लग्न है। यह जाननेके लिए कि तुलाका कौन विन्दु लग्न है फिर अनुपातसे काम लेना होगा। क्योंकि जब ५ घड़ी ४२ पल अर्थात् ३४२ पलमें तुलाके ३० अंश उदय होते हैं। तब २१ पलमें कितने उदय हो चुकेंगे।

३४२ : २१ : : ३० : तुलाका गतांश

$$\therefore \text{तुलाका गतांश} = \frac{२१ \times ३०}{३४२} = १^\circ ५०' ३१''$$

$$= १^\circ ५१'$$

$\therefore$ सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पलपर $६^{रा} १^\circ ५१'$ लग्न है। यहां $१^\circ ५१'$ उदित राशियोंमें जोड़ा गया है।

२री रीति—

यदि यह जानना हो कि सूर्योदयसे ५२ घड़ी १० पलपर क्या लग्न है तो अगले दिनके सूर्योदयके गतांशसे काम लेनेमें अधिक सुविधा होगी।

इष्टकालसे अगले सूर्योदयका समय

= ६० घड़ी – ५२ घड़ी १० पल

= ७ घड़ी ५० पल

अगले सूर्योदय कालमें सूर्यका निरयन भोगांश

$$= ३^{रा} ५^\circ १' ६'' + ५७' २१''$$

$$= ३^{रा} ५^\circ ५८' २७''$$

६० घड़ीमें सूर्यकी गति = ५७′ २१″

$\therefore$ ७$\frac{१}{२}$ " " = ७′ १०″ ८‴

२० पलमें " = १९″ ७‴

$\therefore$ ७ घड़ी ५० पलमें " = ७′ २९″

$\therefore$ इष्टकालमें सूर्यका निरयन भोगांश

$$= ३^{रा} ५^\circ ५८' २७'' - ७' २९''$$

$$= ३^{रा} ५^\circ ५१'$$

$\therefore$ इष्टकालमें कर्क राशिमें सूर्यका गतांश $५^\circ ५१' = ३५१'$

$$\text{इसलिए पहलेकी तरह गतासु} = \frac{३५१ \times २०७५}{१८००}$$

$$= ४०५$$

$\therefore$ गतकाल = ६७ पल

= १ घड़ी ७ पल

सूर्योदय होनेमें	७ घड़ी ५० पल है
सूर्योदय से	१ घड़ी ७ पल पहले कर्कका आरंभ होगा
अंतर	६ घड़ी ४३ पल
मिथुनका उदयकाल	५ घड़ी ३५ पल
अंतर	१ घड़ी ८ पल

$\therefore$ इष्टकालमें पूरे वृषके उदय होनेमें १ घड़ी ८ पल शेष है। परन्तु वृषके ३०° या १८००′ का उदय २६१ पलमें होता है।

$\therefore$ २६१ : ६८ : : १८०० : लग्नका भोग्यांश

$$\therefore \text{लग्नका भोग्यांश} = \frac{६८ \times १८००}{२६१}$$

$$= ४२१'$$

$$= ७^\circ १'$$

और वृषका भुक्तांश (गतांश) $= ३०^\circ - ७^\circ १'$

$= २२^\circ ५९'$

∴ इष्टकालका लग्न $= १^{रा} २२^\circ ५९'$

यहां अन्तिम लब्धि घटाई गयी है।

इस संबंधमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि राशियों-के उदयासु अथवा उदयकाल नाक्षत्रकालमें प्रकट किये जाते हैं और इष्टकाल धूपघड़ीके अनुसार जाना जाता है इसलिये यह सावन कालमें होता है (देखो पृ० ११, १२ और ३१०)।

१ सावन दिन = ६० सावन घड़ी

= २१६५९·१४ असु

= ३६१० पल (नाक्षत्र) स्थूल रूपसे

= ६० घड़ी १० पल (नाक्षत्र)

∴ ६ सावन घड़ी = ६ नाक्षत्र घड़ी + १ नाक्षत्र पल

जिससे सिद्ध होता है कि सावन कालको नाक्षत्र कालमें बदलना हो तो प्रति ६ सावन घड़ियोंके लिए १ पल और बढ़ा देनेसे नाक्षत्र काल आ जाता है।

परन्तु इष्टकालका स्पष्ट सूर्य निकालकर लग्नकी गणना करनेमें यह अन्तर नहीं पड़ता इसलिये सूर्य-सिद्धान्तका नियम बिलकुल शुद्ध है क्योंकि जब इष्टकालका स्पष्ट सूर्य निकाल लिया जाता है तब प्रश्न यह रहता है कि उस विन्दुसे जिस जगह सूर्य इष्टकालमें है क्रान्तिवृत्तके उदय-विन्दु तक जो क्षितिजमें लगा रहता है क्या अन्तर है। क्रान्तिवृत्तका वह भाग जो तात्कालिक या इष्टकालिक सूर्य और क्रान्तिवृत्तके उदय-विन्दुके बीचमें है जितने नाक्षत्र कालमें उदय होता है उतने ही सावन कालमें सूर्य सूर्योदय कालके स्थानसे इष्टकाल-के स्थान तक पहुँचता है। हां यदि यह जानना हो कि सूर्यो-दय कालसे इष्टकाल तक कितना नाक्षत्र काल बीता, तब यह गणना करनी पड़ेगी कि सूर्योदय कालमें क्रान्तिवृत्तका जो विन्दु उदय हो रहा था उससे इष्ट कालिक उदय-विन्दु तकके उदयासु क्या है। क्रान्तिवृत्तका सूर्योदय कालिक विन्दु इष्ट-कालमें सूर्यसे कुछ पच्छिम हो जाता है क्योंकि इष्टकालतक सूर्य-कुछ पूरब हट जाता है। इस बातका विचार उस समय अवश्य करना पड़ेगा जब कि उदयकालिक सूर्यके निरयन भोगांशसे ही इष्टकालका लग्न निकालना हो। नीचे इस रीति-से भी लग्न जाननेका उदाहरण दिया जाता है:—

३री रीति—

सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पल पर लग्न क्या है ?

उदयकालिक सूर्यका निरयन भोगांश $= ३^{रा} ५^\circ १' ६''$

∴ कर्कका भोग्यांश $= ३०^\circ - ५^\circ १' = २४^\circ ५९' = १४९९'$

१८०० : १४९९ :: २०७५ : भोग्यासु

$$\therefore \text{भोग्यासु} = \frac{१४९९ \times २०७५}{१८००} = १७२८ = २८८ \text{ पल}$$

१६ घड़ी १५ पल धूपघड़ीके अनुसार होता है इसलिए यह सावन कालकी इकाईमें है।

सावन	नाक्षत्र
६ घड़ी =	६ घड़ी १ पल

∴ १६ घड़ी १५ पल = १६ घड़ी १८ पल (स्थूल रूप से)

अब इसमें कर्कके भोग्यासु तथा सिंह, कन्याके उदयासु क्रमशः पूर्ववत् घटाने चाहिये।

१६ घड़ी १८ पल

कर्कका भोग्यकाल ४ घड़ी ४८ पल

अन्तर ११ घड़ी ३० पल

सिंहका उदयकाल ५ " ३६ पल

अन्तर ५ घड़ी ५४ पल

कन्याका उदयकाल ५ " ३३ "

तुलाका गतकाल २१ पल

इसके बादकी गणना पहलेकी ही तरह है।

इससे सिद्ध होता है कि चाहे तात्कालिक सूर्यका निरयन भोगांश जानकर सावनकालको ही नाक्षत्रकाल समझकर काम निकाला जाय अथवा उदयकालिक सूर्यके निरयन भोगांश जानकर इष्टकालिक सावनकालको नाक्षत्रकालमें बदलकर काम निकाला जाय दोनोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हां सावनकालसे नाक्षत्रकाल बनाकर काम निकालनेमें कुछ सुगमता होती है।

इस रीतिमें प्रत्येक राशिका उदयकाल इष्टकालमें घटाना पड़ता है। यदि ४७०वें पृष्ठकी सारिणीके ६वें स्तम्भसे काम लिया जाय तो और भी सुबिधा हो सकती है।

सूर्योदय कालमें कर्कका भोग्यकाल = ४ घड़ी ४८ पल

परन्तु कर्कका उदयकाल = ५ घड़ी ४६ पल

दोनोंका अन्तर = ० घड़ी ५८ पल

∴ सूर्योदय कालमें कर्कका गतकाल = ० घड़ी ५८ पल

निरयन मेषके आदिसे मिथुनके अन्त तकका उदयकाल = १४ घड़ी ३० पल

∴ सूर्योदयकालमें क्रान्तिवृत्तके उदित भागका उदयकाल = १५ घड़ी २८ पल

इष्टकाल १६ घड़ी १८ पल

इष्टकालमें क्रान्तिवृत्तके उदित भागका उदयकाल = ३१ घड़ी ४६ पल

जिससे कन्या तकका उदयकाल घट सकता है क्योंकि वह ३१ घड़ी २५ पल है

∴ तुलाका गतकाल = २१ पल

अर्थात् इष्टकालमें तुला राशि लग्न है। तुला राशिका कौन बिन्दु लग्न है यह जाननेके लिए पहलेकी तरह आगेकी क्रिया भी करनी चाहिए।

भास्कराचार्यने सायन सूर्यसे लग्न साधनकी रीति बतलाती है जो अधिक शुद्ध है क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि किसी राशिके ३० अंशके प्रत्येक अंश समानकालमें उदय नहीं होते इसलिए उचित यह है कि प्रत्येक अंशके उदयासु अलग अलग जाने जाँय। परन्तु यह काम कष्टप्रद है इसलिए यदि प्रत्येक अंशका उदयकाल समान समझकर अनुपातसे काम लिया जाय जैसा कि सब करते हैं तो लग्नकी राशिमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा हां राशिके उदय-विंदुके निश्चय करनेमें तनिकसा अन्तर पड़ जायगा। इसलिए यदि लग्नका नवांश या द्वादशांश शुद्धतापूर्वक जानना हो तो सायन सूर्यसे ही पूर्ववत् काम लेना चाहिए। ऐसी दशामें अयनांशका संस्कार करनेपर निरयन लग्नका ज्ञान होगा।

मध्य लग्न जाननेकी रीति—

प्राक्पश्चान्नतनाडीभिस्तस्माल्लङ्कोदयासुभिः।
भानौक्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदाभवेत् ॥४८॥

अनुवाद—(४८) पूर्व या पश्चिम नतकाल, तात्कालिक सूर्य और लंकाके उदयासुओंसे तात्कालिक सूर्य और याम्योत्तर वृत्तकेबीचके क्रान्तिवृत्तके खंडको जान लो। पूर्व नतकाल हो तो इसको तात्कालिक सूर्यसे घटा दो अन्यथा जोड़ दो तो मध्यलग्न ज्ञात हो जायगा।
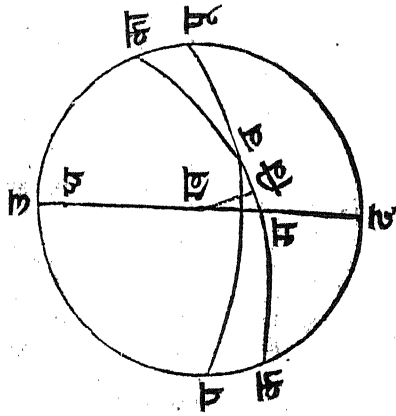
चित्र ६३

उ, प, द, पू=प्रयागके क्षितिजवृत्तके उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व बिन्दु।

क व का=क्रान्तिवृत्त।

उ ध ख म द=याम्योत्तरवृत्त।

का=उदयलग्न।

क=अस्तलग्न।

म=मध्य या दशमलग्न।

व=वसन्त सम्पात।

वि=वित्रिभ लग्न।

ख=खस्वस्तिक।

विज्ञान भाष्य—क्रान्तिवृत्तका जो विन्दु याम्योत्तरवृत्तपर होता है वही मध्यलग्न या दशमलग्न (Culminating point) कहलाता है। क्रान्तिवृत्तका जो विन्दु खस्वस्तिकसे अत्यन्त निकट रहता है उसे वित्रिभ लग्न कहते हैं। उदयलग्नमें ३ राशि घटानेसे अथवा 'अस्तलग्नमें तीन राशि जोड़नेसे वित्रिभलग्न ज्ञात होता है।

लंकामें राशियोंके उदय होनेमें जितना समय लगता है उतनाही समय उनके याम्योत्तरवृत्तके उल्लंघन करनेमें भी लगता है। यह सब स्थानोंके लिए वही होता है। जैसे निरयन मेष राशिका उदयांश लंकामें २६°१८′ है। इसलिए लंकामें मेषके उदयासु १७५८ हुए। इतने ही समयमें मेषराशि सब स्थानोंमें याम्योत्तरवृत्तका उल्लंघन करता है। इसी तरह अन्य राशियोंके बारेमें समझना चाहिए।

इसका कारण यह है कि लंकामें किसी राशिका उदयांश विषुवद्वृत्तका वह खंड है जिसके उदय होनेमें उतना ही समय लगता है जितने समयमें वह राशि क्षितिजके ऊपर आती है। विषुवद्वृत्तके इस खंडको याम्योत्तर उल्लंघन करनेमें भी इतना ही समय लगता है। इसलिए वह राशि याम्योत्तरके उल्लंघन करनेमें भी इतना ही समय लेगी।

उदाहरण—सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पल और ५२ घड़ी १० पल उपरान्त कौन कौन मध्यलग्न होंगे जब कि सूर्योदयकालमें सूर्यका निरयन भोगांश ३रा५°१′६″ और सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है?

प्रथम खण्ड—

पहले यह जानना होगा कि सूर्योदयकालसे १६ घड़ी १५ पलपर नतकाल क्या है अर्थात् इस समयके कितना पीछे या

पहले ठीक मध्याह्न होगा। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि सूर्योदयसे कितनी घड़ी, पलपर मध्याह्न होगा। इसके लिए चरप्राणकी गणना करनी होगी। परन्तु चरज्या सूर्यकी क्रान्ति और स्थानके अक्षांशपर अवलम्बित है। इसलिए पहले यही जानना चाहिए कि सूर्योदयकालमें सूर्यकी क्रान्ति क्या है।

सूर्यका निरयन भोगांश=३रा५°१'६"

अयनांश = २२°४१'

∴ सूर्यका सायन भोगांश = ३रा२७°४२'=११७°४२'

∴ क्रान्तिज्या = ज्या ११७°४२' × ज्या २३°२७'

= ज्या (१८० — ११७°४२) × ज्या २३°२७'

= ज्या ६२°१८' × ज्या २३°२७'

= ·८८५४ × ·३९७६

= ·३५२३

∴ क्रान्ति = २०°३८' उत्तर

∴ चरज्या = स्परे २०°३८' × स्परे २५°२५'

= ·३७६६ × ·४७५२

= ·१७९०

∴ चरांश = १०°१८'=६१८'

∴ चरकाल = ६१८ असु = १०३ पल = १ घड़ी ४३ पल

∴ दिनार्द्धमान = १५ घड़ी + १ घड़ी ४३ पल

= १६ घड़ी ४३ पल

अर्थात् सूर्योदयसे १६ घड़ी ४३ पलपर ठीक मध्याह्न होगा।

परन्तु इष्टकाल १६ घड़ी १५ पल है जिस समय सूर्यका निरयन भोगाश ३रा५°१६'३८" अथवा ३ ५°१७' है (देखो ४५-४७ श्लोकोंका विज्ञान भाष्य)

इसलिए पूर्व नतकाल = २८ पल = १६८ असु

सूर्य कर्कराशिमें है जिसके लंकाके उदयासु १८३३ हैं (सारिणी के ६ठें स्तम्भके मानको कलाओंमें लिखनेसे असुओं-की संख्या आ जाती है)। अब यह देखना है कि जब १८३३ असुओंमें पूरी कर्कराशि अर्थात् १८०० कला याम्योत्तरवृत्तको उल्लंघन करती है तब १६८ असुओंमें कर्कराशिका कौन भाग उल्लंघन करेगा।

१८३३ : १६८ :: १८०० : इष्ट भाग।

$$\therefore \text{इष्टभाग} = \frac{१६८ \times १८००}{१८३३}$$

= १६५'

= २°४५'

यही याम्योत्तरवृत्त और सूर्यके बीचका क्रान्तिवृत्तका खंड है। परन्तु सूर्य ३रा५°१७' पर है। इसलिए ३रा५°१७' — २°४५' =३रा२°३२' याम्योत्तर लग्न है।

दूसरा खण्ड—

जब इष्टकाल ५२ घड़ी १० पल होगा तब पश्चिम नतकाल

= ५२ घड़ी १० पल — १६ घड़ी ४३ पल

= ३५ घड़ी २७ पल

अर्थात् मध्याह्नके उपरान्त ३५ घड़ी २७ पलपर सूर्योदयसे ५२ घड़ी १० पल बीता रहेगा। इस समय सूर्यका निरयन भोगांश=३रा५°५१'

इसलिए कर्क राशिका भोगांश=२४°९'

जब पूरी कर्कराशि १८३३ असुओंमें याम्योत्तरवृत्तका उल्लंघन करती है तब इसकी २४°९' कितने असुओंमें उल्लंघन करेगी।

१८०० : १४४९ :: १८३३ : भोग्यांशका उल्लंघनकाल

$\therefore$ भोग्यांशका उल्लंघनकाल $= \dfrac{१४४६ \times १८३३}{१८००}$

= १४७६ असु

= २४६ पल

= ४ घड़ी ६ पल

अब पश्चिम नतकाल = ३५ घड़ी २७ पल

मध्याह्नके बाद कर्कके उल्लंघनमें	४ घड़ी ६ पल लगेगा
अन्तर	३१ घड़ी २१ पल
सिंहका यामोत्तर उल्लंघन	४ घड़ी ४२ पलमें होता है
अन्तर	२६ घड़ी ३६ पल
कन्याका यामोत्तर उल्लंघन	४ घड़ी ३७ पलमें होता है
अन्तर	२२ घड़ी २ पल
तुलाका यामोत्तर उल्लंघन	४ घड़ी ५३ पलमें होता है
अन्तर	१७ घड़ी ६ पल
वृश्चिकका यामोत्तर उल्लंघन	५ घड़ी १७ पलमें होता है
अन्तर	११ घड़ी ५२ पल
धनुका यमोत्तरउल्लंघन	५ घड़ी २५ पलमें होता है
अन्तर	६ घड़ी २७ पल
मकरका यामोत्तर उल्लंगन	५ घड़ी ५॥ पलमें होता है
अन्तर	१ घड़ी २१॥ पल

$\therefore$ कुम्भ राशि यामोत्तर वृत्तपर लग्न है। क्योंकि अंतिम अन्तरसे कुम्भ राशिका यामोत्तर उल्लंघन काल नहीं घटता है इसलिए यही अशुद्ध राशि है। अब यह देखना है कि इसका कौन विन्दु यमोत्तरवृत्तपर है।

कुम्भका यामोत्तर उल्लंघन काल = ४ घड़ी ४२ पल

= १६६४ असु

१ घड़ी २१॥ पल = ८१॥ पल = ४८६ असु

इसलिए जब १६६४ असुओंमें १८०० कलाका उल्लंघन होता है तब ४८६ असुओंमें कितना होगा।

१६६४ : ४८६ : : १८०० : गतांश

$\therefore$ गतांश $= \dfrac{४८६ \times १८००}{१६६४} = ५२०' = ८^\circ ४०'$

$\therefore$ कुम्भ राशिका $८^\circ ४०'$ यामोत्तर उल्लंघन कर चुका।

$\therefore$ मध्यम या दशम लग्न = $१०^{रा} ८^\circ ४०'$

स्पष्ट सूर्य और लग्नसे समय जानना—

भोग्यासुनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ।
संपिण्डयान्तरलग्नासूनेवं स्यात्काल साधनम् ॥४६॥
सूर्यादूने निशाशेषे लग्नेऽर्कादधिके दिवा ।
भचक्रार्धयुताद्भानोरधिकेऽस्तमयत्परम् ॥५०॥

अनुवाद—(४६) लग्न और स्पष्ट सूर्यकी राशियोंमें जो कम हो उसके भोग्यासुओं और जो अधिक हो उसके भुक्तासुओं को जोड़कर दोनोंके बीचमें जो पूरी राशियां हों उनके उदयासुओंको भी जोड़ लो। इसी योगफलसे इष्टकाल जाना जाता है। (५०) रात्रि कुछ शेष रहनेपर अर्थात् मध्य रात्रिके पीछे और सूर्योदयके पहिले सूर्यकी राशिसे लग्नको राशि कम होती है, सूर्योदयके पीछे दिनमें सूर्यकी राशि लग्नकी राशिसे कम होती है और सूर्यास्तके पीछे सूर्यको राशिमें ६ राशि जोड़नेपर भी लग्नकी राशि अधिक होती है।

इति त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्यायका अनुवाद समाप्त हुआ।

विज्ञान भाष्य—इष्टकाल और उसके स्पष्ट सूर्यसे लग्न जाननेकी जो रीति ४५-४७ श्लोकोंमें दी गयी है उसीकी विलोम (उलटी) ४८-५० श्लोकोंमें बतलायी गयी है। इसलिए इसकी उपपत्ति समझानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। दिनमें सूर्यकी राशिसे उदय लग्न आगे होती है इसलिए सूर्यकी राशि लग्नसे कम होती है। मध्य रात्रिके बाद उदय लग्नके आगे सूर्य रहता है इसलिए उस समय लग्न सूर्यसे कम होता है। सूर्यास्तके समय उदय लग्न सूर्यसे ठीक ६ राशि आगे रहती है इसलिए इस समय उदय लग्न ६ राशि युक्त स्पष्ट सूर्य (सषड्भ सूर्य) से अधिक होती है।

इस नियमसे मध्यरात्रिके पीछेका जो इष्टकाल आता है वह उस समयसे सूर्योदयतकका समय होता है और दिनमें या सूर्यास्तके बाद जो इष्टकाल होता है वह सूर्योदयसे उस समयतकका काल होता है। यह नियम एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा :—

उदाहरण—सूर्योदयकालका स्पष्ट सूर्य $३^{रा}५^{\circ}१'६''$, स्पष्ट दैनिक गति $४७'२१''$ है। प्रयागमें किस समय उदय लग्न $६^{रा}१^{\circ}५१'$ और $१^{रा}२२^{\circ}४६'$ होगी ?

पहिला खंड—

यहाँ उदय लग्न स्पष्ट सूर्यसे अधिक है इसलिए सूर्यकी राशिके भोग्यासु और लग्नकी राशिके भुक्तासुओंको जोड़ना चाहिए। इन भोग्यासु और भुक्तासुओंको पहलेकी तरह जानना चाहिए—

कर्कका भोग्यांश $= २४^{\circ}५८'५४'' = २४^{\circ}५६'$

तुलाका भुक्तांश $= १^{\circ}५१'$

$\therefore$ कर्कका भोग्यकाल = २८५ पल

और तुलाका भुक्तकाल = २१ पल

दोनोंका जोड़ = ३०६ पल = ५ घड़ी ६ पल

कर्क और तुलाके बीचमें सिंह और कन्या हैं जिनमें

सिंहका उदयकाल = ५ घड़ी ३६ पल

कन्याका उदयकाल = ५ घड़ी ३३ पल

कुलका योग = १६ घड़ी १५ पल

दूसरा खंड—

यहां उदय लग्न सूर्यकी राशिसे कम है। इसलिए उदय लग्नके भोग्यासुओंको सूर्यकी राशिके भुक्तासुओंमें जोड़ना चाहिए। इनके मान पहलेकी तरह जानना होता है। जिस समय लग्न $१^{रा}२२^{\circ}४६'$ होगी वह मध्यरात्रिके बादका समय है इसलिए अगले सूर्योदयके स्पष्ट सूर्यके भुक्तासुओंसे काम लेना चाहिये।

इसी दिनके सूर्योदय कालका स्पष्ट सूर्य $= ३^{रा}५^{\circ}१'६''$

स्पष्ट दैनिक गति $= ४७'२१''$

$\therefore$ अगले दिनके सूर्योदयकालका स्पष्ट सूर्य $= ३^{रा}५^{\circ}४८'२७''$

$= ३^{रा}५^{\circ}४८'$ स्थूलता

$\therefore$ सूर्यका भुक्तांश $= ५^{\circ}४८' = ३४८'$

लग्नका भोग्यांश $= ३०^{\circ} - २२^{\circ}४६' = ७^{\circ}१' = ४२१'$

$$\text{सूर्यके भुक्तासु} = \frac{३४८ \times २०७५}{१८००}$$

$$= ४११$$

$$= ६८ \text{ पल}$$

$$\text{लग्नका भोग्यकाल} = \frac{४२१ \times २६१}{१८००}$$

$$= ६८ \text{ पल}$$

∴ सूर्यका भुक्तकाल और लग्नका भोग्यकाल=६९ + ६८ पल
=२ घड़ी १७ पल

सूर्य और लग्नके बीच मिथुन राशिका उदयकाल
=५ घड़ी ३५ पल

दोनोंका योग =७ घड़ी ५२ पल

इसलिए सूर्योदय होनेमें ७ घड़ी ५२ पल रह गया है।

लग्नसे समय जाननेकी रीति तभी व्यवहारमें लायी जा सकती है जब राशि और नक्षत्रोंकी पहचान अच्छी तरह हो। इसलिए यह आवश्यक है कि राशि, नक्षत्र तथा अन्य प्रसिद्ध तारोंकी पूरी जानकारी हो। सूर्यसिद्धान्तके नक्षत्र ग्रह प्रत्यधिकार नामक ८वें अध्यायमें कुछ नक्षत्रों और तारोंकी चर्चा है इसलिए वहीं यह भी बतलाया जायगा कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तारे कौन हैं जिनसे रात्रिमें समयका ज्ञान सहज ही हो सकता है।

यहां केवल यह बतला देना पर्याप्त है कि मध्य लग्नसे समय जाननेमें अधिक सुविधा होती है। यदि यह मालूम हो कि मध्याह्नकालमें सूर्यका विषुवांश क्या था और रात्रिमें कौन तारा जिसका विषुवांश ज्ञात है यामोत्तरवृत्तपर है तो यह सहज ही जाना सकता है कि मध्याह्नसे कितना समय बीता है क्योंकि ताराके विषुवांशसे सूर्यके विषुवांशको घटानेपर जो अन्तर कलाओंमें होता है उतने ही असुओंमें वह तारा मध्याह्नके उपरान्त यामोत्तर वृत्तपर आता है।

यदि किसी तारेका विषुवांश न ज्ञात हो तो केवल क्रान्तिवृत्तके तारा समूहोंको पहचान लेनेसे भी समयका स्थूल ज्ञान हो सकता है। इसके लिए सूर्य किस नक्षत्रपर है यह भी जानना आवश्यक होता है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि क्रान्तिवृत्तके २७वें भागको नक्षत्र कहते हैं और पूरा क्रान्तिवृत्त एक नाक्षत्र दिनमें पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ जान पड़ता है इसलिए एक नक्षत्र ६०/२७ घड़ी = २ २/९ घड़ी या सवा दो घड़ीमें यामोत्तर उल्लंघन करता है अथवा ९ नक्षत्र २० घड़ी या ८ घंटेमें यामोत्तर उल्लंघन करता है। इस प्रकारकी गणनासे जो समय जाना जायगा उसमें और यथार्थ समयमें आध घंटेसे अधिक अन्तर नहीं पड़ सकता।

उदाहरण—सूर्य पुनर्वसु नक्षत्रमें है तो किस समय श्रवण नक्षत्र यामोत्तरवृत्तपर होगा?

३११-३१२ पृष्ठकी नक्षत्र सारिणीमें पुनर्वसु ७वां नक्षत्र और श्रवण २२वां नक्षत्र है। इसलिए इन दोनोंमें १५ नक्षत्रोंका अन्तर है।

९ नक्षत्रोंका अन्तर २० घड़ी या ८ घंटेमें पड़ता है।
६ " " १३ १/३ " या ५ १/३ " "
∴ १५ " " ३३ १/३ " या १३ १/३ " "

∴ मध्याह्नसे १३ १/३ घंटे पीछे अथवा मध्यरात्रिसे १ १/३ घंटेपर सवा बजे रात्रिमें श्रवण नक्षत्र यामोत्तरवृत्तपर होगा।

आजकल समयका ज्ञान धूप घड़ीसे नहीं होता वरन् कमानीके बलपर चलनेवाली घड़ियोंसे होता है जिसका समय धूप घड़ीसे कुछ भिन्न होता है इसलिए जो लोग आजकलकी प्रचलित घड़ियोंसे लग्नकी गणना करके फलित ज्योतिषके फल बतलाते हैं उनको लग्नका ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता। काशीके महामहोपाध्याय बापूदेवजी शास्त्रीके अतिरिक्त अन्य पंचांग ऐसे देखनेमें नहीं आये जिनमें इस बातका अच्छा विवेचन है। इसलिए यहां यह बतलाना बहुत आवश्यक है कि धूप घड़ी और आजकलकी कमानीदार घड़ियोंमें परस्पर क्या सम्बन्ध है।

स्पष्टकाल, मध्यमकाल और काल समीकरण

मध्यमाधिकार पृष्ठ ११-१२ में बतलाया गया है कि किसी तारेके उदय होनेके समयसे उसके फिर उदय होनेतकके समयको नाक्षत्र दिन और सूर्यके एक उदयसे लेकर दूसरे उदयतकके समयको सावन दिन कहते हैं। परन्तु उदय होनेका समय ठीक ठीक जानना बड़ा कठिन होता है क्योंकि इस कामके लिए ऐसा क्षितिज होना चाहिए जहां वृक्ष इत्यादि न हों जो सब जगहके लिए प्रायः असम्भव है क्योंकि ऐसा मैदान साधारणतः बहुत कम मिलता है जहां कई कोसतक पूर्व या पच्छिम दिशामें कोई वृक्ष न हो। यदि ऐसा क्षितिज भी मिल जाय तो प्रकाशकी किरणोंके झुक जानेसे सूर्य या तारेका उदय उचित समयसे कुछ पहले ही हो जाता है जिसका परिमाण वातावरणकी भिन्न भिन्न दशाओंके अनुसार घटता बढ़ता रहता है। इसलिए बहुत सूक्ष्म गणनाके लिए उदयकालसे समयकी परीक्षा नहीं की जाती वरन् मध्याह्नकालसे की जाती है। इसलिए सावन या नाक्षत्र दिनकी परिभाषा आजकल यों की जाती है :—

सूर्यका केन्द्र जिस क्षण याम्योत्तरवृत्तपर आता है उस क्षणसे लेकर फिर उसका केन्द्र जिस क्षण याम्योत्तरवृत्तपर आता है उस क्षणतकके समयको स्पष्ट सावन दिन कहते हैं।

वसंत सम्पात विन्दु जिस क्षण याम्योत्तरवृत्तपर आता है उस क्षणसे लेकर फिर यह विन्दु जिस क्षण याम्योत्तरवृत्तपर आता है उस क्षणतकके समयको नाक्षत्र दिन कहते हैं।

वसंत सम्पात विन्दुकी गति प्रायः समान होती है। इसलिए नाक्षत्र दिन सदा समान* होता है। परन्तु सावन दिनके परिमाणमें बहुत भेद पड़ जाता है क्योंकि सूर्यकी दैनिक गति निरंतर बदला करती है। इसका पता नाक्षत्रकाल सूचित करनेवाली घड़ियोंसे सहज ही लग सकता है। यदि घड़ी ऐसी बनाई जाय कि वसंत सम्पात विन्दुके याम्योत्तरवृत्तपर आनेके समय उसमें ठीक १२ बजा करे तो ऐसी घड़ीको नाक्षत्र घड़ी (घटिका यंत्र) कहते हैं। इस तरहके घटिका यंत्रसे सहज ही जाना जा सकता है कि सावन दिनोंके परिमाणोंमें कितना अन्तर हो जाता है। उदाहरणके लिए १९०९ ई० के चार सावन दिनोंका† परिमाण दिया जाता है :—

१९०९ ई०	(नाक्षत्रकाल)		
	घंटा	मिनट	सेकंड
१ली जनवरीके स्पष्ट मध्याह्नसे २री जनवरीके स्पष्ट मध्याह्न तकका समय	२४	४	२४·६
२री अप्रैलके स्पष्ट मध्याह्नसे ३री अप्रैलके स्पष्ट मध्याह्नतकका समय	२४	३	३८·५
३री जुलाईके स्पष्ट मध्याह्नसे ४थी जुलाईके स्पष्ट मध्याह्नतकका समय	२४	४	७·५
२री अक्टूबरके स्पष्ट मध्याह्नसे ३री अक्टूबरके स्पष्ट मध्याह्नतकका समय	२४	३	३७·६

इससे प्रकट है कि स्पष्ट सावन दिनका मान समान नहीं होता। १ली जनवरीके मध्याह्नसे दूसरी जनवरीके मध्याह्नतकके सावन दिनका मान दूसरी और तीसरी अप्रैलके सावन

* अयन विचलनके कारण वसन्त सम्पातका स्पष्ट स्थान मध्यम स्थानसे पूर्व या पच्छिम हो जाता है (देखो पृष्ठ ३६४)। परन्तु इससे नाक्षत्र दिनके परिमाणमें इतना कम अन्तर पड़ता है कि उसको नहींके समान समझ लेनेमें कोई हानि नहीं होती।

† Ball's Spherical Astronomy पृष्ठ २१५

दिनके मानसे ४६·४ सेकंड बड़ा होता है, इत्यादि। ऐसी घड़ी बनाना असम्भव है जो सूर्यकी गतिके अनुसार अपनी चाल घटाया बढ़ाया करे क्योंकि यांत्रिक बलसे चलनेवाली घड़ी सदा समान चालसे चलेगी। इसलिए ऐसी घड़ियोंसे जो समय जाना जाता है वह धूपघड़ीके समयसे भिन्न रहता है क्योंकि धूपघड़ीसे स्पष्ट सावन दिनका मान जाना जाता है जो प्रतिदिन बदलता रहता है। यदि नाक्षत्रकाल बतलानेवाली घड़ीसे काम लिया जाय तो लौकिक व्यवहारमें सुविधा नहीं होती। क्योंकि नाक्षत्रकालके २४घंटे सावन दिनके २४ घंटेसे ४ मिनटके लगभग छोटे होते हैं। इसलिए यदि आज सूर्यका याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ीमें ठीक १२ बजे होता है तो कल सूर्यका याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ीके १२ बजकर ४ मिनटपर होगा। इस तरह प्रतिदिन चार चार मिनट पीछे होते होते १५ दिनमें सूर्यका याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ीके १ बजे होगा, १ महीनेमें सूर्यका याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ीके २ बजे और दो महीनेमें नाक्षत्र घड़ीके ४ बजे होगा, इत्यादि। इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि सूर्यका उदय अस्त नाक्षत्र घड़ीके अनुसार दिनके किसी समय हो सकता है जो लौकिक व्यवहारके लिए उपयोगी नहीं हो सकता क्योंकि साधारणतः सूर्यके उदय अस्त और याम्योत्तरोल्लंघनसे ही समयका निश्चय करना सुगम होता है।

इस दुविधाको मिटानेके लिये ज्योतिषियोंने यह निश्चय किया है कि ज्योतिषके कामके लिए तो ऐसी ही घड़ियां काममें लायी जायं जिनसे नाक्षत्रकाल सूचित होता है परन्तु लौकिक व्यवहारवाली घड़ियां ऐसी हों जिनसे मध्यम सावन दिनके घंटे मिनट सेकंड अथवा घड़ी, पल सूचित हों। ऐसा करनेसे इन घड़ियोंका समय स्पष्ट सावन दिन सूचित करनेवाली धूप घड़ियोंसे कुछ भिन्न अवश्य रहता है परन्तु यह भिन्नता १६ मिनटसे अधिक नहीं बढ़ने पाती। मध्यम सावन दिनका मान कई वर्षोंके स्पष्ट सावन दिनोंका मध्यम मान (औसत) होता है। १६०६ ई० के ऊपर लिखे हुए चार दिनोंका मध्यम मान २४ घंटा ३ मिनट ५७·१ सेकंड होता है जो एक सावन दिनके मध्यम मानके बहुत निकट है। यदि कई वर्षोंके स्पष्ट सावन दिनोंके मानोंका मध्यम मान निकाला जाय तो एक मध्यम सावन दिन नाक्षत्रकालके २४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकंडके समान होता है। नीचेके उदाहरणसे स्पष्ट होगा कि मध्यम सावन दिनका मान वेधसे कैसे जाना जाता है :—

मध्यम सावन दिनका मान निश्चय करना—

१८३६ ई० की ४थी जुलाईके दिन जिस समय स्पष्ट सूर्यका केन्द्र याम्योत्तरवृत्तपर था उस समय इसका स्पष्ट विषुवांश (right ascension) ६ घंटा ५४ मिनट ७·०३ सेकंड था*। इसी प्रकार १८६० ई० की ४थी जुलाईके दिन याम्योत्तरोल्लंघनकालमें सूर्यके केन्द्रका स्पष्ट विषुवांश ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ सेकंड था। इससे मध्यम सावन दिनका मान निश्चय करो।

क्रमशः

---

* सूर्यके केन्द्रसे होता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद्वृत्तके जिस बिन्दुपर पहुंचता है उसका वसंत सम्पातसे जो अन्तर होता है उसे सूर्यके केन्द्रका विषुवांश कहते हैं। यह अंश, कला, विकला तथा घंटा, मिनट, सेकंड दोनोंमें प्रकट किया जाता है। १ अंश ४ मिनट या १० पलके समान होता है।
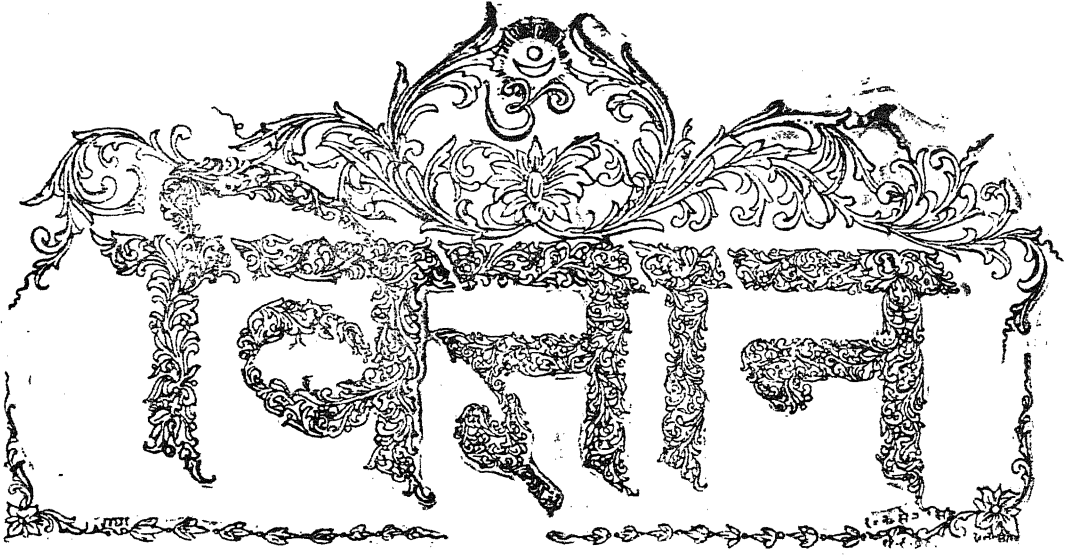
विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २२ { तुला और वृश्चिक संवत्, १९८२ { संख्या १, २

तत्वोंके हिन्दी नाम

[ले० डा० निहालकरण सेठी, डी. एस-सी.]

'विज्ञान'के मिथुन-कर्कके अंकमें श्रीसत्यप्रकाशजीने अपने परमाणु भार शीर्षक लेखमें तत्वोंके नामों और संकेतोंकी एक सारिणी दी है। उसके लिये लेखक समस्त हिन्दी संसारके धन्यवादके पात्र हैं क्योंकि बिना इस प्रकारके प्रयत्नके हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यकी रचना कठिन ही नहीं असम्भव है। ऐसे ही प्रयत्नोंके द्वारा इस विषयके अनेक प्रश्न हम लोगोंके सामने ऐसे रूपमें उपस्थित होते हैं कि उनपर विचार करके एक मत निश्चित करनेमें आसानी होती है। क्योंकि जबतक कोई प्रस्तावित शब्दावली सामने न हो हमें यह भलीभांति ज्ञात नहीं हो सकता कि किन किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा और किन किन सिद्धान्तोंपर कार्य करके वैज्ञानिक शब्दोंकी रचना हिन्दी भाषामें करनी होगी।

उक्त सारिणीमें ७८ तत्वोंके नाम दिये गये हैं। इक नामोंके दो मुख्य विभाग किये जा सकते हैं। एक तो वे नाम जो अंग्रेज़ी भाषासे ज्योंके त्यों अथवा कुछ विकृत रूपमें ले लिए गये हैं और दूसरे वे जो हिन्दी भाषाके शब्द हैं। पहिले प्रकारके शब्दोंकी संख्या लगभग ५५ है और दूसरे प्रकारके शब्दोंकी २३। अर्थात् प्रायः ७० प्रतिशत शब्द अंग्रेज़ी भाषासे लिये गये हैं। उक्त सारिणीमें दिये हुए तत्वोंके अतिरिक्त अभी कुछ और भी बाक़ी हैं जिनके नाम लेखकने निश्चित नहीं किये या जिनका अभी आविष्कार नहीं हुआ। सम्भवतः इन १४ तत्वोंके नाम भी अंग्रेज़ी भाषासे ही ले लिये जावेंगे। इस प्रकार समस्त

९२ तत्वोंमेंसे ६९ के अर्थात् ७५ प्रतिशतके नाम अंग्रेज़ी भाषाके हो जावेंगे। और केवल चौथाई शब्द हिन्दीके रहेंगे।

अब प्रश्न यह है कि इन अंग्रेज़ी शब्दोंका व्यवहार हिन्दी भाषाके लिये उचित है या नहीं। मुझे भय है कि बहुतसे सज्जन इस प्रश्नका तुरन्त यह उत्तर देंगे कि कदापि नहीं। क्योंकि इसमें प्रत्येक मातृभाषाके प्रेमीको अपनी पूज्य भाषाका अनादर जान पड़ता है और यह डर होता है कि कहीं धीरे धीरे उसपर भी वैदेशिक भाषाओंका प्रभुत्व न जम जावे। किन्तु यह माने बिना भी काम नहीं चलता कि हिन्दी भाषामें आधुनिक विज्ञानके उपयुक्त शब्दोंका अस्तित्व नहीं है। नवीन शब्द किसी न किसी प्रकार तो बनाने ही होंगे। बहुधा लोगोंका मत है कि हिन्दीकी माता संस्कृतसे ही नवीन शब्दोंकी रचना होनी चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि यह मत बहुत अंशतक युक्तिपूर्ण और व्यवहारोपयोगी है। यही क्यों, हमें यह कहनेमें भी संकोच नहीं कि बिना संस्कृत भाषाकी सहायताके हमारा काम कदापि नहीं चल सकता।

किन्तु विचारनेकी बात यह है कि क्या अन्य भाषाओंके शब्दोंका सर्वथा बहिष्कार किया जाय? क्या हम यह चेष्टा करें कि किसी अन्य भाषाका कोई शब्द भूलकर भी हिन्दी साहित्यमें घुसने न पावे? उर्दूके अनेक शब्द साधारण बोलचालमें आगये हैं और अंग्रेज़ीके भी रेल, इंजन, स्टेशन, पोस्टकार्ड, टिकट, बाइसिकल, मोटर इत्यादि सैकड़ों शब्द प्रचलित हो गये हैं और उन्हें सर्वसाधारण नित्यप्रति व्यवहार करते हैं। क्या साहित्यमें इनका प्रयोग न करना चाहिये? क्या इनके स्थानमें 'भाफगाड़ी' 'वाष्पयंत्र' 'विराम', 'कड़ापत्र', 'द्विचक्रिका', 'हवागाड़ी' इत्यादि शब्दोंका प्रचलित करनेका प्रयत्न आवश्यक है? जब साधारण अशिक्षित लोग भी घरमें 'थर्मामीटर' से परिचित हो गये हैं तब क्या उसके स्थानमें भी 'तापमापक' उन्हें सिखलाना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि बहुत कम ऐसे सज्जन होंगे जो उपर्युक्त अंग्रेज़ी शब्दोंका व्यवहार अनुचित समझते हों।

जब हम दूसरी भाषाओंकी ओर दृष्टि डालते हैं तब ज्ञात होता है कि मृतभाषाओंको छोड़कर संसारकी कोई भी जीवित भाषा ऐसी नहीं है जिसने सहर्ष अन्य भाषाओंके शब्दोंको ग्रहणकर अपना भंडार परिवर्धित न किया हो। स्वयं अंग्रेज़ी भाषामें लैटिन और ग्रीकको छोड़कर संस्कृत, अरबी, हिन्दी आदि अनेक भाषाओंके शब्द विद्यमान हैं और नित्य प्रति उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। हिन्दीमें ही अनेक शब्द अरबी फ़ारसीके मिल गये हैं और उनका अच्छेसे अच्छे साहित्यमें स्वच्छन्दतापूर्वक व्यवहार होता है।

वास्तवमें बात यह है कि भाषा मनुष्यके भावोंको प्रकट करनेका उपाय है। जिन जिन बातोंसे यह सरल और अधिक उपयोगी बनाई जा सके वे सभी बातें लाभदायक और उपादेय हैं। जिन जिन उपायोंसे उसमें नये नये भावोंको प्रगट करनेकी शक्तिकी वृद्धि हो वे सभी उसके लिये हितकर हैं। इस प्रश्नके साथ देश और जातिका अभिमान मिलाकर भाषाको ज्योंकी त्यों बनाये रखना कदापि उचित नहीं हो सकता। वह स्वदेश प्रेम झूठा है और वह जात्यभिमान मिथ्या है। उसके कारण हमारी उन्नतिमें बाधा होती है और हमें पग पगपर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।

यह तो हुई बहुत साधारण और नित्य प्रति व्यवहारमें आनेवाले शब्दोंकी बात। परन्तु वैज्ञानिक सिद्धान्तों और आविष्कारोंको व्यक्त करनेवाले पारिभाषिक शब्दोंके लिये तो यह और भी आवश्यक जान पड़ता है कि वे शब्द ज्योंके त्यों हिन्दी भाषामें सम्मिलित कर लिये जावें। इसका एक विशेष कारण है। ये किसी ख़ास भाषाके शब्द नहीं हैं। इनपर किसी भी जातिका कोई

विशेष अधिकार नहीं है। इङ्गलैंड, फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका और यहांतक कि जापानमें भी सर्वत्र इन्हीं शब्दोंका प्रयोग होता है। ये शब्द अन्तर्जातीय हैं। इनके प्रयोगसे किसी भाषाका अपमान नहीं समझा जाता और न किसीके स्वाभिमानमें किसी प्रकारका फ़र्क़ आता है।

ऐसे शब्दोंके अन्तर्जातीय होनेसे बहुत लाभ हैं। वैज्ञानिक उन्नतिके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि जितने नवीन आविष्कार जिस किसी देशमें भी हों उनका ज्ञान सर्वत्र फैल जाय और उनको वे सब लोग वैज्ञानिक खोजमें लगे हुए हैं अच्छी तरह समझ सकें। इसी कारण इस क्षेत्रमें काम करनेवालोंको अपनी मातृभाषाके अतिरिक्त एक दो और भाषायें सीखनी पड़ती हैं। जिनकी भाषा अंग्रेज़ी होती है उन्हें फ्रेंच और जर्मन भाषाओंका अभ्यास करना पड़ता है ताकि वे मूल आविष्कर्त्ताओंके लेख स्वयं पढ़ सकें। ऐसी दशामें स्पष्ट है कि पारिभाषिक शब्द सर्वत्र एकही प्रकारके होनेसे बहुत सुविधा होती है। विदेशी भाषाका बहुत थोड़ा ज्ञान होने पर भी लेखका मतलब समझनेमें बहुत कठिनाई नहीं होती। बहुधा भारतीय छात्र दो तीन महीनेके परिश्रमसे इतनी जर्मन या फ्रेंच सीख जाते हैं कि वैज्ञानिक पत्रिकाओंके लेख पढ़कर अच्छी तरह मतलब समझ लेते हैं।

एक बात और भी विचारने की है। ये पारिभाषिक शब्द ऐसे हो नहीं सकते जो साधारण बोलचालमें प्रचलित हों। अवश्य ही ये शब्द नये बनाये जावेंगे। तब स्पष्ट है कि चाहे संस्कृतकी सहायतासे बनाये जावें अथवा अंग्रेज़ी भाषासे लिये जावें सीखनेवालोंके लिये दोनों दशाओंमें उतनी ही कठिनाई है। संस्कृत जात शब्दोंके सीखनेमें कोई विशेष सुभीता नहीं। यथा ओषजन, उज्जन, हरिण आदि शब्दोंको सीखनेमें और आक्सिजन, हाइड्रोजन, क्लोरीन इत्यादिके सीखनेमें क्या फ़र्क़ हो सकता है? इसी प्रकार ज्या, कोज्या और साइन, कोसाइन हैं।

और जब प्रारम्भिक विज्ञानसे आगे बढ़कर कोई उच्च विज्ञानका अध्ययन करेगा और स्वयं भी वैज्ञानिक उन्नतिमें भाग लेनेकी इच्छा करेगा तब तो इन अन्तर्जातीय शब्दोंको सीखना ही पड़ेगा। क्योंकि बिना इनकी सहायताके संसारके अन्य किसी देशकी पत्रिकाओंका पढ़ना असम्भव है। अतः अन्तमें प्रत्येक व्यक्तिको दोनों ही प्रकारके शब्द सीखने पड़ेंगे। इससे लाभ क्या हुआ?

इन कारणोंसे स्पष्ट है कि यदि हम लोग यह नहीं चाहते कि हमारा वैज्ञानिक ज्ञान हिन्दी-संसारमें ही सीमित रहे, किन्तु यदि हम लोग सुविधाके साथ वैज्ञानिक क्षेत्रमें काम कर सकें, अन्य देशोंसे भी आगे बढ़नेका प्रयत्न करनेकी इच्छा रखते हैं तो हमें निःसंकोच इन अन्तर्जातीय शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये और संस्कृतके द्वारा नवीन शब्दोंकी रचनामें वृथा ही अपना समय और अपनी शक्तिका व्यय कदापि न करना चाहिये।

तत्वोंके नामोंकी रचनामें उक्त लेखक महाशयने इस सिद्धान्तको माना अवश्य है किन्तु पूरा नहीं। प्रथम तो यह कि उन्होंने अधिकांश अन्तर्जातीय शब्द ही ग्रहण किये हैं किन्तु न जाने किस कारण उन्होंने उनमें थोड़ा बहुत विकार करना आवश्यक समझा है। विकृत शब्द और उनके शुद्ध रूप नीचे दिये जाते हैं :—

विकृत	शुद्ध	अधिक विकृत	शुद्ध
ओषजन	आक्सिजन	क्रोम	क्रोमियम
ओसमम	ओसमियम	तुङ्गस्त	टंग्स्टन
कर्बन	कार्बन	स्रव	फ्लुओरीन
कादमियम	कैडमियम	ब्रम	ब्रोमीन
नत्रजन	नाइट्रोजन	मगन	मैग्नीशियम
नोबियम	नियोबियम	मांगल	मैंगनीज़
नौदियम	नियोडिमियम	मोलद	मोलिब्डिनम
प्रसेदियम	प्रसियोडिमियम	रूपद	रूबीडियम

विकृत	शुद्ध	अधिक विकृत	शुद्ध
भारियम	बेरियम	स्कंध	स्कैंडियम
यन्त्रण्यम	यटर्बियम	स्तंत्रम	स्ट्राँशियम
श्रीयम	सीरियम	स्फुर	फ़ासफ़ारस
सेलेनम	सिलीनियम	हिन्द्म	इन्डियम
रुथेनियम	रुथिनियम	हेल	हीलियम

दोनों प्रकारके शब्दोंकी तुलना करके पाठक स्वयं देखें कि इस विकारसे क्या लाभ हो सकता है और यह कहांतक उचित है। इस प्रकारके विकारके द्वारा यह तो हो नहीं सकता कि शब्द किसी भांति भी हिन्दीके अथवा संस्कृतके बन जावें। वे रहेंगे विदेशी ही। तब फिर वृथा ही उन्हें बिगाड़ कर अंतर्जातीय शब्दोंके समझनेमें अड़चन खड़ी क्यों करें? जिस लाभके लिये हमने अंग्रेज़ी शब्दका हिन्दी भाषामें व्यवहार करना उचित समझा वह लाभ ही हमें न हुआ तो उन शब्दोंको हमने लिया ही क्यों?

कुछ लोग कहते हैं कि बिना विकारके इन शब्दोंके उच्चारणमें हम लोगोंको कठिनाई है। मेरी समझमें यह ख़याल सर्वथा निर्मूल है। जब हम संस्कृतके क्लिष्टसे क्लिष्ट शब्दों और वाक्योंके उच्चा-से नहीं डरते तो इन शब्दोंमें ही हमें क्या दिक़्क़त हो सकती है। दो चार 'क़' 'ज़' इत्यादि अक्षर भी हिन्दी भाषामें प्रचलित हो ही गये हैं। इसलिए इनके लिखनेमें भी कोई कठिनाई नहीं हो हो सकती।

अब उन तत्वोंकी ओर ध्यान दीजिये जिनके लिए हिन्दी शब्दोंका प्रयोग किया गया है॥ इनमेंसे बहुत थोड़े तो ऐसे हैं जो प्रचलित शब्द हैं यथा गन्धक, ताम्र, पारद, लोह, सीस, स्वर्ण और सम्भवतः यशद और रजत। इन शब्दोंके व्यवहारसे अवश्य हिन्दी भाषा भाषियोंको कुछ सुविधा है।

किन्तु इनको छोड़कर और हिन्दी शब्दोंका प्रयोग किया गया है वे ये हैं:—

हिन्दी	अन्तर्जातीय	हिन्दी	अन्तर्जातीय
अञ्जन	एन्टीमनी	बंग	टिन
उज्जन	हाइड्रोजन	शर्म्म	जर्मेनियम
इन्द्र	इरिडियम	शैल	सिलिकन
खटिक	कैलशियम	श्याम	सीज़ियम
ग्राव	लीथियम	स्फट	अल्युमीनियम
टंक	बोरन	हरिण	क्लोरीन
ताल	आरसनिक	नैल	आयोडीन

मैं विनय पूर्वक पूछना चाहता हूं कि इन शब्दों-के प्रयोगसे क्या लाभ है? ये शब्द कोई प्रचलित शब्द नहीं कि जिनका अर्थ सर्वसाधारण समझ सकते हों। न यह ऐसे हैं कि जिनके मूल अर्थसे हमारा कोई काम चलता है और न ऐसे ही हैं कि जिनके सीखनेमें किसी प्रकारकी सुविधा है। विशेषकर टिन और अल्युमीनियमके लिये अन्य नामोंका प्रयोग करना तो किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता। इन सब शब्दोंके नये अर्थ तो हमें सीखने ही पड़ेंगे। फिर क्या कारण है कि इनके लिए भी अन्तर्जातीय शब्दोंका प्रयोग न करें? यदि हमारा निश्चय यही ठहरता कि हम किसी भी विदेशी शब्दका व्यवहार न करेंगे और समस्त तत्वोंके नाम हिन्दी संस्कृतके ही बनावेंगे तब तो और बात थी। किन्तु जब तीन चौथाई नाम अंग्रेज़ी रखनेके लिए हम तैयार हैं तब शेष थोड़ेसे नामोंके लिए हम क्यों आनाकानी करें?

और जो बात तत्वोंके नामोंके लिये ठीक है वही बात और भी अनेक वैज्ञानिक शब्दोंके लिए भी उतनी ही सत्य है। यथा अनेक प्रकारके नाप तौलोंकी इकाइयां। यदि संसार भर लम्बाईकी इकाईको सेन्टीमीटर कहता है तो हमें उसे शतांश मीटर कहनेसे क्या लाभ है? यदि संसार भरमें बिजलीका नाप वोल्ट और अम्पीयरके द्वारा होता है तो हमें क्या आवश्यकता है कि हम इनके लिये अन्य नामोंकी तलाश करें? इसी प्रकार इलैक्ट्रान ऐलफा और बीटा कण, एक्स और गामा किरणें

इत्यादि अनेक नाम हैं जिनमें परिवर्त्तन करना कदापि उचित नहीं हो सकता।

मुझे आशा है कि विद्वान लोग इस प्रश्नपर विचारकर अपनी सम्मति प्रकट करेंगे जिससे इस जटिल प्रश्नका शीघ्र ही निर्णय हो जाय और लेखकोंको व्यर्थ ही शब्द रचनाका कष्ट न उठाना पड़े।

तत्वोंका संविभाग

[ले०—श्री सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद]

प्राउटकी कल्पना

सन् १८१५ ई० में प्राउट नामक वैज्ञानिकने डाल्टनके परमाणुवादमें एक संशोधन करना आवश्यक समझा। परमाणुवादका यह विश्वास है कि भिन्न भिन्न तत्वोंके परमाणु एक दूसरेसे भिन्न हैं, तथा इन परमाणुओंके और सूक्ष्मतम विभाग नहीं हो सकते हैं। तत्ववेत्ता सदासे यह मानते आये हैं कि मूल-प्रकृतिके विकाससे ही सब तत्वोंका जन्म हुआ है, अतः यह परिणाम स्वभावतः निकाला जा सकता है कि एक तत्व दूसरे तत्वमें परिणत हो सकता है। यह भी अनुमान हो सकता है कि वास्तवमें मूल तत्व एक ही है और अन्य तत्व इस मूल तत्वके ही रूपान्तर हैं। इस दार्शनिक कल्पनाके आधारपर ही प्राउटने यह सिद्धान्त निकाला कि उज्जन ही मूलतत्व है क्योंकि इससे अधिक सूक्ष्म परमाणु भार वाला कोई तत्व वैज्ञानिक जगतमें ढूँढा नहीं जा सका है। अन्य तत्व इस तत्वसे ही बने हुए हैं। हेलका परमाणु भार ४ है अतः प्राउटके नियमके अनुसार यह उज्जनके ४ परमाणुओंसे मिलकर बना हुआ है। ओषजनका परमाणु भार १६ है अतः इसमें उज्जनके १६ परमाणु हैं। इसी प्रकार बेरीलियममें ६, सोडियममें २३ इत्यादि। प्राउटके इस सिद्धान्तके माननेमें बहुतसी आपत्तियां थीं। यदि बेरीलियममें ६ परमाणु उज्जनके हैं तो बेरीलियमके द्वारा उज्जनका निकालना सम्भव हो सकता है, पर उस समयके रसायन-संसारमें इस प्रकारका तत्व परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। पारदसे चाँदी और ताँबासे सोना निकालना असम्भव था। अतः प्राउटके इस सिद्धान्तको किसीने स्वीकार नहीं किया। दूसरी आपत्ति यह थी कि यदि अन्य तत्व उज्जनके रूपान्तर होंगे तो उनके परमाणु पूर्ण-संख्यामें होंगे क्योंकि उज्जनके परमाणुके टुकड़े विभाग नहीं किये जा सकते हैं। भारियमका परमाणु भार १३७·३७ है अतः प्राउटके नियमानुसार इसमें उज्जनके १३७·३७ परमाणु होने चाहियें पर उज्जनके परमाणुके टुकड़े न हो सकनेके कारण यह सम्भव नहीं है। प्राउटने अपने समर्थनमें यह कहा कि परमाणु भार सब पूर्ण संख्यामें ही होते हैं, यह हमारे दोषयुक्त साधनोंका फल है कि हमें ये परमाणु भार पूर्ण संख्यामें नहीं प्राप्त होते हैं। उसके कथनके अनुसार भारियमका पर० भा० १३७ या १३८ होगा। इसी प्रकार सीसका पर० भा० २०७·२ के स्थानमें २०७, खटिकका ४०·०७ के स्थानमें ४०, मांगलका ५४·६३ के स्थानमें ५५ इत्यादि होना चाहिये। पर भिन्न भिन्न साधनों द्वारा निकाले हुए परमाणु-भारोंने प्राउटके सिद्धान्तका समर्थन नहीं किया*। स्टास द्वारा निकाले हुए हरिणके परमाणु भार ३५·४६ ने इस सिद्धान्तका सर्वनाश कर दिया।

प्राउट अपने सिद्धान्त द्वारा यह भी प्रकट करना चाहता था कि भिन्न भिन्न तत्वोंके गुणोंमें जो भिन्नता पाई जाती है, उसका कारण उनमें स्थित उज्जनके परमाणुओंकी संख्या है। यदि बेरीलियमके ६ परमाणुओंमेंसे ५ परमाणु निकाल लिये जावें तो प्राप्त-तत्वमें हेलके गुण विद्यमान

---

* प्राउटके सिद्धान्तका विकसित रूप 'ऐलक्ट्रन सिद्धान्त' है जिसके द्वारा विद्युत्कणको आदि पदार्थ माना गया है।

इत्यादि अनेक नाम हैं जिनमें परिवर्त्तन करना कदापि उचित नहीं हो सकता।

मुझे आशा है कि विद्वान लोग इस प्रश्नपर विचारकर अपनी सम्मति प्रकट करेंगे जिससे इस जटिल प्रश्नका शीघ्र ही निर्णय हो जाय और लेखकोंको व्यर्थ ही शब्द रचनाका कष्ट न उठाना पड़े।

तत्वोंका संविभाग

[ले०—श्री सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद]

प्राउटकी कल्पना

सन् १८१५ ई० में प्राउट नामक वैज्ञानिकने डाल्टनके परमाणुवादमें एक संशोधन करना आवश्यक समझा। परमाणुवादका यह विश्वास है कि भिन्न भिन्न तत्वोंके परमाणु एक दूसरेसे भिन्न हैं, तथा इन परमाणुओंके और सूक्ष्मतम विभाग नहीं हो सकते हैं। तत्ववेत्ता सदासे यह मानते आये हैं कि मूल-प्रकृतिके निकाससे ही सब तत्वोंका जन्म हुआ है, अतः यह परिणाम स्वभावतः निकाला जा सकता है कि एक तत्व दूसरे तत्वमें परिणत हो सकता है। यह भी अनुमान हो सकता है कि वास्तवमें मूल तत्व एक ही है और अन्य तत्व इस मूल तत्वके ही रूपान्तर हैं। इस दार्शनिक कल्पनाके आधारपर ही प्राउटने यह सिद्धान्त निकाला कि उज्जन ही मूलतत्व है क्योंकि इससे अधिक सूक्ष्म परमाणु भार वाला कोई तत्व वैज्ञानिक जगतमें ढूँढा नहीं जा सका है। अन्य तत्व इस तत्वसे ही बने हुए हैं। हेलका परमाणु भार ४ है अतः प्राउटके नियमके अनुसार यह उज्जनके ४ परमाणुओंसे मिलकर बना हुआ है। ओषजनका परमाणु भार १६ है अतः इसमें उज्जनके १६ परमाणु हैं। इसी प्रकार बेरीलियममें ६, सोडियममें २३ इत्यादि। प्राउटके इस सिद्धान्तके माननेमें बहुतसी आपत्तियां थीं। यदि बेरीलियममें ६ परमाणु उज्जनके हैं तो बेरीलियमके द्वारा उज्जनका निकालना सम्भव हो सकता है, पर उस समयके रसायन-संसारमें इस प्रकारका तत्व परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। पारदसे चाँदी और ताँबासे सोना निकालना असम्भव था। अतः प्राउटके इस सिद्धान्तको किसीने स्वीकार नहीं किया। दूसरी आपत्ति यह थी कि यदि अन्य तत्व उज्जनके रूपान्तर होंगे तो उनके परमाणु पूर्ण-संख्यामें होंगे क्योंकि उज्जनके परमाणुके टुकड़े विभाग नहीं किये जा सकते हैं। भारियमका परमाणु भार १३७·३७ है अतः प्राउटके नियमानुसार इसमें उज्जनके १३७·३७ परमाणु होने चाहियें पर उज्जनके परमाणुके टुकड़े न हो सकनेके कारण यह सम्भव नहीं है। प्राउटने अपने समर्थनमें यह कहा कि परमाणु भार सब पूर्ण संख्यामें ही होते हैं, यह हमारे दोषयुक्त साधनोंका फल है कि हमें ये परमाणु भार पूर्ण संख्यामें नहीं प्राप्त होते हैं। उसके कथनके अनुसार भारियमका पर० भा० १३७ या १३८ होगा। इसी प्रकार सीसका पर० भा० २०७·२ के स्थानमें २०७, खटिकका ४०·०७ के स्थानमें ४०, मांगलका ५४·६३ के स्थानमें ५५ इत्यादि होना चाहिये। पर भिन्न भिन्न साधनों द्वारा निकाले हुए परमाणु-भारोंने प्राउटके सिद्धान्तका समर्थन नहीं किया*। स्टास द्वारा निकाले हुए हरिणके परमाणु भार ३५·४६ ने इस सिद्धान्तका सर्वनाश कर दिया।

प्राउट अपने सिद्धान्त द्वारा यह भी प्रकट करना चाहता था कि भिन्न भिन्न तत्वोंके गुणोंमें जो भिन्नता पाई जाती है, उसका कारण उनमें स्थित उज्जनके परमाणुओंकी संख्या है। यदि बेरीलियमके ६ परमाणुओंमेंसे ५ परमाणु निकाल लिये जावें तो प्राप्त-तत्वमें हेलके गुण विद्यमान

---

* प्राउटके सिद्धान्तका विकसित रूप 'एलक्ट्रन सिद्धान्त' है जिसके द्वारा विद्युत्कणको आदि पदार्थ माना गया है।

होंगे। तात्पर्य यह है कि उसके सिद्धान्तसे प्रकट होता है कि तत्वके गुणों और उनके परमाणु भारोंमें कुछ सम्बन्ध अवश्य स्थित है।

बरज़ीलियस

लवाशिये (१७४३-१७९४) नामक वैज्ञानिकने सबसे प्रथम धातु और अधातुओंका विभाग किया। सोना, चांदी, पारद आदि एक श्रेणीमें रखे गये और कर्बन, गन्धक आदि दूसरी श्रेणीमें रखे गये। पर इस विभागसे कहीं अधिक महत्वका विभाग बरज़ीलियस (१७७९-१८४८) ने किया। इसके विभागको विद्युत्-रासायनिक-विभाग कह सकते हैं। बरज़ीलियसके सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक परमाणुसे विद्युत्की एक निश्चित मात्रा संयुक्त रहती है, चाहे यह मात्रा धनात्मक हो या ऋणात्मक प्रत्येक तत्वके परमाणुमें यह मात्रा भिन्न भिन्न परिमाणमें होती है। जिस वस्तुमें धनात्मक मात्रा ऋणात्मककी अपेक्षा अधिक होगी उसमें धनात्मक गुण होंगे। इसी प्रकार जिसमें धनात्मककी अपेक्षा ऋणात्मक मात्रा अधिक होगी, उसमें ऋणात्मक गुण होंगे। विद्युत्का यह प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि धनात्मक वस्तु ऋणात्मककी ओर आकर्षित होती है, और संयुक्त हो जाती है। इसी प्रकार जिस तत्वके परमाणुओंपर धनात्मक विद्युत् मात्रा स्थित है वह तत्व उन तत्वोंके परमाणुओंसे संयुक्त हो जायगा जिनपर ऋणात्मक-मात्रा हैं। उज्जनपर धनात्मक मात्रा है और हरिणपर ऋणात्मक मात्रा है अतः दोनों संयुक्त होकर उज्ज-हरिद अथवा उज्ज-हरिकाम्ल (उ ह) नामक यौगिक बनावेंगे। इस प्रकारके यौगिकोंमें धनात्मक अथवा ऋणात्मक गुण पाये जा सकते हैं। यदि यौगिकके धनात्मक-तत्वकी विद्युत्-मात्रा ऋणात्मक तत्वकी विद्युत् मात्रासे संख्यामें अधिक हुई तो यौगिकमें धनात्मक गुण होंगे और यदि धनात्मक-विद्युत् मात्रा ऋणात्मक विद्युत् मात्रासे कम हुई तो यौगिकमें ऋणात्मक विद्युत्-मात्रा होगी। इसी प्रकार यदि धनात्मक और ऋणात्मक दोनों मात्राएँ समान हुईं तो यौगिक शिथिल होगा। पोटाशियम ओषिद (पो$_2$ ओ) में पोटाशियमकी धनात्मक विद्युत्-मात्रा ओषजनकी ऋणात्मक मात्रासे अधिक है अतः यह ओषिद धनात्मक-विद्युत्-मात्रासे संचालित रहेगा। परन्तु गन्धक-त्रिओषिद (ग ओ$_3$) में गन्धक की धनात्मक मात्रा ओषजनकी ऋणात्मक मात्रासे कम है अतः इस त्रिओषिदमें ऋणात्मक-विद्युत्-मात्राका संचार प्रतीत होगा। इस प्रकार (पो$_2$ओ) में और (ग ओ$_3$) में संयोग होना सम्भव है क्योंकि प्रथम ओषिद धनात्मक है और द्वितीय ऋणात्मक। इस प्रकार दोनोंके संयोगसे पोटाशियम गन्धेत (पो$_2$ ग ओ$_4$) नामक यौगिक प्राप्त होता है—

[पो$_2$ ओ]$^{\circ}$ + [ग ओ$_3$]$'$ = [पो$_2$ग ओ$_4$]$^{\circ}$

पोटाशियम गन्धेतके [पो$_2$ ओ] में स्थित धनात्मक मात्रा [ग ओ$_3$] में स्थित ऋणात्मक मात्रासे कहीं अधिक है अतः पो$_2$ ग ओ$_4$ में धनात्मक-विद्युत्-मात्रा होगी। इसी प्रकार स्फट गन्धेत [स्फ$_2$ (गओ$_4$)$_3$] स्फट ओषिद (स्फ$_2$ ओ$_3$) और गन्धक-त्रिओषिद (ग ओ$_3$) को लेकर बनाया जा सकता है :—

[स्फ$_2$ओ$_3$] + ३ [गओ$_3$]$'$ = [स्फ$_2$(गओ$_4$)$_3$]$'$

पर इस यौगिक स्फट-गन्धेतमें [स्फ$_2$ओ$_3$] की धनात्मक मात्रा (गओ$_3$) की ऋणात्मक मात्रासे कम होती है अतः स्फ$_2$ (गओ$_4$)$_3$ स्फट गन्धेतमें ऋणात्मक-विद्युत्-मात्रा होगी। इस प्रकार हमें दो यौगिक मिले। एक तो [पो$_2$ग ओ$_4$]$^{\circ}$ और दूसरा [स्फ$_2$(गओ$_4$)$_3$]$'$। इसमेंसे प्रथम गन्धेतपर धनात्मक मात्रा है और दूसरे गन्धेतपर ऋणात्मक। हम यह लिख चुके हैं कि धनात्मक मात्रावाली वस्तु ऋणात्मक मात्रावाली वस्तुसे मिलकर अन्य यौगिक बना सकती है। इसके अनुसार उपर्युक्त दोनों गन्धेत परस्परमें संयुक्त हो सकते हैं और उनके सम्मिलनसे फिटकरी प्राप्त हो सकती है :—

$[पो_2 ग ओ_4]^{\circ} + [स्फ_2 (ग ओ_4)_3]'$

$= पो_2 ग ओ_4 . स्फ_2 (ग ओ_4)_3$

$= 2पो स्फ (ग ओ_4)^2$

इस प्रकार पोटाशियम-स्फट-गन्धेत नामक फिटकरी प्राप्त हुई। बरज़ीलियसकी इस कल्पना* के अनुसार एक परमाणु दूसरे परमाणुमे तथा एक यौगिक दूसरे यौगिकके साथ संयुक्त हो सकता है। तत्त्वोंकी विद्युत् प्रकृतिके अनुसार बरज़ीलियसने एक विभाग किया। बरज़ीलियसकी सारिणीका संशोधित रूप नीचे दिया जाता है। इसमें भिन्न भिन्न धातु तत्त्वोंकी विद्युत सम्भाविनी शक्ति (वि० सं० श०) वोल्टोंमें दी गई है :—

(सारिणी १)

पोटाशियम	पो°	(+२.६)
सोडियम	सो°	(+२.५)
भारियम	भ°°	(+२.४)
स्तंत्रम	स्त°°	(+२.३)
खटिक	ख°°	(+१.६)
मग्न	म°°	(+१.५)
स्फट	स्फ°°°	(+१.०)
मांगल	मा°°	+०.८०
यशद	य°°	+०.५०
कादमियम	का°°	+०.४५
लोह	लो°°	+०.०७
थेलियम	थे°	+०.०४५
कोबल्ट	को°°	−०.०४५
निकल	नि°°	−०.०५
बंग	ब°°	−०.१
सीस	सी°°	−०.१२
उज्जन	उ°	−०.२७
ताम्र	ता°°	−०.६०
ताल	ल°°°	−०.६?
बिस्मत	वि°°°	−०.७?
अञ्जन	ज°°°	−०.८?
पारद	पा°	−१.०२
रजत	र°	−१.०४
पलेदियम	प°°	−१.१?
प्लाटिनम	प्ला°°°°	−१.२?
स्वर्ण	स्व	−१.४?

यह सारिणी बड़ी उपयुक्त है। इसके विषयमें आगे चलकर हम और लिखेंगे। वास्तवमें बरज़ीलियस ही प्रथम व्यक्ति था जिसने तत्त्वोंके संविभागका प्रयत्न किया।

डोबरीनरका त्रयी सिद्धान्त

ज्यों ज्यों तत्त्वोंके गुण और उनके परमाणुभारोंपर अधिक विचार किया गया, त्यों त्यों तत्त्वोंका सम्बन्ध अधिक स्पष्ट प्रतीत होने लगा। सन् १८१७ ई० में डोबरीनर ने कुछ तत्वोंके परमाणुभार और उनके गुणोंमें विचित्र सम्बन्ध देखा। प्राव, सोडियम, और पोटाशियमके गुण परस्पर बहुत मिलते जुलते हैं। इन गुणोंकी समानताके विषयमें आगे लिखा जायगा पर इतना कह देना ही समुचित है कि ये तत्व निजी गुणों, यौगिकों, आदिमें एकसे ही हैं। इसी प्रकारसे खटिक, स्तंत्रम और भारियम, ये तीन तत्व गुणोंमें अधिकांश समान हैं। डोबरीनरने तीन तीनके छोटे छोटे ऐसे समूह संकलित किये जिनके तत्वोंमें परस्परमें समानता हो। उदाहरणतः—

१. प्राव—	६.६४	२. खटिक—	४०.०७
सोडियम—	२३	स्तंत्रम—	८७.६३
पोटाशियम—	३६.१	भरियम—	१३७.३७
३. हरिण—	३५.४६	४. गन्धक—	३२
ब्रम—	७६.६२	सेलेनम—	७६.२
नैल—	१२६.६२	तेलुरियम—	१२७.५

* अरहीनसने अपने प्रसिद्ध 'विद्युत्-पृथक्कीकरण' के सिद्धान्तके उद्घाटनमें बरज़ीलियसकी इस कल्पनाको परिशोधित रूप प्रदान कर दिया है। वर्तमान सिद्धान्तके अनुसार $[पो_2 गओ_4]$ में $[पोओ]^{\circ} + [गओ_3]'$ नहीं हैं, प्रत्युत घोलमें २ $[पो]^{\circ} + [गओ_4]'$ हैं।

इन त्रयी समूहोंके परमाणुभारकी इस प्रकार परीक्षा की जा सकती है—

१. सोडियम-ग्राव = २३ − ६·६४=१६·०६.

पोटाशियम-सोडियम = ३६ − १ − २३=१६·१.

इस प्रकार ग्र और सो में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर सो और पो में है। इसके अतिरिक्त—$\frac{\text{पो}+\text{ग्र}}{२} = \frac{३९·१ + ६·६४}{२} = २३·०२$

अर्थात् ग्रा और पो के योगका आधा सोडियम है।

२. स्तंत्रम-खटिक=८७·६३ − ४०·०७=४७·५६

भारियम-स्तंत्रम=१३७ − ८७·६३=४६·७४

दोनोंका अन्तर बराबर है तथा

$\frac{\text{भ}+\text{ख}}{\text{स्त}} = \frac{१३७·३७ + ४०·०७}{२} = ८८·७२$

३. ब्रम-हरिण=७६·६२ − ३५·४६=४४·४६

नैल-ब्रम = १२६·६२ − ७६·६२=४७

तथा $\frac{\text{ह}+\text{नै}}{२} = \frac{३५·४६ + १२६·६२}{२} = ८१·१६$=ब्र

के प्रायः समान

४. सेलेनम-गन्धक=७६·२ − ३२=४७·२.

तेलुरियम-सेलेनम=१२७·५ − ७६·२=४८·३

तथा $\frac{\text{ग}+\text{ते}}{२} = \frac{३२ + १२७·५}{२} = ७६·६$=से

के प्रायः समान

इस प्रकार इन त्रयी-समूहोंमें बीचवाले तत्वका परमाणुभार अन्य दो तत्वोंके योगका आधा है। इन तत्वोंके गुण भी इस प्रकार क्रमबद्ध हैं कि बीचवाला तत्व अपने पूरवर्त्ती तत्वसे गुणोंमे कुछ कम प्रबल पर अपने परावर्त्ती तत्वोंसे कुछ अधिक प्रबल है। पो धनात्मक विद्युत्-संयोग-शक्तिमें सोडियमसे अधिक प्रबल है और सोडियम ग्रावसे। इसी प्रकार भारियम धनात्मक शक्तिमें स्तंत्रमसे अधिक और स्तंत्रम खटिकसे अधिक शक्तिशाली है। इसके विपरीत हरिण ऋणात्मक शक्तिमें ब्रमसे और ब्रम नैलसे; तथा गन्धक सेलनमसे और सेलेनम तेलुरियमसे अधिक प्रबल है। इस प्रकार गुणोंके क्रममें और परमाणुभारके क्रममें एक विशेष सम्बन्ध है।

ड्यूमाका प्रयत्न

सन् १८२८ ई० में फ्रेंच वैज्ञानिक ड्यूमाने अधातु तत्वोंको पाँच श्रेणियोंमें विभक्त किया। अबतक धातु-तत्वोंके संविभागकी ओर ही बरज़ीलियस और डोबरीनरने ध्यान दिया था पर ड्यूमाने अधातु तत्वोंको निम्न प्रकारका क्रम प्रदान किया :—

(१) उज्जन

(२) स्रव, हरिण, ब्रम, नैल

(३) सेलेनम, गन्धक, ओषजन

(४) स्फुर, ताल, नत्रजन

(५) टंक, शैल, कर्बन

गुणोंके अनुसार ड्यूमाने इस प्रकारके ५ समूह किये। इन समूहोंका क्रम वर्त्तमान समयके विभागमें भी स्थित है। आजकल अनेक कारणोंसे टंकको शैल और कर्बनकी श्रेणीमें नहीं रखते हैं ड्यूमाने (१) ख, स्त, भ; (२) म, प, का; (३) ग्र, सो, पो; इन समूहोंकी भी विवेचना की थी।

न्यूलैण्डका 'अष्टक सिद्धान्त'

बहुतोंका यह कथन है कि डि-चैङ्कोर्टोने सबसे प्रथम सन् १८६२ ई० में यह बात प्रस्तुत की कि तत्व परमाणुभारोंके अनुसार क्रमबद्ध किये जा सकते हैं। उसने पेंचकी विचित्र आकृतिमें तत्वोंको विभाजित करनेकी आयोजना की। पर उसके इस विभागकी ओर किसीने विशेष ध्यान नहीं दिया। उसके दो वर्ष पश्चात् न्यूलैण्डने सन् १८६४ ई० में अपना अष्टक-सिद्धान्त वैज्ञानिकोंके सम्मुख प्रस्तुत किया। उसने परमाणुभारोंकी वृद्धिके अनुसार सात सात तत्वोंको एक श्रेणीमें रखा। इसके विभागकी सारिणी निम्न प्रकार है :—

सारिणी २

१	उ	फ़्लु	ह	को, नि	ब्र	प	नै	प्ला
२	ग्रा	सो	पो	ता	रू	र	श	थे
३	बे	म	ख	य	स्त	का	भ	सी
४	ट	स्फ	क	इ	श्री, ले	हि	तं	यं
५	क	शै	ब	हि	जि	वं	तु	पा
६	न	स्फु	मा	ला	नो, मो	ज	नै	वि
७	ओ	ग	लो	स्क	ह्र	ते	स्व	श्य

जिस समय न्यूलैण्डने परमाणुभारोंकी वृद्धि-अनुसार तत्वोंको क्रमबद्ध करना आरम्भ किया, उसने पहिली पंक्ति यह बनाई:—

उ ग्रा बे ट क न ओ स

पर जब उसने ८वां तत्व स देखा तो उसके मनमें एक विचार उत्पन्न हुआ। वह यह कि ८वें तत्व सके पश्चात् नवां तत्व सोडियम ऐसा है जो ग्रावसे गुणोंमें मिलता जुलता है। अतः उसने ग्रा के साथ सो को रखा। इसके पश्चात् वाला तत्व मग्न बेरीलियमसे गुणोंमें मिलता जुलता था, उसे बे के साथ रखा। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्फ, शै, स्फु, ग, और ह तत्व क्रमानुसार ट, क, न, ओ और फ्ल से मिलते जुलते हैं। पर ह के पश्चात् वाला तत्व पो सोडियमसे मिलता है। अतः उसने यह सिद्धान्त निकाला कि यदि परमाणुभारके अनुसार तत्व क्रमबद्ध किये जायँ तो प्रत्येक आठवां तत्व प्रथम तत्वसे मिलता जुलता होगा। हारमोनियमके सात स्वरों—षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद—में भी इसी प्रकारके समान गुणवाले अष्टक मिलते हैं:—

स र ग म प ध नि स' र' ग' म' प' ध' नि'

इस 'सरगम' में आठवां स्वर स' प्रथम स्वर स से, नवां स्वर र' द्वितीय स्वर र से मिलता है। न्यूलैण्ड सरगमके अष्टक नियमका इतना पक्षपाती हो गया कि उसने आंख मूँदकर अन्य तत्व इस नियमके अनुसार क्रमबद्ध कर डाले। उसने इस बातपर ध्यान नहीं दिया कि समान-समूही-तत्वोंके गुण समान हैं या नहीं। इस त्रुटिके कारण उसका लोहको गन्धकके साथ; कोबल्ट तथा निकलका हरिणके साथ रखना सर्वथा अनुचित था। जिस समय वह वैज्ञानिक सभामें अपना लेख पढ़ चुका उस समय लोगोंने उसकी इस कल्पनाकी बड़ी हँसी उड़ाई। क्योंकि उनकी समझमें लोहके गुण गन्धकके समान नहीं थे, और न्यूलैण्ड हठवशात् खोज करके कुछ समान गुणोंके कारण अपने क्रमकी सत्यता प्रकट करना चाहता था। एक सज्जन प्रो० जी० फोस्टर इतने अधीर हो उठे कि उन्होंने व्यंगभावसे कहा कि यदि 'अकारादि वर्ण क्रमसे इनका विभाग किया जाय तो भी तो कुछ समान गुण मिल जावेंगे।' तात्पर्य यह है कि न्यूलैण्डके इस विभागको किसीने महत्व नहीं दिया। पांच वर्षके उपरान्त इस कल्पनाने प्रौढ़ रूप धारण कर लिया और वैज्ञानिक जगतमें एक सर्वोपयुक्त क्रम विभागका आविर्भाव हुआ।

मैण्डलीफ़

सन् १८६९ ई० में, जिस समय मैण्डलीफ़ नामक एक रूसी वैज्ञानिक विद्यार्थियोंके लिये अपनी जगत्प्रसिद्ध पुस्तक 'रसायनके सिद्धान्त' लिख रहा था, उस समय उसके चित्तमें आया कि यदि तत्वोंको क्रमबद्ध कर लिया जाय तो उनकी विवेचना करनेमें बड़ी सरलता होगी और तत्वोंकी तुलनात्मक परीक्षासे विद्यार्थियोंको लाभ भी अधिक होगा। उसने न्यूलैण्डके विभागका अनुसरण किया, पर वह 'अष्टक' के सिद्धान्तका हठी नहीं था। उसने तत्वोंके गुण और परमाणु-भार दोनोंपर भली प्रकार ध्यान दिया। परमाणु-भारकी वृद्धिके अनुसार गुणोंका विचार करते हुए उसने समूह बनाने आरम्भ किये। उसने अपने विभागमें उदजनको छोड़ दिया क्योंकि इसकी विचित्रता अन्य तत्वोंसे पृथक् ही है। उसने ग्रावसे आरम्भ किया। न्यूलैण्डके समान उसने निम्न सात तत्वोंको एक पंक्ति में रखा—

अ बे ट क न ओ प्ल

इस श्रेणीमें ज्यों ज्यों परमाणुभार बढ़ता जाता है त्यों त्यों तत्वोंकी धनात्मक-विद्युत्-शक्ति हीन होती जाती है। यहाँ तक कि प्लव ऋणात्मक है। अ का अष्टक सोडियम प्रावसे मिलता जुलता है अतः दूसरी पंक्ति इस प्रकार बनाई—

सो म स्फ शै स्फु ग ह

इस दूसरी पंक्तिके तत्त्व क्रमानुसार प्रथम पंक्तिके तत्वोंके सजातीय हैं। परमाणुभारकी वृद्धिके अनुसार हरिणके पश्चात् पोटाशियम आता है जो सोडियमके समान गुणोंवाला है। अतः उसको सो के नीचे रखकर अन्य तत्व लिखे गये—

पो ख स्क ती वा क्र मा लो को नि
ता य गे श ल से ब्र
रू

इस प्रकार तीसरी दीर्घ पंक्ति सत्रह तत्वोंकी है क्योंकि पोटाशियमके पश्चात् उसके समान गुणों वाला तत्व रूपद है। ता, य, गे आदि तत्व पो, ख, आदिसे कुछ अंशोंमें मिलते हैं। अतः उन्हें भी इन तत्वोंके साथ दाहिनी ओर थोड़ासा हटाकर लिख दिया गया है। तीसरी पंक्तिके ख, स्क, ती, ..., मा आदि तत्व कुछ अंशोंमें भिन्न हैं। अतः इन्हें उनके नीचे बायीं ओर थोड़ासा हटाकर लिख दिया गया है। ये तत्व जो बायीं और दाहिनी ओर हटा दिये गये हैं, एक पृथक् वंशके ही जन्मदाता हैं। लोहके गुण एक ओर तो माँगलसे मिलते जुलते हैं और दूसरी ओर ताम्रसे। यही अवस्था कोबल्ट और निकल की है, अतः इन तीनोंको एक आठवें समूहमें रख दिया गया है और ये सातवें समूह और प्रथम समूहके संयोजक कहलाते हैं। यह भी ध्यान रखने योग्य है कि परमाणुभारके अनुसार लोहके पश्चात् निकलको आना चाहिये और तत्पश्चात् कोबल्टको। पर गुणोंकी परीक्षा करनेपर पता चलता है कि लोहा कोबल्टसे और निकल ताम्रसे अधिक मिलता है। अतः यहाँ परमाणुभार की उपेक्षा करके कोबल्टको निकल और लोहेके बीचमें रखा गया है।

ब्रम के पश्चात् रूपदका परमाणुभार है। गुणोंमें रूपद पोटाशियमका सजातीय है। अतः अन्य तत्वोंको इस प्रकार क्रमबद्ध किया गया।

रू स्त इ जि नो मो — ह रो प
र क हि बं ज ते नै

यहाँ भी पूर्वकी सी अवस्था है। ह, रो, और प संयोजक हैं। रू, स्त, इ, इत्यादि पो, ख, स्क, इत्यादिके वंशके हैं और र, क, हि इत्यादि ता, य, गे आदि वंशके हैं। इस क्रममें भी एक अपवाद है जैसा ऊपर कोबल्टके साथ देखा गया था। तेलुरियमका परमाणुभार नैलके परमाणुभारसे अधिक है अतः परमाणुभारकी दृष्टिसे नैलको तेलुरियमके पूर्व रखना चाहिये था। पर गुणोंकी दृष्टिसे नैल ब्रमका सजातीय है अतः उसे ब्रम की श्रेणीमें स्थान देना चाहिये। इसी प्रकार तेलुरियम गन्धक और सेलेनमके वंशका है। इस कारण यहां परमाणुभारकी उपेक्षा की गई है। मैण्डलीफ़ने तत्वोंका जो उपयोगी संविभाग किया है उसका परिवर्धित रूप सारिणी (३) में दिया गया है।

मैण्डलीफ़के इस संविभागमें रसायनशास्त्रकी सभी सामान्य बातें दृष्टिगत होती हैं। सबसे पहला शून्य समूह है जिसमें दुष्प्राप्य वायव्य हेल, न्योन, आर्गन, क्रुप्तन, ज़ीनन आदि हैं। ये तत्व मैण्डलीफ़के समय वैज्ञानिक जगतको ज्ञात न थे। रैमज़े नामक वैज्ञानिकके चिरपरिश्रमसे इनकी खोज हुई। इन वायव्योंके गुणों और परमाणुभारोंकी अपेक्षासे इन्हें अलग शून्य समूहमें स्थान दिया गया है।

मैण्डलीफ़की [देखिये सारिणी ३] सारिणीके प्रत्येक समूहमें दो दो वंश हैं। केवल शून्य समूह और समूह ८ में दो वंश नहीं प्रतीत होते हैं। इस संविभागमें दो लघुखंड हैं। इनके तत्त्व दोनों वंशोंसे मिलते हैं और कहा जा सकता है कि ये मातृ-तत्त्व

खंड		समूह०	समूह १	समूह २	समूह ३	समूह ४	समूह ५	समूह ६	समूह ७	समूह ८
उच्चतम आषिद		—	र$_2$ओ	र·ओ	र$_2$ओ$_3$	र ओ$_2$	र$_2$ओ$_5$	र ओ$_3$	र$_2$ओ$_7$	र ओ$_4$
उच्चतम उदिद		—	रउ	रउ$_2$	र ह$_3$	र ह$_4$	र ह$_3$	र ह$_2$	र ह	—
प्रथम लघु खंड		हे २ ४०·०	उ १ १·००८ ग्र ३ ६·६४	बे४ ६·१	ट५ १०·६	क६ १२·००	न७ १४·०१	ओ८ १६·००	फ्लु६ १६·०	
द्वितीय लघु खंड		न्यो १० २०·२	सो ११ २३·००	म१२ २४·३२	स्फ१३ २७·१	शै१४ २८·३	स्फ१५ ३१·०४	ग१६ ३२·००	ह१७ ३५·४६	
प्रथम दीर्घ खंड	समश्रेणी	आ १८ ३६·६	पो१६ ३६·१	ख२० ४०·०७	स्क२१ ४५·१	ती२२ ४८·१	वा२३ ५१·०	क्र२४ ५२·०	मा२५ ५४·६३	लो२६ को२७ नि२८ ५५·८४५८·६७ ५८·६८
	विषमश्रेणी		ता२६ ६३·५७	य३० ६५·३७	गे३१ ७०·१	श३२ ७२·५	ल३३ ७४·६६	से३४ ७६·२	ब्र३५ ७६·६२	
द्वितीय दीर्घ खंड	समश्रेणी	कृ३६ ८२·६२	रू३७ ८५·४५	स्त३८ ८७·६३	इ३६ ८६·३३	जि४० ६०·६	नो४१ ६३·१	मो४२ ६६·०	वी४३ ?	हु४४ रो४५ प४६ १०१·७१०३·६ १०६·७
	विषम श्रेणी		र४७ १०७·८८	का४८ ११२·४	हि४६ ११४·८	वं५० ११८·७	ज५१ १२०·२	ते५२ १२७	नै५३ १२६·६२	
तृतीयदीर्घ खंड	समश्रेणी	जी५४ १३०·२	श्य५५ १३२·८१	भ५६ १३७·३८	लै५७ १३६·०	श्री५८ १४०·२५				
	विषमश्रेणी			. दुष्प्राप्य	तत्त्व प्र ५६	से ये ७१	तक			
चतुर्थदीर्घ खंड	समश्रेणी					हो७२ ?	तं७३ १८१·५	तु७४ १८४·०	रै७५ ?	ओस७६ ई७७ प्लु७८ १६०·६१६३·१ १६५·२
	विषमश्रेणी		स्व७६ १६७·२	पा८० २००·६	थे८१ २०४०	सी८२ २०७·२	बि८३ २०८	—	—	
पंचमदीर्घ खंड		८६	— ८७	रे८८ २२६	ठी ८६ ?	थो६० २३२·१५	युक$_2$६१	यु६२ २३८·४		

हैं जिनसे अन्य तत्वोंका वंश चला है सारिणीमें पांच दीर्घ खंड दिखलाये गये हैं। इनको दीर्घ खंड इसलिये कहा गया है क्योंकि इनमें स्थित तत्वोंकी संख्या लघु खंडोंके तत्वोंकी संख्यासे कहीं अधिक है। प्रत्येक दीर्घ खंडमें सम और विषम नामक दो श्रेणियाँ हैं। सम श्रेणीके तत्व 'क-वंश'के कहलाते हैं। इन्हें सारिणीमें मातृतत्वोंके बायीं ओर थोड़ा सा हटाकर रखा गया है। इस प्रकार निम्न तत्व क-वंशीय हैं :—

पो	ख	स्क	ती	वा	क्र
रू	स्त	इ	जि	नो	मो
सी	भ	ले	श्री	तं	—
	—		—		
	रे		थो		तु

इसी प्रकार विषमश्रेणीके तत्व 'ख-वंश'के कहलाते हैं। इनको मातृतत्वोंके दाहिनी ओर थोड़ा-सा हटाकर रखा गया है। कुछ ख-वंशीय तत्व ये हैं—

ता	य	गे	श	ल	से
र	का	हि	बं	ज	ते
स्व	पा	थे	सी	बि	—

इन वंशोंकी मातृतत्वोंके साथ तुलना करनेपर पता चलेगा कि प्रथम, द्वितीय, तथा तृतीय समूह-में मातृतत्व क-वंशीय तत्वोंसे अधिक मिलते जुलते हैं, पर आगे चलकर क-वंशीय तत्व और मातृतत्वोंमें अधिक समानता नहीं रह जाती है। यह ख-वंशीय तत्व मातृतत्वोंके अधिक समान हैं। धीरे धीरे छठे और सातवें समूहमें जाकर मातृ-तत्व और ख-वंशीय तत्व समान-गुणी हो जाते हैं। जैसे ग, से, ते अथवा ह, ब्र, तथा नै।

आठवां समूह क और ख वंशका संयोजक है अतः इसे मध्य-समूह भी कह सकते हैं। वास्तवमें क और ख वंशको मिलाकर एक खंड बनता है। इसीको स्पष्ट करनेके लिये कुछ वैज्ञानिकोंने सारिणी ४ प्रस्तुत की है :—

सारिणी ४

हे श्र बे ट क न ओ प्ल
न्यो सो म स्फ शै स्फु ग ह } विशिष्ट खंड

आ	पो	ख	स्क	ती	वा	क्र	मा	लो	को	नि	ता	य	गे	श	ल	से	ब्र
क्रु	रू	स्त	इ	जि	नो	मी	वी	ह	रो	प	र	का	हि	बं	ज	ते	नै
जी	श्य	भ	ले	श्री	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
—	—	—	—	—	तं	तु	रै	ओस	इं	प्ला	स्व	पा	थे	सी	बि	—	—
—	—	रे	—	थो	—	यु	—										
०	१	२	३	४	५	६	७	समूह ८			१	२	३	४	५	६	७
			क-वंश											ख-वंश			

इसमें लघु खंडोंके तत्वोंको दीर्घखण्डोंके तत्वोंसे पृथक् दर्शाया है। लघुखण्डोंका एक 'विशिष्ट खण्ड' बनाया गया है। विशिष्ट खण्डके प्रथम चार तत्व क-वंशके प्रथम चार तत्वोंके सजातीय हैं और अन्तिम चार तत्व ख-वंशके अन्तिम चार तत्वोंके सजातीय हैं। अर्थात् न्यो, सो, म, और स्फ क-वंशीय आ, पो, ख, और स्क के समान गुणी हैं। तथा शै, स्फु, ग और ह ख-वंशीय श, ल, से और ब्र के समान-गुणी हैं। इसके अतिरिक्त, क-वंशके अन्तिम दो तत्व और ख-वंश के प्रथम दो तत्व 'मध्य समूह' के तत्वोंसे मिलते जुलते हैं। उदाहरणतः क्र और मा तत्व लो से

अधिक मिलता है और त और य तत्व नि के अधिक समान हैं। अब हम यहां मैण्डलीफ़के संविभागकी कुछ विशेषतायें देते हैं—

(१) इस संविभागमें अधिकतर तत्वोंके परमाणुभारके अनुसार क्रम रक्खा गया है। कहीं कहीं, जैसा आगे बताया जायगा कुछ अपवाद भी हैं जहां परमाणुभारकी उपेक्षा करके गुणोंके अनुसार भी तत्वोंको स्थान दिया गया है परमाणुभारका यह क्रम थोड़ी दूर तक भार-वृद्धिके अनुसार आगे बढ़ता है और फिर पीछे आ जाता है। जैसे हेलसे लेकर प्लव तक आगे बढ़ा और फिर न्योनको प्लवके आगे न रखकर पीछे हटे, और जहांसे हेल आरम्भ किया गया था, वहां इसे रखा गया। जिस प्रकार घड़ीका लंगर एक ओर जाकर फिर पीछे लौटता है और फिर आगे बढ़ता है इसी प्रकार तत्वोंका क्रम आगे जाकर फिर पीछे लौटता है और फिर आगे बढ़ता है। इस क्रियाको 'आवर्तन' कहते हैं। मैण्डलीफ़के इस संविभागको 'आवर्त-संविभाग' कहा जा सकता है।

किसी तत्वका गुण इस बातपर निर्भर है कि इस संविभागमें उसकी स्थिति कहांपर है। उदाहरणतः यदि हमें स्तंत्रमके गुणोंको जानना है तो हमें यह देखना आवश्यक है कि इस संविभागमें स्तंत्रम किस स्थानपर स्थित है। हमको यह पता चलता है कि यह समूह २ में दीर्घखंडकी सम श्रेणीमें स्थित है। बस इतना जाननेसे ही हमें ज्ञात हो जाता है कि यह खटिकका सजातीय है, अतः खटिक और भारियमकेसे गुणोंका होगा। इसका उच्चतम ओषिद (स्त ओ) होगा। इस प्रकार तत्वोंके गुणोंका उनकी स्थितिसे बहुत सम्बन्ध है। इसका विचार करके मैण्डलीफ़ने अपने संविभागका यह नियम बनाया :—

तत्वों तथा उनके यौगिकोंके रासायनिक अथवा भौतिक गुण परमाणुभारके आवर्त-स्वभावपर निर्भर हैं, अर्थात् यदि परमाणुभारकी वृद्धिके अनुसार तत्वोंको क्रमबद्ध किया जाय तो उनके गुणोंमें क्रम-पूर्वक अन्तर पड़ता जायगा, और फिर इन गुणोंमें इस प्रकार आवर्त्तन होगा कि पूर्व गुणोंसे ये अधिकतर मिलने लगेंगे।

(२) उन तत्वोंका परमाणुभार जिनके गुण परस्पर समान हैं, या तो परस्परमें लगभग बराबर हैं या उनमें कोई निश्चित अन्तर है। लोह, कोबल्ट, तथा निकलके अधिकांश गुण एकसे ही हैं और उनके परमाणुभार ५५·८४, ५८·९७ तथा ५८·६८ लगभग बराबर ही हैं। इसके अतिरिक्त पोटाशियम, रूपद और श्याम तत्वोंके गुण भी एकसे हैं, और इनके परमाणुभार ३९·१, ८५·४५ तथा १३२·८१ हैं। पो और रू के परमाणुभारमें (८५·४५ – ३९·१)=४६·३५ का अन्तर है और रू तथा श्यके परमाणुभारमें (१३२·८१ – ८५·४५)=४७·३६ का अन्तर है। ये दोनों अन्तर लगभग समान ही हैं। इससे स्पष्ट है कि समान गुणवाले तत्वोंके परमाणुभार या तो समान होते हैं या निश्चित अन्तरपर स्थित होते हैं।

(३) इस संविभागसे संयोग-शक्तिका भी भली प्रकार परिचय प्राप्त हो सकता है। शून्य समूहके तत्वोंकी संयोगशक्ति भी शून्य है। हेल, आर्गन, न्योन, कृप्तन आदि तत्व किसी दूसरे तत्वसे संयुक्त नहीं पाये गये। उनके यौगिक कहीं भी दृष्टिगत नहीं होते हैं। भिन्न भिन्न तत्वोंके साथ संयोगशक्ति भी भिन्न भिन्न है। यदि किसी तत्वका एक परमाणु उदजनके एक परमाणुसे मिलकर यौगिक बनाता है तो उसकी संयोगशक्ति १ मानी जावेगी; तथा यदि किसी तत्वका एक परमाणु उदजनके दो परमाणुओंसे संयुक्त होकर यौगिक बनाता है तो उसकी संयोग-शक्ति २ मानी जावेगी। इसी प्रकार यदि किसी तत्वका एक परमाणु उदजनके ३ परमाणुओंसे संयुक्त होता है तो उसकी संयोग-शक्ति ३ होगी। इसी प्रकार और भी समझना चाहिये।

इसी प्रकार ओषजनकी अपेक्षासे संयोग-शक्ति

निकाली जा सकती है। जिस तत्वके दो परमाणु ओषजनके एक परमाणुसे संयुक्त हो सकते हैं उसकी संयोगशक्ति एक कही जावेगी, जिस तत्वके दो परमाणु ओषजनके दो परमाणुओंसे संयुक्त होकर यौगिक बनाते हैं उसकी संयोगशक्ति दो समझी जाती है, इसी प्रकार और भी समझना चाहिये। हरिण आदिकी अपेक्षासे भी इसी भांति संयोग-शक्ति जानी जा सकती है।

अधिकतर यह देखा गया है कि जो तत्व जिस समूहमें स्थित होगा उसकी संयोगशक्ति वैसी ही होगी। जो तत्व समूह १ में है उसकी संयोक-शक्ति १ है। समूह (२) के तत्वोंकी संयोगशक्ति २ है। समूह (५) के तत्वोंकी संयोगशक्ति ५ है। इसी प्रकार और भी समझना चाहिये। बहुधा समूह संख्याको ८ मेंसे घटाकर भी संयोगशक्ति ज्ञात होती है। उदाहरणतः समूह (७) में स्थित हरिणकी संयोगशक्ति ७ बहुत कम पाई गई है। इसकी मुख्य संयोगशक्ति (८ – ७)=१ है। इसी प्रकार ओषजनकी संयोगशक्ति मुख्यतया(८ – ६)=२ है, नत्रजन समूह ५ में है अतः इसकी संयोगशक्ति ५ भी है और (८ – ५)=३ भी है।

एक ही समूहके क और ख-वंशीय तत्वोंकी संयोगशक्ति समान ही हैं। उदाहरणतः समूह (५) के दोनों वंशोंकी संयोशक्ति ओषजनकी अपेक्षासे निम्न यौगिकोंसे प्रदर्शित की जा सकती है :—

पंचम समूह···

{ क-वंश वा$_२$ओ$_५$ नो$_२$ओ$_५$ तं$_२$ओ$_५$
{ ख वंश न$_२$ओ$_५$ स्फु$_२$ओ$_५$ ल$_२$ओ$_५$ ज$_२$ओ$_५$ बि$_२$ओ$_५$

इस प्रकार दोनों वंशोंकी संयोगशक्ति ५ है। जिन तत्वोंकी संयोगशक्ति १ है उन्हें 'एक-शक्तिक', जिनकी संयोगशक्ति २ है उन्हें 'द्विशक्तिक', जिनकी ३ है उन्हें 'त्रि-शक्तिक', जिनकी ४ है उन्हें 'चतुर्शक्तिक' जिनकी ५ है उन्हें 'पंचशक्तिक' जिनकी ६ है उन्हें 'षड्-शक्तिक', जिनकी ७ है उन्हें 'सप्त-शक्तिक' तथा जिन तत्वोंकी संयोगशक्ति ८ है उनको 'अष्ट-शक्तिक' कहते हैं। बहुतसे तत्व ऐसे हैं जो ऐसे यौगिक बनाते हैं जिनसे एक ही तत्वकी कई संयोगशक्तियां प्रकट होती हैं। नत्रजन और ओषजनके संयोगसे अनेक यौगिक न$_२$ ओ, न ओ, न ओ$_२$, न ओ$_३$, न$_२$ ओ$_५$ आदि बनते हैं जिनके अनुसार नत्रजन एक-शक्तिक, द्वि-, त्रि-, चतुर्-, पंच-, शक्तिक प्रतीत होता है। पर मैण्डलीफ़के 'आवर्त-संविभाग' में अधिकतर उच्चतम संयोग-शक्ति ही प्रदर्शित की गई है। नीचे दी हुई सारिणी ५ में प्रत्येक समूहके तत्वोंकी संयोग-शक्ति सामान्य रूपमें दिखाई गई है।

सारिणी ५

समूह	ओषिद	हरिद	मद्य यौगिक	उज्जिद	उज्जोषिद
१	पो$_२$ ओ	पो ह	ग्र (क उ$_३$)	ग्र उ	सो (ओ उ)
२	ख$_२$ ओ$_२$	ख ह$_२$	बे (क उ$_३$)$_२$	—	म (ओ उ)$_२$
३	स्क$_२$ ओ$_३$	स्क ह$_३$	ट (क उ$_३$)$_३$	ट उ$_३$	स्फ (ओ उ)$_३$
४	ती$_२$ ओ$_४$	ती ह$_४$	क (क उ$_३$)$_४$	क उ$_४$	क शै (ओ उ)$_४$
५	वा$_२$ ओ$_५$	वा ह$_५$	न (क उ$_३$)$_३$	न उ$_३$	स्फु ओ (ओउ$_३$
६	क्र$_२$ ओ$_६$	क ह$_३$	ओ (क उ$_३$)$_२$	ओ उ$_२$	ग ओ$_२$(ओउ)$_२$
७	मा$_२$ ओ$_७$	मा ह$_५$	प्ल (क उ$_३$)	प्ल उ	ह ओ$_३$(ओउ)
८	लो$_२$ ओ$_८$ ह्व$_२$ ओ$_८$	—	—	—	—

इस प्रकार साधारणतया संयोगशक्तिके निर्धारणमें मैण्डलीफ़का आवर्त संविभाग बड़ा उपयोगी है। बरज़ीलियसके विचारोंकी विवेचना करते हुए हमने प्रथम सारिणीमें कुछ तत्व विद्युत् गुणोंके अनुसार क्रमबद्ध किये थे। विद्युत गुणोंकी अपेक्षासे शक्तिशाली तत्व किसी भी यौगिकमेंसे शक्तिहीन तत्वको पृथक् कर देगा। यशद ताम्र अथवा लोहसे अधिक शक्तिशाली है अतः ताम्र अथवा लोहके यौगिकोंमेंसे यशद इन दोनों धातुओंको अलग कर देनेमें समर्थ है। इसी प्रकार हरिण नैलकी अपेक्षा अधिक ऋणात्मक है अर्थात् नैलमें हरिणकी अपेक्षा अधिक धनात्मक शक्ति है इसलिये ओषिदाम्लोंके यौगिकोंमेंसे नैल हरिणको पृथक् कर देता है। हरेत और परहरेतमेंसे नल हरिणको अति शीघ्रतासे पृथक् कर देता है। इसके विपरीत साधारण यौगिकोंमेंसे अधिक ऋणात्मक हरिण कम ऋणात्मक नैलको पृथक् कर देता है। मैण्डलीफ़के 'आवर्त-संविभाग' से तत्वोंकी विद्युत्-प्रकृति भी प्राप्त हो सकती है। उस सारिणीमें ज्यों ही हम ऊपरसे नीचेकी ओर बढ़ेंगे, त्योंही उनकी धनात्मक-शक्ति प्रबल होती जावेगी। इसी प्रकार ज्यों ज्यों नीचेकी ओरसे ऊपरकी ओर बढ़ेंगे त्यों त्यों तत्वोंकी ऋणात्मक शक्ति बलवती होती जावेगी। उदाहरणतः—प्रथम समूहमें श्याम रूपदकी अपेक्षा और रूपद पोटाशियमकी अपेक्षा अधिक धनात्मक है। द्वितीय समूहमें भारियम स्तंत्रमकी अपेक्षा और स्तंत्रमम खटिककी अपेक्षा अधिक धनात्मक है। इसी प्रकार औरोंके विषयमें समझना चाहिये। तत्वोंकी धनात्मक-शक्ति क्षार बनानेके काममें आती है तथा क्षारकी शक्ति तत्वोंकी धनात्मक शक्तिपर निर्भर है। अतः हम कह सकते हैं कि आवर्त-संविभागके किसी समूहमें हम ऊपरसे नीचेकी ओर बढ़ें तो तत्वोंकी क्षारजनकशक्ति बढ़ती जावेगी।

पंचम, सप्तम आदि समूहमें यदि हम नीचेकी ओरसे ऊपरकी ओर बढ़ें तो हमको स्पष्ट पता चलेगा कि तत्त्वोंकी ऋणात्मक-शक्ति बढ़ती जा रही है। विस्मत अञ्जनकी अपेक्षा, अञ्जन तालकी अपेक्षा, ताल स्फुरकी अपेक्षा और स्फुर नत्रजनकी अपेक्षा कम धनात्मक और अधिक ऋणात्मक हैं। इसी प्रकार सप्तम समूहमें नैल हरिणकी अपेक्षा, हरिण ब्रमकी अपेक्षा और ब्रम नैलकी अपेक्षा अधिक ऋणात्मक हैं। तत्त्वोंकी ऋणात्मक शक्ति अम्लोंके बनानेके काममें आती है और अम्लकी शक्ति तत्त्वोंकी ऋणात्मक शक्तिपर निर्भर है। अतः यह कहा जा सकता है कि आवर्त-संविभागके किसी समूहमें हम ऊपरसे नीचेकी ओर बढ़ें तो उनकी अम्लजनक-शक्ति कम होती जावेगी। यदि हम नीचेसे ऊपरकी ओर बढ़ेंगे तो उनकी अम्लजनक शक्ति बढ़ती जावेगी।

आवर्त-संविभागपर दृष्टि डालनेसे एक और बात विदित होती है। यदि हम किसी श्रेणीमें प्रथम समूहसे सप्तम समूहकी ओर बढ़ें तो तत्त्वोंकी अम्लजनक-शक्ति बढ़ती चली जावेगी। अधिकतर प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय समूहमें क्षारजनक धातु तत्त्वोंका समावेश है और छठे और सातवें समूहमें अम्लजनक तत्त्व स्थित हैं। चतुर्थ और पंचम समूहमें दोनों प्रकारके गुणोंके तत्त्व हैं। द्वितीय खण्डमें ग्राव सबसे अधिक क्षारजनक है और प्लव सबसे अधिक अम्लजनक है।

यदि हम ग्रावसे वंगको संयुक्त करती हुई एक सरल रेखा खींचें तो इस रेखाके बायीं ओर बहुधा सभी क्षारजनक धातु तत्त्व आ जावेंगे, और दाहिनी ओर अधातु अम्लजनक तत्त्व।

प्रबल धनात्मक तत्त्वोंमें धातुओंके गुण विशेष रूपसे पाये जाते हैं। इनके ओषिद क्षारजनक होते हैं, तथा उदोषिद क्षारीय होते हैं, अर्थात् लाल द्योतक-पत्र-(लिटमस) को नीला कर देते हैं। इन तत्त्वोंके लवण स्थायी होते हैं, जलमें घुलनेपर उनका विच्छेद नहीं होता है। इनके लवणोंके घोल विद्युत-प्रवाहक होते हैं। पोटाशियम, सोडियम आदि धातु तत्त्व इस श्रेणीके हैं।

कुछ तत्वोंमें धनात्मक शक्ति क्षीण अवस्थामें होती है। ऐसे धातुओंके ओषिद तथा उदोषिद द्वयरूपी होते हैं। शक्तिशाली अम्लोंके साथ क्षारों-के समान व्यवहार करते हैं और शक्तिशाली क्षारों-के साथ अम्लोंका सा व्यवहार करते हैं। उदाहरणतः स्फटको लीजिये। इसका उदोषिद स्फ (ओ उ)$_3$ जब किसी शक्तिशाली अम्ल जैसे उ$_2$गओ$_4$ (गन्धकाम्ल) से संयुक्त होता है तो स्फट गन्धेत स्फ$_2$(ग ओ$_4$)$_3$ बनाता है—

२स्फ (ओ उ)$_3$ + ३उ$_2$ग ओ$_4$

= स्फ$_2$ (गओ$_4$)$_3$ + ६उ$_2$ओ

पर जब यह उदोषिद शक्तिशाली क्षार सो ओ उ (सोडियम उज्जिदोषिद) से संयुक्त होता है तो सोडियम स्फटेत स्फ (ओ सो)$_3$ बनाता है :—

स्फ (ओ उ)$_3$ + ३सो ओ उ

= स्फ (ओ सो)$_3$ + ३ उ$_2$ ओ

ऐसे ओषिद और उदोषिदोंके लवणोंका जलमें घुलनेपर विच्छेद हो जाता है। लोह, क्रोम आदि तत्व इसी श्रेणीके हैं।

जो तत्व प्रबल ऋणात्मक होते हैं, उनके उदोषिद अम्लीय होते हैं अर्थात् वे नीले द्योतक-पत्र-को लाल कर देते हैं। जैसे हरिणका उदोषिद ह (ओउ) वास्तवमें उ ह ओ (उपहरसाम्ल) है।

तत्वोंकी क्षारजनक तथा अम्लजनक शक्ति आवर्त-संविभागसे विदित हो सकती है। यह स्मरण रखना चाहिये कि अष्टम समूह और प्रथम तथा द्वितीय समूहके ख-वंशमें उपर्युक्त नियम नहीं लगते हैं। हम लिख चुके हैं कि किसी समूह-में यदि ऊपरकी ओरसे नीचेकी ओर बढ़ेंगे तो तत्वोंकी क्षारजनक शक्ति बलवती होती जावेगी, पर प्रथम और द्वितीय समूहके ख वंशमें इसके सर्वथा विपरीत ही दृष्टिगत होता है। ताम्रमें रजतसे अधिक और रजतमें स्वर्णसे अधिक क्षारजनक शक्ति है। वस्तुतः धातु तत्वोंमें स्वर्ण सबसे अधिक ऋणात्मक है। यही अवस्था द्वितीय समूहके ख-वंशमें पायी जाती है। यहां यशद कादमियमसे अधिक और कादमियम पारदसे अधिक धनात्मक है। अष्टम समूहमें अधिक पर-माणुभारवाले तत्व कम परमाणुभारवाले तत्वसे कम धनात्मक हैं। अतः लोह अधिक धनात्मक है और प्लाटिनम सबसे कम।

तत्वोंका नामकरण

[ले० श्री रामचन्द्र भार्गव, एम. बी., बी.एस., तथा श्री सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद]

हिन्दी-जगतमें जबसे विज्ञान-सम्बन्धी कार्य हुआ है तबसे सबको अंग्रेज़ी शब्दोंके अनुवादमें कठिनता प्रतीत होती रही है। कई वर्ष हुए नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने एक वैज्ञानिक कोष तैयार किया था। इसमें तत्वोंके नाम और उनके संकेत-सूत्र भी दिये गये थे। निस्सन्देह इस कोष द्वारा हमको अत्यन्त लाभ हुआ। पर यह कार्य उस समय प्रारम्भिक-प्रयास-मात्र ही था। इसके पश्चात लेखकों ने स्वेच्छानुसार अनेक तत्वोंके नाम परिवर्तित किये, और यह परिवर्त्तन आवश्यक ही था। पर जनताके सामने एक दूसरी कठिनता यह प्रस्तुत हुई कि भिन्न भिन्न लेखक महोदय अंग्रेज़ी शब्दोंका अनुवाद भिन्न भिन्न प्रकारसे करने लगे। इस प्रकार एक ही तत्वके लिये अनेक नाम प्रयुक्त होने लगे हैं। विज्ञान परिषद् अपने जीवनके दस वर्ष समाप्त कर चुका है और रसायन शास्त्रकी ओर हिन्दी जनताका ध्यान भी विशेष रूपसे आकर्षित हो रहा है। अतः इस समय यह सर्वथा आवश्यक है कि तत्वोंके नाम निश्चित रूपसे निर्धारित कर दिये जायं।

नाम निर्धारणका प्रश्न भी बड़ा विवादास्पद है। कुछ सज्जनोंकी यह सम्मति है कि अंग्रेज़ीके शब्दोंको पूर्ण रूपसे ग्रहण कर लिया जाय। कुछ शुद्ध संस्कृत शब्दोंके प्रयोगके ही पक्षपाती हैं।

अंग्रेज़ी शब्दोंके अपभ्रंश प्रचलित करनेकी भी प्रथा है। किसी किसीका यह विचार है कि तत्वों-के गुणोंके आधारपर नये नाम रक्खे जावें। सारांश यह है कि इस मत भिन्नता ने इस समय एक अद्भुत रूप धारण कर लिया है।

इन सब बातोंका विचार रखकर विज्ञान परिषद् ने एक आयोजना प्रस्तुत करनेका निश्चय किया है जो इस समय जनताके सम्मुख उपस्थित की जा रही है। वैज्ञानिक-साहित्य-प्रेमियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित होनेकी आवश्यकता है। आशा है कि सब अपनी अपनी सम्मतियोंसे लाभ प्रदान करेंगे। उचित सम्मतियां प्राप्त होनेपर इनमें सुधार भी किया जा सकता है। पर यह कार्य शीघ्र सम्पादित होना ही उचित है।

इस आयोजनामें निम्न बातों का ध्यान रखा गया है—

(अ) जिन तत्वोंके नाम भारतमें प्राचीनकाल-से प्रचलित थे उनको उसी प्रकारसे रख दिया है जैसे ताम्र, रजत, स्वर्ण, सीस आदि।

(आ) कुछ तत्वोंके नाम उनके गुणोंके अनु-सार रखे गये हैं। गुणोंमें विशेषतया रंगकी ओर ध्यान दिया गया है जैसे आलसीम, हरिन्, नैलिन्, लालम्, स्फुर आदि।

(इ) कुछ तत्व उनके उत्पत्ति-स्थानके अनुसार रक्खे गये हैं जैसे स्फटं, सैन्धकम् आदि।

(ई) दो समान तत्वोंके नाम भी कहीं कही समान रक्खे गये हैं—जैसे परारौप्यम्, संदस्तम् आदि।

(उ) अंग्रेज़ीके Proper names (व्यक्तिवाचक संज्ञायें) कुछ आवश्यकीय परिवर्तनके साथ वैसी ही रख दिये गये हैं।

(ऊ) ग्रीक आदिके शब्दोंके अनुवाद करके कुछ तत्वोंके नाम रक्खे गये हैं।

(ए) प्रत्येक धातु तत्वके अन्तमें 'म्' लगा दिया गया है। अंग्रेज़ीके 'ium' के स्थानमें 'म्' ही प्रयुक्त किया गया है।

(ऐ) Fluorine, Chlorine, Bromine, Iodine के अन्तका 'इन्' इनके अनुवादोंके अन्तमें भी रखा गया है। यथा प्लविन्, हरिन्, अरुणिन्, नैलिन्।

(ओ) संकेत सूत्रमें नामोंका प्रथम अक्षर ही अधिकतर प्रयुक्त किया गया है। जहाँ ऐसा करनेमें कठिनता पड़ी है वहाँ द्वितीय अक्षर लिया गया है। जैसे ओड्म का ड्, पलाशलीनम्का ल, संक्षीणम् क्ष इत्यादि।

(औ) संकेतमें दो अक्षर कहीं नहीं प्रयुक्त किये गये। संयुक्ताक्षरोंका प्रयोग भी अनुपयुक्त तत्वोंमें ही अधिकतर किया गया है।

(अं) बहुधा संकेतोंमें एक ही अक्षरमें ह्रस्व और दीर्घ दोनों प्रकारकी मात्राएँ नहीं लगाई गई जैसे टि यदि किसीका संकेत है तो किसी अन्य तत्वके लिये टी संकेत नहीं रखा गया।

अब हम यहाँ तत्वोंके निर्धारित नाम कारणों सहित प्रस्तुत करते हैं। आशा है कि जनता अपनी शुभ सम्मति प्रदान करके कृतार्थ करेगी।

तत्व-सारिणी

१	अन्यजन	अ	Xenon	Xe
२	अरुणिन्	रु	Bromine	Br
३	आञ्जनम्	आ	Antimony	Sb
४	आलसीम	आ	Argon	Ar
५	इन्द्रम्	इ	Iridium	Ir
६	उद्जन	उ	Hydrogn	H
७	एरबम्	ए	Erbium	Er
८	ओषजन	ओ	Oxygen	O
९	ओड्म्	ड्	Rhodium	Rh
१०	कर्बन	क	Carbon	C
११	कोबल्टम्	को	Cobalt	Co
१२	कौलम्बम्	कौ	Columbium	Cl
१३	खटिकम्	ख	Calcium	Ca
१४	गन्द्लनम्	गं	Gadolinium	Gd
१५	गन्धक	ग	Sulphur	S

१६ गालम्	गा	Gallium	Ga	५२ यीत्रबम्	यी	Ytterbium	Yb
१७ गुप्तम्	गु	Krypton	Kr	५३ यूरोपम्	यू	Europium	Eu
१८ जर्मनम्	ज	Germanium	Ge	५४ रजतम्	र	Silver	Ag
१९ ज़िरकुनम्	ज़ि	Zirconium	Zr	५५ रश्मिम्	र	Radium	Ra
२० टंकम्	टं	Boron	B	५६ रागम्	रा	Chromium	Cr
२१ टरबम्	ट	Terbium	Tb	५७ रुथेनम्	रु	Ruthenium	Ru
२२ टिटेनम्	टि	Titanium	Ti	५८ रैनम्	रै	Rhenium	Re
२३ तन्तालम्	त	Tantalum	Ta	५९ लालम्	ला	Rubidium	Rb
२४ ताम्रम्	ता	Copper	Cu	६० लीनम्	ली	Lanthanum	La
२५ थलम्	थ	Tellurium	Te	६१ लुटेशम्	लु	Lutecium	Lu
२६ थूलम्	थू	Thulium	Tm	६२ लोहम्	लो	Iron	Fe
२७ थैलम्	थै	Thallium	Tl	६३ वङ्गम्	व	Tin	Sn
२८ थोरम्	थो	Thorium	Th	६४ वासम्	वा	Osmium	Os
२९ दस्तम्	द	Zinc	Zn	६५ विशद	वि	Bismuth	Bi
३० दारुणम्	दा	Dysprosium	Dy	६६ वुल्फ्रामम्	व	Tungsten	W
३१ दीप्त	दी	Niton	Nt	६७ व्योमम्	वो	Caesium	Cs
३२ नकलम्	न	Nickel	Ni	६८ शशिम्	श	Selenium	Se
३३ नीलम्	नी	Indium	In	६९ शैलम्	शै	Silicon	Si
३४ नूतनम्	नू	Neon	Ne	७० शोणम्	शो	Lithium	Li
३५ नैलिन्	नै	Iodine	I	७१ संक्षीणम्	क्ष	Arsenic	As
३६ नोषजन	नो	Nitrogen	N	७२ सन्दस्तम्	सं	Cadmium	Cd
३७ नौलीनम्	नौ	Neodymium	Nd	७३ सल्टम्	स	Celtium	Ct
३८ परप्लेटिनम्	प	Platinium	Pt	७४ सामरम्	सा	Samarium	Sm
३९ पलाशलीनम्	ल	Praseodymium	Pr	७५ सीसम्	सी	Lead	Pb
४० पारद	पा	Mercury	Hg	७६ सुनागम्	सु	Molybdenum	Mo
४१ पांशुजम्	पां	Potasium	K	७७ सूजकम्	सू	Cerium	Ce
४२ पिनाकम्	पि	Uranium	U	७८ सैन्धकम्	सै	Sodium	Na
४३ पैलादम्	पै	Palladium	Pd	७९ स्कन्दम्	स्क	Scandium	Sc
४४ प्रविन्	प्र	Fluorine	F	८० स्त्रंशम्	स्त	Strontium	Sr
४५ बलदम्	ब	Vanadium	V	८१ स्फटम्	स्फ	Aluminium	Al
४६ बेरीलम्	बे	Beryllium	Be	८२ स्फुर	स्फु	Phosphorous	P
४७ भारम्	भ	Barium	Ba	८३ स्वर्णम्	स्व	Gold	Au
४८ मगनीसम्	म	Magnesium	Mg	८४ हरिन्	ह	Chlorine	Cl
४९ मांगनीज़	मा	Manganese	Mn	८५ हिमजन	हि	Helium	He
५० मैसीरम्	मै	Mesarium	Me	८६ हेफनम्	हे	Hafnium	Hf
५१ यित्रम्	य	Yttrium	Y	८७ हौलमम्	हौ	Holmium	Ho

नाम निर्धारणके कारण

१. Xenon शब्द ग्रीक 'ज़ीनोस' से निकला जिसका तात्पर्य 'अजनबीसे है इस कारण इस तत्वके हेतु 'अन्यजन' शब्द उपयुक्त समझा गया है।

२. Bromine का रंग कुछ लाली लिये होता है अतः 'अरुणिन' शब्द इसके लिये रखा गया है।

३. Antimony Sulplide नेत्रमें अंजनके रूपमें उपयुक्त होता है अतः Antimony तत्वको आंजनम् कहा जाना उचित है।

४. Argon शब्दकी उत्पत्ति ग्रीक शब्द आरगससे हुई है जिसका अर्थ आलसी है। इस तत्वके गुणोंका ध्यान रखते हुये भी इसे आलसीम कहना ही उचित प्रतीत होता है। यह स्पष्ट ही है कि यह यौगिकोंके निर्माणमें कोई भाग नहीं लेता है।

५. Iridium का मूल Iris है जिसके अर्थ इन्द्र-धनुषके हैं अतः इस तत्वको इन्द्रम् कहना अनुपयुक्त नहीं होगा।

६. Hydrogen शब्दके मूल अर्थ जलोत्पादकके हैं। उद शब्दके अर्थ भी जल है अतः इस तत्वको उद्जन कहना चाहिये। अब तक बहुधा इसके लिये उज्जन शब्द प्रयुक्त होता था पर उद् शब्द जलका वाची नहीं है (उद् + जन = उज्जन)। Hydroxide के लिये उज्जोषिद प्रयोग करना सर्वथा ही अशुद्ध है क्योंकि उज्ज के कोई अर्थ ही नहीं है। इसके लिये उदोषिद प्रयुक्त होना चाहिये।

७. Erbium व्यक्ति वाचक संज्ञा है अतः इसे एरबम् लिखना ही उचित है।

८. Oxygen वस्तुओंके जलनेमें साधक होता है। संस्कृतमें ओषका अर्थ जलनेवाला है अतः इस के लिये ओषजन शब्द रखा गया है।

९. Rhodium का मूल एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ गुलाब है गुलाबके लिये Rhodon शब्दसे मिलता जुलता 'ओड्रम्' शब्द संस्कृतमें प्रयुक्त होता है अतः इसके लिये ओड्रम् रखना ही उचित है।

१०. कर्बन शब्द Carbon के लिये बहुत प्रचलित है अतः इसका परिवर्तन करना वाञ्छनीय नहीं है।

११. Cobalt एक जर्मन ज़िन्द Kobald के नामपर रखा गया है। व्यक्ति वाचक संज्ञा होनेके कारण इसको कोबल्टम् रूप ही दिया गया है।

१२. कौलम्बम् Columbium के स्थानपर रखा गया है क्योंकि इसका आदि सम्बन्ध कोलम्बिया देशसे है।

१३. खटिक शब्द 'खड़ियाके अर्थमें संस्कृतमें मिलता है। Calcium खड़ियासे ही प्राप्त तत्वका नाम है अतः इस तत्वको खटिकम् कहनेमें कोई हानि नहीं है।

१४. Gadolinium को गन्दलनम् कहनेका कारण इसका व्यक्तिवाचक संज्ञा होना है।

१५. Sulphur को गन्धक सभी कहते ही हैं।

१६. Gallium शब्द गाल देश (फ्रान्स) के नामपर पड़ा है अतः हम भी इसे गालम् कहना ही अधिक उचित समझते हैं।

१७. Kryption शब्दका मूल अर्थ छिपा हुआ है अतः इसे गुप्तम् ही कहा जाना चाहिये।

१८. Germanium का सम्बन्ध जर्मन देशसे होनेके कारण इसे जर्मनम् नाम देना ही उपयुक्त होगा।

१९. Zirconium शब्द अरबी भाषाके ज़रकुन शब्दसे जिसका अर्थ 'सुनहरी है, सम्बन्ध रखता है अतः इस तत्वको ज़िरकुनम् कहनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

२०. Borax को संस्कृतमें 'टंकण' कहते हैं अतः Boron को टंकम् कहना उचित है।

२१. Terbium व्यक्ति वाचक संज्ञाके आधार पर है अतः इसे टरबम् कहा गया है।

२२. टिटेनम् भी व्यक्ति वाचक संज्ञाके आधार

पर Titanium तत्वके लिये उपयुक्त किया गया है।

२३. Tantalum व्यक्तिवाचक है अतः इसे तंतालम् कहना चाहिये।

२४. Copper को ताम्र कहना ही चाहिये क्योंकि यह बहुत प्राचीन प्रयोग है।

२५. Tellurium ग्रीक शब्द Tellus से निकला है जिसके अर्थ पृथ्वी या थलके होते हैं अतः इसे थलम् कहना चाहिये।

२६. Thulium थूल देशके नाम पर निर्धारित किया गया है अतः हम भी इस तत्वको थूलम् कहेंगे।

२७. Thallium व्यक्ति वाचक है अतः इसे थैलम् कहा गया है।

२८. Thorium शब्द नार्वे देशके एक देवता Thor थोरके नाम पर पड़ा है अतः हम भी इसे थोरम् कहेंगे।

२९. Zinc को संस्कृतमें दस्ता कहते हैं अतः हम इस तत्वको दस्तम् कहेंगे। दस्ताम् या दस्ता इसलिये नहीं रखा गया कि Zincate का अनुवाद कठिन पड़ जाता दस्तम् शब्दसे दस्तेत शब्द सरलतया बनाया जा सकता है।

३०. Dysprosium का अर्थ 'दुःखमय' है अतः इस तत्वको 'दारुणम्' कहना अधिक उचित है।

३१. Niton शब्द का मूल अर्थ 'चमकता हुआ' है अतः इसको दीप्त कहना चाहिये।

३२. Nickel शब्द जर्मन शब्द Kupper Nickel (नक़ली तांबा) से निकला है क्योंकि इसके लवण और तांबेके लवणोंका रंग एक साथ है और अब जब वह अलग हो गया है तो वह चांदी के समान प्रतीत होता है और चांदीसे सस्ता भी है अतः इसे नक़ली चांदी समझना चाहिये। हम भी इसे नक़लम् कहेंगे।

३३. Indium शब्द Indigo से निकला है जिसका अर्थ 'नील' है अतः इसे हम नीलम् कहेंगे।

३४. Neon के मूल अर्थ 'नये' के हैं अतः इसे नूतनम् कहना चाहिये।

३५. Iodine के रंगका ध्यान रखते हुए इसे नैलिन् कहना अत्यन्त उपयुक्त है।

३६. Nitrogen वायुका एक भाग है। जब वस्तु जलती हैं तो ओषजन उनके जलनेमें साधक होता है। जब ओषजन समाप्त हो जाता है तो वस्तुएँ नहीं जल सकती हैं क्योंकि Nitrogn जलनेमें बाधक है। यह ओषजनका विरोधी है। अतः इसका नाम नोषजन रख दिया गया है।

३७. Neodymium = Neos (नव) + Didymos (छिपा हुआ) अतः इसे नवलीनम् कहना चाहिये। संकेत की कठिनताके कारण 'नव' का प्रसिद्ध अपभ्रंश 'नौ' कर दिया गया है। अतः इसको नौलीनम् कहना चाहिये।

३८. Platinum का मूल अर्थ चांदी है, दोनोंके गणोंमें भी अधिक समानता है अतः इसे परौप्यम् कहा गया है।

३९. Praseo का मूल अर्थ 'हरा' है और संस्कृतमें हराके लिये पलाश शब्द है अतः Praseodymium को पलाशलीनम् कहना चाहिये।

४०. Mercury को पारद सभी कहते हैं।

४१. Potassium का सम्बन्ध राख (ash) से है। राखको पांशु कहते हैं अतः इस तत्व को पांशुजम् कहना चाहिये।

४२. Uranium शब्द के ग्रीक-मूल-रूपका अर्थ स्वर्ग है हम इस तत्वका नाम स्वर्गाधिपति महादेव (पिनाक) के नाम पर पिनाकम् रखते हैं।

४३. Palladium शब्द व्यक्तिवाचक है अतः हम इसे पैलादम् कहेंगे।

४४. Fluorine को प्लविन् कहना चाहिये चाहिये क्योंकि संस्कृतमें प्लव का अर्थ 'बहता हुआ है। यह शब्द इस तत्वके वायव्य रूपकी ओर आदेश करता है।

४५. Vanadium तत्व अन्य धातुओंके साथ मिलकर दृढ़ता देता है अतः इसे बलदम् कहना चाहिये।

४६. Beryllium बेरील नामक रत्नसे निकला है अतः इसे बेरीलम् कहना चाहिये।

४७. Barium शब्द Baros (भारी) से निकला है अतः इसे हम भारम् कहेंगे।

४८. Magnesium मगनीशियासे सम्बन्ध रखता है अतः इसे मगनीसम् कहना चाहिये।

४६. Manganese को मगनीसम्से पृथक् रूप देनेके लिये मांगनीज़ कहेंगे।

५०. Maswirium व्यक्ति वाचक है अतः इसका नाम मैसवीरम् होना चाहिये।

५१. Yttrium यित्रम्
५२. Ytterbium यीत्रबम्
५३. Europium यूरोपम्

व्यक्तिवाचक हैं। संकेतोंका ध्यान रखते हुये यह रूप दिया गया है।

५४. Silver को रजतम् कहनेकी प्राचीन प्रथा है।

५५. Radium के गुणोंका ध्यान रखते हुए इसे 'रश्मिम्' कहना अति उचित है। रश्मिका अर्थ किरण है।

५६. Chromium का रंगसे सम्बन्ध है अतः इसे रागम् कहना चाहिये। रागका अर्थ संस्कृतमें रंग है।

५७. Ruthenium व्यक्ति वाचक शब्द है अतः इसे रुथेनम् कहा गया है।

५८. Rhenium व्यक्ति वाचक शब्द अतः इसे रैनम् कहा गया है।

५६. Rubidium शब्दका मूल अर्थ लाल है अतः इसे लालम् कहा गया है।

६०. Lanthanum शब्दके ग्रीक-मूल-रूपका अर्थ छिपा हुआ है अतः इसे लीनम् कहा गया है।

६१. Lutecium शब्द पेरिस नगरके नाम Lutecia पर पड़ा है अतः हम भी इसे लुटेशम कहेंगे।

६२. Iron के लिये लोह शब्द प्रसिद्ध है अतः इस तत्वको लोहम् कहेंगे।

६३. Tin को संस्कृतमें वंग कहते हैं अतः इस तत्व को वंगम् कहना चाहिये।

६४. Osmium में Osme का अर्थ सूंघना है अतः इस तत्व को वासम् कहना चाहिये।

६५. Bismuth शब्द जर्मन Weissmuth (श्वेत पदार्थ) से निकला है। विशद शब्द संस्कृतमें श्वेत का भी वाचक है अतः इस तत्वको विशदम् कहेंगे।

६६. Tungsten यह वुल्फ्राम नामक खानमें से निकलता है अतः इसे वुल्फ्रम् कहना चाहिये।

६७. Caesium का अर्थ आकाशवाची है अतः इसे व्योमम् कहना चाहिये।

६८. Selenium में Selene का अर्थ चन्द्र (शशि) है अतः इसे शशिम् कहना चाहिये।

६९. Silicon पत्थरमें अधिकतासे पाया जाता है अतः इसे शैलम् कहना अधिक उपयुक्त है।

७०. Lithium का लाल रंगसे अधिक सम्बन्ध है अतः इसे शोणम् कहेंगे। शोणका अर्थ 'लाल' है

७१. Arsenic विषके प्रयोगमें आता है इसका संखिया (या संक्षीण-क्षीण अर्थात् नाश करनेवाला) से सम्बन्ध है अतः इसे संक्षीणम् कहा जाना चाहिये।

७२. Cadmium के गुण Zinc अर्थात् दस्तासे बहुत मिलते हैं अतः संदस्तम् कहना चाहिये।

७३. Celtium व्यक्ति वाचक शब्द है अतः सल्टम नाम रखा गया है।

७४. Samarium व्यक्तिवाचक है अतः सामरम् शब्द इस तत्वके लिये निर्धारित किया गया है

७५. Lead का अर्थ 'सीसा' प्रसिद्ध है अतः इस तत्वको सीसम् कहना चाहिये।

७६. Molybdenum का मूल अर्थ 'सीसा'

वाचक है। संस्कृतमें सीसाको नाग भी कहते हैं अतः इस तत्वको सुनागम् कहना उचित हैं।

७७. Cerium का मूल कदाचित् Create (बनाना, सृजन) है अतः इसे सृजकम् कहनेमें कोई हानि नहीं है।

७८. Sodium नमक द्वारा प्राप्त एक तत्व है। नमक को संस्कृतमें सैन्धव भी कहते हैं अतः इसका सैन्धकम् नाम रखा गया है।

७९. Scandium शब्द स्कैण्डिनेविया देशके नामपर निर्धारित किया गया है, अतः इसे स्कंदम् कहना ही उचित है।

८०. Strontium शब्द Argyllshire के नगर Strontian से निकला है अतः इसे हम स्त्रंशम् कहेंगे।

८१. Alum से जिसका अर्थ फिटकरी या स्फट है, Aluminium शब्द बना है अतः इसे हम स्फटम् कहेंगे।

८२. Phosphorous अंधेरेमें भी प्रकाशकी चिनगारियाँ छोड़ता है। चिनगारियोंके लिये संस्कृतमें स्फुर शब्द है। अतः इस तत्वको भी स्फुर कहना ही उचित है।

८३. Gold को संस्कृतमें स्वर्ण कहते है अतः इस तत्वको हम स्वर्णम् कहेंगे।

८४. Chlorine के हरे रंगका ध्यान रखते हुए इसे हरिन् कहना अनुपयुक्त न होगा।

८५. Helium का उपयोग शीततापक्रम उत्पन्न करनेके लिये होता है। हिम शब्द शीतका वाचक है अतः इसे हिमजन कहना ही उचित है।

८६. Hafnium व्यक्तिवाचक शब्द है अतः इसे हेफनम् कहना चाहिये।

८७. Holmium व्यक्ति वाचक शब्द है अतः इसे हौलमम् कहना चाहिये।

वनस्पति क्रिया विज्ञानपर कुछ विचार

[ले० श्री जगमोहन चतुर्वेदी, बी. एस-सी.]

वनस्पति जीवनकी ओर यदि आप दृष्टिपात करेंगे तो आपको मालूम होगा कि वृक्षोंकी पौधोंकी लताओं-की तुलना हम मनुष्योंसे कर सकते हैं—मनुष्य अपने जीवनमें जिस प्रकार बाल, युवा एवं वृद्ध होता है उसी तरह वृक्ष भी बाल्यावस्था युवावस्था और जठरावस्थाको प्राप्त होते हैं।

विकासवादियोंका मत है कि जीवधारियों और वनस्पतिके एक ही पूर्वज थे। इनके पूर्वजों-की दशाका यदि आप ध्यान करना चाहें तो एक कोष (Cell) को एक जीव मान लीजिये—अथवा यों कहिये कि जीवधारियोंके और वनस्पतिके आदि पूर्वज एक ही कोष (Cell) वाले जीव थे। एक ओर तो उनसे लता, पौधों और वृक्षोंका उत्कर्ष हुआ और दूसरी ओर इन करोड़ों जीवधारियोंका जैसे कीट, पतंग, पशु, पक्षी एवं मनुष्य।

वैशेषिकका मत है कि पहले आकाशकी उत्पत्ति हुई, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्नि-से जल और जलसे पृथ्वी। इस पृथ्वीपर पहले स्थावर ही सृष्टि हुई। विकासवादी भी यही मानते हैं अन्तर केवल इतना ही है कि वे वायुके परे नहीं जाते क्योंकि उनका प्रश्न इतनेसे ही सिद्ध हो जाता है, अतएव अधिक खोजकी उनको आवश्यकता नहीं—प्रधान मत भेद केवल इतना है कि वेदानुगामी जन मनुष्यको ईश्वरीय रचना मानते हैं। विकासवादियोंका कहना है कि एक सेलके जीव जानवरोंमें (amoeba) चपलम् सा और वनस्पतिमें (ulothrix) अरालकचके (Zoorpor) जन्तु बीजकोषसा दोनों ही स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते थे। उन्हें अपनी जीवन क्रि-यायोंमें किसीका सहारा न लेना पड़ता था। शनैः शनैः यह स्वतन्त्र जीव संघों (Colonies) में रहने लगे यद्यपि इनका जीवन स्वतंत्र ही था और

जीवन क्रियायें सरल थीं। होते होते इन सांविक (Cell) कोषोंमेंसे कुछ भोजन लानेका कार्य, कुछ पाचनका कार्य, कुछ उच्चारको फेंकनेका काम करने लगे। यहींसे प्रत्येक (Cell) सेलको एक दूसरेकी आवश्यकता पड़ी और प्रत्येक कोष (Cell) को एक निश्चित काम करना पड़ने लगा (Division of labour)।

उत्कर्षमें क्रमशः विभिन्नता और विशेषत्व (Differentiation or specialisation) होतेगये यहांतक कि एक तह वाले जीवसे दो तह वाले जीव और फिर तीन तह वाले जीव बने। दो तह वाले जीवोंमें जलव्याल (Hydra) की गिनती है और तीन तह वाले जीवोंमें गेंसासे लेकर मनुष्य तककी गणना है।

मैंने जो यहांपर थोड़ासा जीव विकासका उल्लेख किया है वह निरर्थक नहीं है। उसका अभिप्राय यह है कि छोटेसे जीवकी जीवन क्रियायें भी सूक्ष्म एवं सरल होती हैं किन्तु जैसे हो जीवमें विभिन्नता और विशेषत्व (Differentiation and specialisation) हुई वैसे ही उसकी जीवन क्रियायें भी विपुल एवं क्लिष्ट हो जाती हैं। वस्तुतः यह कहना ठीक ही होगा कि शरीरकी रचना जीवन क्रियापर निर्भर है। काईके पौधे आपने देखे ही होंगे जो बरसातमें तालाब वग़ैरहके पानीपर तैरते हैं अथवा दीवालसे चिपटे पाये जाते हैं। काईकी शरीर रचनासे मालूम पड़ता है कि उसकी क्रियायें भी सुगम एवं सूक्ष्म हैं। ऐसे पौधोंमें न तो जड़ की, न डालियोंकी ही मुख्य आवश्यकता है क्योंकि आप जानते हैं कि काईका पत्ता ही प्रधान अङ्ग है और उसका छोटासा तना (main stem) ही पानी खींच सकता है। पानीमें रहनेके कारण उसके चारों ओर सख़ (cuticle) क्यूटीकल नहीं होती। उसके दार्विक नालियें (Xylem Vessels) की तरह खुराक ले जानेवाली नली अधिक उलझाहटके नहीं होते। इस छोटेसे काई-के पौधेकी और वृक्षकी शरीर-रचनाका विचार कीजिये तो आपको उनके जीवन क्रियाओंका पता लगेगा। एक बड़ेसे वृक्षमें यदि उसमें जड़ न हो तो वह किस क़दर ठंडा रह सकता है, यदि उसमें बाहरकी जाल और सख़ (cuticle) क्यूटीकल न हो तो उसका पानी जो वृक्षोंका जीवन है भाप बन कर उड़ जाय और वृक्ष सूखकर मर जाय। बहुत सी पत्तियां और शाखायें वृक्षके खाद्य पदार्थ बनाने और उनको आवश्यकीय स्थानपर पहुँचाने-के काम की हैं।

छोटे छोटे पौधोंकी जीवन क्रियायें सूक्ष्म एवं सरल होनेके कारण उनपर अधिक विचार न करते हुए मैं वृक्षोंकी जीवन क्रियाओंपर विचार करूँगा।

आपको ध्यान होगा मैं कह चुका हूं कि पौधों-की लताओंकी और वृक्षोंकी तुलना हम मनुष्योंसे कर सकते हैं। वह कैसे ? मनुष्य जो खुराक खाता है उसका परिवर्तन उसके शरीरमें होता है और छूछा पदार्थ फिर बाहर निकाल दिया जाता है अथवा खुराक खानेमें दो क्रियायें होती हैं (१) शरीरवर्द्धक (anabolism) (२) शरीर विनाशक (katabolism)। इन दोनों क्रियाओंको मिलाकर आय व्यय लेखा (Metabolism) कहते हैं। आय व्यय लेखेके साथ ही साथ मनुष्योंमें बढ़ना, उत्थान करना, उत्पन्न करना और चलनेकी क्रियायें भी सम्मिलित हैं। जो हाल मनुष्योंका है बस वही हाल वृक्षोंका है। अब मैं वृक्षोंकी इन जीवन क्रियाओंको पृथक् पृथक् वर्णन करूँगा।

आय व्यय लेखा

पौधेका रासायनिक संगठन :—

प्रत्येक मनुष्य जानता है कि जब कोई पौधा सुखाया जाता है तो उसकी कितनी तौल कम हो जाती है और उसके साथ उसकी दृढ़ता और लचकता चली जाती है। भांति भांतिके पौधोंमें जलकी मात्रा पृथक् पृथक् है। पानीकी मात्रा पौधेमें ५० सैकड़ेसे लेकर ९८ तक होती है कटीले वृक्षोंमें ५० फ़ी सैकड़ा और जलके वृक्षोंमें ९८ फ़ी सैकड़ातक पाई जाती है। अब आपको मालूम

हो गया कि वनस्पतिका प्रधान अङ्ग तो जल और बाक़ीका सूखा पदार्थ कुछ तो ऐसा है जो जल जाता है जिसे आङ्गरिक (Organic ' ओरगेनिक और कुछ ऐसा होता है जो नहीं जलता किन्तु खाक रूपमें रह जाता है जिसे अनाङ्गारिक (In organic) इन ओरगेनिक कहते हैं। इस खाकमें जो प्रधान तत्व पाये जाते हैं उनके नाम यह हैं। हरिन् (chlorine), गन्धक (Suphur) स्फुर (Phosphorus), सिलीकन Silicon), पांशुज (Potassium), सोडियम या लावण्य(Sodium), चूर्णज (Calcium), मागनीसम (Mg.) और लोहा (Fe.)।

सूखे पौधेको जलानेसे (Organic) आंगरिक पदार्थोंका रूप बदल जाता है और वायुमंडलमें (Co_2) अंगार द्विओषिद, जल, नत्रजन (N_2) अथवा (Ammonia) एमोनियाके रूपमें व्याप्त हो जाते हैं। इनमें (C. H. O. N.) अंगार, उज्जन, और ओषजन और नत्रजन रसायनिक रूपमें मिले पाये जाते हैं।

जब आपको यह मालूम हो गया कि पौधोंमें (१) जल, (२) (Inorganic) अनांगारिक और (३) (Organic) आंगारिक पदार्थ सब मिलकर १३ तत्व पाये जाते हैं तो स्वभावतः प्रश्न होता है कि यह पौधोंमें कहांसे आये? इस प्रश्नका उत्तर आपको तभी मिल सकता है जब आप पौधेके जीवन व्यवस्थापर विचार करें। आप जानते हैं कि कुछ पौधे ऐसे हैं जो ज़मीनपर रहते हैं, कुछ हवाका ही आधार रखते हैं और कुछ ऐसे हैं जो दूसरे जीव अथवा पौधेपर बसर करते हैं इनको परोपजीवी कहते हैं (Parasites)।

इस प्रकार पौधे ज़मीनसे, पानीसे, हवासे अथवा अन्य जीवोंसे उन पदार्थोंको ले लेते हैं जो उनके भीतर पाये जाते हैं किन्तु पौधेकी आवश्यकताओंकी सब वस्तुएँ एक ही स्थानसे नहीं मिलतीं। पृथ्वीके वृक्ष अपनी जड़ोंको ज़मीनमें भीतर प्रवेशकर अपनी पत्तियोंदार शाखाओंको हवामें लहलहाते हैं। बहुतसे पानीके पौधोंमें कुछ ऐसे भी अंग होते हैं जो हवामें रहते हैं—परोपजीवी पौधे भी अपने लिये कुछ पदार्थ हवासे प्राप्त करते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या पौधे भी मनुष्य की तरह ठोस पदार्थ खा सकते हैं? नहीं, पौधे ठोस वस्तुको नहीं खा सकते, उनके मनुष्यको भांति मुख नहीं होता इसीलिये वायव्य एवं द्रव पदार्थ ही पौधोंमें प्रवेश कर सकते हैं। ठोस पदार्थ पानीके साथ घुलकर पौधेमें प्रवेश करते हैं और हवा पत्तियोंके छोटे छोटे छेदों द्वारा पौधोंमें प्रवेश करती है क्योंकि पौधे सब स्थानसे कठोर क्यूटिकल (Cuticle) से ढके होते हैं।

पौधेका पानी चूसना और उसका चलन

इसके पूर्व कि मैं पौधेकी पानी पी लेनेकी शक्ति और उसके चलनका वर्णन करता हूं। यदि एक सेल (Cell) के पानी लेनेकी रीतिका वर्णन किया जाय तो सुविधा होगी। आप शायद यह भी न जानते हों कि सेल (Cell) क्या वस्तु है?

समस्त जीव और पौधे बहुत छोटे छोटे कोषोंके समुदायसे बने हुए हैं जिनको हम सेल (Cells) कहते हैं। जीवधारियों और पौधोंके सेल (Cell) में अन्तर इतना ही है कि पौधोंके सेल्स (Cells) के चारों तरफ़ कोष भित्ती (Cell wall) होती है।

राबर्ट हुक (Robert Hook) ने १६६७में ऐसे छोटेसे कोषको सेल (Cell) का नाम दिया क्योंकि यह खुर्दबीनसे देखनेसे मद्दूके छत्तेके छिद्रोंके समान प्रतीत होते थे।

अब हमको यह विवेचन करना है कि इस (Cell) कोषके भीतर कौन कौनसे अङ्ग पाये जाते हैं जिनसे मिलकर यह कोष (Cell) बनता है। पौधेके कोष (Cell) के चारों तरफ़ एक भित्ती (Cell wall) होती है। इसके भीतर एक गोल

पिंड पाया जाता है जिसे हम केन्द्र (Nucleus) कहते हैं। केन्द्र और कोटरके बीचमें जो पदार्थ होता है उसे जीवाद्यम या साइटोप्लास्म (Cytoplasm) कहते हैं। केन्द्र (Nucleus) के चारों तरफ़ रंगमय (Chromatophores) होते हैं। एक आदर्श जीवित पौधेके (Cell) सेलमें यही पदार्थ पाये जाते हैं और इन सब पदार्थोंको मिलाकर जीवनमूल प्रोटोप्लास्म (Protoplasm) का नाम दिया गया है।

नीचे श्रेणीके पौधों (Bacteria & Cyahoyceace) के सेलमें केन्द्र माननेमें मतभेद है और (Chromatophores) रंगमय (bacteria funfi) और जीवोंके सेलोंमें नहीं पाये जाते। जीवोंके कोष सदा जीवनमूलसे भरे रहते हैं किन्तु पौधोंके कोषोंमें शीघ्र ही बड़े बड़े (Cell cavities) कोष विवर पड़ जाते हैं और इनमें पानीला घोल भर जाता है जिसे (Cell sap) कोषका घोल कहते हैं। पूरे बढ़े हुए सेलमें समस्त बीचके भागमें कोष विवर विस्तृत रहता है। जीवाद्यम कोषभित्ती से चिपका रहता है और इस जीवाद्यममें केन्द्र छिपा होता है।

अब आपको मालूम हो गया कि सेल क्या वस्तु है और उसके भीतर क्या पदार्थ होते हैं। अब मैं आपको बताऊँगा कि यह सेल किस तरह ठोस पदार्थ जल एवं वायुको खींचता है।

पौधोंका प्रत्येक अंग पानीसे पूर्ण होता है और इस लिये सेलकोटर भी पानीसे स्निग्ध रहती है। इस पानीकी बूँदें और सेलके पदार्थ इस प्रकार मिश्रित है कि सेलकोटरमें आप पानीके कणोंको देख नहीं सकते। पानी जो इस तरह सेल कोटरमें पाया जाता है जज़्ब पानी (water of inhibition) के नामसे प्रसिद्ध है। जब पानी सूख जाता तो सेलकोटर सिकुड़ जाता है किन्तु जब पानी फिर मिलता है तो फूल जाता है। जीवनमूलका भी यही हाल है कि पानी पाकर फूल जाता है और उसके बिना सिकुड़ जाता है।

जब जीवनमूल जलसे स्निग्ध नहीं होता तो यह कोष भित्तीके पानीको ले लेती है और कोषभित्ती बाहरसे पानी फिर प्राप्त कर लेती है जबतक कि सेलकोटर भी जलसे स्निग्ध न हो जावे। इस प्रकार जीवाद्यमकी पानीकी कमी बाहरसे पूरी होती है।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या कारण है कि बाहरके पानीको तो सेल भीतर खींच ले मगर उसका पानी बाहर न जाय? इसका कारण यह है कि जीवनमूल (Protoplasm) की तहके भीतर कोष (Cell) का घोल होता है जिसमें आंगारिक (Organic) और (Inorganic) अनांगारिक लवण (Salts) घुले होते हैं इस कारणसे इस सेल घोल (Cell sap) का घनत्व (Concentration) जलके घनत्वसे अधिक होता है और दूसरी बात यह है कि जीवनमूल कुछ कुछ अर्धभेदी (Semi-permeable) होता है यानी प्रोटोप्लास्ममें होकर पानी तो घुस सकता है मगर सेल घोल नहीं निकल सकता। कीपके ऊपर अर्धभेदी झिल्ली लगा दो और उसमें शकरका घोल भर दो। इससे एक (Manometer tube) मेनोमीटर नली लगा दो। कीपको पानीमें रक्खो। पानी कीपमें झिल्ली द्वारा प्रवेश करता है किन्तु शकरका घोल बाहर नहीं निकलता। इसी कारण पारा एक स्थानसे सरककर दूसरे स्थानपर आ जाता है। ऐसी स्थितिमें (Osmosis) प्रेरणाका क़ायदा है कि पानी सेल खोखलमें प्रवेश करेगा जबतक बाहर और भीतरके जलका घनत्व एक न हो जाय ऐसा करनेसे सेल पानीसे फूल जाता है और सेल कोटर भी तन जाती है, किन्तु जब यही सेल अधिक घने घोलमें रक्खा जाय तो सेलका घोल बाहर निकलना शुरू कर देगा जबतक कि बाहर और भीतरके घोलका घनत्व एक न हो जाय। ऐसी दशामें कोषभित्ती सिकुड़ जाती है। कोष विवर भी सिकुड़ जाती है और उसके साथ साथ जीवनमूलकी तह भी कोषभित्तीको छोड़कर सि-

कुड़ जाती है। सेलकी इस दशाको मुर्झाई हुई दशा (Plasmolysis) कहते हैं।

किन्तु प्रकृतिमें ऐसे अवसर बहुत कम पाये जाते हैं कि सेलके बाहरके जलका घनत्व सेल घोलके घनत्वसे अधिक हो। बाहरके जलमें बहुत सूक्ष्म मात्राओंमें लवण (Salts) घुले होते हैं और सेल घोलका घनत्व सदा बाहरी जलके घनत्वसे अधिक होता है, और दूसरी बात यह है कि प्रोटोप्लास्मकी सरहद्दी तहोंमें चुनावकी शक्ति (Selective power) मौजूद है अर्थात् बाहरकी लाभदायक वस्तुओंको ग्रहण कर सकता है किन्तु हानिकारक वस्तुओंसे बचता है। उदाहरणार्थ (Sea weed) समुद्री घासको ले लीजिये तो आपको मालूम होगा कि यह चुनावकी शक्ति किस तरह कार्य्य करती है।

समुद्र जलमें लगभग ३% तो लवण होता है और पांशुज लवणकी मात्रा बहुत सूक्ष्म पाई जाती है। अब इस समुद्री घासके सेलोंको यदि आप देखेंगे तो उनमें (Iodine) नैलि और पांशुज लवणकी मात्रा अधिक मिलेगी, अर्थात् समुद्री घासके प्रोटोप्लास्ममें वह शक्ति है कि नमकको न ग्रहण करता हुआ नैल (Iodine) को ग्रहण करता है और नैल (Iodine) समुद्री घासमें इतनी पाई जाती है कि इसीसे नैल निकाली जाती है।

यही कारण है (Penicillium glaucum) आर्घषणीम् बनश्यामम् अपने विष तूतियासे मिश्रित भोजनपर बसर कर सकता है क्योंकि केवल लाभदायक खाद्य पदार्थ ही सेलके भीतर घुसने पाते हैं किन्तु तूतियाका प्रवेश नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त कोषोंमें एक और खूबीकी बात है। जो पदार्थ जीवनमूलकी सरहद्दी तहोंको भेद सकता है अन्तमें उसके घोलका घनत्व सेलके भीतर और सेलके बाहर सम हो जाता है, सम होनेके पश्चात् कोषके घोलमें घुले हुए पदार्थ घोलकको छोड़ देते हैं और इस तरह यह पदार्थ कोषके भीतर इकट्ठे होते रहते हैं।

बस अब आप समझ सके होंगे कि सेलमें चुनावकी शक्तिके अतिरिक्त पदार्थ इकट्ठा करनेकी शक्ति भी होती है।

अभीतक केवल यही बतलाया गया है कि ठोस पदार्थ सेलके भीतर किस तरह प्रवेश करते हैं, अब यह भी मालूम होना चाहिये कि हवा किस तरह भीतर प्रवेश करती है। सेल खोखलमें हवा उतनी ही पहुँच सकती है जितनी वह पानीमें घुल सकती है, क्योंकि सेल कोटरमें अथवा प्रोटोप्लास्ममें न तो हवाके छोटे छोटे स्थान और न नालियां ही होती हैं जिनमें होकर हवा प्रवेश कर सके।

अभीतक मैंने इस बातका ही विचार किया है कि एक सेलमें बाहरसे खुराक किस तरह आती है किन्तु अब हमको यह देखना चाहिये कि बड़ेसे वृक्षमें जिसमें करोड़ों ऐसे सेल होते हैं, भला पानी वृक्षकी जड़से पत्तियोंतक किस तरह प्राप्त होता है। यदि आप कहें कि (Osmosis) प्रेरणा द्वारा जल एक सेलसे दूसरेमें और इसी प्रकार पत्तियोंतक पहुंच जाता है तो आपका यह विचार भ्रान्ति जनक है, क्योंकि यदि इतने बड़े वृक्षमें (Osmosis) ओसमोसिसके बलसे ही पत्तियोंतक पानी पहुँचे तो आप ही सोच सकते हैं कि कितने समयकी आवश्यकता होगी ?

अहा प्रकृतिकी रचना बड़ी ही विचित्र है— वृक्षोंमें जल ही प्राण है, यह सोचकर प्रकृतिने क्या ही उत्तम जल मार्ग वृक्षके अभ्यन्तरमें बनाया है।

अभीतक आप जानते होंगे कि वृक्षके समस्त सेल एकसे ही होते हैं। नहीं नहीं, ऐसा नहीं है। वृक्षके अभ्यन्तरके अवलोकनसे मालूम होता है कि प्रत्येक पौधेमें मोटी तरहसे तीन विभाग होते हैं:—

(१) (Tegumentary tissue) चर्म तन्तु जिसका काम बाहरसे रक्षा करना है जैसे मनुष्यके लिये उसकी खाल एवं मांस।

(२) (Vascular bundles) जल और खाद्य नली समूह।

(३) (Fundamental tissue) धारकतन्तु जहांपर पदार्थ .ख़ुराकके निमित्त इकठे होते हैं।

यहांपर इन तीनों विभागोंका कुछ थोड़ासा विवेचन करके मैं आगे बढूँगा। बड़े वृक्षों और पौधोंमें बाहरके कोष भीतरी कोषसे विचित्र होते हैं। इन कोषोंकी सबसे बाहरी तहको हम (Epidermis) पृष्ठ कोषस्तर कहते हैं। पृष्ठ कोष स्तरके ऊपर (Cuticle) त्वचाकी तह और जम जाती है। यह इतनी सख्त होती है कि इसपर गन्धकके तेज़ाब तकका कुछ असर नहीं हो सकता। इस त्वचाकी कृपासे पानीका भाप बनकर उड़ जाना बहुत कम हो जाता है। गर्म देशोंके वृक्षोंमें त्वचाकी तह बहुत मोटी होती है। कुछ फलोंमें क्यूटीकलके ऊपर मोम पाया जाता है। सारांश यह है कि (legumentary Tissue) चर्मतन्तुका काम रक्षा करना ही है।

जल एवं खाद्य नली समूह

अब हमको जल एवं खाद्य नलीकी रचनापर विचार करना है। मैं बतला चुका हूं कि पानीकी नलियोंके कोष उन कोषोंसे विचित्र होते हैं जिनका वर्णन मैं पूर्वमें कर चुका हूँ। इन कोषोंमें भी दो विभाग होते हैं :—

(१) जल ले जानेवाले जिनको दार्विकनालियें (Xylem Vessels) कहते हैं।

(२) खाद्य पदार्थ ले जानेवाले वल्कलपोटलिका (Phloem bundles)

जल ले जानेवाले सेलोंमें दो तरहके सेल पाये जाते हैं। १. (Tracheides) रूक्ष। २. (Wood Pasenchyma) नलो समीपी। इसी प्रकार खाद्य पदार्थ ले जाने वाले सेलमें भी तीन तरहके सेल होते हैं। १. (Sieve Tubes) चलनीदार नली २. (Companion cells) सहगामी सेल। ३. (Paren chyma) नली समीपी।

खाद्य पदार्थ ले जानेवाली नलियोंमें जीवनमूल होता है किन्तु जल नलीके कोषोंमें जीवनमूल बिलकुल नष्ट हो जाता है। यह सेल मुर्दे हो जाते हैं। इन सेलकी खोखल एक दूसरेसे मिल जाती हैं और इस प्रकार जल नलियां जड़ोंसे लेकर पत्तियोंतक पाई जाती हैं पत्तियोंतक पहुँचकर वे पत्ती भरमें बिखर जाती हैं—इस नलीका काम जड़से पत्तियोंतक पानी पहुंचाना है। इन सेल खोखलकी कोटरकी मोटाई कई प्रकारकी होती है।

चर्मतन्तु और जल एवं खाद्य नलियोंके बीचमें जो (Tissue) तन्तु होती है उसे (Fundamental Tissue) धारक तन्तु कहते हैं। इस तन्तुके दो काम हैं :—

(१) पौधोंको खाद्य पदार्थ देना।

(२) उन खाद्य पदार्थोंको आपत्तिके समय इकट्ठा करना।

अब आप फिर अपने प्रश्नपर आ जाइये कि ज़मीनसे पत्तियोंतक पानी किस तरह पहुँचता है?

ज़मीनसे पत्तियोंतक पानी पहुँचनेमें बहुत सी क्रियायें होती हैं। पहले मैं उनके नाम लिखता हूँ और इसके पश्चात् उनका पृथक् पृथक् निरूपण करूंगा। इन क्रियाओंके नाम यह हैं :—

(१) (Root pressure) जड़का दबाव।

(२) (Capillarity of the Xylem tube) जल नलीकी बालछिद्रता।

(३) (Transpiration) पानीका भाप बन कर उड़ जाना।

वृक्षों और पौधोंकी जड़ोंके ऊपर छोटे छोटेसे रोंगटे होते हैं इन रोंगटोंके कोष ही ज़मीनसे पानी खींचते हैं। यह जड़ोंके रोंगटे (roothairs) स्वतंत्र पानीकी तहसे पानी नहीं खींच सकते, किन्तु यह रोंगटे पृथ्वीमें सम्मिलित पानीके कणोंसे चिपट जाते हैं। इन रोंगटोंके कोषोंका घनत्व (Cell concentration) बाहरी जलसे अधिक होता है; इसी कारण (Oesmosis) प्रेरणाके सिद्धान्तपर पानी इन रोंगटोंके सेलोंमें प्रवेश करता है यहांतक कि यह खूब फूल जाते हैं। कोष भित्ती लचदार होनेके कारण जितना ही सेलके भीतर पानी

आता है उतनी ही तनती चली जाती है। अन्तमें एक ऐसी अवस्था आती है जिसके बाद कोष-भित्ती अधिक नहीं तन सकती (at its maximum elasticity) रोंगटोंके कोषों और उनके पासके बल्कली कोष (Cortical Cells) इस प्रकार खूब पानीसे फूल जाते हैं। ऐसी अवस्थामें कोषभित्ती अपनी वास्तविक अवस्थाको प्राप्त होनेके लिये कोषके भीतरके पानीको बड़े ज़ोरसे दबाते हैं और इस दबाव (pressure) के कारण पानीकी धारायें जल नली (Xylem vessels) में झरने लगती हैं।

(Root pressure) जड़के दबावके प्रमाणित करनेके लिये यह प्रयोग (Experiment) किया जाता है:—

अमलेके नास्ताकुंचन (Nasturtium) के पौधे-को जड़के कुछ ऊंचेसे काट डालो। कटे हुए भाग-को रबरकी नली द्वारा दबावमापक नली (Manometer tube) से कसके बांध दो। अब कुछ घंटे बाद आप दबावमापक नलीको देखें तो आप पायेंगे कि पारा छोटी नलीसे दबकर बड़ी नलीमें अपने स्थानसे ऊपर चढ़ गया।
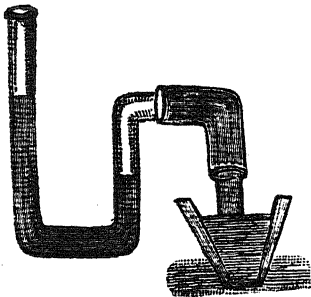
उत्स्वेदन [Transpiration] जलका भाप बनकर उड़नेमें खिचाव :—

पृथ्वीसे पानी जल नलीतक पहुँच गया, अब यह पानी जिस विधिसे पत्तियोंतक पहुंचता है उसका वर्णन करना परमावश्यक है।

पत्तियोंमें छोटे छोटे बहुतसे छिद्र (पर्णमुख) होते हैं। पौधोंके (Intercellular) कोषोंके बीच-की जगह इन छिद्रों द्वारा बाहरी वायु मण्डलसे सम्बन्ध रखती है। इन छिद्रोंको (Stimata) पर्णमुख कहते हैं। पत्तियोंपर भी त्वचा होती है। अब यदि कोई पानीके निकासका स्थान रह गया तो यही पर्णमुख हैं। इन पर्णमुखों द्वारा खुले हुए ऊपरके सेलोंका पानी गर्मी पाकर भाप बन कर उड़ जाता है और इस तरह इन कोषोंके कोष जलका घनत्व और भीतरी कोषोंके कोष जल (Cell Sap) से अधिक हो जाता है। घनत्व अधिक हो जानेके कारण ऊपरवाले कोष नीचेके कोषसे पानी खींच लेते हैं। इस प्रकार जल नली-का पानी पत्तियोंके कोषोंमें पहुँचकर स्टोमेटा (पात छिद्रों) द्वारा भाप बन कर उड़ जाता है। जल नली केवल पानीसे ही पूर्ण नहीं होती वरन उसके बीच बीचमें हवाके बबूले पाये जाते हैं। यह हवाके बबूले पानीको ऊपर ले जानेमें बड़े कामके हैं।

जैसे ही जल नलीके ऊपरके भागका पानी भाप बनकर उड़ गया वैसे ही नीचेका पानी अपनी (Cohesive) संलग्नता शक्तिसे उसके स्थानपर पहुँच जाता है और यह क्रिया निरन्तर होती रहती है। पानीके भाप बनकर उड़ जानेसे जल-नलीका पानी पत्तियोंतक खींचा जाता है। इस शक्तिको (Suction force of Transpiration) उत्स्वेदनकी आचूषण शक्ति कहते हैं।

बिना उत्स्वेदनके पौधेका जीवन कष्टसाध्य है, क्योंकि यही तो एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा पानीका संचालन पत्तियोंतक सम्भव हो सकता है और पानी ही पौधेका जीवन है जैसा मैं आपसे कह चुका हूं।

प्रकृतिने पर्णमुखों द्वारा पौधोंको एक ऐसी शक्ति प्रदान की है कि कुछ विरोधी दशाओंमें भी वे अपना निर्वाह कर सकें। यदि यह स्टोमेटा सदा एक ही अवस्थामें रहनेवाले छिद्र हों तो

अधिक गर्मी एवं अधिक जलमय वायु दोनों ही पौधोंके काल हो जावें।

स्टोमेटाके छिद्र दो संरक्षक कोषों (Guard cells) से रक्षित होते हैं। वे इस तरहके बने होते हैं कि जब वे जलसे स्निग्ध होते हैं तो छिद्र बढ़ जाता है और जब उनमें पानीकी मात्रा कम होती है तो सिकुड़ जाते हैं।
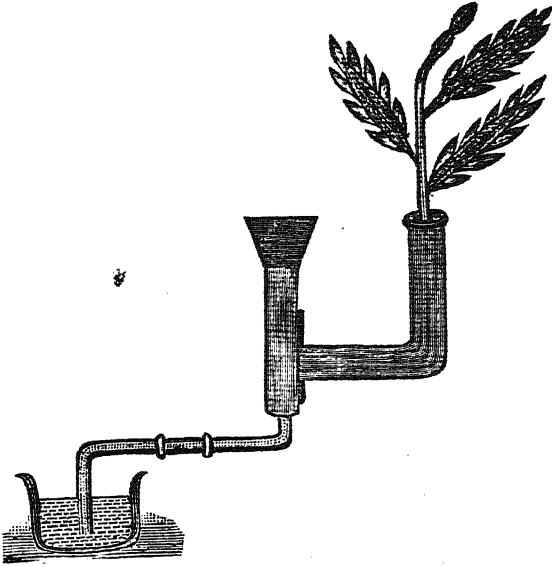
उत्स्वेदन दर्शानेके लिये यह प्रयोग किया जाता है। एक कांचको नलीमें नीमकी टहनी लगा दो, यू-नली और उससे मिली हुई नलीमें पानी भर दो सूचक (Index) नलीमें एक हवाका बबूला रहने दो। बबूला ऊपरकी तरफ़ चलता है।

जब हवा और पौधे दोनों ही पानीसे स्निग्ध होते हैं, तब उत्स्वेदन नहीं होता। उस अवस्थामें पानीकी बूँदें पत्तियोंकी प्रधान नसों द्वारा पर्णमुख द्वारा बाहर निकल पड़ती हैं। इस प्रकार पानीके निकलनेकी विधिको स्वेदन कहते हैं।

विसूचिका

[ले०—डा० रामचन्द्र भार्गव, एम. बी., बी. एस.]

[गतांकसे आगे]

अभयत्व

गिनी शूकर अथवा किसी और पशुमें मृत जीवाणुओंकी अविनाश शील मात्राका अन्तः क्षेपण करनेसे अभयत्व प्रदान किया जा सकता है। इसके पश्चात् अभयत्वको और दृढ़ करनेके लिये जीवित जीवणुओंका प्रयोग किया जा सकता है। एक अभीत जन्तुका (विसूचिका नाशक) सीरम बहुत न्यून मात्रामें भी ५, ६ गुणे भी जीवाणुके साथ अन्तः क्षेपण किये जानेपर जीवाणुकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य रखता है। इस दशामें जीवाणुओंमें कणीय परिवर्तन (granular transformation) हो जाता है और फिर जीवाणु लय हो जाते हैं। इस क्रियाको फ़ाईफरकी क्रिया कहते हैं। विसूचिका जीवाणुके प्रयोगसे बनाया अभीत सीरम केवल विसूचिका जीवाणुपर ही अधिक प्रभाव रखता है। इस क्रियाके द्वारा विसूचिका जीवाणुको इससे मिलते हुए जीवाणुओंसे पृथक् कर सकते हैं।

फाईफरकी क्रिया

जिस जीवाणुकी जाँच करना हो उसकी शैवलिन्की कृषि एक शिखभर (loopful) लीजिये। इसको ·००१ घन शतांशमीटर विसूचिका नाशक सीरम मिले हुए १ घन शतांशमीटर जूषमें मिला लीजिये। इस मिश्रणको एक गिनी शूकरके उदरस्थ आवरणमें अन्तःक्षेपण कर दीजिये। फिर आवरणीय द्रवको एक केशोपम छिद्रावली नलीसे निकाल लीजिये और फिर अणुवीक्षण यन्त्रसे देखिये। यदि उनकी चाल बन्द न हो तो उन्हें विसूचिका जीवाणु नहीं समझना चाहिये। (नेति फल)। यदि चाल बन्द होजाय, जीवाणु फूल जायं, और उनका लय हो जाय तो वे विसूचिका जीवाणु हो सकते हैं। (तथेति फल)। किन्तु अभी

यह नहीं समझना चाहिये कि जीवाणु विसूचिका जीवाणु ही है क्योंकि सामान्य सीरममें भी कुछ जीवाणुनाशक शक्ति हो सकती है। इसलिये निश्चय करनेके लिये एक दूसरा परीक्षण सामान्य सीरम (·००१ घन श·मी) के साथ करना चाहिये। यदि इस परीक्षणमें जीवाणुमें कोई परिवर्तन न हो तो अपने फलको सत्य समझना चाहिये।

यही परीक्षा एक नलीमें सेवन यन्त्रकी सहायतासे उपयुक्त तापक्रम रखकर की जा सकती है।

अभीत जन्तुके सीरममें संश्लेषण (agglutination) और अन्यान्य जीवाणु बैरी लक्षण होते हैं। किन्तु इस सीरममें विषसेरक्षा करनेकी बहुतशक्ति नहीं होती। इस कारणसे फाईफरका यह विचार हो गया था कि अन्तःकोषीय विष नाश करनेके लिये विष नाशक नहीं बनाया जा सकता। मैचनीकाफ़ने वहिःकोषीय विषका विष नाशक बनाया मकफेडियनने पिसे हुए जीवाणुओंका जन्तुओंमें अन्तः क्षेपक करके विशनाशक सीरम बनाया। इस सीरममें संश्लेषण और जीवाणु लयकारी लक्षणोंके अतिरिक्त विशनाशक शक्ति भी थी किन्तु इस सीरममें भी कुछ विषोंके नाश करनेकी बहुत कम शक्ति होती है। विसूचिकाके वीतरोगियोंके सीरममें जीवाणु नाशक शक्ति बढ़ जाती है। यह शक्ति रोग होनेके ८, १० दिन पश्चात् प्रकट होने लगती है किन्तु परम अधिक चार सप्ताह पीछे होती है। फिर धीरे धीरे घटती जाती है। संश्लेषणकी शक्ति और रोगियोंकी तरह विसूचिकाके रोगियोंके सीरममें भी पाई जाती है। इस शक्तिका परमाधिक्य चार सप्ताहके पीछे होता है। इस समय १:४००, या १:१००० के तनूकरणपर भी संश्लेषण शक्ति अवशिष्ट रह जाती है। वाहकोंके रक्तमें भी यह शक्ति रहती है। यह स्मरण रखना चाहिये कि कभी कभी १:२० तनूकरणमें भी संश्लेषणकी शक्ति सीरममें वर्तमान होती है।

अभयत्वके इन सिद्धान्तोंको हम विसूचिका जीवाणुकी और अन्य धनु आकारके जीवाणुओंसे पहिचान करनेमें काममें ला सकते हैं। इसके लिये यह देखनेकी आवश्यकता पड़ती है कि विसूचिका नाशक सीरम इन जीवाणुओंमें संश्लेषण उत्पन्न करते हैं या नहीं। यदि संश्लेषण हो जाय तो जीवाणुओंको विसूचिका जीवाणु समझना चाहिये।

संश्लेषण शक्ति देखनेकी विधियें यह हैं:—

इनवरकी विधि—मलमेंसे एक छोटेसे छिकुड़ेको शीशेके ढकने (Cover slip) पर रखिये। फिर इसपर एक विन्दु पाच्योनका डालिये; दोनोंको खूब मिला लीजिये। इस प्रकारके दो विन्दु अलग अलग बना लीजिये। एकमें सामान्य सीरमका ५०वां तनूकरण मिलाइये और दूसरोंमें विषनाशक सीरमका ५००वां तनूकरण मिलाइये। फिर उत्वंधित बिन्दुकी रीतिसे अणुवीक्षण यन्त्रसे देखिये। यदि सामान्य सीरमवाले पट्ट (slide) में जीवाणु चलते रहें और विषनाशक सीरमवाले पट्टमें जीवाणुओंकी चलनेकी शक्ति बन्द हो जाय तो जीवाणुओंको विसूचिका जीवाणु समझना चाहिये। इस विधिसे विसूचिका जीवाणु बहुत शीघ्रतासे पहिचाने जा सकते हैं।

बैंडीकी विधि—जूष या पाच्योनके घोलमें कुछ विसूचिका नाशक सीरम मिला लीजिये। फिर जिस मलकी परीक्षा करनी हो उससे इन्हें दूषित कर दीजिये। तीन घण्टेतक पालन यन्त्रमें रखिये। संश्लेषण बिना अणुवीक्षण यन्त्रके ही देख सकते हैं। इस विधिमें एक दोष यह है कि विसूचिका नाशक सीरम बहुत खर्च होता है।

डेवीज़ और मैसनबारकी विधि

१. क्षारस्वाभाविक १% पाच्योन और १% लवणके घोलमें १ शक्यभर (loopful) मल छोड़ दीजिये। १८ घंटेतक पालन यन्त्रमें रखिये।

२. गैरोके संश्लेषण मापकके एक पट्ट पर कूपिका एक विन्दु और एक विन्दु १:८० विषना-

शक सीरमका डालिये। मिश्रणसे तनूकरण १:१६० हो जायगा। दूसरे पट्ट पर एक विन्दु कृषि और एक विन्दु सामान्य लवण घोल रखिये। तीन मिनटतक खूब हिलाइये। यदि विसूचिका जीवाणु होंगे तो संश्लेषण दिखेगा। इसका फल फिर और भी ऊंचे तनूकरणके प्रयोगसे दृढ़ किया जा सकता है। इस विधिके लिये रबड़की बोतलोंमें ·०५°/० अंगारलिक (Carbolic) अम्लसे सुरक्षित कई तनूकरणोंके सीरम रखते हैं। अधिकतर १:८०, १:१६०, १:३२० के तनूकरण रखे जाते हैं।

सुरोल (alchohol) और दाह्योल (Ether) से पट्टको साफ़ करते रहना बड़ा आवश्यक है। प्रयोगके पहिले उसे कुछ गरम कर लेना चाहिये नहीं तो कृषि और सरिम अच्छी प्रकार नहीं मिलेंगे।

३. फिर क्रीडीरोपौलोके द्वार स्वभाविक शैवलिन्पर शिक्यसे पाञ्चोन कृषिको फैला दीजिये। विसूचिकाके संघ ऊपर लिखे हुए वर्णनके सदृश मिलेंगे। फिर रक्ताणुलयका परीक्षण और शर्कराओंपर प्रभाव भी देखा जा सकता है। संश्लेषण, रक्ताणुलय और विसूचिका लाल प्रतिक्रिया इन सबका फल सदा एक ही मिलेगा।

रचना परिवर्तन

मृत्यु अनुगामी कठोरता शीघ्र हो जाती है, और बहुत समयतक रहती है। मृत्युके पश्चात् पेशियोंके आकुञ्चनके कारण कुतुकाविष्ट चेष्टायें उत्पन्न हो सकती हैं। विच्छेदनके पश्चात् सबसे अधिक स्वीय परिवर्तन प्रवाहक संस्थानमें और आहार पथमें पाये जाते हैं।

यदि मृत्यु दारुणावस्थामें हुई है तो शरीर पृष्ठ श्याम वर्ण और पिचका हुआ मिलेगा। विच्छेदनके पश्चात् शरीरकी समस्त तन्तुएं सामान्यतासे कहीं अधिक पाई जायँगी। पेशियोंका रंग गहरा मिलेगा, और पेशियें अधिक कठोर मिलेंगी। कहीं कहीं एक आध पेशीमें जीवन कालके प्रबल उद्वेष्टनके कारण पहुँची हुई क्षति मिल सकती है। हृदयका दक्षिण भाग और संस्थानिक शिरायें काले, घन (गाढ़े) और अधजमे रक्तसे भरा रहता है। शिराओंमें जाने तंत्रिनके थक्के हृदयके दक्षिण भागमें मिल सकते हैं। फुप्फुस प्रायः रक्तहीन, शुष्क और पिचके हुए होते हैं। किन्तु कभी कभी रक्तपूर्ण और अम्बुमय (oedematious) मिलते हैं। फुप्फुसीय धमनियें शून्य होती हैं। यकृत् प्रायः रक्तसे लदा होता है। पित्ताशय पित्तसे भरा होता है। प्लीहा छोटी होती है। और सब आवरणीय विवरोंके सदृश उदरस्थ आवरणीय विवरमें भी कोई द्रव नहीं होता और पृष्ठ शुष्क और चिपचिपा होता है। अन्तका बाहिरी पृष्ठ एक समान गुलाबी लाल होता है, या कभी कभी उसमें रक्त प्रवाहिनी रक्तमय होते हैं। अन्त्रको खोलनेपर उसमें वही मांडके सदृश द्रव जो कभी कभी रक्त मिश्रित हो सकता है मिलेगा। आमाशय और अन्त्रकी श्लेष्मलकला पररक्तमय होनेके कारण कुछ अधिक लाली मायल मिलेगी। या पररक्तपूर्णता विरूपतासे इधर उधर कहीं कहीं विस्तृत हो या रक्त प्रवाहिकाये जहां जहां कुल अन्त्र भरमें रक्त पूर्ण हों। अन्त्रमें भीतरी पृष्ठके नीचे (पृष्ठतूल) रक्त क्षरणके स्थान मिल सकते हैं।

आहार प्रणालीमें सबसे अधिक परिवर्तन क्षुद्र अन्त्रके सबसे नीचेके भागमें होते हैं। यहांपर पेयरके शकल और निःसंगी ग्रन्थियां पर रक्तमय और फूले हुए मिलेंगे। कभी कभी अन्त्र पीली होती है। पृष्ठीय कोषस्तर (Epithelium) के गिर जानेसे कभी कभी अन्त्रकका भीतरी पृष्ठ भीगा सा और फूला दिखता है। शायद वह परिवर्तन मृत्युके पश्चात् होता हो। कभी कभी अन्त्रके सबसे नीचेके भागमें जमा हुआ गाढ़ा श्लेष्मल आकर्षित पदार्थ मिल सकता है। अन्त्रधारकको (mesentery) की लसीका ग्रन्थियां पररक्तमय होती हैं। वृक्ककी वाहन शिरायें भरी होती हैं। वृक्कके मेदस (medulla) की शिरायें बहुत रक्त

पूर्ण होती हैं और वृक्कके वल्के (Cortex) की शिरायें कुछ कम रक्तपूर्ण होती हैं। नलिकाओं (tubules) में कणमय पदार्थ भरा होता है। पृष्ठीय कोष (Epithelial cells) मेघा कीर्ण कणमय अथवा वसामय होती हैं, और बढ़े हुए रोगोंमें गिर जाती हैं। मूत्राशय खाली और आकुञ्चित होता है। वात (Nervous) संस्थानमें कोई परिवर्तन नहीं होते। पक्वाशय और क्षुद्रान्त्रके ऊपरी भागमें जीवाणु शुद्ध कृषिमें मिलेंगे। शुद्ध कृषि वृहद् अन्त्रमें बहुत कम मिलती है। मलकी अणुवीक्षण परीक्षाके लिये क्षुद्रान्त्र अन्धान्त्रीय कपाट (Iliococcul valve) के ऊपरकी पांच इञ्च अन्त्रके और क्षुद्रअन्त्रके नीचेके आधे भागके बीचकी ५ इञ्च अन्त्रके दोनों सिरे बांधकर काट लेना चाहिये।

छिछड़े मिलनेका कारण गिरी हुई पृष्ठीय कोष होती हैं और इन छिछड़ोंकी अणुवीक्षण यन्त्रसे परीक्षा करनेपर इनमें पृष्ठीय कोष मिलेंगी, और यह पृष्ठीय कोष विसूचिका जीवाणुओंसे भरी होती हैं। जीवाणु लीवरकुहनकी मत्रिकाओंमें (Follicles) भी घुस जाते हैं। पृष्ठीय कोषस्तरको धारण कला (Basement membranes) और पृष्ठीय कोषोंके बीजमें भी जीवाणु दीखेंगे। यह कोष असलमें अपनी जगहसे हिल गये हैं।

हालके निरीक्षणोंमें यह मालूम हुआ कि विसूचिका जीवाणु और इन्द्रियोंमें भी मिल सकते हैं। विशेषतः पित्ताशय और पित्तप्रवाहिकाओंमें तो अकसर मिलते हैं। कभी कभी तो पित्ताशयमें अन्त्रज्वरके सदृश जीवाणु बहुत संख्यामें मिलेंगे। पित्ताशयमें रचना परिवर्तन भी मिल सकते हैं। विसूचिका जीवाणु, वृक्क, मूत्र, फुफ्फुस और प्लीहामें भी पाये गये हैं।

यदि मृत्यु प्रतिक्रियाकी अवस्थामें हुई है तो तन्तु नम होती है। शिरा संस्थान कुछ कम भरा होता है। अन्त्रमें विस्तृत प्रदाह मिल सकता है। श्लेष्मस कलाका तन्तुमरण (Neirosed) मिल सकता है। श्लेष्मसकलामें रक्तक्षरण मिल सकता है। कभी कभी मिथ्या कला (false membrane) बनी मिल सकती है। फुफ्फुस रक्तपूर्ण और अम्बुमय होता है। शायद कभी कभी कुछ फुफ्फुस प्रदाह मिले।

विसूचिका प्रतिरोधक टीका

ऊपर बतलाये हुए अभयत्वके सिद्धान्तोंपर हैफकिनने प्रतिरोधक टीका निकाला। विसूचिका जीवाणुओंको पहले दुर्बल और फिर प्रबल बनाते हैं। ३९°श पर पवित्र वायु या ओषजनकी धारा कृषिके पृष्ठपर चलती रखनेसे अथवा और कई रीतियोंसे जीवाणुओंका बल बहुत कम किया जा सकता है। एकके पीछे एक कई गिनी शूकरके उदरस्थ आवरणमें कृषि करनेसे बीस गुनातक बल बढ़ाया जा सकता है। प्रबल जीवाणुके अधिक मात्रामें चर्मगत अन्तः क्षेपण करनेसे स्थानीय तन्तु मरण हो जाता है। यदि पहिले दुर्बल जीवाणुओंका अन्तः क्षेपण कर दिया गया हो तो केवल स्थानीय जल संचय (Oedema) होकर रह जाता है। हैफकिनका विचार था कि यह जीवाणु खिलाने अथवा अन्तःक्षेपणसे या किसी प्रकार भी इनका समावेश हो जानेसे अभयत्व हो जाता है। हैफकिनने इसे मनुष्यपर करके देखा और इसमें कोई भी दोष न पाकर १८६४ में हिन्दुस्तानकी सरकारकी आज्ञा और सहायतासे इसका प्रयोग बढ़ाया। पहिले पहिल प्रबल जीवाणुके अन्तःक्षेपणके पहिले दुर्बल जीवाणुके दो तीन अन्तःक्षेपण किये जाते थे किन्तु कुछ दिनों पीछे हैफकिनने ही यह विधि छोड़ दी। बिना किसी तैयारीके नई जीवाणुकी कृषिके ही जीवित जीवाणुओंका अन्तःक्षेपण करनेकी सलाह हैफकिन देने लगे।

टीकाका द्रव बनानेकी यह विधि है। विसूचिका जीवाणुओंकी कई नस्लें ली जाती हैं और हरेणुसार और शैवलिन् (Pea extract agar) २४ घंटेतक उगाई जाती है। फिर कृषिको सा-

मान्य लवण घोलमें धो देते हैं। पायस (Emulsins) में जीवाणुओंकी संख्या गिन लेते हैं। फिर इस पायसको एक घंटेतक ५५°श पर गरम करते हैं और १°/॰ अंगारलिक अम्ल मिला देते हैं।

पहिले अन्तःक्षेपणकी मात्रा ४००० और फिर ८ दिन पीछे दूसरे अन्तःक्षेपणके लिये मात्रा ८००० है। १८९५ तक ही ४३,१७९ में जीवित जीवाणुओंके ७०,००० अन्तःक्षेपण लग चुके थे। १९१८में बटावियामें टीके लगे हुओंमें ८००० में १ मृत्यु हुई और बिना टीके लगे हुओंमें २७००में केवल १५। अभयत्व कोई तीन चार महीनेतक रहता है।

महासंग्राममें यह टीका सहस्रों आदमियोंको लगाया गया और उसकी सफलता बिलकुल सिद्ध हो गई। हालमें कैस्टिलानी चार जीवाणुओंके मिश्रित टीकेकी सलाह देते हैं। जीवाणु ०·५ प्रतिशत अंगारलिक अम्ल (Carbolic acid) से मार लिये जाते हैं। जीवाणुकी संख्या १ घन श· मी· में निम्न लिखित होती है :—

अन्त्रज्वरके जीवाणु B. typhosus	५००,०००
तनु अन्त्रज्वर अ के जीवाणु B. Para typhosus A.	२५०,००
तनु अन्त्रज्वर ब के जीवाणु B Para typhosus B.	२००,०००
विसूचिका जीवाणु V. Cholera	१०००,०००

इस द्रवकी ·६ घन श. मा. पहिले अन्तःक्षेपण में देते हैं। और एक सप्ताह पीछे दूसरे अन्तःक्षेपण की मात्रा इससे दुगुनी होती है। टीकेके पीछे बहुत कष्ट नहीं होता। टीके लेनेवाला २४ घंटेके बाद काम करने लायक़ हो जाता है।

लक्षण

विसूचिकाका आक्रमण निम्नलिखित दो विधिसे आरम्भ होता है। रोग साधारण प्रवाहिकासे ही बढ़कर दारुण विसूचिका रूप धारण करले अथवा किसी प्रबोधक लक्षणके बिना ही अकस्मात् आरम्भ हो जावे। विसूचिकाके दिनोंमें प्रवाहिका साधारण दिनोंसे अधिक प्रचलित होती है। इस प्रकार साधारण प्रवाहिकाका दारुण विसूचिकाका रूप धारण करना साधारण बात है। इस प्रवाहिकाको प्रबोधक प्रवाहिका कहते हैं। निश्चय नहीं है कि इस प्रवाहिकाका विसूचिकासे कुछ विशेष सम्बन्ध है अथवा यह प्रवाहिका साधारण पैत्तिक अथवा श्लेष्मल प्रवाहिका है, केवल रोगीको विसूचिकाके लिये आक्रमणशील बनानेका काम करती है। सम्भवतः प्रदाहके कारण प्रवाहिकामें अंत्रकी श्लेष्मल कलाकी प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है और अंत्रमें तरल मल भर जाता है जिसमें विसूचिकाके जीवाणुओंको वृद्धिका अच्छा अवसर मिलता है। कभी कभी और भी प्रबोधक लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं जैसे आलस्य, खिन्नता, कर्णनाद इत्यादि।

जब विसूचिका आरम्भ हो जाता है तो रोगीको जल सदृश बहुत मात्रामें बार बार मलोच्चार होता है। मलोच्चार शूलके साथ हो अथवा पीड़ा बिल्कुल न हो। मल प्रथम पीला होता है किन्तु शीघ्र ही रंगत बन्द हो जाती है और मल चावलके मांड़के सदृश हो जाता है। रोगीके शरीरसे इस प्रकार कई सेर मल निकल जाता है।

थोड़ी देरमें वमन भी आरम्भ हो जाता है। प्रथम वमनमें भोजन निकलता है फिर वमन भी चावलके मांड़के सदृश हो जाता है।

उद्वेष्टन—हाथ पैरोंमें कम्प और इसके कारण तीव्र वेदना होती है। पेशियोंके आकुञ्चनके कारण पेशियें कठोर हो जाती हैं और आकार अधिक स्पष्ट हो जाता है।

प्रवाहिका और वमनके द्वारा इतना द्रव निकलनेसे शरीरके मृदु भाग कुछ सिकुड़ जाते हैं। गाल अन्दरकी ओर खिंच जाते हैं, नाक पतली और दबी दबी दिखती है, आँखें अन्दर घुस जाती हैं (अन्तः प्रविष्ट चक्षु), हाथकी खालमें सिकुड़न पड़ जाती है, शरीर ठंडा पड़ जाता है,

(शीतज्वर) और रंग निलाई मायल हो जाता है मूत्र और पित्त बन्द हो जाते हैं (मूत्रावरोध पित्तावरोध)। श्वास शीघ्र शीघ्र चलने लगता है और गाध होता है। श्वासमें शीतलता होती है और रोगीकी आवाज़ बहुत धीमी हो जाती है। नाड़ी दुर्बल हो जाती है (शिरा सङ्कोचन) और शीघ्र शीघ्र चलने लगती है। शरीरका बाहरी तापक्रम ६३° फ या ६४°फ तक गिर जाता है किन्तु भीतरी तापक्रम १०१° से १०५° तक बढ़ जाता है। मतलीके कारण रोगी करवटें बदलता है और इधर उधर हाथ पैर फेंकता है। रोगीको गला सूखा मालूम होता है (मुख शोष), बहुत प्यास मालूम होती है (तृष्णा)। शरीरके भीतर गर्मी और जलन मालूम होती है (अन्तर्दाह), और उद्वेष्टनसे परेशान हो जाता है। अधिकतर रोगीकी बुद्धि शुद्ध रहती है। किन्तु कभी कभी रोगी अल्प संज्ञ होकर मूर्च्छित हो जाता है।

इस दशाके पश्चात् रोगीके तीन अन्त हो सकते हैं। पहिला शक्तिपातसे मृत्यु, दूसरा शीघ्र स्वास्थ्य लाभ, तीसरा ज्वर।

जब शक्तिपातसे मृत्यु होती है तो रोगी रोगके आरम्भके पश्चात् २ से ३० घंटे तक कभी भी मर सकता है। अधिकांश मृत्यु १०से १२ घंटेमें होती है। वमन और मलोच्चार बन्द हो जानेसे, नाड़ीका बल बढ़नेसे और शरीरका तापक्रम बढ़नेसे स्वास्थ्य लाभका शुभागमन होता है। कई घंटेके मूत्रावरोधके पश्चात् फिर वृक्कमें मूत्र उत्पन्न होने लगता है। और कुछ दिनोंमें ही रोगी स्वस्थ हो जाता है। अधिकांश रोगियोंमें प्रतिक्रियाकी दशा आरम्भ हो जाती है।

प्रतिक्रिया

जब रोगी प्रतिक्रियाकी इस दशामें प्रवेश करता है तो उसका शरीर गरम हो जाता है। नाड़ीका बल बढ़ जाता है। खिन्नता बन्द हो जाती है। मूत्र आरम्भ हो जाता है। मलोच्चारकी संख्या और मात्रा कम हो जाती है और रंग फिर पीला हो जाता है। दारुण लक्षणोंके घटनेके साथ साथ ही रोगीकी आकृतिमें बहुत उन्नति हो जाती है और थोड़ा बहुत ज्वर हो जाता है।

कुछ रोगियोंमें यह लक्षण कुछ घंटोंमें ही कम हो जाते हैं किन्तु अधिक रोगमें ज्वर बहुत बढ़ जाता है और दशा कुछ कुछ अन्त्र ज्वरसे मिलती है इसलिये इसको विसूचिका अन्तज्वर कहते हैं। यह ज्वर ४—५ दिनसे १०—१५ दिन तक चढ़ा रह सकता है। कठिन रोगमें चेहरा लाल हो जाता है। जिह्वा सूखी और बादामी मायल रंगकी रहती है।

प्रलाप और प्रकम्प (Tremor) के समय रोगी अल्प संज्ञ हो जाता है। मल इस समय हरा होता है, उसमें रक्तका कुछ मिश्रण हो सकता है। मलमें दुर्गन्ध बहुत होती है। मूत्रावरोध ५ या ६ दिन तक जारी रह सकता है जब होना आरम्भ हो जाता है तो पहिले मूत्रकी मात्रा न्यून होती है। देखनेमें मूत्रका रंग गहरा और गदमैला होता है। रासायनिक परीक्षापर उसमें धवल (Albumen) मिलता है धीरे धीरे मूत्रकी मात्रा फिर बढ़ जाती है, रंगका गहरापन कम हो जाता है, धवल (Albumen) भी धीरे धीरे घट जाती है। पहिले पहिले (Urea) मूत्रिया और मूत्रिक अम्ल (Uric acid) की मात्रा कम होती है फिर साधारण मात्रासे भी बढ़ जाती है।

इस प्रतिक्रियाके समयमें संकीर्णोंके कारण मृत्यु हो सकती है जैसे फुप्फुसप्रदाह, अन्त्रप्रदाह, प्रवाहिका, निस्तेजता, मूत्रीय रक्त हो जानेसे मूर्च्छा और आक्षेप।

भिन्न भिन्न आक्रमण और भिन्न भिन्न रोगियोंमें विसूचिकाके लक्षणों और उनकी कठिनतामें बहुत अन्तर हो सकता है। आक्रमणमें पहिले दिनोंके रोगियोंका रोग अधिक कठिन होता है।

क्षुद्र रोगके रोगी कुछ न कुछ सब आक्रमणोंमें मिलते हैं। इनमें केवल प्रवाहिका और खिन्नता

ही होती है। मूत्रावरोध कभी नहीं होता। और मल भी रंगहीन नहीं होता। उद्वेष्टनकी भी अनुपस्थिति ही रहती है। रोग बिना प्रतिक्रियाके ही अच्छा हो जाता है।

विसूचिकन

रोगियोंकी दूसरी श्रेणीमें रोग कुछ अधिक दारुण होता है। मल मांडके समान हो जाता है। किन्तु मूत्रावरोध या उद्वेष्टन कुछ नहीं होता और प्रतिक्रियासे ही रोगी अच्छा हो जाता है। ऐसे रोगको विसूचकिन कहते हैं।

अलासका

यह विसूचिकाका एक बहुत प्राणघातक रूप है। इसमें न प्रवाहिका होती है न वमन, शक्तिपात इतनी शीघ्रतासे होता है जैसे कि किसीने रोगीको विष दे दिया। कुछ ही घंटेमें प्रवाहिका या और कोई प्रतिक्रियाके बिना ही मर जाता है।

मृत्युके पश्चात् अन्त्र माँडके सदृश द्रव बहुत मात्रामें मिलता है। कई रोगी हृदयके दक्षिण भागमें रक्त जम जानेसे या घन रक्तके कारण फुप्फुसीय धमनिकाओंके आकुञ्चनके कारण श्वास रुक जानेसे मर जाता है। किसी रोगीमें कुछ उन्नति दीख सकती है। किन्तु अधिकतर शीघ्र ही फिर रोगकी आवृत्तिके कारण रोगी मर जाता है। इसको 'बन्द हैज़ा' भी कह सकते हैं। अलासका नाम चरकसे लिया गया। शायद ऐसा ही वर्णन चरकमें दिया गया है। कमसे कम दिये हुए लक्षण तो बहुत मिलते हैं।

उच्चज्वर

विसूचिकामें उच्चज्वर बहुत कम होता है किन्तु तो भी कभी कभी होता अवश्य है। बगलका तापक्रम १०७° फ तक और मलाशयका तापक्रम १०९° तक बढ़ जाता है। यह अवस्था प्राणघातक होती है।

उत्तरागामी रोग

विसूचिकाके पीछे कई और रोग हो सकते हैं, जैसे रक्त न्यूनता, मानसिक और शारीरिक दुर्बलता, निद्राविकार, ज्वर, दीर्घ, स्थायिन् आन्त्रिक प्रदाह, वृक्क प्रदाह, फुप्फुस प्रदाह, कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रन्थि प्रदाह जिसमें स्फोट (abscess) बन सकता है, कनीनिका व्रण, शय्याव्रण (Bedsore) शरीरमें किसीका कोथ (Gangrene) कभी कभी पांडु रोग भी हो सकता है यह बड़ा प्राणघातक उत्तरागामी समझा जाता है। गर्भवती स्त्रियोंमें अधिकतर गर्भपात हो जाता है और भ्रूणमें भी कुछ विसूचिकाके चिन्ह मिल सकते हैं।

निदान

पूर्ण आक्रमणके दिनोंमें निदान साधारणतः सहज होता है। माँडके सदृश अति मात्रामें मल और वमन, शक्तिपात, शीतज्वर, श्यामवर्ण शरीरका पिचकपन, अंगुलियोंमें सुकड़न धीमी धीमी बोली, ठंडा श्वास, उद्वेष्टन, मूत्रावरोध, इतने लक्षण निदानके लिये पर्याप्त हैं। आरम्भसे रोगियोंमें निदान करना कठिन होता है। निदानकी आवश्यकता भी बहुत होती है। जीवाणु परीक्षा करनी चाहिये।

असली विसूचिकाके लक्षणवाले रोगोंसे निदान नीचे लिखा है।

(१) स्वजात विसूचिका (Cholera nostras) अथवा शवेन विष समावेश (Ptomaine poisoning)। यह रोगी पशुका मांस, सड़ा मांस, सड़ी मछली खानेसे होता है। यूरोपमें यह रोग अधिक होता है। विसूचिकाके लगभग सब लक्षण पाये जाते हैं। क्योंकि यह रोग अधिक होता है। विसूचिकाके लगभग सब लक्षण पाये जाते हैं। क्योंकि यह रोग भोजनसे उत्पन्न होता है। कई मनुष्योंको एक साथ हो सकता है। जीवाणु परीक्षा करनी चाहिये, यह एक निदानका साधन है।

(२) छत्र विष समावेश (Mushroom) इसमें अधिकतर प्रवाहिकामें बिलकुल रंगहीन मल नहीं होता। मलको देखनेसे शायद छत्रके टुकड़े मिल जायं।

(३) कुतलिका (Trichnosis) में भी अधिकतर मान बिलकुल रंगहीन नहीं होना और अणुवीक्षण यन्त्रसे कुन्तली (Tricnuia) दिख सकते हैं।

(४) विसूचिका सदृश दुर्वात (Malaria) के आक्रमणमें इतनी बातोंका ध्यान रखना चाहिये (१) दुर्वातके जीवाणु रक्तमें मिलते हैं। (२) लक्षणकी अनुकालिकता (Periodicity) (३) उसपर कुनीनका प्रभाव (४) नगरमें दुर्वातका संचार। इन बातोंको ध्यानमें रखकर विसूचिकाका दुर्वातसे निदान किया जा सकता है।

अन्तमें हम प्रत्येक दारुण प्रवाहिकाके मलकी परीक्षा करनेकी सलाह देते हैं। यह सबसे अच्छी विधि है।

अनुभवसे इस विश्वासकी दृढ़ता होती है कि प्रबोधक प्रवाहिकाकी अवस्थामें स्तम्भक (Astringent) औषधि देनेसे रोगका सम्वर्धन रुक जाता है इस अभिप्रायसे प्रयोगमें लाई जाने वाली औषधियोंमेंसे सबसे अधिक लोकप्रसिद्ध क्लोरोडाइन है। क्लोरोडाइन (Chlorodyne) के साथ आवश्यकतानुसार ब्रांडी (Brandy) भी मिला दी जाती है। अन्यान्य साधारणतः प्रयोगमें लाई जानेवाली औषधियें यह हैं :—

१. सीसका अहिफेन बटिका।
२. खटिका खादरसार अहिफेन मिश्रण।
३. तिक्त खटिका अहिफेन चूर्ण।
४. अहिफेन हिंगु मरीच बटिका।
५. तनू गन्धकाम्ल और अहिफेन आसव।

इसके अतिरिक्त नीचे लिखी औषधियें भी प्रयोग कर सकते हैं।

१. विसूचिका गुटिका—कपूर १ ग्रेन। अहिफेन १ ग्रेन। लाल मरिच १ ग्रेन।

२. अमृतधारा—यह कपूर, पिपरमिन्ट और अजवायनके सत, ३ चीज़ें बराबर मिलानेसे बनती है। इसको आवश्यकतानुसार १० बूँदतक दे सकते हैं। किन्तु सुरोल (alcohol) का प्रत्येक रूपमें इसके पश्चात् निषेध रखना पड़ेगा नहीं तो अजवायनके सतके समावेशसे अनर्थ होनेका डर रहता है।

३. विसूचिकाके आक्रमणके दिनोंमें किसी प्रवाहिकाके रोगीकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। और आन्त्रिक श्लेष्मल प्रदाह अथवा उत्तेजना (Initation) के रोगीके विश्रामपर ज़ोर देना चाहिये और उसे तप्त रखनेकी युक्ति करनी चाहिये। भोजन बतलानेमें अत्यन्त सावधानी करनी चाहिये।

यदि रोग प्रबोधक प्रवाहिकासे आगे बढ़ गया है तो ऐसा यत्न करना चाहिये कि रोगीका विष नाशक बल बढ़े। रोगीका कमरा हवादार होना चाहिये, किन्तु बहुत ठंडा नहीं होना चाहिये। रोगीका बिस्तर गरम होना चाहिये, रोगीको बिल्कुल लिटाए रहना चाहिये। तृषाके लिये घूँट घूँट बरफ़, ब्रांडी या शैम्पेन मिला हुआ पानी देना चाहिये। बहुत अधिक जल एक साथ देना अच्छा नहीं है, क्योंकि वमनका डर रहता है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि बहुत अधिक जल देना हानिकारक है। पिये हुए जलका समावेश होना तो बहुत ही अच्छा है किन्तु जल न पिलानेसे तो पिये हुए जलका वमन होना भी अच्छा है क्योंकि वमन द्वारा कुछ जीवाणु और विष शरीरके बाहर निकलते हैं।

उद्वेष्टनके लिये हाथसे धीमी धीमी रगड़ करना चाहिये और थोड़ी मात्रामें मौरफ़ीन (morphin) का चर्मगत अन्तःक्षेपण करना चाहिये और यदि इससे लाभ न हो तो हरित पिपी (chloroform) सुंघाना चाहिये। शरीरकी ऊपरी गरमी गरम पानीकी बोतलें पैर टांग और धड़के इधरउधर रखकर स्थिर रखना चाहिये।

एक शय्या पात्रका इस अभिप्रायसे प्रयोग करना चाहिये। जबतक रोग रहे कोई भोजन नहीं देना चाहिये।

केवल एक औषधि कुछ मतलबकी पाई गई है। वह केओलीन (Kaolin) है। रोगीको ७ आउन्स (२०० ग्राम) केओलीनमें १४ आउन्स (४०० घन शतांश मीटर) पानी मिलाकर देना चाहिये। यदि वमन हो जाय तो फिर दूसरी मात्रा देनी चाहिये। घूँट घूँट करके पिलाना भी अच्छा है।

रौजरकी चिकित्सा

रोजर्सने परसामान्य लवणघोलके शिरान्तरीय क्षेपणसे विसूचिकाकी चिकित्सा निकाली है। इस चिकित्सासे विसूचिकाकी प्राणघातकता बहुत घट जाती है। वमन और मलोत्सारमें शरीरसे इतना द्रव निकल जानेसे रक्तकी मात्रा कम हो जाती है और रक्त बहुत घन हो जाता है। शिराओंमें भी रक्तकी मात्रा कम होनेसे शिरायें पिचक जाती हैं। इसलिये अन्तःक्षेपण करनेके लिये प्रणलिका डालनेको भेद करके शिरा निकालनी पड़ती है।

चिकित्साका सिद्धान्त यह है कि रोगकी कठिनताके अनुसार रक्तका बहुतसा जल भाग शरीरके बाहर निकल जाता है केवल एक तिहाई वा दो तिहाई अवशिष्ट रह जाता है। रक्तके जल भागके साथ जलमें घुलनशील लवण भी निकल जाते हैं। इसलिये अन्तःक्षेपणके निमित्त जलमें लवण मिलानेकी आवश्यकता पड़ती है।

पर सामान्यघोल इस प्रकार बनाया जाता है:–

लावण्यं – हरिद	(Nacl)	१२० ग्रेन
पांशुजं – हरिद	(KCl)	६ ग्रेन
चूर्णजं – हरिद	($CaCl_2$)	४ ग्रेन
जल		१ पायन्ट

यदि मलाशयका तापक्रम ९९° फ से कम हो तो घोलका तापक्रम १००° फ होना चाहिये। यदि मलाशयका तापक्रम १००° फ से ऊपर हो तो घोलका तापक्रम ८०° और ९०° फ के बीचमें होना चाहिये।

रोजर्सने अपना एक विशेष प्रकारकी वशीमान प्रणालिका (Stopcock Caunula) निकाली है। वह इस कामके लिये अति उपयुक्त है। अन्तःक्षेपणके समय द्रवका प्रवाह ४ आउन्स प्रति मिनटके हिसाबसे अधिक नहीं होने देना चाहिये। यदि रोगीको शिरःपीड़ा अथवा उद्विग्नता मालूम हो तो प्रवाहको १ आउन्स प्रति मिनट तक घटा देना चाहिये। आवश्यकतानुसार ३ से ६ पायंट तक घोल चढ़ा सकते हैं। अन्तःक्षेपणकी आवश्यकताकी फिर सम्भावना होनेसे जबतक दारुण लक्षण न मिट जाय प्रणालिका शिरामें ही छोड़ देनी चाहिये।

साथ साथ आहार प्रणालीमें जीवाणुओं और विषको नाश करनेके अभिप्रायसे पांशुजं परमंगनेत (Pot· permanganate)देना चाहिये। पांशुजं परमंगनेत घोल या बटिकाके रूपमें दो दो ग्रेन प्रति १५ मिनटपर देना चाहिये। इसके पश्चात् जबतक मलकी रंगत हरी न हो जाय आध आध घंटेमें एक दफ़ा देनी चाहिये। बटिका वैसिलीनसे बनाई जाती हैं और उनपर सेलोल चढ़ा दिया जाता है।

प्रातःकाल और सायंकाल अट्रोपीन (Atropine) का चर्मगत अन्तःक्षेपण करना चाहिये।

रोजर्सकी चिकित्साके सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

१. रक्तका दबाव पारेके ७० सहस्रांश मीटरके नीचे और रक्तका आपेक्षक घनत्व १०६३ के नीचे खतरनाक होते हैं। रोगके दारुणावस्थाके समय रक्तका आपेक्षिक घनत्व १०६० से १०७२ तक हो जा सकता है। सामान्यतः रक्तका आपेक्षिक घनत्व १०५६ होता है।

२. १०६३ के आपेक्षिक घनत्वको शरीरमेंसे आधे द्रवकी हानिका बोधक समझना चाहिये और उसको ठीक करनेके लिये ३ से ६ पायंटकी आवश्यकता होती है।

३. यदि फिर रक्तका दबाव ७० सहस्रांश मीटर तक या उससे नीचे गिर जाय, या रक्तका आपेक्षिक घनत्व १०६३ के ऊपर हो जाय तो प्रातः सायं अन्तः क्षेपण करना चाहिये।

आपेक्षिक घनत्व निकालनेकी विधि यह है कि जलमें मिष्ट रसीन (गिलीसिरीन) की भिन्न मात्राके १०४०—१०७० के आपेक्षिक घनत्वके घोल बनाकर रख लेते हैं। मूत्रमापकके प्रयोगसे यह घोल तैयार किये जा सकते हैं। रोगीका रक्त लेकर बूँद बूँद मिष्ट रसीनके घोलमें डालते हैं। सबसे कम घन जिस घोलमें बीचोबीच बूँद ठहर जाय उसका और रक्तका आपेक्षिक घनत्व एक ही समझना चाहिये। रोजरने रक्तकी परीक्षा की तो उन्हें ज्ञात हुआ कि रक्तका अम्लत्व बढ़ जाता है और अम्लत्विक (Acidosis) को ही मूत्र बन्द होने और मूत्रीरक्तके लक्षण मूर्च्छा, आक्षेप इत्यादि का कारण है। ऐसे रोगियोंमें वे यदि रक्तका आपेक्षिक घनत्व कम हो तो चर्मगत अथवा मलाशयी अन्तःक्षेपण द्वारा २ से ३% लावण्यं द्विअंगारेतका घोल परसामान्य लवण घोल देनेकी सलाह देते हैं। यदि रक्तका आपेक्षिक घनत्व अधिक हो तो पहिले लावण्यं द्विअंगारेतका घोल शिरामें देना चाहिये, और फिर मलाशयमें देना चाहिये। १६१५-१७ में यह चिकित्सा प्रयोग करनेसे ६३८ रोगियोंमें केवल १६·१% मरे। यह मृत्यु संख्याकी कमी विशेषतः मूत्र कम रोगियोंमें बन्द होनेके कारण है। नीचेकी संख्याओंसे इस चिकित्साका महत्व ज्ञात होगा।

वर्ष	रोगियोंकी संख्या	मृत्यु	प्रतिशत प्राणघातकताकी औसत	प्रतिशत स्वास्थ्य लाभकी औसत
	(क) सामान्य लवण घोलका चर्मगत और मलाशयी अन्तःक्षेपण			
१८६५—१६०५	१,२४३	७८८	५६·७	४१
	(ख) सामान्य लवण घोलका शिरामें अन्तःक्षेपण			
१६०६	११२	५७	५१·६	४६·१
	(ग) सामान्य लवण घोलका चर्मगत और मलाशयी अन्तःक्षेपण			
१६०७	५८	३४	५६·५	४०·५
	(घ) परसामान्य लवणघोलका शिरान्तरीय क्षेपण			
१६०८—६	२६४	६६	३२·७	६७·४
	(ङ) परसामान्य लवण घोल और परमंगनेतका प्रयोग			
१६०६—१४	८५८	२८२	२५·६	७४·१
	(च) परसामान्य लवण घोल, परमंगनेत और क्षार			
१६१५—१७	६३८	१२२	१६·१	८०·६

और कई वैज्ञानिक उपवृक्कलीन (Adrinalin) (१:१०,०००)का घोल १० मिनिमकी मात्रामें देनेका परामर्श देते हैं। हालके अनुभवसे यह ज्ञात हुआ है कि द्राक्षा शर्कराका घन घोल (२५ प्रतिशत) शिरा द्वारा देनेसे मूत्रावरोधके लिये कुछ लाभदायक है।

शांघाईके डाक्टर कौकसने एक विशेष यन्त्र द्वारा जो कि रोगीसे २½ फुट ऊपर रखा जाता है सामान्य लवण घोल शिरा द्वारा निरन्तर थोड़ा थोड़ा देकर बहुत सफलता प्राप्त की है। जबतक शक्तिपातका भय रहता है २ आउन्स प्रति मिनटके हिसाबसे लवण घोल निरन्तर देते रहते हैं।

सेलिम्बेनीका विसूचिका घातक सीरम भी ४० से १०० घन शतांशमीटरकी मात्रामें लाभकारी सिद्ध हुआ है।

प्रतिक्रियाकी अवस्थामें यदि प्रवाहिका जारी रहे विशद सैलिसीलस (Bismuth Salicylas) की अधिक मात्रामें अहिफेनकी थोड़ीसी मात्राके साथ देनेसे कुछ लाभ होगा।

चर्म शोधिन् (Tannin) १ आउन्स
बबूलका गोंद १ आउन्स
गरम पानी १ कार्ट

इस मिश्रणका अधिक मात्रामें मलाशयान्तरीय क्षेपण करनेसे लाभ होगा। यदि मूत्र फिरसे शीघ्र आरम्भ न हो तो वृक्कके स्थानपर पुलटिस लगानी चाहिये और आकर्षण पात्र (Dry cupping) लगाना चाहिये। जल और जलमय पदार्थोंका सावधानीसे अधिक प्रयोग करना चाहिये। उत्तेजक मूत्रकृष्णीय औषधि इस समय बड़ी ख़तरनाक होती है।

हृदयकी क्रियाकी उत्तेजना करनेके लिये Digitalis का अन्तःक्षेपण दे सकते हैं। मूत्र-संगका सदा ध्यान रखना चाहिये। मूत्राशयका सदा निरीक्षण करते रहना चाहिये और यदि आवश्यकता हो तो मूत्र शलाक लगाना चाहिये। कुष्ठबद्धके विरेचनकी औषधि कभी नहीं देना चाहिये। विसूचिकाकी वीतरोग्यतामें भी आहार बहुत शीघ्र पचनेवाला होना चाहिये, यानी मिला हुआ जौका पानी, बहुत पतला चावलका मांड, बहुत पतले शोरवे, मांस रस इत्यादि ऐसे ही पदार्थ देना चाहिये; विसूचिका अन्त्रज्वरकी चिकित्सा साधारण अन्त्रज्वरके समान करनी चाहिये।

इतिहास और भूगोलिक विस्तार

विसूचिका शब्द 'सूचिका' शब्दसे निकला है। 'सूचिका' का अर्थ है सुई। इस रोगमें सुई चुभनेके सदृश पीड़ा होनेसे इसका नाम विसूचिका हुआ। विसूचिकाके लक्षणोंका पूर्णवर्णन आयुर्वेदकी प्राचीन पुस्तकोंमें मिलनेसे यह अनुमान होता है कि यह रोग भारतवर्षमें बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है।

चरकका वर्णन नीचे दिया जाता है (१)

विसूचिकामें वमन और प्रवाहिका होते हैं। वातके आधिक्य होनेसे लक्षण यह होते हैं: शूल (उदरमें पीड़ा) आनाह (मूत्रावरोध) अङ्गमर्द, मुखशोष (मुखका सूखना), मूर्च्छा, भ्रम, अग्निका कम होना, पेशियोंका आकुञ्चन, और स्तम्भ (मलका बन्द होना)। पित्तके आधिक्य होनेसे लक्षण यह होते हैं: ज्वर, अतिसार, अन्तर्दाह (भीतर ही भीतर गरमी मालूम होना) और प्रलाप (सरसाम)। कफ़के आधिक्य रहनेसे वमन, ग्लानि शीतज्वर (बाहर शरीरका ठंडा होना) आलस्य और शरीरमें भारीपन ये लक्षण होते हैं।

शुश्रुतका वर्णन (२): अजीर्णसे वातका विकार होता है। और वातके कारण शरीरमें सुई चुभने जैसी पीड़ा होती है, इसी कारण वैद्य इसको

(१) तं द्विविधमाम प्रदोषमाचक्षते भिषजो विसूचिकामलसकञ्च।
तत्र विसूचिकामूर्ध्वञ्चाधश्च प्रवृत्तामदोषां यथोक्तरूपां विद्यात् ॥
तत्र वातः शूलानाहाङ्गमर्द मुखशोष मूर्च्छा।
भ्रमाग्नि वैषम्य सिराकुञ्चन संस्तम्भनानि करोति ॥
पित्तं पुनर्ज्वरातिसारान्तर्दाह तृष्णामदभ्रमप्रलपनानि।
श्लेष्मा तुच्छर्द्यरोचका विपाक शीतज्वरालस्य गात्रगौरवाणि।
(चरक विमान-स्थाने २याध्यायः)।

(२) सुचीभिरिव गात्राणि तुदन् सन्तिष्ठतेऽनिलः।
यस्याजीर्णेन सा वैद्यैरुच्यते तु विसूचिका ॥
न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशन लोलुपाः ॥
मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलं भ्रमोद्वेष्टन-जृम्भनदाहा।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदयेरुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥
यः श्याव-दन्तौष्ठ—नखाल्प संज्ञों वम्यर्दितोभ्यन्तर जातनेत्रः।
क्षामस्वरः सर्व्व विमुक्त सन्धिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाया ॥
(शुश्रुत—षट् पञ्चाशदध्यायः)

विसूचिका कहते हैं। बहुत अधिक भोजन न करने वालोंको यह रोग प्रायः नहीं होता है। अपनेको वशमें न रखनेवालोंको यह रोग होता है। इसके लक्षण हैं मूर्च्छा, अतिसार वमन, पिपासा, शूल, भ्रम, उद्वेष्टन (ऐंठन), जम्भाई, जलन, हृदयका कपकपाना, और हृदयके ऊपर पीड़ा, सिरमें कमज़ोरी, दांत, ओष्ठ नखोंका नीला पड़ जाना, अल्पसंज्ञ, वमन बहुत होनेपर आंखोंका भीतर घुस जाना। और यदि बोली बहुत धीमी पड़ जाय, और जोड़ोंमें शक्ति न मालूम होती हो तो अच्छे होनेकी आशा छोड़ देनी चाहिये।

बङ्गालका दक्षिणी भाग विसूचिकाका स्थिर निवास है। वहांसे समय समयपर इस रोगका संचार समस्त हिन्दुस्तानमें होता रहा है। १६वीं, १७वीं और १८वीं शताब्दियोंमें यह रोग यूरोपके डाक्टरोंकी दृष्टिमें आता रहा किन्तु १८१७के आक्रमणतक उनका ध्यान इस रोगकी ओर विशेषतः आकर्षित नहीं हुआ। उस वर्ष विसूचिकाका संचार समस्त एशिया महाद्वीपमें हो गया। विसूचिका पूर्वकी ओर पेकिंग और जापानतक और कैस्पियन समुद्रके किनारेतक फैल गया। संचार अस्तरखानपर ठहर गया और आगे नहीं बढ़ा। और भी पूर्वीय नगर जैसे बैंगकौक, शांघाई, कैन्टन इत्यादि भी विसूचिकाके स्थिर निवासस्थान हैं। असलमें यह रोग प्रत्येक अरक्षित पूर्वीय नगरमें चलता रहता है और इन नगरोंमें जीवाणु वाहक बहुतायतसे रहते हैं।

युरोप और अमेरिकाके आक्रमणोंका वृत्तान्त—१८३० में युरोपपर विसूचिकाका पहिला वृहत् आक्रमण हुआ। अफ़ग़ानिस्तान और फ़ारसके मार्गसे रूसमें होते हुए समस्त युरोपमें विसूचिकाका संचार हो गया। इंगलैंडमें यह १८३२में पहुंचा। उसी वर्षकी ग्रीष्म ऋतुमें वह अटलान्टिक महासागरको पार करके एक जहाज़के द्वारा क्युबेक पहुँचा। क्युबेकसे महान झीलोंके रास्तेसे यात्रियोंके साथ पश्चिमकी ओर मिस्सीसिपी परकी छावनियोंतक फैल गया। उसी वर्ष न्यूयार्कमें होते हुए विसूचिकाने संयुक्तराज्यमें प्रवेश किया।

इसके पीछे यूरोपमें १८४८—५१, १८५१—५५, १८६५—७४, १८८४—८६ और १८६२—६५ में पांच आक्रमण हुए। इसके पीछे छोटे छोटे और आक्रमण होते रहे किन्तु संचारक्षेत्र बहुत ही कम रहा।

इङ्गलैण्ड ऊपरवाले आक्रमणोंमेंसे केवल चारमें ही फंसा। अन्तिम दो युरोपीय आक्रमणोंमें रोगग्रसित यात्री इङ्गलैण्ड पहुंचे थे किन्तु रोग संचार बन्द रहा। १८४८में विसूचिकाने अमेरिकामें न्यू ऑरलियन्समें होते हुए फिर प्रवेश किया। यहांसे उत्तरको मिसीसिपीकी घाटीमें और पश्चिममें कैलिफ़ोरनियातक फैल गया। १८५४में जहाज़ों द्वारा न्यूयार्कमें विसूचिका फिर पहुँचा और यहांसे देशभरमें फिर बड़ी ज़ोरोंसे फैल गया। अन्तिम दो आक्रमणोंमें ऊपर लिखे अनुसार इङ्गलैण्ड तो बचा रहा किन्तु अमेरिका इतना भाग्यशाली न रहा। अमेरिकामें कुछ न कुछ संचार हो ही गया।

१६११ में उत्तरी अफ़्रीका, मडीरा, इटली, टर्की और अरबमें विसूचिकाका आक्रमण हुआ।

१६१३के बालकानके संग्राममें और पिछले महासंग्राममें भी विसूचिकाके कई प्रादुर्भाव हुए, विशेषतः बालकान और मैसोपटामियामें, किन्तु रोग युद्धस्थलके आगे नहीं बढ़ने पाया।

इन आक्रमणोंके संचारका मार्ग अवलोकन करनेसे ज्ञात होता है कि विसूचिकाके एशियासे युरोपको संचारके मार्ग तीन हैं:—

(१) अफ़ग़ानिस्तान, फ़ारस, कैस्पियन समुद्र और आसपासका देश।

(२) फ़ारसकी खाड़ी, सीरिया, एशिया माईनर, टर्की और भूमध्य सागर।

(३) रक्तसागर, मिस्र और भूमध्य सागर।

विसूचिकाके संचारोंका मार्ग अवलोकन करनेसे ज्ञात होता है कि विसूचिकाका संचार मनुष्य

जातिके समागमके मार्गसे होता है और संचार अधिकतर मनुष्य द्वारा ही होता है। इङ्गलैण्ड और संयुक्तराज्यमें पहिले पहिल उन बन्दरगाहोंमें ही जहां व्यवहार अधिक होता है विसूचिकाका आक्रमण आरम्भ होता है। मौरिशसमें ५ आक्रमण हुए और पांचों बार आक्रमण हिन्दुस्तानसे जहाज़ आनेपर आरम्भ हुए। भारतवर्षमें विसूचिकाके स्थिर निवास स्थान होनेसे कभी कभी संचारके मार्गका समझना कठिन हो जाता है। किन्तु अधिकतर मनुष्योंके समागमका प्रभाव विसूचिकाके संचारमें स्पष्टतासे देख सकते हैं। हरद्वार और पुरी इत्यादि धार्मिक स्थानोंकी यात्राओंमें यात्रियोंके साथ विसूचिकाके संचारका अच्छा अवसर रहता है। इन धार्मिक मेलोंमें हर प्रान्तसे लाखों यात्री जमा होते हैं। यात्रियोंमें विसूचिका आरम्भ हो जाता है और यहांसे यात्री घर जाते हुए अपने अपने साथ विसूचिका भी लेते जाते हैं। विसूचिकाके संचारका वेग मनुष्यकी यात्राके वेगसे अधिक नहीं हो सकता। आजकल रेल और जहाज़की समुद्री यात्रा में वाष्पका उपयोग होनेसे बड़े वेगसे विसूचिकाके संचारका होनेका भय रहता है और संचारके मार्गके भ्रमणशील होनेकी अधिक सम्भावना रहती है।

जिन देशोंके निवासियोंका संसारके और देशोंके निवासियोंसे बहुत समागम नहीं रहता वे देश विसूचिकासे मुक्त रहते हैं। अंडमन द्वीपोंमें जोकि विसूचिकाके स्थिर निवास स्थानसे इतने समीप हैं कभी विसूचिकाका आक्रमण नहीं हुआ। इसी प्रकार निम्नलिखित देश भी विसूचिकासे मुक्त रहे हैं—आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, प्रशान्त महासागरके द्वीप, केपगुड होप, अफ्रीकाका पश्चिमोत्तर, औकंनो, शेटलैण्ड, आइसलैण्ड, फेरो-द्वीप और एटलान्टिक महासागरके द्वीप इत्यादि।

करंटीन

ऊपरकी सब बातें पढ़नेसे यह विचार होता है कि करंटीन विसूचिकाको रोकनेके लिये बहुत अच्छी है। किन्तु प्रत्यक्ष देखनेसे करंटीन बिलकुल भी लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। जबतक करंटीनकी बहुत पाबन्दी न की जाये करंटीन बिलकुल व्यर्थ है। बुद्धि सावधानी ईमानदारीका प्रयोग करनेपर भी हम केवल रोगियोंको और ऐसे लोगोंको ही जिनको थोड़े ही समयमें विसूचिका होनेकी सम्भावना है अलग रख सकते हैं। किन्तु इतना करनेपर हमको यह निश्चय नहीं हो सकता कि किसी भी प्रकार जीवाणु नहीं प्रवेश कर सकेंगे। हम यह पहिले ही बतला चुके हैं कि विसूचिकाके रोगियोंसे सम्बन्धमें आये हुए स्वस्थ मनुष्योंके मलमें भी विसूचिका जीवाणु बहुत दिनतक निकलते रहते हैं। विसूचिकाके बीते रोगियोंके मलमें ५० से भी अधिक दिनतक विसूचिका जीवाणु निकलते हैं। स्वस्थ वाहकोंको ही आक्रमणका आरम्भकर्त्ता समझना चाहिये। वाहकोंको पहचाननेके लिये रोगीसे सम्बन्धमें आये सब मनुष्योंके मलकी परीक्षा करनी चाहिये। पारद हरिदकी मात्रा देनेसे जीवाणुओंके मलमें निकलनेकी अधिक सम्भावना होती है। यह ही करंटीन लगानेका असली तरीक़ा है।

करंटीनसे हानि भी हो सकती है। करंटीन लगानेसे विसूचिका रोकनेकी और अधिक लाभकारी और आवश्यक व्यक्तिगत और नगर समितिगत विधियोंके पालनमें ध्यान कम हो जानेकी सम्भावना होती है। जल और भोजनकी पवित्रताकी ओर ध्यान रहना चाहिये। करंटीन स्टेशनमें इतने लोगोंके समागमसे भी वाहकोंकी संख्या वृद्धिकी सम्भावना रहती है। माशकजन (antigen) के लिये विसूचिका जीवाणुओंका पायस प्रयोग करके वेंडेट गेंगूकी प्रतिक्रिया बहुत कठिन होती है, इस कारण प्रयोगात्मक नहीं है।

वह माध्यम विधि जिसके प्रयोगसे इङ्गलैंड विसूचिकासे बचा रहा बहुत अच्छी है। केवल इतना किया जाता था कि उन जहाज़ोंको

जिनपर कोई विसूचिका रोगी हो या जिनपर कोई रोगी रहा हो कुछ समयके लिये ठहरा लिये जाते थे। यह भी केवल इतने ही समयके लिये जितना कि उनको पवित्र करनेमें लगे। इस प्रकार यात्रियोंको बहुत कम विलम्ब और सौदागरोंको बहुत कम हानि होती है। इस कारणसे रोगकी उपस्थिको छिपानेका लालच बहुत कम होता है। रोगी अस्पतालमें भेज दिया जाता था और जहाज़के मुसाफ़िरोंको कुछ थोड़े समय निरीक्षणमें रखकर छोड़ दिया जाता था। साथ साथ बन्दरगाहोंके स्वास्थ्य प्रबन्धमें असावधानी नहीं की जाती थी। देशमें कहीं भी इस रोगका संशय होनेपर एकदम स्वास्थ्य प्रबन्धक समितिको इत्तला दी जाती थी। स्वास्थ्य प्रबन्धक समितिके प्रतिनिधि आकर एकदम मल वमनको नाश करनेका प्रबन्ध कर देते थे। जनताके जल प्रबन्धोंको दूषित होनेसे बचानेके लिये सब प्रयत्न किये जाते थे।

भारतवर्षमें भी हम लोगोंको करंटीन छोड़कर स्वास्थ्य प्रबन्धकी ओर ही अधिक ध्यान देना चाहिये। धार्मिक मेलोंके अवसरपर यात्रियोंके लिये जल प्रबन्धमें बहुत सावधानी की जानी चाहिये। बहुतसे बड़े नगरोंमें अब पवित्र जलका और मलध्वंस (Conservancy) का अच्छा प्रबन्ध होनेसे मृत्युसंख्या बहुत कम हो गई है।

विसूचिकाके आक्रमण होनेपर जो सरकारको प्रयत्न करने चाहिये वे यह हैं—

(१) जहां कहीं नलका प्रबन्ध नहीं है वहां जनताके जल प्रबन्ध कुएँ, तालाब, इत्यादिको पवित्र कराना, यह रंगनाशक चूर्ण (Bleaching powder) से किया जा सकता है। एक एकड़ क्षेत्रके ५ फुट गहरे तालाबके लिये ८ सेर रंग नाशकचूर्ण पर्याप्त होगा। चूर्णको एक बोरेमें भर कर और उसमें रस्सी बांधकर, तालाबमें डाल कर और बोरेको हिला हिलाकर तालाबके हर हिस्सेमें यह चूर्ण पहुँचाना चाहिये।

(२) जिस घरमें विसूचिका हो रहा हो उस घरके किसी आदमीको कुएँ या तालाबमें अपने बरतन डालकर पानी नहीं भरने देना चाहिये। उनको पानी देनेके लिये एक मनुष्यका प्रबन्ध करना चाहिये।

(३) टीकाका प्रबन्ध करना चाहिये।

(४) कहीं विसूचिका होनेकी इत्तिला होनेपर स्वास्थ्य प्रबन्धक समितिको चाहिये कि अपने प्रतिनिधि द्वारा घरमें मल और वमन ध्वंस और घरको पवित्र करनेका प्रबन्ध कराये।

जहांतक हो सके रोगीको अस्पतालमें भिजवा दीजिये। फिर रोगका कारण जाननेका प्रयत्न कीजिये। घरमें रखे हुए खानेके पदार्थ और रखा हुआ पानी फिकवा दीजिये। जिन लोगोंने रोगीवाला ही भोजन खाया हो उनको दवा देनी चाहिये। जो लोग रोगीको अस्पताल ले गये हों या और किसी प्रकार सम्बन्धमें आये हों या विसूचिकाके रोगीके मृतक शरीरको छुएँ, उन्हें बड़ी सावधानीसे अपने हाथ पांशुजम् परमेंगनेत (Pot permangnas) या पारद धोवन (१:१०००) से पवित्र करना चाहिये और स्नान करना चाहिये। वस्त्रोंको उबलते पानी अथवा वाष्पसे पवित्र करना चाहिये। जूतोंको पारद धोवनसे पवित्र कर लीजिये।

चिकित्सकको यह ध्यानमें रखना चाहिये कि विसूचिकाके रोगीका मल शहरवालोंके लिये बहुत ख़तरनाक होता है। विसूचिकाके जीवाणु बीत रोगियोंके मलमें ५० दिन तक निकलते रहते हैं। जीवाणु सुखानेसे कुछ घंटेमें ही मर जाते हैं किन्तु नमीमें जैसे मलसे बिगड़ी हुई चादरपर जलमें या नम धरतीपर विगलिताहारी (Saprophyte) बनकर बहुत दिनोंतक जीवित रह सकते हैं। इस कारण जितने रोगीके कपड़े हों वाष्प शोधक द्वारा पवित्र कराने चाहियें या २½ प्रतिशत क्रव्योल (Crevol) के घोलसे पवित्र करने चाहियें। जहांतक हो सके रोगीके कमरेमें मक्खी न आने देना

चाहिये क्योंकि यह भी रोगको फैलाती हैं। दारुणताकी दशामें और वीतरोग्यताकी दशामें भी यह ध्यान रखना चाहिये कि कुआं, जनताका जल प्रबन्ध, या किसीके भोजनके पदार्थ या खाने पीनेके पात्र दूषित न होने पावें। यदि कहीं धरतीपर मल या वमन गिर जाय उसे क्रव्योल (Crevol) से पवित्र करना चाहिये या उसपर गरम राख डालकर और उसपर बेनज़ोन या मिट्टीका तेल डालकर आग लगा देनी चाहिये। कुल कमरेको रंगनाशक चूर्ण (Bleaching powder) के घोलसे या पारद द्विहरितके (१:१०००) घोलसे धोना चाहिये। कुर्सी मेज़ इत्यादिको पहले गरम पानी और साबुनसे रगड़ रगड़ धोना चाहिये और फिर उन्हीं शोधकोंसे पवित्र करना चाहिये। तीन फुटतक दीवारोंको भी इसी प्रकार धोइये। पाखानेका यदि कोई नाली घरमें हो तो उसे (१:१५०) सिलिन (Cyllin) से पवित्र करना चाहिये। खानेके पात्रोंको उबालना चाहिये। यदि आहातेमें कोई कुआं या तालाबके दूषित होनेका संशय हो तो उसमें रंगनाशक चूर्ण (Bleachring powder) या पांशुजं परमंगनेत (Pot permangnas) ६० ग्रेन प्रति गैलनके हिसाबसे छुड़वा दीजिये। अम्लसे भी विसूचिका जीवाणु नाश हो जाते हैं इसलिये कुएँमें गन्धकाम्ल भी छोड़ सकते हैं। रंगनाशक चूर्ण (Bleaching powder) इस कामके लिये सबसे अच्छा है। एक छोटे कुएँके लिये १ आउन्स रंगनाशकचूर्ण और एक आउन्स ही पांशुजं परमंगनेत पर्याप्त होगा।

व्यक्तिगत रोगसे बचनेके उपाय

विसूचिकाके दिनोंमें अपने स्वास्थ्यकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करनी चाहिये।

१. जहांतक हो सके विसूचिका ग्रसित स्थानोंमें न जाइये।

२. पीनेका पानी और सब पानी जो भोजन पात्रोंके धोनेके काममें आता हो उबाल लेना चाहियें। साधारण छन्नोंपर जल पवित्र करनेके लिये कभी निर्भर न होना चाहियें। छन्ने बिलकुल व्यर्थ समझने चाहियें। कभी कभी छन्नोंसे पानी छाननेसे छन्नेमें बचे हुए जीवाणु और मिल जाते हैं और इस प्रकार पानी और खराब हो जाता है। शायद पाश्चर चेम्बरलेण्ड छन्ना पानी पवित्र कर सके। छन्नोंका प्रयोग त्यागना ही अच्छा है।

३. एक व्यक्तिको अपने पीने भरके एक गिलास पानी पवित्र करनेके लिये लावण्यं द्विगन्धेत (Sodiumbisulphate) की टिकियायें बहुत लाभदायकहैं। इस से गन्धकाम्ल उत्पन्न होता है और गन्धकाम्लसे विसूचिका जीवाणु नाश हो जाते हैं।

४. सदा पानीके स्थानमें कमज़ोर चाय पीनेका नियम बनानेसे दूषित पानी शरीरमें पहुँचनेका भय जाता रहता है।

५. अधिक भोजन न करना चाहिये और कोई ऐसा पदार्थ न खाना चाहिये जो अधिक देरमें पचे।

६. आमाशयको जहांतक हो सके भरा रखिये क्योंकि इससे आमाशयिक रसका स्राव होता है। आमाशयिक रस आम्लिक होता है। अम्ल विसूचिका जीवाणुके लिये घातक होता है।

७. कच्चे फल, बहुत पके फल, सड़े हुए फल, कोई और सड़ा हुआ भोजनका पदार्थ या कोई अधपका भोजनका पदार्थ न खाना चाहिये क्योंकि यह पाचनेन्द्रियोंमें ख़राबी उत्पन्न करते हैं आन्त्रिक श्लेष्मल प्रदाह उत्पन्न करते हैं।

८. ख़रबूज़े, ककड़ी खीरे इत्यादि त्यागना ही अच्छा है। यदि खाना हो तो इनको पहिले पांशुजं परमंगनेत (Pot permangnas) के घोलमें धो लेना चाहिये।

९. बाज़ारके दही बड़े पकौड़ी इत्यादि कभी न खाने चाहियें। यह अधिकतर तेलके होते, और तेल भी कम होनेसे अधपके रह जाते हैं। इस कारण पचते नहीं हैं। लेखकने कई बार दही बड़ोंसे विसूचिका होते देखा है।

१०. भुनी हुई मक्का कभी न खाइये। यह बड़ी कठिनतासे पचती है। इससे कई बार विसूचिका होते देखा है।

११. बाज़ारका सोडावाटर त्यागिये। नये बने हुए सोडावाटरका प्रयोग न कीजिये। अंगारिक अम्ल (Carbonic acid) को अपनी जीवनाशक क्रिया करनेके लिये तीन चार दिनका अवसर दीजिये।

१२. भोजनको मक्खियोंसे बचाइये।

१३. आमाशय और अन्त्रके विकारों (अजीर्ण और प्रवाहिका) की फ़ौरन दवा करनी चाहिये। ये मनुष्योंको विसूचिकाके लिये बहुत रोगशील बनाते हैं।

१४. विरेचन औषधि विशेषतः विरेचन लवणका ऐसे समयमें प्रयोग कदापि न कीजिये।

१५. बवरची और रसोईकी पवित्रताका ध्यान करना चाहिये।

१६. प्रतिरोधक टीका आक्रमणके दिनोंमें अवश्य लगवाना चाहिये।

उपनिषदोंमें ब्रह्मका स्वरूप

[ले०—ठाकुरदत्त मिश्र]

वेदके चार भाग हैं—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। संहिता वेदोंके मंत्र भागको कहते हैं, ब्राह्मणोंमें यज्ञोंकी व्याख्या तथा विवरण है, आरण्यकमें यज्ञोंके रूपकी कल्पना तथा मूर्ति पूजाका आदेश है और उपनिषद्में सर्वोच्च ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया गया है। प्राचीन इतिहासोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वजोंका जीवन चार आश्रमोंमें विभक्त था—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास। बाल्यावस्थामें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हुए संहिता कण्ठस्थ करनी पड़ती थी। युवावस्थामें अध्ययन समाप्त करके हमारे पूर्वज गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होते तथा वेदके ब्राह्मणभागके आदेशानुसार यज्ञोंका अनुष्ठान किया करते थे, और आधी अवस्था व्यतीत हो जानेपर वे लोग परिवारको छोड़कर वानप्रस्थ आश्रममें प्रविष्ट हुआ करते थे। उस दशामें वे आरण्यक कहे जाते थे। वानप्रस्थके पश्चात् वे संन्यास आश्रम ग्रहण किया करते थे। मानव-जीवनका संन्यास ही सर्वोत्कृष्ट आश्रम है। जो व्यक्ति इस आश्रममें प्रविष्ट हुआ करते थे, वे भिक्षु कहलाते थे। मुक्ति मन्दिरकी ओर यात्रा करनेवाले भिक्षुओं या संन्यासियोंके अध्ययन करनेके योग्य जो शास्त्र है, उसीका नाम उपनिषद् है। अतएव उपनिषद् वेदका अन्तिम भाग या वेदान्त है।

इसे वेदान्त माननेका एक कारण और भी है।

उपनिषद् ब्रह्मविद्या है। "सेयं ब्रह्मविद्या उपनिषद् पदवाच्या" क्योंकि उपनिषद्में वेदके सर्वोच्च ब्रह्मज्ञानकी विवेचना की गई है अतएव यह वेदका शिरोभाग अथवा वेदान्त है। उपनिषद्को ब्रह्मविद्या माननेका कारण यह है कि यह अक्षर-ब्रह्मतत्वका प्रतिपादक है।

"येनाक्षरं पुरुषं वेदसत्यं
प्रोवाच ताः तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्"

मुण्डक १-२-१३

जिसके द्वारा उस अक्षरसे सत्य पुरुषका ज्ञान होता है, उसी ब्रह्मविद्याकी यथोचित रीतिसे शिक्षा दी।" इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म ही उपनिषद्का मुख्य विषय है और यही कारण है कि इसका नाम ब्रह्मविद्या है। परन्तु ब्रह्मके तत्त्वको समझनेके लिये जगत् तथा जीव-तत्त्वको समझना बहुत आवश्यक है। अन्यथा ब्रह्मतत्त्वको समझना असम्भवसा प्रतीत होता है। वास्तवमें इन्हीं तीनों तत्त्वोंका निर्णय करना ही समस्त दर्शनोंका मुख्य उद्देश्य है। इन तत्त्वोंके सम्बन्धमें प्राचीन ऋषियोंने उपनिषद्में समस्त वस्तुओंको सत्य माना है, यह केवल (Speculation) या गवेषणा ही नहीं

है, वरन् उन्होंने उसे प्रत्यक्ष भी किया है। उनका कथन है—

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।"

हमने उस ज्योतिःस्वरूप, तमोलोकसे परे महान् आत्माको जाना है। वे फिर कहते हैं:—

अपाम सोमम् अमृता अभूम
अजन्मज्योतिरविदाम देवान्।"

अर्थात् हम सोमपान करके अमर हुए हैं। हमें ज्योति प्राप्त हुई है; हमने देवताओंको जाना है। वास्तवमें इसीलिये उनके ऋषिनामकी सार्थकता है। ऋषि शब्दका अर्थ है द्रष्टा (Seer) जो सत्यका साक्षात् दर्शन किया करते हैं, अपने नेत्रोंसे प्रत्यक्ष अनुभव किया करते हैं, वे ही ऋषि हैं। वही सत्य स्वरूप "सत्यस्य सत्यम्" ब्रह्मवस्तु जिनके मननका विषय है वे ही ऋषि हैं एवं जिन ग्रंथोंमें ऋषियोंने स्वयं प्रत्यक्ष करके सब वस्तुओंको साक्षात् सत्य मानकर लिपि बद्ध किया है, उसीका नाम वेद हैं और उसके शिरोभागको वेदान्त कहते हैं।

अस्तु, उपनिषद्में ऋषियोंने जिस भावसे ब्रह्मका परिचय दिया है, उसका सारांश यह है— "ब्रह्म नेति नेति"।

"अथातो आदेशो नेति नेति।
स एष नेति नेति आत्मा ॥"

ब्रह्म यह नहीं है, यह नहीं है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मके सम्बन्धमें कुछ भी निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। सीधे तौरसे यह कहा जा सकता है कि वह निर्विशेष, निर्विकल्प, निरुपाधि तथा निरञ्जन है।

'तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति, अस्थूलम् अनणु अह्रस्वम् अदीर्घम् अलोहितम् अस्नेहम् अच्छायम् अतमः अवायुः अनाकाशम् असङ्गम् अरसम् अगन्धम् अचक्षुष्कम् अश्रोत्रम् अवाक् अमनो अतेजस्कम् अप्राणम् अमुखम् अमात्रम् अनन्तरम् अवाह्यम्।

हे गार्गि! ब्राह्मण लोग उस अक्षर (ब्रह्म) का इस प्रकार वर्णन करते हैं:—न तो वह स्थूल है, न अणु है, न ह्रस्व है और न दीर्घ ही है। वह लोहित अर्थात् रक्तवर्णका नहीं है और न स्नेह, छाया, तम अर्थात् अन्धकार, वायु, आकाश, रस, शब्द या गन्ध ही है। वह ब्रह्म चक्षु, (नेत्र) श्रोत्र (कर्ण), वाक्य तथा मन इत्यादि इन्द्रिय या तेज, प्राण, मुख मात्रा, अन्तर तथा बाहर इत्यादि सब से परे है।

इस सम्बन्धमें उपनिषद्का अन्य स्थान पर कथन है:—

नान्तः प्रज्ञं न वहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानधनं नप्रज्ञं नाप्रज्ञमदृष्टम् अव्यवहार्यमग्राह्यम लक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यम् एकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशम् शान्तं शिवं अद्वैतम्, चतुर्थं मन्यन्ते। स आत्मा सविज्ञेयः। माण्डूक्य ७।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसम् नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्यु मुखात् प्रमुच्यते। कठोपनिषद् ३-१५

अर्थात् उस शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध इत्यादि गुणोंसे भिन्न, आदि अन्तसे रहित अव्यय तथा अक्षय महानसे महान ध्रुववस्तुका ज्ञान प्राप्त करनेपर जीव मृत्युके मुखसे मुक्त हो जाता है।

'निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।'

अर्थात् ब्रह्म निर्गुण, कलाओं तथा क्रियाओंसे हीन तथा निरञ्जन हैं। इसीलिये उपनिषद्ने कहा है—

'अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात् अन्यत्रास्मात्कृताकृतात्। अन्यत्र भूताच्चभव्याच्च' —कठ, २। १४

ब्रह्म धर्म तथा अधर्मसे भिन्न और कार्य कारणसे पृथक् है। वह भूत और भविष्यसे भी परे है।

ऐसी दशामें प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि ब्रह्म निर्विशेष, निर्विकल्प, निरुपाधि तथा निर्गुण है तो उपनिषद्ने उसे सच्चिदानन्द स्वरूप क्यों कहा है?

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'

'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'

इन सब शिक्षाओंका क्या उद्देश्य है यह मैं अवसर पड़नेपर बतलाऊँगा, किन्तु इस स्थानपर मुझे केवल इतना ही दिखलाना है कि ऋषियोंने जिस प्रकार ब्रह्मको सत् कहा है उसी प्रकार असत् भी माना है। अर्थात् न तो वह सत् है और न असत।

न सन्नचासच्छिव एव केवलः।

—श्वेताश्वतर, ४ । १८

वह न तो सत् है और न असत्—एक अद्वितीय शिव अर्थात् मङ्गलमय है। इस सम्बन्धमें गीताका भी वाक्य है :—

'अनादिमत्परंब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते'

—गीता, १३ । १२

अर्थात् 'परब्रह्म अनादि है, न तो वह सत् है और न असत्।' इसी प्रकार ब्रह्मको चित् तथा अचित् (ज्ञान अज्ञान) भी नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि योगवाशिष्ठकारने लिखा है— 'ब्रह्म चेतन होते हुये भी जड़ है'—

'कश्चेतनोऽपि पाषाणः।

अन्य स्थानपर यह भी कहा है कि ब्रह्म न तो सुख है और न दुःख।

'वेद्यं सर्पः परं ब्रह्म निर्दुःखमसुखञ्चयत्।

—महाभारत वनपर्व, १८ । २२

अर्थात् 'हे सर्प जो न तो दुःख है और न सुख, उसीको परब्रह्म समझना।'

जिस प्रकार उपनिषद्में ब्रह्मको आनन्द कहा गया है, उसके साथ ही साथ उसे सुखसे परे भी माना गया है। (आनन्द नन्दनातीतं, तेज, ८) स्कन्दपुराण पुराणके अन्तर्गत श्रुतसंहितामें परब्रह्मकी स्तुति पढ़नेसे इस विषयमें सन्देहका लेश भी नहीं रह जाता।

'नमस्ते सत्यरूपाय नमस्तेऽसत्यरूपिणे।
नमस्ते बोधरूपाय नमस्तेऽबोधरूपिणे।
नमस्ते सुखरूपाय नमस्तेऽसुखरूपिणे॥'

३ । ३३ । ३४

हे ईश्वर, तू सत्यस्वरूप है, असत्यस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, अज्ञानस्वरूप है, सुखस्वरूप है तथा असुख अर्थात् दुःखस्वरूप है, मैं तुझे नमस्कार करता हूं।

परब्रह्म यदि सदसत्, जड़-चेतन, सुख-दुःख, ह्रस्व-दीर्घ, स्थूल-अणु (सूक्ष्म) कुछ भी नहीं है; यदि वह निर्विशेष, निर्विकार, निर्विकल्प (नित्य) निरुपाधि तथा निरञ्जन है, तो वह निःसन्देह अनिर्वचनीय है। उपनिषद्ने इस बातको स्पष्ट रूपसे कहा है—

'यतोवाचो निवर्त्तन्ते प्राप्य मनसा सह।'

तैत्तिरीय, २ । ४ । १

(मनके सहित वाक्य जिसे न पाकर लौट आते हैं)

'न चक्षुषा गृह्यते नापिवाचा नान्यैर्देवैस्तपसाकर्मणावा। —मुण्डक, ३ । १ । ८

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।

—कठ, ३ । १२

अर्थात् न तो उसे कोई नेत्रोंके द्वारा ग्रहण कर सकता है, न वाक्योंके द्वारा और न इन्द्रियोंके द्वारा, वह ब्रह्म तपस्या और कर्मके द्वारा भी नहीं ग्रहण किया जा सकता। सारांश यह है कि वाक्य, मन तथा नेत्र, किसीके द्वारा भी वह ग्राह्य नहीं है। इस सम्बन्धमें स्वामी शङ्कराचार्यने एक प्राचीन आख्यायिकाका उल्लेख करके कहा है कि जब वास्कलिने महर्षि वाध्वसे ब्रह्मके सम्बन्धमें बार बार प्रश्न किया तो भी उन्होंने मौन रहकर बिना कुछ कहे ही ब्रह्मका निर्देश किया था, क्योंकि इस स्थानपर मौन ही यथार्थ निरूपण है। उनका कथन है—

'वास्कलिना च वाध्वः पृष्टः सन अवचनेनैव ब्रह्म प्रोवाच इति श्रूयते।'

—ब्रह्मसूत्रशाङ्कर भाष्य, ३ । २ । १७

उसी सम्बन्धमें महाकवि गेटेके निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करना मैं बहुत आवश्यक समझता हूं।

"Who dare express Him ?
And who profess Him ?
Who feeling, seeing
Deny His, Being, Etc."

इसीलिये तो उपनिषद्ने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

'अन्यदेवताद्विदितादथोऽविदितादधि ।'

अर्थात् ब्रह्म न तो विदित है और न उसे अविदित यानी अज्ञात ही कहा जा सकता है। इसी पहेलीको कुछ और गम्भीर करके केनोपनिषद्ने कहा है।

'यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविज्ञानताम् ॥'
—केन, २ । ३

जो व्यक्ति ब्रह्मको नहीं जानता वही ज्ञाता है, और जो जानता है वही अज्ञानी है। जो व्यक्ति ब्रह्मको जानता है, वह उससे अज्ञात है और जो नहीं जानता, उसीसे अभिज्ञ है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ब्रह्म अज्ञेय क्यों है ? इसका कारण यह है कि यदि वह सदासे विषयोंका आधार है (Eternal subjeect) है तो विषय (objeect) कदापि नहीं हो सकता।

'येनेदं सर्वं विजानाति तंकेनविजानीयात् विज्ञातारम् केन विजानीयादिति । —वृह, २ । ४ । १४

जिसके द्वारा संसारकी सब वस्तुओंका ज्ञान होता है, उसे किस प्रकार जानें ? जो स्वयंज्ञाता (जो कि दर्शक तथा साक्षी मात्र है) उससे किस प्रकार परिचय हो।

मैं पहले लिख चुका हूं कि ब्रह्म अनादि कालसे विषयोंका आधार है अतएव वह विषय कदापि नहीं हो सकता, इस बातको प्रमाणित करते हुए उपनिषद्ने कहा है :—

'तद्वा एतदक्षरं गार्गि अदृष्टं द्रष्टं, अश्रुतं श्रोतृ अमतं मन्तृ अविज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति दृष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्य दतोऽस्ति विज्ञातृ । —वृह०, ३ । ८ । ११

अर्थात् हे गार्गि वह अक्षर (ब्रह्म) स्वयं अदृष्ट है किन्तु सब कुछ देखता है, स्वयं कर्णगोचर नहीं होता किन्तु सब कुछ सुनता है, इसे कोई भी मनन नहीं कर सकता किन्तु वह सब कुछ गुनता रहता है और वह अज्ञात होकर भी सभी सृष्टिका ज्ञाता है। संसारमें उसके अतिरिक्त और कोई भी न तो कुछ देखता है, न सुनता है और न कुछ मनन ही करता है। इसके अतिरिक्त और कोई विज्ञानी भी नहीं है। इसी बातको कुछ हेर फेर करके उपनिषद्ने अन्य स्थानपर कहा है कि यह ब्रह्म ही नेत्रोंकी ज्योति, कर्णोंकी श्रवणशक्ति मुखकी वक्तृत्वशक्ति तथा मनकी मननशक्ति है और प्राणोंकी जीवन शक्ति भी यही है।

इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि वह ब्रह्म जो कि एक मात्र द्रष्टा तथा समस्त विषयोंका आधार है वह कदापि प्रत्यक्ष तथा विषय नहीं हो सकता।

ब्रह्मके ज्ञानसे परे होनेका एक और भी कारण है। यदि वह निरूपाधि अर्थात् देश, काल तथा निमित्त इत्यादि उपाधियोंसे पृथक् है तो वह कदापि ज्ञानका विषय नहीं हो सकता।

अर्थात् यदि किसीको अपने मननका विषय बनाना हो तो पहले उसे उपाधिके द्वारा उपस्थित करना पड़ता है। यह उपाधि तीन प्रकारकी है—देश काल और निमित्त। जिस वस्तुको इन तीन उपाधियोंके सम्बन्धके द्वारा सापेक्ष सम्बन्ध युक्त न किया जाय वह ज्ञानका विषय कदापि नहीं हो सकता। ब्रह्म यदि उपाधियोंसे रहित है तो वह निस्सन्देह देश, काल और निमित्तसे परे है। ब्रह्मको अनन्त कहनेसे ही यह स्पष्ट है कि वह निष्कल अर्थात् देशकालसे अतीत है।

'सएव अधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् सदक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वम् ।
—छान्दोग्य, ७ । २५ । १

अर्थात् वह नीचे, ऊपर, पीछेकी ओर, सम्मुख दक्षिण तथा वामभागमें सर्वत्र विराजमान है। क्योंकि ब्रह्मको अनादि तथा सनातन कहा जाता है इससे ज्ञात होता है कि वह कालसे परे है।

जिस प्रकार ब्रह्म देश तथा कालसे परे है, उसी प्रकार निमित्तसे भी रहित है। ऐसी दशामें उसमें विकारकी तो सम्भावना ही नहीं है। ब्रह्म निर्विकार है। 'अन्यत्रास्मात् कृताकृतात्। कठ० २।१४' इसीलिए उसे ध्रुव, शाश्वत, नित्य तथा पुराण कहा जाता है।

'अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः।'-कठ, २।१८

अर्थात् वह परब्रह्म जन्म-मृत्युसे रहित, नित्य, निर्विकार तथा सनातन है। वह कूटस्थ अजर, अमर तथा अक्षर है।

'तदेतत् अक्षरं ब्राह्मणो विविदिषन्ति।'

—बृहदारण्यक।

सारांश यह है कि ब्रह्म निमित्तसे परे है अतएव ब्रह्म यदि निरुपाधि है तो निस्सन्देह वह ज्ञान से भी परे है। परन्तु अज्ञेयवाद उपनिषद्का अन्तिम वाक्य नहीं है, उसके मतानुसार निर्विशेष निर्विकल्प तथा निरुपाधि भावोंके अतिरिक्त ब्रह्मका एक सविशेष, सोपाधि (उपाधि सहित) सगुण भाव भी है। श्रीस्वामी शङ्कराचार्य ने स्वयं इसका अनुमोदन किया है।

'द्विरूपं हि ब्रह्म अवगम्यते, नामरूपभेदोपाधि-विशिष्टं। तद्विपरीतञ्च सर्वोपाधिविवर्जितम्।'

अर्थात् ब्रह्म दो प्रकारका है, एक तो नाम, रूप, भेद तथा उपाधिसे युक्त और दूसरा ठीक इसके विपरीत यानी इन सबोंसे भिन्न।

'सन्ति उभयलिङ्गाः श्रुतयो ब्रह्मविषयाः। सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरस इत्येवमाद्याः सविशेष लिङ्गाः, अस्थूलमणु अह्रस्वम् अदीर्घं इत्येवमाद्याश्च निर्विशेषलिङ्गाः।'

अर्थात् ब्रह्मके विषयमें दो प्रकारकी श्रुतियां हैं, यानी सविशेष लिङ्ग-श्रुतिके अनुसार तो वह (ब्रह्म) कर्म, काम, गन्ध तथा रस इत्यादि सबोंमें व्यापक है और दूसरी यानी निर्विशेष लिङ्ग-श्रुतिके द्वारा न तो वह स्थूल है, न सूक्ष्म है न ह्रस्व है और न दीर्घ ही है। परन्तु इस स्थानपर हमें उक्त स्वामी जीके वाक्योंपर निर्भर रहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस सम्बन्धमें उपनिषद्ने स्वयं स्पष्ट रूपसे कहा है—

'एतद्वै सत्यकामः परञ्च अपरञ्च ब्रह्म।'

—प्रश्न, ५।२

हे सत्यकाम! यह ब्रह्म पर तथा अपर यानी पूर्व है।

'द्वे परब्रह्मणी अभिध्ये ये शब्दश्च अशब्दश्च शब्द ब्रह्मपरञ्चयत्। —मैत्री, ६।२२

अर्थात् दो प्रकारसे ब्रह्मका ध्यान करना चाहिये, शब्दब्रह्म तथा अशब्द यानी परब्रह्म?

'द्वेलेव ब्रह्मणोरूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च, मृतञ्चामृतञ्च स्थितञ्च यच्चसच्च त्यच्च। —बृह०, २।३।१

अर्थात् ब्रह्म दो प्रकारका है, साकार तथा निराकार, नश्वर तथा अमर, स्थिर तथा अस्थिर और सत् तथा असत्।

'द्वेलेव खल्वेते ब्रह्मज्योतिषोरूपके।'

—मैत्रायणी, ६।३६

केवल उपनिषद्ने ही नहीं किन्तु पुराणोंने भी निर्गुण तथा सगुणको एक ही वस्तु माना है।

'सगुणो निर्गुणो विष्णुः।'

विष्णु सगुण भी हैं और निर्गुण भी।

'लीलयावापि युञ्जैरन् निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः।'

भागवत, ३।७।२

अर्थात् निर्गुण ब्रह्म गुण और क्रियासे युक्त होते हैं।

'सर्वं त्वमेव सगुणो निगुणश्च भूमन्।'

भागवत, ७।९।४८

हे सर्वव्यापिन्, सगुण तथा निर्गुण केवल तुम्हीं सब कुछ हो। इस विषयमें विष्णु पुराणका कथन है—

'सदक्षरं ब्रह्म य ईश्वरः पुमान्
गुणोर्मिसृष्टिस्थिति काल संलयः।'—१।१।२

अर्थात् जब प्रकृतिके क्षोभसे उत्पन्न सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयके कारणस्वरूप पुरुष तथा ईश्वर हैं वही सत्, अक्षर तथा ब्रह्म भी हैं। इस सम्बन्धमें भागवतने अन्य स्थान पर कहा है—

'वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यद्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान इति शब्द्यते॥'

—१।२।११

अर्थात् उसी अद्वितीय चित् वस्तुको तत्त्व ज्ञानियोंने 'तत्त्व' संज्ञा प्रदान की है। वही ब्रह्म है, वही परमात्मा है और भगवान् यानी सगुण ब्रह्म या महेश्वर भी वही है।

निर्गुण ब्रह्म किस प्रकार सगुण हुआ करता है तथा ब्रह्मका निर्विशेषभाव सविशेष भावमें किस प्रकार परिवर्तित होता है, इस प्रश्नके उत्तरमें उपनिषद्का कथन है कि माया तथा उपाधिको स्वीकार करके वह रूपको धारण किया करता है।

वास्तवमें सगुणब्रह्म ही महेश्वर है। वही मायी अर्थात् माया तथा उपाधिसे आच्छादित है। जिस प्रकार मकड़ी जाल बनाकर उसीमें फँसी रहा करती है उसी तरह निर्गुणब्रह्म अपनेको माया रूपी जाल द्वारा आच्छादित करके सगुण तथा उपाधि युक्त होता है। मानो माया ही ब्रह्मकी यवनिका है।

'यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः।
स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत्॥' श्वे०, ६।१०

इसी आशयको लेकर भागवतने कहा है—

'गृहीतमायोसगुणः सर्गादावगुणः स्वतः।

—भागवत, २।६।२३

अर्थात् निर्गुण ब्रह्म माया तथा उपाधि ग्रहण करके स्वयं सगुण हुआ करता है। उस दशामें उसे महेश्वर कहा जाता है।

'तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्'

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'

यही सगुण ब्रह्मके स्वरूपका लक्षण है। और उसे जो 'तज्जलान्' कहा जाता है, यह उसका तटस्थ लक्षण है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति।'

—छान्दोग्य, ३।५।१

इस कथनका तात्पर्य यह है कि उसी ब्रह्मसे संसारकी उत्पत्ति हुई है, वह उसीमें स्थित है और उसीमें एक दिन विलीन हो जायगा, अर्थात् सृष्टि-स्थिति तथा प्रलयका कारण वही है। वही सृष्टि करता है, पालन करता है और अन्तमें संहार भी किया करता है। इसी अभिप्रायसे उपनिषद्ने कहा है—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।'–तैत्तिरीय, ३।१

अर्थात् जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके द्वारा जीवित रहते हैं और अन्तिम समयमें जिसमें विलीन हो जायँगे, वही ब्रह्म है।

यह सगुण ब्रह्म या महेश्वर हमारी आराधनाके वस्तु हैं इसलिये उपनिषद्ने उन्हें 'तद्वत्' संज्ञा प्रदान की है। वे हमारे 'वनित' आराध्य वस्तु हैं 'संयद्वाम' अर्थात् प्रेमास्पद हैं, वे ही 'वामती' अर्थात् प्रेमाधार हैं। वे ही रस-स्वरूप (रसो वै सः) हैं, वे ही विधाता तथा जीवोंके कर्मफलके प्रदान करनेवाले भी हैं।

'सैवा एष महानात्मा वसुदानः।'

बृह०, ४।४।२४

वही धर्मके पालन करनेवाले तथा पापका विनाश करनेवाले भगवान हैं।

'धर्म्मवहं पापनुदं भगेशम्।' —श्वेताश्वर, ६।६

वह संसारके सेतु-स्वरूप तथा समस्त संसार की मर्यादाके आधार हैं।

'अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानां सम्भेदाय।' —छा०, ८।४।१

ब्रह्मके सम्बन्धमें उपनिषद्ने एकसे एक बढ़कर मन्त्रोंकी रचना की है।

'अपाणिपादो जवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुः शृणोत्यकर्णः। सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्। —श्वेताश्वर, ६।१०

अर्थात् उसके हाथ नहीं हैं पर वह ग्रहण करता है, पैर नहीं हैं, पर चलता है, नेत्रोंसे हीन होने पर भी देखता है तथा कर्ण रहित होकर भी श्रवण करता है। वह सर्वज्ञ है, किन्तु उसे कोई भी नहीं जानता, उसीको महान् पुरुष कहा जाता है।

'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्।'—कठ, ५।१३

अर्थात् वे नित्यके भी नित्य तथा चेतनके चेतन हैं।

'अणोरणीयान् महतो महीयान्।' —कठ, २।२

वह ब्रह्म सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तथा महान्से भी महान् है।

'एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एषां लोकानामसम्भेदाय।

—वृहदारण्यक, ४।४।२८

यह ब्रह्म सर्वेश्वर है, यह समस्त प्राणियोंका स्वामी तथा पालन करनेवाला है, इसीने समस्त लोकोंको विभक्त किया है और वही उन्हें धारण करनेके लिये सेतु है।

'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो, विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैः द्यावाभूमी जनयन्देव एकः। —श्वेताश्वतर, ३।३

उस पारब्रह्म परमात्माके नेत्र, मुख तथा बाहु सृष्टिके एक छोरसे दूसरे छोर तक सर्वत्र व्याप्तमान हैं। वही मनुष्योंको भुजाओं तथा पक्षियोंको पंखोंसे युक्त किया करता है और उसीने आकाश तथा पृथिवीकी सृष्टि की है। वह ईश्वर अद्वितीय है।

'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं वृहत्॥'

—श्वेताश्वतर, ३।१६, १७

इसके हाथ-पैर, मुख-नासिका तथा नेत्र और कर्ण सर्वत्र हैं, वह सर्वव्यापी है। समस्त इन्द्रियोंसे हीन होने पर भी वह सब गुणोंसे युक्त है। वह महेश्वर समस्त चराचर संसारका स्वामी, तथा आश्रय है।

ब्रह्मका जो सविशेष भाव है, वह अज्ञेय नहीं है। सगुण ब्रह्म या महेश्वर साधारण मन तथा बुद्धिके अप्रत्यक्ष होते हुए भी शुद्ध मन, श्रद्धासे युक्त बुद्धि एवं समाधि योगके द्वारा अवश्य जाना जा सकता है।

'एष सर्वेषु भूतेषु गोढ़ोत्मानप्रकाशते।
द्रश्यतेत्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥'

—कठ, ३।१२

अर्थात् यह आत्मा सब प्राणियोंमें व्याप्त होते हुए भी प्रकाशित नहीं होती किन्तु सूक्ष्मदर्शी गण अपनी कुशाग्रबुद्धिके द्वारा इसे देख ही लिया करते हैं।

'अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वाधीरो हर्षशोकौ जहाति।'

—कठ, २।१२

अर्थात् अध्यात्म-योगका ज्ञान प्राप्त करनेपर देव (ब्रह्म) को जानकर धीर व्यक्ति सुख-दुखसे मुक्त हो जाते हैं।

'हृदामनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति। —कठ, ६।९

अर्थात् हृदय तथा बुद्धि युक्त मनके द्वारा उस ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त हुआ करता है। जो लोग उसे जानते हैं, जन्म तथा मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

'ज्ञानं प्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्तस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।' —मुण्डक, ३।१।८

अर्थात् साधकगण ज्ञानकी सहायतासे ध्यानयोगमें अखण्ड परमात्माका दर्शन किया करते हैं।

'पराञ्चखानि व्यतृणत् स्वयम्भू
स्तस्मात् परां पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्

—कठ, २।१।१

अर्थात् ईश्वरने इन्द्रियोंको वहिर्मुख कर दिया है अतएव समस्त प्राणी केवल बाहरी विषयोंको

ही देखते हैं। वे अन्तरात्माको नहीं देख सकते। परन्तु कुछ धीर पुरुष मुक्तिकी अभिलाषासे आँखें मूँदकर अपनी इन्द्रियोंको बाहरी विषयोंसे हटाते तथा अपनी आत्मामें ही ब्रह्मका दर्शन किया करते हैं।

ऐसी दशामें सन्देह यह उपस्थित होता है कि एक ही ब्रह्मका सगुण तथा निर्गुण एवं सविशेष तथा निर्विशेष भाव साथ ही साथ होना कैसे सम्भव है? इसके उत्तरमें कहा जा सकता है कि बुद्धिके द्वारा तो यह समस्या हल ही नहीं की जा सकती किन्तु इससे बढ़कर प्रज्ञा (Intellect) तथा अनुभव (Intuition) के समक्ष यह विषय अगम्य नहीं है। क्योंकि ब्रह्म सदासे ही समस्त द्वन्द्वोंका समन्वय है।

यही कारण है कि उपनिषद्में ब्रह्मको प्रायः विरुद्ध धर्मोंका आधार माना गया है। यथा—वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तथा महान्‌से भी महान् है (अणोरणीयान् महतोमहीयान्) वह—

अणीयान् व्रीहेर्वायवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा ज्यायान् दिव्ये ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः। —छान्दोग्य

अर्थात् धान, जव, सरसों, सांवा तथा सांवेके चावलकी अपेक्षा भी सूक्ष्म है, यह हमारी आत्मा यानी अन्तःकरणमें स्थित रहता है और पृथिवी आकाश यानी समस्त भुवनोंकी अपेक्षा बड़ा है। केवल यही नहीं वरन् और भी कहा गया है :—यह निमेष है और कल्प भी है अर्थात् वह क्षणिक भी है और सर्वदा स्थायी रहनेवाला (चिरन्तन) भी है।

'निमेष एकः कः कल्पः कः कल्पोऽपि निमेषकः।'

इसीको समझानेके लिये उपनिषदने कहा है। मानो वह ब्रह्म विजलीकी चमचमाहट तथा नेत्रोंका निमेष है (यदेतद्विद्युतोव्यद्युतत् आन्यमीमिषत् आ—केन, ४। ४) इसके अतिरिक्त और भी कहा है।

'यस्मादर्वाक् संवत्सरः अहोभिः परिवर्तन्ते ॥'

'जिसे सब स्पर्श किये बिना दिनोंके सहित सम्वत्सर बदलते रहते हैं। इतनेमें ही सन्तोष नहीं हुआ वल्कि उपनिषद्‌ने यहाँतक कह डाला है—वह ब्रह्म समीप तथा दूर एवं भीतर तथा बाहर सर्वत्र विराजमान है। वह चर भी है और अचर भी।

'आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति॥'
—कठ, २। २१

'अनेजदेकं मनसोजवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वादधाति॥ तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्यास्यबाह्यतः॥' —ईश, ४। ५

जो कि मदामद अर्थात् हर्ष और शोकका कारण है, जो स्थित रहकर भी दूर रहता है और सोते हुए भी सर्वत्र भ्रमण किया करता है उस ब्रह्मको मेरे अतिरिक्त और कौन जान सकता है। वह अचल होते हुए भी मनकी अपेक्षा अधिक वेगवान है, वह गतिसे विहीन होने पर भी लक्ष्य स्थानपर सबसे पहले पहुँचता है एवं स्थिर रहने पर भी समस्त गमनशील प्राणियोंके आगे चलता है। मातरिश्वा अर्थात् प्राणवायु उसमें अप् (कारणार्णव) स्थापित किया करता है। वह ब्रह्म चर भी है और अचर भी, वह दूर भी रहता है और समीप भी। वह समस्त प्राणियोंके भीतर तथा बाहर सदा परिव्याप्त रहता है। इसीसे ब्रह्मका एक ही समयमें सगुण तथा निर्गुण सविशेष और निर्विशेष, उपाधि सहित तथा निरुपाधि एवं सविकल्प तथा निर्विकल्प (नित्य अनित्य) कहकर उपनिषद्‌में विरुद्ध धर्मोंके समन्वयका विधान किया है। परन्तु हमें यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि, सगुण-निर्गुण तथा सविशेष एवं निर्विशेष कोई पृथक् तत्त्व नहीं है। ये एक ही ब्रह्मके तत्त्वान्तर मात्र हैं।†

† ब्रह्म विद्या नामक मासिक पत्रिकामें प्रकाशित एक बंगला लेखके आधार पर लिखित।

चलन समीकरण

[ले० श्री अवध उपाध्याय]

हिन्दी में उच्च-गणित सम्बन्धी पुस्तकोंका एक प्रकार से बड़ा भारी अभाव है। पं० सुधाकरजी द्विवेदीने चलन-कलन तथा चलराशिकलनपर पुस्तकें लिखकर बड़ा भारी उपकार किया, परन्तु इनकी भी गणना उच्च-गणितमें नहीं हो सकती।

तथापि हिन्दी भाषामें ऐसी कोई पुस्तक नहीं है, जो द्विवेदीजीके उक्त ग्रन्थोंके पढ़नेके अनन्तर प्रारम्भकी जा सके।

जिन लोगोंको उच्च गणितके पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे भली भाँति जानते हैं कि चलन-कलन तथा चल-राशि कलन पढ़ लेनेपर चलन-समीकरणका प्रारम्भ होता है, परन्तु जिन लोगोंने उक्त ग्रन्थों को भली भाँति नहीं समझा है उनके लिये चलन-समीकरणका समझना बहुत कठिन है।

चलन-समीकरण एक बहुत ही सुन्दर तथा उपयोगी गणितका भाग है। इसके पढ़ लेनेपर कल-शास्त्रीयगणित-की पुस्तकोंका समझना बहुत ही सुगम हो जाता है।

इन लेखोंमें अत्यन्त सुगम चलन-समीकरणका अति संक्षिप्त वर्णन किया गया है। यदि समय मिला तो इसके इतिहास, इसकी उत्तरोत्तर वर्द्धनशीलता, इसकी वर्त्तमान दशा तथा इसके उन प्रश्नोंपर भी विचार किया जायगा, जिन्हें संसारका कोई गणितज्ञ भी आजतक हल नहीं कर सका है। ऐसे प्रश्नोंको हल कर देना ही गणितीय आवि-ष्कार है।

उच्च-गणितके प्रत्येक भागमें बहुतसे ऐसे प्रश्न अब भी वर्त्तमान हैं, जो कई वर्षोंसे हल नही हो सके हैं और जिनके हल करनेका प्रबल परिश्रम तथा प्रयत्न संसारके गणितज्ञ करते चले आये हैं और अब भी करते रहते हैं।

प्रथम अध्याय

ऐसे समीकरण को, जिसमें तत्कालि की गति, तात्कालिक वेग अथवा तात्कालिक सम्बन्ध हो चलन समीकरण कहते हैं।

ऐसे चल समीकरणको जिसमें केवल एक ही स्वतन्त्र चल राशि हो साधारण चल समीकरण कहते हैं।

साधारण चल समीकरण के उदाहरण

$$\frac{त\,र}{त\,य} = \text{कोज्या}\ य \quad \cdots\cdots (१)$$

$$\frac{त\,र}{त\,य} = य \quad \cdots\cdots (२)$$

$$\frac{त^२ र}{तय^२} = ० \quad \cdots\cdots (३)$$

$$र = य\frac{त\,र}{त\,य} + \frac{अ}{\left|\frac{त\,र}{त\,य}\right|} \quad \cdots\cdots (४)$$

$$\frac{\left[१ + \left(\frac{त\,र}{त\,य}\right)^२\right]^{\frac{३}{२}}}{\frac{त^२ र}{तय^२}} = र \quad \cdots\cdots (५)$$

$$र = य\ \frac{त\,र}{त\,य} \quad \cdots\cdots (६)$$

$$र\,त\,र = य\,त\,य \quad \cdots\cdots (७)$$

$$र\,त\,र = य\,त\,य = ० \quad \cdots\cdots (८)$$

जैसे साधारण समीकरणोंका बनना सुगम है, परन्तु उनका हल करना कठिन है, उसी प्रकार चल समीकरणों-का बनाना भी आसान है, परन्तु उनका हल करना बहुत ही कठिन हो जाता है। तो भी इस पुस्तकमें उनके बनानेके नियमों

का अच्छी तरह से वर्णन होगा, क्योंकि ये नियम चल समीकरणों-के हल करने में बहुत ही सहायक होते हैं।

चलनकलनके विद्यार्थी भली भाँति जानते हैं कि समीकरण फ (य, र, अ) = ० किसी वक्रका समीकरण है। इस समीकरण में य और र चलराशियाँ हैं अ एक स्थिर राशि है।

अ का मान १, २, ३, ४ या और कोई संख्या हो सकता है। इस प्रकार फ (य, र, अ)=० केवल एक ही किसी विशेष वक्रका समीकरण नहीं है, बल्कि अपने कुल वक्र वंशोंका ॥

समीकरण फ (य, र, अ)=० में अ का मान किसी विशेष वक्रके लिए एक निश्चित स्थिर राशि ही होगा, परन्तु वक्र वंश के भिन्न भिन्न वक्रोंके लिए अ का मान भी भिन्न भिन्न होगा।

कभी कभी ऐसे प्रश्न उपस्थित होते हैं, जिनमें वक्रवंश के सब वक्रोंसे सम्बन्ध रहता है, केवल किसी विशेष वक्र से ही नहीं। उदाहरणके निम्न लिखित प्रश्न लिया जा सकता है।

र=म य+क, एक सरल रेखाका समीकरण है। उन सब वक्रोंका समीमरण निकालो, जिनको, यह दी हुई सरल रेखा समकोणपर काटे? प्रश्न से स्पष्ट है कि उक्त प्रश्नमें किसी विशेष वक्रका समीकरण नहीं निकालना है वरन उन सब वक्रों-का जिन्हें उक्त सरलरेखा समकोणपर काटती है ऐसे प्रश्नोंकी क्रियामें अ का लुप्तीकरण बहुत ही आवश्यक है नहीं तो उत्तरमें हमलोग केवल एक विशेष वक्र का ही समीकरण निकाल सकेंगे। चलन समीकरण में अ नहीं रहता। अतएव ऐसे प्रश्नोंके हल करनेमें चल समीकरण बहुत ही उपयोगी होता है

कल्पना किया कि फ (य, र, अ) = ० एक समीकरण है। तात्कालिक वेगकी क्रियाकी सहायतासे अ का लुप्तीकरण हो सकता है

फ (य, र, अ) = ० .... (१)

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$$\frac{\text{त (फ)}}{\text{त य}} + \frac{\text{त (फ)}}{\text{त र}}\ \frac{\text{त र}}{\text{त य}} = 0 \quad \cdots\cdots (२)$$

इन दोनों समीकरणोंकी सहायतासे अ का लुप्तीकरण भली भाँति हो सकता है उक्त लुप्तीकरणके करनेपर, एक समीकरण उत्पन्न होगा जिसमें य, र और $\frac{\text{तर}}{\text{तय}}$ होंगे और समीकरण, वक्र वंशका चलन समीकरण कहा जा सकता है।

नीचे, उक्त सिद्धान्तका उदाहरण दिया जाता है।

र=मय .... (१)

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$$\frac{\text{तर}}{\text{तय}} = \text{म} \quad \cdots\cdots (२)$$

प्रथम समीकरणकी सहायतासे $\text{म} = \frac{\text{र}}{\text{य}}$

और द्वितीय समीकरणकी सहायतासे $\text{म} = \frac{\text{तर}}{\text{तय}}$

$$\therefore \frac{\text{तर}}{\text{तय}} = \frac{\text{र}}{\text{य}}$$

अथवा $\text{य}\ \frac{\text{तर}}{\text{तय}} = \text{र}$ ......(३) यही चल समीकरण हुआ।

प्रथम समीकरणसे मूल विन्दुसे होकर जानेवाली सरल रेखाओंका बोध होता है। इसमें एक स्थिर राशि है और म का मान भिन्न भिन्न मान कर भिन्न भिन्न सरल रेखाओंका सम्पादन हो सकता है।

चल समीकरण (३) भी उन्हीं रेखाओंका द्योतक है।

उदाहरण

१. $\text{र}^2 = ४\ \text{स}\ \text{य}$ ....(१)

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$$२ र \frac{तर}{तय} = ४ अ \quad \cdots\cdots\cdots (२)$$

अ का लुप्तीकरण करने से $२ र \frac{तर}{तय} = \frac{र^२}{य}$

$$\therefore २ य \cdot र \frac{तर}{तय} = र^२$$

$$अथवा\ २ य \frac{तर}{तय} = र$$

$$अर्थात्\ २ य र_१ = र \quad \cdots\cdots\cdots (३)$$

२. $\sqrt{१ - य^२} + \sqrt{१ - र^२} = अ(य - र) \quad \cdots\cdots\cdots (१)$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$$\frac{य}{\sqrt{१ - य^२}} + \frac{र}{\sqrt{१ - र_२}} \frac{तर}{तय} = - अ \left(१ - \frac{तर}{तय}\right) \cdots (२)$$

$$\therefore (य - र) \left\{ \frac{य}{\sqrt{१ - य^२}} + \frac{\frac{तर}{तय} र}{\sqrt{१ - र^२}} \right\} = - \left(१ - \frac{तर}{तय}\right) \left(\sqrt{१ - य^२} + \sqrt{१ - र^२}\right)$$

$$\therefore \frac{(य - र) य}{\sqrt{१ - य^२}} + (१ - य^२)^{\frac{१}{२}} (१ - य^२)^{\frac{१}{२}}$$

$$= \frac{तर}{तय} \left\{ (१ - य^२)^{\frac{१}{२}} + (१ - र^२)^{\frac{१}{२}} - \frac{(य - र) र}{\sqrt{१ - र^२}} \right\}$$

$$\therefore \frac{१}{\sqrt{१ - य^२}} = \frac{\frac{तर}{यत}}{\sqrt{१ - र^२}}$$

$$\therefore \frac{तय}{\sqrt{१ - य^२}} = \frac{तर}{\sqrt{१ - र^२}} \quad \cdots\cdots\cdots (३)$$

(३) चलन समीकरण है

यह स्मरण रखना चाहिए कि $\frac{तर}{तय}$ के लिए $र_१$, $\frac{त^२य}{तर^२}$ के लिए $र_२$, $\frac{त^३य}{तर^३}$ के लिए $र_३$, और $\frac{त^नय}{तर^न}$ के लिए $र^न$, का प्रयोग होगा।

कल्पना किया कि फ (य, र, अ, व) = ० किसी वक्र वंशका समीकरण है जिसमें अ और व दो स्वतन्त्रता स्थिर राशियाँ हैं।

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे सम्भव है कि अ, व में से किसी एक अथवा दोनोंका लुप्तीकरण हो जाय। यह भी सम्भव है कि तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे अ, व में से दोनों, अथवा किसी एकका भी लुप्तीकरण न हो। इस दशामें एक ऐसे समीकरणकी उत्पत्ति होगी जिसमें य, र, $\frac{तर}{तय}$, अ और व होंगे। इस समीकरण और प्रथम समीकरणकी सहायतासे किसी एक स्थिर राशिका लुप्तीकरण हो सकता है। कल्पना किया कि अ का लुप्तीकरण इस प्रकार हो गया। इस लुप्तीकरणके फल में य, र, $\frac{तर}{तय}$, और व होंगे।

यदि इस फलको फिर हम लोग य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालें तो सम्भव है कि व का लुप्ती करण हो जाय और यह भी सम्भव है कि व का लुप्तीकरण न हो। अन्तिम दशा में अन्तिम फल और उसके ठीक पहलेवाले फलको सहायतासे व का लुप्तीकरण किया जा सकता है। और तब चलन समीकरणकी प्राप्ति होगी। यह बात भी स्पष्ट है कि दो बार य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे $\frac{त^२र}{तय^२}$ की भी प्राप्ति होगी और चलन समीकरण में भी $\frac{त^२र}{तय^२}$ रहेगा। अतएव चलन समीकरण द्वितीय श्रेणीका होगा। पहले देखा गया है कि जब वक्र वंशके समीकरणमें एक ही स्थिर राशि थी तब चलन समीकरण भी

प्रथम श्रेणीका ही था। इसी प्रकार जब वक्र वंशके समीकरणमें तीन स्थिर राशियाँ होंगी तब चलन समीकरण तृतीय श्रेणीका होगा और जब वक्र वंशमें न स्थिर राशियाँ हों तो चलन समीकरण भी न श्रेणीका होगा

साधारण नियम

जिन समीकरणोंमें अ और व दो स्थिर राशियाँ हों उनका दो बार य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालना चाहिये। इस प्रकार तीन समीकरण हो जायँगे जिनकी सहायतासे अ और व का लुप्तीकरण भली भाँति हो सकता है। यह नियम साधारण है। जिन समीकरणों में न स्थिर राशियाँ हों उनका न बार य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे न समीकरण उत्पन्न होंगे और प्रथम समीकरणको लेकर कुल (न + १) समीकरण हो जायँगे जिनकी सहायतासे न स्वतन्त्र राशियों का लुप्तीकरण हो सकता है।

उदाहरण १. समीकरण $य^2 + र^2 = २ अ य + स$ में से अ और स का लुप्तीकरण करो।

$$य^2 + र^2 = २ अ य + स \quad \cdots\cdots (१)$$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालने से

$$र_1 = अ \cdots\cdots य + र \cdots\cdots (२)$$

एक बार और ता० सं० नेसे $१ + र_1^2 + र र_2 = ० \cdots\cdots (३)$

तीसरा समीकरण, $१ + र_1^2 + र र_2 = ०$, अभीष्ट चलन समीकरण है॥

प्रथम समीकरण दिया हुआ है, और इसमें दो स्थिर राशियाँ हैं अतएव नियमानुसार इसका दो बार य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालना चाहिए और तब तीन समीकरण हो जायंगे जिनकी सहायता से अ और स का लुप्तीकरण करना चाहिए परन्तु इस प्रश्नमें, तीसरे फलमें, अ और स का अपने आप लुप्तीकरण हो जाता है और चलन समीकरण सुगमतासे प्राप्त हो जाता है।

उदाहरण २. समीकरण $(य - अ)^2 + (र - व)^2 = स^2$, मेंसे अ, व और स का लुप्तीकरण करो और इस प्रकार सब वृत्तोंका चलन समीकरण निकालो।

दिये हुए समीकरण को निम्नलिखित प्रकारसे भी लिख सकते हैं :-

$$य^2 + र^2 = २ अ य + २ व र + स^2 - अ^2 - व^2, \cdots\cdots (१)$$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालने से

$$य + र र_1 = अ + व र_1 \cdots\cdots (२)$$

एक बार और ता० सं० नेसे $१ + र_1^2 + र य_2 = व र_2 \cdots (३)$

फिर ता० सं० नेसे $३ र_1 र_2 + र र_3 = व र_3 \cdots\cdots (४)$

इन चार समीकरणोंकी सहायतासे अ, व और स का लुप्ती परण हो सकता है।

तीसरे और चौथे समीकरण की सहायता से व का लुप्तीकरण आसानीसे हो सकता है और लुप्तीकरणका फल यह है :—

$$(३ र_1 र_2 + र र_3) र_2 = (१ + र_1^2 + र र_2) र_3$$

अर्थात् $(१ + र_1^2) र_3 = ३ र_1 र_2^2$

यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ

उदाहरण ३— $अय^2 + २ ह यर + वर^2 + २ जय + २ फर + स = ०$, समीकरणमें से अ, र, व, फ और स स्थिर राशियोंका लुप्तीकरण करो।

$$अय^2 + २ ह यर + वर^2 + २ जय + फर + स = ० \cdots\cdots (१)$$

तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$$अय + ह (यर_1 + र) + व र र_1 + ज + फर_1 = ० \cdots\cdots (२)$$

फिर ता° स° नेसे।

$$अ + ह\ (यर_२ + २ र_१) + व\ (रर_२ + र_१^२) + फर_२ = ० \quad \ldots\ldots (३)$$

फिर ता° स° नेसे

$$ह\ (यर_३ + ३ र_२) + व\ (रर_३ + ३\ र_१ र_२) + फर_३ = ० \quad \ldots\ldots (४)$$

फिर ता° स° नेसे।

$$ह\ (यर_४ + ४ र_३) + व \left(रर_४ + ४ र_१ र_३ + ३ र_२^२\right) + फर_४ = ० \quad \ldots\ldots (५)$$

फिर ता° स° नेसे।

$$ह\ (यर_५ + ५ र_४) + व\ (रर_५ + ५ र_१ र_४ + १० र_२ र_३) + फर_५ = ० \quad \ldots\ldots (६)$$

अन्तिम तीन समीकरणोंकी सहायतासे ह और व का लुप्तीकरण बड़ी सुगमता से हो सकता है। लुप्तीकरण करनेसे

$$\begin{vmatrix} यर_३ + ३ र_२, & रर_३ + ३ र_१ र_२, & र_३ \\ यर_४ + ४ र_३, & रर_४ + ४ र_१ र_३ + ३ र_२^२, & र_४ \\ यर_५ + ५ र_४, & रर_५ + ५ र_१ र_४ + १० र_२ र_३, & र_५ \end{vmatrix} = ०$$

अथवा

$$\begin{vmatrix} ३ र_२, & ०, & र_३ \\ ४ र_३, & ३ र_२, & र_४ \\ ५ र_४, & १० र_३, & र_५ \end{vmatrix} = ०$$

अर्थात् $९ र_२ र_५ - ४५ र_२ र_३ र_४ + ४० र_३^३ = ०$

उदाहरण४, समीकरण $र = अइ^{२य} + वइ^{-३य} + सइ^{य}$ में से अ, व और स का लुप्तीकरण करो।

$$र = अइ^{२य} + वइ^{-३य} + सइ^{य} \quad \ldots\ldots (१)$$

$$र_१ = २ अइ^{२य} - ३ वइ^{-३य} + सइ^{य} \quad \ldots\ldots (२)$$

$$र_२ = ४ अइ^{२य} + ९ वइ^{-३य} + सइ^{य} \quad \ldots\ldots (३)$$

$$र_३ = ८ अइ^{२य} - २७ वइ^{-३य} + सइ^{य} \quad \ldots\ldots (४)$$

$$७ = (२ अइ^{२य} - ३ वइ^{-३य} + सइ^{य}) - ६\ (अइ^{+२य} + वइ^{-३य} + सइ)^{य} = ७ र_१ - ६ र$$

$\therefore र_३ - ७ र_१ + ६ र = ०$, यही अभीष्ट चलन हुआ।

उदाहरण५, समीकरण $यर = अइ^{य} + वइ^{-य}$ मेंसे अ और व का लुप्तीकरण बनाओ

$$यर = अइ^{य} + वइ^{-य} \quad \ldots\ldots (१)$$

$$र + यर_१ = अइ^{य} - वइ^{-य} = यर - २ वइ^{-य}$$

$$\therefore र_१ + यर_२ + र_१ = र + यर_१ + २ वइ^{-य}$$

$$\therefore यर_२ + २ र_१ = र + यर_१ - र + यर_१ + यर = यर$$

$\therefore यर_२ + २ र_१ - यर = ०$, यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ।

फलोंका लुप्तीकरण।

अभीतक जितने प्रश्नोंका वर्णन हुआ है उनमें केवल स्वतन्त्र स्थिर राशियोंका ही लुप्तीकरण हुआ है परन्तु कभी कभी ऐसे प्रश्न भी उपस्थित होते हैं, जिनमें फलों के लुप्तीकरणकी आवश्यकता पड़ती है और लुप्तीकरण करनेसे चलन समीकरणकी प्राप्ति होती है। चलन-कलनके जाननेवाले भलीभांति जानते हैं कि यदि $र = स्परे^{-१}$ य तब $र_१ = \frac{१}{१ + य^२}$

$$\therefore (१ + य^२) र_१ = १ \quad \ldots\ldots (१)$$

यह स्पष्ट है कि प्रथम समीकरण एक प्रकारका चलन समीकरण है और इसमें फल ($स्परे^{-१}$ य) का लुप्तीकरण हो गया है।

इस प्रश्नमें केवल तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे ही अभीष्ट चलन-समीकरणकी प्राप्ति हो गई और लुप्तीकरणकी आवश्यकता नहीं पड़ी। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि फलोंके लुप्तीकरणमें केवल तात्कालिक सम्बन्ध निकालने ही में लुप्तीकरण हो जाता है। ऐसे प्रश्नोंमें भी अपनयन क्रिया करनेकी आवश्यकता होती है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा:—

समीकरण र=अ लइ य में से, लघुरिक्थ फलका लुप्तीकरण करो।

$$र = अ \; लइ \; य \cdots (१) \cdots \therefore \; र_१ = \frac{अ}{य} \cdots\cdots\cdots\cdots (२)$$

फिर एक बार य के अनुसार ता० स० ने से $र_१ + य \, र_२ = ०$

इसी प्रकार और भी दूसरे फल लुप्त किये जा सकते हैं। जब समीकरण दिया हो तब फल लुप्त किये जा सकते हैं जैसा कि अभी दिखलाया गया है और तब एक चलन समीकरणकी प्राप्ति होती है। परन्तु इसके विलोमविधिका वर्णन चलन-समीकरणकी पुस्तकोंमें होना चाहिये। अर्थात् चलन समीकरण जान कर उन समीकरणोंको जानना जिनसे कि वह बना है, चलन समीकरणकी पुस्तकोंका विषय है।

उ० १. लुप्तीकरण, $र = अ \, इ^{मय} \, ज्या^{-१} य$ द्वारा समीकरण बनाओ!

$$र_१ = अ \; म \; इ^{मय} \; ज्या^{-१} \; य = अ \; इ^{मय} \frac{१}{\sqrt{१-य^२}}$$

$$र_२ = अ \; म^२ \; इ^{म} \; ज्या^{-१} य + २ \; अ \; म \; इ^{मय} \frac{१}{\sqrt{१-य^२}} + अ \; इ \frac{य}{(१-य^२)^{\frac{३}{२}}}$$

$$\therefore र_२ = म^२ र + २ \, म \, (र_१ - म \, र) + \frac{य}{१-य^२} (र_१ - म \, र)$$

$(१-य^२) \, र_२ = \{ २ \, म \, (१-य^२) + य \} - म^२ \, र - म \, य \, र + म^२ \, य^२ \, र$ यही अभीष्ट चलन-समीकरण हुआ।

उ० २. समीकरण र=ज्या य से चक्राकार फलका लुप्तीकरण करो।

$$र = ज्या \; य$$

$$\therefore \; र_१ = कोज्या \; य = (१-र^२)^{\frac{१}{२}} = (१-र^२)^{\frac{१}{२}}$$

$$\therefore \; र_१^२ = १ - र^२$$

$\therefore \; र_१^२ + र^२_१ = ०$ यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ।

मिश्रित उदाहरण

१

समीकरण $र = अ \, य + व \, य^२$ से अ और व का लोप करो

$$र = अ \; य + व \; य^२ \cdots\cdots\cdots\cdots (१)$$

$$\therefore र_१ = अ + २ \; व \; य \cdots\cdots\cdots\cdots (२)$$

परन्तु प्रथम समीकरण से

$$र = (अ + व \; य) \; य$$

$$\therefore \frac{र}{य} = अ + व \; य$$

$$\therefore \frac{र}{य} - व \; य = अ \cdots\cdots\cdots\cdots (३)$$

अ के इस मान का समीकरण (२) में उत्थापन करनेसे

$$र_१ = \frac{र}{य} - व \; य + २ \; व \; य$$

$$\therefore र_१ = \frac{र}{य} + व \; य$$

$$\therefore य \; र_१ = र + व \; य^२ \cdots\cdots\cdots\cdots (४)$$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालने से

$$य\, र_२ + र_१ = र_१ + २\, व\, य \quad \cdots\cdots (५)$$

$$\therefore य\, र_२ = २\, व\, य \quad \cdots\cdots (६)$$

$$\therefore २व = \frac{य\, र_२}{य}$$

$$\therefore व = \frac{यर_२}{२य}$$

इस मानका समीकरण (६) में उत्थापन करनेसे

$$य\, र_२ = २\left(र_१ - \frac{र}{य}\right)$$

$$= \frac{२\,(य\, र_१ - र)}{य}$$

$$\therefore य^२ र_२ = २\, य\, र_१ - २\, र$$

यही अभीष्टचल समीकरण हुआ

२

समीकरण $र^२ = म\,(अ^२ - य^२)$ से म और अ का लोप करके चलन समीकरण निकालो।

$$र^२ = म\,(अ^२ - य^२) \quad \cdots\cdots (१)$$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालने से

$$र\, र_१ = -म\, य \quad \cdots\cdots (२)$$

य के अनुसार (२) का तात्कालिक सम्बन्ध निकालने से

$$र\, र_२ + र^२ = -म \quad \cdots\cdots (३)$$

परन्तु समीकरण (२) से, $-म = \frac{र\, र_१}{य}$ $\cdots\cdots (४)$

$-म$ के इस मानका तीसरे समीकरणमें उत्थापन करनेसे

$$र\, र_२ + र^२ = \frac{र\, र_१}{य}$$

$$\therefore यर\, र_२ + य\, र^२ = र\, र_१$$

अथवा $यर\, र_२ + यर^२ - र\, र_१ = ०$ $\cdots\cdots (५)$

यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ

विद्यार्थियोंको स्मरण रखना चाहिए कि चलन समीकरण (५) प्रथम समीकरण (१) से उत्पन्न हुआ है। इसलिये चलन समीकरण (५) से प्रथम समीकरण निकल सकता है॥

इसी प्रकार प्रथम उदाहरणमें चलन-समीकरण

$य^२ र_२ = २यर_१ - २\, र$ सेर $= अ\, य + वय^२$ प्राप्त हो सकता है।

चलन समीकरणसे सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकोंमें उन नियमोंका वर्णन रहता है जिनकी सहायतासे दिये हुए चलन समीकरणकी सहायतासे वक्रवंशोंका समीकरण मालूम हो जाता है।

३

समीकरण $र = अ$ ज्या न य + व को ज्या न य से अ और व का लुप्तीकरण करो।

$र = अ$ ज्या न य + व कोज्या न य

$र_१ = अ$न को ज्या न य − व न ज्या न य

$र_२ = -अ\, न^२$ ज्या न य − व $न^२$ को ज्या न य

$= -न^२$ (अ ज्या न य + व कोज्या न य)

$= -न^२$ (र)

$$\therefore र_२ + न^२ र = ०$$

यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ।

(४)

समीकरण $र = \frac{अ}{\sqrt{य}}$ कोज्या $\left(\frac{\sqrt{७}}{२} ल_इ\, य + व\right)$ से अ और व का लोप करो।

$$र\,\sqrt{य} = अ\ \text{कोज्या}\left(\frac{\sqrt{७}}{२} ल_इ\, य + व\right)$$

$$\therefore य^{\frac{१}{२}} र_१ + \frac{र}{२\sqrt{य}} = -अ\ \text{ज्या}\left(\frac{\sqrt{७}}{२} ल_इ\, अ + व\right)\frac{\sqrt{७}}{२\, य}$$

$$\therefore \frac{२}{\sqrt{७}} य^{\frac{३}{२}} र_१ + \frac{र}{\sqrt{७}}\sqrt{य} = -अ\ \text{ज्या}\left(\frac{\sqrt{७}}{२} ल_इ\, य + व\right)$$

$$\therefore \frac{2}{\sqrt{7}} य^{\frac{3}{2}} र_2 + \frac{3}{\sqrt{7}} र_1 + \frac{य^{\frac{1}{2}}}{\sqrt{7}} र_1 + \frac{1}{\sqrt{य}} \times \frac{र}{2\sqrt{7}}$$

$$= -अ \text{ को ज्या } \left(\frac{\sqrt{7}}{2} ल_इ य + व\right) \frac{\sqrt{7}}{2 य} = -\frac{र}{2}\sqrt{\frac{7}{य}}$$

$$\therefore \frac{4 य^2}{7} र_2 + \frac{8 य}{7} र_1 + \frac{र}{7} = -र$$

$\therefore 4 य^2 र_2 + 8 र_1 य + र = -7 र$

$\therefore 4 य^2 र_2 + 8 र_1 य + 8 र = 0$

$\therefore य^2 र_2 + 2 य र_1 + 2 र = 0$

यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ

(५)

समीकरण, $र = इ^य$ कोज्या य, की सहायतासे चलन समीकरण बनाओ।

$र = इ^य$ कोज्या य

$\therefore र_1 = इ^य$ कोज्या $य - इ^य$ ज्या य

$= इ^य$ (कोज्या य − ज्या य)

इसी प्रकार $र_2 = इ^य$ (कोज्या य − ज्या य − ज्या य − कोज्या य)

$= इ^य$ (− ज्या य − ज्या य)

$= -2 इ^य$ ज्या य

$= 2 (र_1 - र)$

$\therefore र_2 - र_1 + 2 र = 0$, यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ

(६)

समीकरण $1 = अ य^2 + 2 व य र + स र^2$ से स्थिर राशियों-का लुप्तीकरण करो

$1 = अ य^2 + 2 व य र + स र^2$

$\therefore 0 = अ य + व (र + य र_1) + स र र_1$

$\therefore 0 = अ + व (2 र_1 + य र_2) + स \{ र_1^2 + र र_2 \}$

और $0 = व (3 र_2 + य र_3) + स (3 र_1 र_2 + र र_3)$

अ का अपनयन संस्कार करने से

$0 = व (र - य र_1 - य^2 र_2) + स \{ र र_1 - य र_1^2 - य र र_2 \}$

$\therefore (3 र_2 + य र_3) (र र_1 - य र_1^2 - य र र_2)$

$= (3 र र_2 + र र_3) (र - य र - य^2 र_2)$

$\therefore (र - य र_1) र_3 (य र_1 - र) = य र_2 (3 र र_2 - 3 य र र_2)$

$\therefore \{ (र - य र_1) र_3 + 3 य र_2^2 \} (य र_1 - र) = 0$

$\therefore (र - य र_1) र_3 + 3 य र_2^2 = 0$

या $य र_1 - र = 0$

परन्तु $य र_1 - र = 0$ प्रथम समीकरणके विरुद्ध है

$\therefore (र - य र_1) र_3 + 3 र_2^2 = 0$

यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ

(७)

समीकरण $य र - स = (य + र) (स - र)$ से स का लोप करो

$य र - स = (य + र) (स - 1)$ ....(१)

$\therefore य र_1 + र = (1 + र_1) (स - 1)$ ....(२)

परन्तु प्रथम समीकरणकी सहायतासे $स - 1 = \dfrac{य र - 1}{य + र + 1}$

$\therefore (य र_1 + र) (य + र + 1) = (र_1 + 1) (य र - 1)$

$\therefore (य^2 + य + 1) र_1 + र^2 + र + 1 = 0$

यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ

(८)

समीकरण $र = अ य^4$ से अ का लोप करो

$र = अ य^4$ ....(१)

$$\therefore \frac{तर}{तय} = 4 अ य^3$$

$$\therefore \frac{1}{4 य^3} \frac{तर}{तय} = अ$$

अब अ का मान $\frac{\text{तर}}{\text{तय}}$ और य के पदोंमें मालूम हो गया।

इस मानका प्रथम समीकरणमें उत्थापन करनेसे

$$\text{र} = \frac{१}{४\text{य}^२}\frac{\text{तर}}{\text{तय}}\text{य}^२$$

$$= \frac{१}{४}\frac{\text{तर}}{\text{तय}}\text{य}$$

$$\therefore ४\text{र} = \text{य}\frac{\text{तर}}{\text{तय}}$$

$$\therefore ४\text{र} - \text{य}\frac{\text{तर}}{\text{तय}} = ०$$

यही अभीष्ट चलन समीकरण हुआ।

विद्यार्थियोंको यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए, कि इस समीकरणका उत्तर $\text{र} = \text{अ}\,\text{य}^२ + \text{स}$ के ही आकारका होना चाहिये, क्योंकि यह समीकरण उसीसे बना है।

अंशात्मक चलन समीकरण

अभीतक केवल उन समीकरणोंका वर्णन होता रहा है जिनमें केवल एक ही स्वतन्त्र चलराशि सम्मिलित रही है। कभी कभी ऐसे प्रश्न भी उपस्थित होते हैं जिनमें चलराशियोंकी संख्या एकसे अधिक रहती है।

जब चलराशियोंकी संख्या एकसे अधिक हो तो फल भी उन राशियोंपर निर्भर रहता है। यदि ऐसे पद समूहोंमें सब चलराशियोंको स्थिर राशि कल्पना करलें और केवल किसी एक ही राशिको स्वतन्त्र चलराशि मानकर उसके अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकलें तो उसे अंशात्मक या खण्ड तात्कालिक गति कहते हैं।

ऐसे समीकरणको जिसमें अंशात्मक तात्कालिकी गति अथवा अंशात्मक तात्कालिक सम्बन्ध हों अंशात्मक चलन-समीकरण कहते हैं। परिभाषासे यह भी स्पष्ट है कि अंशात्मक चलन समीकरणमें एकसे अधिक स्वतन्त्र चलराशियोंका होना आवश्यक है। ऐसे समीकरणोंको खण्डात्मक चलन समीकरण भी कह सकते हैं।

उदाहरण १ समीकरण $\text{ल} = \text{फ}(\text{अय} + \text{वर})$ से स्वतन्त्र फलका लुप्तीकरण करो

$$\text{ल} = \text{फ}\,(\text{अय} + \text{वर}) \quad \cdots\cdots (१)$$

$$\frac{\text{तल}}{\text{तय}} = \text{अफ}'\,(\text{अय} + \text{वर})$$

$$\frac{\text{तल}}{\text{तर}} = \text{वफ}'\,(\text{अय} + \text{वर}) \quad \cdots\cdots (२)$$

$$\therefore \frac{\text{तल}}{\text{तय}}\text{वफ}'(\text{अय} + \text{वर}) = \frac{\text{तल}}{\text{तर}}\text{अफ}'(\text{अय} + \text{वर})$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{तल}}{\text{तय}}\text{व} = \frac{\text{तल}}{\text{तर}}\text{अ}$$

$$\therefore \text{अ}\frac{\text{तल}}{\text{तर}} - \frac{\text{तल}}{\text{तय}}\text{व} = ० \quad \cdots\cdots (३)$$

यही अभीष्ट अंशात्मक चलन समीकरण हुआ

उ० २ समीकरण $\text{ल} = \text{फ}\,(\text{र} + \text{अय}) + \text{फा}\,(\text{र} - \text{अय})$ से अंशात्मक चलन समीकरण बनाओ।

$$\text{ल} = \text{फ}\,(\text{र} + \text{अय}) + \text{फा}\,(\text{र} - \text{अय}) \quad \cdots\cdots (१)$$

$$\frac{\text{तल}}{\text{तय}} = \text{अफ}'(\text{र} + \text{अय}) - \text{अफा}'(\text{र} - \text{अय})$$

$$\frac{\text{त}^२\text{ल}}{\text{तय}^२} = \text{अ}^२\text{फ}''(\text{र} + \text{अय}) + \text{अ}^२\text{फा}''(\text{र} - \text{अय}) \quad \cdots (२)$$

$$\frac{\text{तल}}{\text{तर}} = \text{फ}'(\text{र} + \text{अय}) + \text{फा}'(\text{र} - \text{अय})$$

$$\frac{\text{त}^२\text{ल}}{\text{तर}^२} = \text{फ}''(\text{र} + \text{अय}) + \text{फा}''(\text{र} - \text{अय}) \quad \cdots\cdots (३)$$

$$\therefore \frac{\text{त}^2\text{ल}}{\text{तर}^2} = \text{अ}^2 \frac{\text{त}^2\text{ल}}{\text{तर}^2}$$

$\therefore \frac{\text{त}^2\text{ल}}{\text{तर}^2} - \text{अ}^2 \frac{\text{त}^2\text{ल}}{\text{तर}^2} = 0$ । यही अभीष्ट अंशात्मक चलन समीकरण हुआ

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. समीकरण र = म य से म का लोप करो ।

२. ज्या य = ज्या र + अ से अ का लोप करो ।

३. $\frac{\text{य}^2}{2} + \text{ल}_\text{इ}\,\text{य} = \frac{\text{र}^3}{3} + \frac{\text{र}^2}{2} + \text{अ}$ से अ का लोप करो ।

४. $\frac{\text{य}^3 - \text{र}^3}{3} + \frac{\text{य}^2 - \text{र}^2}{2} + \text{य} - \text{र} = \text{अ}$, से अ का लोप करो ।

५. र^2 + य^2 = २अ य + व, से अ और व का लोप करो ।

६. अ य^2 + वर^2 = १ से, अ और व का लोप करो ।

७. र = अ ज्या य से अ का लोप करो ।

८. र = अ कोज्या य से अ का लोप करो ।

९. र = अ ज्याय + व कोज्या य से, अ और व का लोप करो ।

१०. र = अ ज्या य + अ को ज्या य से अ का लोप करो ।

११. र = अ ज्या (य + व) से अ और व का लोप करो ।

१२. य^2 + र^2 = अ^2 से अ का लोप करो ।

१३. य र = अ से अ का लोप करो ।

१४. र = म य + स से स का लोप करो ।

१५. र = म य + स से म और स का लोप करो ।

१६. य^2 + र^2 + २अ य + २वर + स = ० से, अ, व और स का लोप करो ।

१७. (य − अ)^2 + (र − व)^2 = स^2 से अ, व और स० का लोप करो ।

१८. अ म^2 + २ ह यर + व र^2 + २ ज य + २ फ र + स = से, अ, व, स, ह, ज और फ का लोप करो ।

१९. समीकरण र^2 = ४ अ य से अ का लोप करो ।

२०. र = अ ज्या (न य + व) से अ और व का लोप करो ।

२१. र = अ इ$^{\text{नय}}$ + व इ$^{-\text{नय}}$ से अ और व का लोप करो ।

२२. र = अ ल$_\text{इ}$ य से अ का लोप करो ।

२३. र = स्परे$^{-1}$य से, स्पेर$^{-1}$य का लोप करो ।

२४. र = ज्या म (ज्या$^{-1}$य) से चलन समीकरण बनाओ ।

२५. य र = अ इ$^{\text{य}}$ + व इ$^{-\text{य}}$ से अ और व का लोप करो ।

२६. अ य^2 + २ ह य र + व र^2 = स से, अ, ह, व और स का लोप करो ।

२७. र = ज्या ल$_\text{इ}$ य से वृत्तात्मक तथा लघुरिक्थ फल का का लोप करो ।

२८. र = अ$_\text{इ}$ न$_1$ य + व$_\text{इ}$ न$_2$ य + स$_\text{इ}$ न$_3$ य से अ, व और स का लोप करो जब कि न$_1$, न$_2$ और न$_3$ घन समीकरण ल^3 + पल^2 + कल + स = ० के मूल हैं ।

२९. र = $\frac{\text{य}}{\text{इ}}$ को ज्या य से वृत्तात्मक तथा लघुरिक्थ फल का लोप करो ।

३०. र = अ इ$^{2\text{य}}$ कोज्या ३ य + व इ$^{2\text{य}}$ ज्या ३ य से वृत्तात्मक तथा लघुरिक्थ फलका लोप करो ।

मैण्डलीफ़का आवर्त्त संविभाग

(Periodic Classification of Mendeleeff)

[ले० श्री सत्यप्रकाश, बी· एस· सी, विशारद]

न्यूलैण्ड से तुलना

गतांकमें तत्वोंके संविभागके विषयमें मैण्डलीफ़ और न्यूलैण्डकी आयोजनायें प्रस्तुतकी जा चुकी हैं। सं० १९२१ वि० तथा सं० १९२३ वि० में न्यूलैण्डने अपने 'अष्टकसिद्धान्त' (law of octaves) के समर्थनमें जो संविभाग किया था उसकी विशेषतायें इस प्रकार थीं— (१) संविभागमें जो स्थान रिक्त हैं, उनसे हम उन नये तत्वोंका अनुमान लगा सकते हैं जो अभी आविष्कृत नहीं हुए हैं। (२) न्यूलैण्डने शर्म्म तत्वका आनुमानिक परमाणुभार भी निश्चित करने का यत्न किया यद्यपि इस समय (सं० १९२१ वि०) तक इस तत्वका आविष्कार भी नहीं हुआ था। यह तत्व सं० १९४३ वि० में खोजा गया है। (३) उस समय तक हिन्दमका परमाणुभार प्रयोग द्वारा नहीं निकाला जा सका था पर न्यूलैण्डने अपने अष्टक सिद्धांतका प्रयोग इसके अनुमान निकालने में किया था (४) बेरीलियमके परमाणुभारके लिये उसने दो संख्यायें निश्चितकी थीं; (५) इस अष्टक सिद्धान्त द्वारा उसने तत्वोंका नियमानुसार वर्गीकरण किया था, तथा(६) कुछ भौतिक गुणोंको भी उसने इस सिद्धान्त द्वारा प्रदर्शित किया था।

इस प्रकार आवर्त्त संविभागका वास्तविक आविष्कर्त्ता न्यूलैण्डको ही कहना चाहिये। पर इतना होते हुए भी, इसका महत्व मैण्डलीफ़को ही मिला। इसके भी कुछ कारण थे। न्यूलैण्डके समय वैज्ञानिक जगतकी अवस्था कुछ विलक्षण थी। परमाणुभारोंके विषयमें किसीका कुछ निश्चित मत न था। रासायनिक जनताका ध्यान नये नये परमाणुभार निकालनेकी ओर अधिक था। तत्वोंके संविभागका महत्व कोई समझता ही न था। उन्नीसवीं शताब्दिके प्रथम पचास वर्ष डूमा और बरज़ीलियसके विवादमें ही व्यतीत हुए। इन दो वैज्ञानिकोंने तत्वोंके भिन्न भिन्न परमाणुभार निश्चित किये थे। ऐसी अवस्था में तत्वोंका परमाणुभारकी अपेक्षासे संविभाग करना अत्यन्त दुस्तर था। लोगोंको कभी डूमाके विचार अधिक सत्य प्रतीत होते थे और कभी बरज़ीलियसके। इसके पश्चात् मैलिन नामक वैज्ञानिकने परमाणुभारोंमें कुछ और परिवर्तन किया। सं० १८९९ वि० में गरहर्टने अपने विचारों द्वारा पूर्ववर्ती विचारोंको सर्वथा परिवर्तित करदिया। इस मतभिन्नताका कारण यह था कि परमाणुभार के लिये अब तक कोई आदर्श निश्चित नहीं किया जा सका था। सं० १९१७ ई० में कनीज़रोने भी एक आयोजना उपस्थितकी थी। इस परिस्थितिमें न्यूलैण्डने सबसे बड़ी दूरदर्शिता यह दिखलाई कि उसने कनीज़रोकी आयोजनाके अनुसार तत्वोंका संविभाग आरम्भ किया। सारांश यह है कि यह वह समय था जब रसायनज्ञ मौलिक सिद्धान्तोंकी खोजकी ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे।

इसके अतिरिक्त जैसा पहले कहा जा चुका है, जिस समय न्यूलैण्ड रसायन सभामें अपना सिद्धान्त विषयक लेख सुना रहा था, प्रोफ़ेसर जी० फोस्टरने उससे यह कहकर हंसी उड़ाई थी कि ककार आदि क्रमसे संविभाग करके भी आपको गुणोंकी समानता कदाचित मिल जायगी। इस प्रकार उसके लेखको किसीने महत्वकी दृष्टिसे नहीं देखा। यहां इस ओर ध्यान रखना और आवश्यक है कि न्यूलैण्डने सं० १९२३ वि० के संविभागमें ६३ तत्वोंका वर्गीकरण किया था और इनमें कमसेकम ४४ तत्वोंको ठीक ठीक स्थान दिये गये थे, इस प्रकार अनेक बाधाओंके होते हुए भी न्यूलैण्ड बहुत सफलीभूत हुआ था।

अब मैण्डलीफ़की ओर आइये। न्यूलैण्ड और मैण्डलीफ़के स्वभावोंमें बड़ा भेद था। मैण्डलीफ़को अपने विचारों पर पूर्ण निश्चय था। न्यूलैण्ड

स्वयं अपनी आयोजनाको संदेहकी दृष्टि से देखता था। सं० १६२६ वि० में मैण्डलीफ़ने जो संविभाग किया उसका आधुनिकरूप इस प्रकार था।

(सं० १६२६ वि०)

उ*　　　　　　　　ग्र

बे ट क न श्रो फ्लु सो

म स्फ शै स्फु ग ह पो ख ? ए* ? इ* ? हि* ?

नि

ती वा क्र मा लो को ता य ? ? ल से ब्र रू स्त श्री* ले* डा* थो*

जि नो मो रो* रु* प र का यु* ब ज ते ? नै श्य भ

? तं तु प्ला* इं* ओस* पा* — स्व* — बि — — थे सी*

इस सारिणीमें जिन तत्त्वोंके आगे (*) चिह्न है, उनका स्थान अशुद्ध दिया गया है। मैण्डलीफ़ने कुल ६३ तत्वोंका वर्गीकरण किया है, और इनमेंसे ४६ तत्वोंके स्थान ठीक हैं। इस प्रकार सं० १६२६ वि० तक मैण्डलीफ़ने न्यूलैण्डकी अपेक्षा कुछ विशेष सफलता नहीं प्राप्तकी। इस सारिणीमें मुख्य समूह और उपसमूह भी नहीं दिये गये हैं। सं० १६२८ वि० में मैण्डलीफ़ने जो आयोजना प्रस्तुतकी वह आधुनिक संविभागसे अधिक मिलती जुलती है।

फैरेडे-व्याख्यान देते समय मैण्डलीफ़ने अपने आवर्त सिद्धान्तका सारांश इस प्रकार बतलाया था—(१) यदि परमाणुभारोंकी अपेक्षासे वर्गीकरण किया जायतो तत्वोंके गुण आवर्त-नियमका पालन करते हैं। (२) समान गुणी तत्त्वोंके परमाणुभार या तो लगभग एकसे ही होंगे (जैसे प्लाटिनम समूही तत्वों के) या उनमें नियमानुसार वृद्धि होगी। (३) इस प्रकारके वर्गीकरणमें समान संयोगशक्तियोंका भी विशेष ध्यान रक्खा जाता है (४) अज्ञात तत्वोंके खोजकी भी आशाकी जा सकती है। (५) तत्वोंके अशुद्ध परमाणु भार भी सुधारे जा सकते हैं (६) वे तत्व जो प्रकृतिमें अधिक मात्रामें पाये जाते हैं उनके परमाणुभार भी न्यून हैं। (७) परमाणुभारकी मात्रा तत्त्वके गुणोंकी परिचायक है (८) परमाणुभार ज्ञात होने पर तत्वके कुछ गुणोंका अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार मैण्डलीफ़ने अपने आवर्त नियम से जो बातें प्रकटकी, उन्हें न्यूलैण्डने अपने अष्टक-सिद्धान्तसे भी दर्शा दी थीं। अतः मैण्डलीफ़ने कोई नवीन बात नहीं निकाली। पर उसको अपने संविभागके प्रचारमें अधिक सफलता प्राप्त हुई। इस समय वैज्ञानिक जगतकी परिस्थिति उस प्रकार की नहीं थी जैसी न्यूलैण्डके समयमें। सं० १६१७ वि० में, सौ के लगभग वैज्ञानिकोंकी एक महासभा कार्लश्रूमें हुई जिसका मुख्या उद्देश्य परमाणु-भारका आदर्श निश्चित करना था। सभी बड़े बड़े वैज्ञानिकोंने इसमें भाग लिया था। इस समय महासभामें मतभेदने घोररूप धारण किया पर अन्तमें कनीज़रोके विचार बहुसम्मतिसे स्वीकृत किये गये, और तबसे परमाणुभारोंको वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। न्यूलैण्डके समयमें कनीज़रोके विचार सर्वमान्य नहीं थे अतः उसकी बातोंकी ओर किसीने भी ध्यान न दिया। पर महासभाके इस निश्चयके उपरान्त मैण्डलीफ़को अपने विचारों के प्रचारका अधिक अवसर प्राप्तहुआ। मैण्डलीफ़ की आयोजनाकी सफलताके दो मुख्य कारण थे—

(१) मैण्डलीफ़के समयकी परिस्थितिकी अनुकूलता और (२) मैण्डलीफ़का निजी संविभागमें दृढ़ विश्वास ।

नये तत्वोंका अनुमान

न्यूलैण्ड केवल यह कह कर ही रह गया था कि संविभागमें जो स्थान रिक्त हैं, उनके पूरक तत्वोंका अभी आविष्कार नहीं हुआ है पर भविष्यमें खोज करने पर उनकी प्राप्ति होगी, वे तत्त्व किस प्रकारके होंगे, इस विषयमें उसने अधिक ध्यान नहीं दिया था। सब सिद्धान्तोंकी सत्यता तीन बातों पर निर्भर रहती है—१. सिद्धान्त इस प्रकारका हो कि जितने तत्सम्बन्धी ज्ञात विषय हों, वे सब उसके अनुकूल हों,२. तत्सम्बन्धी यदि कोई नई बात ज्ञात हो वह भी उसके विरुद्ध न हो। तथा ३. सिद्धान्तकी सहायतासे नई बातोंके खोजनेमें सरलता हो। प्रत्येक सिद्धान्तकी वास्तविक उपयोगिता इस तीसरी बात पर ही निर्भर है। वह सिद्धान्त हमारे किस लाभ का है जिससे हमारी अग्रिम-ज्ञान-वृद्धिमें कोई सहायता न मिले।

सं० १६२८ वि० तक स्कन्ध, गेलियम, और शर्म्म नामक तत्वोंका किसीको पता भी नहीं था। किसीको इस बातका सन्देह भी न था कि ऐसे कोई तत्त्व भविष्यमें पाये ही जावेंगे पर मैण्डलीफ़ने इस विषयमें अपनी दूरदर्शिताका महान परिचय दिया। उसने इन अज्ञात तत्वोंके गुण बड़ी उत्तमतासे वर्णन किये। जब इन तत्त्वोंकी खोज हुई तो इनके गुणोंने उसके अनुमानकी सत्यताको प्रमाणित कर दिया। मैण्डलीफ़के अनुमान निकालनेकी विधि इस प्रकार थीः—उसके आवर्त संविभागमें किसी भी तत्वको ले लीजिये और उस तत्व के चारो ओर स्थित तत्वोंके गुणा पर दृष्टि डालिये ऐसा करने पर पता चलेगा कि प्रत्येक तत्वके गुण उसके समीपस्थ तत्वोंके गुणोंके मध्यमें हैं। उदाहरणतः स्फुरतत्व अपनी श्रेणीमें शैल और गन्धकके बीचमें स्थित है और अपने समूहमें नत्रजन और तालके बीचमें है। शैलका परमाणुभार २८ के लगभग और गन्धकका परमाणुभार ३२ के लग भग है अतः स्फुरका परमाणुभार इन दोनों परमाणुभारोंका मध्य भाग अर्थात् $\frac{२८+३२}{२} = ३०$ के लगभग होगा। स्फुरका वास्तविक परमाणुभार ३१·०४ है, अतः हम परमाणुभारका कुछ अनुमान लगा ही सकते हैं। उद्जनकी अपेक्षासे शैलकी संयोग शक्ति ४ और गन्धककी २ है अतः स्फुरकी संयोग शक्ति $\frac{४+२}{२} = ३$ है। इसी प्रकार रासायनिक गुणोंमें स्फुर ताल और नत्रजनके बीचमें होगा। यह नत्रजनसे अधिक और तालसे कम धनात्मक होगा अतः इसका उद्दिद (hydride) [$स्फुउ_३$] क्षीण क्षारीय (alkaline) है और पञ्चोषिद (pentoxide) ($स्फु_२ ओ_५$) अम्लीय (acidic) है इसका हरिद (chleoride) नत्रजनके हरिदसे अधिक स्थायी है पर तालिक हरिद (Arsenic chloride) की अपेक्षा इसके हरिद जल द्वारा शीघ्र विभाजित हो जाते हैं। इस प्रकार नत्रजन, ताल, शैल और गन्धकके गुण ज्ञात होने पर स्फुरके गुणोंका बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

मैण्डलीफ़ने इस विधिका आवश्यक उपयोग किया। उसने देखा कि खटिक और तीतेनियमके बीचमें तृतीय समूहमें एक स्थान रिक्त है। उसने इस स्थानके पूरक तत्त्वको 'एक-टंक' (eka-boron) कहा, और उसका परमाणुभार ४३·८ निश्चित किया उसने यह बताया कि इसका ओषिद $ट'_२ओ_३$ होगा यदि 'एक टंक' का संकेत ट' माना जाय। इस ओषिदका गुरुत्व ३·८ होगा और यह तीव्र अम्लोंमें घुलनशील होगा, पर क्षारोंमें नहीं घुलेगा। सोडियम उदोषिद, (hydroxide) कर्बनेत (carbonate) तथा स्फुरेत (phospte) के साथ यह तलछट (precipitate) प्रदान करेगा। यह ३ पो$_२$ गओ$_४$, $ट'_२$ (ग ओ$_४$)$_३$

नामक द्विगुण-लवण (double salt) भी देगा। जब हरिद ट' ह३ हवामें गरम किया जावेगा तो यह विभाजित हो जावेगा। सं० १६३६ वि० में निलसनने एक तत्व ढूंढा जिसके गुण 'एकटंक' से बिलकुल मिलते थे। उसने इस तत्वका नाम स्कन्ध रखा। इस प्रकार मैंण्डलीफ़ने अपनी दूर-दर्शितासे स्कन्धके गुणोंका अनुमान कर लिया था।

यशद और तालके बीचमें दो रिक्त स्थान थे, एक तो तृतीय समूहमें था और दूसरा चतुर्थ समूहमें। तृतीय समूही तत्वका नाम मैण्डलीफ़ने 'एकस्फट' (eka-aluminium) रखा। यह अपने समूहमें स्फट और हिन्दमके बीचमें था। इसका परमाणुभार ६६ होना चाहिये, यह धातु होना चाहिये जिसका द्रवांक भी कम हो और गुरुत्व ५.६ होना चाहिये। यह गुणोंमें स्फटसे अधिक मिलेगा, वायुका इसपर शीघ्र प्रभाव न पड़ेगा और अम्लों एवं क्षारों में घुलनशील होगा। यह पोटाशियम-फिटकरी (Potash Alum) बनावेगा। यदि इसका संकेत स्फ' माना जावे तो इसके ओषिद [स्फ'२ ओ३] और हरिद [स्फ'२ ह६] होंगे। सं० १६३२ वि० में लिकाक-डि-बोइ बोड्रान नामक वैज्ञानिकने एक तत्व आविष्कृत किया जिसका परमाणु-भार ६६.५ था, जो ३०.१५° श पर द्रवीभूत होता था और जिसका गुरुत्व ५.६३ था। अंगारवत् गरम (redhot) कर देने पर ही वायुका इसपर थोड़ा सा प्रभाव होता था। यह गरम उद हरि-काम्ल (hygrochloricacid) और पोटाशियम उदोषिदमें घुलनशील था। इसकी सुन्दर फिटकरी बनती थी। आविष्कर्त्ता ने इसका नाम गेलियम रखा। इसका संकेत गे हुआ, इसका ओषिद गे२ ओ३ और हरिद गे२ ह६ अथवा गेह३ था। इस प्रकार मैण्डलीफ का अनुमान यहाँ भी सत्य निकला।

गेलियम और ताल के बीच का तत्व शर्म्म भी मैंण्डलीफ के समय अज्ञात था। मैण्डलीफने इसका नाम 'एक-शैल' (eka-silicon) [संकेत शै'] रखा। उसके अनुमानिक गुणोंकी सत्यता सं० १६४३ वि० में ज्ञात हुई जब विङ्क्लरने शर्म्मतत्व का अन्वेषण किया। निम्न अंकों द्वारा यह बात भी भली प्रकार प्रकट है—

सं० १६२८ वि० में एक-शैलके मैण्डलीफ द्वारा अनुमानिक गुण

१. श्याम चमकदार धातु
२. कठिनता से द्रवीभूत होनेवाला
३. परमाणुभार ७२ के लगभग
४. गुरुत्व ५.५ के लगभग
५. परमाणु आयतन = १३
६. आपेक्षिक ताप = ०.०७३
७. हरिद [शै' ह४], द्रव, क्वथनांक ६०° श के लगभग गुरुत्व = १.६
८. ज्वलील यौगिक [शै' (क२ उ५)४], क्वथनांक = १६०° श, गुरुत्व = ०.६६

सं० १६४३ वि० में आविष्कृत शर्म्मके गुण

१. श्याम-श्वेतयुक्त चमकदार धातु
२. द्रवांक ६००° श
३. उदजन की अपेक्षासे परमाणुभार ७१.६३
४. गुरुत्व = ५.४६६
५. परमाणु आयतन = १३.२
६. आपेक्षिक ताप = ०.०७६
७. हरिद [श ह४],द्रव, क्वथनांक = ८६° श गुरुत्व = १.८८७
८. ज्वलील यौगिक श (क२ उ५)४, क्वथनांक = १६०° श, गुरुत्व = १.० के लगभग।

इस प्रकार हमारे रूसदेशीय वैज्ञानिक मैण्ड-लीफने अपनी दूरदर्शिता तथा चातुर्य्यका महान् परिचय दिया। जिन तत्वोंके खोज की स्वप्नमें भी कोई आशा न थी, उसने कितने विस्तार से उनके गुणोंको ठीक ठीक दर्शा दिया। तत्वोंकी खोजके इतिहासमें इस अलौ-

किक सफलताके कारण मैण्डलीफका नाम सदा महत्वकी दृष्टिसे देखा जावेगा। मैण्डलीफके आवर्त संविभागकी सहायतासे वैज्ञानिक अब भी अज्ञात तत्वोंकी खोजमें लगे हुए हैं।

मैण्डलीफ़के बताए हुए ये तीन तत्व-स्कन्ध, गेलियम, और शर्म्म-तो आविष्कृत होचुके हैं। एक तत्व और ऐसा है जिसकी ओर वैज्ञानिकों का ध्यान अभी अधिक आकर्षित नहीं हुआ है। यह तत्व उस श्रेणी में है जिसमें पारद, थैलियम, सीस और बिस्मत हैं। यह छठे समूह का है। मैण्डलीफने इसका नाम 'द्वितेलुरियम' (Dvi.tellurium) [संकेत ते'] रखा है। उसका कहना है कि यह गुणोंमें तेलुरियमके समान होगा जिसका परमाणुभार २१२ होगा, इसका ओषिद ते'ओ$_2$ होगा। शुद्ध रूप में, यह आसानी से पिघलाया जासकेगा। यह खाकी रंग का रवेदार होगा। ते' ओ$_2$ रूपका इसका एक और भी ओषिद होगा, जिसमें क्षीण अम्लीय और क्षारीय गुण होंगे। ओषदीकरण से यह उच्च अस्थायीओषिद ते'ओ$_3$ देगा जिसके गुण सी ओ$_2$ औरबि$_2$ओ$_5$ के समानहोंगे। यदि द्वितेलुरियम उदिद का अस्तित्व पाया गया तो वह उ$_2$ते से कम स्थायी होगा। यह तत्व कदाचित पोलोनियमकी ओर संकेत कर रहा है जिसकी खोज तो हो चुकी है पर गुणों की परीक्षा अभी नहीं होसकी है।

परमाणुभारों में सुधार

मैण्डलीफ़के संविभागका उपयोग परमाणुभारोंके सुधारों में अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह सुधार दो प्रकारका है—(क) तत्वकी स्थितिके अनुसार परमाणुभार में थोड़ा सा सुधार। इसके उदाहरण में श्याम तत्व प्रस्तुत किया जा सकता है। बुन्सन नामक वैज्ञानिक ने इसका परमाणुभार १२३·४ निश्चत किया था। मैण्डलीफ की तालिकामें यह तत्व पोटाशियम-रूपदके पश्चात रखा गया। अतः रूपद और पोटाशियम के परमाणुभार में जितना अन्तर है उतना ही श्याम और रूपदके परमाणुभारमें अन्तर होना चहिये अर्थात् रू-पो=श्य-रू। पर रू-पो =८५·५-३९·१=४६·४। परन्तु बुन्सनने श्यामका जो परमाणुभार निश्चित किया था उसके अनुसार श्य-रू=१२३·४-८५·५=३७·९। अतः मैण्डलीफ़के नियमके अनुसार बुन्सनका परमाणुभार अशुद्ध ठहरता है। इसका परमाणुभार ८५·५+४६·४=१३१·९ के लगभग होना चाहिये। बादको जब अधिक उपयुक्त प्रयोग किये गये तो श्यामका परमाणुभार १३१·९ ही निकला। इस प्रकार मैण्डलीफ़के संविभागने परमाणुभार के सुधारमें अच्छी सहायता दी।

(ख) दूसरी सहायता जो हमें इस संविभागसे मिली वह तत्वोंके संयोग तुल्यांकोंके गुणक निश्चित करने में थी। उदाहरणतः, हिन्दम, बेरीलियम और युरेनियम प्रस्तुत किये जासकते हैं। हिन्दमका उदजन की अपेक्षा से संयोग तुल्यांक ३८·०३ है। यदि इसका ओषिद [हि ओ] माना जाय तो इसकी संयोग शक्ति (२) माननी होगी और इसका परमाणुभार ७६·०६ माना जावेगा, यदि यह परमाणुभार स्वीकृत किया जाय तो हमें इस तत्वको आवर्त संविभागमें ताल और सेलेनमके बीचमें रखना पड़ेगा पर हमारे संविभाग में ताल और सेलेनमके बीचमें कोई स्थान है ही नहीं। इससे ज्ञात होता है कि इसका परमाणुभार निकालनेके लिये संयोगतुल्यांक को २ से गुणा करना ठीक नहीं है अतः ओषिद [हि ओ] नहीं हो सकता है। यदि ओषिद [हि$_2$ओ$_3$] माना जावे तो यह तत्व त्रिशक्तिक समझा जावेगा अतः संयोग तुल्यांकको ३ से गुणा करें, तो परमाणुभार ३८·०८ × ३ = ११४·२४ होगा और इसको कादमियम और वंगके बीचमें रखना पड़ेगा—संविभागमें कादमियम (प० भा० ११२·४) और वंग (प० भा० ११८·७) के बीचमें तृतीय समूहमें एक स्थान

रिक्त भी है। अतः हिन्दमका परमाणुभार ११४के लग भग ही है। पहले हिन्दमका परमाणुभार ७६'०६ ही माना जाता था, पर लोथरमेयर ने उपर्युक्त प्रकार परिवर्तन करनेका प्रस्ताव किया। बुन्सनने इस तत्वका आपेक्षिक ताप ०'०५७ निश्चित किया जिनके अनुसार (डूलंग और पेटीटके सिद्धान्तके उपयोग कर । पर) परमाणुभार = $\frac{६.४}{०.०५६}$ =११२'३. इस प्रकार लोथरमेयरके प्रस्तावका और भी समर्थन हो गया।

मैण्डलीफ़के संविभागकी उपयोगिता बेरीलियमके विषयमें और भी अधिक प्रमाणित होती है। इसका संयोग तुल्यांक ४'५१ है। इसके ओषिद और गन्धेत स्फटके ओषिद तथा गन्धेतके समाकृत हैं अतः समाकृतित्व का उपयोग करनेसे यह स्फटके समान त्रि-शक्तिक होना चाहिये। अर्थात् इसका परमाणुभार ४'५१ × ३ = १३'५३ होना चाहिये जैसा कि निलसन और पेटरसन नामक वैज्ञानिकों ने समझा था। इसका आपेक्षिक ताप ०'४०७६ समझा गया जिसके अनुसार भी इसका परमाणुभार $\frac{६.४}{०.४०७६}$ = १५ के लगभग था अर्थात् आपेक्षिक तापके अनुसार भी बेरीलियमको त्रि-शक्तिक ही माना जा सकता था। पर यदि बेरीलियमका परमाणुभार १३'५३ के लगभग मानें तो संविभागमें इसे कर्बन और नत्रजनके बीचमें रखना पड़ेगा। परन्तु इन दोनों तत्वोंके बीचमें कोई स्थान रिक्त नहीं है। अतः मैण्डलीफ़ने परमाणुतात और समाकृतित्वके सिद्धान्तकी उपेक्षा करके इसे द्विशक्तिक ही माना और इसका परमाणुभार ४'५१ × २ = ९ के लगभग निश्चित किया। ऐसा करनेसे बेरीलियमको ग्राव और टंकके बीचमें द्वितीय समूहमें स्थान प्राप्त होगया। ब्रौनर नामक वैज्ञानिकने सम्मति दी कि कदाचित् इस तत्वका आपेक्षिक ताप उच्चतापक्रमों पर जाकर बढ़जावेगा। हम्फ्रिज नामक रसायनज्ञने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि ४००° और ५००° श तापक्रम पर इस आपेक्षिक तापकी मात्रा ०'६२ हो जाती है जिसके अनुसार परमाणुभार ६ के लगभग हो जाता है। यही नहीं, कार्नेलीने दिखला दिया कि ६००° के लगभग बेरीलियम हरिदका द्रवांक वह नहीं होता है जो (बे ह$_3$) सूत्र द्वारा होना चाहिये। निलसन और पेटरसनने हरिद्‌को वाष्पीभूत करके सिद्ध कर दिया कि इसका परमाणुभार ९'०३ होना चाहिये।

इसी प्रकार युरेनियमका परमाणुभार ६० या १२० समझा जाता था पर मैण्डलीफ़ने दर्शाया कि ये मात्रायें संविभागकी दृष्टिसे उपयुक्त नहीं हैं। यदि परमाणुभार २४० [या २३८] माना जावे तो इसे संविभागमें उचित स्थान प्राप्त हो सकता है क्योंकि यह क्रोमका भारी वंशज प्रतीत होता है। इसका उच्चतम ओषिद अम्लीय है। यह क्रोमेत के समान युरेनेत भी बनाता है। इसका उच्चतम हरिद उड़नशीलतामें मोलद हरिद [मो ह$_5$] के समान है। ज़ीमरमैनने जब इसके हरिद और अमिदका वाष्पघनत्व (Vapeur density) निकाला तो उससे मैण्डलीफ़के विचारों की पुष्टि हुई। अब युरेनियमका परमाणुभार २३८'२ समझा जाता है।

शून्य समूह

मैण्डलीफ़के आवर्त-संविभागकी ओर दृष्टि डालनेसे ज्ञात होता है कि वर्गीकरणमें तत्वोंकी विद्युत-रासायनिक शक्तिका ध्यान रखा गया है। प्रथम श्रेणीमें ग्राव प्रबल धनात्मक शक्तिक है। इस श्रेणीके अन्य तत्वोंमें यह धनात्मक शक्ति कम होती जाती है। बेरीलियम, टंक, कर्बन, नत्रजन और स्फुरमें ऋणात्मक शक्ति धीरे धीरे बढ़ती जाती है, यहां तक कि प्लव प्रबल ऋणात्मक है। प्लवके पश्चात् हम एक दम दूसरी श्रेणीके प्रबल धनात्मक तत्व सोडियमको पाते हैं। सारांश यह है कि प्लव प्रबल ऋणात्मक है और ऋणात्मक तत्वके पश्चात् एक दम प्रबल धनात्मक तत्वकी

ओर आजाना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। यही अवस्था हरिन् के पश्चात् पोटाशियममें आने पर मिलती है।

इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लव और सोडियमके बीचमें कोई एक ऐसा तत्व होना चाहिये जो न ऋणात्मक हो और न धनात्मक वह सर्वथा निश्चेष्ट हो। इसी प्रकार हरिन् और पोटाशियमके बीचमें एक निश्चेष्ट तत्व होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि सप्तम ऋणात्मक समूह और प्रथम धनात्मक समूहके बीचमें एक शून्य अथवा निश्चेष्ट समूह सर्वथा आवश्यक है।

ऋणात्मक	शून्य	धनात्मक

यह सर्वथा आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि मैण्डलीफ़ ऐसे दूरदर्शी वैज्ञानिकने इस ओर ध्यान नहीं दिया और उसने अपनी आयोजनामें शून्य समूहको स्थान नहीं दिया था। सं० १९५१ वि० में जब रेले और रैमज़ेने आर्गन नामक तत्वका अन्वेषण किया तो वैज्ञानिक जगतमें एक नयी हलचल मच गई। जब आर्गनका परमाणुभार निकाला गया तो वह ३९.९ निकला इस प्रकार उसे संविभाग में पोटाशियम (प० भा० ३९.१) और और खटिक (प. भा. ४०.०७) के बीच में रखना चाहिये था। पर न तो यहाँ पर कोई स्थान ही रिक्त था और न आर्गनके गुण इस स्थान के समीपी गुणोंसे मिलते थे। यह तत्व किसी अन्य तत्वके साथ न तो कोई यौगिक बनाता है और न इसमें कोई रासायनिक गुण ही मिलते हैं। इसका विचार कर के टामसन ने यह घोषणा की कि इस तत्व को एक नये समूह में रखना चाहिये और यह समूह सप्तम हरिन् समूह और प्रथम सोडियम समूहके बीचमें होना चाहिये। उसने यह भी अनुमान किया कि इस समूह में कमसे कम छः तत्व स्थित होंगे जिनके परमाणुभार ४, २०, ३६, ८४, १३२, और २१२ होंगे।

सं० १९५५ वि० में रैमज़ेने न्योन, क्रुप्तन, और जीनन नामक तत्वोंका अन्वेषण किया जिनके परमाणुभार क्रमानुसार २०.२, ८२.९२, और १३०.२२ थे। ये तत्व गुणों में आर्गन के समान ही निश्चेष्ट थे। बाद को हेल और नीटनका अन्वेषण और हुआ जिनके परणुभार ४, और २२२ थे। टामसन ने जो भविष्यवाणी की थी वह अधिकांश में सत्य निकली, उसकी दी हुई परमाणुभार की मात्राओंमें अधिक अन्तर नहीं निकला। इस प्रकार इस शून्य समूहके अब सप्तम और प्रथम समूहके बीचमें रखा जा सकता है:—

सप्तम	शून्य	प्रथम
उ, १	हे, ४	प, ६.९
प्लु, १८.९	न्यो, २०	सो, २३
ह, ३५.५	आ, ४०	पो, ३९.१
ब्र, ८०	क्रु, ८३	रू, ८५.५
नै, १२७	ज़ी, १३०.३	श्य, १३२.८१
	नीटन [नी] २२२,	

शून्य समूहकी स्थापना होनेपर मैण्डलीफ़ने एक और विचित्र अनुमान लगाया। उसका कहना है कि जिस प्रकार संविभागमें शून्य समूह है उसी प्रकार एक शून्य श्रेणी भी होनी चाहिये, अतः उसने अपने वर्गीकरणमें निम्न परिवर्तन किया—

	समूह ०	समूह १
श्रेणी०	क′	—
श्रेणी१	ख′	उ
श्रेणी२	हे	प

उसका कथन है कि क′ और ख′ स्थान पर दो अन्य तत्व होने चाहिये। एकका नाम उसने कोरोनियम रखा जिसका परमाणुभार ०.४ माना और दूसरेका उच्चतम परमाणुभार ०.१७ माना। उसका

विचार है कि यह दूसरा तत्व आकाश या तेजोमय ईथर है। इसने अपनी 'ईथरका रासायनिक रूप' नामक पुस्तिकामें संविभागकी सहायतासे ईथरको अति सूक्ष्म सिद्ध किया है।

उद्जनका स्थान

आवर्त्त-संविभागमें उद्जनका स्थान भी बड़ा विवादास्पद है। जिस प्रकार आङ्गनिक-रसायनमें प्रत्येक समश्रेणीके कनिष्ठतम यौगिक अन्य यौगिकोंकी अपेक्षा कुछ विचित्र होते हैं उसी प्रकार उद्जनकी भी अवस्था है। यह तत्वोंमें सबसे कम परमाणुभार वाला है। इसके भौतिक और रासायनिक गुणोंकी अन्य तत्वों के गुणोंसे तुलना करने पर हमको विचित्र बातें पता चलती हैं।

इसकी संयोगशक्ति एक है अर्थात् वह एक शक्तिक है। इस गुणमें यह क्षारीय धातु-सोडियम पोटाशियम, आदिके समान है और लवणजन (halogen) तत्व हरिन्, प्लव, ब्रम आदिके भी समान है अतः इसे प्रथम तथा सप्तम समूह दोनोंमें स्थान मिल सकता है। यह प्राव सोडियम आदिके समान प्रबल धनात्मक है और हरिन्, ब्रम आदिसे संयुक्त हो सकता है :—

उ + ह=उह [उदहरिकाम्ल], सो + ह=सोह [सोडियमहरिद] इस प्रकार पता चलता है कि यह प्रथम समूहका व्यक्ति है क्योंकि यदि सप्तम समूहका व्यक्ति होता तो सप्तम समूहके अन्य व्यक्तिओंसे संयुक्त होकर यौगिक न बना सकता। इस तत्वका स्वभाव अधातुओंसे मिलनेका अधिक है और धातुओंसे मिलनेका कम। इस प्रकार रासायनिक गुणोंके अनुसार यही उचित प्रतीत होता है कि इसे प्रथम समूहमें स्थान मिलना चाहिये।

पर ऐसा माननेमें भी बहुत बाधायें हैं। यदि उद्जनको प्रथम समूहमें स्थान दिया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि उद्जन और हेलके बीचमें स्थित रिक्त स्थानोंके पूरक तत्व भविष्यमें अवश्य पाये जावेंगे। पर मोसलेकी परमाणु-संख्यापर (जिसका वर्णन आगे दिया जावेगा) ध्यान देनेसे सबको स्वीकार करना पड़ता है कि उद्जन और हेलके बीचमें कोई अन्य तत्व नहीं है। अतः सप्तम समूहमें ही इसे स्थान देना उपयुक्त होगा। इस बातका समर्थन उद्जनके भौतिक गुणोंसे भी होता है। सप्तम समूह के प्लव, और हरिन् वायव्य रूपमें है और उद्जन भी वायव्य रूपमें है। परन्तु प्रथम समूह प्राव, सोडियम आदि तत्व ठोस पदार्थ हैं। इससे स्पष्ट है कि उद्जन सप्तम-समूही तत्वोंके ही समान है। जब उद्जन द्रवीभूत या ठोस किया जाता है तो उसका रूप द्रव या ठोस हरिन् आदिसे ही मिलता है। उसमें सोडियम आदिके समान धातुके गुण नहीं प्रत्यक्ष होते हैं। क्वथनांकोंकी तुलना करनेसे भी यही अधिक उचित प्रतीत होता है कि सप्तम समूहमें स्थान मिले जैसा कि निम्न अङ्कोंसे विदित है :—

सप्तम स०	क्वथनांक	क्वथनांक	प्रथम समूह
उद्जन	−२५२·५°		
प्लव	−१८५°	लालअग्नि	प्राव
हरिन्	+३३·६°	८७७·५°	सोडियम
ब्रम	+५६°	७५१·५°	पोटाशियम
नैल	+१७५°	६६६°	रूपद
		६७०°	श्याम

इस सारिणीसे प्रतीत होता है कि उद्जनको प्लव-हरिनकी श्रेणी ही में रखना चाहिये न कि प्राव, आदिकी श्रेणीमें। इसके समर्थनमें एक और भी प्रबल युक्ति यह है कि उद्जनका अणु हरिन् आदि के समान द्विपरमाणुक (Di-atomic) है अर्थात् इसके एक अणुमें दो परमाणु ($उ_2$) हैं। पर सोडियम, प्राव आदि एक परमाणुक (mon atomic) हैं। इनके अणुमें एक परमाणु ही है। इस प्रकार उद्जन प्लव-हरिन् आदिके समान

है न कि आवादिके। इसके अतिरिक्त यदि उदजन धातुओंके समान होता तो धातु-उदिद अन्तर-धातु यौगिकों (दो धातुओंसे बने हुए यौगिकों) के समान विद्युतके अच्छे चालक होते, पर प्रयोग इसके विपरीत बताता है कि धातु उदिद अच्छे चालक नहीं हैं। आव हरिद और उदिदमें बहुत समानता है। रवे, संयोग-ताप, परमाणुताप, परमाणु आयतन आदि उनके गुण परस्परमें समान हैं।

अस्तु, उदजनकी स्थिति निश्चित करना बड़ा कठिन है पर यह कहा जा सकता है कि रासायनिक गुणोंमें यह प्रथम समूहसे अधिक मिलता जुलता है और भौतिक गुणोंमें सप्तम समूह से। मैण्डलीफ़के संविभागमें उदजनका प्रश्न सदा विवादास्पद रहेगा।

अपवाद

कई बार यह कहा जा चुका है कि मैण्डलीफ़के संविभागमें कई स्थानों पर परमाणुभारके नियम का उल्लंघन किया गया है। (१) प्रथम उल्लंघन आर्गनकी स्थितिमें होता है। इसका परमाणुभार (३९.९) पोटाशियम (३९.१) और खटिक (४०.०७) के बीचमें है पर इसकी उपेक्षा करके इसको शून्य समूहमें पोटाशियमके पूर्व स्थान दिया गया है। (२) दूसरा अपवाद कोबल्टकी स्थितिमें है। इसका परमाणुभार निकलसे अधिक होते हुये भी इसे लोहके पश्चात् और निकलके पहले स्थान मिला है। (३) यही अवस्था तेलुरियमकी है। परमाणुभारके क्रमसे नैलको समूह ६ में और तेलुरियमको सातवें समूहमें आना चाहिये था पर गुणोंकी दृष्टिसे तेलुरियमको छठे समूहमें रखा गया है। यह कलंक मण्डलीफ़के संविभागसे नहीं मिट सकता है। लोगोंको यह आशा थी कि कदाचित परमाणुभारोंके निकालनेमें अशुद्धिकी गई है पर अब उपयुक्त प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया गया है कि परमाणु भारों में कोई अशुद्धि नहीं है।

परमाणु संख्या (Atomic number)

वर्तमान युग में मैण्डिलीफ़ के संविभाग में एक विकट परिवर्तन कर दिया गया है। विद्युतशास्त्र की उत्तरोत्तर उन्नतिके फलसे परमाणुओं का विभाग करना भी सरल हो गया है। पूर्व समय में लोगों का यह विश्वास था कि परमाणु अविभाजनीय पदार्थ हैं। उनके सूक्ष्म विभाग नहीं किये जा सकते हैं पर अब प्रमाणित कर दिया गया है कि परमाणुओंके भी कई भाग हो सकते हैं। उदजन के एक परिमाणु की ओर कल्पना कीजिये। जिस प्रकार इस सृष्टि में सूर्य्य के चारों ओर निश्चित मार्ग पर घूमने वाले अनेक ग्रह हैं उसी प्रकारकी सृष्टि परमाणुओंके अन्दर है। प्रत्येक परमाणुमें सूर्यके समान एक केन्द्र (nucleus) है जिसमें धनात्मक विद्युत संग्रहीत है। इस विद्युत केन्द्र-को धनकण (Proton) कह सकते हैं। इस धनकणको चारो ओर ग्रहोंके समान ऋणात्मक-विद्युतवाले ऋण कण (electron) चक्राकार-पथपर भ्रमण कर रहे हैं। प्रत्येक तत्व के परमाणुओं में एक धनकण होता है और उसके चारो ओर एक या अधिक ऋणकण भिन्न भिन्न चक्र-पथों पर घूमते हैं। इस प्रकार परमाणुओं को ऋणकण और धनकणों में विभाजित किया जा सकता है। चाहे कोई तत्व क्यों न हो, सब के ऋणकण एक ही भारके होंगे और उनपर एकसी ही विद्युन्मात्रा होगी।

इन ऋणकणों का भार और उनकी विद्युन्मात्रा का परिमाण सर जे. जे. टामसन आदि वैज्ञानिकों द्वारा निकाला जा चुका है। ऋणकण का भार उदजनके एक परमाणुके भारका $\frac{१}{१८४५}$ भाग है और उदजनका एक परमाणु १.६६२×१०^{-२४} ग्राम होता है अतः ऋणकण का भार $\frac{१.६६२}{१८४५} \times १०^{-२४} = ९.० \times १०^{-२८}$ ग्राम हुआ। प्रत्येकतत्वका परमाणुभार धनकणके भार पर निर्भर

रहता है। यदि किसी तत्वके एक परमाणुमें धनकण के चारो ओर एक ऋणकण भ्रमण करता है तो उस तत्व की परमाणु संख्या एक मानी जावेगी। उदाहरणतः उद्‌जनके एक परमाणुमें एक ऋणकण धनकणके चारों ओर घूमता है अतः उद्‌जनकी परमाणु संख्या १ है। पर हेलके परमाणुके धनकणके चारो ओर २ ऋणकण भ्रमण करते हैं। अतः हेलकी परमाणुसंख्या २ है। ग्राव परमाणुमें तीन ऋणकण धनकणके चारो ओर घूमते हैं अतः इसकी परमाणु संख्या ३ मानी गई है। इसी प्रकार स्तंत्रम परमाणुमें ३८ ऋणकण हैं, और यूरेनियममें ९२ अतःस्तंत्रम और यूरेनियमकी परमाणु संख्या क्रमानुसार ३८ और ९२ है।

परमाणु संख्या प्रयोग द्वारा निकाली जा सकती है। मोसले नामक युवक वैज्ञानिकने इसकी विधि बहुत सरल बता दी थी। प्रयोग इस प्रकार है कि यदि ऋणध्रुव-रश्मि (कैथोड रश्मि) किसी तत्व पर आकर पड़े तो तत्व द्वारा एक्स-रश्मि जनित होगी। इस रश्मि की कम्पनमात्रा (frequency) ज्ञात होने पर परमाणु संख्या ज्ञात हो सकती है क्योंकि—

$$\text{कम्पनमात्रा} = \text{अ} (\text{प-ब})^2$$

इसमें अ रीडवर्गकी रश्मिचित्रकी स्थिर मात्रा का निश्चित गुणक है, ब दूसरी स्थिर संख्या है जो के—रेखा (Kline) के लिये इकाई है। प परमाणु-संख्या है।

इस परमाणु संख्याका मैण्डलीफ़के संविभाग-से घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि इस संविभागकी श्रेणियोंमें परमाणुभारके अनुसार तत्वोंकी क्रमानुसार गणनाकी जाय तो जिस तत्वकी जो गणना होगी उसकी परमाणु संख्या वही होगी अर्थात् उस परमाणुमें उतने ही ऋणकण होंगे। उदाहरणतः संविभागमें उद्‌जन प्रथम तत्व है, अतः इसकी परमाणु संख्या एक है। वेरीलियम चौथा तत्व है अतः उसकी परमाणु संख्या ४ है। इसके परमाणुमें ४ ऋणकण हैं। स्कन्ध ११ वाँ तत्व है अतः इसकी परमाणु संख्या ११ है। स्वर्ण की परमाणु संख्या ७९ है। युरेनियमकी परमाणु संख्या ९२ है।

इस परमाणु संख्यासे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उद्‌जन और युरेनियमके बीचमें ९२ तत्व स्थित हैं। उद्‌जनसे हलका और कोई तत्व नहीं है। आजकल ८७ परमाणु संख्यावाला तत्व नहीं पाया जाता है इसी प्रकार अन्य कई तत्व अज्ञात हैं।

ऊपर कहाजा चुका है कि यदि तत्वोंको परमाणुभारकी अपेक्षासे संविभागमें स्थान दें तो आर्गन, कोबल्ट, और तेलुरियमकी स्थिति अपवाद जनक प्रमाणित होगी। पर परमाणु संख्याके द्वारा यह कलंक मिट जाता है। प्रयोग द्वारा सिद्ध हुआ है कि आर्गनकी परमाणु संख्या १८ है, पोटाशियमकी १९ अतः आर्गनको पोटाशियमके पूर्वही रखना उचित है। इसी प्रकार कोबल्टकी परमाणु संख्या २७ है, लोहकी २६ और निकलकी २८ अतः कोबल्टको लोह और निकलके बीचमें ही रखना चाहिये। तेलुरियमकी परमाणु संख्या ५२ है और नैलकी ५३ अतः तेलुरियमको समूह ६ में ही स्थान मिलना उपयुक्त है।

इस प्रकार पता चलता है आवर्त संविभाग का वास्तविक आदर्श परमाणु संख्या है नकि परमाणुभार। आगे दिखाया जायगा कि परमाणुभार अनिश्चित मात्रा है। पर परमाणुसंख्या ही तत्वोंकी स्थिर मात्रा कही जा सकती है। यही कारण है कि आजकलके संविभागोंमें परमाणु संख्याका अधिक ध्यान रक्खा जाता है यह स्पष्ट है कि परमाणु संख्याका सम्बन्ध एक ओर तो तत्वोंके गुणों से है और दूसरी ओर एक्सरश्मिके रश्मि-चित्र से है। इस प्रकार इससे भौतिक विज्ञान और रसायन शास्त्र परस्परमें सम्बन्धित हो जाते हैं।

दुष्प्राप्य पार्थिवोंके धातुओंका प्रश्न

जिस प्रकार उदजनकी स्थिति निश्चित करनेमें कठिनाई पड़ती है उसी प्रकार दुष्प्राप्य धातुओं-की स्थिति भी विवादस्पद है। श्रीयम तत्व और तंतलम तत्वके बीचमें चौदह तत्व विचित्र प्रकारके उपस्थित हो जाते हैं जिनको मैण्डलीफ़के संविभाग में स्थान देना अत्यन्त कठिन है। प्रकृतिमें यह तत्व बहुत कम मात्रामें पाये जाते हैं अतः इनका नाम दुष्प्राप्य-पार्थिव-तत्व (Rare Eoorths) पड़ गया है। ये तत्व इस प्रकार हैं :—

परमाणु संख्या	तत्व	परमाणुभार	परमाणु संख्या	तत्व	परमाणुभार
५६.	प्रसेदिमम, प्र	१४०.६	६६.	डिस्प्रोसियम, डि	१६२.५
६०.	नौदिमम, नौ	१४४.३	६७.	हौल्मियम, हौ	१६३.५
६१.	(अज्ञात)	?	६८.	एर्बियम, ए	१६७.७
६२.	स्मेरियम, स्म	१५०.४	६९.	थूलियम, थू	१६८.५
६३.	यूरोपियम, यू	१५२.०	७०.	यिटरबियम, यि	१७३.५
६४.	गैडोलीनम, गै	१५७.३	७१.	लूटेशियम, लू	१७५
६५.	टेरबियम, टे	१५९.२	७२.	सल्टियम, स	?

सारिणीमें मोसलेके नियमोंके अनुसार इनको परमाणु संख्या दी गई है। इनकी स्थिति निश्चित करते समय हमारे सम्मुख तीन कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। (१) पहिली तो बात यहहै कि यह प्रमाणित करना कठिनहै कि जिनको हम इस समय तत्व कह रहे हैं वे तत्व हैं या नहीं। इन दुष्प्राप्य-तत्वोंके अन्वेषणका इतिहास बड़ा मनोरञ्जक है। बहुतसे ऐसे पदार्थों को वैज्ञानिकों ने तत्व घोषित कर दिया था जो बाद को यौगिक प्रमाणित हुए। इनके तत्व प्रमाणित करनेकी कठिनता मोसलेकी परमाणु संख्याने दूर करदीहै। (२) दूसरी कठिनाई यहहै कि इन तत्वोंके गुणोंकी विशद परीक्षा अभी नहीं हो पायीहै (३) तीसरी कठिनता सबसे प्रबलहै, वह यह कि इन तत्वोंके परमाणुभार परस्परमें बहुतही समानहैं, जिन गुणोंका पता चलाहै उनसे यह पता चलताहै कि सब तत्व एकही समूहके हैं। सबकी संयोग शक्ति तीन हैं। मैंडलीफ़के संविभागमें श्रीयम और तंतलमके बीचमें १६ या ७ स्थान रिक्त हैं। परमाणु संख्यासे यह बात तो निर्विवाद है कि चौदहसे अधिक तत्व श्रीयम और तंतलम के बीचमें नहीं आ सकते हैं।

इन सब बातों का विचार करने पर तीन प्रकार की आयोजनायें हमारे सम्मुख प्रस्तुत होती हैं—(१) सब तत्वों को तृतीय समूह में एक स्थान पर रख दिया जाय, (२) इन सबोंको मिलाकर पुलके समान ऊपर और नीचेवाले तत्वोंका एक संयोजक बना दिया जाय अथवा (३) सब समूहों में इन्हें कुछ सामान्य गुणोंके अनुसार वितरित कर दिया जाय। इन तीनों आयोजनाओंमें कुछ न कुछ दोष अवश्य हैं। यहाँ इनका विस्तृत वर्णन देना उचित नहीं है। केवल इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि प्रश्न विवादास्पद है और भिन्न २ वैज्ञानिकोंने भिन्न २ आयोजनायें प्रस्तुत की हैं। इनका उल्लेख फिरकभी किया जावेगा। यहाँ तीसरे प्रकारकी एक आयोजना ही प्रस्तुत की जाती है—*

* शेष भाग टाइटिल पेजके तीसरे पृष्ठ पर देखिये।

सूर्य-सिद्धान्त

[गताङ्कके आगे]

पहले यह जानना आवश्यक है कि १८६० ई० की ४थी जुलाईके ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ सेकंड (नाक्षत्रकाल) तक कितना समय नाक्षत्रकालमें बीता।

यह स्पष्ट है कि एक सायन वर्षमें अर्थात् एक सायनमेष संक्रान्तिसे दूसरी सायनमेष संक्रान्ति तकके समयमें वसन्त संपात विन्दु जितने बार यामोत्तरोल्लंघन करता है उससे एक बार कम सूर्य यामोत्तरोल्लंघन करता है क्योंकि पृथ्वीकी गतिके कारण सूर्य प्रतिदिन एक अंश पूर्वकी ओर बढ़ जाता है जिससे यह प्रतिदिन वसन्त-सम्पातसे ४ मिनटके लगभग पीछे यामोत्तरोल्लंघन करता है। इस तरह पिछड़ते पिछड़ते १ वर्षमें सूर्य पूरा १ दिन पिछड़ जाता है अर्थात् १ वर्षमें सूर्य-का यामोत्तरोल्लंघन वसन्त-सम्पात विन्दुके यामोत्तरोल्लंघन से १ बार कम पड़ जाता है।

१८३६ ई० की चौथी जुलाईसे १८६० ई० की ४थी जुलाई तक ५४ वर्ष होते हैं। जिनमें १८४०, १८४४, १८४८ इत्यादि १३ अधिक वर्ष (लीप इयर) हैं और शेष ४१ वर्ष साधारण वर्ष हैं। इसलिए यह अवधि ४१ × ३६५ + १३ × ३६६ अर्थात् १९७२३ सावन दिनके समान हुई। ऊपर सिद्ध किया गया है कि एक वर्षमें वसन्त सम्पात विन्दुका यामोत्तरोल्लंघन सूर्यके यामोत्तरोल्लंघनसे १ बार अधिक होता है इसलिए ५४ वर्षोंमें वसन्त सम्पात विन्दुका यामोत्तरोल्लंघन ५४ बार अधिक होगा। इस प्रकार उपर्युक्त अवधिमें १९७२३ + ५४ = १९७७७ नाक्षत्र दिन हुए। इसलिए १८३६ ई० की ४थी जुलाईके सूर्यके यामोत्तरोल्लंघन कालसे १८९० ई० की ४थी जुलाईके यामोत्तरोल्लघन कालतक १९७७७ दिन ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ से० — ६ घंटा ५४ मिनट ७·०३ सेकन्ड अर्थात् १९७७६ दिन २३ घंटा ५९ मि० ४७·५८ से० समय नाक्षत्रकालमें हुआ।

इसलिए यह नाक्षत्र काल १९७२३ स्पष्ट सावन दिनोंके समान हुआ। अब यदि उपर्युक्त नाक्षत्रकालको १९७२३ से भाग दे दिया जाय तो १ मध्यम सावन दिनका मान नाक्षत्र-कालमें २४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकंड आता है। इसलिए

१ मध्यम सावन दिन=२४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकंड (नाक्षत्र)

मध्यम और स्पष्ट सावन दिनोंका भेद समझानेके लिए ज्योतिषियोंने एक ऐसे सूर्यकी कल्पना की है जो विषुवद्वृत्त पर सदैव समान गतिसे चलता हुआ माना गया है और नाक्षत्रकालके २४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकंड पीछे प्रतिदिन यामोत्तरवृत्तपर आता है। जिस क्षण यह कल्पित सूर्य यामोत्तरोल्लंघन करता है उसी क्षण मध्यम मध्याह्न होता है और मध्यमकाल सूचित करनेवाली घड़ियोंमें ठीक १२ बजता है। यह ऊपर बतलाया गया है कि वर्षभरके स्पष्ट सावन दिनोंका मध्यममान ही मध्यम सावन दिनके समान होता है इसलिए यह प्रकट है कि जितने समयमें उपर्युक्त कल्पित सूर्य विषुवद्वृत्तपर चलता हुआ एक चक्कर पूरा कर लेता है उतने ही समयमें स्पष्ट सूर्य क्रान्तिवृत्तपर चलता हुआ एक चक्कर पूरा करता है। इसलिए क्रान्तिवृत्तपर स्पष्ट सूर्यकी जो मध्यम दैनिक गति होती है वही विषुवद्वृत्तपर इस कल्पित सूर्यकी गति होती है। इससे सिद्ध है कि समान कालमें कल्पित सूर्यका विषुवांश उतना ही बढ़ता है जितना स्पष्टसूर्यका भोगांश बढ़ता है।

४६५ पृष्ठकी सारिणीसे* प्रकट है कि जबतक स्पष्ट सूर्य-का भोगांश ९० अंशसे कम होता है तबतक इसका विषुवांश भोगांशसे कम रहता है। परन्तु उपर्युक्त कल्पित सूर्यका विषुवांश सदैव स्पष्ट सूर्यके मध्यम भोगांशके समान होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि जबतक कल्पित सूर्यका विषुवांश अथवा सूर्य का मध्यम भोगांश ९० अंशसे कम होता है तब तक कल्पित सूर्यका ध्रुवप्रोतवृत्त स्पष्ट सूर्यके ध्रुवप्रोतवृत्तसे पूर्वकी ओर होता है। इसलिए स्पष्ट सूर्यका ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्यसे पहले याम्योत्तरवृत्तपर आता है और स्पष्ट मध्याह्न मध्यम मध्याह्नसे पहले होता है। इसलिए जिस समय धूप घड़ीमें जो स्पष्ट सूर्यके अनुसार समय बतलाती है १२ बजता है उससे पीछे मध्यमकाल बतलाने वाली घड़ियोंमें १२ बजेगा। अर्थात् धूप घड़ी मध्यम घड़ीसे तेज होगी। जितना तेज होगी उतना ही धूप घड़ीके समयसे घटानेपर मध्यम घड़ीका समय ज्ञात होगा।

इसी प्रकार जबतक स्पष्ट सूर्यका मध्यम भोगांश ९० अंशसे अधिक और १८० अंशसे कम होगा अर्थात् जब सूर्य सायन कर्कसे सायन कन्या राशिमें रहेगा तबतक स्पष्ट सूर्य-का ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्यसे पूर्वकी ओर रहता है। क्योंकि स्पष्ट सूर्यका विषुवांश कल्पित सूर्यके विषुवांशसे जो स्पष्ट सूर्यके मध्यम भोगांशके समान होता है अधिक होगा (देखो ४६५ पृष्ठ की सारिणी)। ऐसी दशामें स्पष्ट सूर्य कल्पित सूर्यसे पीछे याम्योत्तरोल्लंघन करेगा अर्थात् धूप घड़ी मध्यम घड़ीसे पीछे (मन्द या सुस्त) रहेगी। इसलिए धूप घड़ीके समयमें दोनोंके विषुवांशोंका अन्तर जोड़नेपर यांत्रिक घड़ी (मध्यम घड़ी) का समय ज्ञात होगा। इसी प्रकार जब स्पष्ट सूर्य सायन तुलादि तीन राशियोंमें होगा तब धूप घड़ी मध्यम घड़ीसे आगे रहेगी और धूपघड़ीके समयसे स्पष्ट सूर्य और कल्पित सूर्यके विषुवांशोंका अन्तर घटानेपर मध्यम घड़ीका समय ज्ञात होगा और जब स्पष्ट सूर्य सायन मकरादि तीन राशियों-में रहेगा तब धूप घड़ीके समयमें दोनोंके विषुवांशोंका अन्तर जोड़नेपर मध्यम समय ज्ञात होगा।

परन्तु स्पष्ट सूर्य क्रान्तिवृत्तपर सदा समान गतिसे नहीं चलता। कभी इसकी गति तीव्र हो जाती है और कभी मन्द। इसलिए इसके कारण भी स्पष्ट सूर्य याम्योत्तर वृत्तपर उस समय नहीं आवेगा जिस समय मध्यम सूर्य आता है जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। स्पष्ट सूर्य और मध्यम सूर्य क्रान्ति-वृत्त के केवल मन्दोच्च और नीच स्थानोंपर साथ रहते हैं। (देखो पृष्ठ १२०—१२३)। जब सूर्य मन्दोच्चसे आगे बढ़ता है तब स्पष्ट सूर्यकी दैनिकगति मध्यम सूर्यकी दैनिकगतिसे कम होनेके कारण स्पष्टसूर्य मध्यम सूर्यसे पीछे पड़ जाता है अर्थात् मध्यम सूर्य स्पष्टसूर्यसे पूर्वकी ओर बढ़ा रहता है इसलिए स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्यसे पहले याम्योत्तर वृत्तपर आता है अर्थात् स्पष्ट मध्याह्न मध्यम मध्याह्नसे पहले होता है। इस कारण भी धूप घड़ीका समय मध्यमकालसे आगे रहता है। यह दशा तब तक रहती है जब तक सूर्य नीच पर नहीं पहुँच जाता है। यहांसे आगे बढ़नेपर स्पष्ट सूर्यकी गति मध्यमगतिसे अधिक होती है इसलिये स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्यसे आगे पूर्वकी ओर

---

* इस सारिणीमें जो भोगांश दिया हुआ है उसे कल्पित सूर्यका विषुवांश और जो विषुवांश दिया हुआ है उसे स्पष्ट सूर्यका विषुवांश समझ लेनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि किस समय स्पष्ट सूर्यका ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्यके ध्रुवप्रोतवृत्तके आगे या पीछे है।

रहता है। इसलिए स्पष्ट मध्याह्न मध्यम मध्याह्न से पीछे होता है अर्थात् धूपघड़ी मध्यम घड़ीसे सुस्त रहती है।

इन दोनों कारणोंसे अर्थात् सूर्यके क्रान्तिवृत्तपर चलने तथा दैनिक गतिके समान न होनेसे स्पष्टकाल और मध्यम-कालमें कुछ अन्तर होता है। स्पष्टकालमें जितना समय घटाने या जोड़ने से मध्यमकाल ज्ञात होता है उसीको काल समीकरण कहते हैं। इसको यों भी लिखते हैं :—

मध्यमकाल=स्पष्टकाल + कालसमीकरण*

जब काल समीकरण धनात्मक होता है तब जोड़ा जाता है और ऋणात्मक होता है तब घटाया जाता है।

काल समीकरणका निश्चय करना—

अब यह सिद्ध हो गया कि उपर्युक्त कल्पित सूर्यके विषुवांश और स्पष्ट सूर्यके विषुवांशके अन्तरको ही काल-समीकरण कहते हैं। इसलिए काल-समीकरण जाननेका गुरु नीचे लिखी रीतिके अनुसार सहज ही निकल सकता है :—

पृष्ठ ४४६—४४७ में दिखाया गया है कि

$$\text{विषुवांशकी स्पर्श रेखा}=\frac{\text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{सायन भोगांशकी कोटि स्पर्श रेखा}}$$

यदि विषुवांशको सूचित करनेके लिए व, परमक्रान्तिके लिए क और स्पष्ट सायन भोगांशके लिए भ मान लिये जांय तो

$$\text{स्परे व}=\text{कोटिज्या क}\times\frac{१}{\text{कोस्परे भ}}$$

$$=\text{कोटिज्या क}\times\text{स्परे भ}\quad\ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

यह समीकरण उसी रूपमें है जिस रूपमें स्पष्टकेन्द्र और उत्केन्द्रका सम्बन्ध सूचित करनेवाला समीकरण है [देखो पृष्ठ २४३ समीकरण (३)]। इसलिए इस समीकरणका भी विस्तार २४३-२४८ पृष्ठोंमें लिखी गयी रीतिके अनुसार हो सकता है। इस प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि

$$\text{२ व}=\text{२भ}+\text{२}\left(-\text{स्परे}^{२}\tfrac{\text{क}}{२}\text{ ज्या २ भ}+\tfrac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\tfrac{\text{क}}{२}\text{ ज्या ४भ}+\tfrac{१}{३}\text{स्परे}^{६}\tfrac{\text{क}}{२}\text{ ज्या ६ भ}+\ldots\ldots\right)$$

अथवा

$$\text{व}-\text{भ}=-\text{स्परे}^{२}\tfrac{\text{क}}{२}\text{ ज्या २ भ}+\tfrac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\tfrac{\text{क}}{२}\text{ ज्या ४ भ}-\tfrac{१}{३}\text{स्परे}^{६}\tfrac{\text{क}}{२}\text{ ज्या ६ भ}+\ldots\ldots(२)$$

$$\text{यहां}-\text{स्परे}^{२}\tfrac{\text{क}}{२}=-\frac{१-\text{कोज्याक}}{१+\text{कोज्याक}}=\frac{\text{कोज्याक}-१}{\text{कोज्याक}+१}$$

इसलिए जैसे पृष्ठ २४६ में प का मान निश्चय किया गया है उसी प्रकार यहां $-\text{स्परे}^{२}\tfrac{\text{क}}{२}$ का मान आया है।

समीकरण (२) के प्रत्येक पद चापीयमानों (radian) में हैं (देखो पृष्ठ २३६)। इसलिए यदि हम इसके दाहने पक्षको ३४३७·७५ से गुणा कर दें तो व—भ का मान कलाओं-में तथा असुओंमें ज्ञात हो जायगा। इस सूत्रसे हम सूर्यके किसी सायन भोगांशका विषुवांश सहज ही जान सकते हैं।

यह बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ४५१) कि सूर्यकी परम-क्रान्ति विक्रमकी २१वीं शताब्दीके प्रथमार्द्ध तक २३°२७′ मान लेनेमें कुछ हानि नहीं है इसलिए

$$\text{स्परे}^{२}\tfrac{\text{क}}{२}=\text{स्परे}^{२}\tfrac{२३^\circ२७'}{२}=\text{स्परे}^{२}\,११^\circ४३'{\cdot}५=(\cdot२०७५)^{२}=\cdot०४३०५$$

$$\text{स्परे}^{४}\tfrac{\text{क}}{२}=(\cdot०४३०५)^{२}=\cdot००१८५$$

$$\text{स्परे}^{६}\tfrac{\text{क}}{२}=\cdot००१८५\times\cdot०४३०५=\cdot००००८$$

* वेंकटेश वापूकेतकरने अपने ज्योतिर्गणितमें इसका नाम उदयान्तर रखा है (ज्यो० ग० पृष्ठ ७५)

इसलिए समीकरण (२) के दाहने पक्षको ३४३७·७५ से गुणा करने तथा स्परे^{२}कु, स्परे^{४}कु इत्यादिके मान उत्थापन करने पर इसका रूप यह हो जायगा—

व — भ = — १४७′·६६५ ज्या २भ + ३′·१८ ज्या ४ भ — ०′·०६ ज्या ६ भ + ...(३)

इस समीकरणके दाहने पक्षके पद इतनी शीघ्रतासे छोटे हो रहे हैं कि तीसरे पदके आगे आनेवाले पदोंको छोड़ देनेसे कुछ भी हानि नहीं हो सकती। यदि तीसरा पद भी छोड़ दिया जाय तो भी विशेष हानि नहीं। इस प्रकार स्पष्ट भोगांश और उसके विषुवांशका अन्तर कलाओं या असुओंमें सहज ही जाना जा सकता है जिससे विषुवांश और भोगांशकी सारिणी ४६५ पृष्ठकी सारिणीकी तरह सहज ही बनायी जा सकती है।

अब इस सूत्रकी सहायतासे कल्पित सूर्यके मध्यम विषुवांश और स्पष्ट सूर्यके विषुवांशका सम्बन्ध भी जानना आवश्यक है क्योंकि काल समीकरण तो स्पष्ट सूर्यके विषुवांश और कल्पित सूर्यके विषुवांशका अन्तर है। परन्तु कल्पित सूर्यका विषुवांश सूर्यके मध्यम भोगांशके समान होता है। इसलिए समीकरण (२) और पृष्ठ २६१ के समीकरण (छ) से यह काम सहज ही निकल सकता है।

पृष्ठ २६१ के समीकरण (छ) का नीचे लिखा संक्षिप्त रूप पर्याप्त होगा—

स = म + २ च ज्या म + $\frac{५}{४}$च^{२} ज्या २ म

यहां स = स्पष्ट मन्दकेन्द्र, म = मध्यम मन्द केन्द्र और च = पृथ्वीकी केन्द्र च्युति जो $\frac{१}{५९·७०}$ के समान है।

नीच (Perigee) से ग्रहके अन्तरको मन्दकेन्द्र कहते हैं (देखो पृष्ठ २३८-३९)। इसलिए यदि मन्दकेन्द्रमें नीचका भोगांश जोड़ दिया जाय तो ग्रहका भोगांश आ जायगा। यदि पृथ्वीके नीचका भोगांश नी मान लिया जाय तो

स्पष्ट भोगांश = स + नी

और मध्यम भोगांश = म + नी

स्पष्ट भोगांशको भ माना गया है इसलिए मध्यम भोगांशको भा मान लेना उचित होगा। इसलिए

भ = स + नी अथवा स = भ — नी

भा = म + नी अथवा म = भा — नी

स और म के इन मानोंको समीकरण (छ) के संक्षिप्त रूपमें उत्थापित करनेसे

भ — नी = भा — नी + २ च ज्या (भा — नी) + $\frac{५}{४}$ च^{२} ज्या २ (भा — नी)

अथवा

भ = भा + २ च ज्या (भा — नी) + $\frac{५}{४}$ च^{२} ज्या २ (भा — नी)........(४)

समीकरण (२) और (४) की सहायतासे एक ऐसा समीकरण ज्ञात हो सकता है जिसमें भ न रहे। ऐसे समीकरणसे स्पष्ट विषुवांश और मध्यम भोगांश अथवा कल्पित सूर्यके विषुवांशका सम्बन्ध सहज ही जाना जा सकता है। यह प्रकट है कि उपर्युक्त दोनों समीकरणोंके योगसे ऐसे पद भी प्राप्त होंगे जिनके गुणक बहुत छोटे हों और जिनके रखनेसे प्राप्त समीकरणका रूप बहुत बढ़ जायगा परन्तु उससे अधिक लाभ नहीं होगा। इसलिए जिन पदोंके गुणक ·०००१ से कम होंगे उनको छोड़ दिया जायगा। समीकरण (२) के भ की जगह समीकरण (४) का दहना पक्ष उत्थापित करनेसे और ऐसे पदोंको छोड़ देनेसे जिनके गुणक ·०००१ से कम हों, हमें नीचे लिखा समीकरण प्राप्त होगा।

व = भा + २चज्या (भा − नी) + $\frac{५}{४}$ च^{२}ज्या२(भा − नी)

− स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ज्या२[भा + २चज्या(भा − नी) + $\frac{५}{४}$च^{२}ज्या २(भा − नी)]

+ $\frac{१}{२}$स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ज्या४[भा + २चज्या(भा − नी) + $\frac{५}{४}$च^{२}ज्या२(भा − नी)]

यहां $\frac{५}{४}$ च^{२} ज्या २ [भा − नी) भी बहुत छोटा है। इसलिए ४थे और पांचवें पदोंमें इसको भी छोड़ देनेपर यह पद क्रमानुसार नीचेके रूपके हो जायँगे।

− स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ज्या[२भा + ४चज्या(भा − नी)] और

+ $\frac{१}{२}$ स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ ज्या [४ भा + ८ च ज्या (भा − नी)]

इसमेंसे चौथा पद

= − स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ {ज्या २ भा × कोज्या [४ च ज्या (भा − नी)]

+ कोज्या २ भा × ज्या[४ च ज्या (भा − नी)]}

= − स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ {ज्या २ भा + कोज्या २ भा × ४ च ज्या (भा − नी)}

क्योंकि ४ च ज्या (भा − नी) बहुत छोटा कोण है इसलिए इसकी कोटिज्या एकके समान होगी और इसकी ज्या इसीके समान होगी। (देखो Hall and Knight's Trigonometry पृष्ठ २६२)

इसी प्रकार पांचवां पद

= $\frac{१}{२}$ स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ { ज्या४भा × कोज्या[८चज्या(भा − नी)]

+ कोज्या४भा × ज्या[८चज्या(भा − नी)]}

= $\frac{१}{२}$ स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ { ज्या४भा + कोज्या४भा × ८चज्या(भा − नी)}

= $\frac{१}{२}$ स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ ज्या४भा

क्योंकि इसके दूसरे पद का गुणक ·०००१ से भी कम है इसलिये

व = भा + २चज्या(भा − नी) + $\frac{५}{४}$च^{२}ज्या२(भा − नी)

− स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ { ज्या२भा + ४चज्या(भा − नी) × कोज्या२भा}

+ $\frac{१}{२}$स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ ज्या४भा ·············· (५)

परन्तु २ज्या(भा − नी) × कोज्या२भा

= ज्या(भा − नी + २भा) + ज्या(भा − नी − २भा)

= ज्या(३भा − नी) − ज्या(भा + नी)

इसलिये यदि समीकरण (५) सरल किया जाय और इसके पद बड़ाई छुटाईके अनुसार क्रमसे लिखे जायं तो

व = भा + २चज्या(भा − नी) − स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ ज्या२भा

+ २चस्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ ज्या(भा + नी) + $\frac{५}{४}$च^{२}ज्या२(भा − नी)

− २चस्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ ज्या(३भा − नी) + $\frac{१}{२}$स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ ज्या४भा···(६)

बस इसी समीकरणसे कल्पित सूर्यके विषुवांश अथवा सूर्यके मध्यम सायन भोगांश भा और स्पष्ट सूर्यके विषुवांश व का सम्बन्ध जाना जा सकता है। दाहने पक्षमें भा के पश्चात् जितने पद आते हैं सब मिलकर काल-समीकरण (equaton of time) कहलाते हैं। इन सब पदोंमें भी पहिले दो पद २चज्या(भा − नी) − स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ ज्या२भा बड़े महत्वके हैं क्योंकि अन्य पदोंके गुणक इतने छोटे हैं कि छोड़ दिये जा सकते हैं। इसलिए

व = भा + काल-समीकरण

जहां काल-समीकरण = २चज्या(भा − नी) − स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ ज्या२भा

यह रेडियनमें प्रकट किया गया है। यदि असुओंमें प्रकट करना हो तो इसे ३४३७·७५ से गुणा कर देना चाहिए क्योंकि १ रेडियन = ३४३७′·७५ और विषुवद्वृत्त की एक कला की गति एक असुमें होती है। इसलिए असुओंमें काल-समीकरण का रूप यह होगा।

३४३७·७५{२चज्या(भा − नी) − स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ ज्या२भा }······(७)

यदि च की जगह ०·०१६७५ और नी की जगह २८१°३६′१४″ रख दिया जाय जो १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति कालमें सूर्यके नीचका सायन भोगांश* था तो

२चज्या(भा − नी)

= २च(ज्या भा × कोज्या नी − कोज्या भा × ज्यानी)

= २च(ज्याभा × कोज्या २८१°३६′१४″ − कोज्याभा × ज्या २८१°३६′१४″)

= २च{ज्याभा × कोज्या (३६०° − ७८°२३′४६″) − कोज्याभा × ज्या(३६०° − ७८°२३′४६″)}

= २च{ज्याभा × कोज्या ७८°२३′४६″ + कोज्याभा × ज्या ७८°२३′४६″}

= २ × ·०१६७५(·२०११ज्याभा + ·९७९६ कोज्याभा)

= ·००६७४ज्याभा + ·०३२८२ कोज्याभा

∴ काल समीकरण (७) का रूप यह होगा

३४३७·७५(·००६७४ ज्याभा + ·०३२८२ कोज्याभा − ·०४३०५ ज्या२भा)

= २३′·१७ ज्याभा + ११२′·८३ कोज्याभा − १४८′·० ज्या२भा ....(८)

इसमें इष्टकालके सूर्यके मध्यम भोगांश भा का मान स्थापित करके ज्याभा, कोज्याभा इत्यादिके मान जाने जा सकते हैं जिससे इष्टकालका काल-समीकरण जाना जा सकता है। यह असुओंमें होगा।

यह प्रकट है कि काल-समीकरणका यह मान सदाके लिए शुद्ध नहीं है क्योंकि इसका यह रूप उस समय आया है जब सूर्यका नीच २८१°३६′१४″ समझा गया है। सूर्यके नीचका सायन भोगांश प्रतिवर्ष १ कलाके लगभग आगे बढ़ता है इसलिए १० या १५ वर्षोंतक यही समझ लेनेमें अधिक अशुद्धि नहीं होगी। सूर्यकी परम क्रान्तिके भी घटते रहनेसे कुछ अन्तर हो जाता है परन्तु इसकी गति बहुत मंद है इसलिए इसके कारण १०० वर्षतक बहुत भेद नहीं हो सकता।

यह बतलाया गया है कि वसंत सम्पात विन्दुके याम्योत्तरोल्लंघनके उपरान्त जितना समय नाक्षत्र घड़ीमें बीता रहता है उसे नाक्षत्रकाल (sidereal time) कहते हैं। यदि किसी समयका नाक्षत्रकाल ना हो और उसी समय स्पष्ट सूर्यका विषुवांश व हो तो स्पष्ट सूर्यके याम्योत्तरोल्लंघनके उपरान्त ना − व समय बीता है। इसलिए उस समयके स्पष्ट सूर्यका नतकाल† (hour angle) या

---

* सूर्यके नीच का यह सायन भोगांश १९२५ ई० के Nautical Almanac पृष्ठ ६२६ के इस सूत्र से जाना गया है—

Mean longitude of solar perigee

$$= 281^{\circ}13'15''.0 + 6189''.03\tau + 1''.63\tau^2 + 0''.012\tau^3$$

जब कि २८१°१३′१५″ सन् १९०० ई० की जनवरीकी पहली तारीखके मध्याह्न कालका नीचका सायन भोगांश है और τ उस समय से इष्टकाल तक का जूलियन शताब्दी का भिन्न है। १९७९ वि० की मेष संक्रान्तिके लिए $\tau = \frac{८१३७}{३६५२५}$ जब कि १९०० ई० की जनवरीके पहले मध्याह्नसे १९७९ वि० की मेष संक्रान्तिके मध्याह्न तकके दिनों की संख्या ८१३७ है और ३६५२५ जूलियन शताब्दीके दिनोंकी संख्या है।

† सूर्य या तारेके याम्योत्तरोल्लंघनके समयसे इष्टकालतक जितना समय होता है उसको सूर्य या तारेका नतकाल (hourangle) कहते हैं। आजकल पूर्व नतकाल और पश्चिम नतकालका भेद नहीं माना जाता

स्पष्ट सावनकाल* = ना − व

उसी समय मध्यम सूर्यका नतकाल ना − भा है

∴ मध्यम सावनकाल = ना − भा = (ना − व) + (व − भा)

= स्पष्ट सावनकाल + काल समीकरण

इसलिए यह सिद्ध हो गया कि कालसमीकरण वह समय है जिसे स्पष्ट सावन कालमें बीजगणितकी रीतिसे जोड़ देनेपर मध्यम सावन काल आ जाता है।

उदाहरण—१९७९ वि० की वसंत् पंचमीकी मध्यरात्रिके समय काल समीकरण क्या है ?

पहले सूर्यका मध्यम सायन भोगांश जानना चाहिए। इस समय सूर्यका मध्यम स्थान ९रा८°१२′९″ था (देखो पृष्ठ २१७)। १९७९ वि० की मेष संक्रान्तिकालमें अयनांश २२°३७′३८″ था (देखो पृष्ठ ३७१)। मेष संक्रान्तिसे २८३ दिन पीछे इस वर्ष वसंत पंचमी हुई थी (देखो पृष्ठ ६०)। इसलिए २८३ दिनमें अयनकी गति

५८″·६६ × २८३ / ३६५·२५ = ४५″·५

इसलिए वसंतपंचमीकी मध्यरात्रिमें मध्यम अयनांश २२°३७′३८″·१ + ४५″·५ = २२°३८′२३″·६ हुआ। स्पष्ट अयनांश जाननेके लिए अयन विचलन संस्कार भी करना चाहिए परन्तु विस्तारके भयसे यह संस्कार छोड़ दिया जाता है।

इसलिए २२°३८′२३″·६ को ही स्पष्ट अयनांश मान लिया जाता है। अब,

सूर्यका मध्यम स्थान = ९रा८°१२′९″

अयनांश = २२°३८′२४″

∴ सूर्यका सायन मध्यम भोगांश = १०रा०°५०′३३″

= ३००°५०′३३″

इसलिए सूत्र (८) के अनुसार,

कालसमीकरण = २३′·१७ ज्या ३००°५०′३३″

+ ११२′·८३ कोज्या ३००°५०′३३″

− १४८′·० ज्या (२ × ३००°५०′३३″)

= २३′·१७ (− ज्या ५९ ९′२७″)

+ ११२′·८३ कोज्या ५९°९′२७″)

− १४८′ ज्या ६०१°४१′६″*

= − २३′·१७ × ·८५८६

+ ११२′·८३ × ·५१२६

− १४८′(− ·८८०४)

= − १९′·८९ + ५७′·८४ + १३०′·३०

= + १६८′·२५

= + १६८·२५ असु

= + २८ पल

यदि अधिक शुद्धताकी आवश्यकता हो तो समीकरण (९) की सहायतासे काल समीकरणका मान जानना चाहिए।

जैसा कि पृष्ठ ४२८ में बतलाया गया है। यदि यामोत्तरोल्लंघन कालसे २२ घंटा समय हो गया है तो कहेंगे कि नतकाल २२ घंटा है यद्यपि प्राचीन मतानुसार इस समय पूर्वनत २ घंटा होगा।

* यहां सावनकालका आरम्भ मध्याह्न से माना गया है।

* ६०१°४१′६″ = ३६०° + २४१°४१′६″ = ३६०° + १८० + ६१°४१′६″

∴ ज्या ६०१°४१′६″ = ज्या (१८०° + ६१°४१′६″) = − ज्या ६१°४१′६″

यह भी ध्यान रहे कि सूर्यका जो मध्यम स्थान ऊपर लिया गया है वह सूर्यसिद्धान्तकी रीतिसे जाना गया है। यदि शुद्ध वेधसे सूर्यका मध्यम सायन भोगांश निकाला* जाय तो ३०१° ५′२″ होता है। इसलिये यदि समीकरण (६) तथा वेधसिद्ध मध्यम सायन भोगांशसे काल समीकरण निकाला जाय तो नाटिकल अलमैनेकमें दिये हुए काल समीकरणके समान होगा।

काल समीकरण प्रकट करनेका वक्र (curve)

असुओंमें कालसमीकरणका रूप सूत्र (७) में यह है

$$३४३७·७५\{ २ च ज्या (भा - नी) - स्परे^{२} \frac{कु}{२} ज्या २ भा \}$$

यदि नी = को २८१°३६′ मान लिया जाय तो

$$भा - नी = भा - २८१°३६′ = भा - (३६०° - ७८°२४′)$$
$$= भा + ७८°२४′ - ३६०°$$
$$= भा + ७८°२४′†$$

इसलिए उपर्युक्त सूत्रका रूप यह होगा

$$३४३७·७५ \{ २च ज्या (भा + ७८°२४′) - स्परे^{२} \frac{कु}{२} ज्या२भा\}$$

इसमें च और $स्परे^{२} \frac{कु}{२}$ के मान उत्थापन करने और सरल करनेपर यह रूप होगा।

$$११५·१६५ \times ज्या(भा + ७८°२४′) - १४७·६६५ ज्या२भा \cdots\cdots (क)$$

इससे दो वक्र Curve खींचे जा सकते हैं जिनके समीकरण क्रमानुसार यह हैं

$$र = ११५·१६५ ज्या(भा + ७८°२४′) \cdots\cdots (ख)$$
$$रा = -१४७·६६५ ज्या २ भा \cdots\cdots (खा)$$

यदि भा की जगह ०,३०,६०,९०, इत्यादि मान उत्थापित किये जांय तो सरल करनेपर र, रा और काल-समीकरणके मान नीचेकी सारिणीके अनुसार होंगे :—

भा	र	रा	कालसमीकरण	निरयन सौरमास	अंग्रेजी तारीख
अंश	पल	पल	पल		
०	+१८·८	०	+१८·८	६ मीन	२३ मार्च
३०	+१८·२	−२१·४	−३·२	६ मेष	२२ अप्रैल
६०	+१२·४	−२१·४	−६	६ वृष	२३ मई
९०	+३·६	०	+३·६	८ मिथुन	२२ जून
१२०	−६	+२१·४	+१५·४	७ कर्क	२३ जुलाई
१५०	−१४·४	+२१·४	+७	६ सिंह	२२ अगस्त
१८०	−१८·८	०	−१८·८	६ कन्या	२२सितम्बर
२१०	−१८·२	−२१·४	−३६·६	५ तुला	२२ अक्टूबर
२४०	−१२·४	−२१·४	−३३·८	५ वृश्चिक	२१ नवम्बर
२७०	−३·६	०	−३·६	७ धनु	२२दिसम्बर
३००	+६·१	+२१·४	+२७·५	८ मकर	२१ जनवरी
३३०	+१४·४	+२१·४	+३५·८	८ कुम्भ	२० फरवरी
३६०	+१८·८	०	+१८·८	६ मीन	२३ मार्च

* इसकी रीति यह है :—

१९७६ वि० की मेष संक्रान्तिकालमें १९२२ के नाटिकल अलमैनकके अनुसार सूर्यका मध्यम सायन भोगांश २०°४४′५८″ था। मेष संक्रान्तिसे वसन्त पंचमीकी अर्द्धरात्रि तक २८४·४१६७ मध्यम सावन दिन होते हैं और सूर्यके मध्यमसायन भोगांशकी गति प्रतिदिन ०°·९८५६४७३३५३९ होती है। इनको गुणा कर देनेसे २८०°·३३४५६२५ अथवा २८०°२०′ ४″·४ आता है। इसको मेष संक्रान्ति कालके सायन भोगांशमें जोड़ देनेसे ३०१°५′२″·४ हुआ।

† किसी कोणमें ३६० अंश जोड़ने या घटानेसे उस कोणकी ज्या, और कोटिज्या इत्यादिके मानोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता और न उस कोणके मानमें ही कोई अन्तर पड़ता है।
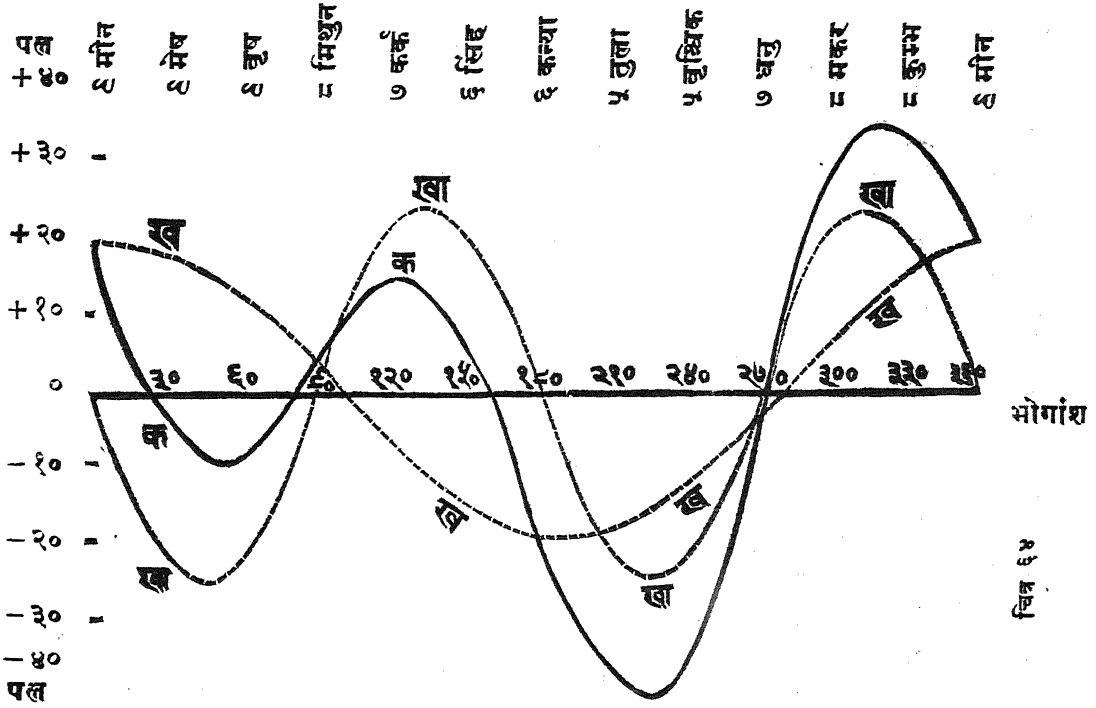
चित्र ६४

इस सारिणीमें सौर और अंग्रेज़ी तारीखें भी दे दी गयी हैं। इन्हीं तारीखोंमें काल-समीकरणके यह मान ठीक होते हैं। और तारीखोंके काल-समीकरण जाननेके लिए चित्र ६४ से काम लेना चाहिये। सौर मासकी जो तारीखें लिखी हैं वह संक्रान्तिके हिसाबसे है। जैसे ९ मीनका अर्थ है निरयन मीन संक्रान्तिसे ९वां दिन, ६ सिंहका अर्थ है निरयन सिंह संक्रान्तिसे ६ठां दिन।

पहले बतला दिया गया है कि काल-समीकरण सूर्यके नीचके मध्यम सायन भोगांश और सूर्यकी परम क्रान्तिपर अवलम्बित है जो स्थिर नहीं है इसलिए काल-समीकरणके जो मान सारिणी या चित्र ६४ में दिए हुए हैं वह भी सदा-के लिए शुद्ध नहीं है। इनमें सूक्ष्म अन्तर प्रति वर्ष हो रहा है। सूर्यका मध्यम सायन भोगांश प्रतिवर्ष १ कला के लगभग बढ़ रहा है। इस प्रकार ६० वर्षमें एक अंशका अन्तर हो जाता है। इसलिए ६० वर्षोंतक समीकरणके मान वही समझे जांय जो सारिणी या चित्र ६४ से विदित होते हैं तो बहुत भूल नहीं पड़ेगी।

अब वक्र खींचनेकी रीति संक्षेपमें समझायी जाती है (देखो चित्र ६४)

सूर्यके मध्यम सायन भोगांश भा को भुज (abscissa) और र, रा को कोटि (ordinate) माना गया है। भा की जगह ३०, ६०, ९० इत्यादि रखनेसे र, रा के जो मान आये हैं वह विन्दुओंसे प्रकट करके सबको मिला दिया गया है। इस से दो वक्र बन गये हैं। दो पासवाली ऊर्ध्वाधर (vertical) रेखाओंके बीचका अन्तर ३ अंश और दो पासवाली तिर्यक (horizontal) रेखाओंके बीचका अन्तर एक पल माना है। जब भा शून्य होता है तब र +१८·६ पल होता है और रा

शून्य होता है इसलिये शून्य भोगांशके सामने धनात्मक दिशा-में १९वीं तिर्यक रेखा पर र के लिए एक विन्दु बना दिया गया है। जब भा ३० अंश होता है तब र + १८.२ और र – २१.४ होते हैं। इसलिए ३० भोगांशके सामने धनात्मक दिशामें १८वीं तिर्यक रेखा पर एक विन्दु र के लिए और ऋणात्मक दिशामें २१वीं और २२ वीं तिर्यक रेखाओंके बीच एक विन्दु रा के लिए स्थिर किया गया है। इसी प्रकार अन्य विन्दु भी स्थिर किये गये हैं। र प्रकट करनेवाले जितने विन्दु हैं उनको मिला देनेसे ख ख ख ख वक्र बन गया है। इसी प्रकार रा प्रकट करने वाले विन्दुओंको मिला देनेसे खा खा खा खा वक्र बन गया है। इन दोनों वक्रोंकी सहायतासे क क क क वक्र इस प्रकार खींचा गया है—

शून्य भोगांश पर र=+१८.८ और रा=० । इन दोनोंका योग भी +१८.८ ही होगा इस लिए क क क क वक्र का विंदु भी +१८.८ पर होगा अर्थात् इस दशा में ख ख ख ख और क क क क वक्रोंके विंदु सामान्य होंगे। ३० भोगांश पर र=+१८.२ और रा=–२१.४। इन दोनोंका योग –३.२ है। इस लिए क क क क वक्रका विंदु ऋणात्मक दिशा में तीसरी तिर्यक रेखा पर होगा। ६० भोगांश पर र=+१२.४ और रा=–२१.४। इन दोनोंका योग –९ है। इस लिए क क क क वक्र का विंदु ऋणात्मक दिशामें ९वीं तिर्यक रेखा पर होगा। ९० भोगांश पर र=+३.९ और रा= शून्य इस लिए क क क क वक्र का विंदु धनात्मक दिशा में ४ थी तिर्यक रेखा पर होगा। यह विंदु क क क क और ख ख ख ख दोनों वक्रों पर होगा, इत्यादि।

क क क क वक्र य भुज को (Axis of x को) जहां चार विंदुओं पर काटता है वहां यह प्रकट होता है कि काल-समीकरण शून्य है। इन समयों में सूर्यका मध्यम भोगांश क्रमसे २३, ८२, १६० और २७३.५ के लगभग होते हैं। यह भोगांश क्रमसे मेषकी २ री, मिथुनकी १ ली, सिंहकी १६ वीं और धनु की १० वीं तिथियोंको होते हैं। इस लिए इन तिथियों में काल-समीकरण शून्य होता है। इसका अर्थ यह है कि इन तिथियोंमें स्पष्ट काल और मध्यमकाल एक ही होते हैं। १७वीं तुलाको काल-समीकरण –४१ पल है। इसका अर्थ यह है कि इस तिथिको स्पष्ट सावन कालमें अथवा धूप-घड़ीके समयमें ४१ पल घटानेसे मध्यमकाल (यांत्रिक घड़ीका समय) ज्ञात होगा। इसी प्रकार मकर की २९ वीं तिथिको काल-समीकरण +३६ पल है, अर्थात् इस दिन धूप-घड़ीके समयमें ३६ पलजोड़ने से मध्यम काल ज्ञात होगा।

अब यह सिद्ध हो गया कि जो लोग रेल या तार-घरसे मिली हुई घड़ीके समयको ही धूप-घड़ीका भी समय समझ कर लग्न निकालते हैं उनका लग्न शुद्ध नहीं होता क्योंकि धूप और मध्यम घड़ियोंमें कभी कभी ४१ पल अथवा १६ मिनटका अंतर रहता है। इसके सिवा देशान्तरके कारण भी अन्तर पड़ता है क्योंकि भारतवर्षके रेल या तार-घरकी घड़ियोंका समय ग्रीनिचके* मध्यम समयसे ५½ घंटा अथवा १३ घड़ी

---

* यह ऊर्ध्वाधर और तिर्यक रेखाएं चित्रमें नहीं दिखलायी गई हैं। इनका अनुमान भोगांशके अंकों और बग़लमें दिये हुए धनात्मक या ऋणात्मक १०, २०, ३० के अंकोंसे किया जा सकता है।

* कुछ लोग समझते हैं कि तार-घरकी घड़ीमें मदरासका समय रहता है परन्तु यह भ्रम है। मदरासमें एक वेधशाला अवश्य है और पहले

४५ पल आगे रखा जाता है। इसलिए यह समय केवल उन स्थानोंके मध्यम कालके अनुसार ठीक होता है जो ग्रीनिचसे ५½ घंटा अथवा ८२°३०′ पूर्व हैं। मिरजापूर ग्रीनिचसे ८२° ३८′१०″ पूर्व है। इस लिए मिरजापुरका मध्यम काल भारतीय मध्यम कालसे ८′१०″ अथवा ८ असु या सवापल अधिक है। यदि सवा पलका विचार न किया जाय तो कहा जा सकता है कि भारतीय मध्यम काल जो रेलवे और तार-घरों में प्रयोग किया जाता है मिरजापुरके मध्यम कालके समान होता है। इस लिए पूर्वके स्थानोंके मध्यम काल जाननेके लिए देशान्तरका संस्कार जोड़ना चाहिये और पच्छिमके स्थानोंका मध्यकाल जाननेके लिए देशान्तरका संस्कार घटाना चाहिए। यह नीचेके उदाहरणोंसे स्पष्ट होगाः—

उदाहरण १—प्रयागमें जिस समय सूर्योदयके उपरान्त धूप-घड़ीके अनुसार १६ घड़ी १५ पल बीतता है उस समय रेलवे की घड़ीमें क्या समय होगा जब सूर्यका निरयन भोगांश उदय कालमें ३रा५°१′६″ हो ?

इस दिन सूर्य कर्क राशिके ६-ठे अंश पर है इस लिए कर्ककी ६ ठीं तिथि है। सारिणीमें कर्ककी ७ वीं तिथिको काल समीकरण + १५.४ पल है। इस लिए सारिणीसे केवल यही पता लग सकता है कि इस दिन-काल समीकरण + १५ पलके लगभग है। चित्र ६४ से जहां काल-समीकरणका वक्र दिया हुआ है यह पता चल सकता है कि कर्ककी ६ ठीं तिथिको काल-समीकरण १५.४ पलसे अधिक था या कम। देखनेसे स्पष्ट है कि ७ कर्कके दिन क क क क वक्रके विंदुकी जो कोटि है उससे कम ७ कर्कके पहलेके दिनों में है इस लिए यह निश्चय होता है कि ६ कर्कको काल-समीकरण + १५.४ पलसे कुछ कम है और ४ कर्कको यह ठीक + १५ पल है। इस लिए अभीष्ट काल-समीकरण + १५.३ पलके लगभग है। यह धनात्मक है इस लिए १६ घड़ी १५ पलमें इसे जोड़ना चाहिए। इस लिए जब प्रयागमें धूप-घड़ीके अनुसार ६ कर्कको १५ घड़ी १६ पल होता है तब प्रयागका मध्यम काल १६ घड़ी ३०.३ पल होगा।

परन्तु प्रयागका मध्यम काल भारतीय मध्यम कालसे कम होता है क्योंकि प्रयागका देशान्तर ग्रीनिचसे ८१°५५′१५″ पूर्व है और भारतीय मध्यम काल ग्रीनिचसे ८२°३०′ पूर्व होता है। इस लिए भारतीय मध्यम कालका देशान्तर प्रयागके देशान्तरसे ३४′४५′ पूर्व है। जब देशान्तरमें १° का अंतर होता है तब समयमें ४ मिनट या १० पलका अंतर होजाता है और जब देशान्तरमें १ कलाका अंतर होता है तब समयमें १ असुका अंतर पड़ता है इसलिए जब ३४′४५″ का अंतर है तब समय में ३५ असु या ६ पल के लगभग अंतर पड़ेगा। भारतीय मध्यम कालके देशान्तरसे प्रयाग पच्छिम में है इस लिए भारतीय मध्यमा काल प्रयागके मध्यम कालसे आगे है। इस लिए अभीष्ट काल में भारतीय मध्यम काल १६ घड़ी ३०.३ पल + ६ पल = १६ घड़ी ३६ पल के लगभग होगा। यह ६ घंटा ३८ मिनट २४ सेकंड के समान है।

इस दिन सूर्योदय से मध्याह्न तक का स्पष्ट सावन काल १६ घड़ी ४१ पल है (देखो पृष्ठ ४८५) जो ६ घंटा ४१ मिनट १२ सेकंड है। परन्तु मध्याह्न ठीक १२ बजे होता है इस लिए १२ घंटा — ६ घंटा ४१ मिनट १२ सेकंड = ५ घंटा १८ मिनट ४८ सेकंड पर सूर्य का उदय हुआ होगा।

वही समय सब घड़ियों में रखा जाता था। परन्तु अब नियम बदल दिया गया है।

सूर्योदय का स्पष्ट काल = ५ घं० १८ मि० ४८ से०

सूर्योदयसे इष्ट समयतक का मध्यम

काल = ६ घं० ३८ मि० २४ से०

∴ रेल घड़ीका समय = ११ घं० ५७ मि० १२ से०

अर्थात् इस समय रेलकी घड़ी में ११ बजकर ५७ मिनट और १२ सेकंड होगा।

उदाहरण २—यदि मध्याह्नके बाद घड़ीमें जो रेलकी घड़ीसे मिली हुई है ५ बजकर २४ मिनट हुए हों तो काशी और प्रयाग की धूप घड़ियों में क्या समय होंगे ? इस दिन सूर्योदय कालमें सूर्य का भोगांश ६रा१५°२३'३४" है।

सूर्य तुला राशिके १६वें अंशपर है इसलिए इस दिन तुला नामक सौर मासकी १६वीं तिथि है। चित्र ६४ से प्रकट है कि तुलाकी ५वीं तिथिको काल-समीकरण – ३७.५ पल और २० वीं तिथि को – ४१ पल है। इससे सिद्ध होता है कि १५ दिन में – ३.५ पलके लगभग कालसमीकरण बढ़ा है। इसलिए ११ दिनमें अर्थात तुलाकी १६वीं तिथि को कालसमीकरण – २.७ बढ़कर – ४०.२ पल हो जायगा जो – १६ मिनटके लगभग है। यह बतलाया गया है कि

मध्यम काल = स्पष्ट सावन काल + काल समीकरण

∴ ५ घंटा २४ मिनट = स्पष्ट सावनकाल + (– १६ मिनट)

∴ स्पष्ट सावनकाल = ५ घंटा २४ मिनट + १६ मिनट
= ५ घंटा ४० मिनट

यह समय ग्रीनिचसे ८२½ अंश पूर्वके देशान्तर-रेखा पर स्थित स्थानोंकी धूप घड़ियों में होगा क्योंकि भारतवर्ष भरके तार घरों और रेलके स्टेशनोंकी घड़ियां इसी देशान्तर रेखाके मध्यमकालसे मिली रहती हैं।

काशी ग्रीनिचसे ८३°३'४" अथवा ८३°३' पूर्व है जो ८२° ३०' से ३३' अधिक है इसलिए काशी का स्पष्ट सावनकाल उपर्युक्त सावनकालसे ३३ असु अथवा ५½ पल अधिक होगा जो २ मिनट १२ सेकंड अथवा २ मिनटके समान है। इसलिए इस समय काशीकी धूप-घड़ीमें ५ बजकर ४२ मिनट हुआ रहेगा।

प्रयागका देशान्तर ८१°५५'१५" पूर्व है। इसलिए यह ८२°३०' से ३४'४५" पच्छिम है। इसलिए यहांकी धूप-घड़ी ३४¾ असु या २ मिनट १९ सेकंड पीछे होगी। इसलिए प्रयाग की धूप घड़ीमें इस समय ५ घंटा ३७ मिनट ४१ सेकंड होगा।

उदाहरण ३—दूसरे उदाहरणमें जो समय दिया हुआ है उस समय प्रयागमें क्या लग्न होगा ?

पहले सूर्योदय का स्पष्टकाल जानना आवश्यक है। इसके लिए प्रयाग का चरकाल जानना चाहिए।

सूर्यका निरयनभोगांश = ६रा१५°२३'३४"

१९८२ वि० की १६ तुला को

अयनांश = २२°४१'६" [दे० पृ० ३७२

∴ सूर्यका सायन भोगांश = ७रा८°४'४०"
= ७रा८°५'
= ६ राशि + ३८°५'

∴ सूर्य की क्रान्तिज्या = ज्या ३८°५' × ज्या २३°२७'
[दे० पृ० १८२
= .६१६८ × .३९७९
= .२४५४

∴ क्रान्ति = १४°१२′

सूर्य का सयन भोगांश ६ राशिसे अधिक है, इसलिए यह दक्षिण क्रान्ति है।

चरज्या = स्परे अक्षांश × स्परे क्रान्ति
= स्परे२५°१५′ × स्परे १४°१२′
= ·४७५२ × ·२५३०
= ·१२०२

∴ चरांश = ६°५४′

∴ चर पल = ६६ पल
= २७ मिनट ३६ सेकंड

क्रान्ति दक्षिण है इसलिए धूपघड़ीमें ६ बजकर २७ मिनट ३६ *सेकंड पर प्रयागमें सूर्यका उदय होगा। परन्तु इस दिन काल समीकरण – १६ मिनट है। इसलिए सूर्योदय कालमें प्रयागका मध्यमकाल = ६ बजकर २७ मिनट ३६ सेकंड – १६ मिनट

= ६ बजकर ११ मिनट १६ सेकंड

प्रयागके सूर्योदय कालमें भारतवर्षका मध्यमकाल क्या होगा यह जानने के लिए २ मिनट १६ सेकंड और जोड़ना होगा क्योंकि प्रयाग २ मिनट १६ सेकंड पच्छिम है इसलिए यहांका मध्यम या स्पष्टकाल भारतवर्षके मध्यम कालसे इतना ही पीछे होगा, इसलिए प्रयागमें सूर्योदयके समय रेलकी घड़ीमें ६ बजकर १३ मिनट ३५ सेकंड हुआ रहेगा।

सूर्योदयसे मध्यम मध्याह्नकाल १२ घंटा – ६ घंटा १३ मिनट ३५ सेकंड अथवा ५ घंटा ४६ मिनट २५ सेकंड होता है और संध्याके ५ बजकर २४ मिनट तक ११ घंटा १० मिनट २५ सेकंड होता है। यह २७ घड़ी ५६ पलके समान है। इसलिए इष्टकाल में सूर्योदयोपरान्त २७ घड़ी ५६ पल है। यह मध्यम सावनकाल है। इसको नाक्षत्रकालमें बदलकर लग्न जाननेमें सुविधा होगी।

६ सावन घड़ी = ६ नाक्षत्र घड़ी + १ नाक्षत्र पल (पृष्ठ ४७६)

∴ २८ सावन घड़ी = २८ नाक्षत्र घड़ी + ५ नाक्षत्रपल

∴ २७ घड़ी ५६ पल (सावन)
= २७ घड़ी ५६ पल + ५ पल (नाक्षत्र)
= २८ घड़ी १ पल (नाक्षत्र)

उदयकालमें सूर्यका निरयन भोगांश = ६रा १५°२३′३४″
= ६रा १५°२४′

इसलिए उदयकालमें तुला राशिका १५°२४′ लग्न है। प्रयागमें तुला राशिका उदयकाल ५ घड़ी ४२ पल है।

जब ३०° का उदय ५ घड़ी ४२ पलमें होता है
तब १५° „ २ घड़ी ५१ पलमें होगा
और ३०′ „ ५ पल ४२ वि० में होगा
६′ „ १ पल ८ वि० में होगा

∴ १५°२४′ का उदय २ घड़ी ५५ पल ३४ वि० में होगा

अर्थात् तुलाका भुक्तकाल = २ घड़ी ५६ पलके लगभग

∴ तुलाका भोग्यकाल = २ घड़ी ४६ पलके लगभग

वृश्चिकका उदयकाल	= ५	„ ४४	„
धनुका „	५	„ १५	„
मकरका „	४	„ २५	„
कुंभका „	३	„ ४८	„
मीनका „	३	„ ४१	„
कुलका योग	२५	„ ३९	„

* वर्तन (Refraction of light) के कारण सूर्योदय इससे भी कुछ पहले होता है जिसकी चर्चा आगेकी जायगी।

अर्थात् सूर्योदयसे २५ घड़ी ३६ पल तक मीन राशिका उदय हो चुका।

इस लिए इष्टकालमें मेष राशि उदय हो रही है इस लिए यही उदय लग्न है। इसीको साधारणतः लग्न कहते हैं। यह जाननेके लिए कि मेष राशिका कौन विंदु लग्न है अनुपातसे काम लेना चाहिये।

इष्टकाल =२८ घड़ी १ पल
मीनके अंतका उदयकाल २५ घड़ी ३६ पल
मेषका भुक्तकाल =२ घड़ी २२ पल
=१४२ पल

मेषका उदयकाल =४ घड़ी ४ पल=२४४ पल

२४४ पल:१४२ पल::३० अंश:भुक्तांश

$$\therefore \text{भुक्तांश} = \frac{१४२ \times ३०}{२४४} = १७^\circ २७.'५$$

$\therefore$ मेषका $१७^\circ २७'.५$ लग्न है।

उदाहरण ४—यदि प्रयागमें सूर्योदयकालके स्पष्ट सूर्यका निरयन भोगांश $६^{रा} १५^\circ २३' ३४''$ हो तो उस दिन उज्जैनमें जिस समय सूर्य याम्योत्तरवृत्त पर आवेगा उस समय भारतीय मध्यमकाल क्या होगा ?

उज्जैन ग्रीनिचसे $७५^\circ ४६'$ पूर्व देशान्तर और $२३^\circ ९'$ उत्तर अक्षांश पर है। प्रयागका देशान्तर $८१^\circ ५५' १५''$ और उत्तर अक्षांश $२५^\circ २५'$ है।

उज्जैन प्रयागसे $८१^\circ ५५' १५'' - ७५^\circ ४६' = ६^\circ ९' १५''$ पच्छिम है। इस लिए उज्जैनका स्पष्ट मध्यान्ह प्रयागके स्पष्ट मध्यान्हसे २४ मिनट ३७ सेकंड पीछे होगा। तीसरे उदाहरणमें बतलाया गया है कि प्रयागमें धूपघड़ीके अनुसार ६ बज कर २७ मिनट ३६ सेकंड पर सूर्योदय होगा। इस लिए सूर्योदय के समय

नतकाल=१२ घंटा – ६ घं० २७ मि० ३६ से०.
=५ घंटा ३२ मि० २४ से०

अर्थात् सूर्योदयके ५ घंटा ३२ मिनट २४ सेकंड उपरान्त स्पष्ट मध्याह्न होगा। परन्तु सूर्योदयके समय भारतीय मध्यमकाल ६ घंटा १३ मिनट ३५ सेकंड होता है इस लिए प्रयागमें स्पष्ट मध्यान्हके समय भारतीय मध्यमकाल=६ घंटा १३ मि० ३५ से० + ५ घं० ३२ मि० २४ से०

=११ घंटा ४५ मिनट ४९ सेकंड

उज्जैन प्रयागसे २४ मिनट ३७ सेकंड पच्छिम है इस लिए यहां स्पष्ट मध्यान्ह प्रयागके स्पष्ट मध्यान्हसे २४ मिनट ३७ सेकंड पीछे होगा। परन्तु प्रयागके स्पष्ट मध्यान्हके समय भारतीय मध्यमकाल ११ घंटा ४५ मिनट ४९ सेकंड होता है, इस लिए उज्जैनके स्पष्ट मध्यान्हके समय रेलकी घड़ीमें १२ बजकर १० मिनट २६ सेकंड हुआ रहेगा।

पृष्ठ १२० की टिप्पणीमें लिखा गया है कि किरणोंके झुक जानेके कारण गणनाके समयसे सूर्योदय कुछ पहले होजाता है। इस लिए यह बतलाना आवश्यक है कि किरणोंका झुकना क्या है और इससे दिनके परिमाणमें जो अन्तर पड़ जाता है उसका संशोधन कैसे करना चाहिये।

वर्तन (REFRACTION OF LIGHT)

हवा, जल, कांच, अबरक ऐसे पदार्थ हैं जिनमें प्रकाश घुस कर दूसरी ओर चला जाता है। इस लिए ये पारदर्शक

(Transparent) कहलाते हैं। जब प्रकाश एक समजातीय (homogeneous) पारदर्शक पदार्थसे दूसरे समजातीय पारदर्शक पदार्थमें जाता है तब उसकी दिशा वही नहीं रहती जो पहले पारदर्शक पदार्थमें होती है। इस घटनाको किरणका वर्तन या केवल वर्तन कहते हैं। इसको कुछ लेखकोंने किरण-वक्रीभवनका नाम दिया है परन्तु कई बातोंकी सुविधाके विचारसे इसको वर्तन कहना अच्छा जान पड़ता है। इस से किसी वस्तुके यथार्थ और स्पष्ट स्थानोंमें बड़ा अन्तर देख पड़ता है। कभी कभी वस्तुएं विचित्र रूप धारण कर लेती हैं। परन्तु इन सब घटनाओंकी चर्चा करनेके लिए यह स्थान उचित नहीं हैं। यहां केवल उतना ही बतलाया जायगा जितना ज्योतिषसे संबंध रखता है। अनुभव के लिए एक छोटा सा उदाहरण देना पर्याप्त होगाः—

पानी भरा हुआ गिलास धूपमें रख दो और देखो कि गिलासका कितना भागधूप-से प्रकाशित होता है। पानी गिरा कर गिलासको फिर उसी जगह रख दो। इसबार गिलासका कुछ कम भाग प्रकाशित होगा। चित्र ६५ में ग गा एक गिलास है। यदि पानी भर कर यह धूपमें रखा जाय तो ग से भ तक प्रकाशित देख पड़ता है अर्थात् यह देख पड़ता है कि धूप गिलासके पेंदेके किनारे तक भी पहुँचती है। परन्तु पानी गिराकर गिलासको फिर वहीं रख देने पर देख पड़ता है कि
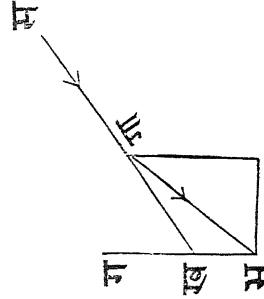
चित्र ६५

अब गिलासका केवल ग ख भाग प्रकाशित रहता है, पेंदे तक धूप जाती ही नहीं। इससे यह प्रकट होता है कि हवामें यदि किरण स गा ख दिशामें होती है तो पानीमें घुसते ही वह गा भ दिशामें हो जाती है।

यदि प्रकाशकी कोई किरण स प एक समजातीय पारदर्शक पदार्थ ह ह से दूसरे समजातीय पारदर्शक पदार्थ ज ज में प विन्दुसे प्रवेश करके पन दिशामें चलती हुई न विन्दुसे वह फिर ह ह पदार्थमें निकल आती है तो नसा और सप किरणें समानान्तर होती हैं। सप को आपात किरण (incident ray) पन को वर्तित किरण (refracted ray) और नसा को निर्गत किरण (emergent ray) कहते हैं। यदि प विन्दुपर लपला लम्ब (Normal) हो तो सपल कोण को आपातकोण (angle of incidence) और नपला कोण को वर्तितकोण (angle of refraction) कहते हैं। आपात और वर्तित किरणों तथा प्रवेश विन्दुका लम्ब एक ही तलमें रहते हैं।

आपात और वर्तित कोणोंमें जो परस्पर सम्बन्ध होता है वह नीचेके सूत्रसे प्रकट किया जाता है—

$$\frac{\text{आपतकोणकी ज्या}}{\text{वर्तितकोणकी ज्या}} = \text{स्थिर संख्या}$$

यदि आपातकोण को अ, वर्तितकोण को व और स्थिर संख्या को ध से सूचित किया जाय तो उपर्युक्त सूत्रका सरल रूप यह होगा

$$\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या व}} = \text{ध; अथवा ज्या अ} = \text{ध} \times \text{ज्या व}$$

अ के बदलनेसे व भी इस तरह बदलेगा कि इन दोनोंकी ज्याओंका सम्बन्ध सदैव ध के समान होगा। ध का परिमाण

दो पारदर्शक पदार्थोंके गुणके अनुसार बदलता है। इसको पहले पारर्शक पदार्थ से दूसरे पारदर्शक पदार्थका वर्तनाङ्क (index of refraction) कहते हैं। जब प्रकाश पतले पारदर्शक पदार्थसे घने पारदर्शक पदार्थमें जाता है तब वर्तित किरण लम्बकी ओर झुक जाती है अर्थात् वर्तितकोण आपात कोणसे छोटा होताहै। परन्तु जब प्रकाश घने पदार्थसे पतले पदार्थमें जाता है तब वह लम्बसे दूर होजाता है। चित्र ६६ में
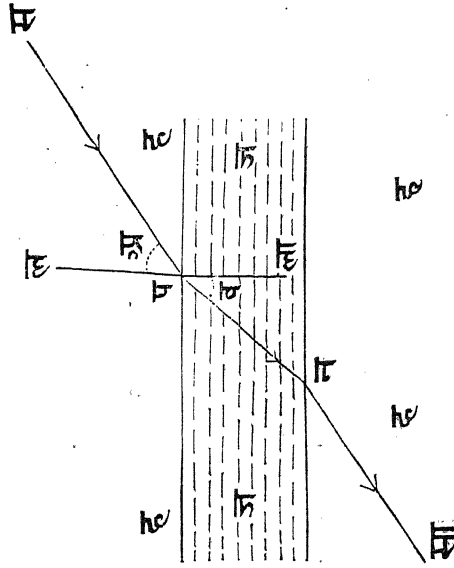
चित्र ६६

जज पदार्थ हह पदार्थसे घना है इसलिए जज में वर्तित किरण लम्बकी ओर हो गयी है और जज से निकलकर हह में आते समय वह लम्बसे दूर हो गयी है। यदि प्रकाशकी दिशा उलट जाय अर्थात् नज में इसकी दिशा नप हो तो हह में इसकी दिशा पस हो जायगी। कई पारदर्शक पदार्थोंमें होता हुआ प्रकाश जिस जिस वक्र या टूटी हुई रेखासे जाता है यदि दिशा उलट जाय तो उसी उसी रेखासे वह लौट भी आता है।

मानलो हह, हाहा, हिहि तीन पारदर्शक पदार्थोंके स्तर हैं जो परस्पर समानान्तर हैं।

चित्र ६७

यदि हह से हाहा का वर्तनाङ्क धा हो और हह से हिहि का वर्तनाङ्क धि हो। तो हाहा से हिहि के वर्तनाङ्क का ज्ञान सहज ही हो सकता है। यह परीक्षासे अनुभव किया जा सकता है कि यदि प्रकाश हह से हा हा और हि हि होता हुआ फिर ह ह में प्रवेश करे तो इसकी जो दिशा पहले ह ह में होती है वही अन्तमें भी होती है अर्थात् ह ह और हा हा के प्रवेश विंदु पर जो अपात कोण बनता है वही हि हि से ह ह में निकलते समय निर्गतविंदु पर भी बनता है। वर्तन के नियमके अनुसार

ज्या अ=धा × ज्या वा; ज्या अ=धि × ज्या वि

∴ धा × ज्या वा=धि × ज्या वि

अथवा $\frac{\text{ज्या वा}}{\text{ज्या वि}} = \frac{\text{धि}}{\text{धा}}$

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि एक पदार्थ ह ह से दूसरे पदार्थ हा हा का वर्तनाङ्क धा हो और पहले ही पदार्थसे तीसरे पदार्थ हि हि का वर्तनांक धि हो और यदि हा हा से हि हि में जानेवाली किरणका आयात कोण वा और वर्तित कोण वि हो तो दूसरे पदार्थ हा हा से तीसरे पदार्थ हि हि में जाने वाली किरणका वर्तनाङ्क धि ÷ धा होगा।

ज्योतिष संबन्धी वर्तन—खगोल पिंडोंसे जो प्रकाश पृथ्वीपर आता है उसकी किरणें जब वातावरणमें घुसती हैं तब इनमें वर्तन होता है। ऐसे वर्तनको ज्योतिष संबन्धी वर्तन (Astronomical refraction) कहते हैं। वातावरणका घनत्व ऊपरसे नीचेतक एकसा नहीं है। जैसे जैसे पृथ्वीसे दूरी अधिक होती जाती है तैसे तैसे वातावरण पतला होता जाता है। इसलिए कुल वातावरण सजातीय नहीं है। खगोलीय पिंडसे आती हुई किरण जब वातावरणमें प्रवेश करती है तब पहले बहुत पतले स्तरमें जाती है और ज्यों ज्यों पृथ्वीके निकट पहुँचती आती है त्यों त्यों कम घनेसे अधिक घने स्तरमें आनेके कारण वह लम्बकी ओर कुछ कुछ झुकती हुई पृथ्वीपर पहुँचती है। इसलिए वातावरणमें इसका मार्ग वक्र होता है। पृथ्वीपर पहुँचते समय किरणकी जो दिशा होती है उसीमें खगोलीय पिंड देख पड़ता है।

किसी तारेसे कोई किरण त क की दिशामें क तक सीधी आकर क स्थानपर वातावरणमें प्रवेश करती है। इस स्थानसे इसकी राह सीधी नहीं रहती। क से द्रष्टाके स्थान द तक किरणको वातावरणके भिन्न भिन्न स्तरोंमें घुसना पड़ता है जो क्रमशः घनी होती जाती हैं। इसलिए किरण भी क्रमशः वक्र होती जाती है और अन्तमें द तक पहुँच जाती है। इस वक्रके द विन्दुपर द ति स्पर्शरेखा है। द्रष्टाको जान पड़ता है कि
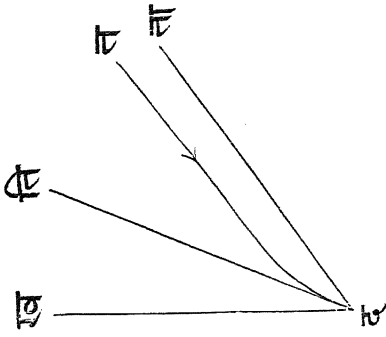
चित्र ६८

तारा द ति दिशामें है। यदि द से द ता रेखा क त के समानान्तर खींची जाय तो द ता* दिशामें तारा उस समय देख पड़ता जब किरणको झुका देनेवाला वातावरण न होता। इसलिए वातावरणका प्रभाव यह हुआ कि तारेका स्पष्ट स्थान ता से ति हो गया अर्थात् तारा खस्वस्तिक ख की ओर कुछ चढ़ा हुआ देख पड़ता है। इसलिए वर्तनके कारण खगोलीय पिंडका नतांश कुछ कम हो जाता है और उन्नतांश उतना ही अधिक हो जाता है। चित्रमें इस वर्तनका परिमाण ता द ति कोणके समान है। त का यथार्थ नतांश ता द ख और स्पष्ट नतांश ति द ख

* बिलकुल शुद्ध दिशा द त है। परन्तु त तारा इतनी दूर है कि त द ता कोण शून्यके समान है।

है। जिस समय खगोलीय पिंड क्षितिजमें रहता है उस समय उसका वर्तन सबसे अधिक ३५′ के लगभग होता है।

अब यह प्रकट हो गया होगा कि वातावरणके कारण किसी खगोलीय पिंडका स्पष्ट स्थान वही नहीं होता जो यथार्थमें होना चाहिए। इसलिए यदि वर्तनका संस्कार न किया जाय तो गणनामें कुछ भूल रह जाती है। नीचे एक सारिणी* दी जाती है जिससे यह जान पड़ेगा कि वर्तनके कारण किसी तारेका नतांश कितना कम हो जाता है। यह सारिणी उस समयकी है जिस समय वातावरणका दबाव ३० इञ्च ऊँचे पारेके दबावके समान होता है और तापक्रम ५०° फारनहैटके समान होता है। इससे भिन्न अवस्थामें कुछ अंतर हो जाता है।

स्पष्ट नतांश	वर्तन	स्पष्ट नतांश	वर्तन	स्पष्ट नतांश	वर्तन
०°	०″	३५°	४१″	७०°	२′३६″
५°	५″	४०°	४६″	७५°	३′३४″
१०°	१०″	४५°	५८″	८०°	५′१६″
१५°	१६″	५०°	१′९″	८५°	९′५१″
२०°	२१	५५°	१′२३″	८७°	१४′२३″
२५°	२७″	६०°	१′४१″	८८°	१८′१६″
३०°	३४″	६५°	२′४″	८८°४०′	२२′२३″
				९०°	३५′लगभग

इस सारिणीसे किसी तारेका यथार्थ नतांश सहज ही जाना जा सकता है। जैसे यदि किसी तारेका स्पष्ट नतांश ६०° हो तो इसका यथार्थ नतांश ६०°१′४१″ होगा। यह भी ध्यान देनेकी बात है कि जो तारा ठीक सिरके ऊपर (खस्वस्तिकपर) रहता है उसका स्पष्ट और यथार्थ स्थान एक ही होता है और यदि स्पष्ट नतांश ४५° से कम हो तो उसका वर्तन १′ से अधिक नहीं होता है और यदि स्पष्ट नतांश २०° से अधिक न हो तो प्रति १° नतांशके लिए १″ वर्तन होता है।

वातावरण सम्बन्धी वर्तनकी साधारण मीमांसा—

सरलताके लिए यह समझ लेना अच्छा होगा कि पृथिवी पूर्ण गोल है और वातावरणमें नीचेसे ऊपरतक पतले पतले
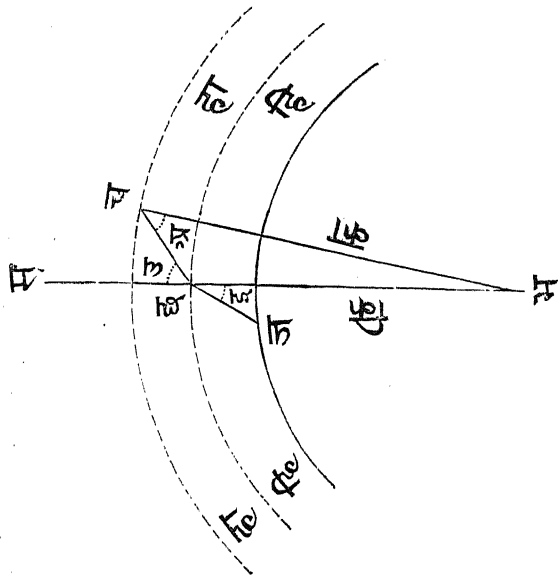
चित्र ६६

स्तर हैं जिनके केन्द्र भी वही हैं जो पृथ्वीका केन्द्र है। यह भी

* R.S. Ball's Spherical Astonomy page 120.

मान लेना चाहिए कि प्रत्येक स्तरका वर्तनाङ्क उस स्तरमें सब जगह स्थिर है परन्तु एक स्तरका वर्तनाङ्क दूसरे स्तरके वर्तनाङ्कसे भिन्न है।

चित्र ६९ में ऐसे दो स्तरों हा हा और हि हि का सम्बन्ध दिखलाया जाता है। मान लो कि जब प्रकाश शून्य (aether) से हा हा में आता है तब इसका वर्तनाङ्क धा और जब प्रकाश शून्यसे हि हि में आता है तब इसका वर्तनाङ्क धि होता है। मान लो कि हा हा में किरणकी दिशा च छ है और हि हि में इसी किरणकी दिशा छ ज हो जाती है।

यदि भ पृथ्वीका केन्द्र हो और भ च=का, भ छ=कि, ∠ भ च छ=आ, ∠भ छ ज=इ और ∠ स छ ज=उ हो, तो

पृष्ठ १२७ के अनुसार

$$\frac{\text{ज्या उ}}{\text{ज्या इ}}=\frac{\text{धि}}{\text{धा}} \therefore \text{ज्या उ}=\text{ज्या इ}\times\frac{\text{धि}}{\text{धा}}$$

परन्तु भ च छ त्रिभुजमें

$$\frac{\text{ज्या उ}}{\text{का}}=\frac{\text{ज्या आ}}{\text{कि}} \therefore \text{ज्या उ}=\text{ज्या आ}\times\frac{\text{का}}{\text{कि}}$$

$$\therefore \text{ज्या इ}\times\frac{\text{धि}}{\text{धा}}=\text{ज्या आ}\times\frac{\text{का}}{\text{कि}}$$

अथवा $\text{कि}\times\text{धि}\times\text{ज्या इ}=\text{का}\times\text{धा}\times\text{ज्या आ}$

यह नियम किसी दो पासवाले स्तरोंके लिये ठीक है। इस प्रकार यह साधारण नियम निकल आता है—

यदि वातावरण गोल सजातीय स्तरोंका बना हुआ मान लिया जाय जिनका केन्द्र वही हो जो पृथ्वीका केन्द्र है परन्तु जिनका घनत्व एक दूसरेसे भिन्न होता जाता है तो जब प्रकाशकी किरण एक स्तरसे दूसरे स्तरमें घुसती हुई आगे बढ़ती है तब किसी स्तरके वर्तनाङ्क, त्रिज्या और वर्तित कोणकी ज्याके गुणनफल स्थिर होते हैं।

इस नियमको नीचेके सूत्रसे भी प्रकट किया जा सकता है-

$$\text{का}\times\text{धा}\times\text{ज्या आ}=\text{क}\times\text{ध}\times\text{ज्या न}\ldots\ldots(१)$$

जहां का, धा और आ क्रमशः किसी स्तरकी त्रिज्या, वर्तनांक और वर्तित कोण और क, ध, न क्रमशः पृथ्वीकी त्रिज्या, सबसे नीचेके स्तरके वर्तनांक और वर्तित कोण हैं। भूतलको छूनेवाले स्तरमें जो वर्तित कोण है वह प्रायः नतांशके समान होता है। इसलिए न खगोलीय पिंडका स्पष्ट नतांश भी है।

यदि इन स्तरोंको बहुत पतला मान लिया जाय तो किरणका मार्ग टूटी हुई रेखाके स्थानमें वक्र रेखा होगी। मान लो
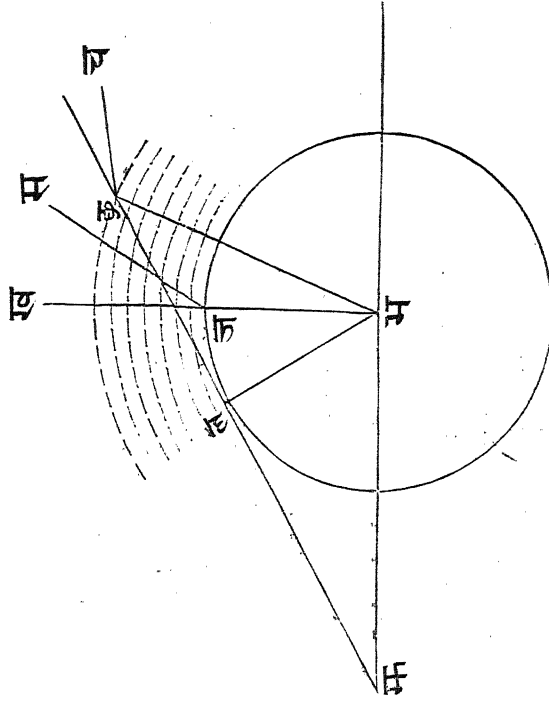
चित्र ७०

च छ ज वह वक्र है जिसपर किरण इन पतले पतले स्तरोंमें क्रमशः घुसती हुई पृथ्वीतलके ज विन्दुपर पहुँचती है। इस वक्रके छ विन्दुपर छ ल झ एक स्पर्शरेखा है। किरण छ विन्दुपर जिस स्तरमें घुसती है उसका वर्तनांक धा और त्रिज्या का है। यह स्पर्शरेखा वक्र बनानेवाली किरणसे कुछ दूरतक एक हो जाती है इसलिए इस विन्दुपर जो वर्तित कोण बनता है वह छ ल भ कोणके समान होता है। मान लो यह आ के समान है, जब किरण वातावरणके सबसे ऊपरवाले स्तरमें घुसती है तब इसकी दिशा वही होती है जो शून्यमें उसकी यथार्थ दिशा है। जिस समय किरण पृथ्वीतलके विन्दु ज पर पहुँचती है उस समय इस विन्दुपर वक्रकी जो स्पर्शरेखा ज स होती है वह उस दिशाको सूचित करती है जिसमें किरण द्रष्टाकी आंखमें पहुँचती है। यदि ख ज स्थानका खस्वस्तिक हो तो यही ख ज स कोण तारेका स्पष्ट नतांश होता है। सबसे ऊपरवाले स्तरमें वक्रकी जो स्पर्शरेखा होती है तथा पृथ्वीतलके विन्दुपर वक्रकी जो स्पर्शरेखा होती है उन दोनोंके बीचमें जो कोण होता है वही ज्योतिष-सम्बन्धी वर्तन कहलाता है। इसीके जाननेसे किसी तारेके स्पष्ट और यथार्थ स्थानकी जानकारी हो सकती है। इसीको साधारणतः वर्तन कहते हैं। यदि इसका परिमाण व माना जाय तो ता(व) अर्थात् व की तात्कालिक गति पासवाले किसी दो स्तरोंके वर्तनोंका अन्तर और ता (धा) अर्थात् वर्तनांककी तात्कालिक गति उन्हीं दो स्तरोंके वर्तनांकोंका अन्तर हुआ। यदि आ और इ इन दोनों स्तरोंके वर्तित कोण तथा धा, धि इनके वर्तनांक

आ − इ=ता (व) और धि—धा = ता (ध)

∴ इ=आ — त (व) और धि=धा + त (धा)

परन्तु का × धा × ज्या आ=कि × धि × ज्या इ

यदि वातावरणके दो पतले स्तर बहुत पास हों तो उनकी त्रिज्याएँ प्रायः समान होती हैं इसलिए का=कि। ऐसी दशामें

धा × ज्या आ=धि × ज्या इ

=[धा + त (धा)] × ज्या [आ − त (व)]

=[धा + त (धा)] × [ज्या आ × कोज्या त (व) − कोज्या आ × ज्या त (व)]

परन्तु त (व) बहुत छोटा और चापीयमानमें है इसलिए ज्या त (व)=त(व) और कोज्या त (व)=१

∴ धा × ज्या आ

=[धा + त (धा)] [ज्या आ — त (व) × कोज्या आ]

=धा × ज्या आ − धा × त (व) × कोज्या आ + त(धा) × ज्या आ

क्योंकि चौथे पदमें त (ध) और त (व) के गुणनफलका गुणक (coefficient) बहुत छोटा है इसलिए छोड़ दिया गया है।

∴ ० = त (धा) × ज्या आ — धा × त(व) × कोज्या आ

∴ ज्या आ / (धा × कोज्या आ) = त (व) / त (धा)

अथवा त (व) / त (धा) = स्परे आ / धा ....(२)

समीकरण (१) और (२) से ऐसा समीकरण जाना जा सकता है जिसमें आ न रहे।

समीकरण (१) से ज्या आ (क × ध × ज्या न) / (का × धा)

त्रिकोणमितिसे यह प्रकट है कि

स्परे आ = ज्या आ / √(१ − ज्या² आ)

$$\frac{\text{क}\times\text{ध}\times\text{ज्या न}}{\text{का}\times\text{धा}}$$

$$=\frac{}{\sqrt{\left(१-\frac{\text{क}^२\times\text{ध}^२\times\text{ज्या}^२\text{ न}}{\text{का}^२\times\text{धा}^२}\right)}}$$

$$=\frac{\text{क}\times\text{ध}\times\text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{का}^२\times\text{धा}^२-\text{क}^२\times\text{ध}^२\times\text{ज्या}^२\text{ न})}}$$

$$\therefore\frac{\text{त (व)}}{\text{त (धा)}}=\frac{१}{\text{धा}}\times\frac{\text{क}\times\text{ध}\times\text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{क}^२\times\text{धा}^२-\text{क}^२\times\text{ध}^२\times\text{ज्या}^२\text{ न})}}$$

यही ज्योतिष सम्बन्धी वर्तनका साधारण चलन-समीकरण (differential equation) है। यदि सबसे ऊपरवाले स्तरका वर्तनांक १ और सबसे नीचेवाले स्तरका वर्तनांक ध मान लिये जांय और उपर्युक्त चलन समीकरणका इन्हीं सीमाओंके बीच चलराशिकलन (Integration) किया जाय तो ज्योतिष सम्बन्धी वर्तनका पूरा ज्ञान किया जा सकता है। परन्तु ऐसा करनेमें कठिनाई यह पड़ती है कि इस चलन समीकरणमें का और धा दो चल राशियां (Variables) हैं जिनका परस्पर सम्बन्ध ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि हमें इस बातका ठीक ठीक पता नहीं है कि पृथ्वीकी किस ऊँचाईपर वर्तनांक क्या है। परन्तु इसके बिना जाने भी उपर्युक्त समीकरणका चलराशिकलन एक युक्तिसे निकाला जा सकता है जिससे यथार्थ वर्तनका प्रायः ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है।

इस युक्तिमें $\frac{\text{का}}{\text{क}}$ को १ + छ मान लेना होता है जब कि छ का परिणाम अत्यन्त छोटा होता है क्योंकि का वातावरणके किसी स्तरकी त्रिज्या है और क पृथ्वीकी त्रिज्या है। यह भी ज्ञात है कि इस वातावरणकी ऊँचाई जिसमें किरणोंको झुका देने (वर्तन करने) का गुण होता है अधिकसे अधिक ५० मील है। पृथ्वीकी त्रिज्या अर्थात् क ४००० मील है, इसलिये $\frac{\text{का}}{\text{क}}=\frac{४०५०}{४०००}=१+\frac{१}{८०}$। इससे स्पष्ट है कि छ $=\frac{१}{८०}$ और इसके वर्ग, घन इत्यादि इतने छोटे हैं कि छोड़ दिये जा सकते हैं। ऐसी कल्पना करनेसे

$$\text{व}=\int_१^{\text{ध}}\frac{\text{ध ज्या न त (धा)}}{\text{ध}\;(\text{धा}^२-\text{ध}^२\text{ ज्या}^२\text{ न}+२\text{ छ धा}^२)^{\frac{१}{२}}}$$

$$=\int_१^{\text{ध}}\frac{\text{ध ज्या न त (धा)}}{\text{धा}\;(\text{धा}^२-\text{ध}^२\text{ज्या}^२\text{न})^{\frac{१}{२}}}\left(१+\frac{२\text{ छ धा}^२}{\text{धा}^२-\text{ध}^२\text{ज्या}^२\text{न}}\right)^{-\frac{१}{२}}$$

$$=\int_१^{\text{ध}}\frac{\text{ध ज्या न त (धा)}}{\text{धा}(\text{धा}^२-\text{ध}^२\text{ज्या}^२\text{न})^{\frac{१}{२}}}-\int_१^{\text{ध}}\frac{\text{छ}\cdot\text{धा}\cdot\text{ध ज्या न त (धा)}}{(\text{धा}^२-\text{ध}^२\text{ज्या}^२\text{न})^{\frac{३}{२}}}$$

सरल करनेपर इसका रूप यह होगा—

$$\text{व}=\text{प स्प}\text{रे न}+\text{फ स्परे}^३\text{ न}\;\ldots\ldots\;(१)$$

जहां प और फ कोई स्थिर राशियां हैं और न स्पष्ट नतांश है। प और फ के मान प्रत्यक्ष वेधसे जाने जा सकते हैं।

कैसिनीका सूत्र—

कैसिनी नामक ज्योतिषीने यह कल्पना किया कि वातावरण ऊपरसे नीचेतक सजातीय है अर्थात् एक ही घनत्वका है। इस कल्पनासे वर्तनका जो सूत्र ज्ञात हुआ वह ऊपर बतलाये गये सूत्रसे मिलता जुलता है। इससे वर्तनका जो परिमाण जाना जाता है वह ८०° तकके नतांशतकके लिए सन्तोषप्रद है। यदि नतांश ८०° से अधिक हो तो वर्तनके परिमाणमें स्थूलता रह जाती है।

इस कल्पनामें यह मान लेना पड़ता है कि शून्यसे आती हुई किरण वातावरणमें प्रवेश करते ही एक बार झुक जाती है फिर वही दिशा पृथ्वीतलतक बनी रहती है।

मान लो स च छ एक किरण है जो च विन्दुपर झुकी हुई है।

चित्र ७१

पृथ्वीकी त्रिज्या=भ छ=क

भ च=क (१+छ) जब कि छ बहुत छोटा है जैसा कि पहले बतलाया गया है।

अ=आपात कोण=∠स च ल = ∠स च सा + ∠ल च सा

=वर्तन + वर्तित कोण=व + ∠छ च भ=व + वा

∠ख छ च=स्पष्ट नतांश

वर्तनके नियमके अनुसार

ज्या अ=ध × ज्या वा या ज्या (व + वा)=ध × ज्या वा

जहां ध वातावरणका वर्तनांक है।

यह स्पष्ट है कि व बहुत छोटा होता है। इसलिए

$$\text{ज्या}\ (\text{व} + \text{वा}) = \text{ज्या व} \times \text{कोज्या वा} + \text{कोज्या व} \times \text{ज्या वा}$$

$$= \text{व} \times \text{कोज्या वा} + \text{ज्या वा}$$

$$\therefore \text{ज्या वा} + \text{व} \times \text{कोज्या वा} = \text{ध} \times \text{ज्या वा}$$

$$\therefore \text{व} = (\text{ध} - १)\ \text{स्पर्श वा}$$

त्रिभुज भ छ च में,

$$\frac{\text{ज्या वा}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{क}}{\text{क}\ (१ + \text{छ})} = \frac{१}{१ + \text{छ}}$$

$$\therefore \text{ज्या वा} = \frac{\text{ज्या न}}{१ + \text{छ}}$$

परन्तु स्पर्श वा=ज्या वा ÷ कोज्या वा [illegible] ÷ $\sqrt{१ - \text{छ}}$

$$= \frac{\text{ज्या न}}{१ + \text{छ}} \div \sqrt{१ - \frac{\text{ज्या}^२\ \text{न}}{(१ + \text{छ})^२}}$$

$$= \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{(१ + \text{छ})^२ - \text{ज्या}^२\ \text{न}\}}}$$

$$\therefore \text{व} = (\text{ध} - १)\frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{(१ + \text{छ})^२ - \text{ज्या}^२ \text{न}\}}}$$

$$= (\text{ध} - १)\frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{१ + २\ \text{छ} + \text{छ}^२ - \text{ज्या}^२\ \text{न}\}}}$$

$\text{छ}^२$ बहुत छोटा है इसलिए छोड़ दिया जा सकता है।

ऐसी दशामें $\text{व} = (\text{ध} - १)\ \dfrac{\text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{कोज्या}^२\ \text{न} + २\ \text{छ})}}$

$$= \frac{(\text{ध} - १)\ \text{ज्या न}}{\sqrt{\left(१ + \frac{२\text{छ}}{\text{कोज्या न}}\right)} \times \text{कोज्या न}}$$

$$=\frac{(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}}{\sqrt{(१+२\text{छ}\times\text{छे}^{२}\ \text{न})}}\ *$$

$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ (१-\text{छ}\times\text{छे}^{२}\ \text{न})$$

$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ \{१-\text{छ}\ (१+\text{स्परे}^{२}\text{न})\}$$

$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ \{१-\text{छ}-\text{छ स्परे}^{२}\ \text{न}\}$$

$$=(\text{ध}-१)(१-\text{छ})\ \text{स्परे न}-\text{छ}\ (\text{ध}-१)\ \text{स्परे}^{३}\ \text{न}$$

$$=\text{प स्परे न}-\text{फ स्परे}^{३}\ \text{न}\cdots\cdots\cdots\cdots(२)$$

यह पहले ही रूपका है। यहां $\text{प}=(\text{ध}-१)\ (१-\text{छ})$ और $\text{फ}=-\text{छ}(\text{ध}-१)$

इस सूत्रका प्रयोग व्यवहारमें उसी समय हो सकता है जिसकी चर्चा आगे की जायगी। मान लो† यह पाया गया है कि ५०° फारनहैटके तापक्रमपर जबकि वायुका दबाव ३० इञ्च ऊँचे पारेके दबावके समान है ५४° और ७४° नतांशोंके वर्तन क्रमशः ८०″·०६ और २००″·४६ हैं।

उपर्युक्त सूत्रके अनुसार दो समीकरण यह हुए

$$८०''\cdot०६=\text{प}\ (\text{स्परे}\ ५४^{\circ})+\text{फ}\ (\text{स्परे}\ ५४^{\circ})^{३}$$

$$२००''\cdot४६=\text{प}\ (\text{स्परे}\ ७४^{\circ})+\text{फ}\ (\text{स्परे}\ ७४^{\circ})^{३}$$

इन समीकरणोंसे प और फ के मान क्रमशः ५८″·२६४ और ०″·०६६८२ आते हैं। इसलिए ५० फा० और ३० इञ्चके दबावपर वर्तनका साधारण सूत्र यह होता है।

$$\text{व}=५८''\cdot२६३\ \text{स्परे न}-०''\cdot०६६८२\ \text{स्परे}^{३}\ \text{न}\cdots\cdots\cdots\cdots(३)$$

यह भी प्रकट है कि $\frac{\text{फ}}{\text{प}}=\frac{१}{८७३}$, इसलिए जबतक स्परे^{३}न बहुत बड़ा न हो अर्थात् यदि सूर्य, या तारा क्षितिजके पास न हो तबतक दूसरा पद भी छोड़ देनेसे कोई हानि नहीं हो सकती।

यदि नतांश ७०° से अधिक न हो और तापक्रममें भी बहुत अन्तर न हो तो वर्तनका मान जाननेके लिए नीचे लिखे सरल पदका प्रयोग उचित होगा। क स्परे न जहां क के लिए ५८″·२ लेना अधिक शुद्ध होगा। इस क को वर्तनका गुणक (Coefficient of refraction) कहते हैं।

वायुमंडलका वर्तनांक ०°श तापक्रम और ७६० मि० मी० दबावपर १·०००२६४ है (देखो Ball's Sphesical Astronomy page 117) और कैसिनीके सूत्रके अनुसार ५०° फा० तापक्रम और ३० इञ्च दबावपर वर्तनांक १·०००२८३ होता है।

सिम्पसन और ब्रैडिली नामक ज्योतिषियोंने भी वर्तनके सूत्र बनाये हैं परन्तु उनकी मीमांसा यहां आवश्यक नहीं है। यहां केवल ब्रैडिलीका सूत्र दे देना पर्याप्त होगा—

$$\text{व}=५८''\cdot३६१\ \text{स्परे}\ (\text{न}-४\cdot०६''\ \text{व})\cdots\cdots\cdots\cdots(४)$$

इस सूत्रसे ७०° नतांशतक वर्तनका परिमाण सन्तोषजनक होता है। इस सूत्रसे क्षितिजके पासवाले तारोंका वेध ठीक ठीक किया जा सकता है क्योंकि नतांश ९० अंशके निकट होनेपर भी स्परे (न — ४·०६ व) का परिमाण बहुत बड़ा नहीं होने पावेगा।

तापक्रम तथा वायुमंडलके दबावके घटने बढ़नेसे भी वर्तनके परिमाणमें अन्तर पड़ जाता है। परन्तु इन सबकी चर्चा विस्तार भयसे छोड़ दी जाती है।

---

* Secantको छेदन रेखा कहते हैं जो Cosine अर्थात् कोटिज्याका विलोम होता है। छेदन रेखाका संक्षिप्त रूप छे माना गया है। इसी तरह Cosecant अर्थात् कोटिच्छेदनरेखाका संक्षिप्त रूप कोछे प्रयोग किया जाता है।

† Balls Spherical Astronomy पृष्ठ १२७

वेधसे वातावरणके वर्तनका परिमाण जानना—

वर्तनके लिए जो सूत्र पहले स्थापित किया गया है उसके गुणोंके मान जाननेके लिए कई रीतियां काममें लाई जाती हैं। इनमेंसे तीन रीतियोंकी चर्चा यहां की जायगी। पहली और दूसरी रीतियोंसे एक ही वेधशालाके वेधोंसे काम चल सकता है यदि इसका अक्षांश बहुत कम या अधिक न हो। तीसरी रीतिमें दो वेधशालाओंकी आवश्यकता पड़ती है।
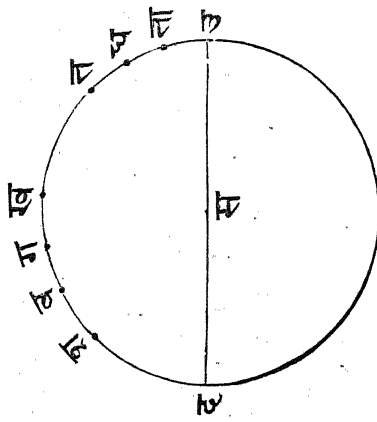
चित्र ७२

उ स द=स स्थानकी उत्तर दक्खिन रेखा

उ, द=क्षितिजके क्रमशः उत्तर दक्षिण विन्दु

उ ध ख व द=यामोत्तर वृत्त

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख=स स्थानका ख स्वस्तिक

व=विषुवद्वृत्त और यामोत्तरवृत्तका सामान्य विन्दु

त=यामोत्तरोल्लंघनके समय तारेका उच्चतम स्थान

ता=यामोत्तरोल्लंघनके समय उसी तारेका नीचतम स्थान

ग=सूर्यका ग्रीष्मायन विन्दु

श=सूर्यका शीतायन विन्दु

पहली रीति—ऐसा तारा चुनना चाहिए जो दोनों यामोत्तरोल्लंघनोंके समय क्षितिजके ऊपर रहे। चित्र ७२में त, ता ऐसे ही एक तारेके स्पष्ट स्थान हैं। दोनों समय तारेका स्पष्ट नतांश जान लेना चाहिए। मान लो तारेका स्पष्ट नतांश त स्थानपर न और ता स्थानपर ना है।

सूत्रके अनुसार इसके यथार्थ नतांश हुए

न + प स्पर्श न + फ स्पर्श^{३} न

और ना + प स्पर्श ना + फ स्पर्श^{३} ना

यदि त, ता तारेके यथार्थ स्थान मान लिए जायँ तो त ध= ता ध और ख त + ख ता=२ ख ध=२ लम्बांश=२ (९०°−अ) अर्थात् दोनों यथार्थ नतांशोंका योग=२ (९०° − अ), जहां अ स स्थानका अक्षांश है।

∴ न + प स्पर्श न + फ स्पर्श^{३} न + ना + प स्पर्श ना + फ स्पर्श^{३} ना=१८०° — २ अ

यदि इस समीकरणमें न और ना के मान जो वेधसे जाने जाते हैं उत्थापित किये जायं तो तीन अज्ञात अंकों प, फ और अ का एकघात (linear) समीकरण आ जाता है। इसी प्रकार यदि तीन तारोंके स्पष्ट नतांश वेधसे जान लिये जायं तो तीन समीकरण मिल जायंगे जिनसे प, फ और अ के मान सहज ही जाने जा सकते हैं।

दूसरी रीति—अयनान्त विन्दुओंके निकट जब सूर्य हो तब इसके नतांशोंसे भी वर्तनके स्थिर गुणक प, फ जाने जा सकते हैं।

चित्र ७२ में ख ग और ख श सूर्यके यथार्थ नतांश हों तो ख ग + ख श=२ ख व=२ अ

(शेष फिर)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २२ | धन और मकर, संवत् १९८२ | संख्या ३, ४

प्रेत-बाधा

[ले०—श्रीरामदास गौड़, एम. ए.]

(२)*

पिछले लेखमें इस सम्बन्धमें मैंने जो अपना व्यक्तिगत अनुभव दिया था, वह इस विषयकी पहली और आकस्मिक परीक्षा थी। इसके पीछे तबसे लेकर अबतक मुझे परलोकगत प्राणियोंके संबंधमें अनेक परीक्षाओंके अवसर मिले हैं और मैंने उन परीक्षाओंसे लाभ उठाया है। प्रेत-बाधाके रोगियोंकी परीक्षा करनेके लिये उत्सुक जिज्ञासुओंको चाहिये कि पहले तो जिज्ञासुके गुण अपनेमें पैदा करें, फिर समय, धन और परिश्रम लगाकर इस विषयके रहस्योंको जाननेका प्रयत्न करें। यदि इस लेखके पाठकोंको इस सम्बन्धमें विशेष उत्सुकता हुई, तो मैं तैयारीके लिये परिशीलनार्थ साहित्य-सूची और परीक्षाकी विशेष विधियोंका भी वर्णन किसी लेखमें करूँगा।

पिछले लेखमें मैंने यह चर्चा की थी कि मैं अपनी रोगिणी पुत्रीको हरसू ब्रह्म ले गया और वहाँ वह चुड़ैलें जला दी गयीं। विस्तार भयसे महाराज हरसूब्रह्मका विवरण नहीं दे पाया। मेरा यह निजी अनुभव है कि प्रेत-बाधासे छूटनेके लिये और कोई उपाय है ही नहीं।

मोग़लसरायसे पूरब दक्षिण दिशामें गया जानेवाली गाड़ियोंसे भबुआरोड स्टेशन लगभग

*पहला लेख 'विज्ञान' भाग २१ संख्या ३,४ पृष्ठ १०० पर छपा है। [सं० विज्ञान]

एक घण्टेकी राह है। स्टेशन पर इक्के और मोटर सभी समयोंमें मिल जाते हैं। चार कोसपर क़सबा भभुआ है जहाँ बहुधा लोग ठहर जाते हैं। वहाँ एक अच्छा धर्मशाला है। परन्तु दुर्भाग्यवश धर्मशालाका जमादार बड़ा दुष्ट है। वहाँसे तीन कोसपर क़सबा चयनपुर है। इक्के या मोटरसे वहाँ भी जा सकते हैं। इधर सड़क अधिकांश कच्ची पड़ती है। चैनपुर पहुँचनेपर इक्के क़िलेके फाटकपर उतार देते हैं। वहाँसे आपका असबाब तो सवारीपर और आप पैदल भग्नगढ़के फाटकमेंसे होकर अन्दर जाते हैं। भीतर एक ठाकुर बाड़ी भी है। यह पंडा रघुनाथप्रसाद तिवारीकी है। इसमें उक्त पंडाजीके यजमान ठहरते हैं। यहां यह विशेष सुभीता है कि ठाकुर बाड़ीके सामने एक मात्र पेय जलका कुआँ है। पासही महाराज हरसूब्रह्मका चौरा है। और पंडोंके यजमानोंके ठहरनेके लिये बनियोंका घर है क्योंकि इस क़स्बेमें किसी सेठ साहूकारने धर्मशाला नहीं बनवायी है। यही पंडाजी ग़नीमत हैं।

वहाँ जाकर आप कुएंसे जल स्वयं निकालिये और हाथ पाँव धोइये, स्नान कीजिये, फिर पासकी ही दूकानोंसे षोड़शोपचार पूजाका सामान लेकर अपने हाथसे निकाले हुए कूपजल या साथके लाये हुए गङ्गाजलसे महाराज हरसूब्रह्मकी पूजा कीजिये।

दोनों बेला दरबार होता है। सवेरे आठ बजेसे एक बजेतक और शामको आठ बजेसे दस बजेतक नित्य दरबार होता है। श्रावण बदी प्रतिपत्से लेकर पितृविसर्जन अमावास्यातक छुट्टी रहती है। जिसको प्रेत-बाधा हो या होनेका सन्देह हो उसकी ओरसे सत्रह आने तलबानेके पंडेको दरबारमें जाकर पूजाके बाद देकर दरख़ास्त दिलानी होती है। दरखास्त पंडा ज़बानी पेश करता है। अगर कोई यजमान चिट्ठी और मनीआर्डरसे दरख़ास्त भेजता है तो पंडा उसे भी पढ़कर सुना देता है। दरख़ास्तमें आवेदकका पूरा पता ठिकाना और पूरी शिकायतका होना ज़रूरी है। इसके बाद महाराज महाराजाधिराजकी ओरसे कर्म्मचारियोंको आज्ञा होती है और आवश्यकतानुसार प्रेतबल लेकर वह लोग लगनेवाले प्रेतोंको पकड़ लाते हैं। प्रायः दूसरे दरबारमें आविष्टके सिरपर वह प्रेत आते हैं। उनका इज़हार होता है और मुकदमा सुना जाता है। जो अपराधी होता है उसे दंड दिया जाता है। अपराधी यजमानपर ब्राह्मण भोजनादि दंड होता है और दोषीप्रेत बांधे जाते हैं या जलाये जाते हैं। जलानेका शुल्क ३) प्रति प्रेत, परन्तु यदि जलनेवाले प्रेत पाँचसे अधिक हुए तो यजमान जो चाहे सो दे १५) से अधिक उसकी श्रद्धापर निर्भर है। क़ैदका व्यय २॥) प्रतिप्रेत प्रतिवर्षका नियम है, परन्तु प्रेतोंकी संख्या अधिक होनेपर उपर्युक्त "श्रद्धया देयम" का नियम चलता है। पंडे पचासों हैं। अच्छे भी हैं, निकम्मे भी। पढ़े भी हैं और उजड्ड भी। मुझे स्वयं पं० रघुनाथप्रसाद तिवारी, जिनकी ठाकुरवाड़ी है, बहुत अच्छे जँचे।

महाराज हरसूब्रह्मको प्रसन्न करनेके लिये पूजा, जाप, पाठ, होम सभी विधियां हैं। राम नामका जाप करके अर्पण करनेसे बहुत प्रसन्न होते हैं।

महाराज हरसूब्रह्म कौन हैं?

महाराज हरसूब्रह्म संसार भरके प्रेतोंके महाराजाधिराज हैं। इनका अत्यन्त विशाल संगठन है। इनके दरबारमें एक सौ आठ ब्रह्म हैं। युवराज हैं, कोतवाल हैं, सेनापति हैं, मन्त्री हैं, द्वारपाल हैं, हज़ारों कर्म्मचारी हैं परन्तु सब प्रेत हैं। सेनामें प्रेतोंकी संख्या करोड़ोंके लगभग है। महाराजधिराजके अधीन जितने कर्म्मचारी हैं, सैनिक हैं या बन्दी हैं सबको राम राम कहना पड़ता है, सबको सच्चरित होना पड़ता है, कोई प्रेत लगने नहीं पाता। इतनेपर भी विद्रोही निकलते हैं और विविध दंड पाते हैं। यहांका सबसे बड़ा दंड है जलाना जो प्रेतके लिये वस्तुतः प्राणदंड

हैं जिसके पीछे या तो पितृलोक जाना पड़ता है, या जन्म लेना पड़ता है। यह दंड उसी प्रेतको मिलता है जिसका या तो किसी और प्रकारसे निग्रह नहीं होता या प्रेत शरीर जल्दी छूटने वाला होता है। ब्रह्मराक्षस, दैत्य आदि देव-योनिके खोटे प्राणी जलाये नहीं जाते।

महाराज हरसूब्रह्म ब्राह्मण शरीर में लगभग संवत् १४२५ में उत्पन्न हुए। इनका घराना राजाके पुरोहितोंका था। इनकी पुरोहिताईके समय चयनपुरके राजा शालिवाहन बड़े प्रतापी थे। चालीस बरस सुखसे राज्य करनेपर इनके यहाँ कुमति और विपत्तिका प्रवेश हुआ। हरसू महाराजके पुत्रोंने कोठा ऊँचा कराया। इसी साल कार्तिकमें ऊँचे आकाश दीपक जलाने लगे। रानी मानिकमतीको नित्य अपनेसे ऊँची अटारीपर प्रकाश देखते देखते बड़ी ईर्षा हुई। जब जाना कि पुरोहितकी अटारी है तो राजासे झगड़ बैठी। राजा भी अन्तमें उसके मतमें आ गया। उसने एकाएकी अपने पुरोहितके गाँवपर बिना जनाये चढ़ाईकी और अट्टालिका खुदवा डाली। विद्वान् पुरोहितजी कहीं अन्यत्र पूजा पाठमें थे। जब गृहभंगका समाचार मिला, वह तुरन्त राजाके क़िलेमें जाकर आँगनमें धरना देकर बैठे। इक्कीस दिनतक अन्नजल बिना एक आसन बैठे बैठे अत्यन्त बलहीन हो गये थे। इशारेसे जल मांगा। राजकुमारी ज्ञानकुअँरने रस पिलाया यही रस लग गया। शरीरान्त हो गया। इनका सूक्ष्म शरीर तुरन्त ब्रह्मलोक गया। वहाँ इन्हें ज्ञात हुआ कि यह शिवजीके अवतार हैं। और राजा शालिवाहन उत्कल नाम दैत्यका अवतार है। उसको मारडालने के लिए शिवजी हरसूब्रह्म हुए थे उसने मकान इसलिए गिरवाया कि लड़ाई हो और शालिवाहन हरसू महाराजके हाथों मारा जाय। पर विचित्र घटनाक्रम से हरसू महाराजने आत्महत्या करली और अपना काम भी पूरा न किया। इस लिए प्रेत शरीरमें लौटना पड़ा। स्थूल शरीरको स्थूल ही रीतियोंसे मारनेके लिए प्रेतयोनिमें होते हुए हरसू महाराजने स्थूल रूप धारण किया और दिल्लीके बादशाहको जाकर चैनपुर पर चढ़ाई करनेके लिए प्रवृत्त किया। मुसलमान सेना जब चैनपुर आई तो घोर युद्ध हुआ और अन्तमें मुसलमानोंकी विजय हुई। पर वह राजाको मार न न सके। वह किलेके एक अगम्य भागमें जाकर रानियोंके सहित छिप गया और क़रीब था कि सुरंगकी राह भागे पर उसी समय हरसू महाराज स्थूल रूप धारण करके उस स्थानपर पहुंच गये और फरसेसे राजाका सिर काट लिया। मुसलमान बादशाह भी लूट मारकर दिल्ली लौट गया और महाराज हरसूब्रह्मने किलेको बरबाद कर डाला और चैनपुरका बसाबसाया बना-बनाया नगर थोड़े ही दिनोंमें वीरान होगया। आज भी देखनेसे यह सहजमें अनुमान किया जा सकता है कि किसी समयमें इसका बड़ा विस्तार रहा होगा।

महाराज हरसू ब्रह्मने माघ शुक्ल नवमीको संवत् १४८५ में शरीर छोड़ा। जिस जगह यह घटना हुई थी उस जगहसे लाश हटानेकी बड़ी कोशिश की गई पर हटाई न जा सकी, शव पत्थर हो गया उसके नीचे बहुत सी राख और फूल मिले। क़िलेकी बरबादीके बाद उस स्थानपर महाराज हरसूब्रह्मका चौरा बन गया। उत्कलके मारे जानेके बाद महाराज हरसू प्रेतोंके महाराजाधिराजा हो गये। अब प्रेत संसारका शासन उनका कर्त्तव्य हो गया तबसे आजतक पाँच सौ बरस बीत गये हैं। प्रेत संसारके सिवाय स्थूल संसारके रहनेवाले भी जब प्रेतोंसे पीड़ित होते हैं तो महाराजके दरबारमें नालिश करते हैं। मुझे तो यहाँतक मालूम है कि ग़रीब किसान जब सताये जाते हैं और सांसारिक अधिकारी उनकी नहीं सुनते तो वह महाराज हरसूब्रह्मके यहाँ जाकर प्रार्थना करते हैं और बहुधा उनका भला भी हो जाता है।

प्रेत-बाधाओं से पीड़ित प्राणी वहाँसे बाधासे मुक्त होकर जब लौटने लगाते हैं तो आगेकी रक्षा-

के लिए पंडा उन्हें यंत्र भी देता है। व्रत, जाप और पूजाकी विधियाँ भी बताता है इसमें पंडोंका अपना स्वार्थ कुछ भी नहीं है क्योंकि यह सब आप अपने घर करते हैं। एक बात अत्यन्त उपयोगी वहाँ यह जाननेमें आई कि महाराज हरसू-ब्रह्म किसी आदमीका आलसी होना पसन्द नहीं करते। उनकी कड़ी आज्ञा है कि चैनपुर आनेवालेको तभी स्थायी लाभ होगा जब वह यह व्रत करेगा कि सचाई और ईमानदारीसे जीवन निर्वाह करे, अपने पसीनेकी कमाई खाय और ख़र्च करे और भरसक पवित्रतासे रहे। पंडे अक्सर साफ़ मना कर देते हैं कि सवा बरसतक किसीके यहाँ मेहमान न होना, किसीका दिया न खाना, और भरसक अपने हाथसे ही अपना सारा काम करना।

लगनेवाले प्रेत दुष्टात्माएँ होती हैं। मनुष्यका स्वभाव मरनेपर भी नहीं बदलता। प्रेत होनेपर भी वही वासनाएँ जो स्थूल शरीरमें प्रायः होती रहती हैं लिङ्ग देहमें जाग कर भयानक रूप धारण करती हैं और प्रायः उच्छृङ्खल हो जाती हैं। इसका निग्रह प्रेत-संसारका ही कोई शासक कर सकता है और है भी ऐसा ही प्रबन्ध।

जो लोग प्रेत-बाधा समझकर चैनपुर जायँ उनको औषधोपचार भी छोड़ना न चाहिए। ताप तीनों प्रकारके होते हैं सम्भव है कि पीड़ित मनुष्यको दैहिक और भौतिक दोनों ही ताप हों प्रायः ऐसा ही होता है। दैहिक तापके निवारणके लिए औषधोपचार उतना ही आवश्यक है जितना भौतिक तापके निवारणके लिए चैनपुरकी तीर्थ यात्रा। जब भौतिक ताप दूर हो जाता है दवा भी फ़ायदा करने लगती है। प्रेत-बाधा होते लाख औषधोपचार कीजिए लाभ नहीं होता। चिकित्सक हैरान हो जाता है और रोगी प्रायः जीवन और मृत्युके बीचमें पड़ा बहुत दिनोंतक घोर संकट सहता रहता है। जो लोग प्रेत नहीं मानते परन्तु अनिश्चित चिकित्सा बरसोंतक करते ही रहते हैं उन्हें चाहिए कि अष्टांग चिकित्सा विधिका एक अङ्ग भौतिक चिकित्साको भी समझकर इस विधिसे भी काम लें। सम्भव है कि इन्हें लाभ हो जाय।

प्राकृतिक रंग बनाने की विधि

[ले० श्री शंकरलाल जिन्दल, एम. एस-सी.]

विज्ञानके पिछले अंकमें मेरे एक मित्र मिस्टर घोषका लेख रंगनेकी विधिपर था। उसीके सम्बन्धमें यह भी लेख है। इसमें जो विधियाँ दी जायेंगी वे उस मनुष्यकी अज़माई हुई हैं जो स्वयं इनपर काम कर चुका है। मैंने यह लेख Industry मेंसे लिया है। केवल इस वास्ते कि हिन्दी जानने वालोंको भी सहायता मिल जावे।

आजकल बाज़ारमें बने हुये रंग इस बहुतायतसे मिलते हैं और इनका रंगना इतना आसान है कि लोग लगभग प्राकृतिक रंगोंको भूल गये हैं। संसारमें यह नियम देखा जाता कि प्रत्येक व्यक्ति आसानीके रास्तेसे ही चलना पसंद करता है। जो कठिनाईके रास्तेसे चलते हैं वेही संसारमें कुछ कार्य कर जाते हैं। कारण कि उस रास्तेके चलनेके लिए हिम्मत और बहादुरी चाहिये जो केवल बड़े ही मनुष्यों में हुआ करती हैं। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि जो बारीकियाँ और सफ़ाई प्राकृतिक रंगमें आती है वह कृत्रिम रंगमें कदापि नहीं आ सकती। प्राकृतिक रंगसे रंगनेमें मनुष्य कुछ हुनर भी सीख जाता है।

नीचे कुछ प्राकृतिक रंग दिये जाते हैं।

लाल रंग (Red)

बकम काठ (Brazil wood)	१ सेर
पानी	५ सेर

फिटकिरी	२ छटाँक
गोंद	१ छटाँक

लकड़ीके छोटे छोटे टुकड़े करके पानीमें डाल कर आगपर औंटाओ। यहां तक कि पानी आधा रह जावे। बरतन मट्टीका होना चाहिए। फिर फिटकरी मिला दो और उबलने दो जब काढ़ा १½ सेर रह जावे गोंदको पीस कर मिला दो। बरतनको उतार लो जब उसमें आधा सेर काढ़ा रह जावे तब चौड़े बरतनमें रख पानीको उड़ा लो दो। जब सूख जावे तब पीस डालो।

गहरा लाल (Scarlet)

१, लाह (Laha)	१ सेर
पानी	६ सेर
फिटकरी	२ छटाँक
कच्चे गोलेका पानी	१ पाव

पहले पानीको उबालो। तब लाहका बुरादा डाल दो। जब आधा पानी रह जावे फिटकरी डाल कर खूब चलाओ। जब एक सेर काढ़ा रह जावे, गोलेके पानीको मिला दो। जब आध सेर रह जावे तो उतार कर छान लो और पानीको किसी चौड़े बरतन में उड़ा दो। जब सूख जावे—पीस डालो।

२. लाह १ सेर, नीबू का रस १ सेर, दोनों-को मिला कर चार घण्टे रहने दो, तब उबालो छान कर सुखा लो। फिर बुकनी बना लो।

गुलाबी रंग (Pink)

बकम काठ	४ सेर
लोधकी लकड़ी	१ सेर
पानी	१२½ सेर
फिटकरी	२ छटाँक
आरारोट (बम्बई का)	½ सेर

पानीको उबाल कर लकड़ियोंके टुकड़े डाल दो, जब तीन सेर रह जावे तो फिटकरी मिला दो। जब एक सेर रह जावे तब उतार कर छान लो और आरारोट मिला दो। धूपमें सुखा कर पीस डालो।

किरमिजी (Crimson)

लोधकी लकड़ी	१ सेर
बकम काठ	३ सेर
पानी	१० सेर

लकड़ियोंको पानीमें भिगो दो और गरम करो जब १ सेर रह जावे सुखा कर पीस डालो।

बनफ़सी (Violet)

काली बेरी, Black Berry	२½ सेर
सोडा	१ पाव
पानी	२ सेर

बेरी को कुचलकर सोडेके ऊपर फैला दो। ६ घण्टेतक रहने दो। इसके बाद उबलते पानीमें डाल दो। जब काढ़ा आधा रह जावे तब धूपमें सुखा लो और पीसकर बुकनी बना लो।

पीला (Yellow)

अन्नटोका दाना, Annatto Seed	½ सेर
सज्जी मट्टी	२ छ०
पानी	२½ सेर
फिटकरी	१ छ०
गोंद	½ तोला

पानीको मट्टीके बरतनमें लेकर सज्जीको घोल लो, दोनोंको इसमें १२ घण्टेतक भीगे रहने दो। फिर कुचलकर उबाल लो। जब आधा पानी रह जावे फिटकरी मिला दो। जब एक सेर पानी रह जावे गोंद मिला दो। सुखाकर पीस डालो।

नारङ्गी (Orange)

कुसुमके फूल	१ सेर
हल्दी	१ पाव
केसर	½ छ०
फिटकरी	२ छ०
गोंद	१ छ०
पानी	१० सेर

फूलोंको पानीमें १२ घण्टे भिगोओ, तब गर्म करो और ज्यों ही उबाल आवे हल्दी व केसरकी बुकनीको डाल दो। जब पानी ४ सेर रह जावे फिटकरी डाल दो और जब काढ़ा २ सेर रह जावे गोंदको मिला दो। जब एक सेर रह जावे सुखा लो और पीस कर बुकनी बना लो।

हरा रङ्ग (Green)

अन्नाटोका दाना AnnattoSeed	१	सेर
सज्जी मट्टी	२	छ०
पानी	४	सेर
हल्दी	२	छ०
कमेला बुकनी Kamela Powder	१	पाव
फिटकरी	१	छ०
नील	१	छ०
आरारोट (बम्बईका)	१	छ०

पहले सज्जीको एक सेर पानीमें घोल लो और उसमें दानोंको ६ घण्टे भीगा रहने दो, तब उनको खूब कुचल डालो। ४ सेर पानीको उबालो और जब पानी उबलने लगे तब हल्दी डाल दो, फिर कुचले हुए दानोंको मिला दो जब काढ़ा आधा रह जावे कमेला बुकनी Kamela Powder डाल दो और फिटकरी मिला कर चलाओ। एक सेर रह जानेपर छान डालो। तब उसमें नील और आरारोटको मिलाओ, सुखाकर बुकनी बना लो।

काला (Black)

इम्बेलिक मैरोबलन Embellic Myrobalan	१	सेर
बेलेरिक मैरोबलन Beleric Myrobalan	१	सेर
चेबुरिक मैरोबलन Chebulic Myroablan	१	सेर
बाकला की छाल babla Bark	२	सेर
हरा कसीस	१	सेर
आरारोट	१	पाप
पानी	१०	सेर

पहली चार चीज़ोंको पीस डालो और एक बड़ी लोहेकी कढ़ाईमें रक्खो। उसके ऊपर उबलता पानी डालो। ढककर एक मासतक रख दो उसके बाद गर्म करो। जब काढ़ा आधा रह जावे तब कसीसको मिला दो और उबालते रहो जब एक सेर रह जावे, उतार लो। छान कर एक चौड़े बरतनमें रखकर अरारोट मिलाओ, धूपमें सुखा कर बुकनी बना लो।

सुरमई (Blue Black)

माजूफल	२	सेर
हरा कसीस	१	सेर
काला कत्था	२	छ०
गोंद	२	छ०
नील	१	सेर
पानी	१०	सेर

माजूफलको पीसकर एक लोहेकी कढ़ाईमें रक्खो। १० सेर गर्म पानी डालकर ५ दिनतक अलग रखदो, तब गर्म करो और जब आधा पानी रह जावे कत्था डाल दो। जब चौथाई पानी रह जावे, कसीस व बादमें गोंद मिला दो। जब एक सेर काढ़ा रह जावे उसको १५ दिनतक अलग रहने दो, तब छानकर नील मिला दो। सुखाकर बुकनी बना लो।

सुनहरी (Golden)

बकम काठ	½ सेर
लोधकी लकड़ी	२ छ०
सज्जी	२ छ०
कमेलाकी बुकनी Kamela Powder	१ पाव
पानी	४ सेर

पहले लकड़ीकी बुकनीको ४ सेर गरम पानी में ४ घंटेतक भिगोओ-तब सबको उबालो और कमेला Kamela Powder मिला दो, जब ½ सेर रह जावे तो सुखा लो और बुकनी बना लो।

नीला (Blue)

१· जंगल (Jangal)	२ छ०
नीला थोता (तूतिया)	½ सेर
पेटीलाइनका रस Juice of Patilime	१ सेर
गन्नेका सिरका	१ सेर
अरारोट	१ छ०

पहले तूतिया और जंगलको नीबूके रसमें एक दिनतक भिगोओ। तक सिरका मिलाकर तीन दिनतक रख दो, तब गर्म करो और खूब उबाल आने दो। जब ½ सेर रह जावे अरारोट मिला कर सुखा लो।

३. तूतिया	½ सेर
नीबूका रस	½ सेर

दोनोंको मिलाकर ४ घंटेतक रहने दो तब उबालो। जब आधा रह जावे सुखा कर बुकनी बनालो।

प्याज़ी रंग

बकम काठ	½ सेर
गन्नेका सिरका	२ सेर
फिटकरी	१½ छटांक

लकड़ीको सिरकेमें भिगोओ और एक सप्ताह तक रख दो, तब सबको उबाललो और जब आधा रह जावे हटालो, फिटकरी मिलाकर छानलो। सुखा कर बुकनी बनालो।

ख़ाकी रंग

बकम काठ	१ सेर
तूतिया	१ छ०
अरारोट	१ छ०
पानी	४ सेर

बकमकाट और तूतियाको पानीमें एक लोहे-की कढ़ाईमें उबालो जब आधा रह जावे उतार लो, अरारोट मिलाकर सुखालो।

फीरोज़ा रंग

नील	½ सेर
जंगल (कशमीरी)	२ छ०
तूतिया	१ छ०
नीबूका रस	२ सेर

नील, जंगल और तूतियाको अलग अलग पीस कर तीनोंको मिलाकर चीनीके बरतनमें नीबू के रसमें चार दिन भीगा रहने दो, छानकर धूपमें सुखालो और बुकनी बनालो।

आसमानी रंग

कशमीरी जंगल	१ पाव
सोडा	२ छ०
फिटकरी	½ छ०
अरारोट	½ छ०

कशमीरी जंगलको शोडेमें मिलाओ और एक पाव पानीमें चार घंटे तक रहने दो। उसके बाद २ सेर पानी उबालो और पहिले Liquid को इसमें डाल दो जब काढ़ा आधा रह जावे फिटकरी मिला दो। जब आधा सेर रह जावे उतारलो और अरारोट मिला दो। धूपमें सुखाकर बुकनी करलो।

चम्पा रंग

हरा कसीस	१ सेर
पानी	२ सेर
बिना बुझा हुआ चूना	१ तोला

कसीसको पीसकर पानीमें उबालो। जब आध सेर काढ़ा रह जावे ठंडा करके चूना मिला दो, सुखा कर बुकनी बनालो—

मिस्सी रंग (Black)

हरा कसीस	१ सेर
तूतिया (भुना हुआ)	½ पाव
पानी	१ सेर
अरारोट	१ छ०

कसीसको पानीमें उबालो। जब आधा सेर रह जावें उतार लो। अरारोट मिलाकर सुखा लो और बुकनी बना लो।

कत्थई रंग

Chelnlic Myrobalan	१ सेर
हराकसीस	२ छ०
पानी	२ सेर
फिटकरी	½ छ०
अरारोट	१ छ०

पानीको लोहेके बरतनमें गर्म करो और जब उबलने लगे तब (Myrobalan) की बुकनी डाल दो। जब आधा रह जावे तो पहले कसीस और

पीछे फिटकरी मिला दो। आधा सेर रह जाने पर उतार लो। अरारोट मिलाकर सुखालो और फिर बुकनी बना लो।

रंग

[ले० श्री सत्येश्वर घोष, एम.एस.सी.]

मंजिष्ठा (Rubia Cordifolia Madder)

ह पंसारी या वैद्यकी दूकानों पर मिलता है। यह एक प्रकारकी बेल है और पत्तियोंको सुखा पुड़ियोंमें बांध कर बाज़ारमें बेचनेके लिये भेजी जाती है। इसका भाव १०, से १२, रुपया मन है पर थोड़ा लेनेसे अधिक दाम देना पड़ेगा, यह बड़े खेदकी बात है कि बाज़ारकी मंजीठसे चमकीला गाढ़ा लालरङ्ग नहीं होता है, परन्तु वह पक्का होता है मंजीठकी जड़ मिलनेसे अच्छा रङ्ग होनेकी आशा है, मंजीठ आजकल केवल वैद्य लोग दवाईके लिए व्यवहारमें लाते हैं (परन्तु रङ्गके लिए फिर इसकी अच्छी पत्तियां और जड़ बाजारमें बिकनेके लिए आ सकती हैं)। मंजीठमें एलीज़रीन (Alizarin) नामक एक रासायनिक पदार्थ होता है, जिससे लाल रङ्गकी उत्पत्ति होती है। बिलायती Madder और मंजीठ एक ही वस्तु हैं। ५०-६० वर्ष पहिले विलायतमें (Madder) से कपड़े रँगे जाते थे इसका रंग लाल होता है। इस रङ्गको Turkey red कहते हैं। यह कृत्रिम (Alizarin) रङ्ग पहले पहल जर्मनीमें वैज्ञानिक (१) रीतिसे बना था और धीरे धीरे यही (Madder) और मंजीठकी जगह काममें आने लगा है। आजकल (Alizarin) रङ्गसे जो लालरङ्ग बनता है उसेभी (Turkey red) कहते हैं। यह रङ्ग आसानीसे नहीं बनता और इस देशमें जो कपड़े इस रङ्गसे छापे जाते हैं वह भी धोनेसे फीके पड़ जाते हैं। यहांके बड़े बड़े मिलोंमें जो लाल सूत कपड़े बुननेके लिए व्यवहारमें आते हैं वह अधिकांश विलायतसे यहां आता है। आल या आच (संस्कृत-अचुत्त) से भी देशी लालरङ्ग बनता है। मंजीठ और आलमें एक ही प्रकारका रङ्ग होता है परन्तु आलमें वह बहुत कुछ कम होनेके कारण रङ्ग फीका देता है। मंजिष्ठाके मुकाबिले व्यवहारके लिए मंजिष्ठाको कूटकर चूर्ण बना कपड़ेमें छान लेना चाहिए। इसके सतसे नहीं रँगा जाता है। मंजीठके चूर्ण और कपड़ेको साथ साथ पानीमें खौलानेसे कपड़ेपर रंग चढ़ता है। चूर्णको कपड़ेके साथ मिल जाना चाहिए। इसलिए यह खूब महीन पीसना चाहिए मिट्टीके वर्तनके अतिरिक्त दूसरी किसी धातुका बर्तन प्रयोगमें न लाना चाहिए।

कत्था (Catechiu, Cutch)

बाज़ारमें तीन प्रकारके कत्थे मिलते हैं। (१) पंपड़ी या पानमें खानेवाला कत्था। यह देखनेमें बरफीके समान होता है। रंग फीका होनेके कारण यह अच्छा नहीं होता (२) माघी कत्था। यह बर्मा (Burma) से आता है, यह काले, रङ्गका होता है और इसकी आकृत्ति बरफीकी तरह होती है भाव इसका लगभग दस आना सेर है। यह रँगनेमें उपयोगी होती है। (३) जौनपुरी कत्था। यह अवध प्रदेशसे आता है। इसके बड़े बड़े काले ढेले बिकते हैं। रँगनेमें इसका उपयोग किया जा सकता है परन्तु यह प्रायः दो रुपये सेर बिकता है। माघी कत्था सस्ता मिलता है, इसलिए रङ्ग बनानेके लिए इसीका उपयोग किया जा सकता है।

कई तरहके पेड़ोंकी छालोंको खौलाकर उसके सत (बङ्गल क्वाथ) को गाढ़ा करके कत्था बनता है। "क्वाथ" शब्दसे अङ्गरेज़ी शब्दकी (Catechu) उत्पत्ति हुई है। कत्थेमें बहुत मैला रहता है। मिट्टी, पत्थर, मैदा इत्यादि वस्तुएं प्रायः कत्थेके साथ मिली रहती हैं। छोटे शहरोंके दूकानदार

कत्थेका वज़न बढ़ानेके लिए कभी कभी इसे पानी में भिगोकर बेंचते हैं। असली कत्था पत्थरके समान कड़ा होता है। ज्यादा मोल लेनेके पहले कुछ कत्था पानीमें घोलकर देख लेना आवश्यक है। अच्छा कत्था पानीमें घोलनेसे गाढ़ा हो जाता है। पानीमें गरम करनेसे सब कत्थेको घुल जाना चाहिए। ठंडा करनेपर फीके रङ्गकी कीचड़की तरह नीचे बैठ जाती है और गरम करनेसे फिर इसे पानीमें घुल जानी चाहिये। इस कीचड़की सी वस्तुका वैज्ञानिक नाम (Catechiu) है, और यही कत्थेमें प्रधान रञ्जन पदार्थ है। कत्थेको पानी-में घोलकर ऊपरके साफ़ पानीको फेंक कर नीचे-की पड़ी हुई कीचड़का उपयोग करना चाहिए नहीं तो मुख्य पदार्थ पड़ा रह जायगा। कत्थेमें बहुत मैला रहनेके कारणसे कीचड़ हो सकती है, परन्तु जो हो इसी मैलेका व्यवहार करना उचित है। ताम्र या पीतलके वर्तनमें कत्थेके सत्त का व्यवहार किया जा सकता है, परन्तु बहुत दिन सत्तको रखनेकेलिए मिट्टीका बर्तन ही अच्छा होता है। खूब गरम अवस्थामें कत्थेके सत्तको छान लेनेसे सब (Catechiu) मैलेसेपृथक हो जायगा।

हल्दी (Turmeric)

यह रोज दाल या तरकारियोंमें डाली जाती है। इसलिए इसका पूरा विवरण देना आवश्यक नहीं है। हल्दीसे अच्छा उज्वल बसन्ती रङ्ग बनता है। पानीसे धोनेसे यह रङ्ग साफ़ नहीं किया जा सकता है परन्तु खारे पानीसे लाल हो जाता है। साबुनसे धोनेसे भी लाल हो जाता है और तब पानीसे धोनेसे थोड़ा फीका पीला रङ्ग आ जाता है। धूपमें यह रङ्ग कुछ उड़ जाता है, परन्तु तो भी हल्दीका रंग प्रायः व्यवहार में आता ही है। हल्दीका रंग सरल उपायसेही कपड़ेपर चढ़ाया जा सकता है। हल्दीका चूर्ण पानीमें घोलकर काममें लाया जाता है।

अनारकी छाल (Pomegranate rind):—अनारकी छाल पंसारी या वैद्यके दूकानमें मिलती है। इसका भाव लगभग १) रुपया सेर है। कच्चे अनारोंको सुखाकर पूरा फल अनारकी छालके नामसे बिकता है। इस अनारकी छालसे अच्छा पक्का और उज्वल पीला रंग होता है। इससे हल्दीके रंगकी तरह उज्वल तो नहीं परन्तु पक्का धानी और सुनहरा रंग बनाया जा सकता है। पीला रंग बनानेके लिये कई वस्तुएं हैं, यथा—हरसिंहारका फूल, कटहलकी लकड़ी, पलाशका फूल, हल्दी इत्यादि। अनारका रंग उज्वल न होनेपर भी सुन्दर और पक्का होता है। हर्रेसे भी इस प्रकारका रंग मिलता है परन्तु यह अनारके छालके रंगसे भी ख़राब होता है।

पतंग (Sappan or Brazil wood)

देखनेमें लाल चन्दनकी तरह लम्बे लम्बे लकड़ीके टुकड़े बाज़ारमें बिकनेको आते हैं। इसका भाव साधारणतया १०)—१५) रुपया मन। आजकल इसका व्यवहार कम होनेके कारण बाज़ारमें यह जल्द नहीं मिलता है। कुछ असाधु दुकानदार पतंगके बदले लालचन्दन बेंच देते हैं। वास्तवमें इन दोनोंमें भेद बहुत कम है। एक आने भर पतंगकी लकड़ीको एक पाव पानीमें खौलानेसे बहुत अच्छा लाल रंग निकलता है, परन्तु उतने ही लालचन्दनसे कुछ भी लाल रंग नहीं निकल सकता। पतंग एक जङ्गली पेड़ है, इसकी खेतीकी आवश्यकता नहीं होती। यदि इसका उपयोग किया जाय तो बाज़ारमें अधिक-तासे आने लगे और कुछ सस्ता भी बिके। पतंगसे इतना रंग निकलता है कि इसका मूल्य अधिक होनेपर भी इससे कपड़ा रंगनेमें लाभ ही होगा। ढाई रुपये सेर होनेसे भी दो पैसेका एक तोला हुआ। एक तोले पतंगकी लकड़ीसे एक साड़ी रंगी जा सकती है। पहिले इसे पतंगके रंगसे होली खेलनेके लिये अबीर

पीछे फिटकरी मिला दो। आधा सेर रह जाने पर उतार लो। अरारोट मिलाकर सुखालो और फिर बुकनी बना लो।

रंग

[ले० श्री सत्येश्वर घोष, एम.एस.सी.]

मंजिष्ठा (Rubia Cordifolia Madder)

ह पंसारी या वैद्यकी दूकानों पर मिलता है। यह एक प्रकारकी बेल है और पत्तियोंको सुखा पुड़ियोंमें बांध कर बाज़ारमें बेचनेके लिये भेजी जाती है। इसका भाव १०, से १२, रुपया मन है पर थोड़ा लेनेसे अधिक दाम देना पड़ेगा, यह बड़े खेदकी बात है कि बाज़ारकी मंजीठसे चमकीला गाढ़ा लालरङ्ग नहीं होता है, परन्तु वह पक्का होता है मंजीठकी जड़ मिलनेसे अच्छा रङ्ग होनेकी आशा है, मंजीठ आजकल केवल वैद्य लोग दवाईके लिए व्यवहारमें लाते हैं (परन्तु रङ्गके लिए फिर इसकी अच्छी पत्तियां और जड़ बाजारमें बिकनेके लिए आ सकती हैं)। मंजीठमें एलीज़रीन (Alizarin) नामक एक रासायनिक पदार्थ होता है, जिससे लाल रङ्गकी उत्पत्ति होती है। बिलायती Madder और मंजीठ एक ही वस्तु हैं। ५०-६० वर्ष पहिले विलायतमें (Madder) से कपड़े रँगे जाते थे इसका रंग लाल होता है। इस रङ्ग को Turkey red कहते हैं। यह कृत्रिम (Alizarin) रङ्ग पहले पहल जर्मनीमें वैज्ञानिक (१) रीतिसे बना था और धीरे धीरे यही (Madder) और मंजीठकी जगह काममें आने लगा है। आजकल (Alizarin) रङ्गसे जो लालरङ्ग बनता है उसेभी (Turkey red) कहते हैं। यह रङ्ग आसानीसे नहीं बनता और इस देशमें जो कपड़े इस रङ्गसे छापे जाते हैं वह भी धोनेसे फीके पड़ जाते हैं। यहांके बड़े बड़े मिलोंमें जो लाल सूत कपड़े बुननेके लिए व्यवहारमें आते हैं वह अधिकांश विलायतसे यहां आता है। आल या आच (संस्कृत-अचुप्त) से भी देशी लालरङ्ग बनता है। मंजीठ और आलमें एक ही प्रकारका रङ्ग होता है परन्तु आलमें वह बहुत कुछ कम होनेके कारण रङ्ग फीका देता है। मंजिष्ठाके मुकाबिले व्यवहारके लिए मंजिष्ठाको कूटकर चूर्ण बना कपड़ेमें छान लेना चाहिए। इसके सतसे नहीं रँगा जाता है। मंजीठके चूर्ण और कपड़ेको साथ साथ पानीमें खौलानेसे कपड़ेपर रंग चढ़ता है। चूर्णको कपड़ेके साथ मिल जाना चाहिए। इसलिए यह खूब महीन पीसना चाहिए मिट्टीके वर्तनके अतिरिक्त दूसरी किसी धातुका बर्तन प्रयोगमें न लाना चाहिए।

कत्था (Catechiu, Cutch)

बाज़ारमें तीन प्रकारके कत्थे मिलते हैं। (१) पपड़ी या पानमें खानेवाला कत्था। यह देखनेमें बरफीके समान होता है। रंग फीका होनेके कारण यह अच्छा नहीं होता (२) माघी कत्था। यह बर्मा (Burma) से आता है, यह काले, रङ्गका होता है और इसकी आकृत्ति बरफीकी तरह होती है भाव इसका लगभग दस आना सेर है। यह रँगने में उपयोगी होती है। (३) जौनपुरी कत्था। यह अवध प्रदेशसे आता है। इसके बड़े बड़े काले ढेले बिकते हैं। रँगनेमें इसका उपयोग किया जा सकता है परन्तु यह प्रायः दो रुपये सेर बिकता है। माघी कत्था सस्ता मिलता है, इसलिए रङ्ग बनानेके लिए इसीका उपयोग किया जा सकता है।

कई तरहके पेड़ोंकी छालोंको खौलाकर उसके सत (बङ्गल क्वाथ) को गाढ़ा करके कत्था बनता है। "क्वाथ" शब्दसे अङ्गरेज़ी शब्दकी (Catechu) उत्पत्ति हुई है। कत्थेमें बहुत मैला रहता है। मिट्टी, पत्थर, मैदा इत्यादि वस्तुएं प्रायः कत्थेके साथ मिली रहती हैं। छोटे शहरोंके दुकानदार

कत्थेका वज़न बढ़ानेके लिए कभी कभी इसे पानी में भिगोकर बेंचते हैं। असली कत्था पत्थरके समान कड़ा होता है। ज्यादा मोल लेनेके पहले कुछ कत्था पानीमें घोलकर देख लेना आवश्यक है। अच्छा कत्था पानीमें घोलनेसे गाढ़ा हो जाता है। पानीमें गरम करनेसे सब कत्थेको घुल जाना चाहिए। ठंडा करनेपर फीके रङ्गकी कीचड़की तरह नीचे बैठ जाती है और गरम करनेसे फिर इसे पानीमें घुल जानी चाहिये। इस कीचड़की सी वस्तुका वैज्ञानिक नाम (Catechiu) है, और यही कत्थेमें प्रधान रञ्जन पदार्थ है। कत्थेको पानी-में घोलकर ऊपरके साफ़ पानीको फेंक कर नीचे-की पड़ी हुई कीचड़का उपयोग करना चाहिए नहीं तो मुख्य पदार्थ पड़ा रह जायगा। कत्थेमें बहुत मैला रहनेके कारणसे कीचड़ हो सकती है, परन्तु जो हो इसी मैलेका व्यवहार करना उचित है। ताम्र या पीतलके वर्तनमें कत्थेके सत्त का व्यवहार किया जा सकता है, परन्तु बहुत दिन सत्तको रखनेकेलिए मिट्टीका बर्तन ही अच्छा होता है। खूब गरम अवस्थामें कत्थेके सत्तको छान लेनेसे सब (Catechiu) मैलेसेपृथक हो जायगा।

हल्दी (Turmeric)

यह रोज दाल या तरकारियोंमें डाली जाती है। इसलिए इसका पूरा विवरण देना आवश्यक नहीं है। हल्दीसे अच्छा उज्वल बसन्ती रङ्ग बनता है। पानीसे धोनेसे यह रङ्ग साफ़ नहीं किया जा सकता है परन्तु खारे पानीसे लाल हो जाता है। साबुनसे धोनेसे भी लाल हो जाता है और तब पानीसे धोनेसे थोड़ा फीका पीला रङ्ग आ जाता है। धूपमें यह रङ्ग कुछ उड़ जाता है, परन्तु तो भी हल्दीका रंग प्रायः व्यवहार में आता ही है। हल्दीका रंग सरल उपायसेही कपड़ेपर चढ़ाया जा सकता है। हल्दीका चूर्ण पानीमें घोलकर काममें लाया जाता है।

अनारकी छाल (Pomegranate rind):—अनारकी छाल पंसारी या वैद्यके दूकानमें मिलती है। इसका भाव लगभग १) रुपया सेर है। कच्चे अनारोंको सुखाकर पूरा फल अनारकी छालके नामसे बिकता है। इस अनारकी छालसे अच्छा पक्का और उज्वल पीला रंग होता है। इससे हल्दीके रंगकी तरह उज्वल तो नहीं परन्तु पक्का धानी और सुनहरा रंग बनाया जा सकता है। पीला रंग बनानेके लिये कई वस्तुएं हैं, यथा—हरसिंहारका फूल, कटहलकी लकड़ी, पलाशका फूल, हल्दी इत्यादि। अनारका रंग उज्वल न होनेपर भी सुन्दर और पक्का होता है। हर्रेसे भी इस प्रकारका रंग मिलता है परन्तु यह अनारके छालके रंगसे भी ख़राब होता है।

पतंग (Sappan or Brazil wood)

देखनेमें लाल चन्दनकी तरह लम्बे लम्बे लकड़ीके टुकड़े बाज़ारमें बिकनेको आते हैं। इसका भाव साधारणतया १०)—१५) रुपया मन। आजकल इसका व्यवहार कम होनेके कारण बाज़ारमें यह जल्द नहीं मिलता है। कुछ असाधु दुकानदार पतंगके बदले लालचन्दन बेंच देते हैं। वास्तवमें इन दोनोंमें भेद बहुत कम है। एक आने भर पतंगकी लकड़ीको एक पाव पानीमें खौलानेसे बहुत अच्छा लाल रंग निकलता है, परन्तु उतने ही लालचन्दनसे कुछ भी लाल रंग नहीं निकल सकता। पतंग एक जङ्गली पेड़ है, इसकी खेतीकी आवश्यकता नहीं होती। यदि इसका उपयोग किया जाय तो बाज़ारमें अधिक-तासे आने लगे और कुछ सस्ता भी बिके। पतंगसे इतना रंग निकलता है कि इसका मूल्य अधिक होनेपर भी इससे कपड़ा रंगनेमें लाभ ही होगा। ढाई रुपये सेर होनेसे भी दो पैसेका एक तोला हुआ। एक तोले पतंगकी लकड़ीसे एक साड़ी रंगी जा सकती है। पहिले इसे पतंगके रंगसे होली खेलनेके लिये अबीर

बनाया जाता था और पिचकारियोंमें इसके सत्त-का व्यवहार होता था। पतंगसे उज्वल लाल और बैजनी रंग तैयार होता है। रेशमी कपड़ोंपर इसका बहुत अच्छा पक्का रंग चढ़ता है, परन्तु सूती कपड़ोंपर इसका रंग अधिक दिनोंतक नहीं रहता, धोनेसे धीरे धीरे यह रंग उड़ जाता है।

यह रंग थोड़ा बहुत कच्चा अवश्य होता है परन्तु तो भी पतंगका व्यवहार करना अच्छा है। कपड़े छापने या रंगनेके लिये बहुत लोग जर्मनी-के रंगों (Anilin dyes) व्यवहार करते हैं। पतंग उससे ज़्यादा मंहगा नहीं है और उससे कहीं बढ़िया है। पतंगसे सकता है और रंग उड़ सुन्दर बैंगनी रंग भी बन जानेसे फिर सहजमेंही साड़ीको रंगा जा सकता है। कपड़ोंके किनारीके लिये इस रंगका उपयोग नहीं हो सकता क्योंकि यह रंग बहुत पक्का नहीं होता। तामा, पीतल या मिट्टीके बर्तनमें पतंगका रंग रक्खा जा सकता है।

कुसुम फूल (Safflower; Carthamus)

यह रंगनेके लिये एक विशेष पदार्थ है। विलायतके कृत्रिम रंग आनेपरभी भारतमें इस-का बहुत उपयोग होता है। और बहुतसा कुसुमका फूल विलायत, जापान और और देशोंमें भेजा जाता है। इसका रंग बहुत उज्वल और अच्छा होता है। विलायती स्त्रियोंके कपोलोंपर जो रूज़ (Rouge) लगाया जाता है, उसका मुख्य भाग यह कुसुम-फूलका रंग है। परन्तु आजकल ताड़कोल (Coal-tar) से बने रंग (Anilin dyes) अधिकतर सौन्दर्य्य वृद्धिके लिये काममें आते हैं।

रेशमी कपड़ोंको रंगनेके लिये कुसुमका फूल अधिकतर उपयोगमें आता है। सूती कपड़ोंपर भी उज्वल रंग चढ़ता है, परन्तु यह स्थायी नहीं होता। जैसे विवाह आदि उत्सवमें हल्दीका रंग शुभ होता है वैसेही कुसुमके फूलका रंग भी माङ्ग-लिक माना जाता है। कुसुमके फूलकी खेती विशेष र ढाका और गुजरातमें होती है। कुसुमफूलमें दो प्रकारके रंग होते हैं। एक पीला रंग जो पानीमें घुल जाता है, परन्तु रंगकी दृष्टिसे इसका कोई आदर नहीं है। दूसरा रंग लाल है, परन्तु यह पानीमें नहीं घुलता और खारे पानीमें घुल जाता है। यही लाल रंग अधिकतर काममें लाया जाता है। बाहर भेजनेके लिये कुसुम फूलसे इस पीले रंगको निकालकर उसकी पपड़ियोंको छोटे छोटे गोले बनाकर सुखाते हैं। कभी कभी थोड़ा बहुत पीला रंग रह जाता है, कपड़े रंगनेके पहले इसे धोकर निकाल देना आवश्यक है। खारे पानीसे लाल रंगको घोलकर उसमें कपड़े भिगोये जाते हैं। लाल रंग पक्का हो जाय इसलिये रंगे हुए कपड़ोंको इमली या नींबूके पानीमें भिगो लेना चाहिए।

खारे पानीमें रंगको अधिक समय रखनेसे रंग ख़राब होजाता है। कुसुम फूलके रंगके लिये मिट्टीके बर्तनका उपयोग करना चाहिए।

नील (Indigo):—एक समय बङ्गाल नीलकी खेतीके लिये प्रसिद्ध था, परन्तु किसानोंपर अत्यन्त अत्याचार होनेके कारण नीलकी खेती एक प्रकारसे बन्द हो गयी है। बिहारमें आजकल भी बहुत नील उत्पन्न होता है। नीलका व्यापार अधिकतर अंगरेज़ लोग करते हैं। रासायनिक प्रक्रियासे आजकल जर्मनीमें कृत्रिम नील बनता है। एक समय बड़ा भय था कि कृत्रिम नीलके होनेसे नीलकी खेती एकदम बन्द होजायगी, परन्तु देशमें इसका कारबार और खेती अब भी थोड़ी बहुत चली जारही है। आजकल बाज़ारमें कई प्रकारके जर्मन (Aniline) रङ्ग चल गये हैं, परन्तु उनके गुण कुछ भिन्न हैं। प्राकृ-तिक नीलको वे नहीं पा सकते। इस लेखमें जो नीलसे रंगनेकी विधि दी जारही है उसके लिये असली देशी नील चाहिये। बाज़ारमें बहुतसी दुकानोंपर यह नील मिलेगा। देखनेमें बरफ़ोके समान, वर्णमें गहरा नीला और मयूर कण्ठके सदृश उज्वल आभा होती है। प्राकृतिक नीलके या अनीलीन (Aniline) रंगके साथ खड़िया इत्यादि

मिलाकर भी बाज़ारमें विकता है। एकाएक देखनेसे कुछ पता नहीं चलता। ज्यादा खरीदनेके पहिले इस लेख में दिये हुये उपायसे कि नीलका पानी अच्छा है कि नहीं। अच्छे नीलका भाव प्रायः १२) रुपया सेर है।

कपड़े रँगते समय नीलका रङ्ग खूब पका होता है, परन्तु इससे बहुत सावधानीसे काम करना पड़ता है। नीलका पानी सहज ही सूतके भीतर नहीं जाता है, असावधान होनेसे कपड़ेपर रङ्ग नहीं चढ़ता या रङ्ग फीका रहता और धोनेपर छुट जाता है। कपड़ेको नीलसे रङ्गनेके लिये एक ही बार घने रङ्गसे कोशिश न करके कई बार फीके रङ्गसे रङ्ग चढ़ानेसे अच्छा पका रङ्ग चढ़ता है।

पानी

रङ्ग तैयार करनेके लिये बहुत साफ़ पानी चाहिये। मैला, खारा या दूषित पानीसे रङ्ग अच्छा नहीं चढ़ता। जिसे पानीमें साबुनसे अच्छा फेन नहीं निकलता वह व्यवहारमें नहीं लाना चाहिये। परन्तु यदि साबुनसे पानी थोड़ा बहुत मैला होजाय तो कोई विशेष हानि नहीं है।

कपड़ोंपर रङ्ग चढ़ानेके पहले और पीछे भी उनको पानीसे बहुत अच्छी तरह धोना चाहिये। इसलिये रङ्ग तैयार करनेके लिये अधिक पानी रखना उचित है।

सोडा और सज्जी मिट्टी।

सोडा एक प्रकारका खार है। अनेक प्रकारके पेड़ोंकी जड़ोंको जलाकर राखबनानेसे खार मिलती है। सज्जी मट्टीमें बहुत खार मिलती है। सौ में प्रायः २० या ३० भाग सोडा रहता है। भारतवर्षके बहुतसे प्रदेशोंमें सज्जी मिट्टी मिलती है। इसलिए बाज़ारमें प्रायः सब जगह ५) या ७॥) रुपया मन बिकती है। अधिकतर धोबी लोग कपड़े धोनेके लिये सज्जी मिट्टीका व्यवहार करते हैं।

'सोडे' से अधिकतर कपड़े धोनेका सोडा (Soda ash Carbobate of soda) समझना चाहिये। अम्ल रोगमें जिस (Soda bicarbonate) सोडेका व्यवहार होता है वह दूसरीही बस्तु है। यहांपर व्यवहार विधिमें जहां सोडेका उल्लेख है वहां सज्जी मिट्टीका व्यवहार किया जासकता है, परन्तु सोडेकी चार गुणी सज्जी मट्टी लेनी चाहिये। सज्जी मट्टीको पानीमें घोलकर नीचेकी पड़ी हुई मिट्टीको छोड़ ऊपरसे साफ़ पानीका व्यवहार करना चाहिये। नीचेके पड़ी हुई मिट्टीको फेंक देना चाहिये।

चूना।

पानमें जो चूना खाया जाता है वही व्यवहारमें लाया जासकता है। चूनेके ढेलोंपर पानीसे बुझाकर (Slaked) चूर्ण करके किसी मिट्टीके बर्तनमें रख देना चाहिये।

फिटकरी (Alumr)

कलकत्ते और कानपुरके कारखानेमें यह आजतक खूब बनता है। देखनेमें मिसरीकी तरह दानेदार होतो है और ।=) से ॥=) आना सेरके भावसे बाज़ारमें मिलती है। खुली रखनेसे दानोंपर चूनेकी तरह सफ़ेदी आजाती है। मिट्टीके बर्तन या लकड़ीके डिब्बेमें रखनेसे यह दोष नहीं हो सकता।

तूतिया (Sulphate of Copper; Blue vitiorl)

इसके सुन्दर नीले दाने होते हैं। मूल्य १) या १।) रुपया सेर है। यह एक प्रकारका ज़हर है और इसके पानीमें देरतक हाथ छोड़ रखनेसे नाखून नीले पड़ जाते हैं और हाथका चमड़ा कड़ा हो जाता है।

हीराकष

(Sulphate of iron, Green Vitriol, Copperas)

इस देशमें कई कारखानोंमें मिलता है। मूल्य ५) से ७) मन। विशुद्ध हीराकष कची घास के रङ्गका होता है। बाज़ारमें पीले चूर्णकी तरह यह मिलता है, परन्तु इसीसे काम चल सकता है। बहुत पुराना हो जानेसे हीराकषका रङ्ग लोहेके

मोर्चेकी तरह हो जाता है। बहुत देरतक सूखी हवामें डाल रखनेसे हीरेकषके दाने सफ़ेद पड़ जाते हैं। बरसातमें यह पानी लगकर गल जाता है।

हीराकषको मिट्टीके बर्तनमें बहुत दिनतक नहीं रक्खा जा सकता है। बोतल या लकड़ीके डिब्बेमें इसे रखना चाहिये। पानीमें घोलकर नीचे-के मैलेको छोड़कर ऊपरका साफ़ पानी व्यवहार में लाना चाहिये। कपड़ेपर थोड़ा सा गिर जानेसे पहले कुछ पता नहीं चलता। परन्तु कुछ समयके बाद लोहेके मोर्चेकी तरह दाग़ पड़ जाता है और कपड़ा कट जाता है।

बाइक्रोमेट आफ पोटाश

(Bihromate of potash)

यहांपर थोड़ेसा वाईक्रोमेटका वर्णन किया जायगा।

यह आजकल भारतवर्षमें बनता है। इसके नारंगी रंगके दाने होते है। यह ज़हर है और उसके पानी-मेंबहुत देरतक हाथ रखना उचित नहीं है परन्तु थोड़ी देर रखनेसे हाथपर कोई अनिष्ठ नहीं होता है। मूल्य १) या १।) रुपया सेर।

साबुन—आजकल सर्वत्र देशी साबुन बनता है। किसी प्रकारका अच्छा केक साबुन व्यवहारमें लाया जासकता है। साधारण देशी साबुनमें बहुत सफ़ेद मिट्टी (Kaolin) की मिलावट रहती है, उसका व्यवहार करना उचित नहीं है। ख़राब 'बार' साबुनमें अधिकतर पानी रहता है, परन्तु सुखा डालनेसे सुकड़ जाता है। सस्ता होनेपर भी इसको व्यवहार करना न चाहिये क्योंकि यह बहुत जल्द घिस जाता है।

रङ्ग तैयार करनेके उपकरण

बर्तन—रङ्गनेके लिये जिन वस्तुओंका व्यवहार होता है वे कई धातुके वर्तनोंमें पड़ने-पर दूषित हो जाते हैं। मिट्टीके बर्तन इसके लिये अच्छे होते हैं। पर थोड़ी ही असावधानीसे उनके टूट जानेका डर रहता है। मिट्टीके बर्तन तरल पदार्थको सोख लेते हैं और धोनेसे साफ़ नहीं होते, इसलिये भिन्न भिन्न वस्तुओं और तरकीबोंके लिये पृथक पृथक बर्तनोंकी आवश्य-कता है। लोहेके बर्तन इसके लिये व्यवहारमें नहीं आसकते हैं। इसमें जहाँ धातुके बर्तनोंका उल्लेख है उसे ताँबा वा पीतल ही समझना चाहिए। जस्त चढो हुई बाल्टी केवल पानी ही रखनेके काममें आसकती है। भिन्न भिन्न तरकीबों के लिये जो जो बर्तन व्यवहारके योग्य हैं वह नीचे लिखे जाते हैं।

भट्टी देना—माँड़ी या मैल छुटानेके लिये सूत या कपड़ेको खारे पानीमें उबालनेको भट्टी देना कहते हैं। इसके लिये ताँबा व पीतलकी डेगची या मिट्टीकी हँड़िया काममें लाई जा सकती है। एक मोटे और बड़े कपड़े (१०-११ हाथ लम्बा ×४४ इञ्च चौड़ा) के लिए ऐसा बर्तन व्यवहार करना चाहिये, जिसमें प्रायः १० सेर (दो गेलन) पानी आ जाता हो। ज्यादा कपड़ा होनेसे और बड़ा बर्तन होना चाहिए। भातके बर्तनमें खारा पानी अधिक देरतक रहनेसे बर्तन काला पड़ जाता है। काम हो जानेपर उस बर्तनको अच्छी तरह धोकर रख देना चाहिए।

बर्तनके भीतर एक नीचेसे छेद किया हुआ गमला रखनेसे रंग चढ़ाना सहज हो जाता है। गमलेका व्यवहार "रंगनेके साधारण नियमों" में वर्णित है।

फींचना—भट्टी देनेके बाद सूत या कपड़ेसे माड़को अच्छी तरह निकालनेके लिए उसे बार बार पानीमें निचोड़ना पड़ेगा। इसके लिए एक बड़ा मिट्टीका बर्तन या पीतलका गमला या लकड़ी का डोल आवश्यक है।

सत बनाना—हर्रा, कत्था इत्यादि वस्तुओंको खोला कर सत्त निकालनेके लिए धातुका बर्तन व्यवहार किया जा सकता है। मंजीठके सत्तके लिए मिट्टीका बर्तन होना चाहिए। पतंगके रंगके

लिए धातुके बर्तनका भी व्यवहार किया जा सकता है। परन्तु अधिक समयतक (६-७ घण्टेके ऊपर) व्यवहार करनेके लिए सब प्रकारके सतोंको मिट्टीके बर्तनमें ही रखना चाहिए।

रंग चढ़ाना—कपड़े या सूतको सत्तमें भिगोनेके लिए लकड़ी या मिट्टीके गमले से काम लिया जा सकता है, परन्तु कुसुमफूलके रंगके लिए मिट्टी-का ही गमला अच्छा होता है। नीलके रंगके लिए बड़ी नाद चाहिए। चूना, सज्जी मिट्टी या सोडे-के पानीमें कपड़े भिगोनेके लिए मिट्टी या धातु के बर्तनमें काम चल सकता है, परन्तु हीराकष बाइक्रोमेट, तूतिया या फिटकिरी अधिक समय-तक धातुके बर्तनमें रखनेसे ख़राब हो जाती है। इन सब वस्तुओंके लिए मिट्टीका गमला अच्छा होता है। रँगनेके बाद कपड़ोंको अलग अलग धोने-के लिए कई एक गमलों या डोलोंकी आवश्यकता पड़ती है।

बर्तनोंकी माप—रंगनेके लिए जो बर्तन काममें लाये जाँय इतने बड़े होने चाहिएँ, जिसमें सब कपड़ा पानीमें डूबा रहे और आवश्यकता पड़नेपर अच्छी तरह फींचा भी जा सके :—

सूतका जितना वजन हो उसका १० गुना पानी जिस बर्तनमें आ जाय वह बर्तन व्यवहार किया जा सकता है। जिस बर्तनमें प्रायः १० सेर पानी आ जाता हो उसमें एक मोटी बड़ी साड़ी रंगी जा सकती है।

चूल्हा—भट्टी देना, सत बनाने और गरम पानी-के लिए साधारण चूल्हेमें ही काम चल जायगा। यदि बर्तन बहुत बड़ा हो तो अवश्य बड़े चूल्हेकी आवश्यकता पड़ेगी। एक साड़ी या दो तीन कुर्ते रंगनेके लिए एक साधारण चूल्हा काफ़ी है।

घोंटनेकी लकड़ी—रंगको पानीमें घोलनेके लिए और कपड़ोंको भिगोकर उलटनेके लिए कोई मज़बूत लकड़ी चाहिए। डेढ़ हाथ लम्बे और एक या दो अङ्गुल मोटी लकड़ी बना लेनी चाहिए। काम हो जानेपर उसे अच्छी तरह रोज धोकर रख देना उचित है। हीराकषमें जिस लकड़ीसे काम किया जाय उससे दूसरा काम नहीं होना चाहिए।

छाननेका कपड़ा—सत्त या और पदार्थोंको पानीमें घोलकर छाननेके लिए कई मज़बूत और पुराने कपड़े रखने चाहिए। काम हो जानेपर उन कपड़ोंको अच्छी तरह धो लेना चाहिए। हीराकषके कपड़ेमें और कुछ छानना उचित नहीं।

तराज़ू और बाट—बनिए लोग जो तराज़ू व्यवहार करते हैं, उसीसे काम चल जायगा।

बाज़ारमें प्रायः ।=) में एक तराज़ू मिल जायगा। सावधानीसे व्यवहार करनेसे ऐसे ही अवैज्ञानिक तराज़ूसे ५० ग्रेनसे लेकर १ सेर तक वज़न किया जा सकता है। २० ग्रेनसे कम वस्तुको वजन करनेके लिए सुनारोंका कांटा (एक प्रकारकी छोटी तराज़ू) व्यवहार किया जा सकता है।

मापनेके लिए बर्तन—पानी मापने लिये कुछ बर्तन रखने चाहिए जिसकी समाई जानी हुई हो। एकबड़ी लम्बी सुराहीमें एक सेर, दो सेर। इत्यादि पानीसे भरकर नपे हुए पानीकी समाई चिन्हित कर लेना चाहिए। कम पानी (१ पाव या १ छ०) नापनेके लिए एक गिलासका व्यवहार करना चाहिए। एक लम्बे बांसका चोंगा भी इसी तरह व्यवहार किया जा सकता है। मापके चिन्ह निर्णय करनेके लिए पहले एक नपना (Measure glass) व्यवहार करें। ग्यालन, आउन्स इत्यादिके भी नाप इसी तरह बन सकती हैं।

ढेंकी—रंगके पदार्थोंको चूर्ण कर लेनेके लिए एक खल बट्टेसे काम हो सकता है, परन्तु ज्यादा होनेसे ढेंकीका व्यवहार करना चाहिए।

वज़न और माप

व्यवहार बिधिमें देशी या विलायती दोनों प्रकार के मांप दिए गए हैं। जो सहल और सुविधा जनक हो वह व्यवहार किया जा सकता है।

देशी वज़न और माप

१ तोला = एक रूपये का वज़न
५ " = १ छटाँक
४ छटाँक = १ पाव
४ पाव = १ सेर
४० सेर = १ मन

बिलायती वज़न (Avoirdupois weights)

८ ड्राम = १ आउन्स = ४३७½ ग्रेन
१६ आउन्स = १ पाउन्ड

बिलायती माप (Imperial measures)

८ ड्राम=१ आउन्स=४८० बिन्द
१६० आउन्स=१ ग्यालन

देशी और बिलायती नाप की तुलना

१ तोला=१८० ग्रेन
१ छटाँक=२ आउन्स
१ सेर=२ पाउन्ड
१ मन=८२ पाउन्ड
१ आउन्स=२½ तोला
१ ग्यालन=५ सेर

कच्चा और पक्का रङ्ग

जो रङ्ग पानी, साबुन या खारसे धोनेसे साफ़ नहीं हो जाता और धूपमें रखनेसे जल्द नष्ट न हो जाय उसे पक्का रङ्ग कहा जाता है। सब रङ्ग एक प्रकारके पक्के नहीं होते। हमारे देशमें सूर्य्यके प्रचाण्ड उत्तापसे बहुत अच्छे पक्के रङ्ग भी थोड़े बहुत ख़राब हो जाते हैं। रङ्ग बनाने के लिये जो नियमावली यहाँ दी जायगी उनसे प्रायः स्थायी रंग ही तयार होंगे। बहुतोंकी यह धारणा है कि फिट्किरी डालने से ही सब रङ्ग पक्के हो जाते हैं परन्तु यह ठीक नहीं। कुछ विशेष रङ्गों- के लिये फिट्किरीका व्यवहार होता है।

यहाँपर रङ्गने के जो नियम दिये जाते हैं वह निम्न श्रेणियों में विभक्त किये जासकते हैं।

१—रङ्गको (Dyestuff) पानीमें घोल कर उसमें कपड़े भिगोये जाते हैं। इस तरह कपड़ेपर रङ्ग चढ़ जाता है, और धोनेसे नहीं छूटता। इस प्रकार रङ्गनेको अङ्गरेज़ी भाषामें (Direct Colour) कहा जाता है, परन्तु यह खार साबुनसे धोनेपर साफ़ हो जाता है और धूपमें भी जल्द उड़ जाता है।

२—रङ्गके पानीमें कपड़ेको भिगोनेसे जो रङ्ग चढ़ता है वह पानीसे धोनेसे ही साफ़ हो जाता है। परन्तु रङ्ग पानी में छोड़नेसे पहले रासायनिक उपायसे रङ्गमें परिवर्त्तित किया जा सकता है। इस प्रकारका रङ्गको (Mordant colour) कहा जाता है। उदाहरण—कत्था हर्रा इत्यादि। इस श्रेणीके रङ्ग बहुत पक्के होते हैं।

३—रङ्गके पानीमें न घुलनेके कारण उसे रसा- निक नियमोंसे पानीमें घोलकर कपड़ोंपर चढ़ाया जाता है, और फिर दूसरे रासायनिक नियमसे उस रङ्गको फिर अनघुल किया जाता है। अङ्ग- रेज़ीमें इसे Vat colour कहते हैं। नीलका रङ्ग इसी तरहका है। कुसुमफूलका लालरङ्ग भी इसी तरहका है परन्तु नीलका रङ्ग पक्का और कुसुम- के फूलका कच्चा होता है।

४—कई विचित्र वस्तुओंके संयोगसे रङ्ग पैदा किया जाता है, परन्तु ये वस्तु सर्वथा भिन्न प्रकारकी होती हैं। जैसे हीराकष या पीला- कसीसका रङ्ग हरा और चूनेका रङ्ग सफ़ेद होता है, परन्तु कपड़ेको हीराकषके पानीमें भिगोकर चूनेके पानीमें भिगोने से बदामी या बसन्ती रङ्ग होता है। हर्रा और पीलाकष से बना काला रङ्ग भी इसी प्रकारका रङ्ग है। अङ्गरेज़ीमें इस प्रकारके रङ्गको (reaction colour) कहते हैं।

रङ्गकी विशेषता

एक ही प्रकारसे रङ्ग तैयार करनेपर भी रङ्ग का गाढ़ापन (Depth of shade) सदा समान नहीं होता, क्योंकि पेड़की छाल, जड़ इत्यादि सर्वदा समान वीर्यशाली नहीं होती हैं। रङ्गके पानीमें कपड़ोंको ज्यादा देरतक रखनेसे कपड़ेपर दूसरी ही तरहका रङ्ग चढ़ सकता है। रङ्गके पानी-

का तापक्रम भिन्न होनेसे रङ्गमें अन्तर पड़ सकता है। कपड़ेमें माड़ी रह जानेसे अच्छा रङ्ग नहीं चढ़ता है, कपड़ेकी बुनावट घनी या ढीली, अथवा सूत कच्चा या पक्का होनेसे भी रङ्गमें बहुत भेद हो जाता है। यदि कुछ कपड़े या सूत एक तरहके रंगमें रङ्गने हों तो एकबार ही सब रङ्गको बना लेना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो, तो रँगनेके पहिले पहले एक कपड़ेके टुकड़ेको प्रत्येक बार नमूनेकी तरह रँगकर देख लेना उचित है। रङ्गमें फरक़ होनेसे रङ्गके पदार्थोंकी मात्रा बढ़ा या घटा दी जाय। फिटकिरी, बाईक्रोमेट इत्यादि रासायनिक वस्तु प्रायः समान वीर्यशाली होती हैं, इसलिए इन सबोंकी मात्रा बतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

कपड़ोंकी किनारीके लिये खूब घना रंग चाहिए क्योंकि किनारीके रंगीन तानेके ऊपर बानेके सफ़ेद सूत पड़नेसे किनारीका रंग फीका हो जाता है। रंगीन कपड़ेमें ताना और बाना दोनों सूत रंगीन होनेसे कपड़ेका रंग सहज ही गाढ़ा किया जा सकता है। किनारीके तानेका सूत बानेसे ज़्यादा मोटा होना चाहिए नहीं तो किनारीका रंग बहुत फीका हो जायगा।

गाढ़ा रंग चढ़ानेके लिये दो या कई बार रंगना उचित है। रंगोंके पदार्थोंकी मात्रा बढ़ा देनेसे घना रंग चढ़ना मुश्किल है, क्योंकि इससे रंग पूरे कपड़ेपर अच्छी तरह नहीं चढ़ता।

रंग निर्णय

कपड़ेकी ज़मीन और किनारीके रंगका निर्णय विचार करके करना चाहिये। रंग उज्वल होनेसे ही देखनेमें अच्छा होगा यह बात ग़लत है। कुछ रंग एक साथ देखनेमें अच्छे नहीं होते हैं। अकसर फीका रंग भी विचार पूर्वक कपड़ेपर चढ़ानेसे कपड़ा देखनेमें बहुत अच्छा लग सकता है।

कपड़ेकी सफ़ेद ज़मीनपर घने रंगका (Deep shade) किनारा अच्छा होता है, जैसे काला, नीला-काला, घना नीला, घना लाल, घना कत्थई इत्यादि। यदि किनारी दो या तीन रंगकी हों तो रंगोंको विचारकर चुन लेना चाहिये। हरा, लाल, पीला, बैंगनी, कत्थई इत्यादिके संयोग अच्छे नहीं होते किनारीके नीचे हलका और ऊपर घना रङ्ग होनेसे किनारी अच्छी नहीं लगती।

साड़ीकी ज़मीनका रंग और किनारीका रंग अच्छी तरह विचार करके चुननेसे साड़ी सुन्दर मालूम होती है, परन्तु किनारीदार सफ़ेद साड़ीको रँगनेसे किनारीका रंग बहुत फीका पड़ जाता है और किनारीका गुण जाता रहता है। इसलिये कपड़ेको बुनते समय ज़मीन और किनारीको रंगीन सूतसे बुन लेनेसे यह दोष नहीं रहता। किनारी और ज़मीनके संयोगकी जगहपर कई सफ़ेद सूतका ताना होनेसे रङ्ग अच्छा खिलता है।

किनारी और ज़मीनके निम्नलिखित रङ्गका संयोग (Harmony) होनेके साड़ी देखनेमें अच्छी मालूम होती है :—

किनारीदार साड़ीके रंग

किनारीका रङ्ग	साड़ी की जमीन का रङ्ग
काला या नीला-काला	फीका नीला या आसमानी
घना कत्थई	मिटहली, बदामी, बसन्ती या बहुत फीका नीला
घना नीला	फीका हरा, बादामी, या हलका कत्थई

किनारी के ताने का रङ्ग	जमीनके तानेका रङ्ग
घना नीला	फीका कत्थई, बादामी, बसन्ती या खाकी
घना कत्थई	हलका हरा
घना हरा	फीका कत्थई
नीचे घना कत्थई और ऊपर घना लाल	गुलाबी या गेरुआ
बीचमें चौड़ा लाल और दोनों तरफ हलका काला	बादामी या ख़ाकी
बीचमें चौड़ा फीका नीला और दोनों तरफ हलका घना काला नीला	बादामी या फीका कत्थई
हलका तथा कत्थई, बीचमें चौड़ा खाकी, फिर हलका घना कत्थई फिर हलका सफेद	बादामी
चौड़ा घना नीला, फिर हलका सफेद	फीका नीला और ख़ाकी

रंगने का साधारण नियम

सूत और कपड़े पर रंग चढ़ानेके पहले उनको अच्छी तरह साफ़ कर लेना उचित है। प्रायः सूत में मांड़ी नहीं रहती है, परन्तु कोरे सूतके मोमकी तरह एक पदार्थ रहता है, जिससे वह जल्द पानी में नहीं भीगता कोरे कपड़ेके तानेके सूतमें बहुत मांडी रहती है और उसे धोये बिना रङ्ग अच्छी तरह नहीं चढ़ता है।

भट्टी देनाः—सूत या कपड़ोंको साफ करके लिये खारे पानीमें खौला लेना चाहिये। एक बड़ा पीतल या तांबेका बर्तन या मिट्टीकी हाँडीके भीतर एक गमला उलट कर रख दो। यह गमला चूल्हेके मुँहसे छोटा न होना चाहिये, और इसमें एक अंगुल अंगुल भरके चौड़े कई एक छेद होने चाहिएँ। वर्तनको चूल्हेपर चढ़ाकर उसे खारे पानीसे भर देना चाहिये १०० भाग पानीमें एक भाग सोडा (Soda ash) या ३ भाग सज्जीमिट्टी ठीक है। खारे पानीमें सूत या कपड़ोंको भिगोकर इसे उबाल ले। छेददार गमलेसे फायदा यह होता है कि कपड़ा या बर्तनके पेंदीमें लगकर जल नहीं सकता और छेदोंमें से खौलता हुआ गरम पानी कपड़ों पर सर्वदा रहता है। बीच बीचमें कपड़ोंको उलट देना अच्छा है। दो या तीन घंटे तक पानीमें खौलनेसे कपड़ा नरम होजाता है और मांड़ी निकल जाती है। उसी प्रकार और थोड़ी देर रखनेसे साफ भी होजायगा।

सूतकी पेटीको (hank) ढीला रखना अच्छा है। चरखेके सूत प्रायः छोटे छोटे पेटियोंमें बंधे होते हैं। यदि यह सूत बहुत जमे हों तो पेटियोंको खोल लटाई पर चढ़ाकर फिर पेटी बना लेनी चाहिए। पेटीका मुँह ढीला करके बांधना चाहिए नहीं तो बंधी हुई जगह पर पानी नहीं घुसेगा।

दो एक कपड़े और एक सेर सूतके लिये भीतर का गमला न होने पर भी काम चल सकता है। परन्तु ऐसी दशामें कपड़ोंको जल्दी जल्दी उलट देना आवश्यक है।

फींचनाः—भट्टी देनेके बाद सूत या कपड़े को सारे पानीसे उठाकर एक बड़े गमले या बालटीमें रखिए फिर उसे निचोड़कर पानीसे धो डालो तो सब मांड़ी निकल जायगी। हर्रा, कत्था इत्यादि कषाय वस्तुओंसे रँगनेमें थोड़ी बहुत माड़ी रहने पर कुछ विशेष हानि नहीं है, परन्तु नील या मंजीठसे रँगनेमें माड़ीको अच्छी तरह निकाल डालना चाहिये नहीं तो रङ्ग अच्छी तरह नहीं चढ़ता है।

कोरे कपड़ोंमें एक स्वाभाविक बादामी रङ्ग रहता है। एक बार खारे पानीमें खौला कर माड़ी

निकाल लेनेपर भी वह बिलकुल साफ़ नहीं हो सकता है। मटीला, बादामी, कत्थई, खाकी, काला इत्यादि मैले रङ्ग (dull shades) के कपड़े बहुत साफ़ न होनेपर भी रङ्ग उनपर चढ़ाया जा सकता है। परन्तु गुलाबी, लाल, फीका नीला इत्यादि उज्वल रङ्गों (bright shades) के लिए कपड़े खूब साफ़ होने चाहियें। धोबी लोग नये कपड़ोंको दो बार भट्ठी चढ़ाकर घासके ऊपर सुखा कर साफ़ करते हैं।

सूत या कपड़ेको साफ़ करके रङ्गना चाहिये। भिगोकर निचोड़े बिना कपड़ों पर रङ्ग चढ़ाना उचित नहीं है। यदि कुछ दिनोंके बाद रङ्गना हो तो कपड़ेको सुखाकर अच्छी तरह साफ़ जगहमें रक्खें और रङ्ग चढ़ानेके समय पहिले पानीमें भिगोकर उसे रङ्गमें डालें।

सत (decoction):—हर्रा, कत्था इत्यादि वस्तुओंसे रङ्ग बनानेके लिए पहिले इनका सत्त बना लेना चाहिये। व्यवहार-विधिमें दिये हुए परिमाणसे इन वस्तुओंको पानीके साथ उबालना पड़ेगा। पानी खौलाना ज़रूरी है, परन्तु खूब ज़ोर-से पानीको उबालनेमें कोई लाभ नहीं है। आध घंटेतक धीरे धीरे खौलनेसे सत्त तय्यार हो जाता है। कपड़ेमें छानकर मापकर देख लेना उचित है, और जितना पानी खौलानेपर कम होगया हो उतना गरम पानी मिला देना चाहिये।

सत्तको बहुत गरम करके एक गमलेमें छोड़कर उसमें सूत या कपड़ेको डुबा दे। गरम सत्तमें रङ्ग जल्द और समानभावसे चढ़ता है। यदि सत्त ठंडा होगया हो तो उसे फिर गरम कर लेना चाहिये। सत्तको चूल्हेपर चढ़ाकर धीरे धीरे खौलते हुये पानीमें कपड़े या सूतको छोड़ देना अच्छा है, परन्तु इसे जल्दी जल्दी एक लकड़ीसे उलटना चाहिये। भट्ठीकी तरह एक छेददार गमला यहां भी आवश्यक है।

ताज़ा सत्त बनाकर व्यवहार करना अच्छा है, परन्तु एक दिनमें यदि सब सत्त खर्च न हो तो उसे धातुके बर्तनमें न रखकर मिट्टीके बर्तनमें रक्खो। सत्तमें दुर्गन्ध होजानेसे उसे व्यवहार न करें।

सत्त एकबार के व्यवहारसे ही खराब नहीं हो जाता है। उससे और कई बार सूत या कपड़ा रङ्गा जा सकता है, परन्तु प्रत्येक बार रङ्ग फीका पड़ता जाता है।

रासायनिक घोल

फिटकिरी, बाईक्रोमेट, तूतिया, हीराकष, सोडा इत्यादि रासायनिक पदार्थ पानीमें जल्द घुल जाते हैं। चूर्ण करके पानीमें छोड़नेसे और जल्द घुल जाता है। व्यवहार विधिमें अधिकतर गरम पानीका व्यवहार करनेके लिये लिखा गया है क्योंकि गरम पानीमें सब वस्तुओंसे अच्छा फल पाया जाता है। बाईक्रोमेट और हीराकषके लिये गुनगुना पानी अच्छा है। बहुत गरम पानीसे कपड़ेके सूत कमज़ोर हो जाते हैं। सब रङ्ग पानीमें बिलकुल जब तक घुल न जाय कपड़ा सूतको रङ्गना उचित नहीं है। यदि घोल (solution) मैला हो तो छानकर व्यवहार करना चाहिये। रासायनिक वस्तुका एक साथ ज़ियादा व्यवहार करना अच्छा नहीं है।

घोलमें (solution) जबतक कपड़ा या सूत भीग न जायं उन्हें एक लकड़ी से उलटते रहना चाहिए नहीं तो रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ता। एक प्रकारके घोलसे दूसरे घोलमें कपड़ोंको भिगोनेके पहिले उन्हें अच्छी तरह निचोड़ कर यह देख लेना उचित है कि एक मेलसे रंग चढ़ रहा है या नहीं।

हाथमें रंग लगना—रंगनेके समय कपड़ोंको निचोड़नेमें हाथमें रंग लग जाता है। यह रंग सहज उपायसे नहीं छूटता। हाथोंको बचानेके लिए पीतलकी संड़ासी व्यवहार की जा सकती है। निचोड़नेके लिए गन्नेके रस निकालनेकी तरह के यन्त्र का प्रयोग किया जा सकता है। कम कपड़े होनेपर एक अंगौछेके भीतर रखके दो

आदमी दोनों कोने पकड़ कर मोड़नेसे बहुत रंग निकल जाता है। रंगकर एक बार पानीसे धो लेनेपर फिर हाथमें रंग लगनेका कोई भय नहीं है।

रंगनेके बाद—रंग चढ़ा कर सूत या कपड़ेको एक गमले या बालटीमें रख कर पानीसे अच्छी तरह धो डालना चाहिए। जो रंग सूतके ऊपरसे लगा हुआ है और उनके भीतर नहीं पंहुचा है उसे निकाल डालना ज़रूरी है। इसके बाद कपड़ेको निचोड़ कर फिर पानीमें धो डालें। इस तरह जबतक बहुत रंग निकलता रहे तब तक धोना चाहिए। गरम पानीसे कपड़े जल्दी धुल जाते हैं।

पारेसे सोना कैसे बना ?

[ले०—शङ्करलाल जिंदल, एम. एस-सी.]

प्रायः यह देखा जाता है कि मनुष्य पुराने समयके विचारोंपर यह कहकर हँस देता है कि वे जंगली थे और उनको ज्ञान बहुत कम था। थोड़े ही दिनकी बात है कि पश्चिमके वैज्ञानिक जब विमानोंका नाम हिन्दुओंकी पुस्तकोंमें पढ़ा या सुना करते थे तो उनको कल्पित कहकर अपने मनको शान्ति देते थे। परन्तु आज हम सैकड़ों वायुयान आकाशकी सैर करते हुए देखा करते हैं और यह विचार जीमें आता है कि हमारे पूर्वज हमसे कहीं बढ़े चढ़े थे। मनुष्यका इसमें दोष भी क्या है। उसकी आदत ही परमात्माने ऐसी बनाई है। हम यह भी कह सकते हैं कि मानव स्वभावमें बड़ा भारी आलस्य है अर्थात् वह उसी दशामें रहना चाहता है जो उसने बना ली है। यदि विचार बदलनेकी शक्ति अधिक है तो उसकी दशामें परिवर्तन हो जाता है।

इसी प्रकारकी एक और बात यह है कि पुराने समयमें कुछ वैज्ञानिक यही प्रयत्न किया करते थे कि मामूली धातोंसे सोना बन जावे। वे रातदिन भट्टियोंपर काम किया करते थे। परन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। उनका विचार था कि लोहेका तांबा बन जाता है क्योंकि जब एक लोहेका टुकड़ा तूतियाके घोलमें रखा जाता है तो उसकी सतहपर तांबा जम जाता है। जब यह विचार वर्त्तमान समयमें आया तो विज्ञान जाननेवालोंने इसका मज़ाक़ उड़ाया और कहा कि वे लोग भूलमें थे। यह असम्भव है कि एक तत्व दूसरे तत्व में परिवर्त्तित हो जावे। लेकिन जब रेडियम धातु मिल गया और वह दूसरे तत्वमें परिवर्त्तित होते देखा गया तो लोगोंके विचारोंने पल्टा खाया और असम्भव बात सम्भव प्रतीत होने लगी। परन्तु एक कठिनाई यह थी कि रेडियम तो अपने आप ही बदलता है और मामूली धातुओंमें बदलनेके हेतु एक महान् शक्तिकी आवश्यकता है। ईश्वरकी कृपासे यह बात भी कुछ सीमातक फलीभूत हुई यद्यपि व्यापारी ढङ्ग पर बनाना अभी लाभदायक नहीं है।

सर विलियम रैमसेने बड़े प्रयत्नके साथ यह साबित करनेकी चेष्टा की कि एक तत्वसे दूसरा तत्व बन सकता है परन्तु उनके प्रयोगोंको और कोई नहीं कर सका। हालमें ही जर्मनीके दो वैज्ञानिकोंने जिनके नाम (Miethe) मीथ और (Stammreich) स्तांरीख हैं एक तरकीब ऐसी मालूम की है कि उसको और वैज्ञानिक भी कर सकते हैं। आप अपनी प्रयोगशालामें एक पारद वाष्प लम्पसे काम कर रहे थे। थोड़ी देरमें उसकी दीवारोंपर स्याही जम गई और ऐसा प्रायः हो जाया करता है। इन लोगोंने ऐसा विचार किया कि यदि इस स्याहीके जमनेका कारण मालूम हो जावे तो इसको रोक सकते हैं ताकि रोशनी बहुत तेज़ मिल सके। वे समझते थे कि पारेमें ही कुछ मिलावट है जिसकी वजहसे यह स्याही पैदा होती है। सो उन्होंने इस स्याहीका विश्लेषण किया, और उनको बड़ा आश्चर्य हुआ

जब उसमें बहुत सूक्ष्म अंशमें सोना मौजूद मिला। यद्यपि इस तरकीबसे हम दुनिया भरके लिये सोना नहीं बना सकते फिर भी इससे लाभ यह है कि यह बात सिद्ध हो गई कि एक तत्त्वसे दूसरा तत्त्व बन सकता है।

इन्होंने इस स्याहीकी जांच इस प्रकार की कि इसमेंसे शोरेके तेज़ाबके साथ मिलाकर पारेको दूर किया और जो कुछ बचा उसे aqua regia में घोला। इस घोलसे सोनेका सबसे अच्छा पहचान जो Purple of Cassius के नामसे विख्यात है मिला। सोना इतना कम था कि उससे उसका आणविक भार नहीं मालूम कर सकते थे ताकि यह पता चल जावे कि यह सोना प्राकृतिक सोनेसे मिलता है या नहीं।

प्रत्येक परमाणु (atom) में एक मूलबीज होता है जोकि उसके केन्द्रमें एक छोटी बिन्दुके समान है। परमाणुका सारा वज़न इसी मूलबीज पर निर्भर है। यह बिजलीको धन और ऋण मात्राओंसे बना है। धन मात्राएँ ऋण मात्राओंसे अधिक होते हैं, जिससे मूल सर्वदा धन ही होता है। यह धन बिजलीकी अधिकताके परमाणुके विशेष गुणोंका कारण है। जैसे प्लैटिनम धातुके परमाणुमें ७८ धन मात्रा अधिक होते हैं। सोनेमें ७६, पारेमें ८० और सीसेमें ८२ होते हैं। इससे यह प्रत्यक्ष है कि यदि धन मात्रा (charge) की अधिकतामें कुछ परिवर्तन कर दिया जावे तो तत्त्व ही दूसरा हो जावेगा। ऐसा करने के चार ढङ्ग हैं। अर्थात् मूलमें धन मात्रा जोड़ देना या उसमेंसे निकाल लेना। या मूलमें ऋण जोड़ देना या उसमेंसे निकाल लेना। यह कहना तो आसान है पर करना अति कठिन है। धन या ऋण मात्राओंका निकालना तो प्राकृतिक तरीका है। मनुष्य इसको नहीं कर सकता। इसका भेद अभीतक मालूम भी नहीं हुआ है। धन या ऋण मात्राएँ मूलमें जोड़ना मनुष्य कर सकता है और प्रो॰ मीथ Prof Miethe का तरीका इस प्रकार समझाया जा सकता है।

पारेके परमाणुमें ८० धन मात्राएँ होती हैं और सोनेके परमाणुमें केवल ७६ ही होते हैं। अन्तर एक धन मात्राका है। सो यदि एक ऋण मात्रा पारेके परमाणुमें जोड़ी जा सके तो हमारा उद्देश्य पूरा हो जावेगा अर्थात् सोना तैयार हो जावेगा। यह मीथ Meith के प्रयोगमें सम्भव भी है क्योंकि उच्च शक्ति वैद्युत मात्रा high tension elctric discharge में जो उन्होंने इस्तेमाल किया ऋण मात्रा मौजूद है। ये ऋण मात्राएँ अति वेगसे भागती फिरती हैं और पारेके परमाणुओंसे टक्कर खाती हैं। कुछ ऋण मात्राओंको ऐसा मौका मिल जाता है कि पारेके परमाणुओंके मूलमें जा दाखिल होते हैं और पारेका सोना कर देते हैं। ऐसा थोड़ा ही हो सकता है क्योंकि बहुत ऋण मात्राओंमें इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वे परमाणुकी चार दीवारीको भी तोड़ सकें और बहुत सी ठीक निशानेपर नहीं टकराते कारण कि निशाना बहुत ही छोटा है। जैसे कि एक बड़े घड़ेके बीचमें एक सरसोंका दाना।

पाठकगण! हमको अभी निराश नहीं होना चाहिए। संसारमें कोई भी कार्य बिना कठिनाइयोंके नहीं होता है। और आरम्भमें कोई भी काम पूरी तौरपर नहीं हो जाता है। धीरे धीरे हज़ारों मनुष्योंके प्रयत्नसे ही सफलता प्राप्त होती है। आप वायुयानको ही लीजिए। जब यह पहिले बना तो केवल कुछ गज़ ऊँचा उठ सकता था। और अब मीलों ऊँचा जाता है। गतिमें भी कितना अन्तर है। दूसरा उदाहरण रेडियो है मारकोनीने सबसे पहिले अपने बाग़में ही इसको बनाया था और आवाज़ कुछ ही गज़ दूर जा सकती थी। अब आप देखें तो सारी दुनियांमें इसका जाल फैला है। हमको केवल यह देखना चाहिये कि अमुक काम सम्भव है या नहीं। यदि कुछ अंशमें भी सम्भव है तो फिर समय और

प्रयत्नपर इसको छोड़ देना चाहिए, धीरे धीरे पूर्णता प्राप्त हो जावेगी।

लोथर मेयरका आवर्त्त वक्र

(Periodic curve of Lothar Meyer)

[ले० श्री सत्यप्रकाश, बी. एस-सी, विशारद]

आरम्भ

मैंडलीफ़के आवर्त्त संविभाग पर दृष्टिपात करनेसे पता चलता है कि यद्यपि उसके संविभाग से रसायनिक जगत्‌का अकथनीय लाभ हुआ है, तथापि उसमें कुछ न कुछ अपवाद ऐसे विद्यमान हैं कि आन्तरिक दृष्टिसे उसके महत्वमें कुछ हीनता आजाती है। आरम्भ में मैंडलीफ़ने परमाणुभारका विशेष ध्यान रख कर तत्वोंका क्रम निश्चित किया था। उसने अपने संविभागका बीज न्यूलैंड आदि पूर्वजोंसे प्राप्त किया था। अतः उसको मौलिकताका भी अधिक श्रेय नहीं दिया जा सकता है। दुष्प्राप्य पार्थिवोंका विचार करते हुये यह कहा जा चुका है कि मैंडलीफ़के संविभागमें इन्हें उपयुक्त स्थान मिलना असम्भव है, पूर्वोक्त संविभागमें तो १८ रिक्त स्थान हैं, जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि दुष्प्राप्यपार्थिवोंकी संख्या १८ होगी पर मोसलेके एक्स-रश्मि रश्मिचित्रने प्रमाणित कर दिया है, कि इनकी संख्या १६ ही हो सकती है। अतः दुष्प्राप्यपार्थिवोंके प्रश्नमें मैंडलीफ़का संविभाग सर्वथा असफल रहा है। इसी प्रकार अष्टमसंयोजक समूह की अवस्था भी बड़ी शोचनीय है। एक स्थान पर तीन तीन तत्व रखदिये गये हैं। रूथेनम् और ओसमम‌को छोड़ कर इस समूहमें कोई भी अष्ट शक्तिक नहीं हो सकता है क्योंकि केवल ये दो तत्व ही (र ओ$_4$) रूपके उच्चतम ओषिद बना सकते हैं। स्वर्णके विषय में भी कहा जा चुका है कि प्रथम समूही होते हुए भी इसका कोई ओषिद (स्व$_2$ ओ) नहीं प्राप्त हुआ है और इसका सबसे स्थायी हरिद (स्व ह$_3$) है। मैंडलीफ़के संविभागमें एक बेढंगापन भी उपस्थित है। कोई श्रेणी छोटी है, कोई श्रेणी बड़ी हो गई है। रेडियोशक्तिक (Radioactive) तत्वोंके विषय में यह संविभाग कुछ सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। इन सब दोषोंको दूर करनेके लिये समय समय पर अनेक वैज्ञानिकों ने अपने अपने संविभाग प्रस्तुत किये हैं। सबके सम्मुख संविभागके पाँच टुकड़े उपस्थित होते हैं—(१) दो लघुखंड (२) दो दीर्घ खंड, (३) एक अपूर्ण दीर्घ खंड, (४) दुष्प्राप्य पार्थिवसमूह तथा (५) रेडियो तत्व। इन सब पर समान दृष्टि रखते हुये किसी भी संविभागका निर्माण करना सरल कार्य नहीं है।

लोथर मेयर

जिस समय मैंडलीफ़ने अपना संविभाग प्रकाशित किया था ठीक उसी समय लोथर मेयर नामक वैज्ञानिकने उतने ही महत्वका एक अन्य संविभाग प्रस्तुत किया। यह सं० १८८७ वि० में जर्मन देशस्थ ओल्डनबर्गमें उत्पन्न हुआ था। इसने पहले वैद्यकशास्त्रकाअध्ययन किया और बुन्सन नामक वैज्ञानिकके साथ कुछ अन्वेषण किये। बादको इसने गणित, भौतिक विज्ञान आदि का भी अनुशीलन किया। सं० १९५२ वि० में इसका शरीरान्त हो गया।

मैंडलीफ़ने अपना संविभाग सं० १९२६ वि० में पहली बार प्रकाशित किया था पर लोथर मेयर ने सं० १९१७ वि० में ही अपने संविभागकी एक प्रति तैयार कर ली थी और सं० १९२५ वि० में इसकी एक प्रति अपने एक मित्रको दी थी। इससे स्पष्ट है कि लोथर मेयरको आवर्त्त संविभागका रहस्य मैंडलीफ़से पूर्व विदित होगया था। पर दैवयोगसे उसकी आयोजना सं० १९२७ वि० में

में आकर प्रकाशित हुई। अतः लोथरमेयर सार्वजनतामें मैण्डलीफकी अपेक्षा १ वर्ष पश्चात् अवतरित हुआ। पर यह निस्सन्देह है कि दोनोंने एक दूसरेकी सहायता नहीं ली। सं० १९३९ वि० में इङ्गलैण्डकी रायल सोसाइटीने इन दोनों व्यक्तियों को सम्मान सूचक डेवी-पदक भेंट किया। इस प्रकार वैज्ञानिक जगतने दोनोंके संविभागको समान महत्व प्रदान किया।

परमाणु आयतन

लोथरमेयरका संविभाग प्रस्तुत करनेसे पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि परमाणु आयतन (Atomic volume) किसे कहते हैं। यह सभी जानते हैं कि यदि किसीके आयतनको उसके घनत्वसे गुणा कर दिया जाय तो उसका भार निकल आता है। ठीक इसी प्रकारका अनुमान तत्वोंके परमाणुओंके विषयमें भी कीजिये। यदि किसी तत्वके घनत्वसे उस तत्वके परमाणुभारको भाग दे दिया जाय तो हमको उसका परमाणु आयतन प्राप्त हो जायगा। उदाहरणतः लोहेका आपेक्षिक घनत्व (या विशिष्ट गुरुत्व) ७·८६ है अतः यह कल्पना की जा सकती है कि लोहेके प्रत्येक परमाणुका आयतन $\frac{५५·८४}{७·८६}$=७·१ होगा। इसी प्रकार अन्य तत्वोंका परमाणु आयतन भी निकाला जा सकता है। यहां हम कुछ तत्वोंका परमाणु आयतन देते हैं।

तत्व	परमाणुभार	परमाणुआय०	तत्व	परमाणुभार	परमाणुआय०
उदजन	१·००८	१३·२*	पोटाशियम	३९·१	४५·५
प्राव	६·९४	१३	खटिक	४०·०७	२५·६
टंक	११·०	४·४	क्रोम	५२·१	७·४
कर्बन*	१२	३·८	लोह	५५·८४	७·१
नत्रजन	१४	१५*	ताम्र	६३·५७	७·१
ओषजन	१६	१०.५*	यशद	६५·३७	९·२
प्लव	१९	१८	ब्रम	७९·९२	२५·४
सोडियम	२३	२३·७	रूपद	८५·४५	५६·२५
मग्न	२४·३२	१३·७	स्तंत्रम	८७·६३	३४·५
स्फट	२७·१	१०·४	रजत	१०७·८८	१०·२
शैल*	२८·३	११·३	नैल	१२६·९२	२५·७
स्फुर*	३१	१७	श्याम	१३२·८१	७०·६
गन्धक*	३२·०७	१६	प्लाटिनम	१९५	९·१
हरिन्	३५·४६	२०·६	यूरेनम	२३८·५	१२·७
आर्गन	३९·९	३१			

उपर्युक्त सारिणीमें अधिकांश तत्वोंका परमाणु आयतन १५° श तापक्रमके आपेक्षिक घनत्वके अनुसार दिया गया है। परमाणु आयतनकी श्रेणी में जिन संख्याओंके आगे (*) चिह्न लगा है वे तत्व सामान्य तापक्रम पर वायव्य रूपमें प्राप्त होते है अतः आयतन निकालनेके लिये उनको द्रव करनेकी आवश्यकता है। उदाहरणतः उदजन -२५२·८° श पर द्रवीभूत होता है और द्रवावस्था

में इसका आपेक्षिक घनत्व ०·०५१०५ होता है अतः इसका परमाणु आयतन = $\frac{१·००८}{·०५१०५}$=१३·२। इसी प्रकार नत्रजनका द्रवांक-१९५·८१ श है और द्रव नत्रजनका आपेक्षिक घनत्व ०·८०४२ है जिसके अनुसार इसका परमाणु आयतन १७ के लगभग होता है। ओषजनके सम्बन्धमें परमाणु आयतन निकालनेके लिये ठोस ओषजनका आपेक्षिक घनत्व लेना चाहिये। ठोस ओषजनका घनत्व १·४२ होता है अतः इसका परमाणु आयतन = $\frac{१६}{१·४२}$ =१०·७ है। इसी प्रकार ०° श तापक्रम पर द्रव करके हरिन्का परमाणु आयतन निकाला गया है।

कुछ तत्त्वोंके परमाणु आयतनमें एक और कठिनता पड़ती है। बहुतसे तत्त्व बहुरूपी (allotropy) हैं। उदाहरणतः कर्बनको लीजिये जब यह हीरेकी अवस्थामें होता है तो इसका आपेक्षिक घनत्व (३·० या ३·५५) होता है। जिसके अनुसार परमाणु आयतन ४ या ३·८ के लगभग होता है। कर्बनका दूसरा रूप लेखनिक (Graphite grapho-Iwrite) होता है जिसका घनत्व २·१—२·६ होता है अतः इस घनत्वको मान कर परमाणु आयतन ५·७ के लगभग निकलता है तीसरे प्रकारका कर्बन चूर्ण (Amorphous) होता है जिसका घनत्व १·७ के लगभग होता है जिसके अनुसार परमाणु आयतन ७ के लगभग हुआ। यही अवस्था शैल, स्फुर, गन्धक, ताल आदि की है जैसा कि निम्न अंकोंसे स्पष्ट है:—

तत्त्व	घनत्व	प० आ०
शैल—१ रवेदार	२.८	१०
२ चूर्ण	२·३५	११.२
स्फुर—१ श्वेत	१.८३	१७
२ लाल	२.१	१४.८
गन्धक		
१. समचतुर्भुजिक (Rhombic)	२.०६	१६
२. एक कणिक (Monoclinic)	१.९६	१·६८
ताल—१. पीत	३.७	२०
२. श्याम	४.७	१६
३. भूरा	५.७३	१२.६

इन अंकोंसे प्रकट है कि एक ही तत्त्वके कई परमाणु आयतन हो सकते हैं। यही नहीं, आपेक्षिक घनत्वका सम्बन्ध तापक्रम और दबावसे भी है। अधिकतर ज्यों ज्यों तापक्रम बढ़ाते जावेंगे आपेक्षिक घनत्व कम होता जावेगा और इस प्रकार परमाणुआयतन स्वाभाविकतः बढ़ जावेगा। अतः यह परिणाम निकलना अनुचित नहीं है कि तत्त्वके परमाणु आयतन परिवर्त्तनशील है। इसीसे यह भी स्पष्ट है कि जो आयोजना इस पर निर्भर रहेगी वह स्थायी नहीं हो सकती है। एक बात और समझलेनी चाहिये कि जो अंक ऊपर दिये गये हैं उनसे स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें तापक्रम भिन्न भिन्न रखा गया है। अतः सब तत्त्वों के लिये किसी एक तापक्रमको आदर्श बनाना असम्भव है। परमाणु आयतनके लिये अवस्थाकी भिन्नता भी दृष्टिगोचर हुई है। पारदको द्रवावस्थामें उपयुक्त समझा गया है। किसी द्रवको ठोस कर लिया गया है।

समस्थानिक

परमाणु आयतनके वास्तविक मूल्यको समझनेके लिये यह सर्वथा अनिवार्य्य है कि हम आधुनिककालीन सिद्धान्तों की ओर भी कुछ संकेत करदें। गताङ्कमें हमने मोसलेकी परमाणु-संख्याकी सूक्ष्म विवेचनाकी थी। इसीसे सम्बन्ध रखने वाली समस्या एक और है। गत शताब्दिके अन्त तक वैज्ञानिक जगतकी यह धारणा थी कि प्रत्येक तत्वका परमाणुभार स्थायी होता है। अर्थात् हरिन्का परमाणुभार यदि ३५.४६ है तो इस तत्त्व

के प्रत्येक परमाणुका भार ३५.४६ होगा। न इससे कम और न इससे अधिक। जबसे रेडियो शक्ति का आविष्कार हुआ है तबसे एक नई समस्या संसारके सम्मुख उपस्थित हुई है। रेडियो शक्तिके प्रयोगोंसे स्पष्ट है कि प्रकृतिमें एक तत्त्व दूसरे तत्त्वमें परिवर्तित हो सकता है। यह परिवर्त्तन किस प्रकार होता है इसका वर्णन यहां नहीं दिया जावेगा। सूक्ष्मतः युरेनियम (यु) परिवर्तित होकर अन्य जो तत्त्व देता है वे इस प्रकार हैं:—

१. यु → यु क₁ → यु क₂ → यु₂ → आओनियम → रेडियम → रेकण → रे च → रे छ → रे ज → रे झ → रे ञ → सीस।

२. थोरियम → उपथोरियम१ (MsTh) → उपथोरियम२ → रेडियो थोरियम → थोरियम क → थोरियम कण (ThEm) → थो च → थो छ → थो ज → थो झ → सीस।

३. शक्तिनम (Actinium) → रेडियो शक्तिनम → शक्तिनम कण → शक्ति नम च → शक्ति नम छ → शक्तिनम ज → शक्ति नम झ → सीस।

इस प्रकार यहाँ तीन श्रेणियाँ दिखाई गई हैं। इनसे स्पष्ट है कि युरेनियमसे अन्तमें सीस प्राप्त होता है। इसी प्रकार थोरियम और शक्ति नमका भी अन्तिम पदार्थ सीस है। सं० १९६७ वि० में आधुनिक प्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता सौदीने जनताका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि थोरियम-क, शक्तिनम-क और रेडियम तीनों रासायनिक गुणोंमें एक समान हैं। यदि तीनोंको मिला दिया जाय तो इनको फिर रासायनिक क्रिया द्वारा पृथक करना असम्भव है। इसी प्रकार आओनियम, रेडियो थोरियम, रेडियो-शक्ति नम और थोरियम, ये तत्त्व सर्वांशतः एक दूसरेके समान हैं। इस घटना के पश्चात् इनके परमाणुभार निकाले गये। परमाणुभार ज्ञात होने पर विचित्र भिन्नता प्रतीत हुई। आओनियमका परमाणुभार २३० थोरियमका २३२, तथा रेडियोथोरियमका २२८ निकला। इन सब बातोंसे यह सिद्धान्त कला कि सर्वांशतः समान गुण होते हुए भी परमाणुभार भिन्न भिन्न हो सकते हैं। मैण्डलीफ़के संविभागमें तत्त्वोंको उनके गुणोंके अनुसार स्थान प्राप्त हुआ है। यदि गुणोंको कसौटी माना जाय तो आओनियम, थोरियम तथा रेडियो थोरियम को संविभागमें एक ही स्थान पर रखना पड़ेगा। अतः हम इन तत्त्वोंको समस्थानिक (Isotopes) कह सकते हैं। जिन तत्त्वोंके रासायनिक तथा भौतिक गुण समान हों पर जो परमाणुभारों तथा रेडियो गुणोंमें भिन्न हों उन्हें समस्थानिक कहते हैं। इसी प्रकार कुछ तत्व ऐसे होते हैं जिनके परमाणुभार परस्परमें बराबर होते हैं पर उनके रासायनिक गुण सर्वथा भिन्न हैं। ऐसे तत्वोंको समभारिक (Isobares) कहते हैं जैसे उपथोरियम १, उपथोरियम २ तथा रेडियो थोरियम इन तीनों तत्वोंके परमाणुभार २२८ ही हैं पर तीनों रासायनिक गुणोंमें भिन्न हैं। उपथोरियम १ द्वितीय समूहके क-वंशीय तत्वोंके समान गुण वाला है, उपथोरियम २ तृतीय समूहके क-वंशीय तथा रेडियो थोरियम चतुर्थ समूह-क वंशीय तत्वों के समान गुणी है। इन तीनोंको समभारिक कहते हैं।

यह लिखा जा चुका है कि युरेनियम, थोरियम और शक्ति नम तीनोंका अन्तिम पदार्थ सीस है। पर विलक्षणता यह है कि तीनों सीसोंके परमाणुभार भिन्न भिन्न हैं। युरेनियमसे प्राप्त सीस का परमाणुभार २१० है थोरियमसे प्राप्त सीसका २०८.४ और शक्ति नमसे प्राप्त सीसका २१२ है। साधारण सीसका परमाणुभार २०७.२ माना गया है। खोज करने पर पता चला है कि भिन्न भिन्न खानोंसे प्राप्त सीसके परमाणुभार भिन्न भिन्न हैं।

इन सब बातोंसे यह प्रमाणित होता है कि परमाणुभार कोई निश्चित मात्रा नहीं है। इनमें परिवर्त्तन हो सकता है। जिस प्रकार दूरसे देखने पर आकाश के सब तारे एक आकारके प्रतीत होते हैं पर

वास्तवमें इन सबका आकार भिन्न है इसी प्रकार एक तत्वके सब परमाणु वाह्य दृष्टिसे समान भारीय प्रतीत होते हैं पर आन्तरिकतः सबके परमाणुभार एकसे नहीं हैं। रासायनिक क्रियाओं द्वारा जो परमाणुभार निकाले गये थे वे केवल औसत मात्र हैं। उदाहरणतः यदि खटिकका परमाणुभार ४०.०७ निकाला गया है तो इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि प्रत्येक परमाणुका भार ४०.०७ है; इनमें से कुछका भार ४० होगा, कुछका ४४ भी पर सबकी औसत निकालने से ४०.०७ अंक प्राप्त होता है। जे०जे० टामसन, सौदी, आस्टन, डेम्प्स्टर आदि वैज्ञानिकोंके विशद परिश्रमसे अनेक तत्वोंके समस्थानिकोंका अन्वेषण किया गया है। इनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं।

तत्व	परमाणु संख्या	परमाणु भार	न्यूनतम समस्थानिक	समस्थानिकोंके भार	तत्व	परमाणु संख्या	परमाणु भार	न्यूनतम समस्थानिक	समस्थानिकोंके भार
प्राव	३	६.९४	२	७.६	शर्म्म	३२	७२.५	३	७४,७२,७०
टंक	५	१०.९	२	११,१०	सेलेनम	३४	७९.२	६	८०,७८,७६,८२,७७,७४
न्योन	१०	२०.२	२	२०,२२	ब्रम	३५	७९.९२	२	७९,८१
मग्न	१२	२४.३२	३	२४,२५,२६	कृप्तन	३६	८२.९२	६	८४,८६,८२,८३,८०
शैल	१४	२८.३	२	२८,२९,(३०)	रूपद	३७	८५.४५	२	८५,८७
हरिन्	१७	३५.४६	२	३५,३७	रजत	४७	१०७.८८	२	१०७,१०९
आर्गन	१८	३९.८८	२	४०,३६	बंग	५०	११८.७	७(८)	१२०,११८,११६,१२४
पोटाशियम	१९	३९.१	२	३९,४१					११९,११७,१२२,(१२१)
खटिक	२०	४०.०७	२	४०,४४	अंजन	५१	१२१.७७	२	१२१,१२३
निकल	२८	५८.६९	२	५८,६०	ज़ीनन	५४	१३०.२	७,(९)	१२९,१३२,१३१,१३४
ताम्र	२९	६३.५७	२	६३,६५					१३६,१२८,१३०,(१२६)
यशद	३०	६५.३७	४	६४,६६,६८,७०					(१२४)
गोलियम	३१	६९.७२	२	६९,७१	पारद	८०	२००.६	(६)	(१९७-२००),२०२,२०४

उदजन, हेल, कर्बन, नत्रजन, गंधक आदि तत्वोंके कोई समस्थानिक नहीं प्राप्त हुए हैं। उपर्युक्त सारिणीसे यह स्पष्ट है कि एक तत्वके सब समस्थानिकोंकी परमाणु संख्या एक ही है, भेद केवल उनके भारोंमें है। संविभागमें गुणोंके अनुसार सब समस्थानिक एक ही, स्थान पर रखने होंगे। अतः संविभागका आधार परमाणुभारोंको बनाना कदापि उपयुक्त न होगा। आधार होनेका वास्तविक स्वत्व परमाणु संख्याको ही प्राप्त है।

एक बात और विचारणीय है। परमाणु-आयतनका हम अभी उल्लेख कर चुके हैं। समस्थानिकोंके विषयमें एक विचित्र बात दृष्टिगत होती है। कल्पना कीजिये कि आर्गन तत्वके समस्थानिकोंके भारों पर आप विचार कर रहे हैं। पहले समस्थानिकका भार १२० है। यदि इस समस्थानिकके भारको इसी समस्थानिकके घनत्वसे भाग दे दिया जाय तो आपको इसका परमाणु आयतन प्राप्त हो जावेगा इसी प्रकार आर्गनके अन्य सम-

विज्ञान
चित्र सं० १.
लोथरमेयर का
आवर्त्त वक्र
परमाणु-आयतन
परमाणु-भार
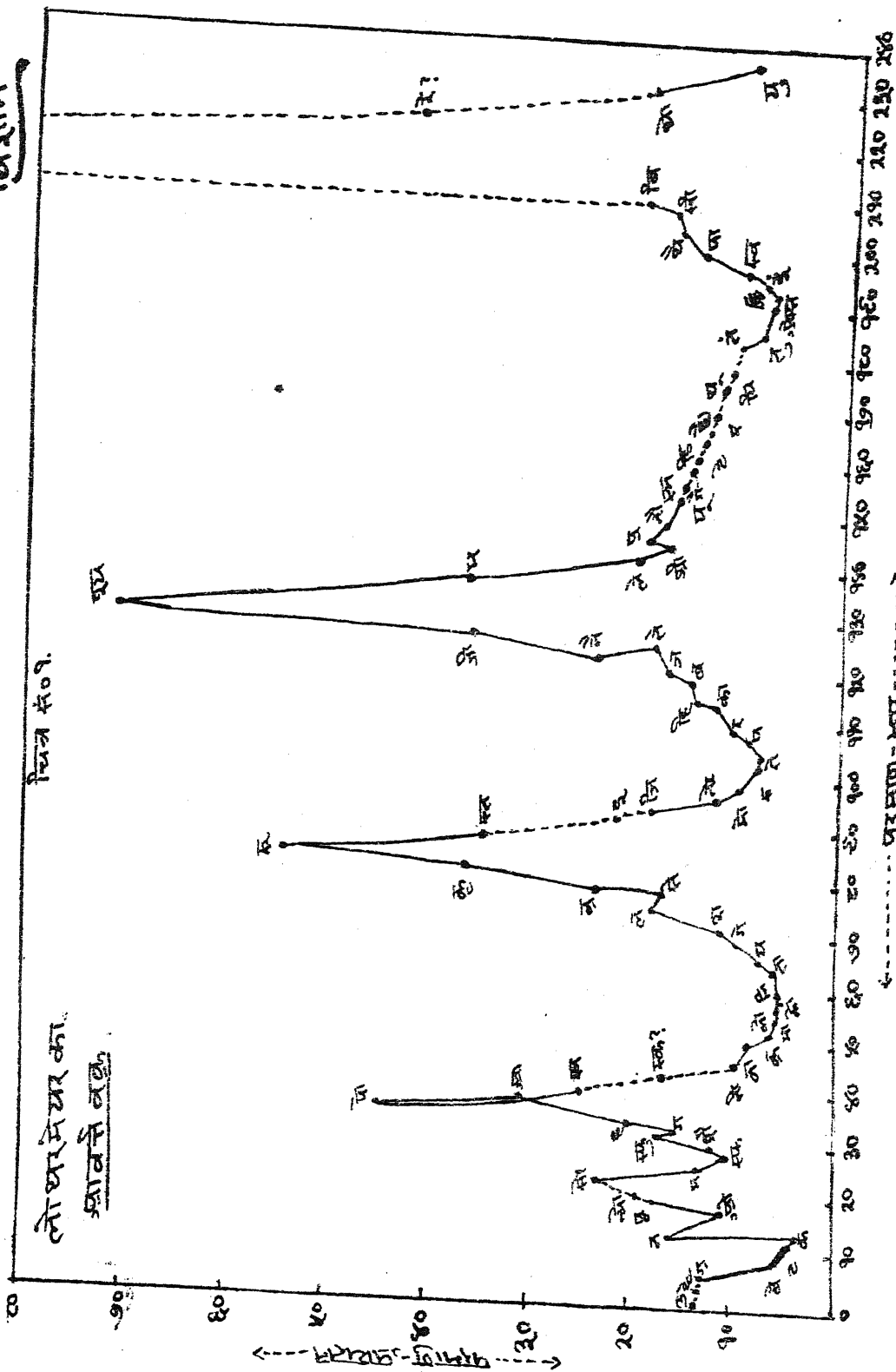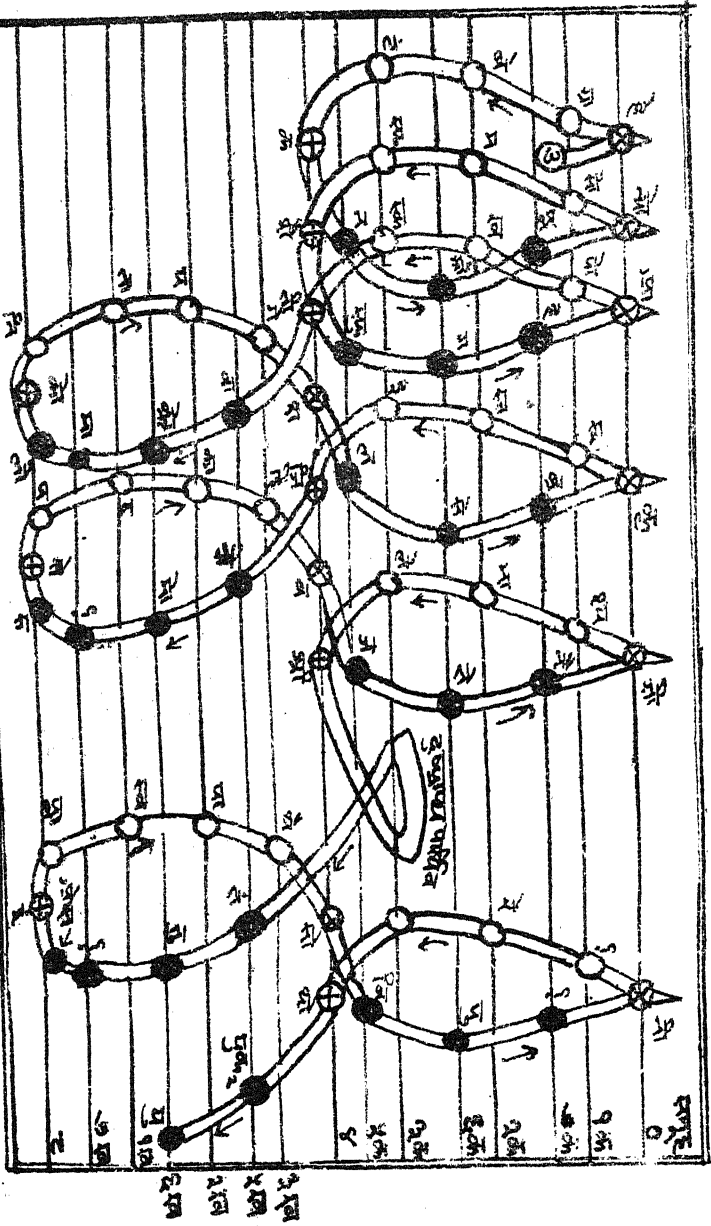
चित्र सं० २१। सौदी का मालाकार संविभाग।

स्थानिकोंके परमाणु आयतन निकाले जा सकते हैं। यदि क्रमानुसार समस्थानिकोंके घनत्व $घ_1$, $घ_2$, $घ_3$,······आदि हों तो

$$परमाणु\ आयतन = \frac{१२०}{घ_1} = \frac{११८}{घ_2} = \frac{११६}{घ_3} = ...\frac{१२२}{घ_9}$$

इस प्रकार प्रत्येक समस्थानिकके परमाणु आयतन समान होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि परमाणुभारोंकी अपेक्षा तत्वका परमाणु आयतन कहीं अधिक स्थायी अंक है। अतः जिस आयोजनामें परमाणु आयतनका विचार रक्खा जायगा, वह अधिक उपयुक्त होगी। इसप्रकार समस्थानिकोंके प्रश्नने परमाणु आयतनको एक विशेष महत्व प्रदान किया है। निस्सन्देह यह ठीक है कि परमाणु आयतन ताप क्रम, दबाव आदि बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर रहनेके कारण अधिक उपयोगका नहीं है। पर समस्थानिकों द्वारा प्रदत्त महत्व कदापि तिरस्करणीय नहीं हो सकता है। अस्तु, लोथर मेयरके आवर्त्तवक्रके समझनेके पूर्व परमाणु आयतनका समझना अनिवार्य्य था।

आवर्त्तवक्र

लोथरमेयर परमाणु आयतनके महत्वको भली प्रकार समझता था, यद्यपि उस समय वायुमंडल में कहीं भी समस्थानिकोंकी चर्चा विद्यमान नहीं थी। उसने परमाणुभार और परमाणु आयतनकी अपेक्षासे एक वक्र खींचा। उसने क-अक्ष (X-axis) पर परमाणुभार लिखे और ख-अक्ष (Y-axis) पर परमाणु आयतन लिखे। परमाणु आयतनोंकी एक सूची हम पहिले दे आये हैं। इस सूचीके अनुसार बिन्दु अंकित करने आरम्भ कर दिये कल्पना कीजिये कि उदजनका परमाणुभार १·००८ है तो क-अक्ष पर १.००८ की दूरी पर एक बिन्दु लिया। उदजनका परमाणु आयतन १३·२ है अतः उस बिन्दुसे ख-अक्षके समानान्तर १३·२ की दूरी पर एक बिन्दु अंकित किया। इस बिन्दु द्वारा उदजनका स्थान निश्चित हो गया। इसी प्रकार टंकके लिये क-अक्ष पर ११ दूरी पर एक बिन्दु लेकर उस बिन्दुसे ख-अक्षके समानान्तर ४·४ की दूरी पर बिन्दु निश्चित किया जावेगा। इस रीति का उपयोग करते हुये अन्य तत्वोंके स्थानभी अंकित किये जा सकते हैं। जब सब बिन्दु अंकित हो जाँयतो क्रमानुसार एक दूसरे बिन्दुको रेखा द्वारा संयुक्त कर देना चाहिये। सब बिन्दुओंको संयुक्त कर देने पर एक वक्र रेखा उपलब्ध होगी। यही वक्र रेखा यहाँ चित्र सं० १ में प्रकाशितकी गई है।

इस वक्र रेखा पर दृष्टि डालनेसे विदित होता है कि कुछ दूर तकतो यह रेखा नीचे उतरती आती है पर किसी एक बिन्दु तक पहुँचनेके पश्चात् फिर यह ऊपर चढ़ती है, थोड़ी दूर चल कर फिर इसे नीचे उतरना पड़ता है। इसी प्रकार यह बारी बारी चढ़ती और उतरती है। मैण्डलीफ़ के संविभागमें भी इसी प्रकारकी समस्या दृष्टिगत हुई थी। तत्वोंके क्रममें कुछदूर आगे बढ़कर सप्तम समूह तक बढ़ते थे और फिर प्रथम समूहसे आरम्भ करना पड़ता था। इस प्रक्रियाको आवर्त्तन कहते हैं। इस आवर्त्तन द्वारा जो वक्र रेखा उपलब्ध होती है उसे आवर्त्त वक्र (Periodic curve) कहा जा सकता है। इस प्रकार लोथरमेयरने सम्पूर्ण तत्वोंको एक आवर्त्त वक्र पर निश्चित कर दिया।

इस वक्रके गुणों पर ध्यान देनेसे पूर्व कुछ शब्दोंका समझलेना आवश्यक है। वक्रका कोई एक भाग लीजिये। पहिले भागमें क सबसे नीचे स्थित है। यह वक्रांशका निम्नतम बिन्दु है। दूसरे वक्रांशमें स्फ बिन्दु सबसे निम्नतम है, तीसरेमें नि बिन्दु निम्नतम है। अब दूसरी ओर देखिये। प्रथम अंशमें म उच्चतम बिन्दु है, दूसरे अंशमें (सो), तीसरेमें पो उच्चतम हैं। अतः हम निम्नतम बिन्दु क, स्फ, नि आदिको वक्रके तल (Minima) तथा उच्चतम बिन्दु म, सो, पो आदिको वक्रके शिखर (Maxima) कह सकते हैं। जो तत्व तल में स्थित है उसे तलीय तत्व और जो शिखर पर स्थित है उसे शिखरीय तत्व कह सकते हैं।

द्वितीय अंशमें वक्र (से।) बिन्दुसे नीचे उतरना आरम्भ करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि (म) बिन्दु वक्रके ढाल (Descending slope) पर स्थित है; इसी प्रकार तृतीय अंशमें ख, स्क, ती, वा, क्र आदि बिन्दु वक्रके ढाल पर हैं। पर द्वितीय अंशमें वक्र स्फ बिन्दुसे ऊपर उठने लगता है अतः शै, स्फु, ग, ह, आ बिन्दु वक्रको चढ़ाव (Upgrade) पर स्थित हैं। इसी प्रकार तृतीय अंशमें ता, य, गे, ल, से, ब्र आदि बिन्दु वक्रके चढ़ाव पर स्थित हैं। तृतीय, या चतुर्थ अंश पर दृष्टि डालनेसे पता चलेगा कि तलके समीप वक्र कुछ दूर तक गोलाकार होगया है। तृतीय अंशमें (ती) से लेकर (गे) बिन्दु तक वक्र गोलाकार है। इस गोलाकारको हम वक्रकी पैंदी (Trough) कह सकते हैं।

वक्रकी परीक्षा

इस आवर्त्त वक्र पर दृष्टि डालनेसे पता चलेगा कि इसका रूप बेढंगा है। न तो पैंदियोंमें ही ठीक गोलाई है और न इसके प्रत्येक अंश स्वरूप में एकसे हैं। पहिली बात तो यह दर्शनीय है कि इस वक्रके शिखर परमाणुभारकी वृद्धिके अनुसार ऊँचे होते जाते हैं। इस प्रकार यदि सोडियम (से।) से हम पोटाशियम, रूपद होते हुए श्याम (श्य) को पहुँचे तो हमारी ऊँचाईमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जावेगी। अतः शिखरोंका क्रम मनोहर अवश्य है। पर तलोंका क्रम ऊटपटांग है। पांचों तलोंमें परस्परमें कोई सम्बन्ध नहीं है जैसा कि निम्न अंकोंसे विदित होगा।

तलीय तत्व	कर्बन	स्फट	निकल	रुथेनम	ओसमम
परमाणुअयतन	३.५	१०.५	६.७	८.३	८.५.

कर्बनसे स्फटकी ऊँचाई अधिक है पर निकल की स्फटसे नीची हो गई है, रुथेनमकी ऊँचाई फिर ऊँची होगई है। इस प्रकारका बेढंगापन स्पष्ट ही है। शिखरोंके मनोहर क्रममें और तलोंके बेढंगेपनमें एक रहस्य है। शिखरोंके मनोहर क्रम के कारण उन पर स्थित तत्वोंके गुण समान हैं। इस प्रकार ग्रांव, सोडियम, रूपद और श्याम रासायनिक और भौतिक गुणोंमें एकसे हैं जैसा कि मैण्डलीफके संविभागसे भी स्पष्ट था। तलोंके बेढंगेपनके कारण तलीय तत्वोंमें कोई समानता नहीं है। कर्बन, स्फट, निकल आदिके गुण सर्वथा भिन्न हैं।

गुणोंकी तुलनामें एक बात और ध्यान रखने योग्य है। परमाणु आयतन निकालनेकी हमारे पास कोई भी अच्छी विधि विद्यमान नहीं है साधारणतया तो परमाणुभारको घनत्वसे विभाजित करने पर आयतन प्राप्त हो सकता है पर परमाणु आयतनसे वास्तविक तात्पर्य उस अवकाश (Space) या स्थानसे है जो एक परमाणु घेरता है। आधुनिक ऋणकण सिद्धान्तके अनुसार अवकाश इन चार बातों पर निर्भर है (१) परमाणुके अन्दर स्थित ऋण कणों और धन कणों द्वारा आच्छादित अवकाश (२) परमाणुके अन्दर इन विद्युत-कणोंके बीच का अवकाश (३) तत्वके अणुमें स्थित परमाणुओंके बीचका अवकाश, तथा (४) उस वस्तुके अणुओंके बीचका अवकाश जिसका हम उपयोग कर रहे हैं। ये चारों बातें दो भिन्न तत्वोंके लिये भिन्न भिन्न होंगी। अतः परमाणु आयतनके लिये कोई आदर्श निश्चित नहीं किया जासकता है। यही कारण है कि परमाणु आयतन निकालनेमें त्रुटि की अधिक सम्भावना है।

अस्तु, वक्रको देखनेसे प्रतीत होता है कि इसमें पाँच तरंगें हैं। इनमेंसे पहिली दो मैण्डलीफ़ के संविभागकी प्रथम दो श्रेणियोंसे मिलती हैं और प्रत्येकमें आठ आठ तत्व हैं। इसके पश्चात् वाली दो तरंगों—तृतीय और चतुर्थमें १८, १८ तत्व हैं। तत्वोंकी संख्याके बढ़ जानेका कारण यह है कि पैंदियोंमें कुछ तत्व बढ़ गये हैं जैसे तृतीयमें तीतेनियमसे लेकर यशद तक स्थित दस तत्व। मैण्डलीफ़के संविभागमें भी तृतीय दीर्घ

खंडमें सम श्रेणीके साथ एक विषम श्रेणी आकर और संयुक्त हो गई है। इसी प्रकार चक्रके चतुर्थ अंशमें जिरकोनियमसे लेकर कादमियम तक कुछ तत्व और सम्मिलित हो गये हैं। पाँचवी तरंगमें दुष्प्राप्य पार्थिवोंको स्थान मिलनेके कारण इसकी लम्बाई और अधिक बढ़गई है। इसमें ३२ तत्व हैं।

संयोजक

मैण्डलीफके संविभागमें लोह, कोबल्ट निकल; रूथेनम, रोडियम, और पलेदियम, तथा ओसमम, इन्द्र, और प्लाटिनम संयोजक थे और अष्टम समूहमें रख गये थे। यहाँ भी यह सब तत्वोंके समीप पैदियोंमें स्थित हैं और चढ़ाव और ढाल पर स्थित तत्वोंके संयोजक हैं। दुष्प्राप्य पार्थिव तत्व भी लगभग वैसे ही स्थान पर स्थित हैं अतः यह कहा जा सकता है कि ये भी एक प्रकारके संयोजक हैं जो चक्रके बायीं ओर स्थित सम्पूर्ण तत्वोंको दहिनी ओर स्थित तत्वोंसे संयुक्त करते हैं। यह उन लोगोंके विचारका कुछ समर्थन करता है जो दुष्प्राप्य पार्थियोंको मैण्डलीफके संविभागमें एक पुलके रूपमें रखकर ऊपरके तत्वों और नीचेके तत्वोंके बीचमें एक संयोजक स्थापित करना चाहते हैं। प्रथम तरङ्गमें कर्बन तलीय तत्व है और इसके यौगिक भी बड़े विचित्र बनते हैं। जैसा कि आंगनिक रसायनसे स्पष्ट है। लोह, कोबल्ठ, निकल, प्लाटिनम, आसमम, रूथेनम आदि तत्व भी बड़े विचित्र मिश्रित (Complex) यौगिक बनाते हैं। इससे स्पष्ट है कि न्यून परमाणु आयतनका मिश्रित यौगिक बनानेसे घनिष्ट सम्बन्ध है।

संयोग शक्ति

रसायन शास्त्रमें संयोगशक्तिके समान उपयोगी अन्य कोई गुण नहीं है। अतः आवर्त्त चक्रसे इस की परीक्षा भी कर लेनी आवश्यक है। दो दीर्घ तरङ्गों पर विचार करनेसे इस समस्या पर भी प्रकाश पड़ सकता है। निम्नसारिणीमें तत्वोंकी ओषजनकी अपेक्षासे उच्चतम संयोग शक्ति दिखाई गई है। इसमें तृतीय दीर्घ तरङ्ग पोटाशियमसे आरम्भ होकर कृप्तन पर जाकर समाप्त हो जाती है तथा चतुर्थ तरङ्ग रूपदसे आरम्भ हो कर जीनन तक जाती है।

१. पो खट स्क ती वा क्र मा लो को नि ता
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ३ ४ २ २
य गे श ल से ब्र कृ
२ ३ ४ ५ ६ (५) ०

२. रू स्त इ जि नो मो — रु रो प
१ २ ३ ४ ५ ६ ? ८ ६ ४
र का हि ब ज ते नै जी
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ०

इसकी परीक्षा करनेसे विदित होता है कि यदि ब्रमको छोड़ दिया जाय तो प्रथम श्रेणी तीन समूहोंमें विभक्त हो जाती है। पोटाशियमसे मांगल तक संयोगशक्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है, यशद और ब्रम तक (यदि कोई परब्रमेत लवण ($ब्र_2 ओ_7$) मिल सके) फिर संयोगशक्ति बराबर बढ़ती है, पर लोहसे लेकर ताम्रतकके तत्वोंकी संयोगशक्तिमें कोई क्रम प्रकट नहीं होता है। यही बात द्वितीय श्रेणीमें भी है। इसके भी तीन समूह हैं। रूपदसे रूथेनमतक और रजतसे नैलतक संयोगशक्तिमें वृद्धि दृष्टिगत होगी पर रोडियम, और पलेदियममें संयोगशक्तिका कोई क्रम नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि संयोगशक्तिकी समस्या लोथर मेयरके आवर्तचक्रसे कुछ भी हल नहीं हो सकती है। मैण्डलीफ़का संविभाग भी पूर्णतया इस बातमें सफल नहीं हुआ है तौ भी संयोगशक्तिका क्रम उसमें बहुत कुछ मनोहर है। रसायनशास्त्र का संयोगशक्ति पर ही आधार है। और इसीमें असफल होनेके कारण लोथर मेयर के आवर्तचक्रको सामान्यतः अधिक सम्मान नहीं दिया गया है।

भौतिक गुण

लोथर मेयरके आवर्तचक्रमें जब संयोगशक्ति की ही दुरवस्था है तो रासायनिक गुणोंके

लिये इसका आश्रय लेना केवल उपहास मात्र होगा। पर इस वक्रसे तत्वोंके भौतिक गुणोंकी परीक्षा भली प्रकार की जा सकती है। मैण्डलीफ़के संविभागमें सम और विषम श्रेणियां इस प्रकार एक दूसरेके भीतर घुसा दी गई हैं कि तत्वोंके भौतिक गुणोंकी स्पष्टता नष्ट हो गई है। तत्वोंके रासायनिक गुणोंमें जिस प्रकार आवर्तन होता है उसी प्रकार उनके भौतिक गुण आवर्त-प्रक्रियाका समर्थन करते हैं। पर सोडियम, पोटाशियम आदि नरम श्वेत धातुओंके साथ प्रथम समूहमें ताम्र, रजत, और स्वर्ण ऐसी कठोर तथा रंगदार धातुओंके रखकर संविभागकी महत्तामें कुछ हीनता अवश्य लादी गई है। दूसरी ओर सप्तम समूहमें प्लव, हरिन्, ब्रम आदि अधातुओंके साथ धातु मांगलको रखना भी अनुचित प्रतीत होता है।

पर आवर्तवक्रसे ये सब भौतिक गुण भली प्रकार स्पष्ट हैं। लोथर मेयरने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रसायनके आधुनिक सिद्धान्त' (Modern Theories of chemistry) में वक्र द्वारा प्रदर्शित चार गुणोंकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित किया है :—

(१) उन तत्वोंमें जिनका परमाणु आयतन बहुत न्यून है विद्युत् रासायनिक स्वाभावकी हीनता होगी और साधारणतया वे न तो धनात्मक ही कहे जा सकेंगे और न ऋणात्मक ही। उदाहरणतः तल-समीपी तत्वोंको देखिये। कर्बन एक ओर तो उदजनसे संयुक्त होकर स्थायी यौगिक प्रदान करता है तो दूसरी ओर हरिन्से भी संयुक्त हो सकता है। जहाँ लोह साधारण यौगिक बनाता है वहाँ यह लोहेत भी बना सकता है। यही अवस्था स्फट की है। साधारण लवणोंके अतिरिक्त इसके स्फटेत भी बन सकते हैं।

(२) वक्रके ढालमें तीव्र परिवर्तन होनेपर तत्वोंके गुणोंमें भी तीव्र परिवर्तन हो जावेगा पर ढालमें यदि अधिक परिवर्तन न हो तो गुणोंमें भी कोई विशेष भेद न पड़ेगा। उदाहरणतः पोटाशियम और खटिकमें ढालका बड़ा परिवर्तन है अतः इन दोनोंके गुण भी भिन्न भिन्न हैं पर क्रोम, मांगल और लोहके ढालमें कम परिवर्तन है अतः इनके गुण परस्परमें बहुत मिलते जुलते हैं।

(३) पहली दो तरङ्गोंमें धनात्मक तत्व या तो शिखर पर स्थित हैं या शिखरके आगे वक्रके ढाल (उतार) पर। जैसे कि श्राव, सोडियम, पोटाशियम, रूपद श्याम आदि शिखरीय तत्व धनात्मक हैं तथा ढालपर स्थित तत्व खटिक, स्कन्ध, तीतेनियम, स्तंत्रम, भारियम आदि भी। पर ऋणात्मक तत्व या तो तलपर हैं या तल और शिखरके बीचमें वक्रके चढ़ाव पर हैं। जैसे कर्बन, ओषजन, प्लव, स्फुर, गन्धक, हरिन, आदि। पर तीनों दीर्घ तरंगोंमें शिखर और तल दोनोंपर धनात्मक तत्व हैं और इनके समीपी तत्व भी धनात्मक हैं। पर शिखर और तलके बीचमें स्थित तत्व अधिकतर ऋणात्मक होंगे अथवा कभी कभी द्वयरूपी भी हो सकते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि वक्रके ढालपर शिखरसे हम ज्यों ज्यों नीचे आते हैं, तत्वोंकी धनात्मक शक्ति क्षीण पड़ती जाती है। पोटाशियम, खटिक प्रबल धनात्मक हैं पर तीतेनियम, वान्दियम, और क्रोम धातु होते हुए भी अम्लीय ओषिद प्रदान करते हैं। तलीय धातु लोह, कोबल्ट और निकल सामान्यतः धातु हैं। ताम्र, यशद, गेलियम और शर्म कभी कभी विशेष अवस्थामें द्वयरूपी (amphoteric) भी हो जाते हैं अर्थात् इनके ओषिद क्षार और अम्ल दोनों हो सकते हैं, पर मुख्यतः ये भी धातु हैं। इनके पश्चात् ताल, सेलेनम और ब्रममें ऋणात्मिका शक्ति प्रधान है।

(४) यह सम्भव है कि दो तत्वोंके परमाणु आयतन समान होते हुए भी उनके गुणोंमें विकट भेद हो। जैसे सोडियम और हरिन्के परमाणु आयतन समान हैं पर गुण सर्वथा विपरीत हैं। यही अवस्था गन्धक और हिन्दम की है।

कुछ भौतिक गुणोंकी ओर देख लेना चाहिये। शिखरीय अथवा तलीय तत्व ही या वे तत्व जो शिखर और तलके सन्निकट हैं बहुधा घनवर्धनीय (Malleable) हैं। जैसे ग्राव, बैरीलियम, मग्न, सोडियम, लोह, ताम्र, निकल, यशद, आदि। भङ्गनशील (brittle) भारी तत्व तलके ठीक पहले स्थित हैं, जैसे वान्दियम, क्रोम, मांगल, मोलद, ओसमम, और इन्द्र। घन वर्धनीय तत्व ही तान्तव (ductile) हैं अर्थात् उनके तार आसानीसे खींचे जा सकते हैं।

यह वक्र द्रवांकोंपर भी प्रकाश डालता है। परमाणु भारके अनुसार इनमें भी आवर्तन होता है। वे तत्व जो तलपर हैं या तलसे ज़रासे पहले स्थित हैं उनके द्रवांक बहुत उच्च हैं। जैसे टंक, कर्बन, शैल, लोह कोबल्ट प्लाटिनम आदि अष्टम समूही तत्व, तीतेनियम, मोलद, क्रोम आदि। इनके द्रवांक बहुधा १०००° परमांश (=७२७°श) से ऊपर हैं। वक्रके चढ़ावपर तलके समीपी तत्वोंके द्रवांक अति न्यून हैं और वे सरलतासे वाष्पीभूत किये जा सकते हैं जैसे स्फुर, गन्धक, हरिन्, गेलियम, ताल, सेलेनम, ब्रम, बंग, अंजन, तेलुरियम, नैल आदि। तात्पर्य यह है कि ज्यों ज्यों ढालपर उतरेंगे त्यों त्यों द्रवांक अधिक होता जावेगा और ज्यों ज्यों चढ़ावपर चलेंगे त्यों त्यों द्रवांक अति न्यून होता जावेगा।

ढालसे उतरनेपर तत्वोंका वर्तनत्व (refractivity) कम होता जाता है और चढालपर चढ़नेसे वर्तनत्वमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि दीर्घ तरङ्गोंमें तलीय तत्वोंके लवण रंगीन होते हैं। जैसे क्रोम, मांगल, कोबल्ट, निकल, ताम्र, स्वर्ण, प्लाटिनम आदिके। ताप और विद्युत् चालन भी द्रवांकोंसे सम्बन्ध रखता है। सरलतया द्रवित हो जानेवाले और कठिनतासे द्रवीभूत होनेवाले तत्वोंके बीचका संयोजक तत्व ताप और विद्युत्का अच्छा चालक होगा। जैसे :—

कठिनतासे द्रवित	संयोजक	सरलतासे द्रवित
लो, को, नि	तां	यं, गे
रु, रो, पं	र	कां, हि
ओस, इ, प्ला	स्व	पा, थै

ताम्र, रजत और स्वर्ण अच्छे चालक हैं।

सारांश यह है कि लोथर मेयरके संविभागमें तत्वोंके कुछ भौतिक गुण भली प्रकार प्रदर्शित किये गये हैं।

वक्रमें परिवर्तन

लोथर मेयरने प्रारम्भमें जो वक्र प्रस्तुत किया था उसका आधार परमाणुभार और परमाणु आयतन था, पर जबसे मोसलेने परमाणु संख्याका सिद्धान्त प्रस्तुत किया और सौदी, आस्टन आदि वैज्ञानिकोंने समस्थानिकोंके रूपका दिग्दर्शन कराया तबसे परमाणुभारोंका महत्व क्षीण हो गया है। इसलिए लोथर मेयरके वक्रमें भी एक परिवर्तन कर दिया गया। जहां उसने क-अक्षको परमाणुभारोंका सूचक माना था वहां अब परमाणु संख्याका उपयोग किया जाने लगा है। इस परिवर्तनसे वक्रके गुणोंमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

एक बात इस वक्रसे और विदित होती है। द्वितीय तरङ्गमें स्थित मग्नका परमाणुभार २४·३२ और स्फुरका ३१·०४ है। मग्नकी परमाणु संख्या १२ और स्फुर की १५ है। अतः दोनोंके परमाणुभारोंमें (३१·०४ − २४·३२) अर्थात् ६·७२ का अन्तर और परमाणु संख्याओंमें ३ का। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि दोनों तत्वोंके गुण सर्वथा भिन्न हैं। एक धातु है और दूसरा अधातु। अब तृतीय तरङ्गके किसीको लीजिये। मान लीजिये कि आपने वान्दियम लिया जिसका परमाणुभार ५१ है। इस तत्वसे ६·७२ परमाणुभारकी दूरीके लगभग दूसरा तत्व लीजिये। निकलका परमाणुभार ५८·६८ है। अतः निकल और वान्दियमके परमाणु भारोंमें उतनेके ही लगभग अन्तर है जितना मग्न

और स्फुरके बीचमें था। निकलकी परमाणुसंख्या २८ और वान्दियमकी २३ है अतः परमाणुसंख्याके अनुसार हम लोहको ले सकते हैं क्योंकि इसकी परमाणु संख्या २६ हैं और इसकी और वान्दियम की परमाणु संख्याओंमें उतनाही अन्तर है जितना मग्न और स्फुरकी में। अब गुणोंकी ओर दृष्टि डालिये। मग्न और स्फुरमें आकाश पृथ्वीका भेद है पर उतने ही अन्तरपर वान्दियम लोह और निकल धातु होनेसे परस्परमें बहुत समान हैं। पंचम तरङ्गमें इतने अन्तरपर स्थित दो दुष्प्राप्य पार्थिव तो इतने समान गुणी हैं कि साधारणतया एक को दूसरेसे पृथक् करना कठिन हो जाता है।

इस दोषको दूर करनेके लिये स्टुअर्ट आदि कुछ वैज्ञानिकोंने एक संशोधन किया है। परमाणु संख्याके स्थानमें उन्होंने परमाणु संख्याका घाताङ्क-गणन(logarithms) लेना आरम्भ किया है। परमाणु आयतनके स्थानमें इसका भी घाताङ्कगणन लेना अधिक उपयोगी होगा। मग्नकी परमाणु संख्या १२ का घाताङ्कगणन १·०७९२ के लगभग है और स्फुरकी परमाणु संख्या १५ का घाताङ्कगणन १·१७६१ के लगभग है अतः दोनोंके घाताङ्कगणनोंमें ·०९६९ के लगभगका अन्तर है। वान्दियमकी परमाणु संख्या २३ का घातांकगणन १·३६१७के लगभग और लोहकी परमाणु संख्या २६ का १·४१५० है दोनोंके बीचका अन्तर ·०५३३ है। मग्न और स्फुरमें इसके दुगुनेका अन्तर था तभी तो उन दोनोंके गुण भी अधिक भिन्न थे। इस प्रकार घातांकगणनके उपयोगसे यह समस्या कुछ हल अवश्य हो सकती है।

मैण्डलीफ़से तुलना

अब हम लोथर मेयरके वक्रका वर्णन यहीं समाप्त करते हैं। रायल सोसायटीने मैण्डलीफ़ और लोथर मेयर दोनोंको साथ साथ उनके संविभागोंके लिये डेवी-पदक प्रदान किये थे। इससे सिद्ध है कि दोनोंके संविभाग लगभग एक ही महत्वके हैं। इतना समझ लेना चाहिये कि मैण्डलीफ़के संविभागमें रासायनिक गुणोंपर जहां अधिक ध्यान रखा गया था वहां लोथरमेयरके संविभागमें भौतिक गुणोंको अधिक महत्व दिया गया है। दोनों व्यक्तियोंने परमाणुभारका आश्रय लिया था। यह दोनोंमें ही कमी थी। पर इसके लिये वे दोषी नहीं ठहराये जा सकते हैं क्योंकि परमाणु संख्याका सिद्धान्त उस समय स्वप्नमें भी उपस्थित न था। लोथर मेयरका परमाणु आयतन की नियुक्ति करना उसके लिये बड़ा भाग्यप्रद था क्योंकि समस्थानिकोंके द्वारा इसकी उपयोगिता कुछ प्रमाणित हो चुकी है। पर जैसा हम लिख आये हैं कि परमाणु आयतन वाह्य परिस्थितियोंके आश्रित है अतः इसे अधिक महत्व प्रदान करना उचित नहीं प्रतीत होता है। मैण्डलीफ़के संविभागसे तत्वोंकी संख्याका कुछ तो अनुमान लग सकता था पर लोथर मेयरके वक्रमें यह भी गुण नहीं है। यह वक्र पूरा भी नहीं है क्योंकि पांच तरंगोंके पश्चात् भी एक टुकड़ा ऐसा शेष रह जाता है जो मुख्य वक्र से सर्वथा पृथक् है। मैण्डलीफ़के संविभागने नये तत्वोंकी खोजमें और परमाणुभारके सुधारमें कितनी सहायता दी है, इसके स्मरण दिलानेकी यहां कोई आवश्यकता नहीं है पर लोथरमेयरके वक्रने अग्रिम ज्ञान वृद्धि, नये तत्वोंकी खोज आदिमें कुछ सहायता नहीं दी। रेडियो शक्तिक तत्वों के विषयमें सौदी ने जो उपयोगी सिद्धान्त निकाले हैं उसके लिये भी मैण्डलीफ़के संविभागकी उपयोगिता सर्वसिद्ध है। सारांशमें, मैण्डलीफ़के संविभागके समान उपयोगी लोथर मेयरका वक्र नहीं हो सकता है। वस्तुके भौतिक गुण स्थायी नहीं हैं। रंग भेद, पारदर्शिता, घनवर्धनीयता परमाणुओंके गुण नहीं हैं।

अन्य संविभाग

मैण्डलीफ़ और लोथर मेयरके समयसे अबतक अनेक संविभाग प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें तत्वोंका वर्गीकरण भिन्न भिन्न गुणोंका ध्यान रखते हुए

किया गया है। इन सबका वर्णन देना यहां आवश्यक नहीं है। स्टुअर्टने तत्वोंके रंगोंका ध्यान रख कर एक संविभाग किया था जिसका कुछ अंश नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

ह्क श्वेत	ली श्वेत	बा पीत रक्त	क्र हरा	मा लाल	लो पीत	कं लाल	नि हरा	ला नील	य श्वेत
इ श्वेत	जि श्वेत	नो लाल पीला	मो पीला	—	रु पीत	रो गुलाबी रक्त	प पूर्णरक्त	र श्वेत	का श्वेत
ले श्वेत	श्री पीत	प्र हरा	नौ गुलाबी	—	स्म पीत	यू लाल			
गै श्वेत	टे श्वेत	डि पीत हरा	है नारंगी पीत	प लाल	शू हरा	यि श्वेत			
लू श्वेत	स श्वेत	तं पीत	तु पीत	—	ओज हरा	इं हरा	स्रा भूरा	स्व भूरा	पा श्वेत

इस संविभागमें तत्वोंके हरिदोंके रंग प्रदर्शित किये गये हैं। मोटी रेखाके अन्दर सम्पूर्ण रंगीन यौगिक देनेवाले तत्व स्थित हैं। स्टुअर्टने एक आवर्त पृष्ठ (Periodic Surface) का भी निर्माण किया है जिसमें तत्वोंको मनोहर रूपमें प्रदर्शित किया गया है। इन सबमें सौदीका मालाकार (Helical representation) संविभाग देखने अत्यन्त रमणीक प्रतीत होता है। यह संविभाग चित्र सं० २से स्पष्ट है। इसमें एक समूही तत्वोंको पृथक् स्थान प्राप्त हुआ है। दुष्प्राप्य पार्थिव भी भली प्रकार दिखाये गये हैं।

गन्धक

[ले०—श्री० कालिकाप्रसाद वर्मा, बी. एस-सी., एल. टी.]

संकेत—ग; परमाणु भार ३२·०६; गुरुत्व (१०००°) ग₂=६४·१२
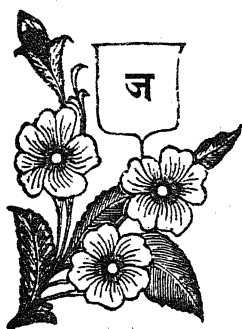
बसे संसारमें इतिहासका निर्माण हुआ तबसे इस मूल तत्वका पता चलता है। बाइबिल और होमरके ग्रन्थोंमें इसका नाम कई स्थानोंमें पाया जाता है। पहिले यह आग्नेय पदार्थके नामसे विख्यात था पर बादको लेवोसियर (Lavoisier) महाशयने इसके यथार्थ गुणोंकी तुलना करके इसको मूल तत्वोंकी पंक्तिमें स्थान दिया। यह कई भिन्न रूपोंमें पाया जाता है। इसके बहुरूपताका पता चार्ल्स(Charles) महाशयने समाकृतित्व(Isomorphism) का नियम बनाते समय लगाया था। इतिहाससे मालूम होता है कि इस महातत्वका ज्ञान भारतवासियोंको बहुत चिरकालसे है। वे इसे सुलवेरीके नामसे पुकारते थे। यह सुलवेरी लैटिन भाषामें सलफूरियम कहलाने लगी और अब आङ्गल भाषामें इसीको सलफ़र कहते हैं।

गन्धक सम्पूर्ण विश्वमें शुद्ध मूल तत्व या यौगिकके रूपमें प्रत्येक स्थानपर पाया जाता है शुद्ध गन्धक ज्वालामुखी पहाड़के प्रान्तोंमें बहुत मिलता है, जैसे आइसलैण्ड, इटली (रोमगना,

मारकेन, टसकेनी, कम्पेनिया और कलब्रिया) सिसली यूनान, ग्रीस-रूस, आस्ट्रिया, हंगरी, दक्षिणी फ्रान्स, स्पेन, न्यूजीलैण्ड, संयुक्तराज्य, चीली और पेरू तथा चीन हिन्द और केलिफोर्निया। ये प्राकृतिक गन्धक अक्सर चिकनी मिट्टी और चट्टानोंकी तहोंमें रहते हैं इनकी खानें सजीव खान (Living bed कहलाती हैं क्योंकि विश्लेषण क्रिया द्वारा उनमें सदैव गन्धक जमता जाता है, इस प्रकारकी गन्धकीय खानोंको सलफुतरा (salfatara) कहते हैं परन्तु आईसलैण्डका गन्धक विशेषकर ज्वालामुखी पहाड़ोंपर ही निर्भर है।

खानका गन्धक दो मुख्य आकारोंमें पाया जाता है। १—सलफुतरा जोकि लावामें और शान्त ज्वालामुखी पहाड़ोंके पास मिलता है गन्धिन गैस और गन्धक द्वि-अम्लजिद्की पारस्परिक रसायनी क्रिया द्वारा बनता है। २—हरसोठ (Gypsum) के बननेका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि भूमिमें स्थित खटिक गन्धित किसी कारणसे टूट कर गन्धिद्के रूपमें बदल जाता है पर क्रिया यहीं समाप्त नहीं होती बल्कि यह कर्बन द्वि-अम्लजिद् और पानीकी लगातार क्रिया होनेसे टूट कर गन्धक खटिक-कर्बनित और गन्धिन गैसके रूपमें बदल जाता है। विश्वमें कुछ ऐसे जीवाणु Bacteria पाये जाते हैं जिनकी देहमें लगभग $\frac{1}{5}$ गन्धक होता है, जैसे बेजियेटोवा एल्बा Beggiatoa Alba और क्रोमेटियम ओकीनी Chromatium okeini। इस प्रकारके गन्धककी खानें भी पाई गई हैं।

आकरीय गन्धक दो मुख्य दशाओंमें पाया जाता है:—१. गन्धिद—लोहाग्नि प्रस्तर (Iron pyrites लोग$_2$ Fe S_2 ताम्राग्नि प्रस्तर (Copper pyrites) तालोग$_2$ $CuFeS_2$ सौविराञ्जन galena सीग, रससिन्धूर Cinnaber पा ग, यशद गन्धिद Zinc Blende य. ग., अञ्जन गन्धिद Antimony Sulphide अ$_2$ ग$_3$, मैन्सिल Realgar ल$_2$ ग$_2$ हरताल Orpiment ल$_2$ ग$_3$।

२. गन्धित—जिप्सम Gypsum ख ग अ$_4$ २ ड$_2$ अ. अनार्द्र जिप्सम किसरित म ग अ$_2$ + 10 उ$_2$ अ Kiesirite ग्लोबर साल्ट सो$_2$ ग अ$_4$ + 10 उ$_2$ अ, हरा कसीस लो ग अ$_4$ + ७ उ$_2$ अ और हेवी स्पार भा ग अ$_4$

गन्धक बहुतसे जीवधारी और वनस्पतियोंमें भी पाया जाता है, जैसे प्याज़, लहसुन, सरसों, बाल, अंडा और कुछ तेल।

सम्पादन विधि—गन्धिन गैस और गन्धक द्वि-अम्लजिद्की पारस्परिक क्रियासे गन्धक निकलता है। यहाँ दोनों गैसोंके मेलसे पानी बनता है और गन्धक निकलता है। क्रिया इस प्रकार होती है।

२ उ$_2$ ग + ग अ$_2$ = २उ$_2$अ + ३ ग

$$2 H_2 S + SO_2 = 2 H_2 O + 3 S$$
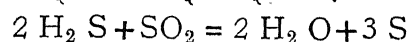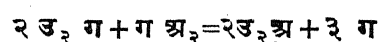
अगर गन्धिन गैस कम हवामें जलाई जाय तो पानी और गन्धक बनता है यथा

उ$_2$ ग + अ = उ$_2$ अ + ग

$$H_2 S + O = H_2 O + S$$
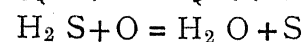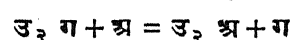
इस प्रयोगमें एक ही साथ दो क्रियाएँ होती हैं। पहिले गन्धिन गैसका कुछ हिस्सा जलकर गन्धक द्वि-अम्लजिद बनता है फिर गन्धक द्वि-अम्लजिद् गन्धिनपर प्रभाव डालकर गन्धक बनाता है यथा उ$_2$ ग + ३ अ = उ$_2$ अ + ग अ$_2$ or $H_2 S + 3 O = H_2 O + SO_2$। नम्बर दो की क्रिया ऊपर वर्णित है। इस नियमके अनुसार गन्धक ज्वालामुखी देशोंमें पाया जाता है।

आकरीय गन्धकमेंसे शुद्ध गन्धक निकालना—प्राकृतिक गन्धकमें मिट्टी और अन्यधातु अक्सर मिले रहते हैं जिनमेंसे यह शुद्ध किया जाता है। साधारण नियम तो यह है कि अगर आकरीय गन्धक हवा शून्य स्थानमें गर्म किया जाय तो भाप बन कर उड़ती है और मैल पीछे रह जाता है। इसका भट्टा एक तरफको झुका हुआ होता है। आकरीय पदार्थ इस भट्टेमें डाल कर ऊपरसे आंच दी जाती

है जिससे ऊपरी भाग जलने लगता है और इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि जलने वाले भागका नीचला हिस्सा पिघलने लगता है और धरातल झुकी रहनेके कारण यह पिघला हुआ गन्धक बह कर बाहर निकल आता है। इस रीतिका उपयोग करनेसे आकरीय गन्धकका समस्त भाग न मिल कर केवल आधा ही मिलता है और बाक़ी अम्ल जिदमें परिवर्तित होकर उड़ जाता है।

धातुक गन्धिद तपानेसे भी गन्धक निकलता है जैसे. ३ लोग₂ = लो₃ ग₄+ग₂

$$3\ Fe\ S_2 = Fe_3\ S + S_2$$
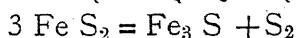
अगर गन्धिद भट्टामें डालकर भूना जाय तो कुल गन्धक गन्धिन गैस अथवा गन्धक द्वि-अम्ल-जिदके रूपमें परिवर्तित होकर निकल आवेगा जैसे, ३ लो ग₂ + ५ अ₂ = लो₃ अ₄ + ३ ग अ₂ + ३ ग

$$3\ Fe\ S_2 + 5\ O_2 = Fe_3\ O_4 + 3\ SO_2 + 3\ S$$
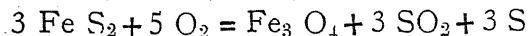
पहिले इस क्रियाका बहुत उपयोग होता था पर अब यह बिलकुल काममें नहीं लाई जाती क्योंकि अब तो पाइराइट जलाकर गन्धक द्वि-अम्लजिद फौरन बना लिया जाता है जो गन्धिकाम्ल बनानेके काममें आता है।

ला-ब्लैंक महाशयके नियमानुसार सोडा बनानेके बाद बचे हुए पदार्थमेंसे गन्धक बहुतायतसे निकाला जाता है इसमें दो चीज़ें पाई जाती हैं—१ खटिक गन्धिद (ख ग) और दूसरी खटिक अम्लजिद (ख अ)। पर इनका अनुपात भिन्न भिन्न होता है। यहांपर दो रीतियां काममें लाई जाती हैं। मिश्रणमें पहिले हवाका संचार किया जाता है। जिससे गन्धिद टूटकर खटिक-उज्ज-गन्धिद (ख ऊ₂ ग₂) और खटिक-बहु-गन्धिद (ख ग₅) इत्यादिके रूपमें हो जाता है। इसमें और भी कई एक आन्तरिक क्रियायें होती हैं जिनसे कुछ गन्धक अलग हो जाता है। यह फिर खटिक उज्जाम्लजिदसे मिलकर खटिक-बहु-गन्धिद बनाता है। इस नये पदार्थमें फिर अम्लजनका संचार होता है और पानीसे धोया जाता है। कई बार ऐसा ही करनेके बाद द्रवमें काफ़ी उज्जहरिकाम्ल डाला है जिससे गन्धकके सब नमक टूटकर या तो शुद्ध गन्धक या गन्धिन गैस निकलती है।

आजकल इस ऊपर कहे हुए नियमके स्थानपर एक और ही नियम चल निकला है। इसके अनुसार सोडा बनानेके बाद बची हुई पंकमें (जिसमें खटिक गन्धिद, खटिक कर्बनित चूना और अन्य क्षारीय गन्धिद मिले रहते हैं) पानी डालकर कर्बन अम्लजिदका संचार किया जाता है जिससे खटिक कर्बनित तलछटमें बैठ जाता है और गन्धिन गैस निकलती है।

खग + उ₂ अ + क अ₂=ख क अ₃ + उ₂ ग

$$CaS + H_2O + CO_2 = Ca\ SO_3 + H_2S.$$
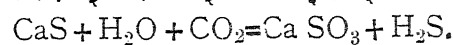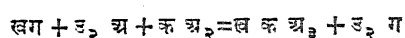
इस प्रकार प्राप्त हुई गैसमें काफ़ी हवा मिलाकर एक खास भट्टामें जिसे क्लास किल्न Claus Kiln कहते हैं। यह मिश्रण रखा रहता है यहां उसमें लोहिक अम्लजिद मिलाकर आंच दी जाती हैं जिससे गन्धक निकलकर एक छोटे कमरेमें इकट्ठा होता है। अम्लजिद यहांपर योगवाही क्रियाका काम करता है। समीकरणके रूपमें यह क्रिया इस प्रकार दिखलाई जा सकती है।

२ उ₂ ग + अ₂ = २ उ₂ अ + ग₂

$$H_2\ S + O_2 = 2\ H_2\ O + S_2$$
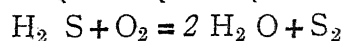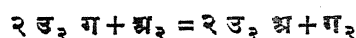
पत्थरके कोयलेमें भी कुछ भाग गन्धक होता है, अतः कोयलेकी गैस बनाती समय यह गन्धक भी गन्धिन गैसके रूपमें होकर गैसमें मिल जाता है। अब इसे लोहिक अम्लजिद परसे ले जानेमें गन्धिन गैस टूट कर लोहस वा लोहिक गन्धिद और गन्धक बनता है जैसे

(१) लो₂ अ₃ + ३ उ₂ ग = लो₂ ग₃ + ३ उ₂ अ

$$Fe_2\ O_3 + 3\ H_2\ S = Fe_2\ S_3 + 3\ H_2\ O$$

(२) लो₂ अ₃ + ३ उ₂ ग = २ लो ग + ग + ३ उ₂ अ

$$Fe_2\ O_3 + 3\ H_2\ S = 2\ Fe\ S + S + 3\ H_2O$$
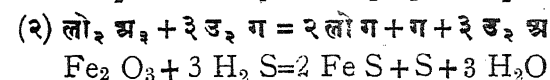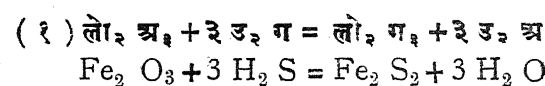
यह गन्धिद टूटकर अम्लजिद और गन्धकके रूपमें हो जाते हैं। जैसे—

(१) लो₂ ग₃ + ३ अ + उ₂ अ = लो₂ अ₃ उ₂ अ + ३ ग
$Fe_2 S_3 + 3O + H_2O = Fe_2 O_3H_2O + 3 S$
(२) २ लो ग + ३ अ + उ₂ अ = लो₂ अ₃ उ₂ अ + २ ग
२ $FeS + 3O + H_2O = Fe_2 O_3H_2 O + 2 S$.

इन उपरोक्त नियमोंके द्वारा ५० वा ६० प्रति सैकड़ा गन्धक निकल आता है परन्तु इसके बाद कर्बन द्वि-अम्लजिदमें घुलाकर बाकी गन्धक निकाललेना चाहिये।

प्रिय पाठक गण आप लोगोंने गन्धक निकालनेका नियम तो जान ही लिया अब किसी अगले लेखमें इसके शुद्ध करनेके भिन्न भिन्न नियम तथा इसका गुण इत्यादि वर्णन किया जायगा।

वनस्पति-संवर्धन-विज्ञान

[ले० श्री शङ्करराव जोशी]

वनस्पति और बीज

हम भारतवासी अति प्राचीन कालसे मानते आए हैं कि वनस्पति भी, अन्य प्राणियोंकी तरह, सजीव हैं। पाश्चात्य संसार हमारे इस सिद्धान्तको चण्डूखानेकी गप्प ही समझता था; किन्तु भारत माताके सपूत विश्व-विख्यात वैज्ञानिक सर जगदीशचंद्र बोसने इस सिद्धान्तको सप्रमाण सिद्ध करके पश्चात्य जगतका भ्रम दूर कर दिया है।

प्राणी और वनस्पतिमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वनस्पतिमें बुद्धि नहीं है और वह अचल है। वनस्पतिके शरीरकी रचना भी सादी है। प्राणी ओषजनको सांस-द्वारा ग्रहण करता है और उछ्वास द्वारा कर्बन-द्विओषिद गसको बाहर फेंकता है। परन्तु वनस्पति दिनमें कर्बन-द्विओषिद वायु ग्रहण करती है और रातमें ओषजन बाहर निकालती है। शराबका असर प्राणी और वनस्पतिपर समान रूपसे होता है, और ज़हर दोनोंका ही प्राण नाश करता है। क्लोरोफार्मसे दोनो ही अचेत हो जाते हैं। सारांशमें, दोनोंकी ही जीवन-क्रिया बहुत कुछ मिलती जुलती है।

वनस्पति तीन प्रकारकी होती है—१ वर्षायु २ द्विवर्षायु ३ बहुवर्षायु। मक्का, ज्वार, कपास आदि पौधे, जो चार छः मास ही जीवित रहते हैं वर्षायु कहाते हैं। दो वर्षतक जीवित रहनेवाली वनस्पति द्विवर्षायु और इससे ज्यादा उम्रकी वनस्पति बहुवर्षायु मानी जाती है। हमारे पूर्वजोंने अनेकों वृक्षोंकी आयुका प्रमाण ठहरा दिया है।

वनस्पति-संसार मुख्य दो वर्गोंमें विभाजित है। प्रथम वर्गकी वनस्पतिमें फूल नहीं आते और द्वितीय वर्गकी वनस्पतिमें फूल आते हैं। फ़र्न, राजहंस, आदि वनस्पति प्रथम वर्गकी, अपुष्पवर्गकी और ज्वार, मक्का, आदि द्वितीय वर्गकी अर्थात् सपुष्पवर्गकी हैं। सपुष्प वर्गकी वनस्पति दो उपवर्गोंमें विभक्तिकी गई है। ये दो उपवर्ग हैं—१ इकदलऔर २ द्विदल। ज्वार, मक्का, सुपारी, नारियल आदि इकदल वनस्पति हैं और चना, मूँग, आम आदि द्विदल। द्विदल जातिके अधिकांश पौधोंके तनेके मध्यभागमें वर्त्तुलकार गाभा (pith) होता है इसके चारों ओर काष्ठस्तर (wood-layer) रहता है। और सबसे बाहरकी ओर छाल होती है। छालकाष्ट-स्तरसे जुदी की जा सकती है। छाल और काष्टके बीच एक अति महीन स्तर रहता है, जिसे काष्ठ-जनक-स्तर (cambriem-layer) कहते हैं। यह प्रवाही और चिकना होता है। दो वर्ष उससे अधिक उम्रके पौधोंके तनेमें, इस स्तरसे काष्ठ बनता रहता है। जिससे तना मोटा होता जाता है और छाल भी मोटी होजाती है। इस प्रकार के तनेवाले पौधे द्विदल (dicotyledous) कहलाते हैं, मक्का ज्वार, सांठा आदि इकदल जातिके पौधोंके तनेको काटकर देखनेसे यह बात चट मालूम हो जाती है कि इनकी रचना बिलकुल भिन्न

प्रकार की है। इस जातिका तना गाभा-मय होता है, उसमें काष्ठका स्तर बिलकुल नहीं रहता। काष्ठ-स्तरके बजाय काष्ठ-रेशे होते हैं। छाल तनेसे अलग नहीं की जासकती। तनेके ऊपर का कड़ा आवरण छालका काम देता है। द्विदल जातिके पौधोंके तनेका भीतरी भाग और इकदल जातिके पौधेके तनेका ऊपरी आवरण सख्त होता है। इकदल जातिके पौधोंके तनेमें छालके नीचे काष्ठ-जनक-स्तरका अभाव रहता है, और यही कारण है कि छाल या काष्ट नहीं बनता। घास, बाँस, आदि कुछ इकदल वनस्पतिकी गांठों-से जड़ें (nodes) निकल आती हैं, अतएव इन्हीको बोकर नवीन पौधे तैयार किए जासकते हैं। इकदल जातिके शेष वनस्पतियोंकी कलमें नहीं उगाई जासकतीं।

वनस्पतिके अवयव—वनस्पतिके मुख्य पाँच अवयव हैं। १ जड़, २ तना और शाखाएं ३ पत्ते, ४ पुष्प और ५ फल।

जड़—बीजको बोनेपर उसमेंसे सर्व प्रथम जड़ें निकलती हैं। द्विदल वनस्पतिमें सर्व प्रथम मूसला जड़ पैदा होती है, और यही बढ़ती जाती है। बादमें इस मूसला जड़पर अन्य छोटी छोटी जड़ें भी निकल आती हैं। इकदलकी वनस्पति-के तनेके मूलमें छोटी छोटी कई जड़ोंका गुच्छा रहता है। इस प्रकारकी जड़ें झांकरा-जड़ कह-लाती हैं। बड़के समान कुछ पौधों पर टहनियों जड़ें निकलकर हवामें लटकती रहती हैं। इन्हें अन्तरिक्ष-जड़ कहते हैं।

जड़का नाजुक हिस्सा ज़मीनमेंसे खाद्य पदार्थ-का शोषण करता है। पौधोंको एक स्थानसे हटाकर दूसरे स्थानमें लगाते समय इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जड़के अग्र भाग-को हानि न पहुँचे नहीं तो पौधा सूख जायगा। जड़के अग्रभागपर—उस भागपर जो बढ़ता है, महीन रोएं होते हैं। यही रोएं अन्न ग्रहण करने-का काम करते हैं। रोओं द्वारा ग्रहण की हुई खुराक तब मूलके कड़े और मोटे भागमेंसे होकर तनेमें प्रवेश करती है और तब वहाँसे पत्ते, टहनी आदिमें जापहुँचती है। जड़का अग्रभाग टोपीसे ढ़का रहता है अतएव उसको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँच सकती और यही कारण है कि जड़ें ज़मीनमें चारों ओर फैल सकती हैं। तथा कड़ीसे कड़ी ज़मीनमें भी बहुत गहराईतक प्रवेश कर सकती हैं। जड़के अग्र भागका आच्छादन सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायता बिना दिखलाई नहीं दे सकता। केवड़ाके झाड़ की लटकती हुई जड़-पर अलबत्ता यह स्पष्टतया दिखलाई देता है। जड़ें ज़मीनसे वृक्षको मज़बूतीसे बाँध देती है, जिससे हवा, जानवर आदिके धक्कोंसे वह उखड़ नहीं सकता। जड़ें इतनी शक्तिवाली होती हैं कि पत्थरमें भी रास्ता बना लेती हैं। पौधे जड़ों द्वारा ज़मीनमेंसे खुराक सोखते हैं। कई ऐसी वनस्प-तियाँ भी हैं, जिनकी जड़ें भोज्य-पदार्थोंका संग्रह कर रखती हैं, जिससे किसी मौसममें भोजन न मिलनेपर वे नष्ट नहीं हो जाते।

तना—बीजके अँकुरित होनेपर जड़ें ज़मीन-में प्रवेश करती हैं और तना ऊपरकी ओरको बढ़ता है। तनाका ऊपरकी ओर बढ़ना ही पौधेका अंकुरित होना कहलाता है। यही अंकुर तब समय पाकर तना कहलाता है। तनेपर शाखाएं और शाखाओं पर पत्ते निकलते हैं। कुछ वनस्प-तियोंके तने सीधे ऊपरकी ओरको बढ़ते हैं। कुछ पौधोंके तने इतने नाजुक हो तेहैं एक दूसरे पौधों-के सहारे ऊपरको बढ़ते हैं। दूसरे पौधोंको सहायतासे खड़े रहने वाले पौधे-लताएं कहलाते हैं और जिन पौधोंकी सहायतासे लताएं खड़ी होती हैं, वे वृक्ष आदि नामोंसे पहचाने जाते हैं। जड़ों द्वारा ज़मीनमें सोखी हुई खूराक तनेमेंसे होकर ही पत्तोंतक पहुँचती है। तनेके कारण ही पौधा सीधा खड़ा रहकर वातावरणमेंसे हवा ग्रहण कर सकता है। कुछ पौधोंका ताना ज़मीनके अन्दर ही बढ़ता है। जन साधारण इसे जड़ ही

मानते हैं; किन्तु यह उनकी भूल है। जड़ पर पत्ते और शाखा निकल ही नहीं सकते। किन्तु सुरण आदि वनस्पतिके ज़मीनके अन्दरके तनेपर आँखें होती हैं, जिनमेंसे पत्ते निकलते हैं। आँखोंका अस्तित्व ही तनेका परिचायक है। आँखोंको आदिकी बाल-स्थिति मान सकते हैं।

पत्ता—पत्तेके ऊपरके भागमें पेशियोंका मोटा स्तर होता है और नसोंके जालसे पत्ता फैला हुआ रहता है। पत्तोंपर सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जो उसके भीतरी भागतक फैले रहते हैं। इन्हीं छिद्रोंद्वारा पौधा श्वासोच्छ्वासकी क्रिया सम्पन्न करता है। कई झाड़ोंके पत्ते आड़े होते हैं। इन पत्तोंकी दोनों बाजूपर सूक्ष्म रंध्रोंकी संख्या समान रहती हैं। जलज वनस्पतिके पत्तेके ऊपरी बाजूपर ही रंध्र होते हैं। वनस्पतिको अपने पोषणके लिये कई प्रकारके रासायनिक द्रव्य आवश्यक होते हैं। जड़ें ज़मीनमेंसे इन द्रव्योंको सोखकर पत्तोंतक पहुँचा देती हैं। सूर्य प्रकाशकी सहायतासे कर्बनद्वि-ओषिद गैस पत्तोंके अन्दर प्रवेश करती है और तब पत्तोंमें रासायनिक क्रिया द्वारा स्टार्च (मांड जातीय) पदार्थ तैयार होता है। यह स्टार्च तब वनस्पतिके प्रत्येक भागमें पहुंच कर उसका पोषण करता है। कुछ पौधे इसे संग्रह कर रखते हैं। पौधेके बीजोंमेंसे प्रोटीड नामक नत्रजनयुत पदार्थमें भी स्टार्च वर्त्तमान रहता है। स्टार्च पौधेके हरे भागमें ही तैयार होता है। इसी क्रियाको पौधेकी पाचन-क्रिया कहते हैं। सूर्यके प्रकाश और खुली हवाकी सहायतासे ही यह क्रिया जारी रहती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वनस्पति जीवनके लिए प्रकाश और वायु कितने आवश्यक हैं। अँधेरे और रातके समय स्टार्च नहीं बनता। रातको पौधा निरुपयोगी वायुको उच्छ्वास द्वारा बाहर फेंक देता है। पाचन-क्रिया रात दिन चला करती है। प्रत्येक पौधेमें काफ़ी पानीका होना अनिवार्य्य है। पानीके बिना पौधा सूख जाता है। उसके सूक्ष्म-रंध्र बन्द हो जाते हैं। रंध्रोंके बन्द हो जानेसे पोषण क्रिया रुक जाती है जिससे पौधा मर जाता है। पानीसे पौधेको शक्ति प्राप्त होती है और पोषक द्रव्य पौधेके सारे शरीरमें पहुँचता है। जिन पौधोंके पत्ते पतझड़में झड़ जाते हैं उनकी जीवन क्रिया नए पत्ते निकलने तक बन्द रहती है।

विपुल वनस्पतिसे हरे भरे जंगलोंके भूकम्पके कारण ज़मीनके अन्दर दब जानेसे ही कोयलेकी खानों का निर्माण हुआ है। वनस्पतिको पोषक वायु नहीं मिल सका, जिससे वे धीरे धीरे कोयलेमें परिणत होगई। ज़मीनपरकी वनस्पति हवामेंसे कर्बनको ग्रहण कर हमपर बड़ा उपकार करती है। तने, और पत्ते पौधेको भोजन पहुँचाते हैं, अतएव वे पोषक इन्द्रिय कहलाते हैं और फूल, फल पुनरुत्पादक इन्द्रिय हैं।

फूल—फूल कई प्रकारके होते हैं। परिपूर्ण फूलमें भिन्न भिन्न चार भाग या आवरण होते हैं। सबसे बाहरका आवरण हरे रंगका होता है, जिसको बाह्याच्छादन कहते हैं। इसके भीतरके जुदे जुदे रंगकी पंखुडी वाले भागको 'पंखुड़ी' (corolla) कहते हैं। जब इन दोनों आवरणों का रंग और रूप एकसा होता है, तो उसको पुष्पावरण कहते हैं। जिन फूलोंमें एक ही आवरण होता है, उसे भी इसी नामसे पुकारते हैं। तीसरे आवरणके अग्र भागपर फूली हुई परिमित या अपरिमित डंडियाँ होती हैं जिनको पुंकेसर (Stomens) कहते हैं। इन लम्बी डंडियोंको नर-तन्तु (filaments), फूले हुए अग्रभागको पराग कोष (anther) और उसमेंसे निकलने वाली पीली रजको पराग कहते हैं। बिलकुल भीतरको स्त्रीकेसरका (pistil) वेष्टन होता है इसके नीचेके फूले हुए भागको बीजकोष नाम दिया गया है। स्त्रीकेसरके अग्रभागको स्त्रीकेसराग्र (stigma) कहा जाता है। कुछ फूलोंमें स्त्रीकेसराग्र और बीज-कोशके बीचमें एक पोली नली होती है जिसे पराग-वाहिनी नाम दिया गया है

प्रत्येक आवरणके भाग विभक्त या संयुक्त होते हैं और आवरण भी संयुक्त या विभक्त पाए जाते हैं। ऊपरके दो आवरण शेष दो आवरणोंको रक्षा करते हैं। पुनरुत्पादिनके लिए पुंकेसर और बीज-कोषका होना अनिवार्य है। यह दोनों आवरण एक ही फूलमें या दो जुदे जुदे फूलोंमें पाये जाते हैं। परागकण और बीजांडके संयोग बिना बीजोत्पत्ति नहीं हो सकती। परागकणोंके स्त्री केसराग्रपर पड़नेके बाद उसमेंसे एक नली निकलती है जो पराग वाहिनीमेंसे होकर बीज-कोष तक फैली रहती है। पवन, कीड़े मकोड़े या निसर्गकी सहायतासे पराग स्त्रीकेसराग्रपर पड़ता है। अकसर देखा जाता है कि यद्यपि स्त्रीकेसर और पुंकेसर एक ही फूलमें मौजूद होते हैं तो भी वे एक ही समय परिपक्व नहीं होते। परिणाम यह होता है कि भिन्न फूलके पुंकेसरके बिना गर्भ धारण नहीं होता। भिन्न भिन्न फूलोंके स्त्री पुंकेसरके संयोगसे होने वाली गर्भ धारणाको तिर्यग् जनन (cross fertilisation) कहते हैं। इस प्रकारके गर्भ धारणसे बहुत लाभ पहुँचता है। चींटी, तितली, पतंग, शहदकी मक्खी आदि प्राणी शहदके लालचसे फूलके भीतर घुसते हैं तब उनके पंखों पाँव, आदिपर पराग चिपट जाता है। यही कीड़े जब दूसरे फूलपर जाकर बैठते हैं, तो यह पराग उस फूलके स्त्रीकेसराग्रपर गिर जाता है। जिससे गर्भ धारण हो जाती है। प्रकृतिने फूलोंको भाँति भाँतिके रंग, सुगंध, मधु आदि साधन प्रदान किए हैं, जिनसे कीट-पतंग उनकी ओर आकर्षित होते हैं। जिन फूलोंको हवा द्वारा पराग प्राप्त होता है, उनके रक्षक-आवरण पूरी तरहसे नहीं बढ़ते या बिलकुल ही नहीं बढ़ते। ऐसे फूलोंमें परागकण आवश्यकतासे बहुत ही अधिक होते हैं और बहुतसे पराग कण हवामें उड़ कर नष्ट भी हो जाते हैं।

इस प्रकारका गर्भ धारण सजातीय वनस्पतिमें ही होता है। प्राणि-संसारकी तरह वनस्पति-संसारमें भी वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है। भिन्न रंगके गुलाबके संयोगसे नवीन रंगके गुलाबकी उत्पत्ति होती है। इसे अँगरेज़ीमें हायब्रीडाईज़ेशन कहते हैं। इसे ही हमने 'वर्ण-संकर' नाम दिया है। वर्ण संकरसे उत्पन्न पौधोंके फलोंमें बीज बहुत कम होता है। कुछ पौधोंके फल और पत्ताका आकार बढ़ जाता है। मौसमी फूलोंके पौधोंमें इस क्रियाका बहुत ज़्यादा उपयोग किया जाता है। यूरोपमें वर्ण संकरकी क्रियासे अनेकों प्रकारके फूलोंका रूप, रंग, आकार बढ़ाया जाता है।

फल—फल कई प्रकारके होते हैं किन्तु साधारणतः वे मुख्य तीन विभागोंमें बाँटे जा सकते है १ गूदा वाले फल, जो पकनेपर नहीं फटते, २ गूदा रहित फल जो पकने पर फट जाते हैं, और ३ एक बीज वाले फल।

प्रकृतिने वनस्पतिके वंश-विस्तारके लिए कई योजनाएं कर रक्खी हैं। कुछ बीजोंपर पंख होते हैं जिनकी सहायतासे वे हवामें उड़कर बहुत दूर दूरतक जा पहुँचते हैं। कुछ पौधे पानीमें या जलके तटपर उगते हैं। इनके बीज पानीके बहावके साथ बहकर दूर दूर पहुँच जाते हैं। कुछ पौधोंके फल पक्षी मनुष्य आदि खाते हैं। और उनकी विष्ठाके साथ ये बीज अपने जनकसे बहुत दूर जा गिरते हैं। कुछ पौधोंके बीज भेड़ा बकरी आदि पशुओंके बदनपर चिपक जाते हैं। और कुछके बीज पवनके झकझोरेसे चारों ओर बिखर कर वंश विस्तारमें सहायता पहुँचाते हैं। प्रत्येक पके हुए बीजमें एक वृक्षांकुर (गर्भ-वृक्ष होता है इसे अंगरेज़ीमें 'एम्ब्रियो' कहते हैं। यही समय पाकर बढ़ता और वृक्ष बन जाता है। मूँगफली, चना, एरंडी आदिके बीजकी दालें अलग करनेपर यह वृक्षांकुर दिखाई देता है। वृक्षांकुरके दोनों तरफ जो दो दालें होती हैं वे पोषक-पत्ता (cotyledous) या 'दाल' कहते हैं। इसके मूलपर कुछ उठा हुआ भाग होता है, यही भावी पौधेका तना है। इसे हम

भावी तना (plumule) कहते हैं। इसके पास ही एक दूसरा अवयव होता है जो कुछ लम्बा और नीचे की ओर को मुड़ा हुआ होता है। यही भावी मूल है। पूर्णतया पके हुए बीजको तरी, प्रकाश, उष्णता, आदि की अनुकूलता प्राप्त होते ही वह अंकुरित हो जाता है। मूलांकुर जमीन की ओर बढ़ने लगता है और तनेका अंकुर, रक्षक पत्तोंके फटकर जुदे होते ही ऊपरकी ओरको बढ़ता है। जबतक जड़ें जमीनमेंसे खुराक सींचने योग्य नहीं होतीं, तबतक नवजात पौधेका पोषण रक्षक पत्ते या दालमेंकी खुराकसे ही होता रहता है। जड़ें जमीनमें से भोजन ग्रहण करती हैं, और धीरे धीरे पत्ते आदि अवयव हरा रंग ग्रहण कर अपनी जीवन-क्रिया चलाने लगते हैं। रक्षक-पत्तों-में भावी पौधेके पोषणके लिए भोजन संग्रहीत रहता है। एरंडीके बीजके रक्षक पत्तोंमें पोषक द्रव्य चर्बी सा चिकना होता है। कुछ बीजोंमें यह पदार्थ आटेसा होता है।

जन-साधारण अपनी भाषामें कई फूलों को फल ही कहते हैं। अंजीर, बड़, गूलर आदिके फूलोंको ही हम लोग फल कहते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो इस गोल आकृतिके अन्दर फूलका समूह रहता है। गेहूँ ज्वार आदिके दानोंको हम बीज कहते हैं किन्तु बीज नहीं फल हैं। मूंग, अर-हर आदि फली फल है और उनके अंदरके दानेही वास्तवमें बीज हैं।

उक्त विवेचन से यह बात पाठकोंके ध्यान-में भले प्रकार आगई होगी कि वैज्ञानिक भाषा और जन-साधारणकी भाषामें कितना भारी अनन्तर है।

क़लम करनेका प्रयोजन

दो जातिकी वनस्पतियोंका एकीकरण करना ही क़लम करना कहलाता है। ऐसा करनेसे उनके गुणोंकी वृद्धि होती है। किन्तु उन्हीं दो वनस्पतियोंको क़लममें की जा सकती हैं जिनकी जाति और स्वभाव-एकसा होता है। हम हिन्दू लोग प्रकृतिके इस सिद्धान्तको अक्षरशः पालते हैं और हमारे धर्म-शास्त्रोंमें इन सिद्धान्तों सम्बन्धी नियम भरे पड़े हैं। एक ही रक्तके स्त्री-पुरुषमें विवाह करनेकी हम लोगोंमें सख़्त मुमानियत है और कई जातियोंमें चार-चार पाँच-पाँच पुश्तोंको टाल कर ब्याह शादी करनेकी प्रथा है। यह तिर्यगजननका एक प्रकार माना जा सकता है। वनस्पति वर्ग भी जाति, उपजाति, कुटुम्ब आदिमें विभक्त हैं। ये भेद देश, चाल रीति आदिसे ही माने गये हैं।

वर्तमान कालमें हमें प्राणि-वर्ग और वनस्पति वर्ग सम्बंधी बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त है। और इसी ज्ञानकी बदौलत संसारकी खूब प्रगति हुई है। वनस्पति संसारके नियमोंका अध्ययन कर लेनेपर हमें यह बात भले प्रकार ज्ञात हो जाती है कि भारतके ऋषि-मुनियों द्वारा निर्धारित सिद्धान्त एक दम अटल हैं। वनस्पति-शास्त्रके ज्ञाता यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि वर्तमान कालमें फल फूलके रूप, रंग, आकार तथा गंध आदिमें इच्छानुसार परिवर्तन किये जा सकते हैं। प्राणी वर्गको भी यही बात लागू होती है। पाश्चात्य जगतने अपने वैज्ञानिक ज्ञानके बलपर ऐसे ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न घोड़े और कुत्ते तैयार कर लिए हैं कि जिनकी क़ीमत लाखों रुपये होती हैं इसी वैज्ञानिक ज्ञानके बलपर बिना बीजके जाम-फल, छोटी गुठलीवाले आम, बिना काँटेके गुलाब-के पौधे, सुगंधित काष्ठयुत वृक्ष आदि पैदा किये गये हैं। इसी प्रकार शुद्ध क्षत्रिय या शुद्ध ब्राह्मण वँशमें उत्पन्न स्त्री पुरुषमें भी कई सद्‌गुणोंका विकास किया जा सकताहै, जिससे संसारका महद् उपकार हो सकता है। अस्तु

हम देखते हैं कि मानव संसारमें स्त्री और पुरुष जुदे जुदे होते हैं परन्तु वनस्पतिमें ऐसा नहीं पाया जाता। वनस्पति संसारमें क़रीब क़रीब सभी पौधे उभयेन्द्रिय होते हैं। जिस पौधे पर क़लम या चश्मा चढ़ाया जाता है अर्थात् जो पौधा पुष्टि दाता होता है वही माता (Stock) कह-

लाता है। यह पौधा वृक्षके सभी अवयवोंका पोषण करता और उनको हमेशा पुष्टि देता रहता है। किन्तु पितृ-रूपी वृक्षकी क़लमको पोषणका कार्य बिलकुल ही नहीं करना पड़ता—उसे तो सिर्फ सुधरे हुए गुणोंका विकास ही करना पड़ता है। इसको वैज्ञानिक भाषामें पिता (scion) कहते हैं। माता पौधा जितना ही ताक़तवर, तन्दुरुस्त और पुष्ट हो उतना ही अच्छा। ऐसे ही पौधे पर क़लम चढ़ाना चाहिये। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि आम, नीबू, आदि द्विदल वनस्पति ही की क़लम लगाई जा सकती हैं। सुपारी, नारियल आदि इकदलीय वनस्पतिकी क़लम नहीं लगाई जा सकती।

बीजसे ही नवीन पौधे पैदा किये जाते हैं। परन्तु तना, पत्ते आदि बोकर भी नवीन पौधे तैयार किये जा सकते हैं। कई पौधोंकी जड़से उगे हुये रोपोंसे भी नवीन पौधे पैदा हो सकते हैं। वनस्पति खास गुणोंको क़ायम रखनेके लिए ही पौधे तैयार करनेकी रीति काममें लाई जाती है। अनुभवसे पाया गया है कि बीज द्वारा पैदा किये हुए पौधेके फूल फल घटिया दर्जेके होते हैं। यह प्रकृतिका अटल नियम है। अतएव किसी पौधेके अच्छे गुणोंको वर्षोंतक बनाए रखनेके लिए क़लम जैसे कृत्रिम साधनोंका आश्रय लेना नितान्त आवश्यक है। क़लम द्वारा तैयार किये हुए पौधोंमें नीचे लिखी हुई विशेषताएं होती हैं—

१—क़लमसे तैयार किये हुए पौधे जलदी फलते हैं।

२—उत्तम गुण वाले नाज़ुक पौधेकी कलम मज़बूत तने वाले पौधेपर चढ़ाकर फ़ायदा उठाया जा सकता है।

३—ख़ास ख़ास गुणोंका परिपोषण किया जा सकता है।

४—पौधेके काष्ट, फल, फूल, पत्ते आदिमें इच्छानुसार फेर फार किया जा सकता है।

५—न फलने वाले पौधेपर फल लगाए जा सकते हैं।

६—अशक्त पौधा सशक्त बनाया जा सकता है।

७—पौधोंकी संख्या और सुंदरता बढ़ाई जा सकती है।

८—क़लमका आसरा लेकर बग़ीचोंमें बारहों महीने फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

९—जंगलोंमें अच्छे अच्छे फल वाले पौधे लगाए जा सकते हैं।

१०—बग़ीचे विदेशी पौधोंसे सजाए जा सकते है।

११—एक ही झाड़पर जुदे जुदे रंगके फूल, पत्ते तथा भिन्न भिन्न प्रकारके फल पैदा किये जा सकते हैं।

१२—कम मिहनतसे ज़्यादा फ़ायदा उठाया जा सकता है।

इस कलाकी सफलता बुद्धिपर निर्भर है। एवं व्यावहारिक ज्ञानके बिना सफलता प्राप्त ही नहीं हो सकती। रस प्रवाहका मौसम, क़लमके लिए पौधा चुने जाने वाले पौधेके गुणोंका ज्ञान, क़लम करनेकी पद्धति आदिकी जानकारी होना नितान्त आवश्यक है। किस पौधेपर किस पौधेकी कलम की जानी चाहिये यह बात अधिकांश लोग नहीं जानते और यही कारण है कि इनको सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। नींबूके पौधेपर नारंगीका चश्मा चढ़ाया जा सकता है आड़ूपर एप्रिकॉटकी क़लम लगाई जा सकती है। मगर फल मुश्किल से आते हैं। परन्तु इन दोनों ही वनस्पतियोंकी क़लमें बादाम या ज़र्द आलूपर सफलतापूर्वक चढ़ाई जा सकती हैं।

क़लम

क़लम करनेकी क्रिया (grafting) एक प्रकारकी चीर फाड़ (operation) है। एक पौधेका एक विशेष भाग लेकर उसको किसी दूसरे पौधेपर लगानेकी क्रियाको ही कलम करना कहते हैं। इस प्रकार संयोग किया हुआ भाग बढ़कर उत्तम

पौधा बन जाता है। जिस पौधेपर यह भाग संयुक्त किया जाता है वह जमीनमें या गमलेमें लगा रहता है और यही जोड़े हुए भागको भोजन और पानी देकर पोषता है इसे ही मादा (stock) नाम दिया गया है। मादा पौधा, बोज शाखा आदि बोकर तैयार किया जाता है। इसको गमले या नरसरीमें रख कर एक सालतक खूब हिफ़ाज़त करते हैं। दूसरा वर्ष लगते ही पौधेकी एक उत्तम ज़ोरदार और तन्दुरुस्त शाखा रख कर शेष सब काट कर अलग करदी जाती हैं। जो डाली सीधी होती है वही रक्खी जाती है कुछ पौधोंका तना ज़मीनसे आधा फुट या एक फुट ऊपरसे काट डालते हैं और तब नई आई हुई डालीपर क़लम लगाई जाती है। कमज़ोर पौधोंके तनेको काट डालनेसे भी अधिक ज़ोरदार है शाखा निकल आती है। मादाके तनेका ऊपरी सिरा काटना चाहिये या नहीं यह बात भिन्न भिन्न पौधों पर निर्भर है। क्राउन ग्राफ्टिंग (cown grafting) अर्थात् खूंटी-पद्धतिमें (cleft grafting) मादाका सिरा काट डालना उत्तम है। परन्तु सिरा एक आध अठवाड़े पहले ही काटा जाना चाहिए। बड़े झाड़ोंका सिरा दो तीन अठवाड़े पहले काटनेसे भी कोई हानि नहीं। साइड ग्राफ्टिंग (side-grafting) में सिरा पहले काटनेकी कोई ज़रूरत नहीं। जहाँतक हो सके मादा पौधा गमलेमें ही तैयार किया जाना चाहिये और क़लम लगानेका काम बड़ी सावधानीसे किया जाना चाहिए। जो भाग चाकूसे छीला जाय उसे तैयार करनेके बाद स्वच्छ कपड़ेसे अच्छी तरह पोंछ लेना चाहिए और बाज़ूपर टहनियाँ न रहने देना चाहिए। जहाँतक संभव हो क़लम लगानेके बाद प्रति अठवाड़े पौधेको खादका घोल दिया जाना चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि जिन पौधोंकी जड़ें ज्यादा फूटती हैं वे मादाकी तरह कदापि काममें न लाये जाने चाहियें क्योंकि क़लम चढ़ानेके बाद ज्यादा जड़ें निकल आनेसे पौधा कमज़ोर हो जाता है।

पौधेकी शाखा, चश्मा आदि जो भाग दूसरे पौधेपर लगाये जाते हैं उन्हें नर (scion) कहते हैं। जिस पौधेके भाग चढ़ाये जाते हैं उसे मूल पुरुष कहते हैं। क़लमके लिए जो शाखा पसंद की जाय, वह निरोग और ज़ोरदार होनी चाहिये। क्योंकि इसी शाखाके गुण अवगुण क़लम करनेपर सन्तान पौधेमें उतर आते हैं। जिस पौधेका पूर्व इतिहास ज्ञात न हो या जिसके गुण अवगुणोंका परिचय न हो उसका कोई भाग 'नर' की तरह काममें नहीं लाया जाना चाहिए। क़लमी पौधे बेचने वालोंको इसी बातपर खूब ध्यान देना चाहिए क्योंकि अवगुणी और ख़राब पौधे बेचनेसे बाज़ारसे साख उठ जाती है। जिन पौधोंके भाग 'नर' रूपमें काममें लाए जाते हैं उनकी खूब हिफ़ाज़त रखनी चाहिये। दो वर्षसे कम उम्रकी कोई टहनी क़लमके काममें न लाई जाना चाहिए। क़लम करनेके लिए जिस शाखाका उपयोग किया जाता है वही 'नर' कहलाती है।

क़लम करनेका मौसम—क़लम करनेका सबसे अच्छा समय नये पत्ते निकलनेका समय है। यदि नरके नवीन पत्ते निकलनेका समय कुछ पिछड़ा हुआ हो तो और भी अच्छा। साधारण नियम यह है कि नर और मादा शाखाओंकी मुटाई और उम्र समान होनी चाहिये। नर और मादाकी अन्तर्छाल मिलानेसे ही सफलता मिलती है।

जिस मौसममें पौधेके रसका प्रवाह ज़ोरोंसे प्रवाहित होता हो उसी मौसममें क़लमें लगाई जानी चाहिएँ। शीतकाल या बरसातका मौसम ही सर्वोत्तम है। गरमीके मौसममें जब रसका प्रवाह खूब ज़ोरोंसे हो रहा हो क़लमें न लगाई जानी चाहिएं। क़लम करते समय नर और मादा में रसके प्रवाहकी गति जितनी ही ज़्यादा बराबर होगी क़लम भी उतनी ही अधिक सफलता पूर्वक लग जायगी। क़लम करने वालोंको नीचे लिखी हुई सूचनाओंपर विशेष ध्यान देना चाहिये।

१—कलम लगानेका काम छायामें किया जाना चाहिए। नर और मादाके पूरी तरह जुड़ जानेतक उनपर छाया रखनी चाहिये।

२—कलम किये हुए भागको हवा, धूप और पानीसे बचाए रखना चाहिए। अतएव उस भाग पर पट्टी बाँधकर मरहम या गोबर मिट्टी आदि लगा देना चाहिये।

३—नर और मादाकी मुटाई, शक्ति आदि एक सी होनी चाहिए।

४—एक ही वर्गके नर मादा कीही कलम लगाई जा सकती है।

५—रस अन्तर्छालमेंसे होकर ही प्रवाहित होता है। अतएव नर और मादाकी अन्तर्छालको छीलकर मिला देना चाहिए।

स्मरण रखना चाहिए कि अन्तर्छालका ही संयोग होता है, न कि कठिन काष्ठका।

ग्राफ्ट सामान्य संज्ञा है। हम सभीको 'कलम करना' कहते हैं। किन्तु वैज्ञानिक भाषामें हर एक प्रकारकी क्रियाके जुदे जुदे नाम हैं। ग्राफ्टमें डाली काट कर लगाना (cutting) दाब कलम (layering), गुट्टी (gootee) या बाल-ग्राफ्टिंग (ball-grafting), भेंट कलम (approach-grafting), चश्मा बिठाना (budding) कन्द-मूल आदि काटकर लगाना (separation by division) सैडल ग्रैफ्टिंग (saddle grafting) खूंटी कलम (Creft grafting), वेज ग्राफ्टिंग (wedge grafting) स्प्लाइस ग्राफ्टिंग (splice grafting) क्रौन ग्राफ्टिंग (crown grafting) आदिका समावेश होता है।

उपसंहार—इसमें हमने यह दिखानेकी कोशिश की है कि कलमका आसरा लेकर बगीचोंसे लाभ उठाया जाता है। यदि हो सका तो 'विज्ञान' के पाठकोंकी सेवामें भिन्न भिन्न प्रकारकी कलमें लगानेकी तरकीबें भी भेंट करनेका प्रयत्न करेंगे।

वनस्पतिकी इन्द्रियाँ

[ले० श्री राधानाथ टण्डन, बी. एस-सी., एल-टी.]

फूलदार पौधोंका स्वभाव

केवल थोड़ीसी ही दृष्टि डालनेपर हमको साधारण फूलदार पौधोंकी मोटी बातोंका, जैसे उनकी आवश्यकताएं तथा उनकी बनावटका, ज्ञान हो जाता है। हम जानते हैं कि पौधोंको उगानेके लिए न केवल पर्याप्त मात्रामें जल ही, वरन् वायु, प्रकाश और उपजाऊ ज़मीन जिसमें पौधोंके भोजनार्थ पदार्थ व खार अधिकतासे पाये जाते हों, इन सबकी आवश्यकता है। वायु और प्रकाश पौधोंको अधिकतासे मिलना चाहिये। यह बात भी सबको विदित है कि उनमें साधारणतः तना डाल और शाखाएँ होती हैं, जड़ तनेको ज़मीनमें गाड़े रहती हैं जिनके द्वारा जल और भोजन वृक्षको मिलता है। फूलोंपर बीज द्वारा वंश चलानेका भार रहता है। वृक्षमें पत्तियाँ होती हैं। पत्ती वह अंश है जिसको देखनेसे यह मनुष्य इनसे कोई विशेष बातका पता नहीं पा सकता, पर तो भी कार्यमें यह पौधेके समस्त अंशोंमें बढ़कर है।

पत्तियाँ और उनके कार्य

यद्यपि पत्तियाँ अगणित भाँतिकी हैं, उनमें एक बात ऐसी है जो प्रायः सभी पत्तियोंमें देखनेमें आयेगी और इस बातका होना पत्तियोंके जीवन कार्यके लिए बड़ा ही महत्वका है। लगभग सभी पत्तियां पतली, चपटी, और फैले हुए आकारकी होती हैं। इस चिपटे अंशको दल (blade) कहते हैं। यह अंश या तो एक छोटे डण्ठलपर जो डालसे निकलता है स्थित रहता है अथवा डालपर ही सीधे निकल आता है। इसके अतिरिक्त पत्तियाँ सदा हरे रङ्गकी हुआ करती हैं। बैजनी अथवा लाल रङ्गकी पत्तियाँ जो गुलदस्तोंमें सजानेके कार्य.

में आया करती हैं वह विशेष श्रेणीमें नहीं हैं। उनमें हरा रङ्ग विद्यमान रहता है पर लाल रङ्गकी विद्यमानतासे हरा रङ्ग ढक जाता है। यदि हम ध्यान पूर्वक किसी पौधेको देखें तो हमें ज्ञात होगा कि पत्तियाँ एक विशेष ढंगसे लगी होती हैं और इस तरह एक पत्ती दूसरी पत्तीको आवश्यकतासे ढक नहीं सकती। इस बातके उदाहरणके लिए नीम, पीपल इत्यादि कोई पौधा लिया जा सकता है। यही बात वृक्षों, झाड़ियों और पौधोंकी डालियोंमें भी पाई जाती हैं। कुछ पौधे ऐसे हैं जिनकी पत्तियां थोड़े ही मिनटोंमें सायेमें पड़े रहनेसे मुर्झा जाती हैं उनमें कोई और विशेष परिवर्तन हो जाता है। पौधोंका प्रकाशमें रहनेका प्रयत्न बहुतसे पौधोंमें प्रत्यक्ष पत्तियोंके हलनसे दीख पड़ता है। खिड़कियोंपर लटकाये जानेवाले पौधे सदा प्रकाशके ही ओर झुकते और बढ़ते हैं। यदि हम चाहें कि यह पौधे पृथ्वीसे समकोण बनाते हुए सीधे उठें तो उन्हें चक्कर देनेकी आवश्यकता है ताकि पौधेके प्रति अंशको उतना ही प्रकाश मिले जितना कि दूसरेको।

प्रकाशकी आवश्यकता

उपर्युक्त बातोंसे यह प्रत्यक्ष है कि पत्तियोंके लिए प्रकाशका होना आवश्यकीय है। प्रयोग द्वारा यह बात प्रमाणित हो गई है कि पत्तियाँ विशेषकर प्रकाशके रूपमें शक्ति सोखती हैं। इस बातको अच्छी तरह समझनेके लिये यह समझनेकी आवश्यकता है कि पौधे किन किन पदार्थोंसे बने हैं। यदि हम एक साधारण पौधा, जैसे घासको लेकर तवेपर सुखा डालें तो ज्ञात होगा कि इसके वज़नमें कुल वज़नके पौन हिस्सेका अन्तर हो गया है। यह अन्तर इसमेंसे जल निकल जानेसे हुआ। इससे ज्ञात हुआ कि पौधेका उतना अंश केवल जल ही है। जलका अंश पौधोंमें अधिक है कभी कभी जलका अंश इससे भी अधिक हो जाता है। अथवा और गूदेदार पदार्थोंमें जलकी मात्रा इतनी अधिक हो सकती है कि उसमें नव हिस्सा-तक जल होता है। यदि हम सूखे हुए पौधोंको ताप पहुंचायें तो जल और गैस निकलने लग जायंगे और अन्तमें एक जला हुआ पदार्थ कोयला (charcoal) जो मुख्यशः अंगार (carbon) का बना होता है बच रहेगा। इस कोयलेको हम और अधिक तप्त कर सकते हैं। तप्त करनेपर जलकर राख शेष रह जायगी और अंगारिक भाग अंगार-द्विओषिद होकर उड़ जायगा। यह भी समझ लेना चाहिये कि पौधेकी संचय की हुई शक्ति भी तापके रूपमें निकल गई। अब हम यह विचार करते हैं कि यह शक्ति और शारीरिक रचनाके पदार्थ पौधेने कहांसे संचय किये हैं। राखका वज़न कुल पौधेके वज़नका पचासवाँ अंश होता है। इस राखमें पांशुजम् अंगारेत (पोटाश) और खटिक (calcicum oxide) इत्यादि पदार्थ होते हैं। पौधोंको जल तथा राखके उत्पादक (constituents) ज़मीनसे ही जड़ द्वारा मिलते हैं। यह अंगार (carbon) का अंश इस तरह नहीं आता। यह निस्सन्देह ठीक है कि हम पौधोंको ऐसी ज़मीनमें जिसमें अंगार (carbon) किसी भी अवस्थामें बिलकुल ही न हो उगा सकते हैं। पौधोंको कर्बन (carbon) मिलनेका वायुमात्र ही एक श्रोत है। वायु मुख्यतः तीन गैसोंकी बनी हुई है—(१) ओषजन (२) नत्रजन और (३) अंगार-द्विओषिद (CO_2)। जब प्राणी सांस लेते हैं तो ओषधन भरी वायु शरीरमें प्रवेश होती है। जब वे श्वास छोड़ते हैं उसमें अंगार द्विओषिद गैस (carbon dioxide gas) की मात्रा अधिक होती है। प्राणियोंके श्वास द्वारा बाहर आई वायु अंगारिक द्विओषिदका एक स्रोत है। इसके अतिरिक्त किसी पदार्थके जलनेसे भी वायुमें अंगार द्विओषिदकी मात्रा बढ़ती जाती है। अग्नि, भट्टी, लैम्प इत्यादिसे यह गैस निरन्तर ही निकला करती हैं। इन बातोंके होते हुए भी इसकी मात्रा वायुके १०,००० हिस्सेमें ३ हिस्सेसे अधिक प्रायः नहीं होने पाती। इस बातसे अवश्य यही परिणाम

निकल सकता है कि पृथ्वीमें कोई ऐसा पदार्थ अवश्य होगा जो इस गैसको वायुसे ले लेता है और उसकी मात्रा बढ़ने नहीं देता। वास्तवमें यही बात है। यह पदार्थ वह पदार्थ है जो अपने हरे रंगीन चादरसे समस्त संसारको ढंके हुए परमात्माकी अद्भुत सृष्टि और सौंदर्यका ज्ञान करा रहा है।

पौधोंमें अंगार (carbon)

पौधोंमें अंगार किस अवस्थामें वर्त्तमान है? इस प्रश्नका उत्तर पौधों तथा उनके भीतरी पदार्थोंकी परीक्षासे प्रयोग द्वारा शीघ्र ज्ञात हो सकता है। ऐसा देखा गया है कि पौधोंके उन पदार्थोंमें जो बिलकुल खनिज रूप नहीं हैं यह मूलतत्व संयुक्त अवस्थामें वर्तमान है। यह बात इसी बातसे स्पष्ट है कि जब हम किसी वनस्पति पदार्थ जैसे लकड़ी रुई शक्कर मण्ड आदिको जलाते हैं तो उनके जलनेपर कोयला निकलता है और पानी भाप रूपमें उड़ जाता है। किसी लकड़ीके टुकड़ेको जलानेपर उसमेंसे कर्बन-द्वि-ओषिद गैस और जल निकलते जातेहैं और अन्तमें केवल राख बच रहती है। इनके अतिरिक्त ताप रूपमें पौधोंकी भीतरी शक्ति भी निकल जाती है। अतः इन बातोंसे यह स्पष्ट है कि लकड़ी, राख, जल, कोयला और शक्तिके अद्भुत योगका ही फल है। यह शक्ति हर लकड़ीमें विद्यमान है और पौधे वायुसे अंगारिक द्विओषिद लेकर और पृथ्वीमेंसे जल और खनिज खींचकर अपने शरीरके उत्पादकोंमें परिवर्तित कर लेते हैं। वायुके अंगार द्वि-ओषिद गैस (Carbon dioxide gas) के जलके साथ यौगिक (compound) पदार्थ बनानेके लिए भी शक्ति देवीकी सहायताकी आवश्यकता पड़ती है। पौधोंको शक्ति देवी प्रकाश है। यही शक्ति पौधेको जलानेपर ताप रूपमें प्रकट हुई थी। पौधोंको भोजन संस्कारकी क्रियाके लिए प्रकाश ही उनको उष्णता प्रदान करता है। प्रकाश ही एक मूल आधार है जिसके द्वारा पौधोंको अपने कार्यका संचालन करते रहनेके लिए शक्ति मिलती है। पौधोंकी हरी पत्तियाँ प्रकाशकी किरणोंको सोख लेती हैं जिससे उसमें क्रिया करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस क्रिया शक्तिसे वे अंगारिक द्वि-ओषिद गैसको अंगारके संकीर्ण यौगिकोंमें जिनसे पौधोंका शरीर बना होता है परिवर्तित कर लेते हैं। इन बातोंसे पौधोंके जीवनके लिए प्रकाशका असीम महत्व स्पष्टतासे सिद्ध होता है। इसके बिना पौधोंका जीवन ही असम्भव है।

पत्तीकी रचना

यदि हम किसी पत्तीके ऊपरी व नीचेके तलको खुचैं तो एक महीन झिल्ली जिसको पत्तीका चमड़ा कहते हैं निकल आयेगी और केवल एक हरा गूदादार भाग जिसमें जालको तरह अगणित शिरायें विद्यमान रहती हैं रह जायगा। लगभग सभी पत्तियोंमें यह शिरायें विद्यमान रहती हैं। पर कुछ पौधेकी पत्तियोंमें यह शिरायें समानान्तर (parallel) होती हैं। जैसे घास तथा इसी जातिके पौधोंमें और उनकी पत्तियोंमें। यह नाड़ियाँ शाखाओं दर शाखाओंमें फूट फूटकर पत्तोके मूल भागको एक जालीसे ढक देती हैं। इस तरहकी जालीदार शिराओंको सूत्रिन् शिरायें (fibrous veins) कहते हैं।

पत्तीकी रचनाको भलीभांति समझनेके लिए हमको एक छूरी, एक अस्तुरा, सरकण्डेका गूदा व पिथ (pith) और एक अणुवीक्षण (microscope) की आवश्यकता होती है। संसारमें किसी वस्तुका ज्ञान हमको तभी अच्छी तरह हो सकता है जब हम स्वयम् उसको अपने चक्षुसे देखें, अपनी अँगुलियोंसे उसको स्पर्श करें, अपने नाकसे उसको सूँघे इत्यादि। यह एक प्राकृतिक नियम है कि जबतक मनुष्य किसी वस्तुका स्पर्श न कर ले अथवा ध्यानपूर्वक देख न ले उसको उसका पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। किसी वस्तुके सम्बन्धमें पुस्तकोंमें पढ़ लेने वा किसीसे सुन लेनेमें उनको सदा उसके देखने वा स्पर्श करनेकी

उत्कण्ठा बनी रहती है। जबतक वह इन दो इन्द्रियोंसे काम नहीं ले लेता तबतक उसका ज्ञान पूरा नहीं कहा जा सकता।

यहांपर भी पत्तीकी रचनाका वास्तविक ज्ञान प्रयोग द्वारा ही हो सकता है। पत्तीका एक महीन टुकड़ा कैंचीसे काटकर पिथ (pith) के दो बराबर काटे हुए फांकके बीचमें रखकर पत्तीके बहुत पतले भाग जिनको परिच्छेद (section) कहते हैं अस्तुरेसे काट काट कर एक पानी या अलकोहल (alchohol) भरे हुए घड़ीके शीशे (watch glass) में रखते जाना चाहिये।

कई पतले परिच्छेद काट लेनेपर सबसे पारदर्शी परिच्छेद चुन लेना चाहिये। इसको एक कांचके चौकोर टुकड़ेपर जिसे पट्ट कहते हैं (slide) बूँद पानीमें रखकर एक पतले काँचके पट (crver glass) से ढंक देते हैं। फिर इस पट्टको अणुवीक्षण यन्त्रमें लगा लीजिये। पत्तोकी कुल रचना साफ़ दीख पड़ेगी। इस तरह परीक्षा करनेसे पत्तीमें अगणित छोटे छोटे ख़ाने जिसको कोष कहते हैं दीख पड़ेंगे। इस कोषसे पाठकोंको भिज्ञ होना आवश्यक है क्योंकि हरएक कोषका महत्व पत्तीके लिए वही है जो मकानके लिए ईंटका है। हरएक पौधा इन्हीं छोटे छोटे कोषोंके समूहका परिणाम है। कोष एक बक्सकी तरह सब तरफ़ दीवारोंसे घिरा होता है इसकी दीवारें अंगारके एक यौगिक पदार्थ काष्ठोज (cellulose) जैसे रूई व काग़ज़की बनी हुई होती है। भीतरकी ओर दीवार एक पतले तरल पदार्थसे जिसको जीवाद्यम (protoplasm) कहते हैं ढकी रहती है। यह पदार्थ पौधेका जीवनमूल है। इस जीवनमूलमें कोषका द्रव भरा होता है जिसमें पौधेके नाना प्रकारके भोजन पदार्थ घुले रहते हैं। कोषका द्रव कोषोंको फैलानेमें बड़ी सहायता देता। यह द्रव भी कोषकी दीवारकी तरह निर्जीव पदार्थ है। केवल जीवाद्यम ही इसका जीवित अंश है। यह पदार्थ विलक्षण तरहसे बना हुआ है। यह कई तरहके यौगिक पदार्थोंका मिश्रण है। इन यौगिक पदार्थोंको मांसज या प्रोटीड (proteid) कहते हैं। ओषजन, नत्रजन, उज्जन, स्फुर और गन्धक इत्यादि मूलतत्त्वोंके संयोगसे प्रोटीड बना है। जीवाद्यम (protoplasm) के बीचमें एक छोटी गोल वस्तु और दीख पड़ता है। यह बहुत घन पदार्थकी बनी होती है। इसको कोषका केन्द्र (nucleus) कहते हैं। इसके द्वारा कोषकी क्रियाओंका न्यूनाधिक संचालन होता रहता है। जीवाद्यममें बहुधा छोटे छोटे रङ्ग बिरङ्गके अणु होते हैं जिनसे पौधोंके भाग रङ्ग बिरङ्गे देख पड़ते हैं। पत्तीके कोषोंके जीवाद्यममें बिलकुटके आकारके बहुतसे ऐसे अणु होते हैं, जिनको हरिताणु कहते हैं। इन्हींकी अधिकताके कारण पत्ती हरे रङ्गकी दीखती है। ऐसे कोष जिनमें यह अणु होते है अधिकतर पत्तीके ऊपरी पृष्ठके पास होते हैं। पत्तीके नीचेकी सतह ऊपर सतहसे कम हरी होती है। इसका भी यही कारण है कि ऐसे कोष नीचेकी ओर कम होते हैं। दलके उपचर्मके कोषोंमें कोई रङ्ग नहीं होता।

कोषके आकार

किसी पौधेके कोषका आकार उसके स्थान तथा उसके तरह तरहके व्यवहारोंपर निर्भर है। यहां केवल उन कोषोंके सम्बन्धमें लिखना है जो अधिकतर पत्तियोंमें पाए जाते हैं। पत्तियोंके कोष अधिकतर छोटे चौकोनी बोतल (square bottles) के आकारके होते हैं।

पत्तीकी दोनों पृष्ठोंमें सबसे ऊपर उपचर्म रहती है। ऊपरकी उपचर्म सब जगह एकसी होती है। नीचेकी उपचर्ममें जहां तहां छिद्र होते हैं। इनको पर्णमुख (stomata) कहते हैं। नीचेकी उपचर्मके नीचे कोषोंके समुदायमें कहीं कहीं शून्य वा वायु स्थान है। यह स्थान एक दूसरेसे कोषकी दीवारों द्वारा सम्बन्ध रखते हैं। यह स्थान पत्तीके मुखों द्वारा आती हुई कार्बन-द्वि-ओषिद गैससे भर जाते हैं और कोषोंकी दीवारों द्वारा यह गैस कोषोंमें प्रवेश कर जाती है।

अतः अब पाठकोंको यहां यह जानना आवश्यक है कि अङ्गारिक द्विओषिद् गैस (carbon-dioxide gas) का आहार पत्तियां किस तरह करती हैं, अर्थात् इस गैससे प्रकाशकी सहायतासे पत्तियाँ अंगारके यौगिक किस तरह तैयार करती हैं।

पौधोंमें भोजन कैसे तैयार होता है

गैस पर्णमुख (stomata) द्वारा पत्तीके अन्दर प्रवेश कर शून्य स्थानोंमें पहुँचती है और फिर वह जलमें घुलकर कोषोंमें प्रवेश करती है। कोषोंके भीतर या हरिताणुओंसे (chloroplast) टकराती है। कुछ देर मुठभेड़के पश्चात् हरिताणुओंकी पर्णहरिन् (chlorophyles) इसे प्रकाशकी सहायतासे और जलकी उपस्थितिमें अंगारिक द्विओषिद्का विश्लेषणकर उसका अंगार ले लेती है। उसको अंगारिक यौगिकमें अपने पोषणके लिए परिवर्तित कर लेती है और वायु भाग ओषजनको छोड़ देती हैं। यह वायु भाग ओषजन पत्तीके पर्णमुख द्वारा शीघ्र बाहर निकल जाता है।

यह रासायनिक मुठभेड वास्तवमें होती है अंगार-द्विओषिद और जलके बीच अंगार-द्विओषिद गैस (क ओ₂) जो एक भाग अंगार और दो भाग ओषजनका बना है और जल (उ₂ ओ) में जो दो भाग उज्जन गैस और एक भाग ओषजन (ओ) से बना होता है। पर इस रासायनिक मुठभेड़की क्रियाका मुख्य कारण पर्णहरिन् (green pigments or chlorophyle) और प्रकाश हैं। पत्तीकी पर्णहरिन् प्रकाशकी लाल किरणोंको शोषणशक्ति (energy) का प्रादुर्भाव करती हैं। इन्हीं लाल किरणोंकी शक्तिसे ही अंगार द्विओषिद् गैस (अं ओ₂) और जल (उ₂ ओ) में परस्पर रासायनिक क्रिया (chemical action) होती है। इस रासानिक क्रिया (chemical action) का परिणाम यह होता है कि अंगार द्विओषिद गैसका एक भाग ओषजन अलग हो जाता है। इसी तरह जलके भी दो टुकड़ा हो जाते हैं। उज्जन गैस और ओषजन गैस अंगार द्विओषिद गैस (carbon dioxide gas) का अलग हुआ एक भाग ओषजन जलके ओषजनसे मिलकर दो भाग बनकर (ओ₂) पत्तीके बाहर निकल जाता है और अंगारिक एक ओषिद गैस (carbon mon oxide gas) दो भाग उज्जन (hydrogen gas) से आकर्षण द्वारा मिलकर तुरन्त एक हो जाता है। इन दोनोंके मिलनेसे एक नया अंगार यौगिक (क ड₂ ओ) जिसे फार्मल्डीहैड (formaldehyde) याने पिपीसुव्योद कहते हैं बन जाता है। अंगार-द्विओषिद गैस और जलमें नीचे लिखी रासायनिक क्रिया होती है।

अं ओ₂ + उ₂ ओ = अं उ₂ ओ + ओ₂
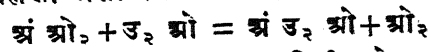
अंगार द्विओषिद + जल = पिपीसुव्योद + ओषजन

यह पिपी सुव्योद (formaldehyde) शनैः शनैः आपसे आप शक्करमें परिवर्तित हो जाता है। यही पौधोंका भोजन है। जब पौधोंको इसकी आवश्यकता नहीं रहती तो कोषके अणु इसे अघुलनशील अवस्था अर्थात् माण्ड (starch) में परिवर्तित कर देते हैं। इस अवस्थामें यह बहुत देरतक भविष्यके लिए (जब पौधेको भोजनकी आवश्यकता होगी) जमा रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि जल और अंगार-द्विओषिद गैसके परस्पर रसायनिक संयोगसे ओषजन छूटकर पत्तीके बाहर निकल जाता है। ओषजनका पत्तियोंसे बाहर निकलना प्रयोग द्वारा बहुत आसानीसे दिखाया जा सकता है। यदि हम एक जलमें उगनेवाले पौधेको एक ग्लास भरे पानीमें डालकर रख दें तो कुछ देरमें अगणित गैसके बुलबुले उसपर बनते देखेंगे। यह गैसके बुलबुले किसी परीक्षक नलीमें एकत्रित किये जा सकते है। फिर इस गैसकी परीक्षा करनेसे ज्ञात होगा कि यह गैस ओषजन ही है। अंगार यौगिक (carbon compound) का बनना भी हम आसानीसे मालूम कर सकते हैं। साधारणतः जो कर्बन यौगिक बनता है माण्ड (Starch) होता है। इस

माण्डकी पहचान नैलाज्ञ (आयोडीनके टिंक्चर) से शीघ्र हो सकती है। पत्तीपर इस आसवको छोड़नेसे यदि इसका रङ्ग काला या गहरा नीला हो जाय तो समझ लेना चाहिये कि माण्ड पत्तीमें अवश्य है। माण्डपर ही अलग परीक्षा करनेसे ज्ञात होगा कि माण्ड इससे काला या गहरा नीला हो जाता है। यदि एक ऐसी पत्तीकी जो एक या दो दिन अन्धेरेमें रही हो परीक्षा इस आसवसे करें तो उसपर इसका कुछ असर न देखेंगे। क्योंकि इसमें माण्ड विद्यमान नहीं है। कुछ देरतक प्रकाशमें रक्खी हुई पत्तीपर इसका असर अवश्य होगा। माण्ड नीला हो जायेगा। यदि इस आसवकी परीक्षा एक ऐसी पत्तीपर की जाय जो अंगार द्विओषिद गैस (carbon dioaxide gas) से रहित वायुमें रखी गई हो, तो देखेंगे कि प्रकाशके होते हुए भी माण्ड नहीं बना। इससे यह परिणाम निकलता है कि कर्बनके यौगिक बननेके लिये इस गैसका वायुमें होना आवश्यकीय है।

पौधेकी शिरायें

पत्तीका एक दूसरा कार्य जिसका यहां वर्णन करना है बड़े महत्त्वका है। यदि हम एक पत्तीको काटकर वायुमें पड़ा रहने दें तो देखेंगे कि पहले इसका रङ्ग बदलेगा और फिर शनैः शनैः बिलकुल मुरझा जायगा। पहली अवस्था उस जलके निकल जानेसे हुई है जो कोषोंको फैलाये हुए पत्तीको हरा बनाये था। पत्तीका मुर्झा जाना अथवा सूख जाना पत्तीमेंसे जलका भाप बनकर निकल जानेपर निर्भर है। जलका भाप बनकर निकलनेकी क्रिया पत्तीमें प्राकृतिक ही निरन्तर होती रहती है कारण कि पत्तीमें स्पञ्ज (sponge) की तरह जल हर अंशमें प्रविष्ट रहता है। जबतक चारों ओरकी वायु जलको पूरी तरहसे ग्रहण नहीं कर लेती तबतक पत्तीमेंसे जल भाप रूपमें निकलता ही रहता है। जबतक पत्ती पौधेमें लगी रहती है अथवा किसी पानी भरे बर्तनमें पड़ी रहती है। तबतक उस जलकी पूर्ति जो वायुमें भाप बनकर निकल जाता है पौधोंके धड़ और पत्तीके डण्ठलसे होकर होती रहती है। पत्तियोंमें शिराओंका कार्य उसी तरह होता है जिस तरह एक पानीके बड़े हौज़से निकले हुए बहुतसे पानीके नलोंका। यह नाड़ियां डण्ठलसे होकर जलको पत्तीतक ले जाती हैं और वहाँ समस्त अंशमें जलको फैला देती हैं। इसके अतिरिक्त जो अंगार यौगिक पत्ती तैयार करती हैं उसको यह शिरायें एक स्थानसे दूसरे स्थानको जहां उसकी आवश्यकता होती है ले जाती हैं।

पत्तीसे वाष्पका निकलना

रातको शीत ऋतुमें पौधेसे जलका वाष्प बन कर निकलना बहुत कम हो जाता है। पर गर्म ऋतुमें जल बहुत निकल जाता है। गर्म ऋतुमें जितना प्राप्त होता है उससे अधिक निकल सकता है। इस अवस्थामें पौधा सिकुड़ने लगता है और शनैःशनैः झुकने लगता है। ऐसे समयमें हमको वाटिकाके पौधोंको कुएँसे जल आदि अवश्य पहुँचाना चाहिये। कभी कभी पौधे पानीको पत्तीसे निकलने न देनेके लिए स्वयं आप अपना प्रबन्ध कर लेते हैं। साधारणतः पत्तियोंकी ऊपरी सतह ही सूर्यकी ओर रहती है क्योंकि ऊपरी सतहमें पर्णमुख नहीं होते; पर्णमुख नीचेकी सतहपर जिसपर सूर्यका प्रकाश नहीं पड़ पाता होते हैं। इससे बढ़कर और प्रबन्ध यह है कि कुल पत्ती कभी कभी मोमकी तहसे ढक जाती है जिससे जल फिर निकलने नहीं पाता। जब मोमकी तह बहुत बढ़ जाती है तो पत्ती चमकने लगती है। ऐसी पत्ती बहुत धीरे धीरे मुर्झाया करती है। पत्तियोंमें पर्णमुख बहुत होते हैं और इनमेंसे भाप रूपमें जल बहुत निकलता रहता है। विशेषकर ग्रीष्म ऋतुमें इसकी मात्रा कहीं अधिक बढ़ जाती है। इन कारणोंसे इन पर्णमुखोंकी बनावट ऐसी होती है कि जब जलकी मात्रा घटने लगती है तो यह फिर कठिनतासे खुलते हैं। यह आपसे आप बन्द हो जाते हैं। इस क्रियासे फिर जल निकलना बन्द

हो जाता है। अधिकतर पौधोंमें ऐसी लीलाएँ देखनेमें आती हैं।

पाठकोंने देखा होगा कि बहुतसे पौधे पृथ्वीमें ऐसे गड़े होते हैं जहाँ उनको जल बहुत कम मिलता है जैसे सड़कोंके किनारे या सूखे मैदानोंमें। इन पौधोंको ध्यान पूर्वक देखनेसे पाठकोंको पत्तीके डण्ठल आदि भागोंपर कांटे अधिक दिखाई देंगे इसके अतिरिक्त इनकी पत्तियाँ भी छोटी छोटी और नुकीली दिखाई देंगी। इन पत्तियोंका सिकुड़कर छोटे रूप धारण कर काँटोंसे आच्छादित होनेका कारण जलका अभाव है। थोड़ा बहुत भी जल जो इनको पृथ्वीसे मिलता है वह भी वाष्परूपमें साधारण पत्तियोंसे निकल जाता है। पर रेतीली व सूखी पृथ्वीके पौधोंकी पत्तियोंको इस जलके रोकनेकी बड़ी आवश्यकता है। अतः इस जलको रोकनेके लिए उनकी पत्तियाँ कांटेदार और छोटी होकर पत्तीके दलकी चौड़ाई तथा पर्णमुखोंकी संख्या बहुत घट जाता है जिससे फिर जलका वाष्प बनकर पत्तियों द्वारा निकलना बन्द हो जाता है। इस पौधेको देखनेसे पाठकोंको पत्ती और डण्ठलमें बहुत कम भेद दीख पड़ेगा। पत्तीके मोटे होनेका भी कारण जलकी मात्राको रोकनेका अभिप्राय है। इन मोटी पत्तियोंमें रेशेदार धागे होते हैं जो पानीको सोखे रहते हैं और आवश्यकताके समय काममें लाते हैं।

द्रव्य और उसका प्रयोजन

[ले० श्री विश्वप्रकाश, विशारद]

द्रव्यका विषय अत्यन्त साधारण है। हममेंसे प्रत्येक द्रव्यका प्रयोग जानते हैं। रुपयोंसे कौन प्रेम नहीं करता। गँवार भी नोटको पाकर प्रसन्न होता है। हम बज़ारमें जाकर रुपयोंसे मनमानी वस्तु ले आते हैं। हमारा वेतन रुपयों, नोटों या चेक द्वारा मिलता है। यह विषय अत्यन्त सरल होते हुए भी अत्यन्त गहन है। साधारण पुरुष जिन्होंने इसका अध्ययन नहीं किया है समझते हैं कि जो उनके पास है उसका मूल्य सदा उतना ही रहेगा। यह उनकी भूल है। इस महायुद्धके कारण द्रव्यके मूल्यमें बहुत अन्तर हो गया था। महायुद्धके पहले एक रुपयेका १२ सेर ज्वार या ८ सेर गुड आता था। उसी एक रुपयेसे युद्धके बाद अधिकसे अधिक ७ सेर ज्वार और ५ सेर गुड़ मिलने लगा। रुपयोंके मूल्यमें इतना अन्तर क्यों पड़ गया इसका सम्बन्ध इस लेखसे नहीं है।

अब हमको यह विचार करना है कि द्रव्यके प्रयोग करनेका क्या प्रयोजन है और इसका प्रारम्भ कैसे हुआ। इसके लिये हमें यह जानना आवश्यक है कि पहले जातियोंके अन्तर्जातीय सम्बन्ध तथा व्यापारका क्या रूप था।

"व्यापारका आरम्भ श्रम-विभागसे हुआ"। प्राचीन कालमें यह प्रथा थी कि आवश्यक वस्तुओंको एक घर वाले पैदा कर लेते थे। मनुष्यके लिये दो वस्तुओंका होना अत्यन्त आवश्यक है, एक भोजन दूसरा वस्त्र। आज कल भी ग्रामोंमें ऐसे घर मिलेंगे जो किसीके आश्रित नहीं हैं। खेतीसे उनको भोजन मिल जाता है। हर दूसरे वर्ष वे रुईकी खेती करते हैं। स्त्रियाँ रुईको कात लेती हैं, मर्द कपड़ा बुन लेते हैं। इस प्रकार उनको वस्त्र मिल जाते हैं। घरका निर्माण भी वे स्वयं ही कर लेते हैं। आवश्यक वस्तुओंके मिल जानेसे उनको किसीका आश्रय नहीं लेना पड़ता। बहुतसे मनुष्य इस प्रथाको पसन्द करेंगे। पर ऐसी दशामें व्यापार नहीं हो सकता।

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि व्यापारके लिये श्रम-विभागका होना अनिवार्य है। व्यापार तभी हो सकता है जब एकके लिये दूसरा कार्य करे। गांव भरमें एक आदमी रुईकी खेती करे, एक आदमी रुईको काते, एक कपड़ा बनावे।

यही तीनों मिलकर गाँव भरको कपड़ा दें। इसी तरह कोई गाँव भरको लिये गेहूँ उपजावे। इसीको श्रम-विभाग कहते हैं। ऐसा करनेसे प्रत्येकका कार्य सरल तथा लाभप्रद होगा।

जब किसी ग्राम या नगर, या देशमें व्यापार होने लगेगा तभी द्रव्यकी आवश्यकता पड़ेगी। रूईका पैदा करने वाला, और बुनने वाला अन्यके लिये श्रम करता है। श्रमके बदले वह कुछ उन लोगोंसे आशा भी करेगा।

यह श्रम करने वाले एक स्थानपर एकत्रित हुए। मोचीने जूतोंका ढेर लगा दिया, दर्ज़ीने क़मीज़ कोट इत्यादि वस्त्र सजा दिये, गाय भैंस के बेचने वाले एक तरफ़ जमा हो गये, बिसाती तरह तरहकी वस्तुयें ले आये, सब्ज़ी मंडी और अनाजकी मंडियाँ लग गईं। इसको बाज़ार, या हाट समझिये। इनमेंसे प्रत्येक जो वस्तु उसके पास नहीं है उसका इच्छुक है। गेहूं वाला वस्त्र, जूते, भैंस इत्यादि ख़रीदना चाहता है। अब प्रश्न यह है कि अदल बदल कैसे हो?

यह प्रश्न वर्तमान समयमें बड़ा सरल होगया है और प्रत्येक बच्चा जो वस्तु चाहे ख़रीद सकता है। पर प्राचीन कालमें यह समस्या बड़ी टेढ़ी थी। मान लीजिये कि एक मनुष्यको कोट बेचना है और उसको गेहूंकी आवश्यकता है। ऐसी अवस्थामें उसको ऐसे मनुष्यकी खोज करनी पड़ती थी जो गेहूँ बेचना चाहता हो और उसको कोट-की आवश्यकता हो। ऐसे मनुष्यका पाना कोई सरल काम नहीं है। यदि भाग्यवश कोई ऐसा पुरुष मिल गया तो उनमें विनिमय (barter) हो सकेगा। कोट बेचने वाला मनुष्य अपना कोट दे देगा और उसके स्थानमें गेहूं ले लेगा।

इन दोनों वस्तुओंमें तो विनमय बहुत आसानी-से हो गया। ऐसी अवस्था हो सकती है जब एक मनुष्य गाय बेचना चाहता है और एक बकरीका इच्छुक है। बकरीका मूल्य गायके मूल्य-से कम है। ऐसी दशामें या तो गाय बेचने वाला हानि सहे या बकरीवाला जो कुछ और देना चाहे वह ले ले।

इतनी ही नहीं इससे बड़ी समस्याएं आ सकती हैं। गाय बेचनेवालेको बकरी बेचनेवाला मिल जाय, पर बकरी बेचने वाला गायको न लेना चाहे। संभव है कि उसको दो धोतियोंकी आव-श्यकता हो। इस अवस्थामें गाय और बकरी बेचने वाले दोनों मिलकर एक ऐसे बज़ाज़को ढूँढेंगे जिसको गायकी आवश्यकता हो।

इन आपत्तियोंको दूर करनेके लिये द्रव्य (money) का जन्म हुआ। इसका पहला प्रयोजन **विनिमय का साधन** है।

विनिमयकी प्राचीन प्रथामें एक दूसरीकठिनता का सामना करना पड़ता था क्योंकि वस्तुओंका मूल्य उचित रूपमें निर्धारित न था। इस प्रथामें मूल्य इस प्रकार लगाया जाता था। एक गायका मूल्य पाँच मन गेहूँ, एक कुरतेका मूल्य पाँच सेर गेहूँ, एक छतरीका मूल्य २ कुरतोंके बराबर। इस तरह यदि बाज़ारमें ९० वस्तुये हों तो ८१०० भाव याद करने पड़ते थे।

वास्तवमें एक ऐसी वस्तुकी आवश्यकता थी जिसमें सबका भाव लगाया जाय। यही वस्तु द्रव्य थी। इसलिये इसका दूसरा प्रयोजन **मूल्यका परिमाण** जानना है।

एक तीसरी आपत्ति और थी। वस्तुका लेन देन वस्तुओं में ही होता था। जब किसीको किसी वस्तुकी आवश्यकता पड़ती तब वह किसीसे उसको ले आता। ब्याजके रूपमें उसको अधिक वस्तु देनी पड़ती थी। इसी बीचमें वस्तुओंका भाव घटता बढ़ता रहता है। जिस समय उसका भाव घटा हुआ है वस्तुके देने वाला उस समय अपनी वस्तु वापिस न लेगा। एक उदाहरण द्वारा इसका समझना सरल है। मान लीजिये एक बनियेने एक मनुष्यको पाँच मन गेहूँ उधार दिये। उस मनुष्यने बनियेको पाँच मन गेहूँ और एक मन गेहूँ ब्याज रूपमें देनेका वचन दिया। तीन

टक शक्ति उत्पन्न हो सकती है कि प्रयाग जैसे बड़े नगरको बिलकुल तहस नहस कर दे।

लकड़ी या कोयलेमें आग जलाकर अग्नि उत्पन्न की जाती है, साथ ही हमें लकड़ी या कोयलेकी आगको बुझानेका भी ज्ञान है। जब चाहें जलती हुई आगको हम बुझा सकते हैं कोयले या लकड़ीके रासायनिक विश्लेषणको आरम्भ करना हम जानते हैं तो रासायनिक विश्लेषण क्रियाको बन्द करना भी हमारी शक्तिके अन्दर है। यदि आणविक विश्लेषणका ज्ञान हमें हो भी जाय तो उससे पहिले ही उस क्रियाको रोकनेका या बन्द कर देनेका ज्ञान होना परमावश्यक है। मान लीजिये किसी पदार्थमें हमने आणविक विश्लेषण प्रारम्भ कर दिया। शक्ति उत्पन्न होने लगेगी। यह शक्ति विद्युत्, ताप, विस्फोटन इत्यादिका रूप धारण करके हमारा संहार करने लग जायगी। तुरन्त ही यदि आणविक विश्लेषणको हम बन्द न कर सकें तो जैसे आग फैलती जाती है और संहार करती जाती है वैसे ही आणविक विश्लेषणकी क्रिया एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें फैलती और उनका विश्लेषण करती हुई या उनको भस्म करती हुई उनका नाश कर डालेगी, साथ ही जो शक्ति उत्पन्न होगी वह भी सब चीज़ोंका संहार करती हुई चली जायगी। एक बार यह क्रिया प्रारम्भ करके यदि हम रोक न सके तो शक्तिकी यह ज्वाला समस्त भूमंडलको विनष्ट कर देगी। मनुष्य अपनी ज्ञान पिपासाके कारण किसी दिन भूमंडलका संहारक न बन बैठे! प्रयोगशालामें किसी पदार्थके छोटेसे कणमें आणविक विश्लेषण हुआ, विस्फोटनसे ज़ोरका धड़ाका हुआ, शक्तिने प्रयोगकर्त्ताको पहले समाप्त कर दिया। फिर यह क्रिया प्रयोगशालाकी वस्तुओंमें फैलती हुई और विकट शक्ति उत्पन्न करती हुई समस्त भूमंडलका विश्लेषण कर देगी। इस विश्लेषणसे इतनी शक्ति उत्पन्न होगी कि सूर्यमंडलके सब नक्षत्र घबड़ा उठेंगे। सूर्य भगवान स्वयं घबड़ा कर इधर उधर दौड़ने लगेंगे बड़ा भारी विप्लव उपस्थित हो जायगा। वैज्ञानिक प्रयोगोंको करते हुए वैज्ञानिकोंको बड़ी सावधानीसे काम लेना पड़ता है। वैज्ञानिक अनुसन्धान कहीं मनुष्यके प्राणोंका संहार न कर बैठे, इस लिए बड़ी होशियारीकी आवश्यकता होती है। पाठक विचार कीजिए कि आणविक विश्लेषणके अनुसन्धानमें वैज्ञानिकोंपर कितना उत्तरदायित्व है। ज़रा सी भूल से या ज़रासे मानसिक आलस्यके कारण कितना भारी अनर्थ हो सकता है। पर यह अनुसन्धान है बड़े महत्वका।

परिश्रम करनेसे मनुष्य कौनसी वस्तु प्राप्त नहीं कर सकता? देखिये अमेरिकामें रेडियोका कितना प्रचार हो गया है। एक स्थानसे दूसरे स्थानतक हज़ारों मीलकी दूरीपर बिना तारकी सहायताके खबरें भेजी जाती हैं। अब लन्दनसे न्यूयार्कको रेडियोके द्वारा फ़ोटो भी भेजे जा सकते हैं। लन्दनसे कोई अभियुक्त जुर्म करके जहाज़पर भागा, लन्दनकी पुलिसने उसका फ़ोटो न्यूयार्कको तुरन्त भेज दिया तथा लन्दनसे उस दिनके चले हुए सब जहाज़ोंको रेडियो द्वारा उस अभियुक्तका चित्र भेज दिया, अभियुक्त महाशय जहाज़परही पकड़ लिये जायँगे, बहुत हुआ न्यूयार्क, में पहुँचकर वहांकी पुलिसके पंजेमें फँस जायंगे। जब वैज्ञानिक लोग सरतोड़ कोशिशें करके ज्ञानके अनन्त भांडारपर क़ाबू करनेके लिये कमर कसे बैठे हैं तो भला हमारे आपके समझानेसे आणविक विश्लेषणके अनुसन्धानों और प्रयोगोंसे मुँह मोड़नेवाले कब हैं?

वैज्ञानिकोंका पहले यह विश्वास था कि विभाजित होनेपर संसारके समस्त पदार्थ सूक्ष्मतम कणोंमें विभक्त हो सकते हैं। इन कणोंको वह अणु (molecule) नाम देकर ऐसी छोटीसी ईंट समझा करते थे जिसके द्वारा प्रकृतिका यह विशाल भवन निर्मित हुआ है। कुछ दिन बाद यह सिद्ध हुआ कि अणु भी विभक्त होकर परमाणु (atom) का रूप धारण कर सकता है। कई

परमाणुओंके संयोगसे अणु बनता है। परमाणुके आयतन और आकारका ध्यान करके रूपनिरूपण करना वृथा है, क्योंकि यदि आपको यह बतला दिया जाय कि एक वर्ग इंचमें दस लाख परमाणु बिठलाये जा सकते हैं तो भला आपको परमाणुके रूपका क्या ज्ञान हो सकेगा? विश्वविख्यात वैज्ञानिक सर आलिवर लाज (Sir Oliver Lodge) ने एक बार कहा था कि अटलांटिक महासागरमें जितने गिलास जल है इतने ही परमाणु एक गिलास जलमें हैं। इससे आप यह अवश्य समझ सकते हैं कि परमाणु कितना सूक्ष्मतम पदार्थ है। पर उसके वास्तविक आकारका ध्यान करना भी कठिन काम है।

इधर कुछ वर्ष हुए परमाणु भी विभक्त किया गया है। अब सिद्ध हुआ है कि परमाणु विद्युत्कणोंके संयोगसे बनते हैं। वैज्ञानिकोंने अब मान लिया है कि विद्युत्कण ही प्रकृतिकी आरम्भिक अवस्था है। विद्युत्कणोंके संयोगसे अथवा यों कहिये कि शक्तिके रूप परिवर्तनसे प्रकृतिका जन्म होता है। देखिये पाश्चात्य विज्ञान घूम फिर कर कहाँ पहुँच गया! शक्ति ही प्रकृतिकी माता सिद्ध हो गई। शक्तिका ही रूप, शक्तिका ही विकास, शक्तिकी ही क्रीड़ा मात्र यह समस्त ब्रह्माण्ड है। संसारको माया मान लीजिए, शक्तिसे ही निकल कर यह समस्त ब्रह्माण्ड शक्तिमें ही अन्तमें लीन हो जाने वाला है। भारतवर्षके दार्शनिक सिद्धान्त किसी न किसी रूपमें पाश्चात्य वैज्ञानिक अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर रहे हैं। अभी थोड़े ही दिनकी बात है कि डाक्टर जगदीशचन्द्र वसुने यह सिद्ध करके समस्त भूमण्डलको चकित कर दिया है कि वृक्षों या पौधोंमें वही जीवन है जो पशुओं या मनुष्योंमें है। हम लोग मानते आये हैं कि वृक्षोंमें भी जीवात्मा है। देखिए पाश्चात्य वैज्ञानिक रीतिसे भी अब यही बात सिद्ध की जा रही है।

विद्युत्कण क्या है? इस प्रश्नका उत्तर इस लेखमें विस्तार पूर्वक देना कठिन काम है। इतना समझ लीजिए कि विद्युत्कण निरन्तर गतिवान रहते हैं। शक्तिके अंग ही ठहरे, गति उनका गुण होना ही चाहिये। गति भी कैसी कि जिसके अनुमान मात्रसे सिर चकरा उठता है, तेज़से तेज़ डाकगाड़ीसे लाखों गुना अधिक तेजीसे कोई २३८ विद्युत्कण एक परमाणुके अन्दर निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं। इनमेंसे कभी कोई एक दूसरेसे टकराता नहीं। हमारे सूर्य मंडलमें एक सूर्य और १०-१२ ग्रह हैं। २३८ ऐसे ही ग्रह इतनी ही गतिके साथ हमारे सूर्यमंडलमें चक्कर लगाने लगें तो कितनी घबराहट मालूम पड़े। पर परमात्माकी लीला अपरम्पार है। जहाँ नभमें अनन्त तारे उसने बनाये हैं वहाँ एक परमाणुके अन्दर एक सूक्ष्मतम नभमण्डल बना दिया है। उसकी लीलाका न इधर अन्त है न उधर।

नभमें सूर्य और ग्रह और अनन्त तारे अपनी अपनी परिधियोंमें निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं। समस्त ब्रह्माण्डमें कार्य करती हुई वह कौन सी शक्ति है जो इस ब्रह्माण्डकी गतिका नियन्त्रण करती है? पृथ्वी और ग्रह सदा एक चालसे अपने अपने स्थानपर भ्रमण कर रहे हैं। पृथ्वी, सूर्य और ग्रहोंकी सापेक्ष दूरी सदा एक ही बनी रहती है। इसका कारण क्या है? वैज्ञानिकोंने अनुमान तथा प्रयोगोंसे यह सिद्ध किया है कि ब्रह्माण्डमें प्रकृतिका प्रत्येक कण दूसरे कणको आकर्षित कर रहा है। यही आकर्षण शक्ति समस्त ब्रह्माण्डमें काम करती हुई सूर्यों, ग्रहों और तारोंको चला रही है। तथा उनका सापेक्ष्य स्थान निश्चित करके प्रत्येकको अपने अपने स्थानपर स्थित किये हुए है। हमारे सूर्यमण्डलके ग्रहोंमेंसे यदि कोई ग्रह अपने स्थान या गतिसे ज़रा भी विचलित हो या अपने भ्रमणकी परिधिमें ज़रा फेरफार डाले तो तुरन्त समस्त सूर्य-मण्डलमें हलचल मच जाय। इसी प्रकार परमाणुओंके भीतरके विद्युत्कण एक दूसरेको आकर्षित करते हुए अपनी अपनी परिधियोंमें भ्रमण कर रहे हैं। हर एकका रास्ता अलग है,

हरएकका सापेक्ष स्थान निश्चित है। एक भी विद्युत्कण परमाणुके बाहर कभी निकलकर नहीं जा सकता। विद्युत्कणोंका पारस्परिक आकर्षण घटाना या बढ़ाना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। परमाणुकी तुलना ३३६ ग्रहोंवाले एक सूर्यमण्डलसे कीजिए। जैसे मनुष्य इस सूर्यमण्डलके किसी ग्रहकी गतिमें ज़रा भी परिवर्तन करनेमें नितान्त असमर्थ हैं वैसे ही परमाणुके भीतरवाले विद्युत्कणोंपर मनुष्यका कोई भी ज़ोर नहीं है।

मनुष्यकी लालसाकी कोई सीमा नहीं। वैज्ञानिक लोग इस समय सिर तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं कि कोई ऐसी विधि ढूढ़ निकाली जाय जिससे एक विद्युत्कणको दूसरे विद्युत्कणसे अलग करके परमाणुका विश्लेषण करना सम्भव हो सके। अभीतक वैज्ञानिकोंको इस आकर्षण शक्तिमें परिवर्तन उपस्थित करनेका ढंग नहीं मालूम हुआ है। साथ ही यह भी डर है कि यदि किसी परमाणुके विद्युत्कणोंमें पारस्परिक आकर्षण शक्तिको घटाकर विश्लेषण कर दिया गया तो मालूम नहीं कि स्वतन्त्रता पाये हुए यह विद्युत्कण अन्य परमाणुओंपर क्या प्रभाव डालेंगे। सम्भव है तथा अनुमानसे यह निश्चयसा प्रतीत होता है कि एक परमाणुके विद्युत्कण अन्य परमाणुओंके विद्युत्कणोंपर आक्रमण करेंगे, उनको आकर्षित करके दूसरे परमाणुओंमें भी विश्लेषण उपस्थित कर देंगे। प्रकृतिके कणोंका पारस्परिक आकर्षण ब्रह्माण्डका व्यापक नियम है। इसलिए एक परमाणुके विश्लेषणसे मुक्त हुए विद्युत्कण अपने चारों ओर अन्य परमाणुओंके कणोंपर अपनी आकर्षण शक्तिका प्रभाव डाल ज़रासी देरमें आणविक विश्लेषणका प्रसार चारों ओर कर देंगे। एक जगह आग लगती है तो बढ़ती ही जाती है, जबतक बुझाई न जाय। आणविक विश्लेषण आरम्भ होकर क्षणमात्रमें समस्त ब्रह्माण्डमें प्रलय कर देगा। संगठित रूपको त्यागकर प्रकृति अपनी आरम्भिक अवस्थाको प्राप्त हो जायगी। क्या मनुष्यकी ज्ञान पिपासा, शक्तिपर आधिपत्यकी लालसा एक दिन ब्रह्माण्डके प्रलयका कारण होगी ?

रुधिर

[ले०—श्री रामशरण दास एम. एस-सी.]

(दो) हज़ार वर्षसे ज़्यादा व्यतीत हुआ कि अरस्तू (Aristotle) ने यह बतलाया था, कि इस संसारमें दो तरहके जीव होते हैं:—(१) जिनमें खून होता है और (२) जिनमें खून नहीं होता। वास्तवमें लोग उस समय यह समझते थे कि बिना रीढ़ वाले जीवोंमें रुधिर नहीं होता। और रीढ़ वाले जीवों में ही रुधिर होता है किन्तु आधुनिक समयमें यह जीव विभाग ग़लत सिद्ध हुआ है, क्योंकि बहुतसे ऐसे बिना रीढ़ वाले जीव हैं जिनमें रुधिर, नाड़ी इत्यादि अवयव वर्तमान हैं। सम्भवतः इस ग़लतीका कारण यह था कि उस समय लोगोंको यह नहीं ज्ञात था कि रुधिरका रङ्ग लालके अतिरिक्त सफ़ेद भी होता है।

वास्तवमें ९९ प्रतिशत बिना रीढ़के जानवरोंका रक्त लाल नहीं होता। प्रायः इनमें रुधिर बिना किसी रङ्गके होता है। और बहुधा इन जानवरोंका रक्त कुछ हलका नीले रङ्गका होता है। उदाहरणार्थ झींगे, घोंघे, पतिङ्गे इत्यादि। ऐसे जानवरोंके रुधिरमें एक तत्व होता है जिसको अंगरेज़ीमें हीमोसियानिन (haemocyanin) कहते हैं। रीढ़दार जीवोंके लाल रक्तमें एक दूसरा तत्व होता है जिसको अंग्रेज़ीमें हीमोग्लोबिन (haemoglobin) कहते हैं।

दोनों तत्वोंमें यह गुण है कि वे ओषजन गैसको ग्रहण कर लेते हैं किन्तु ग्रहण करनेकी शक्तिमें भेद अवश्य है—हीमोग्लोबिन (haemoglobin)

की शक्ति हीमोसियानिनके (haemocyanin) अपेक्षा बहुत ही तीव्र है। इस अवसरपर यह बतलाना उचित होगा कि हीमोमाइनिनमें कुछ तांबेका अंश होता है और हीमोग्लोबिनमें लोहेका। रुधिरकी उपयोगिता भले प्रकार समझनेके लिए यह उचित होगा कि जीवके शरीरकी उपमा एक बड़े शहरसे दी जाय। जिस प्रकार शहरमें भोजन, जल, वायु, घर घर पहुँचनेका कोई न कोई प्रबन्ध होता है और घर घरकी गन्दगी दूर करनेका भी प्रबन्ध होता है, उसी प्रकार शरीरमें भी आवश्यक है कि भोजन, जल, वायु उसके छोटेसे छोटे हिस्सोंमें भी पहुँचाया जावे तथा वहांका निष्प्रयोजन और हानिकारक तत्व किसी तरहसे बाहर निकाला जाय। रुधिरकी उपयोगिता इसीसे प्रत्यक्ष है कि शरीरमें इन सब कठिन तथा आवश्यक विषयोंको सिद्ध करनेका भार रुधिरपर ही है। किन्तु इस अवसरपर यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि उन जानवरोंमें जिनमें खून नहीं होता यह काम कैसे चलता है। इस प्रश्नपर विचार करनेके पूर्व यह जानना आवश्यक है कि जीवोंकी रचना भिन्न भिन्न प्रकारकी है। कुछ तो ऐसे सादे होते हैं जिनमें मुँह, नाक कान, पेट, खून इत्यादि कुछ भी नहीं होता। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि ऐसे जानवर बहुत ही छोटे छोटे होते हैं। वे हवा, पानी, खाना बिना नाक कान इत्यादिके भी स्वयं ग्रहण करके काममें लाते हैं। अतः उनको दिल, नाड़ी, रक्तकी आवश्यकता ही नहीं होती। इनसे ऊंचे श्रेणीके जीवोंमें भी रुधिर नहीं होता है, क्योंकि वे भी हवा-खाना, पानी उसी नियमके अनुसार ग्रहण करते हैं। साथ ही उनके शरीरमें एक अङ्गका दूसरे अङ्गसे सम्बन्ध पतली पतली नलियों द्वारा होता है। इन नलियोंमें एक द्रव पदार्थ होता है जो रुधिरका काम देता है। यद्यपि इस श्रेणीके जीव बहुधा छोटे होते हैं किन्तु कभी कभी वे बहुत बड़े शरीर वाले भी होते हैं, जैसे मूँगा (coral), स्पंज (sponge) मेडूसा (medusae) इत्यादि।

फीता या सूतके तरह जो कीड़े होते हैं उनके शरीरके रिक्त स्थानमें एक द्रव पदार्थ वर्तमान है, जो रुधिर तो नहीं है किन्तु खूनका काम देता है। इनसे उच्च श्रेणीके जीवोंमें रुधिरका अस्तित्व प्रारम्भ हो जाता है। इन रुधिर वाले जीवोंमें भिन्न भिन्न प्रकारकी श्रेणियाँ होती हैं। सीअर्चिन (sea urchin) में वह द्रव पदार्थ जो शरीरके रिक्त स्थानमें भरा रहता है रुधिरकी अपेक्षा अधिक आवश्यक कार्य करता है। केंचुवे इत्यादिमें भी यह द्रव पदार्थ होता है। जो शरीरके सब अङ्गोंमें भोजन पहुंचाता है इन जीवोंमें रुधिरका काम केवल यही है कि ओषजन गैसको बाहरसे ग्रहण करके हर एक अङ्ग-तक पहुँचावे और कर्बनद्विओषिद (carbonic acidgas) और नत्रजन (nitrogen) जैसे हानिकारक पदार्थ शरीरसे बाहर निकाले। पतिङ्गोंमें रक्त प्रवाह प्रायः उनके शरीरके बहुतसे बड़े बड़े अनियमित रूपसे बने हुए रिक्त स्थानोंमें होता है। इनमें और कोई द्रव पदार्थ रुधिरके अतिरिक्त नहीं होता जिनका वृत्तान्त ऊपर लिखा गया है। संक्षेपमें बात यह है कि रक्त वाले जीवोंमें हर तरहकी श्रेणियाँ मौजूद हैं। परन्तु सबसे ऊंची श्रेणीके वे हैं जिनमें बद्ध प्रणाली (close system) होती है यानी जिनमें दिल, रगें इत्यादि सब तरहसे बन्द होती हैं और खाना और हवा रुधिरकी पतली पतली नलियोंसे छन कर लिम्फमें जाता है। और वहांसे भिन्न भिन्न अङ्गोंमें पहुँचता है। इसी प्रकार व्यर्थ और शेष तत्व पदार्थ लिम्फ (lymph) होकर इन नलियोंमें छन कर आता है।

खून और लिम्फ (lymph) में कुछ बहुत भेद नहीं होता। खूनमेंसे अगर लाल रक्ताणु (red corpuscles) निकाल डाले जावें तो बची हुई चीज़ लिम्फ (lymph) कहलायगी। अगर दिल, नाड़ी इत्यादिकी उपमा रेलगाड़ीसे दी जाय तो उचित होगा। जिस तरहसे रेलगाड़ी नगर नगर होकर जाती है, घरघर होकर नहीं जा सकती क्योंकि रेल केवल अपने खास तौरसे बने हुए

रास्तेपर चल सकती है और घरसे स्टेशन जाने या वापस आनेके वास्ते किसी दूसरी सवारीकी आवश्यकता होती है उसी तरह खून अपने साथ भोजन हवा और जल यात्रियोंकी तरह लिये हुए अपने खास रास्तेपर दौड़ा करता है और जिस जगहपर खाना, हवा, पानीकी आवश्यकता होती है वे खूनकी सवारी छोड़ कर नाड़ियोंके बाहर आ जाते हैं और लिम्फ (lymph) की सवारी द्वारा ठीक स्थान पर पहुँच जाता है इसी प्रकार हानिकारक और व्यर्थ टट्टू हर स्थानसे लिम्फ (lymph) की सवारी द्वारा खूनकी सवारी तक जो नाड़ियोंमें दौड़ रहा है पहुँचता है और वहांसे फिर सांस पसीना या पेशाब द्वारा शरीरके बाहर निकाल दिया जाता है।

एक स्वस्थ मनुष्यके रक्तकी मात्रा उसके शरीरकी मात्राका २० वां भाग होता है। लेकिन मनुष्य किसी ऐसे स्थान पर जावे जैसे शिमला मंसूरी, नैनीताल वगैरह जो समुद्र तलसे कई हजार फ़ीटकी ऊंचाईपर हैं, तो रक्तके लाल रक्ताणुओं (corpuscles) की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जावेगी जिसके कारण शरीर और रक्तकी मात्राका सम्बन्ध बढ़ जाता है। लाल रक्ताणुओं (red corpuscles) के बढ़ जानेका कारण यह होता है कि इतनी ऊँचाईपर ओषजनकी मात्रा हवामें कम हो जाती है और पर्याप्त ओषजन ग्रहण करनेके लिए ग्रहण करने वाली चीज़की मात्राका बढ़ना परमावश्यक है, इससे यह सिद्ध हुआ कि हर मनुष्य में वह शक्ति मौजूद है जो वाह्य परिवर्तनके अनुसार अपने शरीरमें भी ऐसा परिवर्तन पैदा कर सकती है जो उसके जीवनके लिए उपयुक्त और लाभदायक हो।

रुधिर दो प्रकारके पदार्थोंसे मिलकर बना है, जिनमें एक पदार्थ सजीव है दूसरा निर्जीव। सजीव पदार्थ छोटे छोटे कोषों (cells) से बना हुआ है जिनको रक्ताणु और अंगरेजीमें corpuscles कहते हैं। ये दो प्रकारके होते हैं यानी एक लाल जिनका वृतान्त ऊपर आ चुका है और जो ओषजन ग्रहण करनेके काममें आते हैं। दूसरे सफ़ेद रक्ताणु (corpuscles) होते हैं जिनमें विचित्रता यह होती है कि वह अपना रूप हर समय बदला करते हैं। इनका वृतान्त आगे आयेगा। रुधिरका निर्जीव भाग द्रव पदार्थ होता है। उनमें बहुत सी वस्तुयें पाई जाती है। उदाहरणार्थ, घुली हुई प्रोटीन थोड़ीसी शक्कर, कुछ चर्बी, बहुतसा ओषजन और कई प्रकारके नमक।

रुधिरमें लवणकी मात्रा और स्थितपर विचार करनेसे समुद्रके जलका ख्याल होता है क्योंकि दोनोंकी बनावट कुछ समान प्रतीत होती है। खूनमें इन लाभदायक वस्तुओंके अतिरिक्त कुछ व्यर्थ और हानिकारक वस्तुएँ भी होती है। उदाहरणार्थ कर्बन-द्विओषिद् गैस मूत्रिक (urea) इत्यादि इन सब बातोंसे प्रत्यक्ष है कि रुधिरमें जलका अंश बहुत ज़्यादा होता है। यह कहना ठीक होगा कि रुधिरमें ६० फ़ी सैकड़ा जल होता है। यह माननेमें किसीको आपत्ति न होगी कि जल जीवनके लिये परमावश्यक है बल्कि यह कहना ज़्यादा ग़लत न होगा कि पानी सेही जीवन स्थिर है।

रुधिरके द्रव-पदार्थकी बनावट बहुत पेचीदा है। उपर्युक्त पदार्थोंके अतिरिक्त बिना नलीके ग्रंथि (gland) से बनी हुई चीज़ें शरीरके भिन्न भिन्न अङ्गोंमें रक्त ही द्वारा प्रवाहित होती हैं। इन वस्तुओंको हारमोन (harmone) या कलारी (chalories) कहते हैं। यह भिन्न भिन्न भिन्न अङ्गोंमें इच्छित तथा लाभदायक प्रभाव उत्पन्न करती हैं। इन वस्तुओंके सम्बन्धमें विशेष न लिखकर इतना कहना पर्याप्त होगा कि यह सिद्ध हो चुका है कि जीवनके अस्तित्वके निमित्त ये चीजें परमावश्यक है। इनकी अनुपस्थितिके कारण बहुधा भयङ्कर तथा हानिकारक दशायें शरीरमें उत्पन्न हो जाती हैं।

रुधिरमें ऐसी भी चीज़ें उपस्थित हैं जो शरीरमें उस विषका सामना करती हैं जो रोगोत्पादक

कीड़ोंसे पैदा होता है। रक्तमें ऐएटेथ्रोंबिन (anti-thrombin) भी मौजूद है जो रुधिरको जमनेसे रोकती है। बहुधा वृद्ध या रोगग्रस्त लोगोंके मस्तिष्कके रुधिरकी नाड़ियोंमें रक्त जम जाता है जिसके कारण शरीर सुन्न पड़ जाता है और प्रायः मृत्यु भी हो जाती है।

सफ़ेद रक्ताणु (white blood corpuscles) जिनका थोड़ा वृतान्त ऊपर लिखा गया है उनका काम यही होता है कि रोगोत्पादक कीड़ोंका सामना करके उनको नष्ट करें। कभी कभी इनको इसी अभिप्रायसे नलियोंके बाहर भी जाना पड़ता है।

रक्तके रक्ताणु (corpuscles) की संख्या इतनी है कि इनका विचार करना भी असम्भव है। तथापि इतना वर्णन करना अवश्य ही रोचक होगा कि यदि एक मनुष्यके रक्ताणु (corpuscles) की एक पंक्ति बनाई जाय तो पृथ्वीसे चन्द्र तककी दूरीका ⅓ हिस्सा तै हो जायगा। इस प्रकार विचार किया जासकता है कि छोटी आलपीनके शिरके बराबर रक्तमें ५००००० लाल और २०००० सफ़ेद रक्ताणु (corpuscles) होते हैं

इस विस्तृत वृतान्तसे यह निश्चय ज्ञात हुआ होगा कि जीवके शरीरमें रुधिर एक एक भाग है जिसके साथ और सब अङ्गोंका घनिष्ट सम्बन्ध है। यही सबका भोजनकी सामग्री पहुँचाता है और इसीके द्वारा व्यर्थ तथा हानिकारक पदार्थ उन स्थानोंसे जहाँ वे उत्पन्न होते हैं गुर्दा और कलेजेतक पहुँचते हैं जिनकी सहायतासे शरीरसे बाहर निकाले जाते हैं। इसीके द्वारा हारमोन (harmone) उन हिस्सोंमें पहुँचते हैं जो इनके निमित्त प्रतीक्षा करते रहते हैं। सम्पूर्ण शरीरके तापक्रम को भी यही बराबर रखता है। इसके अतिरिक्त विषसे बचनेका भी प्रबन्ध यही करता है। अब यदि यह कहा जाय कि खून ही जीवन देता है तो अत्युक्ति न होगी।

सूर्यकी गति

[ले० श्री नवनिधिराय, एम. ए.]

हले लोगोंका विश्वास था कि पृथ्वी निश्चल है, सूर्य पृथ्वीके चारों ओर घूमता है। परन्तु ज्योतिषियोंने इस सिद्धान्तको झूठा सिद्ध कर दिया। उन्होंने निश्चय किया कि सूर्य नहीं चलता वरन पृथ्वी सूर्यके चारों ओर ३६५¼ दिनोंमें घूम आती है। साधारणतः सूर्य हमें चलता दिखलाई पड़ता है पर वास्तवमें यह सापेक्ष गतिके कारण है। सूर्य स्थिर है यह विश्वास पहले ज्योतिषियोंको था पर अनुसन्धानसे यह सिद्ध हुआ है कि सूर्य अचल नहीं है निस्सन्देह हमारे सूर्यमंडलके सब ग्रह सूर्यके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं और इन ग्रहोंकी अपेक्षा सूर्य स्थिर है परन्तु वह सूर्य इन सब ग्रहोंको साथ लिये हुए बड़े वेगसे आकाशमें दौड़ रहा है। वीगा (Vega) नामक एक तारा आकाशमें उत्तरकी ओर है। सूर्य इसी वीगा नामक तारेकी ओर बड़ी तेजीसे दौड़ा जा रहा है। ११ मील प्रति सेकण्ड इसकी गति है। हमारी पृथ्वीके लिए यह गति बड़ी तेज है परन्तु सूर्यके लिए यह गति एक मामूली तौरके समान है। क्योंकि सूर्य का व्यास १०००००० मील लम्बा है। वह अपने इस व्यासकी लम्बाईको कोई दो घंटेमें चल लेता है। सूर्यके साथ हमारी पृथ्वी और सूर्यमण्डल तथा पृथ्वीके साथ हम सब लोग इस बड़ी तीव्र गतिसे दौड़े जा रहे हैं।

हमारे सूर्यके सदृश अरबों सूर्य आकाशमें मौजूद हैं। यह सब सूर्य गतिवान हैं लेकिन सबकी गति नियमबद्ध है किसीमें जरासी भी उच्छृङ्खलता नहीं। वास्तवमें ब्रह्माण्डके दो भाग हैं यह दोनों भाग एक दूसरेके विरुद्ध दिशामें गतिवान् हैं। दोनों भागोंके या यों कहिए कि दोनों ब्रह्माण्डोंके सूर्य और तारे ब्रह्माण्डों की गतिके कारण एक

दूसरेसे मिलते रहते हैं फिर भी उन सबमें एक दूसरेसे इतनी अधिक दूरी रहती है कि कोई किसीके ऊपर आकर्षण नहीं डाल सकता। कोई भी किसी दूसरे की आकर्षणशक्तिसे प्रभावान्वित नहीं हो सकता।

सूर्यों की गति ब्रह्माण्डके विधानका एक अंग है। प्रलयावस्थाको त्यागकर प्रकृतिके कण जबसे सृष्टिका विकाश करने लगे हैं तभीसे यह गति आरम्भ हुई है। पहले उत्तम गैसके पिण्ड बने थे वही धीरे धीरे केन्द्रीभूत होकर हमारे सूर्य बन गये हैं। पिण्डोंमें जो गति जिस नियमके अनुसार प्रदान की गई थी वही नियम कार्य करते हुए अब भी वही गति सूर्यों और तारोंमें बनाये हुए हैं।

तारोंके दो समूह हैं। एक समूह वीगा की ओर वेगवान है और दूसरा सीरियस (Sirius) की ओर। प्रत्येक समूहमें सूर्योंके अनगिनती छोटे छोटे समूह हैं और इन सब समूहों की अपनी अपनी अलग गतियाँ हैं।

संसार शब्द बहुत उपयुक्त है। यदि संसार में कोई व्यापक नियम प्रत्यक्ष है तो वह है निरन्तर गतिका नियम। जहाँतक मनुष्य अनुसन्धान द्वारा या विचारशक्ति द्वारा भी पता लगा सकता है। कोई भी बड़ीसे बड़ी अथवा सूक्ष्मसे सूक्ष्म चीज नहीं है जो निरन्तर गतिवान् न हो।

रेडियम और हीलियम

उज्जनकी शक्ति

[ले० श्री नवनिद्धिराय एम. ए.]

रासायनिक तत्वोंके परमाणुभार निकालने पर ज्ञात हुआ है कि सबसे अधिक परमाणु-भार यूरेनियमके परमाणुका है। थोरियमका परमाणु भी करीब करीब इतना ही भारी है। यह दोनों तत्व आपसे आप विश्लेषित होते रहे हैं और इनसे सीसा बनजाता है। अभीतक लोगोंका यह विश्वास था कि किसी तत्वको विश्लेषित करना असंभव है और एक तत्वमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन उप-स्थित करके दूसरा तत्व बना लेना संभव नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यको अभीतक तत्व परिवर्त्तनका रहस्य और तत्वविश्लेषण की विधि मालूम नहीं है। इसलिए यह मनुष्य की शक्तिके सर्वथा बाहर है कि तत्वोंका विश्लेषण किया जाय या एक तत्वसे कोई दूसरा तत्व बनाया जा सके। पर यूरेनियम और थोरियम आपसे आप विश्लेषित होकर सीसेका रूप धारण करलेते हैं। यूरेनियम परिवर्त्तित होकर पहले रेडियम बनता है और रेडियमसे फिर सीसा। प्रश्न हो सकता है कि क्या यूरेनियम, थोरियम और रेडियम वास्तवमें तत्व हैं? यह सीसेके यौगिक तो नहीं? वैज्ञानिक अनुसन्धानों द्वारा सभ्य जगत्के वैज्ञानि-कोंने यह सिद्ध कर दिया है कि यह तीनों वास्तव में तत्व हैं और एक प्रकारके विश्लेषण द्वारा यह परिवर्त्तित होते रहते हैं। वैज्ञानिकोंको अबतक यह नहीं मालूम हो सका कि परिवर्त्तन क्यों और कैसे होता है। पर यह तीनों तत्व सदा एक प्रकार के ज्वलन्त कण अपनेमेंसे निरन्तर निकालते रहते हैं और एक निश्चित मात्रामें इन कणोंके निकल जानेके बाद यह तत्व आपसे आप सीसा हो जाते हैं। ऐसे तत्वोंको जो ज्वलन्त कण निकालते रहते हैं, दीप्त पदार्थ (radio-active) कहलाते हैं।

रासायनिकोंका मत है कि रेडियममेंसे निरन्तर अत्यन्त सूक्ष्म दीप्तकण निकलते रहते हैं। इनका वेग अत्यधिक है। अनुसन्धानसे अब ज्ञात हो गया है कि यह कण किस पदार्थके बने हैं। रेडियमके प्रसरण (emanation) की परीक्षासे ज्ञात हुआ कि यह पारदर्शक गैस है जो बहुत नीचे तापक्रम पर पहुँचकर अवर्ण (colourless) द्रवमें द्रवीभूत (condense) हो जाता है। यह द्रव अधिकांश हीलियमका बना पाया जाता है। रेडियमके प्रसरणसे प्राप्त तत्वोंमें हीलियम ही पहला तत्व है

जिसमें स्थायित्व (stability) है। हीलियम और उज्जन (hydrogen) में बड़ा मनोहर सम्बन्ध हैं। उज्जनका परमाणु भार १·२०७७ है और हीलियम (helium) का ठीक ४ है। उज्जनके ४ परमाणुओं से हीलियमका एक परमाणु बना है। यह सिद्ध हो चुका है कि उज्जनका परमाणु धनात्मक विद्युतकणका बना है। इसलिए कह सकते हैं कि हीलियमका १ परमाणु ४ धनात्मक विद्युत् इकाइयोंका बना है। उज्जनके परमाणु भारमें १ से जो अधिकता है (होना चाहिए था १ पर है १·२०७७) वह उज्जन परमाणुओंमें बद्ध शक्तिके कारण है। यह शक्ति यदि उज्जनके परमाणुमेंसे अलग कर ली जाय तो उज्जनके ४ परमाणु मिलकर हीलियमका १ परमाणु बना सकते हैं। अनन्तशक्ति उज्जनमें निहित है। मनुष्य उसका स्वामी है। शक्तिका इससे बड़ा भाण्डार मनुष्यके पास नहीं है।

दीप्त पदार्थोंका अध्ययन इस समय पाश्चात्य देशोंमें बड़े जोरोंसे हो रहा है। विश्वास है कि शीघ्र ही मनुष्यके हाथ शक्ति की नई कुञ्जी आ जायगी। दीप्त पदार्थोंके अध्ययनसे विज्ञान की एक नई शाखा बनगई है जिसे रेडियो एक्टिविटी (radio activity) दीप्तिविज्ञान कहते हैं। खेद है कि अभी भारतवर्षमें आरम्भिक विज्ञान की भी चर्चा बहुत कम है। वह दिन न जाने कब आवेगा जब हम लोग विज्ञान की इन शाखाओंका अध्ययन करके भारतवर्षको भी शक्तिके अनन्त भाण्डारके किसी कोनेपर अधिकार प्राप्त करा सकेंगे।

समालोचना

समालोचक

वार्षिक मूल्य ३) एक अंक का १) कागज व छपाई बढ़िया। पता—संचालक समालोचक गन्धौली-सिधौली-सीतापुर।

हिन्दी साहित्यमें एक ऐसे पत्रकी बड़ी जरूरत थी जिसमें साहित्यके विविध पुस्तकोंकी समालोचना गंभीरता और विद्वत्तापूर्ण, विस्तार पूर्वक रहा करे। बड़े हर्षकी बात है कि इस पत्रका उदय इसी अभावकी पूर्तिके लिए हुआ है। श्रीयुत पं० कृष्णविहारी मिश्र बी. ए. एल एल बी. और श्री० विपिनविहारी मिश्र और श्री० नवल विहारी मिश्र बी. एस. सी. के सम्पादकत्वमें यह समालोचना सम्बन्धी त्रैमासिक पत्र निकलता है। हमारे सामने प्रथम वर्षका द्वितीय अंक है बा० श्याम सुन्दरदास श्रीप्रेमचन्द, श्रीअवधउपाध्याय, मिश्रबन्धु, ला० सीताराम बी० ए० आदि विद्वानोंके लेखसे विभूषित है। बड़ी योग्यतासे सम्पादन हुआ है। इसमें न केवल नवीन पुस्तकोंकी आलोचना रहती है प्रत्युत हस्तलिखित अप्रकाशित प्राचीन पुस्तकोंके सम्बन्धमें भी गवेषणा पूर्ण लेख रहते हैं। प्राचीन कवियोंके जीवनकी अनेक घटनाओंका भी मनोरंजक वर्णन रहता है। जिस महान् उद्देशको सामने रखकर इस पत्रका सम्पादन किया गया है उसमें सम्पादकत्रय अवश्य ही सफल हुए हैं। हम इसके मुख्य सम्पादक और संचालक साहित्यमर्मज्ञ पं० कृष्णबिहारी मिश्रको हृदयसे बधाई देते हैं और ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि इस पत्र की उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

इसकी सभी समालोचनाएँ गम्भीरता और शिष्टतापूर्वक हुई हैं। किसी समालोचनामें कोई अशिष्ट या दुखद शब्द नहीं आया है जैसा अन्य पत्रोंमें कभी कभी देखा जाता है कि समालोचक महाशय गन्दे शब्दोंका प्रयोग करके अपनी क्षुद्रता का परिचय दे देते हैं।

इसके सभी लेख उत्तम और महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी साहित्यके प्रेमियोंको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। मुझे आशा है कि हिन्दी साहित्यके मर्मज्ञ अपने महत्वपूर्ण लेखोंसे इस पत्रकी सहायता करेंगे तथा हिन्दी प्रेमी इस पत्रका ग्राहक बनकर गुण ग्रहणका परिचय देंगे।

चलन समीकरण

[ले०—श्री अवध उपाध्याय]

(गतांकसे आगे)

द्वितीय अध्याय

इस अध्यायमें सुगम समीकरण हल करनेके नियमोंका वर्णन होगा। इस पुस्तकमें केवल उन्हीं समीकरणोंका वर्णन होगा जो बहुत ही सुगम हैं।

कभी कभी चलराशियां पृथक् की जा सकती हैं। तब समीकरण सुगमतासे हल किया जा सकता है और समीकरणका रूप $फ_1$ (य) त य + $फ_2$ (र) त र होगा। इन दशाओंमें चलराशि कलनकी सहायतासे उत्तर सुगमतासे आ सकता है जो निम्नलिखित उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगा।

प्रथम उदाहरण $\frac{य^2+१}{र^2+१} = य\, र \frac{त\, र}{त\, य}$ को हल करो

$$य\, र\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{य^2+१}{र^2+१}$$

$$\therefore य\, र\, त\, र = \frac{(य^2+१)\, त\, य}{र^2+१}$$

$$\therefore (र^2+१)\, र\, त\, र = \frac{य^2+१}{य}\, त\, य$$

$$\therefore (र^3+र)\, त\, र = (य+\tfrac{१}{य})\, त\, य$$

$$\therefore \frac{र^4}{४} + \frac{र^2}{२} = य^2 + ल_इ\, य + अ$$

उ० २—(१ − य) त र − (१ + र) त य = ० को हल करो।

$$(१-य)\, त\, र - (१+र)\, त\, य = ०$$

$$\therefore \frac{त\, र}{१+र} - \frac{त\, य}{१-य} = ०$$

$$\therefore ल_इ(१+र) + ल_इ(१-य) = स$$

$$\therefore (१+र)(१-य) = इ^{स_1} = स_2.$$

यही उत्तर हुआ। यह समीकरण दूसरे प्रकारसे भी हल हो सकता है।

दूसरी क्रिया (१ − य) त र − (१ + र) त य = ०

$$\therefore त\, र - त\, य - (य\, त\, र + र\, त\, य) = ०$$

$$\therefore र - य - य\, र = स$$

देखनेसे मालूम होता है कि इस प्रश्नके दो उत्तर हैं परन्तु दोनों उत्तरोंमें कुछ अन्तर नहीं है। केवल स्थिर राशियोंमें ही अन्तर है।

उ० ३—समीकरण $\frac{त\, र}{त\, य} + \sqrt{\frac{१-र^2}{१-य^2}} = ०$ को हल करो

$$\frac{त\, र}{त\, य} + \sqrt{\frac{१-र^2}{१-य^2}} = ०$$

$$\therefore \frac{त\, र}{\sqrt{१-र^2}} + \frac{त\, य}{\sqrt{१-य^2}} = ०$$

$$\therefore ज्या^{-1} र + ज्या^{-1} य = स.$$

$$अथवा\ र\sqrt{१-य^2} + य\sqrt{१-र^2} = स.$$

उ० ४—$र - य \frac{त\, र}{त\, य} = अ\left(र^2 + \frac{त\, र}{त\, य}\right)$ को हल करो।

$$र - य\frac{त\, र}{त\, य} = अ\left(र^2 + \frac{त\, र}{त\, य}\right)$$

$$\therefore र(१-अ\, र)\, त\, य = (य+अ)\, त\, र$$

$$\therefore \frac{त\, य}{य+अ} = \frac{त\, र}{र(१-अ\, र)}$$

$$= \frac{त\, र}{र} + \frac{अ\, त\, र}{१-अर}$$

$$\therefore ल_इ(य+अ) = ल_इ\, र - अ\, ल_इ(१-अ\, र) + ल_इ\, स$$

$\therefore \text{ल}_\text{इ} (\text{य}+\text{अ}+\text{म}\ \text{ल}_\text{इ} (१-\text{अ}\ \text{र}) + \text{ल}_\text{इ}\ \text{स} = \text{ल}_\text{इ}\ \text{र}$

$\therefore \text{ल}_\text{इ} \{\text{स}(\text{य}+\text{अ})(१-\text{अ}\ \text{र})\} = \text{ल}_\text{इ}\ \text{र}$

$\therefore \text{र}=\text{स}(\text{य}+\text{अ})(१-\text{अ}\ \text{र})$

अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित समीकरणोंको हल करो—

१. य कोज्या ^{२}त य=र ज्या^{२} त र

२. $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \frac{\text{य}^२+\text{य}+१}{\text{र}^२+\text{र}+१}$

३. $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} + \frac{\text{र}^२+\text{र}+१}{\text{य}^२+\text{य}+१} = ०$

४. $\text{य र} \frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \frac{१+\text{र}^२}{१+\text{य}^२}(१+\text{य}+\text{य}^२)$

५. सिद्ध करो कि दूसरे और तीसरे प्रश्न के समीकरणके वक्र, जिनके ये समीकरण हैं एक दूसरेको समकोणपर काटते हैं।

६. $२\text{य} \frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{र}$

७. $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{म}$

८. $\frac{\text{त र}^२}{\text{त य}^२} = ०$

९. $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = -\frac{\text{य}}{\text{र}}$

१०. $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = -\frac{\text{र}}{\text{य}}$

समघातिक समीकरण

बीजगणित जाननेवाले भली भांति जानते हैं कि जो समीकरण य और र में समघातिक होगा वह निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित किया जा सकता है :—

$$\text{य}^\text{न}\ \text{फ}\left(\frac{\text{र}}{\text{य}}, \frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right) = ०$$

यह समीकरण दो भागोंमें विभाजित हो सकता है। प्रथम वह जिसमें $\frac{\text{त र}}{\text{त य}}$ का मान य और र के पदोंमें लाया जा सकता है, द्वितीय वह जिसमें $\frac{\text{र}}{\text{य}}$ का मान $\frac{\text{त र}}{\text{त य}}$ के पदोंमें लाया जा सकता है।

१. कल्पना किया कि समीकरण हल होगया। स्पष्ट है कि समीकरणका रूप निम्नलिखित ही होगा :—

$$\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{फा}\left(\frac{\text{य}}{\text{र}}\right)$$

र = व य का उत्थापन करनेसे

$$\text{व}+\text{य}\frac{\text{त व}}{\text{त य}} = \text{फा}(\text{व}) \text{ अथवा } \frac{\text{त व}}{\text{फा}(\text{व})-\text{व}} = \frac{\text{त य}}{\text{य}}$$

इस समीकरणके हल करनेका नियम अभी दिया गया है। उसीके अनुसार अब

$$\text{ल}_\text{इ}\ \text{अ य} = \int \frac{\text{त य}}{\text{फा}(\text{व})-\text{व}}$$

२. $\frac{\text{र}}{\text{य}}$ का मान $\frac{\text{त र}}{\text{त य}}$ के पदोंमें रखनेसे $\text{र} = \text{य फा}\left(\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right)$

$\frac{\text{त र}}{\text{त य}}$ के लिये अक्षर प का प्रयोग करना सुगम होता है।

$$\therefore \text{र}=\text{य फा}(\text{प})$$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$$\text{प}=\text{फा}(\text{प})+\text{य फा}'(\text{प})\frac{\text{त प}}{\text{त य}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{त य}}{\text{य}} = \frac{\text{फा}'(\text{प})\text{त प}}{\text{प}-\text{फा}(\text{प})}$$

अब चलन-कलन की सहायता से, अ य=फि (प)

प्रथम और द्वितीय समीकरणोंकी सहायतासे प का अपनयन संस्कार किया जा सकता है तब उत्तर आ जायगा।

उदाहरण १ $(य^२ + र^२)\frac{त र}{त य} = य र$ को हल करो

$$(य^२ + र^२)\frac{त र}{त य} = य र \therefore \frac{त र}{त य} = \frac{य र}{य^२ + र^२}$$

अब मान लिया कि र= व य

$$\therefore य\frac{त व}{त य} + व = \frac{व}{१ + व^२}$$

$$\text{अथवा } य\frac{त व}{त य} = -\frac{व^३}{१ + व^२}$$

$$\therefore \frac{त य}{य} = -\left(\frac{१}{व^३} + \frac{१}{व}\right) त व$$

$$\text{अथवा } लइ\ अ\ य = \frac{१}{२ व^२} - लइ\ व \quad \text{या } अ\ र = इ^{\frac{य^२}{२ र^२}}$$

उ० २—$र^२\ त य + (य र + य^२)\ त र = ०$ को हल करो।

$$र^२\ त य + (य र + य^२)\ त र = ०$$

कल्पना किया कि र=व य

$$\therefore \frac{त य}{य} + \frac{१ + व}{व(१ + २ व)} त व = ०$$

$$\therefore \frac{त य}{य} + \frac{त व}{व} - \frac{त व}{१ + २ व}$$

$$\therefore लइ\ य + लइ\ व - \tfrac{१}{२} लइ\ (१ + २ व) - लइ\ स = ०$$

$$\therefore लइ\ र\ य^{\frac{१}{२}} = लइ\ स\ (य + २ र)^{\frac{१}{२}}$$

$$\therefore र\ य^{\frac{१}{२}} = स\ (य + २ र)^{\frac{१}{२}} \quad \text{या, } य\ र^२ = स^२\ (य + २ र)$$

उ० ३—$य^२\ र\ त य - (य^३ + र^३)\ त र = ०$ को हल करो।

$$य^२\ र\ त य - (य^३ + र^३)\ त र = ०$$

$$\therefore य^२\ र\ त य = (य^३ + र^३)\ त र$$

$$\text{अथवा } \frac{त र}{त य} = \frac{य^२ र}{य^३ + र^३}$$

अब कल्पना कर लिया कि र=व य

$$त व\ \frac{त य}{य} + \frac{व^३ + १}{व^४} त व = ०$$

$$\therefore \frac{त य}{प} + \frac{त व}{व} + \frac{त व}{व^४} = ०$$

$$\text{या, } लइ\ व + \frac{व^{-३}}{-३} + लइ\ य - लइ\ स = ०$$

$$\text{या, } लइ\ \frac{व य}{स} = \frac{१}{३ व^३}$$

$$\text{या, } व य = स\ इ^{\frac{१}{३ व^३}}$$

$$\text{या, } र = स\ इ^{\frac{य^३}{३ र^३}}$$

उ० ४—$(४ र + ३ य)\frac{त र}{त य} + र - २ य = ०$ को हल करो।

$$(४ र + ३ य)\frac{त र}{त य} + र - २ य = ०$$

कल्पना किया कि र=व य

$$\therefore \frac{त य}{य} + \tfrac{१}{२}\ \frac{४ व + ३}{२ व^२ + २ व - १} त व = ०$$

$$\frac{त य}{य} + \tfrac{१}{२}\ \frac{४ व + २ त व}{२ व^२ + २ व - १} + \frac{त व}{४ व^२ + ४ व - २} = ०$$

$$\therefore \frac{\text{त य}}{\text{य}} + \tfrac{१}{२}\,\frac{\text{४ व} + \text{२ त व}}{\text{२ व}^{२} + \text{२ व} - १} + \tfrac{१}{४}\,\frac{\text{त व}}{(\text{व} + \tfrac{१}{२})^{२} - (\sqrt{\tfrac{३}{४}})^{२}}$$

$$\therefore \text{ल}_{\text{इ}}\,\text{य} + \tfrac{१}{२}\,\text{ल}_{\text{इ}}\,\text{२ व}^{२} + \text{२ व} - १$$

$$- \frac{१}{४\sqrt{३}}\,\text{ल}_{\text{इ}}\,\frac{\text{२ व} + १ - \sqrt{३}}{\text{२ व} + १ + \sqrt{३}} + \text{ल}_{\text{इ}}\,\text{स} = ०$$

$$\therefore \tfrac{१}{२}\,\text{ल}_{\text{इ}}\,\text{स य}_{२}\left(\frac{\text{२ र}^{२}}{\text{य}^{२}} + \frac{\text{२ र}}{\text{य}} - १\right) =$$

$$- \frac{१}{४\sqrt{३}}\,\text{ल}_{\text{इ}}\,\frac{\frac{\text{२ र}}{\text{य}} + १ - \sqrt{३}}{\frac{\text{२ र}}{\text{य}} + १ + \sqrt{३}}$$

$$\therefore \text{ल}_{\text{इ}}\,\text{स}\,(\text{२य}^{२} + \text{२ य र} + \text{र}^{२})$$

$$= \text{ल}_{\text{इ}}\left\{\frac{\text{२ र} + (१ + \sqrt{३}\,\text{य})}{\text{२ र} + (१ - \sqrt{३}\,\text{य})}\right\}^{\frac{१}{२}\sqrt{३}}$$

$$\therefore \text{स}\,(\text{२ र}^{२} + \text{२ य र} - \text{य}^{२})^{२\sqrt{३}} = \frac{\text{२ र} + (१ + \sqrt{३})\text{य}}{\text{२ र} + (१ - \sqrt{३})\text{य}}$$

अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित समीकरणोंको हल करो।

१. $(\text{य}^{२} + \text{र}^{२})\,\text{त य} - \text{२ य र त र} = ०$

२. $\text{र}^{२}\,\text{त य} + (\text{य र} + \text{य}^{२})\,\text{त य} = ०$

३. $\text{य}^{२}\,\text{र त य} - (\text{य}^{३} + \text{र}^{३})\,\text{त र} = \text{त र} = ०$

४. $\text{य}^{२}\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{र}^{२}$

५. $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \frac{\text{य}}{\text{य} + \text{र}}$

६. $\text{३ य} + \text{४ र} = (\text{५ य} + \text{६ र})\,\frac{\text{त र}}{\text{त य}}$

असम घातिक य और र में साधारण समीकरण।

इस प्रकारके समीकरण निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित किये जा सकते हैं।

$$\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \frac{\text{अ य} + \text{व र} + \text{स}}{\text{अ}'\,\text{य} + \text{व}'\,\text{र} + \text{स}'} \;\ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

य के लिये य$'$+ह$'$ और र के लिये र$'$+क लिखनेसे, (ह और क स्थिर राशियां हैं) त य=त य$'$, त र=त र$'$

प्रथम समीकरण $\frac{\text{त र}'}{\text{त य}'} = \frac{\text{अ य}' + \text{व र}' + \text{स} + \text{अ ह} + \text{वक}}{\text{अ}'\text{य}' + \text{व}'\text{र}' + \text{स}' + \text{अ}'\text{ह} + \text{व}'\text{क}}$

मान लिया कि $\text{अ ह} + \text{व क} + \text{स} = ०$ और $\text{अ}'\text{ह} + \text{व}'\text{क} + \text{स}' = ०$ } अब इन समीकरणोंको हल करना चाहिए

इस प्रकार प्रथम समीकरण

$$\frac{\text{त र}'}{\text{त य}'} = \frac{\text{अ य}' + \text{व र}'}{\text{अ}'\text{य} + \text{व}'\text{र}'} \;\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (२)$$

अब यह समीकरण समघातिक हो गया जिसके हल करनेका नियम दिया जा चुका है।

कल्पना किया कि द्वितीय समीकरणका उत्तर

फ (य$'$, र$'$)=० है

तब (१) का उत्तर फ (य—ह, र—क) होगा

यह नियम सर्वव्यापक नहीं है और कभी कभी इस नियमसे उत्तर नहीं आता।

जब अ: व=अ:$'$ व$'$ त व ह और क का मान नहीं निकल सकता और तब इस नियमसे उत्तर भी नहीं आ सकता।

कल्पना किया कि $\frac{\text{अ}}{\text{अ}'} = \frac{\text{व}}{\text{व}'} = \frac{१}{\text{म}}$

तब प्रथम समीकरण निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित किया जा सकता है।

$$\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{अ\, य + व\, र + स}{म\,(अ\, य + व\, र) + स'}$$

अब यदि यह मान लें कि अ य+व र=ल और यह मान समीकरणमें उत्थापन कर दें तो उक्त नियमोंके अनुसार उत्तर बड़ी सुगमतासे निकल सकता है। निम्नलिखित उदाहरणोंसे क्रिया स्पष्ट हो जायगी।

उ० १—$\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{य+र}{य+र-१}$ को हल करो।

कल्पना किया कि य+र=ल

$$\therefore \frac{त\, ल}{त\, य} = १ + \frac{त\, र}{त\, य}$$

$$परन्तु\ \frac{त\, र}{त\, य} = \frac{य+र}{य+र-१} = \frac{ल}{ल-१}$$

$$\therefore \frac{त\, ल}{त\, य} = १ + \frac{ल}{ल-१} = \frac{२ल-१}{ल-१}$$

$$\therefore त\, य = \frac{ल-१}{२ल-१}\, त\, ल = \tfrac{१}{२}\left[१ - \frac{१}{२ल-१}\right] त\, ल$$

$$\therefore य = \tfrac{१}{२} ल - \tfrac{१}{४} ल_इ (२ल-१) + अ$$

उक्त समीकरणके उत्तरमें ल=य+र

उ० २—समीकरण (३ र−७ य+७) त य+(७ र−३ य+३) त र=० को हल करो।

$$\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{३र-७य+७}{-र+३य-३}$$

कल्पना कर लिया कि र'=व य'

$$\therefore व - य'\frac{त\, व}{त\, य'} = \frac{३व-७}{३-७व}\ या\ (३-७व)\, व\, त\, य' +$$

$$(३-७व)\, य'\, त\, व - (३व-७)\, त\, य = ०$$

$$\therefore ७(१-व^२)\, त\, य' + (३-७व)\, य'\, त\, व = ०$$

$$अथवा\ \frac{७\, त\, य}{य'} + \frac{७व-३}{व^२-१}\, त\, व = ०$$

$$\therefore \frac{७\, त\, य'}{य'} + \tfrac{७}{२} \cdot \frac{२व}{व^२-१}\, त\, व - \frac{३\, त\, व}{व^२-१} = ०$$

$$\therefore ७\, ल_इ\, य' + \tfrac{७}{२} ल_इ (व^२-१) - \tfrac{३}{२}\, ल_इ \frac{व-१}{व+१}\, ल_इ\, स = ०$$

$$\therefore \tfrac{७}{२} ल_इ\, य'^२\left(\frac{र'^२}{य'^२} - १\right) = \tfrac{३}{२} ल_इ\, स \left(\frac{र'}{य'} - १\right) / \left(\frac{र'}{य'} + १\right)$$

$$\therefore (र'^२ - य'^२)^{\frac{७}{२}} = स\{(र'-य')(र'+य')\}^{\frac{३}{२}}$$

$$\therefore (र'+य')^५ (र'-य')^२ = स$$

$$अर्थात्\ (र+य-१)^५ (र-य+१)^२ = स$$

उ० ३—समीकरण $\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{२य+३र-८}{य+र-३}$ = को हल करो।

$$\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{२य+३र-८}{य+र-३},$$

मान लिया कि य=व+ह र=श+क

$$\frac{त\, श}{त\, व} = \frac{२व+३श+(२ह+३क-८)}{व+श+(ह+क-३)}$$

$$समीकरण \left.\begin{array}{r} २ह+३क-८=० \\ ह+क-३=० \end{array}\right\}$$

को हल करनेसे ह=१ और क=२

$$\therefore \frac{त\, श}{त\, व} = \frac{२व+३श}{व+श}$$

अब यह समीकरण सुगमतासे हल किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित समीकरणोंको हल करो।

१. $\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{२य+३र}{३य+२र}$

२. $\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{य + २ र - ३}{२ य + र - ३}$

३. $\frac{त\, र}{त\, य} = \frac{२ य + र - २}{३ य + र - ३}$

४. $\frac{त\, र}{त\, य} = -\frac{३ य + ४ र - ५}{२ य + ३ र - ५}$

५. $\frac{त\, र}{त\, य} = -\frac{२ य + ३ र - १}{२ य + ३ र - ५}$

साधारण समीकरण

निम्नलिखित स्थानोंमें $\frac{त\, र}{त\, य}$ के लिये $र_१$ $\frac{त^२ र}{त\, य^२}$ के लिये $र_२$ $\frac{त^३ र}{त\, य^३}$ के लिए $र_३$ $\frac{त^४ र}{त\, य_४}$ के लिये $र_४$ और $\frac{त^न र}{त\, य^न}$ के लिये $र_न$ का प्रयोग होगा।

ऊपर एक संकेत मान लिया गया है। यह बात नहीं है कि इस संकेतके बिना काम ही नहीं चल सकता वरन् बात यह है कि इसके माननेसे लिखनेमें सुगमता पड़ती है।

साधारण समीकरणका निम्नलिखित प्रकारका होता है :—

$$र_न + क\, र_{न-१} + ख\, र_{न-२} \cdots\cdots + म\, र = स \cdots\cdots\cdots\cdots (१)$$

समीकरण देखनेसे पता चलता है कि सब तात्कालिक सम्बन्ध, प्रथमघातके ही हैं। प्रथम समीकरणमें क, ख, इत्यादि या तो स्थिर राशि हैं, या य के फल।

यहां पर केवल प्रथम श्रेणीके समीकरणका वर्णन है। इसलिये केवल $र_१ + पर = क$ का ही वर्णन होगा।

$$र_१ + पर = क$$

दोनों ओर $इ^{\int प\, त\, य}$ से गुणा करनेसे

$$र_१\, इ^{\int प\, त\, य} + \int इ^{प\, त\, य} \left\{ प\, र \right\} = क\, इ^{\int प\, त\, य}$$

$$= \frac{त}{त\, य}\left(र\, इ^{\int प\, त\, य}\right) = क\, इ^{\int प\, त\, य}$$

$$\therefore र\, इ^{\int प\, त\, य} = \int क\, इ^{\int प\, त\, य} त\, य + अ$$

यही अभीष्ट उत्तर हुआ

उ०—समीकरण $य\frac{त\, र}{त\, य} - अ\, र = य + १$ को हल करो।

$$य\frac{त\, र}{त\, य} - \frac{अ}{य} र = \frac{य + १}{य}$$

$$यहांपर\ प = \frac{-अ}{य}$$

$$\therefore इ^{\int प\, त\, य} = इ^{\int \frac{-अ}{य} त\, य}$$

$$= इ^{-अ\, ल_इ\, य}$$

$$= इ^{ल_इ\, य^{-अ}}$$

$$= य^{-अ}$$

$$= \frac{१}{य^{अ}}$$

अतएव दोनों ओर $\frac{१}{य^{अ}}$ से गुणा करना चाहिए।

$$\therefore \frac{१}{य^{अ}} \left\{ य\frac{त\, र}{त\, य} - \frac{अ}{य} र \right\} = \frac{य + १}{य} \cdot \frac{१}{य^{अ}}$$

$$\therefore \frac{१}{य^{अ}} त\, र - \frac{अ\, र}{य^{अ+१}} त\, य = \frac{य+१}{य^{अ+१}} त\, य$$

$$\therefore \frac{र}{अ^{य}} = \int \frac{य+१}{य^{अ+१}} त\, य$$

$$= \int \frac{य}{य^{अ+१}} त\, य + \frac{१}{य^{अ+१}} त\, य$$

$$= \int \frac{१}{य^{अ}} त\, य + \frac{१}{य^{अ+१}} त\, य$$

$$- \frac{१}{(अ-१) य^{अ-१}} - \frac{१}{अ\, य^{अ}} + स$$

$$\therefore \frac{र}{य^{अ}} = - \frac{१}{(अ-१)\, य^{अ-१}} - \frac{१}{अ\, य^{अ}} + स$$

$$\therefore र = - \frac{य^{अ}}{(अ-१) य^{अ-१}} - \frac{१\, य^{अ}}{अ\, य^{अ}} + स\, य^{अ}$$

$$= - \frac{य}{अ-१} - \frac{१}{अ} - स\, य^{अ}$$

$$= \frac{य}{१-अ} - \frac{१}{अ} + स\, य^{अ}$$

उ० २—समीकरण $\frac{त\, र}{त\, य} + र = इ^{-य}$ को हल करो

$$\frac{त\, र}{त\, य} + र = इ^{-य}$$

यहांपर $\int प\, त\, य = इ^{\int त\, य} = इ^{य}$

अब दोनों ओर $इ^{य}$ से गुणा करनेसे

$$इ^{य}\left(\frac{त\, र}{त\, य} + र\right) = इ^{य}\, इ^{-य} = १$$

$$\therefore इ^{य} त\, र + इ^{य} र\, त\, य = त\, य$$

$$\therefore इ^{य} र = य + स$$

$$\therefore र = (य + स)\, इ^{-य}$$

उ० ३—$\frac{त\, र}{त\, य}$ कोज्या^{२} य$+$र$=$स्परे य को हल करो।

$$कोज्या^{२}\, य \frac{त\, र}{त\, य} + र = स्परे\, य$$

$$\therefore \frac{त\, र}{त\, य} + छेरे^{२}\, र = स्परे\, य\, छेरे\, य$$

$$\therefore इ^{\int प\, त\, य} = इ^{\int छेरे^{२} य} = इ^{स्परे\, य}$$

दोनों ओर $इ^{स्परे\, य}$ से गुणा करनेसे

$$इ^{स्परे\, य}\, त\, र + इ^{स्परे\, य}\, छेरे^{२}\, य\, र\, त\, य = इ^{स्परे\, य}\, स्परे\, य\, छेरे^{२}$$

प त य मान लिया कि ल=स्परेय

$$\therefore इ^{ल}\, त\, र + इ^{ल}\, र\, त\, ल = इ^{ल}\, ल\, त\, ल$$

$$\therefore र\, इ^{ल} = ल\, इ^{ल} - \int इ^{ल}\, त\, ल + स$$

$$= ल\, इ^{ल} - इ^{ल} + स$$

$$\therefore र = २ - १ + स\, इ^{-ल}$$

$$\therefore र = स्परे\, य - १ + स\, इ^{-स्परे\, य}$$

कभी कभी ऐसे समीकरण मिलते हैं जो साधारण समीकरणकी दशामें लाये जा सकते हैं। साधारण समीकरणोंको हल करनेवाले नियमकी सहायतासे यह हल किये जा सकते हैं।

समीकरण $\frac{त\, र}{त\, य} + प = क\, र^{न}$ इसी प्रकारका है जब कि प और क य के फल हैं।

$$\frac{त\, र}{त\, य} + प\, र = क\, र^{न}$$

दोनों ओर $र^{न}$ का भाग देनेसे और $(-न+१)$ से गुणा करनेसे

$$(-\text{न}+१)\,\text{र}^{-\text{न}}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+(-\text{न}+१)\,\text{प}\,\text{र}^{-\text{न}+१}=(-\text{न}+१)\text{क}$$

यदि यह मान लें कि $\text{व}=\text{र}^{-\text{न}+१}$

तब उक्त समीकरण $\frac{\text{त व}}{\text{त य}}+(१-\text{न})\,\text{प}\,\text{व}=(१-\text{न})\,\text{क}$

अब यह साधारण समीकरण हो गया और सुगमतासे हल किया सकता है।

उ० १—समीकरण $\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+\frac{१}{\text{य}}\text{र}=\text{य}^२\,\text{र}^६$ को हल करो।

$$\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+\frac{\text{र}}{\text{अ}}=\text{य}^२\,\text{र}^६$$

दोनों ओर $\text{र}^६$ का भाग देनेसे $\text{र}^{-६}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+\frac{\text{र}^{-५}}{\text{य}}=\text{य}^२$

अब कल्पना कर लिया कि $\text{व}=\text{र}^{-५}$

$$\therefore \frac{\text{त व}}{\text{त र}}=-५\,\text{र}^{-६}$$

$\therefore \text{र}^{-६}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+\frac{\text{र}^{-५}}{\text{य}}=\text{य}^२$ का मान $=\frac{\text{त व}}{\text{त य}}-\frac{५}{\text{य}}\text{व}=-५\,\text{य}^२$

$$\therefore \text{व}=\text{र}^{-५}=\text{स}\,\text{य}^५+\frac{५\,\text{य}^३}{२}+\cdots$$

उ० २—समीकरण $\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+\frac{\text{य र}}{१+\text{य}^२}=\text{य}\,\text{र}^{\frac{१}{२}}$ को हल करो

$\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+\frac{\text{य र}}{१-\text{य}^२}=\text{य}\,\text{र}^{\frac{१}{२}}$। नियमके अनुसार क्रिया करनेसे

$$(-\tfrac{१}{२}+१)\,\text{र}^{-\frac{१}{२}}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+(\tfrac{१}{२}+१)\text{र}^{-\frac{१}{२}+१}\,\frac{\text{य}}{१-\text{य}^२}=(-\tfrac{१}{२}+१)\text{य}$$

मान लिया कि $\text{व}=\text{र}^{-\frac{१}{२}+१}$

$$\therefore \frac{\text{त व}}{\text{त र}}=(-\tfrac{१}{२}+१)\,\text{र}^{-१}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}$$

$$\therefore \frac{\text{त व}}{\text{त य}}+\frac{\text{व य}}{२(-\text{य}^२)}=\frac{\text{य}}{२}$$

$$\text{इ}^{\int \text{प त य}}=\text{इ}^{\int\frac{\text{य त य}}{२(१-\text{य}^२)}}=\text{इ}^{\int-\frac{१}{४}\left(\frac{-२\,\text{य}}{१-\text{य}^२}\right)}$$

$$=\text{इ}^{-\frac{१}{४}\text{ल}_\text{इ}(१-\text{य}^२)}=\text{इ}^{-(१-\text{य}^२)^{\frac{१}{४}}}=\frac{१}{(१-\text{य}^२)^{\frac{१}{४}}}$$

$$\therefore \frac{\text{त व}}{(१-\text{य}^२)^{\frac{१}{४}}}+\frac{\text{व य त य}}{२(१-\text{य}^२)^{\frac{१}{४}}}=\frac{\text{य}}{२(१-\text{य}^२)^{\frac{१}{४}}}$$

$$\therefore \frac{\text{व}}{\sqrt{१-\text{य}^२}}=-\tfrac{१}{३}(१-\text{य}^२)^{\frac{३}{४}}+\text{स}$$

$$\therefore \text{र}^{\frac{१}{२}}=\text{स}\,(१-\text{य}^२)^{\frac{१}{४}}-\frac{१-\text{य}^२}{३}+\text{स}$$

उ० ३—समीकरण $३\,\text{य}\,(१-\text{य}^२)\,\text{र}^२\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+(२\,\text{य}^२-१)\text{र}^३=\text{अ}\,\text{य}^३$ को हल करो।

$$३\,\text{य}\,(१-\text{य}^२)\,\text{र}^२\frac{\text{त र}}{\text{त य}}+(२\,\text{य}^२-१)\,\text{र}^३=\text{अ}\,\text{य}^३$$

मान लिया कि $\text{व}=\text{र}^३$

$$\therefore \frac{\text{त व}}{\text{त य}}=३\,\text{र}^२\frac{\text{त र}}{\text{त य}}$$

इनका उत्थापन करनेसे

$$\frac{\text{त व}}{\text{त य}}+\frac{२\,\text{य}^२-१}{\text{य}-\text{य}^३}\text{व}=\frac{\text{अ}\,\text{य}^२}{१-\text{य}^२}$$

$$\text{इ}^{\int \text{प त य}}=\text{इ}^{\int\frac{२\,\text{य}^२-१}{\text{य}-\text{य}^३}}$$

$$=\text{इ}^{-\frac{१}{२}\int\frac{-३\,\text{य}^२+१}{\text{य}-\text{य}^३}-\int\frac{१}{३\text{य}}\text{त य}+\int\frac{१}{३}\cdot\frac{१}{२}\cdot\frac{-२\,\text{य}}{१-\text{य}^२}\text{त य}}$$

[देखिये कवर पृष्ठ ३]

सूर्य-सिद्धान्त

[गताङ्क से आगे]

मान लो ग का स्पष्ट नतांश न और श का स्पष्ट नतांश ना है तो

भ=पृथ्वीका केन्द्र   चित्र ७१

छोटा वृत्त=पृथ्वीतल

बड़ा वृत्त=याम्योत्तर वृत्त
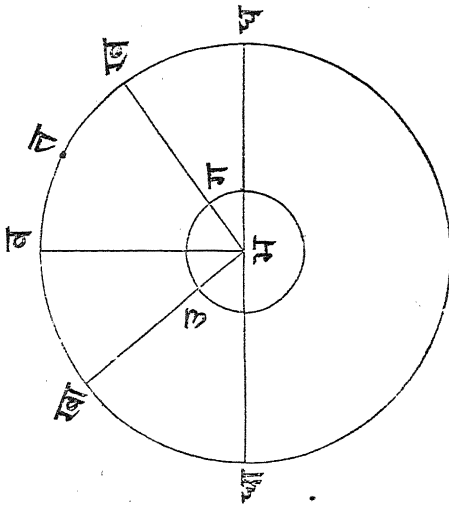
ध, धा=उत्तरी और दक्षिणी आकाशीय ध्रुव

ग=उत्तर गोलकी एक वेधशाला

उ=दक्षिण गलोकी दूसरी वेधशाला

ख=ग स्थानका ख-स्वस्तिक

खा=उ स्थानका ख-स्वस्तिक

व=विषुवद्वृत्तका एक बिन्दु

त=तारा

ध भ धा=पृथ्वीका अक्ष

न + प स्परे न + फ स्परे² न + ना + प स्परे ना + फ स्परे² ना=२ अ

यदि अ ज्ञात हो और फ स्परे² न या फ स्परे² ना बहुत छोटे होनेके कारण छोड़ दिये जायं तो प का मान सहज ही जाना जा सकता है। परन्तु इस रीतिमें ६ महीने लग जाते हैं।

तीसरी रीति—इस रीतिमें उत्तर और दक्खिन की दो वेधशालाओंसे याम्योत्तरवृत्तपर स्थित उसी तारेके स्पष्ट नतांश जानकर वर्तनके गुणक स्थिर किये जाते हैं।

ग वेधशालासे त तारेका दक्षिण नतांश ख त और उ वेधशालासे त तारेका उत्तर नतांश खा त हैं।

ख त=ख व — व त=अ — क

खा त=खा व + व त=आ + क

जब कि अ, आ दोनों वेधशालाओंके अक्षांश और क तारेकी क्रान्ति हैं।

यदि ग और उ से त के स्पष्ट नतांश न और ना हों तो

ख त=न + प स्परे न + फ स्परे² न

और खा त=ना + प स्परे ना + फ स्परे² ना

∴ न + प स्परे न + फ स्परे² न + ना + प स्परे ना + फ स्परे² ना

= ख त + खा त=अ + आ

यदि फ स्परे² न और फ स्परे² ना को अत्यन्त छोटे होनेके कारण छोड़ दिया जाय तो

न + प स्परे न + ना + प स्परे ना=अ + आ

इसमें न, ना, अ और आ के मान वेधसे जानकर उत्थापित करनेसे प का मान जाना जा सकता है। यदि फ का मान भी जानना हो तो एक और तारेके स्पष्ट नतांश जाननेकी आवश्यकता पड़ेगी।

उदाहरणके लिए अन्तरमदा पुञ्जके ख तारे (β Andromeda) के नतांश ग्रीनिच और उत्तमाशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) की वेधशालाओंसे जिनके अक्षांश क्रमशः ५१°२८′३८″ उत्तर और ३३·५६′४″ दक्षिण हैं लिये जाते हैं। पहली वेधशालासे तारेका स्पष्ट दक्षिण नतांश जब वह याम्योत्तर वृत्तपर था १६°२०′३″ और दूसरी वेधशालासे उसी तारेका स्पष्ट उत्तर नतांश ६६·१′५०″ था। इसलिए

१६°२०′३″ + प स्परे १६°२०′३″ + ६६°१′५०″ + प स्परे ६६°१′५०″
= ५१°२८′३८″ + ३३°५६′४″
= ८५°२४′४२″

∴ प (स्परे १६°२०′३″ + स्परे ६६°१′५०″)
= ८५°२४′४२″ − ८५°२१′५३″
= २′४६″

या प(·२६३० + २·६०९३) = २′४६″ = १६६″

∴ प = १६६ / २·६०२३ = ५८″·२३

वर्तनके कारण आकाशीय पिंडोंका उदय कुछ पहले और अस्त कुछ पीछे देख पड़ता है इसलिये दिनमान बढ़ जाता है।

आकाशीय पिण्डोंका उदय उस समय समझा जाता है जिस समय उनका केन्द्र पूर्व क्षितिजपर आ जाता है। उस समय उनका स्पष्ट नतांश ९०° होता है। परन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि स्पष्ट नतांशसे यथार्थ नतांश वर्तनके समान अधिक होता है। यह भी बतलाया गया है कि जिस समय स्पष्ट नतांश ९०° होता है उस समय वर्तन ३५′ के लगभग होता है। इसलिए उदय होनेके समय आकाशीय पिंडका यथार्थ नतांश ९०°३५′ के लगभग होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समय आकाशीय पिंडका केन्द्र क्षितिजपर लगा हुआ देख पड़ता है उस समय क्षितिज से वह ३५′ के लगभग नीचे रहता है। इसलिये यह प्रत्यक्ष है कि जब सूर्यका केन्द्र क्षितिज से ३५′ नीचे रहता है तभीसे वह उदय हुआ देख पड़ता है और अस्त होनेके समय जबतक उसका केन्द्र क्षितिजसे ३५′ नीचेतक नहीं पहुँच जाता तबतक देख पड़ता है। इस कारण स्पष्ट दिनमान यथार्थ दिनमानसे ५ मिनट या १२, १३ पलके समान अधिक होता है। इस बढ़तीका ठीक ठीक परिमाण जाननेके लिये हमें उदय होते हुए सूर्यके नतकालकी तात्कालिक गति निकालनी चाहिए।

सूर्यका नतकाल जाननेका सूत्र यह है [देखो पृष्ठ ४२६ समीकरण (१)]

कोज्या (नतकाल) × कोज्या अक्षांश × कोज्या क्रान्ति
= कोज्या नतांश − ज्या अक्षांश × ज्या क्रान्ति

यदि नतकाल, अक्षांश, क्रान्ति और स्पष्ट नतांशके लिए नत, अ क और न क्रमानुसार मान लिये जायँ और कुछ पद दहनेसे बायें अथवा बायेंसे दहने पक्षमें कर दिये जायँ तो

कोज्या न = ज्या अ × ज्या क + कोज्या अ × कोज्या (नत) × कोज्या क

अक्षांश और क्रान्तिको स्थिर मानकर न और नत के तात्कालिक सम्बन्ध ज्ञात किये जायं तो

ज्या न × ता (न) = कोज्या अ × कोज्या क × ज्या (नत) × ता (नत)

परन्तु उदय या अस्त होते हुये सूर्यका नतांश ९०° होता है इसलिए ज्या न = ज्या ९०° = १, कोज्या न = ० इसलिए

कोज्या (नत) = − स्परे अ × स्परे क ....(१)

ता न = (कोज्या अ × कोज्या क) × ज्या (नत) × ता (नत)

अथवा

$$\text{ता (नत)} = \frac{\text{ता (न)}}{\text{कोज्या अ} \times \text{कोज्या क} \times \text{ज्या(नत)}} \cdots\cdots\cdots (१)$$

यदि नतांशकी तात्कालिक गति ता (न) की जगह ३५′ उत्थापित की जाय जो ९०° के स्पष्ट नतांशके वर्तनके लगभग होती है और समीकरण (२) का दाहना पक्ष सरल किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तनके कारण उदयकालिक नतकाल कितना बढ़ जाता है।

उदाहरण १—काशीमें सायन कर्क और सायन मकर संक्रान्तिके दिन स्पष्ट सूर्योदयसे स्पष्ट सूर्यास्त तकके समय क्या हैं ?

आजकल सायन कर्क संक्रान्तिके दिन सूर्यकी उत्तर क्रान्ति २३°२७′ और सायन मकर संक्रान्तिके दिन सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति २३°२७′ होती है। काशीका अक्षांश २५°१८′ मान लिया जाता है।

∴ कर्क संक्रान्तिके दिन

$$\text{कोज्या (नत)} = -\text{स्परे } २५^\circ १८' \times \text{स्परे } २३^\circ २७'$$

$$= -\ \cdot ४७२७ \times \cdot ४३३७$$

$$= -\cdot २०५०$$

यह ऋणात्मक है। इसलिए सिद्ध होता है कि नतकाल ९०° से अधिक है। यदि नतकाल $= ९०^\circ + \text{ना}$, तो

$$\text{कोज्या } (९०^\circ + \text{ना}) = -\cdot २०५०$$

$$-\text{ ज्या (ना)} = -\cdot २०५०$$

$$\therefore \text{ना} = ११^\circ ५०'$$

$$\therefore \text{नतकाल} = ९०^\circ + ११^\circ ५०' = १०१^\circ ५०'$$

$$= ६ \text{ घंटा } ४७ \text{ मिनट } २० \text{ सेकंड}$$

$$= १६ \text{ घड़ी } ४८ \text{ पल}$$

यह गणित सिद्ध नतकाल हुआ।

मकर संक्रान्तिके दिन क्रान्ति दक्षिण है इसलिए समीकरण (१) का दाहना पक्ष धनात्मक होगा और कोज्य (न त) $= +\cdot २०५०$ [देखो पृष्ठ ४३१]

∴ मकर संक्रान्तिके दिन

$$\text{गणित सिद्ध नतकाल} = ७८^\circ १०' = ९०^\circ - ११^\circ ५०'$$

$$= ६ \text{ घंटा} - ४७ \text{ मि॰ } २० \text{ से॰}$$

$$= ५ \text{ घंटा } १२ \text{ मि॰ } ४० \text{ से॰}$$

$$= १३ \text{ घड़ी } २ \text{ पल}$$

यदि वर्तन न होता तो यही सूर्योदयसे मध्याह्नतकका समय होता। परन्तु वर्तनका परिमाण ३५′ के लगभग होता है। इसलिए समीकरण (२) में ता (न) की जगह ३५′ उत्थापन करनेसे, कर्क संक्रान्तिके दिन

$$\text{ता (न त)} = \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \text{ कोज्या } २३^\circ २७' \text{ ज्या } १०१^\circ ५०'}$$

$$= \frac{३५'}{\cdot ९०४१ \times \cdot ९१७५ \times \cdot ९७८७}$$

$$= \frac{३५'}{\cdot ८११८४}$$

$$= ४३' \cdot १२$$

$$= ४३ \cdot १२ \text{ असु}$$

$$= ७ \text{ पल या } २ \text{ मिनट } ५२ \text{ सेकंड}$$

मकर संक्रान्तिके दिन भी वर्तनके कारण इतनी ही वृद्धि होगी क्योंकि ज्या ७८°१०′=ज्या १०१°५०′ और कोज्या २३°२७′

के मानमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा चाहे २३°२७′ उत्तर क्रान्ति हो या दक्षिण क्रान्ति हो क्योंकि कोज्या २३°२७′=कोज्या (−२३°२७′)

इसलिए काशीमें कर्क संक्रान्तिके दिन उदयकालिक स्पष्ट या वेधसिद्ध नतकाल=१६ घड़ी ४८ पल+७ पल
=१७ घड़ी ५ पल

और स्पष्ट या वेधसिद्ध दिनमान=३४ घड़ी १० पल

इसी प्रकार काशीमें मकर संक्रान्तिके दिन उदयकालिक स्पष्ट या वेध सिद्ध नतकाल=१३ घड़ी २ पल+७ पल
=१३ घड़ी ९ पल

और स्पष्ट या वेध सिद्ध दिनमान=२६ घड़ी १८ पल

उदाहरण २—सायन मेष और सायन तुला संक्रान्तियोंके दिन काशीमें स्पष्ट दिनमान क्या होगा ?

सायन मेष या सायन तुला संक्रान्तियोंके दिन यदि सूर्यके उदयकालमें क्रान्ति शून्य हो तो गणितसे नतकाल ठीक ९०° या ६ घंटा अथवा १५ घड़ी होगा। वर्तनके कारण जो वृद्धि होगी उसका परिमाण या निकलेगा।

$$\text{ता (नत)} = \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \text{ कोज्या } ०^\circ \text{ ज्या } ९०^\circ}$$

$$= \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ\ १८'} = \frac{३५'}{\cdot ९०४१}$$

$$= ३८'\cdot ७$$

$$= ३८\cdot ७ \text{ असु}$$

$$= ६ \text{ पलके लगभग}$$

∴ सायन मेष या तुला संक्रान्तियोंके दिन वेधसिद्ध उदयकालिक नतकाल=१५ घड़ी ६ पल

∴ इन दिनोंमें वेधसिद्ध या स्पष्ट दिनमान=३० घड़ी १२ पल।

इस प्रकार सिद्ध है कि सायन मेष और सायन तुला संक्रान्तिके दिन वर्तनके कारण दिनमान रात्रिमानसे १२ पल अधिक होता है। यह प्रसिद्ध बात है कि इन दिनोंमें दिनमान और रात्रिमान सब स्थानोंमें समान होते हैं। इसलिए यदि कोई सूर्यके उदयसे अस्त तकके समयको वेधसे नापकर विलोम रीतिसे सायनमेष और तुला संक्रान्तिका दिन जानना चाहे तो वह निश्चय करेगा कि सायनमेष संक्रान्ति यथार्थ संक्रान्ति कालसे ३ दिन पहले और सायन तुला संक्रान्ति यथार्थ संक्रान्तिसे ३ दिन पीछे पड़ेगी।

मकरन्द सारिणीके पृष्ठ १३ में काशीके लिए महत्तम दिनमानका परिमाण ३४ घड़ी ५ पल और लघुतम दिनमानका २५ घड़ी ५५ पल दिया हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस सारिणीमें कर्क संक्रान्तिके दिन उदयकालिक नतकालका परिमाण १७ घड़ी २·५ पल निश्चय किया गया था। अब यह देखना है कि मकरन्दकारने गणितसे अथवा वेधसे यह दिनमान निश्चय किया था।

सूर्य सिद्धान्तने सूर्यकी महत्तम क्रान्ति २४° माना है। इसलिए अनुमान होता है कि मकरन्दकारने गणितसे चरकाल जाननेके लिये इसी क्रान्तिका उपयोग किया होगा। यह पता नहीं कि काशीका अक्षांश उन्होंने क्या माना था। आजकल यह २५°१८′ के लगभग निश्चय हुआ है। इसलिए यह मान लेनेमें कोई हानि नहीं जान पड़ती कि मकरन्दकारने काशीका अक्षांश २५° माना होगा। यदि २५° अक्षांश माना गया हो तो सायन कर्क संक्रान्तिके दिन काशीमें

सूर्यकी चरज्या= स्परे २४° × स्परे२५°

= '४४५२ × '४६६३

= '२०७६

∴ चरांश = ११°५६'

= ७१६ चरासु

= १२० पल

= २ घड़ी

∴ उदयकालिक नतकाल = १५ + २ = १७ घड़ी

∴ कर्कसंक्रान्तिके दिन काशीमें महत्तम दिनमान = ३४घड़ी

इससे प्रकट होता है कि काशीका अक्षांश २५° से कुछ अधिक माना गया होगा क्योंकि तभी चरकाल २ घड़ी २·५ पल हो सकता है।

इससे यह भी अनुमान होता है कि ब्रह्मगुप्तके समयसे लेकर गणेश दैवज्ञके समयतक सभी आचार्य सूर्यकी परमक्रान्ति २४° इसीलिए मानते आये कि महत्तम दिनमान उनके वेधसे उतना ही आता रहा जितना २४° की परम क्रान्ति माननेसे आता है क्योंकि उनको यह नहीं ज्ञात था कि वातावरणके कारण स्पष्ट दिनमान यथार्थ दिनमानसे १४,१५ पलके लगभग बढ़ जाता है।

वर्तनका विचार करनेसे महत्तम दिनमान आजकल ३४ घड़ी १० पल होता है। यह ३४ घड़ी ५ पलसे केवल ५ पल अधिक है। इतनी अशुद्धि उदय और अस्तकालके वेधके लिए अधिक नहीं कही जा सकती।

वर्तनके कारण सूर्यके आकाशमें भेद—उदय अस्त होते हुए सूर्यका आकार बड़ा और कुछ अंडाकार देख पड़ता है। इसका कारण यही है कि क्षितिजके पास वर्तनकी वृद्धि बहुत तीव्र होती है। सूर्यका बिम्ब ३२ कलाके लगभग होता है। इसलिए जिस समय सूर्यके बिम्बका सबसे नीचेवाला बिन्दु क्षितिजमें लगा रहता है उसका स्पष्ट नतांश ९०° रहता है और बिम्बके सबसे ऊपरवाले बिन्दुका नतांश ३२ कलाके लगभग कम रहता है। इस भिन्नताके कारण नीचेवाला बिन्दु अधिक उठा हुआ रहता है और ऊपरवाला बिन्दु उससे कम। इससे बिम्बका ऊर्ध्वव्यास कोई ५ कला कम देख पड़नेसे सूर्य अंडाकार देख पड़ता है।

वर्तनकी और अधिक मीमांसा करनेसे विस्तार बहुत बढ़ जायगा। यदि यह जानना हो कि सूर्यका ऊपरी बिम्ब क्षितिजपर कब आता है तो पृष्ठ ५४६ के समीकरण (२) में ता (न) की जगह ३५' + सूर्यके अर्द्धव्यास अथवा ३५' + १६' उत्थापन करनेसे जितना आवे उसे गणित सिद्ध नतकालमें जोड़ देना चाहिए।

चन्द्रमाका उदयकाल जाननेके लिए एक संस्कार और करना पड़ता है जिसे लम्बन संस्कार कहते हैं। इसलिए आगे लम्बन (parallax) की व्याख्या की जायगी।

लंबन*

स्पष्टाधिकारमें बतलायी गयी नयी रीतियोंसे भी सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंके जो स्थान ज्ञात होते हैं वह भूकेन्द्रसे ठीक वैसे ही देखे जा सकते हैं। परन्तु भूतलके किसी स्थानसे देखनेपर उन स्थानोंमें कुछ अन्तर देख पड़ता है। यदि

* इस खंडके लिखनेमें Loomis की Practical Astronomy से बहुत सहायता ली गई है।

भूतलके किसी दो स्थानोंसे दो द्रष्टा चन्द्रमाको एक ही क्षणमें देखें तो वह एक ही दिशामें नहीं देख पड़ता। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि किस स्थानसे देखने पर आकाशीय पिण्ड यथार्थ स्थानसे कितने अंतरपर देख पड़ता है। भूकेन्द्र और भूतलके किसी स्थानसे देखनेपर आकाशीय पिंडकी दिशाओंमें जो अन्तर देख पड़ता है उसे लंबन कहते हैं।
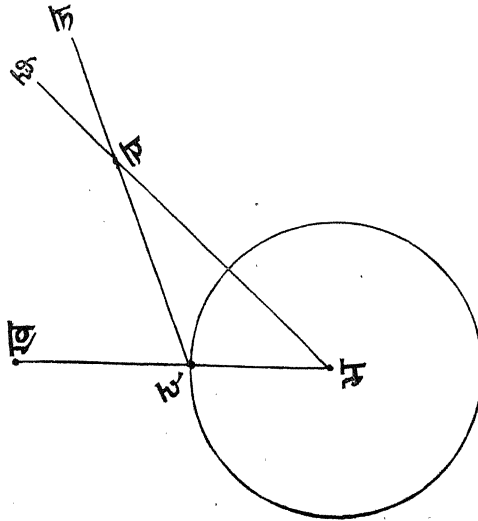
चित्र ७४

चित्र ७४ में भ पृथ्वी का केन्द्र या भूकेन्द्र है, द भूतलका एक स्थान जहां द्रष्टा चंद्रमा च को देख रहा है। भ द ख ऊर्ध्व रेखा है जो द स्थानके खस्वस्तिक ख तक जाती है। द स्थानसे द्रष्टाको चन्द्रमा द च ज दिशामें देख पड़ेगा और भूकेन्द्र भ से चन्द्रमा भ च छ दिशामें देख पड़ेगा। इन दिशाओंमें जो अंतर है वह कोण भ च द के समान है। यही द स्थानसे चन्द्रमाका बन है।

द से चन्द्रमाका नतांश कोण ख द च के समान है जिसे चन्द्रमाका स्पष्ट नतांश कहते हैं। भ से चन्द्रमाका नतांश कोण ख भ च के समान है जिसे चन्द्रमाका यथार्थ नतांश कहा जाता है। चित्रसे यह सिद्ध है कि चन्द्रमाका

स्पष्ट नतांश=चन्द्रमाका यथार्थ नतांश + लम्बन।

यह स्पष्ट है कि लम्बनके कारण चन्द्रमाका स्पष्ट नतांश यथार्थ नतांशसे अधिक हो जाता है इसलिए चन्द्रमाका उन्नतांश उतना ही कम हो जाता है। इस कारण चन्द्रमा यथार्थ स्थानसे कुछ लटका हुआ देख पड़ता है। इसीलिए इस परिवर्तनका नाम लम्बन पड़ा। इस लम्बनका प्रभाव चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहोंके भोगांश, शर, विषुवांश, क्रान्ति, इत्यादिपर भी पड़ता है जिसकी व्याख्या आगे की जायगी।

मान लो कि त्र = भ द, पृथ्वी की त्रिज्या;
क = भ च, भूकेन्द्रसे चन्द्रमाकी दूरी;
न = ∠ ख भ च, चन्द्रमाका यथार्थ नतांश;
ना = ∠ ख द च, चन्द्रमाका स्पष्ट नतांश;
ला = ∠ भ च द, चन्द्रमाका नतांश सम्बन्धी लम्बन;

त्रिभुज द भ च में

$$\frac{\text{भ द}}{\text{ज्या भ च द}} = \frac{\text{भ च}}{\text{ज्या भ द च}}$$

परन्तु ∠ भ द च और ∠ ख द च का योग १८०° होता है इसलिए ज्या भ द च = ज्या ख द च। इनकी जगह ऊपर लिखे संकेतके अक्षर उत्थापित करनेसे सिद्ध होता है कि

$$\frac{\text{त्र}}{\text{ज्या ला}} = \frac{\text{क}}{\text{ज्या ना}}$$

अथवा ज्या ला $= \frac{\text{त्र}}{\text{क}} \times$ ज्या ना

इसका अर्थ यह हुआ कि नतांश सम्बन्धी लम्बनकी ज्या

$$= \frac{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}}{\text{चन्द्रमा की दूरी}} \times \text{स्पष्ट नतांशकी ज्या}$$

इससे यह सिद्ध होता है कि किसी दिये हुए स्थानके लिए यदि चन्द्रमा या किसी ग्रहकी दूरी दी हुई हो तो इसका लम्बन इसके स्पष्ट नतांशकी ज्याके अनुसार घटता बढ़ता है, अर्थात यदि इसका स्पष्ट नतांश कम हो तो लम्बन कम होगा और अधिक हो तो लम्बन अधिक होगा। यदि स्पष्ट नतांश ९०° हो अर्थात् चन्द्रमा या ग्रह उदय या अस्त हो रहा हो तो इसकी ज्याका मान १ होगा जो महत्तम है। ऐसी दशामें नतांशसम्बन्धी लम्बन भी महत्तम अर्थात् सबसे अधिक होगा। महत्तम लम्बनको परम लम्बन या क्षितिज लम्बन कहते हैं क्योंकि इतना बड़ा लम्बन उसी समय होता है जब आकाशीय पिंड उदय या अस्त हो रहा हो और क्षितिज पर हो। यह भी स्पष्ट है कि जब पिंड ठीक खस्वस्तिकपर रहता है तब उसका नतांश शून्य होनेसे स्पष्ट नतांशकी ज्या भी शून्य होगी और लम्बनका मान शून्य हो जायगा। अर्थात् जब आकाशीय पिंड ठीक सिरके ऊपर खस्वस्तिकपर रहता है तब उसमें नतांश सम्बन्धी लम्बन नहीं होता

यदि क्षितिज लम्बनको ल से प्रकट किया जाय तो

ज्या ल $= \frac{\text{त्र}}{\text{क}}$

यदि पहले समीकरणमें $\frac{\text{त्र}}{\text{क}}$ की जगह ज्या ल रखा जाय तो

ज्या ला = ज्या ल × ज्या ना ....(१)

इसका अर्थ यह हुआ कि क्षितिज लम्बनकी ज्या को स्पष्ट नतांश की ज्या से गुणा कर दिया जाय तो नतांश सम्बन्धी लम्बनकी ज्या आजायगी।

इस सूत्र से लम्बन का ज्ञान तभी हो सकता है जब पिंड-का स्पष्ट नतांश ज्ञात हो। यदि यथार्थ नतांश दिया हुआ हो तो दूसरे प्रकारके सूत्रसे काम चलेगा जिसका रूप इस प्रकार सिद्ध होता है:—

चित्र ७४ से स्पष्ट है कि

ना = न + ला

इसलिए सूत्र (१) से

ज्या ला = ज्या ल × ज्या (न + ला)

= ज्या ल (ज्या न कोज्या ला + कोज्या न ज्या ला)

= ज्या ल ज्या न कोज्या ला + ज्या ल कोज्या न ज्या ला

दोनों पक्षोंको कोज्या ला से भाग देनेपर

स्परे ला = ज्या ल ज्या न + ज्या ल कोज्या न स्परे ला

स्परे ला को एक पक्षमें करनेपर,

स्परे ला $= \frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{१ - \text{ज्या ल कोज्या न}}$ ....(२)

इस सूत्रसे लम्बनका मान उस समय जाना जा सकता है जब यथार्थ नतांश दिया हुआ हो। परन्तु इस रीतिसे लम्बन जाननेमें सुबिधा नहीं होती क्योंकि इसमें गुणा भाग बहुत करना पड़ता है। इसलिए इसको सरल करनेके लिए दूसरा रूप सिद्ध करना चाहिए।

यदि दाहने पक्षके अंशको हरसे भाग दे दिया जाय तो

स्परे ला = ज्या ल ज्या न + ज्या^{2} ल ज्या न कोज्या न + ज्या^{3} ल ज्या न कोज्या^{2} न + ज्या^{4} ल ज्या न कोज्या^{3} न .... इत्यादि

इस श्रेणीके आगेके पद इतने छोटे होते जाते हैं कि केवल पहले तीन पद ले लेनेमें कोई हानि नहीं हो सकती, यदि ल का मान १°से अधिक न हो।

स्परे ला की जगह ऐसे पद भी रखे जा सकते हैं जिनमें केवल ला हो क्योंकि* $\text{ला} = \text{स्परे ला} - \frac{1}{3}\text{स्परे}^3\text{ला}$

जो धनुको उसकी स्पर्शरेखामें प्रकट करने का प्रायः शुद्ध सूत्र है, यदि धनुका परिमाण बहुत छोटा हो। इस सूत्रके दूसरे पदके लिए यदि केवल $\frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या}^3\text{न}}{3}$ ले लिया जाय तो कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी दशा में

$$\text{ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^3\text{ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^3\text{ल ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या}^3\text{न}}{3} + \cdots\cdots$$

$$= \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^2\text{ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^3\text{ल}\left(\text{ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{न}}{3}\right) + \cdots\cdots$$

परन्तु $\text{ज्या न के ज्या न} = \frac{\text{ज्या२न}}{2}$

और $\text{ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{न}}{3}$

$$= \frac{3\text{ ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \text{ज्या}^3\text{न}}{3}$$

$$= \frac{3\text{ ज्या न }(1 - \text{ज्या}^2\text{न}) - \text{ज्या}^3\text{न}}{3}$$

$$= \frac{3\text{ ज्या न} - 3\text{ ज्या}^3\text{न} - \text{ज्या}^3\text{न}}{3}$$

$$= \frac{3\text{ ज्या न} - 4\text{ ज्या}^3\text{न}}{3}$$

$$= \frac{\text{ज्या ३ न}}{3}*$$

इसलिये

$$\text{ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \frac{\text{ज्या}^2\text{ल ज्या२ न}}{2} + \frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या३ न}}{3} + \cdots\cdots$$

इस सूत्रसे ला का जो मान आवेगा वह रेडियनमें होगा। इसको विकलाओंमें प्रकट करनेके लिए दाहने पक्षके प्रत्येक पदको ज्या१″से भाग दे देना चाहिए अथवा कोछेरे १″से गुणा कर देना चाहिए क्योंकि

१ रेडियन=२०६२६५″

∴ १″=·०००००४८५ रेडियन

∴ ज्या१″=·०००००४८५

इससे सिद्ध है कि रेडियनसे विकला बनाना हो तो रेडियनको ·०००००४८५से भाग दो। परन्तु ·०००००४८५=ज्या १″, इसलिए रेडियनसे विकला बनानेके लिए रेडियनको ज्या १″ से भी भाग दे देना चाहिए।

इस प्रकार

$$\text{ला} = \frac{\text{ज्या ला ज्या न}}{\text{ज्या१}''} + \frac{\text{ज्या}^2\text{ल ज्या२न}}{2\text{ज्या१}''} + \frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या३ न}}{3\text{ ज्या१}''} + \cdots (3)$$

ज्या ल ज्या न कोछेरे १″ + ज्या²ल ज्या२ न कोछेरे २″ + ज्याल³ ज्या३न कोछेरे ३″ क्योंकि $\frac{1}{\text{ज्या १}''}$ = कोटिछेदन रेखा १″ जिसे

*देखो सुधाकर द्विवेदीका चलन कलन पृष्ठ ४०

*देखो Hall and Knight की त्रिकोणमिति पृष्ठ १०५ (१९१० की छपी)

संक्षेपम कोछेरे१″ लिखा गया है २ ज्या १″=ज्या२″ $\therefore \frac{१}{२\ \text{ज्या}१''} = \frac{१}{\text{ज्या}२''}$ =कोछेरे२″, इत्यादि।

इस सूत्रसे किसी आकाशीय पिंडका लम्बन उस समय निकाला जा सकता है जब उसका यथार्थ नतांश दिया हुआ हो।

चंद्रमाका लम्बन जाननेके लिए इस श्रणीके तीनों पदोंकी आवश्यकता पड़ती है परन्तु सूर्य तथा ग्रहोंके लिए केवल पहले पदसे काम चल जाता है क्योंकि इनके लंबन बहुत कम होते हैं इसलिए दूसरे और तीसरे पदोंके मान नहींके समान होते हैं।

इसलिए सूर्य तथा ग्रहोंके लंबनके लिए केवल यह सूत्र पर्याप्त होगा:—

$$\text{ला} = \frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{\text{ज्या } १''}$$

परन्तु जब ल बहुत छोटा होगा तब $\frac{\text{ज्या ल}}{\text{ज्या } १''} = \text{ल}$

$$\therefore \text{ला} = \text{ल ज्या न} \qquad (४)$$

*उदाहरण १—यदि शुक्रका क्षितिज लंबन ३०″ हो तो जिस समय इसका यथार्थ नतांश ६०° होगा उस समय इसका लंबन क्या होगा?

ला = ल ज्या न

= ३०″ × ज्या ६०°

= ३०″ × ·८६६

= २५″·९८

उदाहरण २—यदि सूर्यका क्षितिज लम्बन ८·″६ हो तो जिस समय इसका यथार्थ उन्नतांश १६° होगा उस समय इसका लम्बन क्या होगा?

सूर्यका यथार्थ नतांश = ९०°—१६° = ७४°

ला = ल ज्या न

= ८″·६ × ज्या ७४°

= ८″·६ × ·९६१३

= ८″·२७

उदाहरण ३—यदि चन्द्रमाका क्षितिज लम्बन ६०′ ४१″·५ हो तो उसका लम्बन क्या है जब कि उसका स्पष्ट नतांश ८०° १९′ १९″ हो?

यहां चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश दिया हुआ है। इसलिए पहले सूत्रसे काम लेना होगा! इसलिए

ज्या ला = ज्या ल × ज्या ना

= ज्या ६०′ ४१″·५ × ज्या ८०° १९′ १९″

गुणा भागकी क्रियाको कम करनेके लिए इन कोणोंकी लघुरिक्थ सम्बन्धी ज्या (logarithmic sines) से काम लेना अच्छा होगा। लघुरिक्थ सम्बन्धी ज्या, कोज्या, स्पर्शरेखाको संक्षेपमें लरि ज्या, लरि कोज्या और लरिस्परे लिखा जायगा।

लरिज्या ६०′ ४१″·५ = ८·२४६८३३

लरिज्या ८०° १९′ १९″ = ९·९९३७७५

योग = ८·२४०६०८

∴ लरि ज्याला = ८·२४०६०८

और ला = ५९′ ४९″·६७

---

* लम्बन के सम्बन्धमें जितने उदाहरण लिखे गये हैं वे सब Loomis Practical Astronomy से लिये गये हैं।

उदाहरण ४—यदि चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन ६०′ ४१″·५ हो और उसका यथार्थ नतांश ७९° १९′ २९″·३३ हो तो उसका लम्बन क्या होगा ?

यहां यथार्थ लम्बन दिया हुआ है इसलिए सूत्र (३) से काम लेना पड़ेगा ।

लरिज्या ६०′ ४१″ · ५ = ८ · २४६८३३

लरिज्या ७९° १९′ २९″ · ३३ = ९ · ९९२४१८

लरि कोछेरे १″ = ५ · ३१४४२५

योग = ३ · ५५३६७६

परन्तु लरि ३५७८″ · २९ = ३ · ५५३६७६

सूत्र (३) का पहला पद = ३५७८″ · २९

= ५९′ ३८″ · २९

लरि=या² ६०′ ४१″ · ५ = ६ · ४९३७

लरिज्या २ × ७९° १९′ २९′ · ३३ = ९ · ५६१२

लरि कोछेरे २″ = ५ . ०१३४

योग = १ · ०६८३

परन्तु लरि ११″ · ७० = १ · ०६८३

∴ सूत्र ३ का दूसरा पद = + ११″ · ७०

लरि ज्या³ ६०′ ४१″ · ५ = ४ · ७४०

लरि ज्या ३ × ७९° १९′ २९″ · ३३ = ९ · ९२८ ऋणात्मक

लरि कोछेरे ३″ = ४ · ८३७

योग = ९ · ५०५

∴ तीसरे पद का मान = -०″ · ३२

तीनों पदोंको इकट्ठा करने पर

लंबन=५९′ ३८″ · २९ + ११″ · ७०—०″ · ३२=५९′ ४९″·६७

यह बतलाया गया है कि क्षितिज लम्बन $=\frac{त्र}{क_1}$ जहां त्र द्रष्टाके स्थानसे भूकेन्द्र की दूरी है और क आकाशीय पिंडसे भूकेन्द्र की दूरी है। परन्तु पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है इसलिए त्र का मान सब जगह एक सा नहीं है। ऐसी दशामें क्षितिज लंबन का मान सब स्थानों के लिए एक नहीं हो सकता। इसलिए गणितसे पहले वह क्षितिज लम्बन जाना जाता है जो निरक्ष देश (विषुवत् रेखा) के किसी स्थान पर होता है। फिर इसकी सहायता से अन्य स्थानों का क्षितिज लम्बन तथा इष्टकालिक स्पष्ट लंबन जाना जाता है।
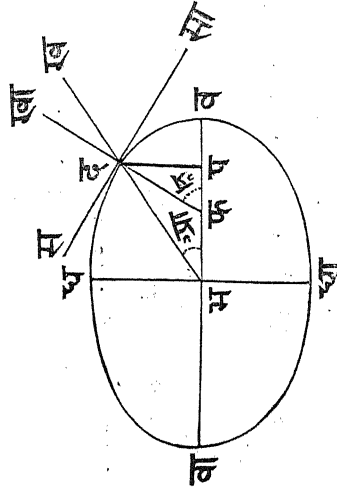
चित्र ७५

मान लो व ध वा धा पृथ्वी की मध्याह्न रेखा है ध, धा पृथ्वीके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तथा व वा विषुवत् रेखाके दो विन्दु हैं। भूकेन्द्रसे विषुवत् रेखाके व विन्दुकी दूरी भ व और ध ध्रुव की दूरी भ ध है। द द्रष्टाका स्थान है और स द सा द स्थानकी स्पर्श रेखा है जो द की क्षितिज रेखाके तलमें है। द खा रेखा स द सा स्पर्श रेखासे समकोण पर है इसलिए यही द स्थानका ऊर्ध्व रेखा है। इसलिए द स्थानका स्पष्ट खस्वस्तिक खा है। यदि यह ऊर्ध्व रेखा पृथ्वीके भीतर बढ़ायी जाय तो पृथ्वीके

केन्द्रको न जाकर भ व रेखाके फ विन्दु पर पहुँचेगी। यदि पृथ्वीके केन्द्रसे द तक रेखा खींची जाय और वह आकाशकी ओर बढ़ायी जाय तो ख विन्दु पर पहुँचेगी। इसलिए यह सिद्ध है कि द स्थानका भूकेन्द्रीय खस्वस्तिक ख है। खा को द स्थानका भौगोलिक ख स्वास्तिक कहते हैं। मध्यमाधिकार पृष्ठ ८३ में बतलाया गया है कि द भ व कोण द स्थानका भूकेंद्रिक अक्षांश है इसलिए द फ व कोण द स्थानका स्पष्ट या भौगोलिक अक्षांश कहलाता है। द स्थानकी ऊर्ध्वरेखा द फ और पृथ्वीकी त्रिज्या भ द से जो कोण भ द फ बनता है उसे द स्थानके ऊर्ध्वरेखाका कोण (angle of the vertical) कहते हैं। किसी स्थानके भौगोलिक अक्षांशको अ और भूकेंद्रिक अक्षांशको आ अक्षरों से प्रकट* किया जाता है॥

मुखोपाध्यायकी Geometry of Conics पृष्ठ ६३, ६४ से सिद्ध है कि

$$प फ = प भ \times \frac{थ^2}{त^2}$$

जहां त, थ क्रमसे दीर्घवृत्तके दीर्घ और लघु क अक्षके आधे हैं।

$$परन्तु\ प द = प भ \times स्परे \angle प भ द = प फ \times स्परे \angle प फ द$$

$$\therefore प भ \times स्परे\ आ = प फ \times स्परे\ अ$$

$$= प भ \times \frac{थ^2}{त^2} \times स्परे\ अ$$

$$\therefore स्परे\ आ = \frac{थ^2}{त^2}\ स्परे\ अ \quad \ldots\ldots\ldots (५)$$

* अंग्रेज़ीमें भौगोलिक अक्षांशको और भूकेंद्रिक अक्षांशको ϕ से प्रकट किया जाता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि किसी स्थानके भौगोलिक अक्षांशकी स्पर्शरेखा को $\frac{थ^2}{त^2}$ से गुणा कर दिया जाय तो उस स्थानके भूकेंद्रिक अक्षांशकी स्पर्शरेखा आजायगी। विलोम क्रियाके द्वारा भूकेन्द्रिक अक्षांश दिया हुआ हो तो भौगोलिक अक्षांश भी जाना जा सकता है।

यह बतलाया गया है कि त और थ पृथ्वीके दीर्घ और लघु अक्षोंके आधे हैं जिनके मान कर्नल क्लार्कके मतानुसार* यह हैं:—

त=२,०९,२६,२०२ फुट

=३९६३·१ मील (स्वल्पान्तरसे)

थ=२,०८,५४,८९५ फुट

=३९४९·८ मील (स्वल्पान्तरसे)

$$\therefore \frac{थ^2}{त^2} = \frac{२०८५४८९५^2}{२०९२६२०२^2} = ·९९३१९९५ = ·९९३२$$

उदाहरण १—देहरादूनका भौगोलिक अक्षांश ३०°१८′५१″·८ उत्तर है तो इसका भूकेन्द्रिक अक्षांश और ऊर्ध्वरेखाका कोण क्या है?

उपर्युक्त सूत्रके अनुसार,

$$स्परे\ आ = ·९९३२ \times स्परे\ ३०°१८′५१″·८$$

$$\therefore लरि\ स्परे\ आ = लरि ·९९३२ + लरि\ स्परे\ ३०°१९′$$

$$= १·९९७० + ९·७६०$$

$$= ९·७६४$$

$$\therefore आ = ३०°८′४०″$$

यही देहरादूनका भूकेन्द्रिक अक्षांश हुआ। यदि इसको भौगोलिक अक्षांशसे घटा दिया जाय तो ऊर्ध्वरेखाका कोण

* Hall's Spherical Astrsonomy pp. 44.

१०'१२" के समान होगा। ऊर्ध्वरेखाके कोणको नाटिकल अलमैनेकमें Reduction to Geocentric latitude कहा जाता है। १९२७ ई० के नाटिकल अलमैनेकमें इसका मान १०'५".२ लिखा है। अंतरका कारण यह है कि इस गणनामें लघुरिक्थोंकी शुद्धता केवल चार अङ्कोंतक ली गयी है।

भूकेंद्रसे किसी स्थानकी दूरी इस तरह जानी जा सकती है।
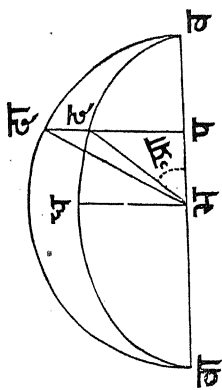
चित्र नं० ७६

चित्र ७६ में व ध वा आधे दीर्घवृत्तका छेद (section) है जो विषुवत् रेखाके व विन्दुसे आरम्भ होकर उत्तरी ध्रुव ध से होता हुआ विषुवत् रेखाकी दूसरी ओर वा तक गया है। यदि व वा पर एक अर्द्धवृत्त व दा वा खींचा जाय तो यही व ध वा का सहायकवृत्त (auxiliary circle) होगा। प भ द कोण भूकेन्द्रिक अक्षांश हुआ जो अ से सूचित किया जायगा। भूकेन्द्रसे द स्थानकी दूरी भ द को त्र अंतरसे सूचित किया जायगा। त्रिभुज प भ द में

$$\text{प भ} = \text{भ द कोज्या अ} = \text{त्र कोज्या अ}$$

$$\text{प द} = \text{भ द ज्या अ} = \text{त्र ज्या अ}$$

मुखोपाध्यायकी Geometry of Conics पृष्ठ ६५ से सिद्ध है कि

$$\frac{\text{प द}}{\text{प दा}} = \frac{\text{भ ध}}{\text{भ व}} = \frac{\text{थ}}{\text{त}}$$

$$\therefore \text{प दा} = \frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{प द} = \frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{त्र ज्या अ}$$

परन्तु $\text{प भ}^2 + \text{प दा}^2 = \text{भ दा}^2 = \text{त}^2$

$$\therefore \left(\text{त्र कोज्या अ}\right)^2 + \left(\frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{त्र ज्या अ}\right)^2 = \text{त}^2$$

या $\text{त्र}^2 \text{ कोज्या}^2 \text{ अ} + \frac{\text{त}^2}{\text{थ}^2} \times \text{त्र}^2 \text{ ज्या}^2 \text{ अ} = \text{त}^2$

परन्तु पृष्ठ १६० में सिद्ध हो चुका है कि $\frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2} = \frac{\text{स्परे आ}}{\text{स्परे अ}}$

इसलिए $\text{त्र}^2 \text{ कोज्या}^2 \text{ अ} + \frac{\text{स्परे अ}}{\text{स्परे आ}} \times \text{त्र}^2 \text{ ज्या}^2 \text{ अ} = \text{त}^2$

जहां $\frac{\text{ज्या}^2 \text{ अ}}{\text{स्परे आ}} = \frac{\text{ज्या}^2 \text{ अ} \times \text{कोज्या आ}}{\text{ज्या आ}}$ प

$$= \text{ज्या अ} \times \text{कोज्या आ}$$

और $\text{स्परे अ} = \frac{\text{ज्या अ}}{\text{कोज्या अ}}$

$$\therefore \text{त्र}^2 \text{ कोज्या}^2 \text{ अ} \times \frac{\text{ज्या अ}}{\text{कोज्या अ}} \text{ ज्या अ} \times \text{कोज्या आ} \times \text{त्र}^2 = \text{त}^2$$

प्रत्येक पक्षको कोज्या अ से गुणा करके प्रत्येक पद के सामान्य खंडोको इकट्ठा करनेपर

$$\text{त्र}^2 \text{ कोज्या आ} \left(\text{कोज्या अ} \times \text{कोज्या आ} + \text{ज्या अ} \times \text{ज्या आ}\right)$$

$$= \text{त}^2 \text{ कोज्या अ}$$

$$\therefore \text{त्र}^2 \text{ कोज्या आ कोज्या} \left(\text{आ} - \text{अ}\right) = \text{त}^2 \text{ कोज्या अ*}$$

---

*देखो Hall and Knight's Elementary Trigonometry pp. 95.

$$\therefore त्र^2 = \frac{त^2 कोज्या\ अ}{कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ - अ)} \quad \ldots\ldots (६)$$

$$= \frac{कोज्या\ अ}{कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ - अ)}$$ जब कि निरक्ष देशीय त्रिज्या १ मान ली जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि किसी स्थानका भौगोलिक अक्षांश, उसके ऊर्ध्व रेखाका कोण और विषुवत् रेखासे भूकेन्द्रकी दूरी ज्ञात हो तो भूकेन्द्रसे उस स्थानकी दूरी जानी जा सकती है।

किसी स्थानका क्षितिज लम्बन जानना

मान लो कि चन्द्रमाका क्षितिज लंबन निरक्ष देश (eyuator) पर ल और किसी अन्य स्थानपर लि है। यदि भूकेन्द्रसे निरक्ष देशकी दूरी त और उस स्थानकी दूरी त्र हो तो पृष्ठ १५२ से स्पष्ट है कि—

$$ज्या\ ल = \frac{त}{क}$$

और $$ज्या\ लि = \frac{त्र}{क}$$

इसलिए $$ज्या\ लि = \frac{त्र}{त} ज्या ल$$

यदि त को १ मान लिया जाय तो

$$ज्या\ लि = त्र\ ज्या\ ल \quad (७)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि निरक्ष देशीय पृथ्वीकी त्रिज्या १ मान ली जाय तो चन्द्रमाके निरक्ष देशीय क्षितिज लम्बनकी ज्या को किसी स्थानकी त्रिज्यासे गुणा कर देनेपर उस स्थानका क्षितिज लम्बन ज्ञात हो जायगी।

उदाहरण २—यदि चंद्रमाका निरक्ष देशीय क्षितिज लंबन ५३′ हो तो देहरादूनमें क्षितिज लंबन क्या होगा ?

ऊर्ध्व रेखाका कोण उदाहरण (१) में जान लिया गया है। इसलिए पहले देहरादूनकी त्रिज्या सूत्र ६ से जानना चाहिए :—

$$त्र^2 = \frac{कोज्या\ अ}{कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ - अ)}$$

$$= \frac{कोज्या\ ३०^\circ १८' ५२''}{कोज्या\ ३० ८' ४०''\ कोज्या\ १०' १२''}$$

$\therefore$ २ लरि त्र = लरि कोज्या ३०°१८′५२″ — लरि कोज्या ३०°८′४″

— लरि कोज्या १०′१२″

= ९.९३६१ — ९.९३९९ — १०

= १.९९९२

$\therefore$ लरि त्र = १.९९९६

$\therefore$ त्र = .९९९

$\therefore$ देहरादूनके क्षितिज लंबन की ज्या

= .९९९ × ज्या ५३′

= .९९९ × .०१५४

= .०१५३८

$\therefore$ देहरादूनका क्षितिज लंबन = ५२′५६″ *

लम्बनके कारण आकाशीय पिण्डके स्पष्ट और यथार्थ विषुवांशों-

में क्या अन्तर पड़ता है ?

लंबनके सम्बन्धमें अबतक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि इसके कारण आकाशीय पिंडके नतांशमें अन्तर

---

* ऐसी सूक्ष्म गणनाके लिए लघुरिक्थोंकी सरिणी कमसे कम दशमलवके सात अंकोंकी होनी चाहिए नहीं तो बहुत स्थूलता रह जाती है।

पड़ता है जिससे पिंडके विषुवांश, क्रान्ति, भोगांश और शर सबपर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। परन्तु जिस समय पिण्ड याम्योत्तर वृत्तपर होता है उस समय लंबनके कारण नतांशमें जो अन्तर पड़ता है उसका पूरा प्रभाव क्रान्तिपर ही पड़ता है न कि विषुवांशपर। परन्तु अन्य स्थानोंमें विषुवांश और क्रान्ति दोनों हीमें अन्तर देख पड़ता है क्योंकि जिस ऊर्ध्व वृत्तपर नतांशका अन्तर होता है वह विषुवत् वृत्तसे भिन्न होता है।

विषुवांशका लम्बन जानना
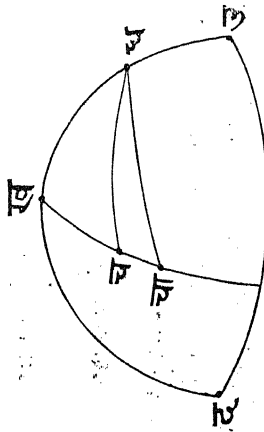
चित्र ७७

मान लो कि उ ख द किसी स्थानका याम्योत्तर वृत्त है, उ, द उस स्थानकी क्षितिज उ अ द के उत्तर, दक्खिन विन्दु हैं, ख भूकेन्द्रिक ख स्वस्तिक और ध उत्तरी आकाशीय ध्रुव है। मान लो कि चन्द्रमाका यथार्थ स्थान जो पृथ्वीके केन्द्रसे देख पड़ता है च है और इसका स्पष्ट स्थान जो द्रष्टाको भूतलसे देख पड़ता है चा है। च चा चन्द्रमाका नतांश लंबन है जिसके लिए पृष्ठ १५१ में ला लिखा गया है। कोण ख ध च और ख ध चा च और चा के नत काल (hour angle) हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि लंबनके कारण चन्द्रमाका स्पष्ट नतकाल यथार्थ नतकालसे कोण च ध चा के समान अधिक है। यही कोण च ध चा चन्द्रमाका विषुवांश लंबन है। यह भी स्पष्ट है कि चंद्रमाका स्पष्ट ध्रुवान्तर धा च उसके यथार्थ ध्रुवान्तर ध च से अधिक है। इसलिए स्पष्टक्रान्ति यथार्थ क्रान्तिसे कम हो जायगी। इसलिए चंद्रमाका क्रान्ति लंबन ध चा—ध च के समान होगा।

मान लो कि द्रष्टाके स्थानमें चंद्रमाके क्षितिज लंबन लि, विषुवांश लंबन ली, यथार्थ नतकाल घ, और यथार्थ क्रान्ति क तथा द्रष्टाका भूकेन्द्रिक अक्षांश अ है। तब यह स्पष्ट है कि चंद्रमाका स्पष्ट नतकाल ख ध चा=घ+ली=घा

गोलीय त्रिभुज च ध चा में

$$\frac{\text{ज्या}(\text{च ध})}{\text{ज्या}(\text{च चा ध})}=\frac{\text{ज्या}(\text{च चा})}{\text{ज्या}(\text{च ध चा})}$$

परन्तु $\angle$ च ध चा=ली

$$\therefore \text{ज्या ली}=\frac{\text{ज्या}(\text{च चा})\times\text{ज्या}(\text{च चा ध})}{\text{ज्या}(\text{च ध})}\ldots\ldots\ldots(\text{क})$$

और गोलीय त्रिभुज ख ध चा में

$$\frac{\text{ज्या}(\text{ख चा})}{\text{ज्या}(\text{ख ध चा})}=\frac{\text{ज्या}(\text{ख ध})}{\text{ज्या}(\text{ख चा ध})}$$

$$\therefore \text{ज्या}(\text{ख चा ध})=\frac{\text{ज्या}(\text{ख ध})\times\text{ज्या}(\text{ख ध च})}{\text{ज्या}(\text{ख चा})}\ldots\ldots(\text{ख})$$

परन्तु $\angle$ ख चा ध = $\angle$ च चा ध

$$\therefore \text{ज्या ली}=\frac{\text{ज्या}(\text{च चा})}{\text{ज्या}(\text{च ध})}\times\frac{\text{ज्या}(\text{ख ध})\times\text{ज्या}(\text{ख ध चा})}{\text{ज्या}(\text{ख चा})}\ldots(\text{ग})$$

परन्तु पृष्ठ १५२ के सूत्र (१) के अनुसार,

ज्या (च चा) = ज्या लि × ज्या (ख चा)

इसको समीकरण (ग) में उत्थापन करने से

$$\text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि}}{\text{ज्या (च ध)}} \times \text{ज्या (ख ध)} \times \text{ज्या (ख ध चा)}$$

च ध = च का ध्रुवान्तर = ९०° — क

∴ ज्या (च ध) = कोज्या ख ध

= द्रष्टाका लम्बांश = ९०° — अ

∴ ज्या (ख ध) = कोज्या अ

∠ख ध चा = ∠ख ध च + ∠च ध चा = घ + ली

$$\therefore \text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या अ} \times \text{ज्या (घ + ली)}}{\text{कोज्या क}} \ldots (\text{क})$$

मान लो कि $\text{प} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या अ}}{\text{कोज्या क}}$

तब ज्या ली = प × ज्या (घ + ली)......................(१)

= प ज्या घ कोज्या ली + प कोज्या घ ज्या ली

यदि प्रत्येक पक्षको ज्याली से भाग दिया जाय तो

स्परेली = प ज्या घ + प कोज्या घ स्परे ली

$$\therefore \text{स्परे ली} = \frac{\text{प ज्या घ}}{१ - \text{प कोज्या घ}} \ldots\ldots\ldots (२)$$

इस सूत्रका विस्तार करके उसी प्रकारकी श्रेणी बनायी जा सकती है जिस प्रकार पृष्ठ १५३—१५६ में सूत्र (२) को सूत्र (३) के रूपमें लाया गया है। इस तरह

$$\text{ली} = \frac{\text{प ज्या घ}}{\text{ज्या } १''} + \frac{\text{प}^२ \text{ ज्या २ घ}}{\text{ज्या } २''} + \frac{\text{प}^३ \text{ ज्या ३ घ}}{\text{ज्या } ३''} + \ldots\ldots (३)$$

विषुवांश लंबन जाननेके लिए सूत्र (१) उस समय काममें लाया जा सकता है जब स्पष्ट नतकाल ज्ञात हो और जब यथार्थ नतकाल ज्ञात रहता है तब सूत्र (२) या (३) काममें लाया जाता है।

उदाहरण १—चंद्रमाका विषुवांश लंबन बतलाओ जब कि द्रष्टाके स्थानका उत्तर अक्षांश ३९°५७′७″, इस स्थानके लिए चंद्रमाका क्षितिज लम्बन ५९′३९″·८, चंद्रमाकी उत्तर क्रान्ति २४°५′११″·६ और चंद्रमाका यथार्थ नतकाल ६१°१०′४७″·४।

इस स्थानका भूकेन्द्रिक अक्षांश पृष्ठ १६०के सूत्र (५) के अनुसार ३९°४५′४७″·५ हुआ।

लरि ज्या लि=लरि ज्या ५९३९·८=८·२३६०४८

लरि कोज्या अ=लरि कोज्या ३९°४५′४७″·५=९·८८५७५४

*लरि छेरे क=लरि छेरे २४°५′११″·६=०·०३९५६३

∴ लरि प=८·१६४३६५

लरि ज्या घ=लरि ज्या ६१°१०′४७″·४=९·९४२५७२

लरि कोछेरे १″=५·३१४४२५

इसलिए सूत्र (३) के पहले पदका लघुरिक्थ=३·४२१३६२

∴ पहला पद=२६३८″·५३

लरि प²=२ लरि प= ६·३२८७

$\frac{१}{\text{कोज्या क}}$=छेदन रेखा क=छेरे क, इसलिए प=ज्या लि × कोज्या अ × छेरे क

ज्या २ घ=ज्या २ × ६१°१०′४७″·४= ९·९२६७

लरि कोछेरे २″= ५·०१३४

∴ दूसरे पदका लघुरिक्थ= १·२६८८

∴ दूसरा पद=+१८″·५७

लरि प³=३ लरि प=४·४९३

लरि ज्या ३घ=लरि ज्या ३ × ६१°१०′४७″·४=८·७९१ ऋणात्मक

लरि को छेरे ३″=४·८३७

---

* पृष्ठ १६८ में यह माना गया है कि $\text{प} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या अ}}{\text{कोज्या क}}$ परंतु

∴ तीसरे पद का लघुरिक्थ=८·१२१ ऋणात्मक

∴ तीसरा पद= $-0''\cdot01$

∴ ली=२६३८$'$·५३ + १८$''$·५७ − ०$''$·०१

=२६५७$''$·०६

=४४$'$१७$''$·०६=४४$'$१७$''$·१

∴ चंद्रमाका स्पष्ट नतकाल

=६१°१०$'$४७$''$·४ + ४४$'$१७$''$·१

=६१°५५$'$४$''$·५

यदि यही स्पष्ट नतकाल दिया होता तो सूत्र (१) से विषुवांश लंबन इस प्रकार जाना जाता:—

लरि ज्या ली=लरि प+लरि ज्या ६१°५५$'$४$''$·५

=८·१६४३६५+९·९४५६०४।

=८·१०९९६९

∴ ली =४४$'$१७$''$·०६

इस प्रकार किसी स्थानके विषुवांश लंबनकी सारिणी तैयार की जा सकती है।

चन्द्रमा का क्रान्ति लंबन (Pareallax in declination) जानना—

इस कामके लिए भी चित्र ७७ काम देगा। मान लो कि चंद्रमाकी यथार्थ क्रान्ति क, यथार्थ नतांश न और यथार्थ नतकाल घ है और

लंबनके कारण चंद्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति, स्पष्ट नतांश और स्पष्ट नतकाल क्रमानुसार का, ना, और घा हैं।

मान लो कि चन्द्रमाका क्रान्ति लंबन लु है।

गोलीय त्रिभुज च ध ख और चा ध ख में,

$$\text{कोज्या च ख ध}=\frac{\text{कोज्या च ध—कोज्या च ख कोज्या ध ख}}{\text{ज्या च ख ज्या ध ख}}$$

$$\text{कोज्या चा ख ध}=\frac{\text{कोज्या चा ध — कोज्या चा ख कोज्या ध ख}}{\text{ज्या चा ख ज्या ध ख}}$$

परन्तु च ख ध और चा ख ध कोण एक ही हैं और

च ध=चंद्रमाका यथार्थ ध्रुवान्तर=९०° − क

चा ध= „ स्पष्ट „ =९०° − का

∴ कोज्या च ध=कोज्या (९०° − क)=ज्या क

और कोज्या चा छ ज्या का

$$\therefore \frac{\text{ज्या क — कोज्या न} \times \text{ज्या आ}}{\text{ज्या न}}=\frac{\text{ज्या का — कोज्या ना} \times \text{ज्या आ}}{\text{ज्या ना}}$$

अर्थात् ज्या क ज्या ना — ज्या आ ज्या ना कोज्या न

=ज्या का ज्या न — ज्या आ ज्या न कोज्या ना

या ज्या क ज्या ना — ज्या आ (ज्या ना को ज्या न — को ज्या ना ज्या न) =ज्या का ज्या न

∴ ज्या क ज्या ना — ज्या आ ज्या (ना — न)=ज्या का ज्या न

परन्तु ना — न चंद्रमाका नतांश लम्बन है इसलिए

ज्या (ना — न)=ज्या ला=ज्या लि ज्या ना (देखो पृष्ठ १५२)

यहां लिक्षितिज लम्बन माना गया है।

∴ ज्या क ज्या ना — ज्या आ ज्या लि ज्या ना=ज्या का ज्या न

या ज्या का ज्या न=ज्या ना (ज्या क — ज्या लि ज्या आ)···(क)

इस समीकरणमेंसे ज्या ना ज्या ना और निकालनेके लिए गोलीय त्रिभुज च ध ख और चा ध ख से इस प्रकार काम लेना होगा—

$$\frac{\text{ज्या च ख ध}}{\text{ज्या च ध}}=\frac{\text{ज्या च ध ख}}{\text{ज्या च ख}}$$

$$\text{और}\quad \frac{\text{ज्या चा ख ध}}{\text{ज्या चा ध}}=\frac{\text{ज्या चा ध ख}}{\text{ज्या चा ख}}$$

परन्तु च ख ध और चा ख ध एक ही हैं, इसलिए

$$\frac{\text{ज्या च ध ज्या च ध ख}}{\text{ज्या च ख}}=\frac{\text{ज्या चा ध ज्या च ध ख}}{\text{ज्या चा ख}}$$

या $\text{ज्या चा ध ज्या च ख}=\frac{\text{ज्या च ध ज्या च ध ख ज्या चा ख}}{\text{ज्या चा ध ख}}$

या $\text{कोज्या का ज्या न}=\frac{\text{कोज्या क ज्या घ ज्या ना}}{\text{ज्या घा}}$ .... (ख)

समीकरण (क) के बायें पक्षको समीकरण (ख) के बायें पक्षसे और उसके दाहने पक्षको इसके दाहने पक्षसे भाग देनेपर।

$$\text{स्परे का}=\frac{\text{ज्या क}-\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{ज्या घ कोज्या क}}\times\text{ज्या घा}$$

$$=\frac{\text{ज्या क}-\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{कोज्या क}}\times\frac{\text{ज्या घा}}{\text{ज्या घ}}$$

$$=\left(\frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}}-\frac{\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{कोज्या क}}\right)\times\frac{\text{ज्या घा}}{\text{ज्या घ}}$$

$$=\text{स्परे क}\left(1-\frac{\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{ज्या क}}\right)\frac{\text{ज्या घा}}{\text{ज्या घ}}\ \ldots\ldots\ldots\ldots\ (1)$$

यदि यथार्थ क्रान्ति, नतकाल और स्पष्ट नतकाल ज्ञात हो तो इस सूत्रसे स्पष्ट क्रान्ति जानी जा सकती है। फिर स्पष्ट क्रान्तिसे यथार्थ क्रान्ति घटानेपर क्रान्ति लम्बन जाना जा सकता है। यदि क्रान्ति लम्बनका मान सीधेसे जानना हो तो सूत्र (१) को दूसरे रूपमें लिखना होगा जो इस प्रकार सिद्ध होता है:—

सूत्र (१) से सिद्ध है कि

$$\frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}=\text{स्परे क}\left(1-\frac{\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{ज्या क}}\right)$$

$$=\text{स्परे क}-\frac{\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\therefore\ \text{स्परे क}-\frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}=\frac{\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{कोज्या क}}$$

अथवा $\text{स्परे क}-\text{स्परे का}+\text{स्परे का}-\frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}$

$$=\frac{\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{कोज्या का}}$$

परन्तु $\text{स्परे क}-\text{स्परे का}=\frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}}-\frac{\text{ज्या का}}{\text{कोज्या का}}$

$$=\frac{\text{ज्या क कोज्या का}-\text{कोज्या क ज्या का}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}$$

$$=\frac{\text{ज्या (क}-\text{का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}$$

$$\therefore\ \frac{\text{ज्या (क}-\text{का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}+\text{स्परे का}\left(1-\frac{\text{ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}\right)$$

$$=\frac{\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{कोज्या क}}$$

अथवा

$$\frac{\text{ज्या (क}-\text{का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}=\frac{\text{ज्या लि ज्या भ्रा}}{\text{कोज्या क}}-\frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}}\left(\text{ज्या घा}-\text{ज्या घ}\right)$$

परन्तु Hall and Knight की Trigonometry पृष्ठ ११३ के अनुसार

$$\text{ज्या घा}-\text{ज्या घ}=2\ \text{ज्या}\ \frac{\text{घा}-\text{घ}}{2}\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{घा}+\text{घ}}{2}$$

जहाँ घा स्पष्ट नतकाल और घ यथार्थ नतकाल है।

इसलिए घा − घ = विषुवांश लंबन = ली

घा + घ = घा − घ + २ घ = ली + २ घ

$$\therefore \text{ज्या घा} - \text{ज्या घ} = २ \text{ ज्या } \frac{\text{ली}}{२} \text{कोज्या} \left(\frac{\text{ली} + २ \text{ घ}}{२} \right)$$

और क − का = स्पष्ट और यथार्थ क्रान्तियोंका अंतर

= क्रान्ति लंबन = लु (देखो पृ० १७१)

$$\therefore \frac{\text{ज्या लु}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$- \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}} \times २ \text{ ज्या } \frac{\text{ली}}{२} \text{कोज्या} \left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२} \right)$$

परन्तु $\text{ज्या ली} = २ \text{ ज्या} \frac{\text{ली}}{२} \text{कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}$

$$\therefore २ \text{ ज्या} \frac{\text{ली}}{२} = \frac{\text{ज्या ली}}{\text{कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}}$$

$$= \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या (घ + ली)}}{\text{कोज्या क कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}} \quad \text{(देखो पृ० १६८)}$$

$$\therefore २ \text{ ज्या} \frac{\text{ली}}{२} = \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या घा}}{\text{कोज्या क कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}}$$

इसलिए

$$\frac{\text{ज्या लु}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्यालि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$- \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}} \times \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या घा}}{\text{कोज्या क कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}} \times \text{कोज्या} \left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२} \right)$$

यदि दोनों पक्षोंको कोज्या क कोज्या कासे गुणा कर दिया जाय और सरल किया जाय तो

$$\text{ज्या लु} = \text{ज्या लि ज्या आ कोज्या का}$$

$$- \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ कोज्या} \left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२} \right)}{\text{कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}} \text{ ज्या का} \cdots\cdots (\text{क})$$

मान लो कि

$$\text{कोस्परे फ} = \frac{\text{कोज्या} \left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२} \right) \text{को स्परे आ}}{\text{कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}}$$

तब $\text{ज्या लु} = \text{ज्या लि ज्या आ कोज्या का}$

$- \text{ज्या लि ज्या आ ज्या का कोस्परे फ}$

इसलिए

$\text{ज्या लु} = \text{ज्या लि ज्या आ (कोज्या का — ज्या का कोस्परे फ)}$

$$= \text{ज्या लि ज्या आ} \left(\frac{\text{कोज्या का ज्या फ — ज्या का कोज्या फ}}{\text{ज्या फ}} \right)$$

$$= \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या फ}} \text{ज्या (फ — का)}$$

यदि $\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या फ}}$ के लिए ब मान लिया जाय तो

$\text{ज्या लु} = \text{ब ज्या (फ − का)}$

परन्तु क — का = लु $\therefore$ का = क − लु

$$\therefore \text{ज्या लु} = \text{ब ज्या (फ − क + लु)} \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots\cdots (२)$$

$$= \text{ब \{ज्या (फ — क) कोज्या लु + कोज्या (फ — क) ज्या लु\}}$$

दोनों पक्षोंको कोज्या लुसे भाग देनेपर

स्परे लु=ब ज्या (फ — क) + ब कोज्या (फ — क) स्परे लु

$$\text{या स्परे लु} = \frac{\text{ब ज्या (फ — क)}}{\text{१ — ब कोज्या(फ — क)}} \quad \dots\dots\dots\dots (३)$$

यदि इसको पहलेकी तरह श्रेणीमें विस्तार किया जाय तो

$$\text{लु} = \frac{\text{ब ज्या (फ — क)}}{\text{ज्या१}''} + \frac{\text{ब}^{२}\text{ज्या२ (फ — क)}}{\text{ज्या२}''} + \frac{\text{ब}^{३}\text{ज्या३ (फ-क)}}{\text{ज्या३}''} + \dots\dots (४)$$

जब स्पष्ट क्रान्ति ज्ञात हो तो सूत्र (२) से और यथार्थ क्रान्ति ज्ञात हो तो सूत्र (३) और (४) से क्रान्ति लंबन जाना जा सकता है।

यह जानना कि विषुवांश लंबनमें प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है:—

पृष्ठ १६८में विषुवांश लंबनका सूत्र यह आया है:—

$$\text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या आ} \times \text{ज्या घा}}{\text{कोज्या क}}$$

ली और लि धनु बहुत छोटे होते हैं इसलिए

ज्या ली=ली

और ज्या लि=लि

लम्बनके कारण यथार्थ नतकाल और स्पष्ट नतकालमें जो भिन्नता देख पड़ती है वह भी बहुत कम होती है इसलिए व्यवहारकी सुविधाके लिए ज्या घ को ज्या घा के समान समझ लेनेमें कोई हानि नहीं। इसलिए उपर्युक्त सूत्रका रूप यह हुआ:—

$$\text{ली} = \frac{\text{लि} \times \text{कोज्या आ} \times \text{ज्या घ}}{\text{कोज्या क}}$$

इस सूत्रमें घ ही ऐसा है जिसका भेद प्रतिक्षण बहुत बढ़ता रहता है, लि, ली, आ और क में जो विकार उत्पन्न होता है वह इतना मन्द होता है कि कुछ समयके लिए यह मात्राएँ स्थिर मानी जा सकती हैं। इसलिए घ को चल राशि मानकर ली की तात्कालिक गति निकाली जाय तो

$$\text{ता (ली)} = \frac{\text{लि} \times \text{कोज्या आ}}{\text{कोज्या क}} \text{ कोज्या घ ता (घ)}$$

यहाँ ता (घ) को रेडियनमें लिखना होगा। यदि यह जानना हो कि प्रति घंटा विषुवांश लम्बनमें क्या भेद उत्पन्न होता है तो ता (घ) को १५°के रेडियनमें प्रकट करना चाहिए। यह विदित है कि

१८०°=रेडियन=३·१४१५९ रेडियन

∴ १५°=·२६१७९९ रेडियन

और ६°=·१०४७१९७ रेडियन

उदाहरण—चन्द्रमाके विषुवांश लम्बनमें प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है जब एक स्थानका क्षितिज लंबन ५७′, भूकेन्द्रिक अक्षांश ४२°११′२१″, चंद्रमाकी क्रान्ति २५° और नतकाल ५०° हो ?

लरि लि=लरि ५७′=लरि ३४२०″=३·५३४०२६

लरि कोज्या आ=लरि कोज्या ४२°११′२१″=९·८६९७७८

लरि कोज्या घ=लरि कोज्या ५०° =९·८०८०६७

लरि ता (घ)=लरि·२६१७९९ =१·४१७९९६

लरि छेरे क=लरि छेरे २५° =०·०४२७२४

∴ लरि ता (ली) =२·६७२५६४

∴ ता (ली)=४७०″·५ =७′५०·५

यह जानना कि क्रान्ति लंबनमें प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है:—

पृष्ठ १७५में सिद्ध हुआ है कि

ज्या लु=ज्या लि ज्या श्रा कोज्या का

$$-\frac{\text{ज्या लि कोज्या श्रा कोज्य}\left(\text{घ}+\frac{\text{ली}}{२}\right)\text{ज्या का}}{\text{कोज्या }\frac{\text{ली}}{२}}$$

यदि पहलेकी तरह ज्या लु और ज्या लि की जगह लु और ली लिये जायँ, $\text{घ}+\frac{\text{ली}}{२}$ को घ और $\text{कोज्या}\frac{\text{ली}}{२}$ को १ तथा का को क मान लिया जाय तो

लु=लि ज्या श्रा कोज्या क — लि कोज्या श्र कोज्या घ ज्या क

अब यदि केवल घ को चलराशि मानकर इस समीकरण की तात्कालिक गति निकाली जाय तो

ता (लु)=लि कोज्या श्रा ज्या क ज्या घ ता (घ)

उदाहरण—चन्द्रमाके क्रान्ति लम्बनमें प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है, जब एक स्थानका क्षितिज लम्बन ५७′, भूकेन्द्रिक अक्षांश ४२°११′२१″, चन्द्रमाकी क्रान्ति २५° और नतकाल ५०° है ?

लरि लि=लरि ५७′=लरि ३४२०″ =३·५३४०२६

लरि कोज्या श्रा=लरि कोज्या ४२°११′२१″ =९·८६९७७८

लरि ज्या क=लरि ज्या २५° =९·६२५९४८

लरि ज्या घ=लरि ज्या ५०° =९·८८४२५४

लरि ता (घ)=लरि·२६१७९९=१·४१७९९६

∴ लरि ता (लु) =२·३३१९७५

∴ ता (लु)=२१४″·८=३′३४″·८

भोगांश और विक्षेप (शर) पर लम्बनका प्रभाव—

जिस प्रकार विषुवांश और क्रान्ति सम्बन्धी लंबन जाननेके लिए सूत्र स्थापित किये गये हैं ठीक उसी प्रकार ऐसे सूत्र भी स्थापित किये जा सकते हैं जिनसे भोगांश और शर सम्बन्धी लंबन जाने जा सकते हैं। इस कामके लिए चित्र ७७ के घ विन्दु-को कदंब (क्रान्ति वृत्ततीय ध्रुव) समझना होगा। ऐसी दशा-में कदंब और ख स्वस्तिक ख से जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त उ घ ख द वह वृत्त होगा जिसपर त्रिभोन लग्न या वित्रिभ है (देखो चित्र ६३ और पृष्ठ ४८४), घ च और घ चा कदम्ब प्रोतवृत्तों-पर ग्रहके यथार्थ स्पष्ट कदम्बान्तर हैं। इसलिए ९०°—घ च और ९०°—घ चा ग्रहके यथार्थ और स्पष्ट शरोंके समान होंगे। ख घ ख-स्वस्तिकसे कदम्बका अन्तर है जिसको ९०° से घटानेपर त्रिभोन लग्नका नतांश आ जायगा। यही त्रिभोन लग्नका नतांश ख-स्वस्तिकसे क्रान्तिवृत्तका यथार्थ अन्तर है इसलिए यह ख-स्वस्तिकका भूकेंद्रिक शर हुआ।

मान लो कि ख स्वस्तिकका भूकेंद्रिक शर या त्रिभोन लग्न-का नतांश त्र है, ग्रहका यथार्थ शर श और स्पष्ट शर शा है, ग्रहके भोगांश और त्रिभोन लग्नका यथार्थ अन्तर ख घ च है जिसे संक्षेपमें यथार्थ विश्लेषांश या केवल व कहा जायगा। यदि लि क्षितिज लंबन तथा भी भोगांश लंबन हो तो पृष्ठ १६८ के समीकरण (क) की तरह

$$\text{ज्या भी}=\frac{\text{ज्या लि कोज्या त्र ज्या (व+भी)}}{\text{कोज्या श}}\;\ldots\ldots\ldots\ldots\text{(क)}$$

पृष्ठ १६८ में दिखाई गई रीतिके अनुसार इसको यों भी लिखा जा सकता है।

$$\text{स्परे भी}=\frac{\text{त ज्या व}}{१-\text{त कोज्या व}}\;\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

जब $\text{त} = \dfrac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा}}{\text{कोज्या श}}$

यह स्पष्ट है कि सूत्र (क) में भी और लि बहुत छोटे हैं इस लिए इनकी ज्याओंकी जगह धनु लिखनेमें कोई हानि नहीं होगी परन्तु सरलता हो जायगी। इसलिए

$\text{भी} = \dfrac{\text{लि कोज्या त्रा ज्या व}}{\text{कोज्या श}}$ ....(ख)

अथवा यदि ग्रहका शर बहुत छोटा हो जैसे सूर्य-ग्रहण-के समय चन्द्रमाका शर होता है तो कोज्या श का मान १ के प्रायः समान होगा। इसलिए

भी=लि कोज्या त्रा ज्या व··································(ग)

यही रूप सूर्य-सिद्धान्तके सूर्य-ग्रहणाधिकार श्लोक ७-८ में बतलाया गया है।

शर लंबन या नति—यदि भु शर लंबन हो तो पृष्ठ १७५ के समीकरण (क) की तरह

ज्या भु=ज्या लि ज्या त्रा कोज्या शा

$- \dfrac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा कोज्या} \left(\text{व} + \frac{\text{भी}}{२}\right) \text{ज्या शा}}{\text{कोज्या} \frac{\text{भी}}{२}}$ ·········(घ)

यह स्पष्ट है कि $\frac{\text{भी}}{२}$ अर्थात् भोगांश लंबन बहुत छोटा है इसलिए कोज्या $\frac{\text{भी}}{२}$=१। ऐसी दशामें यदि व + $\frac{\text{भी}}{२}$ की जगह व और शा की जगह श रखा जाय तो बहुत अन्तर नहीं पड़ेगा और सूत्र (घ) सरल होकर ऐसा हो जायगा :—

ज्या भु=ज्या लि ज्या त्रा कोज्या श

— ज्या लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व···············(ङ)

यदि ज्या भु और ज्य लि की जगह इनके धनु लिये जायं क्योंकि यह बहुत छोटे हैं तो

भु=लि ज्या त्रा कोज्या श — लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व···(च)

भोगांश लंबनकी समानता विषुवांश लंबनसे तथा क्रान्ति लंबनकी समानता शर लंबनसे समझनेके लिए यह याद रखना चाहिए कि

भोगांश लम्बनके सूत्र में	विषुवांश लम्बनके सूत्रमें
लि=क्षितिज लम्बन	लि=क्षितिज लम्बन
भी=भोगांश लम्बन	ली=विषुवांश लम्बन
त्र=त्रिभोन लग्नका नतांश	त्रा=भूकेन्द्रिक अक्षांश
व=विश्लेषांश	घ=यथार्थ नतकाल
श=यथार्थ शर	क=यथार्थ क्रान्ति
शा=स्पष्ट शर	का=स्पष्ट क्रान्ति
भु=शर लम्बन या नति	लु=क्रान्ति लम्बन

सूर्य सिद्धान्तने भोगांश लंबनका नाम हरिज और शर लंबनका नाम नति रखा है। अन्य सिद्धान्त ग्रन्थोंमें भोगांश लंबनको केवल लंबन या स्फुट लंबन और शर लंबनको नति कहा गया है।

अब संक्षेपमें यह बतलाया जायगा कि हमारे आचार्योंने लंबनके विषयमें क्या लिखा है :—

भास्कराचार्यने लिखा* है कि किसी ग्रहकी दैनिक गतिको १५ से भाग देनेपर उस ग्रहका परम लम्बन (क्षितिज लंबन) आ जाता है। इसका कारण यह बतलाया गया है :—

भूतलके किसी स्थानको स्पर्श करता हुआ समतल (horizontal plain) आकाशको जिस वृत्तपर काटता हुआ

* गणिताध्याय पृष्ठ १६२

देख पड़ता है उसे उस स्थानका क्षितिजवृत्त कहते हैं। यह क्षितिज वृत्त आकाशके गोलको दो भागोंमें बांट देता है। इस क्षितिज वृत्तको स्पष्ट क्षितिजवृत्त (sensible horizon) कहते हैं। यदि पृथ्वीके केन्द्रसे होता हुआ स्पष्ट क्षितिज वृत्तके समानान्तर दूसरा समतल आकाशकी ओर बढ़ाया जाये तो यह आकाशको जिस वृत्तपर काटता है उसे उस स्थानका यथार्थ क्षितिज वृत्त true या rational horizon कहते हैं। चित्र ७८ में द भूतलपर द्रष्टाका स्थान और भ पृथ्वीका केन्द्र
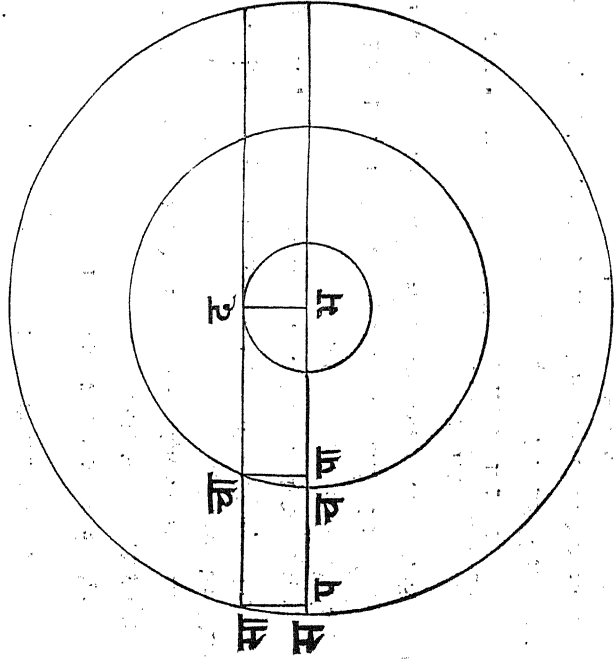
चित्र ७८

है। द से जो समतल पृथ्वी तलको छूता हुआ खींचा गया है वह चन्द्रमाकी कक्षाको चा बिंदुपर और सूर्य्यकी कक्षाको सा बिंदुपर काटता है। इसलिए चा, सा बिंदु द स्थानकी स्पष्ट क्षितिजपर है। यदि इसीके समानान्तर भ से होता हुआ एक समतल आकाशकी ओर बढ़ाया जाय जो चंद्र और सूर्य्यकी चित्र ७८ की कक्षाओंको क्रमसे च और स बिंदुओंपर काटे तो भ च स तलको द स्थानका यथार्थ क्षितिज कहते हैं। यह प्रकट है कि जिस समय चंद्रमा और सूर्य्य अथवा अन्य कोई ग्रह द स्थानके यथार्थ क्षितिजपर रहता है उस समय वह भ च स तलमें रहता है जो द स्थान के स्पष्ट क्षितिजसे नीचे है इसलिए वह द्रष्टाको नहीं देख पड़ेगा। ऐसी दशामें ग्रह स्पष्ट क्षितिजसे जितना नीचे रहेगा उसका परिमाण चा पा या सा प है जो भ द अर्थात् पृथ्वीके अर्द्धव्यास के समान है। इसलिए यह कहनेमें कुछ भी दोष नहीं है कि जब ग्रह किसी स्थानके यथार्थ क्षितिजपर रहता है तब वह उस स्थानके स्पष्ट क्षितिजसे पृथ्वीके अर्द्धव्यासके समान नीचे रहता है अर्थात् उसका लंबन पृथ्वीके अर्द्धव्यासके समान होता है। यदि चा पा को चा च के समान और सा प को सा स के समान समझ लें तो बहुत अंतर न पड़ेगा क्योंकि चा च या सा स पूरी कक्षाकी तुलनामें बहुत छोटा है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब ग्रह यथार्थ क्षितिजपर रहता है तब वह द्रष्टाकी क्षितिजसे अपनी कक्षामें पृथ्वीके अर्द्धव्यासके समान नीचे रहता है।

यह पहले बतलाया जा चुका है देखो पृष्ठ २४-२५ कि हमारे आचार्योंने मान लिया था कि प्रत्येक ग्रहकी योजनात्मक गति समान होती है। आगे आनेवाले भूगोलाध्यायके श्लोक ८१-८२ अनुसार प्रत्येक ग्रहकी दैनिक गति ११८५८.७२ योजन होती

है। पृथ्वीका अर्द्धव्यास सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ८०० योजन और सिद्धान्त शिरोमणिके अनुसार ७६०.५ योजन होता है (देखो मध्यमाधिकार पृ० ८१)। पिछले ग्रंथमें लिखा हुआ पृथ्वीका अर्द्धव्यास ग्रहकी दैनिक गतिका ठीक पन्द्रहवाँ भाग है। पहले ग्रंथके अनुसार भी ग्रहकी दैनिक गति पृथ्वीके अर्द्धव्यासके प्रायः १५ गुनेके समान है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिस समय ग्रह यथार्थ क्षितिजपर रहता है उस समय यह स्पष्ट क्षितिजसे अपनी दैनिक गतिके १५वें भागके समान नीचे रहता है। अर्थात् ग्रहका परम लंबन उसकी दैनिक गतिके १५वें भागके समान होता है। एक दिन ६० घड़ीके समान होता है इसलिए ६० घड़ीमें जो गति होती है उसका पन्द्रहवाँ भाग चार घड़ीकी गतिके समान हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रह चार घड़ीमें जितना चलता है उतना ही उसका परम लंबन (कलाओंमें) होता है। समयकी इकाइयोंमें ग्रहका परमलंबन ४ घड़ीके समान होता है।

यदि ग ग्रहकी दैनिक कोणात्मक गति, य उसकी दैनिक योजनात्मक गति ल परमलंबन क पृथ्वीसे ग्रह कक्षाकी दूरी और त्र पृथ्वीका अर्द्धव्यास हो तो ऊपर लिखी बातें इस प्रकार भी प्रकट की जा सकती है :—

$$ल = \frac{ग}{१५} = \frac{य}{१५क} = \frac{त्र}{क}$$

क्योंकि यदि ग्रह बहुत दूर हो तो उसकी दैनिक योजनात्मक गतिको अर्थात् १ दिनमें ग्रह अपनी कक्षाका जितना धनु (arc) चलता है उसको कक्षाके अर्द्धव्याससे भाग देनेपर उसकी दैनिक कोणात्मक गति ज्ञात होती है इसलिए $ग = \frac{य}{क}$। परन्तु यको १५ से भाग देनेपर जो आता है वह पृथ्वीके अर्द्धव्यासके समान होता है इसलिए $\frac{य}{१५} = त्र$।

इससे सिद्ध हुआ कि हमारे आचार्योंने परम लंबनका परिमाण जाननेके लिये जो नियम बनाये थे वह आजकलके बनाये नियमसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं (देखो पृ० १५१)। परंतु इसमें भूल यह थी कि ग्रहकी योजनात्मक गति समान नहीं है जैसा कि आजकलके वेधोंसे सिद्ध होता है इसलिए हमारे आचार्योंके बताये हुए नियमसे परमलंबनको जो मान आते हैं वे आजकलके वेधों द्वारा आये हुए परमलंबनोंसे बहुत भिन्न हैं। नीचेकी तुलनात्मक सारिणीसे यह बात स्पष्ट हो जायगी :—

ग्रह	भास्कराचार्यके अनुसार मध्यम परम लम्बन	आजकलके वेधोंसे प्राप्त परम लम्बन		आजकलके वेधोंसे प्राप्त स्पष्ट बिम्ब	
		लघुतम	महत्तम	लघुतम	महत्तम
	विकला	विकला	विकला	विकला	विकला
सूर्य	२१६.५	८.७	९.०	१८९०	१९५६
चंद्रमा	३१६२.३	३१८६	३७.२०	१७४०	२०२८
मङ्गल	१२५.७	३.५	१६.६	४.४	२१.२
बुध	९८२.१	६.४	१४.४	४.८	१०.६
गुरु	२०.०	१.४	२.१	३१.६	४६.७
शुक्र	३८४.५	५.०	३१.४	९.६	६०.०
शनि	८.०	०.८	१.०	१५.८	१९.५

अब यह बतलाना आवश्यक है कि हमारे आचार्य ग्रहका परम लंबन जानकर उसका स्पष्ट भोगांश लंबन और शर लंबन अथवा नति कैसे जानते थे। भास्कराचार्य जी लिखते हैं कि (१) जिस समय ग्रह ख स्वस्तिकपर रहता है उस समय उसमें किसी प्रकारका लम्बन नहीं होता क्योंकि पृथ्वीके केन्द्रसे और द्रष्टासे ग्रहतक खींची गयी रेखाएं एक* ही होती हैं। (२) जिस समय ग्रह त्रिभोन लग्नपर होता है अर्थात् जिस समय ग्रह क्रान्ति वृत्तके उस बिंदुपर होता है जो उदय लग्नसे तीन राशि कम होता है तब ग्रहमें भोगांश लंबन नहीं होता केवल नति होती है। (३) जिस समय क्रान्ति वृत्त ख स्वस्तिकसे होता हुआ ऊर्ध्ववृत्त बनाता है और ग्रह क्रान्ति-वृत्तपर होता है उस समय उसमें शरलंबन नहीं होता केवल भोगांश लंबन होता है। अन्य दशाओंमें लंबन और नति क्या होती है यह जाननेके नियम बतलाये गये हैं।

पृष्ठ १८१ में बतलाया गया है कि किसी समयका भोगांश लंबन जाननेके लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि उस समयके त्रिभोन लग्नका नतांश या उन्नतांश क्या है क्योंकि त्रिभोन लग्नके उन्नतांशकी ज्या सूत्र (ख) का एक अंग है। त्रिभोन लग्नके नतांशकी ज्याको दृक्क्षेप और उन्नतांशकी ज्या-को अथवा नतांशकी कोटिज्याको दृग्गति कहा गया है। चि० ७९ में दिखलाया गया है कि जब क्रान्तिवृत्तका उदय लग्न क्षितिजके पूर्व बिंदुके दक्खिन होता है तब त्रिभोन लग्न याम्योत्तरवृत्तसे पच्छिम होता है क्योंकि त्रिभोन लग्न उदय लग्नसे ३ राशि या ९० अंश कम होता है।

* इससे जान पड़ता है कि भास्कराचार्यने पृथ्वीको पूर्ण गोल माना था क्योंकि तभी यह बात ठीक होती है।

त्रिभोन लग्न ख स्वस्तिक और कदम्ब बिंदुओंसे जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त क्रान्तिवृत्तसे समकोण बनाता है और क्षितिजको फ बिंदुपर काटता है।

चित्र ७९
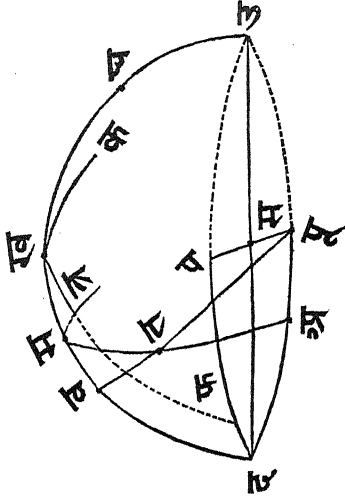
उ पू द फ=स स्थानका क्षितिज वृत्

उ ध ख म व द=स स्थानका याम्योत्तरवृत्त

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख=ख स्वस्तिक

म=मध्य लग्न

व पू=विषुवद्वृत

त्र म त अ=क्रांन्ति वृत्त

त्र=त्रिभोन लग्न

त=शरद सम्पात (सायन तुला)

क=कदम्ब

क ख त्र फ=त्रिभोन लग्नसे जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त

अ पू=उदय लग्नकी अग्रा

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ तै० उ०।३।५॥

भाग २२ | कुम्भ, संवत्, १९८२ | संख्या ५

शून्य समूहके तत्त्व
(ELEMENTS OF ZERO GROUP)

(ले० श्री सत्यप्रकाश, बी. एस. सी, विशारद)

अन्वेषणका इतिहास

मैण्डलीफ़ने जिस संविभागकी रचनाकी थी उसमें शून्य समूह न था। पर हेल (Helium) न्योन (neon), आर्गन (argon) कृप्तन (krypton), जीनन (Xenon) और नीटन (Niton) नामक तत्त्वोंके अन्वेषणसे एक नया शून्य समूह बनाना पड़ा। उपर्युक्त तत्त्वोंके अन्वेषणका इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक है। अतः यहां उसका वर्णन करना अनुपयुक्त न होगा।

सं० १८४२ वि०में कैवरिडश नामक वैज्ञानिकने वायुके विषयमें कुछ प्रयोग किये। उसने वायुको एक बड़े बन्द बर्तनमें लिया और विद्युतशक्तिसे नत्रस (nitrous) अम्ल उत्पन्न किया। साधारणतः वायुमें ओषजन और नत्रजन नामक दो तत्त्व माने आते हैं। इन दोनों तत्त्वोंके संयोगसे ही नत्रस-अम्ल बना। कैवरिडशने अपने प्रयोगमें एक बात देखी कि वायु का $\frac{1}{120}$ वाँ भाग बिना संयोगके शेष रह जाता है और बाकी सब भाग नत्रस अम्लमें परिणत हो जाता है। इस $\frac{1}{120}$ वें भागके रह जानेका क्या कारण है, इस ओर उसने कुछ ध्यान न दिया। इस प्रयोगके सौ वर्ष पश्चात् तक किसीने प्रयोगके उचित परिणाम निकालनेकी चेष्टा नहीं की।

सं० १९५१ वि० में लार्ड रेले नामक वैज्ञानिकने अनेक विधियोंसे नत्रजन उत्पन्न किया और

सब विधियों द्वारा जनित नत्रजनका घनत्व निकाला। यह गैस दो प्रकारसे प्राप्त हो सकती है, (१) रासायनिक प्रक्रियाओंसे और (२) वायुसे। दोनों विधियों द्वारा प्राप्त गैसका घनत्व परस्पर में भिन्न था। वायुसे जो नत्रजन मिला था वह रासायनिक विधियोंसे मिले हुए नत्रजनसे अधिक भारी था जैसा कि निम्न अंकोंसे प्रत्यक्ष है :—

१. रासायनिक विधि—

नत्रिक ओषिद्से प्राप्त	नत्रजनका एक बड़े गोले-में भार= २·३०००८ ग्राम	
नत्रस ओषिद ,,	,, = २·२९९०४	,,
अमोनियम नत्रित,,	,, = २·२९८६९	,,
	औसत = २·२९९२७	,,

२. वायुसे प्राप्त—

रक्त तप्त ताम्र द्वारा ,,	= २·३१०२६	,,
रक्त तप्त लोहस द्वारा ,,	= २·३१००३	,,
लोहस उद्-ओषिद द्वारा,,	= २·३१०२०	,,
औसत	= २·३१०१६	,,

दोनों औसतोंमें (२·३१०१६–२·२९९२७)= ०·०१०८९ ग्रामका अन्तर है। रैलेने यह भी दिखा दिया कि रासायनिक विधि द्वारा प्राप्त नत्रजनमें कोई उदजनके समान हलकी वस्तु भी विद्यमान नहीं है जिससे इसका भार हलका हो गया हो। अतः यही परिणाम निकाला जा सकता है कि वायुके नत्रजनमें कोई अन्य तत्त्व विद्यमान है। इस प्रकार यहाँसे हमारे पूर्ववर्त्ती विचारोंमें विकट परिवर्त्तन हुआ। लार्ड रैलेके इस प्रयोगसे पूर्व कोई भी व्यक्ति वायु प्रदत्त नत्रजनके एक रस होनेपर सन्देह नहीं करता था। इस प्रयोगने कैविण्डिशके परिणामोंका भी समर्थन कर दिया। वैज्ञानिकोंने उसके प्रयोगको विस्तारसे फिर दुहराया और बड़ी सावधानीसे वायुके संपूर्ण नत्रजन और ओषजनको पृथक कर लिया। ऐसा करनेपर उन्हें भी कुछ अवशिष्ट गैस मिली। इस गैसका रश्मिचित्रविश्लेषण किया गया जिससे यह सिद्ध हो गया कि यह अवशिष्ट पदार्थ नत्रजन अथवा कोई अन्य ज्ञात तत्त्व नहीं हो सकता है। इससे यह स्वाभाविक ही था कि यह कल्पना करली जाय कि वायुके नत्रजनमें कोई नया तत्त्व अवश्य विद्यमान है।

लार्ड रैलेको अब यह चिन्ता हुई कि कोई ऐसी युक्ति सोचनी चाहिये जिससे यह नया पदार्थ समुचित मात्रामें प्राप्त हो सके और इसके गुणोंकी परीक्षा की जा सके। सर विलियम रैमज़े और लार्ड रैलेने इस विषयपर, साथ साथ कार्य्य करना आरंभ किया। इसके लिए दो विधियाँ सोची गई—१. वायुके संपूर्ण नत्रजनको रक्त-तप्त (red hot) मग्न द्वारा अभिशोषित (absorb) कर लिया जाय। ऐसा करनेसे मग्न और नत्रजन द्वारा मग्न नत्रिद यौगिक बन जायगा। इसी प्रकार रक्त तप्त ताम्र द्वारा अभिशोषित करके ओषजनको भी पृथक कर लिया जाय। २. क्षारकी उपस्थितिमें नत्रजनको विद्युत-चिनगारी द्वारा ओषजनसे संयुक्त करके नत्रिकाम्लमें परिणत कर दिया जाय। इन दोनों युक्तियोंके सञ्चालनमें रैमज़े और रैलेको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इस नवीन पदार्थका वाष्प घनत्व २० था अतः इसका अणुभार ४० हुआ। भिन्न भिन्न प्रयोगोंसे यह भी सिद्ध कर दिया गया कि इस नवीन तत्वके अणुमें एकही परमाणु है अर्थात् यह एक अणुक है अतः इसका परमाणु भार भी ४० माना गया। यह तत्त्व किसी भी अन्य तत्त्वसे संयुक्त नहीं हो सकता है अतः इसका नाम आर्गन रक्खा गया। ग्रीक भाषामें आर्गस आलसीको कहते हैं। इसका आलसी होना इसके गुणोंसे प्रत्यक्ष ही है।

हेलकी खोज

सं० १९२५ वि० में भारतवर्षमें सूर्य्य ग्रहण पड़ा था। पूर्ण ग्रहणकी अवस्थामें इसके वर्ण मंडलका रश्मिविश्लेषण किया गया। ऐसा करनेपर एक पीली रेखा उपलब्ध हुई जो अभी-

तक पहले प्राप्त नहीं हुई थी। यह सोडियमकी ड-रेखा पर पूर्णतः पराच्छादित नहीं होती थी। जानसीन नामक वैज्ञानिकने इसका नाम ड₃ रक्खा। फ्रैंकलैण्ड और लौकयर महोदयने इस नवीन रेखासे यह अनुमान लगाया कि यह किसी ऐसे नवीन तत्वकी सूचक है जो पृथ्वीपर नहीं पाया जाता है प्रत्युत सूर्यमें अवश्य विद्यमान है। उन्होंने इसका नाम हेलियम या हेल रक्खा क्योंकि ग्रीक भाषामें हेलियस सूर्यको कहते हैं।

लौकयरके विचारानुसार यह तत्व भूमिपर दुष्प्राप्य समझा गया। पालमायरी नामक अन्वेषकके लेखोंसे यह प्रतीत होता है कि उसने ज्वालामुखी वेसूवियसके लावाके अन्वेषणमें इस तत्वकी विद्यमानता पायी थी। निसन्देह अब यह सिद्ध हो गया है कि उक्त ज्वालामुखीके सन्निकट हेल विद्यमान है, पर यह समझमें नहीं आता है कि पालमायरीने किस प्रयोगसे उसकी परीक्षा की थी। कदाचित उसे किसी अन्य पदार्थका भ्रम हो गया हो।

यह लिखा जा चुका है कि रैले और रैमज़ेने आर्गनकी खोजकी। अबतक इस तत्वका एक मात्र स्रोत वायुमंडल ही था। रैमज़े इस बातकी खोजमें था कि कदाचित् अन्य खनिज पदार्थोंमें यह तत्व विद्यमान हो। इस विचारसे उसने अनेक खनिजोंकी परीक्षाकी। उसने मायर्स नामक व्यक्तिके प्रस्तावपर सं० १६५२ वि० में क्लीवाइट या युरेनाइट नामक खनिज द्वारा जनित गैसकी परीक्षाकी ओर ध्यान दिया। सं० १६४७ वि० में हिल्लेब्राण्ड वैज्ञानिकने भी इस वायव्यका अनुशीलन किया था। यह नत्रजनके समान निश्चेष्ट पदार्थ था अतः उसने यही निश्चय किया कि यह नत्रजन ही है। यह ठीक है कि जिस समय वह प्रयोग कर रहा था उसने और उसके सहायकने हास्यमें यह कहा था कि कहीं यह कोई नया तत्व तो नहीं है। पर हास्यकी बात हास्य हीमें रह गई। उन्होंने इस ओर फिर कुछ ध्यान नहीं दिया। कौन जानता था कि जो बात हँसीमें कही जारही है वह भविष्यमें सत्य प्रमाणित होगी। अस्तु, हिल्लेब्राण्डने प्रयोगकी महत्ताको न समझकर अमूल्य अवसर खो दिया। उसने इस गैसका नत्रस ओषिद और अमोनिया बनाया। यह असंदिग्ध है कि नवीन गैसके साथ नत्रजन अवश्य विद्यमान था पर शुद्ध नत्रजन जिस शीघ्रतासे नत्रस ओषिद और अमोनिया बनाता है उतनी शीघ्रतासे इस नवीन गैस द्वारा उक्त पदार्थ नहीं बनते हैं। इससे यह सिद्ध ही है कि नवीन गैसमें नत्रजनके अतिरिक्त और कुछ मिला हुआ है। पर इस बातपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया।

अस्तु, मायर्सके प्रस्तावपर रैमज़ेने क्लीवाइट द्वारा प्रदत्त गैसकी परीक्षा प्रारम्भ की। उसने क्लीवाइटको हलके गन्धकाम्लसे शून्यमें गरम किया और सोडाके ऊपर जनित गैसको ओषजनसे विद्युत-चिनगारी द्वारा संयुक्त किया। इस प्रकार उक्त गैसका सम्पूर्ण नत्रजन पृथक हो गया। कुछ थोड़ासा ओषजन शेष रह गया। उसे क्षारीय परमाजूफलेत (pyrogallate) द्वारा अभिशोषित कर लिया गया। गैसको धोकर और पूर्णरूपसे सुखाकर अर्थात् इसके सम्पूर्ण जलकण पृथक करके उपलब्ध पदार्थके रश्मिचित्रकी परीक्षा की गई। इस समय रासायनिक जगत्में रश्मिचित्र परीक्षामें सर विलियम क्रूक्ससे बढ़कर कोई अधिक चतुर नहीं समझा जाता था अतः रैमज़ेने यह कार्य उन्हें ही सौंप दिया। प्रयोग करनेपर क्रूक्सको एक पीली रेखा मिली जिसकी स्थिति जानसीनकी ड₃-रेखासे पूर्णतः पराच्छादित होती थी। अतः सिद्ध हो गया कि क्लीवाइटकी गैसमें वही तत्व विद्यमान है जो सूर्य मण्डलमें पाया गया था। सर विलियम रैमज़ेके अविरत परिश्रमसे यह प्रमाणित हो गया कि हेल तत्व भूमण्डलमें भी प्राप्त हो सकता है। जो यशश्री हिल्लीब्राण्डको मिलने वाली थी वह अब रैमज़ेकी दासी होगई। वैज्ञानिक

जगत्‌में रैमज़ेकी अमिट कीर्त्ति सदाके लिए व्यापक हो गयी। यह सफलता सं० १६५२ वि० में प्राप्त हुई। इस तत्त्वका वाष्प घनत्व १·६६६ निकाला गया जिसके अनुसार इसका परिमाणु-भार ४ माना गया। यह तत्व भी एक अणुक है।

न्योन, कृप्तन और ज़ीनन

मैण्डलीफ़के आवर्त्त संविभागमें आर्गन और हेलके अन्वेषण होने पर एक नया समूह बनाया गया जिसका नाम शून्य समूह पड़ा। नये समूह बनानेके कारणोंपर हम आगे विचार करेंगे। परमाणु भारके अनुसार जब संविभागमें आर्गन और हेलको स्थान दे दिया गया तो उन दोनोंके बीचमें एक स्थान रिक्त रह गया जिससे यह स्पष्ट है कि इन दोनोंके बीचमें एक नवीन तत्व अवश्य स्थित है। जूलियस टामसन नामक वैज्ञानिकने संविभागके आवर्त्त नियमका प्रयोग करके सं० १६५२ वि० में अनुमान प्रकाशित किया कि इस शून्य समूहमें ६ तत्व होंगे जिनके परमाणुभार क्रमानुसार ४, २०, ३६, ८४, १३२ और २१२ होंगे।

रैमज़े और ट्रैवर्स वैज्ञानिक हेल और आर्गनके बीचके तत्त्व ढूँढनेमें संलग्न हुए, यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि हेल और आर्गन दोनों तत्व वायु मंडलमें विद्यमान हैं अतः यह भी सम्भव है कि इन दोनोंके बीचका तीसरा तत्त्व भी कदाचित् वायु से प्राप्त हो सके। यह कहा जा चुका है कि वायुमें नत्रजन और ओषजनके अभिशोषणके पश्चात् एक पदार्थ रह जाता है जिसे आर्गन माना गया था। यह कल्पना की जा सकती है कि यह पदार्थ शुद्ध आर्गन न हो और इसमें कोई दूसरा अन्य तत्त्व भी विद्यमान हो, इस कल्पनाका आश्रय लेकर रैमज़े और ट्रैवर्सने १८ लिटर आर्गन लिया और उसे द्रवीभूत किया। तत्पश्चात् क्षीण दबाव (reduced pressure) के आधारसे उसे विभाजित किया। इस प्रक्रियाको इस प्रकार समझा जा सकता है। कल्पना करो कि द्रवकी किसी तापक्रम त°शपर उबालने के लिए द१ दबावकी आवश्यकता पड़ती है। तथा किसी अन्य द्रव क२ को इसी तापक्रम त°शपर उबालनेके लिये द२ दबावकी आवश्यकता पड़ती है। मान लो कि द२ से द१ कम है। अतः जब दोनों द्रवों क१ और क२ को मिला दिया जाय और धीरे धीरे दबाव क्षीण (कम) किया जाय तो जब दबाव द२ पर पहुँचेगा तो क२ द्रव उबलने लगेगा और यह वाष्पीभूत हो जायगा। इसके वाष्पको पृथक किया जा सकता है। दबावको और कम करनेसे द१ के बराबर किया जा सकता है। द२ दबावपर क१ द्रव वाष्पीभूत नहीं हो रहा था। पर द१ पर क१ तत्व भी वाष्पीभूत होगा और अलग किया जा सकेगा। इस प्रकार वे पदार्थ जो भिन्न भिन्न दबावपर वाष्पीभूत होते हैं, उन्हें क्षीण दबावकी प्रक्रियासे पृथक किया जा सकता है।

द्रव आर्गनके विषयमें इसी सिद्धान्तका प्रयोग किया गया। यदि इसमें दो पदार्थ मिले हुए हैं तो दोनों भिन्न भिन्न दबावोंपर वाष्पभूत होंगे। इस प्रकार दबावको नियमित करनेसे उन दोनोंको पृथक किया जा सकता है। रैमज़े और ट्रैवर्सको इस विधिसे सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने द्रव आर्गनमेंसे एक नया तत्त्व पृथक् किया। इस नये तत्त्वका नाम न्योन रक्खा गया। न्योन शब्दका अर्थ 'नया' है। इसके रश्मि चित्र-परीक्षणने प्रमाणित कर दिया कि यह एक नया तत्त्व है। इसका वाष्प घनत्व १०·१ निकला जिसके अनुसार इसका परमाणु भार २०·२ माना गया।

वायु मंडलमेंसे आर्गन प्राप्त करनेके लिये रैमज़े और ट्रैवर्सनने बहुत सा वायु द्रवीभूत किया। और क्षीण दबावके आधारसे उसे विभाजित किया। इस प्रक्रियाके करनेपर एक और नया तत्त्व प्राप्त हुआ जिसका वाष्प घनत्व ४१·५०६ था, अतः इसका परमाणु भार ८३ माना गया। इसका नाम कृप्तन रक्खा गया। ग्रीकमें कृप्तोसका अर्थ छिपा हुआ है। यह तत्व वायुमें छिपा हुआ था

और कठिनतासे प्राप्त हुआ अतः यह नाम सर्वथा उपयुक्त है।

क्षीण दबावके अधारसे अवशिष्ट द्रव वायुमें-से एक नया तत्त्व जीनन प्राप्त हुआ जिसका घनत्व ६५·१ था अतः इसका परमाणुभार १३०·२ माना गया। लेडनवर्ग और कूज़ल वैज्ञानिकोंने द्रववायु-के ८५० लिटर वाष्पीभूत किये और सबसे अन्त-में वाष्पीभूत होनेवाले भागको सञ्चित किया। इसे फिर द्रवीभूत करके द्रववायुके तापक्रमतक ठण्डा किया। इसे पुनः वाष्पीभूत करके विभाजित किया। इस प्रकार उन्होंने ज़ीनन और कृप्तन दोनों तत्त्वोंको अलग कर लिया।

संविभागमें स्थान

इस प्रकार सं० १९५१ वि० से १९५५ वि० तक रैमज़ेके प्रयत्नसे पाँच नवीन तत्त्वोंका आवि-ष्कार हो गया। इन तत्वोंके नाम परमाणुभार और परमाणु संख्या निम्न अंकोंसे स्पष्ट हैं:—

सप्तम समूह	परमाणुभार	पर. सं०	शून्य समूह	परमाणुभार	पर. संख्या	प्रथम स०	परमाणुभार	पर. सं०
			हेल (हे)	४·००	२			
स्नव	१९	९	न्योन(न्यो)	२०·२	१०	सोडियम	२३	११
हरिन्	३५·४६	१७	आर्गन(आ)	३९·९	१८	पोटाशियम	३९·१	१९
ब्रम	७९·९२	३५	कृप्तन (कृ)	८२·९२	३६	रूपद्	८५·४५	३७
नैल	१२६·९२	५३	जीनन (जी)	१३०·२	५४	श्याम	१३२·८१	५५

इन अंकोंसे यह स्पष्ट है कि परमाणुभारों और परमाणु संख्याओंके विचारसे शून्य समूही तत्त्व सप्तम और प्रथम समूही तत्वोंके बीचमें पड़ते हैं। जिस समय रैले और रैमज़ेने आर्गन तत्त्व-का आविष्कार किया था उस समय यह प्रश्न बड़ा विकट उपस्थित हुआ था कि संविभागमें इसे कहांपर स्थान दिया जाय। आर्गनका परिमाणु-भार ३९·९ निकाला गया था। परमाणुभारका ध्यान रखनेपर आर्गन पोटाशियम (३९·१) और खटिक (४०·०७) के बीचमें रखना चाहिये था। पर ऐसा करनेमें दो आपत्तियाँ थीं। पहिली तो यह थी कि पोटाशियम और खटिकके बीचमें कोई स्थान ही रिक्त नहीं है। दूसरी आपत्ति यह थी कि इस नवीन तत्त्वके गुण न तो पोटाशियम-के समान थे, न खटिकके समान। यही नहीं, यह तत्त्व इतना निश्चेष्ट था कि किसी भी अन्य तत्त्वसे संयुक्त ही न होता था। उस समयतक जितने भी तत्त्व ज्ञात हुए थे, उन सबसे यह विल-क्षण था। ऐसी अवस्थामें मैण्डलीफ़के संवि-भागमें कहीं भी इसे स्थान नहीं दिया जा सकता था।

जिस समय आर्गन सम्बन्धी यह विकट प्रश्न उपस्थित हुआ था उसके कुछ समय पश्चात् ही हेल नामक तत्वका अन्वेषण घोषित किया गया। इसका परमाणु भार ४ निकला जिसके अनुसार इसे उद्जन (१·००८) और ग्राव (६·९४) के बीच में रखना पड़ेगा। इसमें यह स्पष्ट होगया कि प्रबल ऋणात्मक सप्तम समूह और प्रबल धनात्मक प्रथम समूहके बीचमें एक नया समूह अवश्य स्थित है जिसके तत्त्व न धनात्मक हैं और न ऋणा-त्मक, जिनकी संयोग शक्ति शून्य है और जो सर्वथा निश्चेष्ट हैं। आर्गन भी इसी समूहका व्यक्ति है। परमाणु भारकी उपेक्षा करके इसे अवश्य हेल समूहमें रखना चाहिये। ऐसे अपवाद कोबल्ट-निकल, और तेलुरियम-नैलमें विद्यमान थे ही। अतः ऐसा करना कुछ अस्वाभाविक नहीं है। इस प्रकार आर्गनको पोटाशियमके पूर्व शून्य समूहमें स्थान दिया गया। जब न्योन, कृप्तन तथा ज़ीननका आविष्कार हुआ तो शून्य समूहकी सत्यता सदा-के लिये प्रमाणित होगई।

रैमज़ेके समयमें परमाणुसंख्याका आवि-ष्कार नहीं हुआ था। पर जब मोसलेने इसका

उद्घाटन किया और हरिन् और पोटाशियमकी परमाणुसंख्या क्रमानुसार १७ और १६ निकाली गई, तो आर्गनकी स्थिति और भी दृढ़ हो गई और इसकी परमाणु संख्या १८ मानी गई। यहां यह कह देना चाहिये कि प्रयोग द्वारा परमाणु संख्या उन्हीं तत्वोंकी निकाली जा सकती है जो या तो स्वयं रवेदार ठोस हैं अथवा जिनके रवेदार ठोस यौगिक प्राप्त हो सकते हैं। पर शून्य समूही तत्व न तो रवेदार ठोस किये जा सकते हैं और न उनके कोई यौगिक मिलनेकी ही सम्भावना है। अतः इनकी परमाणु संख्या प्रयोग द्वारा नहीं निकाली जा सकती। इस विषयमें केवल अनुमानका ही आश्रय लेना पड़ता है।

वायुमें निश्चेष्ट तत्व

हम यह लिख आये हैं कि प्रथम समूही निश्चेष्ट तत्व वायुमें पाये जाते हैं। साधारणतया वायु मंडलमें चार पदार्थ अधिक मात्रामें पाये जाते हैं—नत्रजन, ओषजन, जलकण और कर्बनद्वि-ओषिद्। ये निश्चेष्ट तत्व वायुमें बहुत कम मात्रामें पाये जाते हैं जैसा कि निम्न अंकोंसे प्रकट है। इसमें वायुको जलकण और कर्बनद्विओषिद्से रहित मानकर गणना की गई है।

आर्गन—वायुके	१००	भाग में	०.६४१	भाग
न्योन	,,	५१०००	,,	१	,,
हेल	,,	१८५०००	,,	१	,,
क्रुप्तन	,,	२०,०००,०००	,,	१	,,
ज़ीनन	,,	१७०,०००,०००	,,	१	,,

इन अंकोंसे स्पष्ट है कि ये तत्व वायुमें कितने कम पाये जाते हैं। इसलिये इन तत्वोंको दुष्प्राप्य वायव्य भी कहा गया है। यह अवस्था देखते हुए हम सर विलियम रैमज़ेकी बुद्धिकी असीम चतुरताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। लोगोंका यह कहना सर्वांशतः शुद्ध है कि रैमज़ेके बराबर सावधानीसे कार्य करने वाला कोई भी वैज्ञानिक नहीं उत्पन्न हुआ है। उसकी कार्य कुशलता इस बातसे स्पष्ट है कि वह अत्यन्ततम न्यून-मात्राको लेकर सब प्रकारके प्रयोग जैसे घनत्व, परमाणुभार, आपेक्षिक ताप, द्रवांक, क्वथनांक, आदि सब कर सकता था।

सर विलियम रैमज़े (सं० १६०६-१६७३ वि०)

सर विलियम रैमज़े सं० १६०६ वि० में उत्पन्न हुआ था। उसने कभी यूनिवर्सिटी में रसायनशास्त्र नहीं पढ़ा। बाल्यकालमें नाव चलाने और ईंटे बनानेमें उसे आनन्द आता था। दिन भरमें चालीस चालीस मील तक पैदल सैर करता था। सं० १६२६ वि० में वह टेटलोक महोदयकी प्रयोग-शालामें सम्मिलित हुआ। दूसरे वर्ष एण्डरसन और लार्ड कैल्विनके वैज्ञानिक व्याख्यान सुने और कुछ दिन उसने बुन्सनकी प्रयोग शालामें कार्य किया। १६ वर्षकी आयुमें उसे पी. यच. डी. की उपाधि मिली। सं० १६३८ वि० में वह लंडन-की यूनिवर्सिटीमें रसायनका प्रोफ़ेसर बनाया गया। और रायल सोसायटीका फैलो निर्वाचित हुआ। सं० १६५१ वि० में उसने आर्गनका, १६५२ वि० में हेलका, सं० १६५५ वि०में न्योन, क्रुप्तन और ज़ीननका अन्वेषण किया। रैमज़े आइसलैण्ड गया और वहाँके निर्झरोंका जल लाया जिसमें उसे आर्गन प्राप्त हुआ। सं० १६५४ वि० में वह बृटिश असोसियेशन, टारंटो का सभापति नियुक्त हुआ। सं० १६५९ वि० की बात है कि भारतीय राज्यने रैमज़ेको इसलिये बुलवाया कि वह भारतमें भ्रमण करके एक ऐसा उपयुक्त स्थान नियुक्त करदे जहाँ जगत् प्रसिद्ध दानवीर जमशेद जी ताता द्वारा प्रदत्त दानसे कारख़ाना खोला जावे। रैमज़ेने बंगलोर स्थान इसके उपयुक्त समझा और वहाँ कारखानेका कार्य्य आरम्भ किया गया। सं० १६६१ वि० में वैज्ञानिक जगत्ने उसकी रासायनिक सेवाके उपहार रूप नोबल-पुरस्कार भेंट किया। सं० १६६६ वि० में व्यवहारिक रसायनकी अन्तर्जातीय महासभाका वह सभा-

पति बनाया गया। सं० १६५६ वि० में उसे 'सर' की उपाधि मिली थी। दस वर्ष हुए कि सं० १६७३ वि० में सर विलियम रैमज़ेका स्वर्गवास हो गया। यह उसकी संक्षिप्त जीवनी है। उसका नाम सदा चिरस्थायी रहेगा।

प्राप्ति स्थान

रैमज़ेने वायुसे ही अधिकतर ये तत्व प्राप्त किये थे। परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य भी ऐसे स्थान हैं जहाँ से ये तत्व उपलब्ध हो सकते हैं। बहुतसे निर्भर ऐसे पाये गए हैं जिनके जलमें ये तत्व अभिशोषित हैं। हेल बहुतसे झरनोंमें पाया गया है। इसके अतिरिक्त यह क्लीवाइट, मोनेज़ाइट थोरिएनाइट आदि खनिजोंमें भी व्यापक है। यह लिखा जा चुका है कि ये तत्व यौगिक नहीं बना सकते हैं। अतः खनिजों में ये यौगिक रूपमें नहीं मिलते हैं। खनिजोंके परमाणुओंके बीचके अवकाशमें ये अभिशोषित रहते हैं।

न्योन गरम निर्भरोंमें पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह उदजनसे भी प्राप्त हो सकता है। यह बात अभी पूर्ण रूपसे निश्चित नहीं है कि कृत्रिम साधनों द्वारा एक तत्व दूसरे तत्वमें परिणित हो सकता है या नहीं। रेडियो शक्तिक तत्वोंसे इतना तो स्पष्ट है कि स्वाभावतः एक रेडियोतत्वसे दूसरा तत्व उत्पन्न होता रहता है। केवल प्रश्न यह है तत्व-परिणनकी प्रक्रिया जिस प्रकार स्वाभावितः प्रकृतिमें होती रहती है उसी प्रकार क्या हम भी अपनी प्रयोगशालाओंमें एक तत्वसे दूसरा तत्व उत्पन्न कर सकते हैं।

अस्तु यह विषय विवादास्पद है। पर कौली और पेटरसनने उदजन और न्योन-परिणनके विषयमें कुछ मनोरञ्जक प्रयोग किये हैं। सं० १६७० वि० में उक्त दोनों महोदयने यह प्रकाशित किया कि जब शुद्ध खटिक-स्रविदपर ऋणध्रुवरश्मिसे आघात किया जाता है तो उदजन, ओषजन और कर्बन द्विओषिद् का मिश्रण प्राप्त होता है पर जब इनमें विद्युत् चिनगारियोंका संचार किया जाता है और अवशिष्ट पदार्थको कोयले और द्रव-वायु द्वारा अभिशोषित किया जाता है तो कुछ न्योनके चिह्न मिलते हैं। इस न्योनकी उत्पत्तिके विषयमें तीन बातें कहीं जा सकती हैं एक तो यह कि न्योन कहीं बाहरसे घुस आया होगा, दूसरी यह कि जिस यन्त्रमें प्रयोग किया गया था उसकी दीवारोंमें लगा होगा। तीसरी बात यह हो सकती है कि अन्दर ही उदजन आदि तत्वोंसे इसकी उत्पत्ति हुई होगी। इन प्रयोगोंको बड़ी सावधानी से दुहराया गया जिनसे यह अनुमान होता है कि उदजनसे ही न्योन बन गया है। इस विषय में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

आर्गन भी निर्भरोंके जलोंमें पाया गया है। यह पौधों और पशुओंमें भी शुद्धतासे पाया गया है। खनिजोंमेंसे भी इसकी प्राप्ति हो सकती है। यह कदाचित् हेलके समान रेडियमका अवयव-पदार्थ (disintegration product) हो सकता है। कारण यह है कि जिन खनिजोंमें रेडियम पाया जाता है उनमें आर्गन और हेलकी भी विद्यमानता बहुधा देखी गई है। इससे यह अनुमान होता है कि धीरे धीरे रेडियम अपनी शक्तिको क्षीण करके हेल और आर्गनमें परिणत होगया है। क्रुप्तन और ज़ीनन भी कुछ खनिजों और निर्भरोंमें पाया गया है।

तत्वोंका पृथक्करण और शुद्धिकरण

खनिज पदार्थोंमेंसे तथा वायुमेंसे दुष्प्राप्य वायव्योंके पृथक् करनेकी अनेक विधियाँ हैं। इनका अब हम सूक्ष्मतः वर्णन करेंगे। पहले हम यहां तीन सामान्य विधियोंका सारांशमें वर्णन करेंगे जिनके द्वारा पाँचों तत्वोंके मिश्रणमेंसे प्रत्येक वायव्य पृथक् किया जा सकता है।

पहली विधि—पांचों वायव्य, हेल न्योन, आर्गन, क्रुप्तन और ज़ीननके मिश्रणको द्रव क्षीण दबाव-

में उबलते हुए द्रव वायु द्वारा द्रवीभूत किया जाता है, इस प्रकार हेल, न्योन, आर्गन, क्रुप्तन और ज़ीनन द्रवीभूत हो जाते हैं और नत्रजन ओषजन आदि अलग हो जाते हैं। इनका फिर आंशिक-वाष्पीकरण (fractional distillation) किया जाता है। ऐसा करनेसे क्रुप्तन और ज़ीनन द्रवावस्थामें रह जाते हैं और हेल, आर्गन और न्योनका मिश्रण वाष्पीभूत हो जाता है। क्रुप्तन और ज़ीननका पुनः आंशिक वाष्पीकरण करके पृथककर लिया जाता है। हेल न्योन और आर्गनका मिश्रण फिर द्रवीभूत किया जाता है और साधारण दबाव-पर उबलते हुए द्रववायुके तापक्रमपर इसका फिर वाष्पीकरण किया जाता है। इस प्रकार आर्गन द्रवावस्थामें रह जाते हैं और हेल न्योनका मिश्रण वायव्य अवस्थामें रहता है। इस मिश्रणको उबलते हुए द्रव-उदजनके तापक्रमपर रक्खा जाता है। ऐसा करने से न्योन ठोस हो जाता और हेल वायव्य रूपमें पृथक् हो जाता है। निम्न सारिणी से यह विधि भली प्रकार स्पष्ट है।
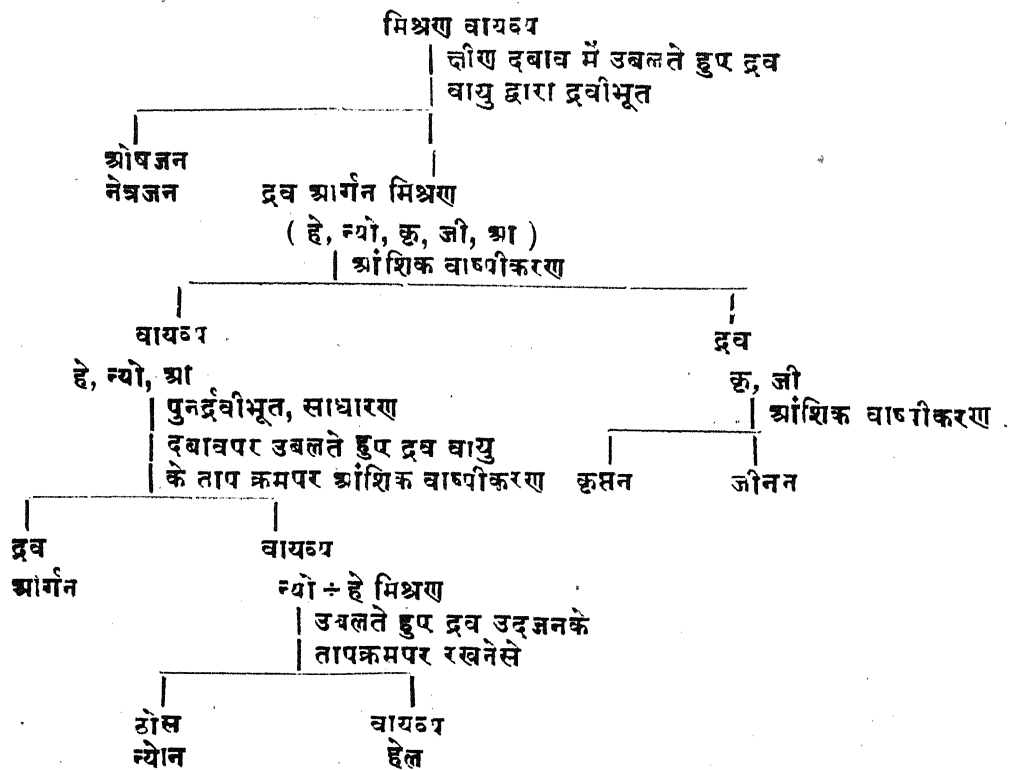
द्वितीय विधि—आर्गन, क्रुप्तन और ज़ीननके मिश्रणके विश्लेषण करनेमें यह विधि भी उपयोगी प्रमाणित हुई है। जलकण और कर्बन द्विओषिदसे रहित वायु उबलते हुए द्रववायुसे ठंडा किया जाता है। दबाव क्रुप्तनके वाष्प दबावसे कम रक्खा जाता है। ऐसा करनेसे क्रुप्तन, ज़ीनन और आर्गन द्रव अथवा ठोस अवस्थामें परिणत हो जाते हैं। इनका फिर आंशिक वाष्पीकरण करनेसे पहले आर्गन पृथक् होता है और क्रुप्तन और ज़ीननका मिश्रण रह जाता है। यह मिश्रण पहले १७ मिलीमीटर दबावपर रखा जाता है जिसपर क्रुप्तन पृथक् हो जाता है और

फिर ०·१७ मिलीमिटर दबावपर रखनेसे ज़ीनन पृथक् हो जाता है। इसे पृथक्-दबाव प्रक्रिया (partial pressure method) कहते हैं। निम्न सारिणी में यह विधि प्रकट की गई है।

तीसरी विधि—यह तीसरी विधि जिसका हम अब वर्णन करते हैं सबसे अधिक उपयोगी है। इस विधिमें गोला या गरीके कोयलेका विशेष उपयोग किया जाता है। इस पदार्थका महत्व इस बातमें है कि यह भिन्न भिन्न तापक्रमपर भिन्न भिन्न गैसोंको अभिशोषित कर सकता है। जब सब दुष्प्राय निश्चेष्ट गैसोंका मिश्रण—१००°श तापक्रमपर इस कोयलेके संसर्गमें लाया जाता है तो आर्गन क्रुप्तन, और ज़ीनन वायव्य तो पूर्णतः अभिशोषित हो जाते हैं। पर हेल और न्योनका अधिकांश भाग वायव्य रूपमें शेष रह जाता है। इस अवशिष्ट मिश्रणको पृथक् कर लिया जाता है। इस हेल-न्योन-मिश्रणको कोयलेके संसर्गमें द्रववायुके तापक्रमपर (—१८०°से—१९०° श) लाया जाता है जिसके प्रभावसे न्योन सम्पूर्णतः अभिशोषित हो जाता है और हेल वायव्य रूपमें पृथक् हो जाता है। जब कोयलेको सामान्य तापक्रम तक गरम करते हैं तो न्योन शुद्ध रूपमें उपलब्ध होता है।

यह लिखा जा चुका है कि–१००°श पर कोयलेने आर्गन, क्रुप्तन और ज़ीननको पूर्णतः अभिशोषित कर लिया था। इस कोयलेको दूसरे कोयलेके गोलेके संसर्गमें रक्खा जाता है। ऐसा करनेसे आर्गन दूसरे कोयलेके गोलेमें चला जाता है। इस कोयलेके गोलेको सामान्य तापक्रमतक गरम करनेसे शुद्ध आर्गन प्राप्त हो सकता है। पहले कोयलेमें क्रुप्तन और ज़ीननका मिश्रण रह जाता है। इसका—८०°श तक तापक्रम बढ़ानेसे कुछ क्रुप्तन प्राप्त हो सकता है। तापक्रमको और बढ़ानेसे क्रुप्तन और ज़ीननका मिश्रण मिलने लगता है। दोनोंके मिश्रणको फिर—१५०°श तापक्रमपर कोयलेके संसर्गमें लाया जाता है। फिर यह कोयलेका गोला दूसरे कोयलेके गोलेके संसर्गमें रख दिया जाता है जिसका तापक्रम —१८०°श होता है। ऐसा करनेसे क्रुप्तन दूसरे कोयलेमें चला जाता है और पहले कोयलेमें ज़ीनन रह जाता है। गरम करनेपर दोनों पृथक् २ शुद्धावस्थामें प्राप्त हो सकते हैं। सारिणी द्वारा यह विधि भी स्पष्ट की जा सकती है।
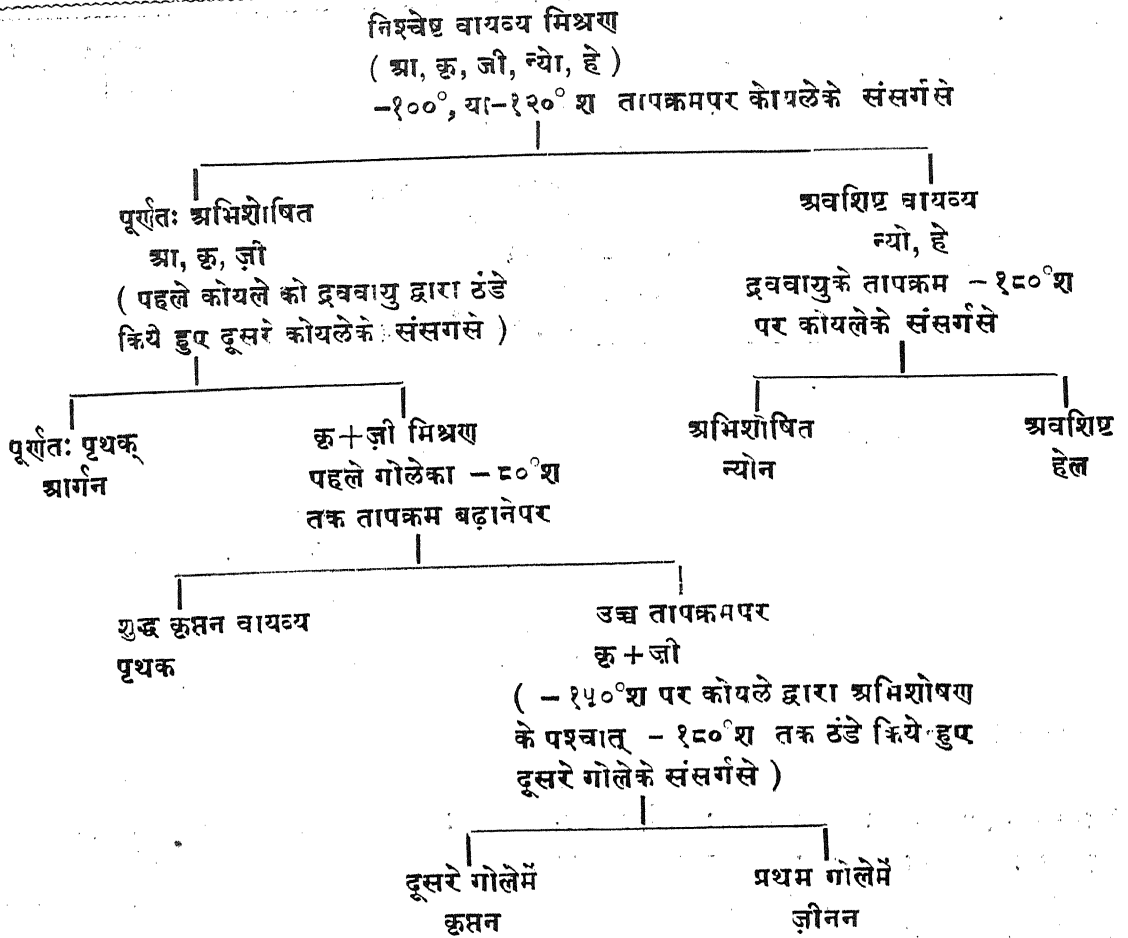
इन तीनों विधियोंके उपयोगसे ही हमको सम्पूर्ण निश्चेष्ट वायव्योंके उपलब्ध करनेके विधि ज्ञात हो सकती है। अब हम कुछ प्रयोगोंका वर्णन करेंगे जिनसे भिन्न भिन्न वायव्य उपलब्ध किये गये हैं।

हेलकी प्राप्ति

यह लिखा जा चुका है कि हेल क्लीवाइट आदि खनिजोंमेंसे भी उपलब्ध हो सकता है। इसकी बिधि दो प्रकारकी है। खनिजको या तो अकेले ही गरम किया जाता है या इसके साथ पोटाशियम-उदजन-गन्धेत मिलाकर गरम किया जाता है। इस प्रक्रियाके लिये काँचकी एक मोटी नलिका ली जाती है जिसमें खनिज रक्त-तप्त किया जाता है। इस नलिकाका अग्रिम भाग जल-प्रवाह द्वारा शीतल रखा जाता है। गरम होनेसे जो वायव्य पदार्थ उपलब्ध होते हैं उन्हें एक वायुशून्य नलिकामें ले जाया जाता है इस नलिकाका सम्बन्ध एक दबावमापक (manometer) से होता है और साथही साथ एक दूसरे बर्तनसे भी रहता है जिसमें कास्टिक पोटाश रहता है। पोटाश कर्बन द्विओषिदको अभिशोषित कर लेता है। इस बर्तनसे निकला हुआ हेल पारद-संचक (mercury reservoir) के ऊपर एकत्रित कर लिया जाता है।

खनिजसे हेल प्राप्त करनेकी दूसरी विधि साधारण है। एक बड़े काँचकी बोतल (flask) में थोड़ा सा खनिज रक्खा जाता है और लम्ब नलिका-कीप (thistle funnel) से बूंद बूंद करके हलका गन्धकाम्ल डाला जाता है। ऐसा करनेसे हेल गैस उत्पन्न होती है। यह निश्चय है कि इसके साथ उदजन, नत्रजन आदिकी अशुद्धियाँ भी विद्यमान रहती हैं। इन दोनों विधियोंमें यदि मोनोज़ाइट खनिजका उपयोग किया जाय तो निस्सन्देह शुद्ध हेल प्राप्त हो सकता है।

अशुद्ध हेलमेंसे शुद्ध हेलके पृथक करनेकी कई विधियाँ हैं। तप्त चूने तथा मग्नचूर्णके ऊपर यह अशुद्ध मिश्रण प्रवाहित किया जाता है। इसके उपरान्त रक्त तप्त लोहके ऊपर इसे प्रवाहित करते हैं। ऐसा करनेसे नत्रजन और उदजन उक्त पदार्थों द्वारा अभिशोषित हो जाते हैं। यदि हेलके साथ आर्गन भी विद्यमान हो तो क्षीण दबावमें उबलते हुए द्रव वायु-द्वारा शीतल करके आर्गन और नत्रजन पृथक किये जाते हैं। यदि न्योन भी विद्यमान हो तो 'प्रथम-विधि' के अनुसार इसे शुद्ध कर सकते हैं।

दूसरी विधि डीवार नामक वैज्ञानिककी निकाली हुई है जिसका हम तीसरी विधिके अन्तर्गत वर्णन कर आये हैं। गरीका कोयला द्रव-वायु-तापक्रमपर हेलके अतिरिक्त सम्पूर्ण वायव्योंका अभिशोषित कर लेता है। एक और विधि भी शुद्धिकरणके हेतु उपयुक्त प्रमाणित हुई है। महीन चूर्ण प्लाटिनम एक शून्य-नलिकाकी दीवारोंपर जमा किया जाता है और विद्युत प्रवाह संचालित किया जाता है। ऐसा करनेसे केवल हेलकी समुचित मात्रा दीवारोंमें अभिशोषित हो जाती है। अन्य वायव्य अभिशोषित नहीं होते। दीवारोंको गरम करनेसे स्वतन्त्र हेल पृथक हो जाता है। जेकुरेड और पेरटने भी एक ऐसीही विधि निकाली है। उसका सिद्धान्त यह है कि ११००° श तापक्रमपर द्रवित कार्ट्ज़ पत्थर हेल और उदजन द्वारा ही भेदनशील है अन्य द्वारा नहीं। इसके आधारपर एक कार्ट्ज़ पत्थरका एक गोला जिसे पम्प-द्वारा शून्य कर लिया गया है लिया जाता है। इस गोलेके चारों ओर एक दूसरी नलिका होती है जिसमें क्लीवाइटसे निकला हुआ वायव्य-मिश्रण रक्खा जाता है। कार्ट्ज़को उक्त तापक्रमतक गरम किया जाता है। इस तापक्रमपर उदजन और हेल कार्ट्ज़के गोलेमें चले जाते हैं तथा अन्य वायव्य बाहरकी नलिकामें शेष रह जाते हैं।

आर्गनकी प्राप्ति

हम आरम्भमें लिख आये हैं कि रैमज़े और रैलेने आर्गनकी प्राप्तिके लिये दो युक्तियाँ निकाली थीं। पहिली युक्तिमें वायुका नत्रजन रक्त-तप्त मग्न द्वारा अभिशोषित कर लिया जाता है। इसका प्रयोग इस प्रकार किया गया था। वायुसे प्राप्त नत्रजन-मिश्रण एक बड़े संचकमें रक्खा जाता है, जिसमेंसे इस मिश्रण-को कई अन्य-नलिकाओंमें ले जाया जाता है जहाँ यह ख़ुश्क हो जाता है। फिर तप्त ताम्र और ताम्र ओषिद मिश्रणपर प्रवाहित करनेसे इसमें ओषजन (जो नत्रजनके साथ कदाचित् वर्तमान हो) अभिशोषित हो जाता है। फिर वायव्य-मिश्रण सोडा चूर्ण (कास्टिक सोडा और चूनेका मिश्रण) पर प्रवाहित किया जाता है जिससे कर्बन द्विओषिद अभिशोषित हो जाता है। तदुपरान्त रक्त-तप्त मग्नके ऊपर प्रवाहित करनेसे मग्न-नत्रिद ($म_३न_२$) बन जाता है। इसके पश्चात् स्फुर पञ्चोषिद ($स्फु_२ओ_५$) द्वारा जलकण भी पृथक कर लिये जाते हैं। एक बड़े संचकमें आर्गन मिश्रण संकलित कर लिया जाता है। इस मिश्रणमें दुष्प्राप्य न्योन, हेल, कृप्तन आदि सभी विद्यमान रहते हैं। यदि शुद्ध आर्गन प्राप्त करना हो तो—'तत्वोंके शुद्धिकरण तथा पृथक्करण' शीर्षक पहली विधि-द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

दूसरी विधि यह थी। नत्रजनको विद्युत-शक्ति

द्वारा ओषजनसे संयुक्त किया जाता है और क्षारकी उपस्थितिमें नत्रिकाम्ल बना लिया जाता है। इस प्रयोगके लिये ५० लिटरका काँचका गोला लिया जाता है जिसमें आयतनसे ११ भाग ओषजन और ६ भाग वायु रक्खा जाता है। इसमें प्लाटिनमके भारी विद्युत्-ध्रुव (electrodes) लगे रहते हैं। ६००० से ८००० वोल्टकी विद्युत प्रवाहित की जाती है। और गोलेके अन्तरीय भागमें कास्टिक सोडाकी तीव्रधार छोड़ी जाती है। इस प्रकार एक अश्व-शक्ति (horse power) के व्ययसे एक घंटेमें २० लिटर वायव्य अभिशोषित हो जाता है। अवशिष्ट ओषजनको परमाजूफलोल और क्षार-द्वारा अभिशोषित कर लिया जाता है। यह विधि कैवण्डिश-की विधिका परिमार्जित रूप है।

आजकल व्यापारिक सफलताके लिये फिशर और रिङ्गेकी विधि कार्य्यमें लायी जाती है। वायु-को ६० भाग खटिक कर्बिद् और १० भाग खटिक हरिद्के मिश्रणमें प्रवाहित किया जाता है। यह प्रयोग लोहेके भपके (retort) में किया जाता है और तापक्रम ८००° का रहता है। नत्रजन खटिक श्यामेमाइद्में (cyanamide) परिणत हो जाता है, ओषजनका खटिक कर्बनेत बन जाता है :—

१. ख क$_2$ + न$_2$ = ख क न$_2$ + क
(खटिक श्यामेमाइद)

२. क + ओ$_2$ = क ओ$_2$
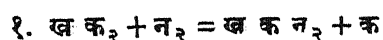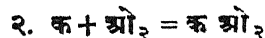
३. २ ख क$_2$ + ३ क ओ$_2$ = २ ख क ओ$_3$ + ५ क

समीकरण २ के साथ-साथ कर्बन-एक-ओषिद् भी बन जाता है :—क + ओ = क ओ। अवशिष्ट वायव्य और कर्बन-एक-ओषिद् ताम्रओषिद्पर प्रवाहित किये जाते हैं जिसमें कर्बन-एक-ओषिद्का कर्बन-द्विओषिद् बन जाता है, जिसे कास्टिक पोटाश अभिशोषित कर लेता है।

४. क ओ + ता ओ = क ओ$_2$ + ता
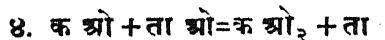
५. क ओ$_2$ + २ पो ओ उ = पो$_2$ क ओ$_3$ + उ$_2$ ओ

अवशिष्ट वायव्यको गन्धकाम्ल और स्फुर पञ्चोषिद्में प्रवाहित करके खुश्क किया जा सकता है। जलकण इनमें अभिशोषित हो जाते हैं। निम्न प्रकारसे यह विधि प्रदर्शितकी जा सकती है।
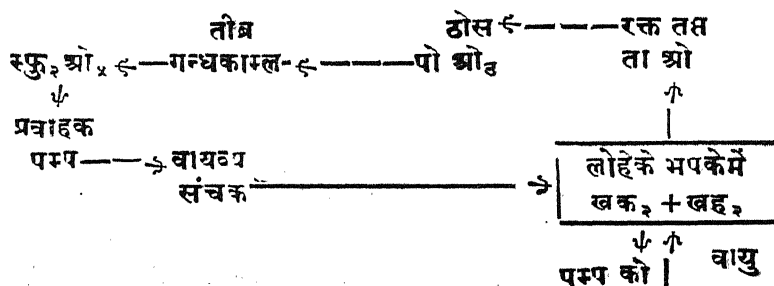
बाजारी ओषजनमें नत्रजन बहुतही कम होता है पर इसमें ३०°/ₒ आर्गन रहता है। तप्त ताम्रसे ओषजन और मग्नसे नत्रजन पृथक करके आर्गन मिश्रण प्राप्त हो सकता है। उपर्युक्त विधियोंसे प्राप्त आर्गनमें अन्य दुष्प्राप वायव्य भी होते हैं जिन्हें पूर्वोक्त-विधियोंसे पृथक किया जा सकता है।

वायव्यके भौतिक गुण

इन तत्त्वोंके भौतिक गुण प्रकट करनेके लिये यहाँ एक सारिणी दी जाती है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि इन गुणोंकी परीक्षा करनेके लिये बड़ा परिश्रम उठाना पड़ा था।

	हेल	न्योन	आर्गन	क्रुप्तन	ज़ीनन	नीटन
रंग, गन्ध, स्वाद	कोई नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
$\frac{ता_द}{ता_{आ}}$ =ग $\frac{Cp}{Cv}$	१·६५२	१·६४२	१·६५	१·६८९	१·६६६	—
घनत्व (ओ=१६)	१·९९९	१०·१	१९·९५	४१·५०६	६५·३५	१११·५
अणुभार=परमाणुभार	३·९९	२०·२	३९·९	८२·९२	१३०·२२	२२२·५
क्वथनांक	४·५° परमांश	२५° परमांश	८६° परमांश	१२२° परमांश	१६३°·९ परमांश	२११° परमांश
द्रवांक	—	–२५०° श ?	–१८९·६° श	–१६९° श	–१४०° श	–७१° श
दबावपन	± ०	–०·००१०५*	+०·००८१	+०·००२१०	+०·००६९०	—
०° श पर जलमें अभिशोषण-गुणक	०·००९६७	०·०११४	०·०५३	०·११०५	०·२४१	०·५१
०° श पर स्निग्धता श.ग्रा. से इकाई × १०⁵	१·८७९	२·९८१*	२·१०२	२·३३४	२·१०७	...
स्निग्धताका तापक्रम गुणक ब × १२⁵	२३२	२२१*	२८३	३०८	३३९	...

इन अंकोंसे यह स्पष्ट है कि तत्त्वोंके भौतिक गुणोंमें हेलसे नीटनतक उत्तरोत्तर परिवर्त्तन होता है। पर कुछ गुणोंमें, जैसे दबावपन और स्निग्धतामें न्योनकी स्थिति विलक्षण है। इसके कारण कुछ लोग इसे ख-समूही तत्व कहते हैं। जिस प्रकार अन्य १,२ आदि समूहोंमें एक क समूह है, और एक ख समूह है, और क-समूही तत्व ख-समूही तत्वोंसे भिन्न होते हैं उसी प्रकार यहां भी समझना चाहिये। ये तो इन तत्वोंके सामान्य गुण हुए। अब हम प्रत्येक तत्वके कुछ विशेष गुणोंका दिग्दर्शन करेंगे।

हेलके गुण

हेल हलका वायव्य है। एक लिटर हेलका भार सामान्य दबावपर ०·१७८५६ ग्राम होता है। बायलने गैसोंके सम्बन्धमें यह सिद्धान्त निश्चित किया था कि आदर्श गैसके दबाव और आयतनका गुणनफल सदा एक स्थिरमात्रा होती है अर्थात् द × आ=स्थिरमात्रा। हेल गैस इस नियमका पालन १४७ मि· मि. से ८३८ मि·मि· दबावके बीचमें करती है। इसी प्रकार ग्रेहम नामक वैज्ञानिकने वायव्यों-के विषयमें सं० १८९० वि० में यह सिद्धान्त निकाला था कि वायव्यके निस्सारण (diffusion) का वेग उसके घनत्वके वर्गमूलका व्युत्क्रम अनुपात होता है। अर्थात् यदि किसी गैसका घनत्व घ है तो

वेग= $\sqrt{\frac{१}{घ}}$ यह बात निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है।

वायव्य	घनत्व (वायु=१)	१/√घनत्व	निस्सारण वेग वायु=१
उदजन	०.०६६	३.७८	३.८३
नत्रजन	०.९७१	१.०१५	१.०१४
ओषजन	१.१०५६	०.९५	०.९५०
कर्बन द्विओषिद	१.५२९	०.८०६	०.८१२

पर यदि हेलके विषयमें प्रयोग किया जाय तो पता चलेगा कि यह वायव्य इस नियमका पालन नहीं करता है। इसके कारणका तो ठीक पता नहीं है, कदाचित् जिस समय यह वायव्य छोटेसे छेद द्वारा निस्सरित होता होगा तो स्वतंत्र विस्तारके कारण तापक्रम बढ़ जाता होगा। ऐसे प्रभावका नाम जूल-टामसन प्रभाव है क्योंकि उक्त दो महोदयने सबसे प्रथम ऐसे विषयोंका अध्ययन किया था। हेलका रश्मिचित्र भी बड़ा मिश्रित होता है जिसमें रेखाओं की ६ श्रेणियाँ होती हैं। ये श्रेणियाँ दो समूहोंमें विभक्त हैं, जिनमेंसे प्रत्येकमें एक प्रधान चटकीली श्रेणी है और दो अस्पष्ट सहायक श्रेणियाँ हैं। इनका विस्तृत वर्णन यहाँ देना संभव नहीं है। ज़ीमन-प्रभावका इसके विषयमें अध्ययन किया गया है। ज़ीमन-प्रभावसे तात्पर्य्य यह है कि जब रश्मिचित्रकी रेखाओंको चुम्बकके प्रभाव मण्डलमें रक्खा जाता है तो उनकी स्थिति परिवर्तित हो जाती है। यह गैस विपरीत-चुम्बकी (diamagnetic) है। उदजनके स्थानमें हेलका उपयोग गुब्बारोंमें किया जाने लगा है क्योंकि इस गैसमें आग लग जानेका कोई डर नहीं है।

न्योनके गुण

सामान्य गुणोंका वर्णन करते हुए यह कहा जाचुका है कि कुछ गुणोंमें न्योन अन्य दुष्प्राप्य वायव्योंके समान नहीं है। इसके रश्मिचित्रमें लाल और नारंगी प्रदेशोंमें रेखाएं हैं। इसके विषय का ज़ीमन-प्रभाव बड़ा क्लिष्ट है। जब किसी नलिका में यह गैस पारदके साथ मिलाई जाती है तो एक लाल चिनगारी दिखाई देती है जो १२० से २०० मि॰ मी. दबावतक उतनीही चमकीली रहती है जितनी सामान्य वायुमण्डलके दबावपर। ऐसी-ऐसी नलिकायें तैयार की गई है जिनमें किसी किसी स्थानपर तो प्रकाश प्रकट हो और किसी-पर नहीं। इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न स्थानोंमें नलिकायें भिन्न भिन्न मात्रातक गरम की गई हैं।

आर्गनके गुण

आर्गन भी ग्रेहमके वायु-निस्सारण-नियमका पालन नहीं करता है। इसके निस्सारणका वेग उक्त नियम द्वारा सूचित नियमसे अधिक है। यह भी विपरीत-चुम्बकी है। लोगोंने बहुत यत्न किया कि यह अन्य-तत्त्वोंसे संयुक्त हो जाय पर सभी प्रयोगोंमें असफलता प्राप्त हुई। मग्न, खटिक, भ्राव, खटिक-कर्बिद, ओषजन, कास्टिक पोटाश, ताम्र-ओषिद, तीतेनियम, युरेनियम, उदजन, हरिन्, गन्ध, स्फुर आदि अनेक तत्त्वोंके साथ संयुक्त करनेकी चेष्टा की गई पर आशाजनक सफलता नहीं प्राप्त हुई है। पारद भी ८००° श तापक्रम-पर एक अणुक हो जाता है और किसी भी तत्त्वसे संयुक्त नहीं हो सकता। अतः यह सम्भव हो सकता है कि तत्त्वोंकी निश्चेष्टताका तापक्रमसे कुछ सम्बन्ध हो। कुछ प्रयोग ऐसे किये गये हैं जिनसे अनुमान होता है कि आर्गन अवश्य कुछ यौगिक बनाता है। इस अनुमानकी सत्यताके विषयमें अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुमानकी सिद्धिमें ये प्रमाण रक्खे जाते हैं। (१) किसी शून्य-नलिकामें जब आर्गन भरा जाता है और प्लाटिनम या मग्नके विद्युत-ध्रुवके बीचमें

तीव्र विद्युतका सञ्चार किया जाता है तो गैसका रश्मि चित्र धीरे धीरे क्षीण होता जाता है और कुछ समयके उपरान्त सर्वथा नष्ट हो जाता है। इससे यह अनुमान हो सकता है कि आर्गन प्लाटि-नम या मग्नके साथ संयुक्त हो गया है। (२) कुक-का कथन है कि यशदका वाष्प-घनत्व आर्गनमें नत्रजनकी अपेक्षा १२% अधिक है। इसका कारण सम्भवतः यह हो कि आर्गन यशदसे संयुक्त हो गया है। (३) बरथेलोने आर्गन और कुछ आंगिक बानजावीन (organic benzene) यौगिकों-के मिश्रणमें धीमा विद्युत संचार (silent disch-arge) किया। ऐसा करनेपर कुछ आर्गन आंगिक यौगिकों द्वारा अभिशोषित हो गया। अस्तु, इन प्रयोगोंकी उपयोगिताके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता।

कृप्तन और ज़ीननके गुण

विद्युत संचार करनेपर कृप्तन पीली-बैंगनी रोशनी देता है। इसका रश्मि चित्र विद्युत संचार की अवस्था पर निर्भर है। रश्मि-चित्र की कुछ रेखायें 'ओरोरा, बोरियेलिस' (मेरु ज्योति) की रेखाओंसे मिलती जुलती हैं।

ज़ीनन गैस पानीमें समुचित मात्रामें घुलन-शील है। हेल और न्योनके समान इसके भी दो रश्मि-चित्र होते हैं। ज़ीमन-प्रभाव भी देखा गया है।

द्रवी-करण

इन दुष्प्राप्य वायव्योंके द्रवीकरणका अधि-कांश श्रेय केमरलिंघ ओन्सका है। ओन्स महो-दयने मोनेज़ाइट रेणुकासे हेल उपलब्ध किया और डीवारकी प्रक्रियासे कोयले द्वारा इसे शुद्ध किया। तदुपरान्त गैस एक यंत्रमें प्रवाहित की जाती है जहां यह द्रव-वायुके तापक्रमतक ठण्डी की जाती है। और तत्पश्चात् ६० मि-मी. दबावमें उबलते हुए द्रव उदजन द्वारा इसका ताप-क्रम १५° परमांश कर लिया जाता है। फिर यह गैस हैम्पसनके यन्त्र विशेषमें प्रवाहित की जाती है। इस प्रकार तीन घंटेमें ३०० लिटर गैससे ६० घन. श. द्रव हेल प्राप्त हो जाता है। इसका घनत्व ०·१५४ है। यह रंगरहित पदार्थ है। इससे अधिक हलका कोई द्रव या ठोस नहीं पाया गया है। कथनांक ४·३ परमांश है। क्षीण-दबावमें उब-लनेसे इसका तापक्रम ०·८२° परमांशतक गिर जाता है तिसपर भी यह द्रवही बना रहता है। इस तापक्रमपर धातुओंकी विद्युत् बाधा बिलकुल नष्ट हो जाती है और जनित विद्युत् धारा कई दिनों तक बराबर चल सकती है। इसका विपुल (critical) तापक्रम—२६७·८४° है और विपुल दबाव २·२६ वायुमण्डल है।

द्रव उदजनके उबलते हुए तापक्रमपर सामान्य दबावसे न्योन द्रवीभूत हो सकता है। इसका विपुल तापक्रम—२२८·७१° है और विपुल दबाव २६·८६ वायुमण्डल है। आर्गन द्रवीभूत भी हो सकता है और ठोस भी। इस कार्य्यमें कुछ सरलता इसलिये होती है कि इसका द्रवांक और क्वथनांक ताज़ा बनाये हुये द्रववायु और कुछ समय रक्खे हुए द्रव-वायुके बीचमें है। द्रवआर्गन रंग रहित पारदर्शक है कथनांक (–१८६° श) पर इसका घनत्व १·४०४६ है। कृप्तन उबलते हुए द्रव-वायुके तापक्रमके ऊपरही द्रवीभूत हो जाता है। द्रव-वायुमें ठण्डा करनेसे यह ठोस भी हो सकता है।

परमाणु भार

अब तक हमने इन वायव्य तत्वोंके गुण आदि-का वर्णन किया है। यह भी कहा जा चुका है कि ये तत्व अन्य तत्वोंके साथ यौगिक बनानेमें अस-मर्थ हैं। अतः इन तत्वोंका परमाणुभार निकालना अत्यन्त कठिन है। वाष्पघनत्व तो साधारण रीतिसे निकालाही जा सकता है। यदि हमको यह ज्ञान हो जाय कि इसके एक अणुमें कितने पर-माणु हैं तो परमाणुभार निकाल लिया जायगा।

प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि ये तत्व एक परमाणुक हैं अर्थात् इनके एक अणुमें एकही परमाणु है। अतः जितना अणुभार होगा

उतनाही परमाणु-भार भी होगा। एक परमाणुकता की सिद्धिके पूर्व निम्न बातें समझ लेनी उचित हैं:—

यदि १ ग्राम अणु वायव्यका तापक्रम आयतनको स्थिर रखते हुए त° परमांश से (त+१)° परमांश कर दिया जाता है तो जो ताप अभिशोषित होता है उसे स्थिर आयतन का अणुताप कहते हैं। इसे $ता'_{आ}$ से सूचित कर सकते हैं। यदि वायव्यका अणुभार भ हो और स्थिर आयतन पर आपेक्षिक ताप $ता_{आ}$ हो तो $ता_{आ}$=भ $ता_{आ}$ जब वायव्य १ वायुमण्डलके स्थिर दबाव पर गरमकी जाती है तो यह बढ़ती है और वायुमंडलके दबावके विपरीत कुछ कार्य्य करती है। ऐसा करनेमें जो ताप अभिशोषित होता है उसे स्थिर दबाव का अणुताप कहते हैं। इसे $ता'_{द}$ से सूचित करने पर और $ता_{द}$ को स्थित दबाव पर का आपेक्षक ताप मानने पर $ता'_{द}$= भ $ता_{द}$

यदि गैस आदर्श हो अर्थात् द×आ=र त नियमका पालन करती है तो केवल आयतनके परिवर्त्तनसे कुछ भी ताप अभिशोषित नहीं होगा अतः अणुतापों का अन्तर ($ता'_{द}$—$ता'_{आ}$) किये हुए वाह्यकार्य्य के बराबर होगा अर्थात् दबाव ×(आयतन की वृद्धि) के बराबर होगा।

$$\therefore ता'_{द} - ता'_{आ} = द(आ' - आ) = द आ\left(\frac{आ'}{आ} - १\right)$$

$$= द\ आ\left(\frac{त+१}{त} - १\right)$$

$$= द आ\left(\frac{त+१-त}{त}\right) = \frac{द\ आ}{त} = र = १{\cdot}९८७$$

ग्रामकलारी

र का मान अन्य विधियोंसे निकाला गया है। एक अणुक गैसमें अभिशोषिततापका कार्य केवल यही होता है कि अणुओंकी चलन शक्ति (kinetic energy of translation) बढ़ जाय। यह सिद्ध किया गया है कि १° तापक्रम वृद्धिसे $\frac{१}{त}\left(\frac{भ\ गु^२}{२}\right)$ शक्तिमें वृद्धि होती है। इसमें गुरुत्वा कर्षणका सूचक है। परन्तु द × आ=$\frac{१}{३}$भ $गु^२$

$$\therefore \frac{१}{त}\left(\frac{भ\ गु^२}{२}\right) = \frac{द\ आ}{त}\cdot\frac{३}{२} = \frac{३}{२} र = २{\cdot}९८१ \text{ ग्रामकलारी}$$

अतः एक अणुक गैसके लिए $ता'_{आ}$=२·९८१ ग्रा° कलारी, परन्तु $ता'_{द}$=$ता'_{आ}$+र=४·९६८ ग्रा°कलारी

अतः $\frac{ता'_{द}}{ता'_{आ}} = \frac{ता}{ता_{आ}} = \frac{४{\cdot}९६८}{२{\cdot}९८१} = १{\cdot}६६७$ $\frac{ता_{द}}{ता_{आ}}$ मानको बहुधा ग से सूचित करते हैं। एक अणुक गैसके लिए ग=१·६६७

हेल आर्गन आदिके विषयमें ग का मान अनेक विधियोंसे निकाला गया है। सबसे अच्छी विधि कुण्डट्की नली द्वारा निकालनेमें है। नलोमें गैस भरदी जाती है और ध्वनि तरंगोंकी परीक्षाकी जाती है। पर इसका वर्णन यहाँ देना सम्भव नहीं है। सब विधियोंसे ग का मान १·६के लगभग निकलता है जिससे सिद्ध है कि ये गैसें एक अणुक हैं। सर जेजे टामसनकी धनरश्मियों (positive rays) ने भी यही प्रमाणित किया है। ज़ीमन प्रभाव और तापचलन भी इसीका समर्थन करते हैं।

गत लेखमें समस्थानिकोंका वर्णन करते हुए कहा गया था कि तत्वोंके परमाणुभार भिन्न भिन्न हो सकते हैं। न्योनके दो समस्थानिक पाये गये हैं जिनके परमाणुभार क्रमशः २० और २२ हैं। आर्गनके दो समस्थानिकोंके परमाणुभार ४० और ३६ हैं। कृप्तनके ६ समस्थानिक हैं जिनके भार ८४, ८६, ८२, ८३, ८० और ७८ हैं। ज़ीननके ९ समस्थानिक हैं जिनके भार १२९, १३२, १३१ १३४, १३६, १२८, १३०, (१२६), और (१२४) हैं। अन्तिम दोका अस्तित्व संदेहात्मक है। इस विषय में जेजेटामसन और आस्टनका कार्य्य सराहनीय है। आर्गनके एक समस्थानिकका भार ३६ है जिसको देखते हुए संविभागमें इसकी अपवाद जनकस्थित दोष विहीन हो जाती है।

शून्य समूहका अन्तिम तत्व नीटन या रेडन है। इसका सम्बन्ध रेडियोशक्तिक तत्वोंसे ही अधिक है अतः इसका वर्णन फिर किया जायगा।

चलन समीकरण

[ले०—श्री अवध उपाध्याय]

(गतांक से आगे)

तृतीयाध्याय

प्रथम श्रेणी के समीकरण जिनका घात एकसे अधिक है।

इस अध्यायमें उन चलनसमीकरणोंका वर्णन होगा जिनके सब खण्डोंका घात एकही है और जिनका ऐसे खण्डोंमें विभाजित होना सर्वदा ही सम्भव है। इस अध्याय में $\frac{तर}{तय}$ के लिए प का प्रयोग किया जायगा।

कल्पना किया कि अभीष्ट समीकरण

$$प^{न}+प_{१}प^{न-१}+प_{२}प^{न-२}+\cdots प_{न-१}प+प_{न}=०\cdots(१)$$

यह स्मरण रखना चाहिए कि $प_{न}\cdots प_{१}, प_{२}$ आदि य और र के फल हैं और प से $प_{१}, प_{२}$ आदि भिन्न हैं।

प्रथम समीकरण दो भागोंमें विभक्त हो सकता है (१) प्रथम भाग में वे सब समीकरण आते हैं जिनके ऐसे सब खण्ड हैं जो सबके सब साधारण समीकरण हैं; अर्थात् सब खण्डोंका घात एकही होगा दो अथवा तीन नहीं।

(२) दूसरे भाग में सब समीकरण आते हैं जिनके सब खण्ड ऐसे नहीं होते।

(१)

कल्पना किया कि प्रथम समीकरणके सब खण्ड प्रथम घातके ही हैं। अतएव प्रथम समीकरण निम्नलिखित प्रकारसे लिखा जा सकता है:—

$$(प-क_{१})(प-क_{२})\cdots(प-क_{न})=०\cdots(२)$$

प्रथम समीकरणमें न खण्ड ही होंगे, अधिक अथवा कम नहीं क्योंकि उसका घात न है।

दूसरे समीकरणके प्रत्येक खण्डको शून्य मानकर उत्तर निकाला जा सकता है और यह उत्तर प्रथम समीकरणका भी उत्तर होगा।

$$प-क_{१}=०$$
$$प-क_{२}=०$$
$$प-क_{३}=०$$
$$\cdots\cdots\cdots$$
$$प-क_{न}=०$$

इस प्रकार कुल मिलाकर न समीकरण होंगे और उसी के अनुसार न उत्तर भी होंगे। यही सब प्रथम समीकरणके उत्तर होंगे।

कल्पना किया कि

$$फ_{१}(य, र, स_{१})=०$$
$$फ_{२}(य, र, स_{२})=०$$
$$फ_{३}(य, र, स_{३})=०$$
$$\cdots\cdots\cdots$$
$$फ_{न}(य, र, स_{न})=०$$

आदि उत्तर हैं।

ये सब उत्तर भिन्न भिन्न हैं। परन्तु सब मिलाए जा सकते हैं। और समीकरणमीमांसा जाननेवाले भली भांति समझ सकते हैं कि सब मिलकर उत्तर—

$$फ_{१}(य, र, स_{१})फ_{२}(य, र, स_{२})\cdots\cdots फ_{न}(य, र, स\ )=०$$

यह सिद्धान्त निम्नलिखित उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगा।

उदाहरण १—समीकरण $प^{३}+२यप^{२}-र^{२}प^{२}-२यर^{२}प=०$ को हल करो।

$$प^{३}+२यप^{२}-र^{२}प^{२}\ २यर^{२}प=०$$
$$\therefore प(प^{२}+२यप-र^{२}प-२यर^{२})=०$$
$$\therefore प(प^{२}+२य)(प-र^{२})=०$$

प्रथम समीकरण एक प्रकारका घनसमीकरण है। अतएव इसके तीन उत्तर अवश्य होंगे। प्रथम समीकरण तीन खण्डोंमें विभक्त हो गया है। प्रत्येक खण्डको शून्य मानकर उत्तर निकाल सकते हैं जैसा कि निम्नलिखित क्रियासे स्पष्ट है।

प्रथम खण्ड प है अतएव प को शून्य मानकर एक उत्तर आएगा।

$$प=०$$
$$\therefore \frac{तर}{तय}=०$$

$\therefore$ र=स

यही एक उत्तर हुआ

फिर कल्पना किया कि

प+२ य=०

$$\therefore \frac{त र}{त य} + २ य = ०$$

$$अथवा \quad \frac{त र}{त य} = -२य$$

$$त र = -२ य त य$$

$$\therefore \quad र = -य^{२} + स_{१}$$

$$\frac{त र}{त य} = र^{२}$$

$$\frac{त र}{र^{२}} = त य$$

$$अथवा -\frac{१}{र} = य + स_{२}$$

$$\therefore -१ = य र + स_{२} र$$

$$\therefore य र + स र + १ = ०$$

तीन उत्तर अलग अलग प्राप्त हो गए। इन तीनों को मिला कर एक उत्तर बना सकते हैं और वह उत्तर निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित किया जा सकता है।

$$(र-स)(र+य^{२}-स_{१})(यर+स_{२}र+१)=०$$

यही अभीष्ट उत्तर हुआ॥

उदाहरण २—समीकरण $\left(\frac{त र}{त य}\right)^{२} -$ अ $य^{३}=०$ को हलकरो।

$$\left(\frac{त र}{त य}\right)^{२} - अ य^{३} = ०$$

$$\therefore \frac{त र}{त य} = \pm अ^{\frac{१}{२}} य^{\frac{३}{२}}$$

$$अर्थात्\ त र = \pm अ^{\frac{१}{२}} य^{\frac{३}{२}} त य$$

$$र+स = \pm \tfrac{२}{५} अ^{\frac{१}{२}} य^{\frac{५}{२}}$$

$$(र+स)^{२} = \tfrac{४}{२५} अ य^{५}$$

$$अथवा\ २५ (र+स)^{२} = ४ अ य^{५} = ०$$

$$\therefore २५ (र+स)^{२} - ४ अ य^{५} = ०$$

उदाहरण ३—समीकरण $प^{३}$ (य+२र)+ ३ $प^{२}$ (य+र)+(र+२य) प=० हलकरो

$$प^{३}(य+२र)+३प^{२}(य+र)+(र+२य)प=०$$

$$प\{प^{२}(य+२र)+३प(य+र)+(र+२य)\}=०$$

$$\therefore प(प+१)\{(य+२र)प+२य+र\}=०$$

पहले मान लिया कि प=०

$$\frac{त र}{त य} = ०$$

$$\therefore र = स$$

फिर कल्पना किया कि प+१=०

$$\frac{त र}{त य} = -१$$

$$\therefore त र = -त य$$

$$अर्थात् \quad र = -य + स$$

$$\therefore \quad र + य = स$$

फिर मान लिया कि

$$(य+२र)प+२य+र=०$$

$$\therefore प = -\frac{+२य+र}{य+२र}$$

मान लिया कि र = व य

$$\therefore २य+र = २य+वय = य(२+व)$$

$$और\ य+२र = य+२वय = य(१+२व)$$

इन मानोंका तथा और सब मानोंका उत्थापन करनेसे

$$\therefore २(व^{२}+व+१)\ त य + (२व+१)\ त व = ०$$

$$अथवा \quad \frac{त य}{य} + \frac{१}{२} \frac{२व+१}{व^{२}+व+१} त व = ०$$

$$\therefore ल_{इ} य + ल_{इ} \sqrt{व^{२}+व+१} = ल_{इ} स^{\frac{१}{२}}$$

$$अथवा\ ल_{इ} (य^{२}+यर+र^{२})^{\frac{१}{२}} = ल_{इ} स^{\frac{१}{२}}$$

$$\therefore य^{२}+यर+र^{२} = स$$

$$\therefore (र-स)(र+य-स)(य^{२}+यर+र^{२}-स)=०$$

उदाहरण ४—$\left(\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right)^3 = \text{अ य}^4$ को हल करो।

$$\left(\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right)^3 = \text{अ य}^4$$

$$\therefore \frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{अ}^{\frac{1}{3}} \text{य}^{\frac{4}{3}}$$

$$\therefore \text{त र} = \text{अ}^{\frac{1}{3}} \text{य}^{\frac{4}{3}} \text{त य}$$

$$\text{र} + \text{स} = \tfrac{3}{7} \text{अ}^{\frac{1}{3}} \text{य}^{\frac{7}{3}}$$

अथवा $३४३\,(\text{र}+\text{स})^3 = २७\,\text{अ य}^7$

$$\therefore ३४३\,(\text{र}+\text{स})^3 - २७\,\text{अ य}^7 = ०$$

(२)

पहले ही कहा जा चुका है कि यह अध्याय दो खंडोंमें विभाजित हो सकता है। पहले खंडका वर्णन हो चुका। अब दूसरे खंडका वर्णन होगा॥ इस खंडमें उन समीकरणोंका वर्णन होगा जिनके खंड नहीं हो सकते।

कल्पना किया कि समीकरण फ (य, र, य) को हल करना है। अब इस प्रश्नकी कई दशाएँ हो सकती हैं।

प को य, और र के पदों में लिख सकते हैं और इस दशाका वर्णन हो चुका है अतएव इसका वर्णन अब नहीं किया जायगा।

(अ) समीकरण में र का मान निकल सकता है।

(ब)...............य..............................

(स) समीकरण में य न हो अथवा र न हो।

(द) समीकरण सवर्ण समघातिक हो सकता है।

(ई) य और र का घात एक हो सकता है।

(अ)

समीकरण मीमांसा जाननेवाले भली भाँति जानते हैं कि (अ) की दशा में समीकरण निम्न-लिखित प्रकार से प्रकाशित किया जा सकता है।

$$\text{र} = \text{फ}\,(\text{य}, \text{प})$$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालने से

$$\text{प} = \text{फा}\left(\text{य}, \text{प}, \frac{\text{त प}}{\text{त य}}\right)$$

अब जो समीकरण है वह सुगमतासे पहिले दिए हुए नियमोंकी सहायतासे हल किया जा सकता है। मान लिया कि उत्तर फि (य,प,स)=० है। अब इस फल और प्रथम दिए हुए समीकरणकी सहायता प का अपनयन संस्कार हो सकता है।

उदाहरण १—समीकरण $\text{य प}^2 - २\text{र प} + \text{अ य} = ०$ को हल करो $\text{य प}^2 - २\,\text{र प} + \text{अ य} = ०$ ···(१)

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालने से

$$२\,\text{य प}\,\frac{\text{त प}}{\text{त य}} + \text{प}^2 - २\,\text{प}^2 + \text{अ} = ०$$

$$\text{अथवा}\ \frac{\text{त प}}{\text{त य}}\,(२\,\text{प य} - २\,\text{र}) - \text{प}^2 + \text{अ} = ०$$

$$\text{अथवा}\ \frac{\text{त प}}{\text{त य}}\,(२\,\text{प}^2\,\text{य} - २\,\text{प र}) - \text{प}\,(\text{प}^2 - ०) = ० \quad \cdots\cdots\cdots(२)$$

प्रथम और द्वितीय समीकरणकी सहायतासे

$$\frac{\text{त प}}{\text{त य}}\,\text{य}\,(२\,\text{प}^2 - \text{प}^2 - \text{अ}) - \text{प}\,(\text{प}^2 - \text{अ}) = ०$$

$$\text{अथवा}\ \frac{\text{त प}}{\text{त य}}\,\text{य}\,(\text{प}^2 - \text{अ}) - \text{प}\,(\text{प}^2 - \text{अ}) = ०$$

$$\therefore (\text{प}^2 - \text{अ})\left(\frac{\text{त प}}{\text{त य}}\,\text{य} - \text{प}\right) = ०$$

$$\therefore \text{प}^2 - \text{अ} = ०$$

$$\text{अथवा}\ \frac{\text{त प}}{\text{त य}}\,\text{य} - \text{प} = ०$$

$$\text{यदि}\ \text{प}^2 - \text{अ} = ०$$

$$\text{तब}\ \text{प}^2 = \text{अ}$$

$$\therefore \text{प} = \text{अ}^{\frac{1}{2}}$$

$$\text{अथवा}\ \frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{अ}^{\frac{1}{2}}$$

$$\text{अथवा}\ \text{त र} = \text{अ}^{\frac{1}{2}}\,\text{त य}$$

$$\therefore \text{र} = \text{अ}^{\frac{1}{2}}\,\text{य} + \text{स}$$

$$यदि \frac{त प}{त य} य - प = ०$$

$$तब \frac{त प}{त य} = \frac{प}{य}$$

$$अथवा \frac{त प}{प} = \frac{त य}{य}$$

$$\therefore लइ प = लइ य$$

$$\therefore प = स य \cdots\cdots\cdots (३)$$

अब प्रथम और तृतीयकी सहायतासे

$$स^{२} य^{२} - २ स र य + अ य = ०$$

$$अथवा\ २ र = स य^{२} + \frac{अ}{स}$$

उदाहरण २—समीकरण र=य+अ स्परे$^{-१}$ प को हल करो।

$$र = य + अ\ स्परे^{-१}\ प \cdots\cdots (१)$$

$$\therefore प = १ + अ \frac{१}{१+प^{२}} \frac{त प}{त य}$$

$$अथवा \frac{अ त प}{त य} = (प - १)(प^{२} + १)$$

$$\therefore त य = \frac{अ त प}{(प-१)(प^{२}+१)}$$

$$= \frac{अ}{२} \left\{ \frac{१}{प-१} - \frac{१}{२} \frac{२ प}{प^{२}+१} - \frac{१}{१+प^{२}} \right\} त प$$

$$\therefore य + स = \frac{अ}{२} \{ लइ [(प-१)(प^{२}+१)] - स्परे^{-१} प \} \cdots\cdots (२)$$

अब प्रथम और इस समीकरणकी सहायतासे उत्तर सुगमतासे आ सकता है।

(ब)

अब उन समीकरणोंका वर्णन होगा जो निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित किए जा सकते हैं।

$$य = फ (र, प)$$

ऐसे समीकरणोंके हल करनेके लिए र के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालना चाहिए तब—

$$\frac{१}{प} = फा \left(र, प \frac{त प}{त र} \right)$$

और इस अन्तिम समीकरणकी सहायतासे प और र में सम्बन्ध मालूम हो सकता है और तब या तो प का अपनयन संस्कार हो सकता है अथवा य और र दोनों प के पदों में प्रकाशित किये जा सकते हैं। यह सिद्धान्त निम्नलिखित उदाहरणोंसे सिद्ध हो जायगा।

उदाहरण १—समीकरण य=र+प^{२} को हल करो।

$$य = र + प^{२} \cdots\cdots\cdots (१)$$

$$\therefore १ = प + २ प \frac{त प}{त य}$$

$$\therefore २ प \frac{त प}{त य} + प - १ = ०$$

$$\therefore त य = \frac{-२ प त प}{प - १}$$

$$= \left(\frac{-२ प + २ - २}{प - १} \right) त प$$

$$= - \left(\frac{२ प - २ + २}{प - १} \right) त प$$

$$= - \left(\frac{२ प - २}{प - १} \right) त प - २ \frac{त प}{प - १}$$

$$= - २ त प - २ \frac{२ त प}{प - १}$$

$$\therefore य = स - \{ २ प + २ लइ (प - १) \}$$

$$\therefore र = स - [प^{२} + २ प + लइ (प - १)]$$

उदाहरण २—समीकरण प^{२} र+२ प य=र को हल करो।

$$प^{२} र + २ प य - र = ० \cdots\cdots\cdots (१$$

र के अनुसार तत्कालिक सम्बन्ध निकालने से

$$प^{२} + २ प र \frac{त प}{त र} + २ प \frac{१}{प} + २ य \frac{त प}{त र} + १ = ०$$

$$\therefore (प^{२} + १) त र = - २ त प (प र + य) \cdots (२)$$

अब प्रथमं समीकरणको सहायतासे उत्थापन करनेसे

$$प (प^{२} + १) त र = - त प (प^{२} + १) र$$

$$\therefore प त र = - त प र$$

$\therefore -\frac{त\ र}{र} = \frac{त\ प}{प}$

$\therefore ल_{इ}\ प = ल_{इ} \frac{स}{र}$

$\therefore प = स\ र$

$\therefore र^{२} = २\ स\ य + स^{२}$

यही उत्तर हुआ

उदाहरण ३—समीकरण $य = र + अ\ ल_{इ} प$ को हल करो

$य = र + अ\ ल_{इ}\ प \cdots\cdots (१)$

$\therefore \frac{१}{प} = १ + \frac{अ}{प} \frac{त\ प}{त\ य}$

अथवा $त\ र = -अ \frac{त\ प}{प - १}$

$\therefore र = स - अ\ ल_{इ}\ (प - १)$

$\therefore य = स + अ\ ल \frac{प}{प - १}$

(स)

समीकरण जिसमें य न हो अथवा र नहो ॥

कल्पना किया कि समीकरण निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित किया जा सकता है।

$फ\ (र\ प) = ०$

साफ़ साफ़ मालूम हो जाता है कि यह समीकरण इस तरह $प = फा\ (र)$ भी प्रकाशित किया जा सकता है और तब उक्त नियमोंकी सहायतासे यह प्रश्न सुगमतासे हल हो जायगा।

निम्नलिखित प्रकारसे भी अभीष्ट समीकरण प्रकाशित किया जा सकता है।

$र = फि\ (प)$

इस समीकरणके हल करनेके नियमका वर्णन हो चुका है जब कि समीकरण इस प्रकार

$फी\ (य, प) = ०$

प्रकाशित किया जा सकता है

तब $प = फे\ (य)$

और अब यह समीकरण साधारण रीतिसे हल हो सकता है

जब $य = फै\ (य)$ तब समीकरण सुगमतासे हल हो जाता है ॥

यह सिद्धान्त निम्नलिखित उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगा।

उदाहरण १—समीकरण $र = २\ प + ३\ प^{२}$ को हल करो।

$र = २\ प + ३\ प^{२} \cdots\cdots\cdots (१)$

$प = २ \frac{त\ प}{त\ य} + ६\ प \frac{त\ प}{त\ य}$

अथवा $त\ य = २ \frac{त\ प}{प} + ६\ त\ प$

$\therefore य = २\ ल_{इ}\ य + ६\ प + स$

$= ल_{इ}\ प^{२} + ६\ प + स$

उदाहरण २—समीकरण $य\ (१ + प^{२}) = १$ को हल करो

$य\ (१ + प^{२}) = १$

$\therefore य + प^{२}\ य = १$

अथवा $प^{२} य = १ - य$

$\therefore \quad प^{२} = \frac{१ - य}{य}$

अथवा $प = \sqrt{\frac{१ - य}{य}} \cdots\cdots (१)$

कल्पना किया कि $य = कोज्या^{२} ष$

$\therefore त\ य = -२\ को\ ज्या\ ष\ ज्या\ ष\ त\ ष$

$ज्या^{२}\ ष = १ - कोज्या^{२}\ ष$

$= १ - य$

और $स्परे\ ष = \frac{ज्या\ ष}{को\ ज्या\ ष} = \sqrt{\frac{१ - य}{य}}$

$\therefore ष = स्परे^{-१} \sqrt{\frac{१ - य}{य}}$

प्रथम समीकरणसे $प = \sqrt{\frac{१ - य}{य}}$

$\frac{त\ र}{त\ य} = \sqrt{\frac{१ - य}{य}}$

$$त\,र = \frac{\sqrt{१-य}}{य}\,त\,य$$

$$र = \frac{\sqrt{१-य}}{य}\,त\,य$$

$$= \int \frac{-ज्या\,ष\;२\,कोज्या\,ष\,ज्या\,ष\;त\,ष}{को\,ज्या\,ष}\,त\,ष$$

$$= \int -२\,ज्या^{२}\,ष\;त\,ष$$

$$= \int (\,कोज्या२\,ष - १\,)\,त\,ष$$

$$= \frac{ज्या\,२\,ष}{२} - ष$$

$$= ज्या\,ष\;को\,ज्या\,ष - ष$$

$$= \sqrt{य\,(\,१-य)} - स्पर्रे^{-१}\sqrt{\frac{१-य}{य}}$$

सवर्ण समघातिक समीकरण ।

जब समीकरण सवर्ण समघातिक हो तब उसे निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित कर सकते हैं।

$$फ\left(\frac{त\,र}{त\,य}, \frac{र}{य}\right) = ०$$

अब इस समीकरणकी सहायता से $\frac{त\,र}{त\,य}$ का मान $\frac{र}{य}$ के पदोंमें अथवा $\frac{र}{य}$ का मान $\frac{त\,र}{त\,य}$ के पदोंमें ला सकते हैं और तब इसे उक्त नियमोंकी सहायतासे सुगमतासे हल कर सकते हैं।

उदाहरण १—समीकरण $र^{२} + यर\;प - य^{२}\,प^{२} = ०$ को हलकरो

$$र^{२} + यर\;प - य^{२}प^{२} = ०$$

$$\therefore \frac{र^{२}}{य^{२}} + \frac{र}{य}\,प - प^{२} = ०$$

$$\therefore \frac{र}{य} = \frac{-प \pm \sqrt{५}}{२}$$

$$= \frac{\sqrt{५}-१}{२}\,प$$

$$\therefore २\,र = य\,(\,\sqrt{५}-१\,)\,प$$

$$\therefore २\,प = (\,\sqrt{५}-१\,)\,प + (\,\sqrt{५}-१\,)\,य\frac{त\,प}{त\,य}$$

अथवा

$$(\sqrt{५}-३)प + (\sqrt{५}-१)\,य\,\frac{त\,प}{त\,य} = ०$$

$$अथवा\;\; \frac{त\,प}{प} + \frac{\sqrt{५}-३}{\sqrt{५}-१}\,\frac{त\,य}{य} = ०$$

$$ल_{इ}\,प + ल_{इ}\,\frac{य.\sqrt{५}-३}{\sqrt{५}-१} = ०$$

$$अथवा\;\; प\,य^{\frac{\sqrt{५}-३}{\sqrt{५}-१}} = स$$

इस मानका प्रथम समीकरणमें उत्थापन करनेसे

$$र^{२} + र\,स\,य^{\frac{२}{\sqrt{५}-१}} - स^{२}\,य^{\frac{४}{\sqrt{५}-१}} = ०$$

$$\therefore र^{२} + स\,र\,य^{\frac{२}{\sqrt{५}-१}} = स^{२}\,य^{\frac{४}{\sqrt{५}-१}}$$

उदाहरण २—समीकरण $र = र\,प^{२} + २\,प\,य$ को हल करो

$$र = र\,प^{२} + २\,प\,य \cdots\cdots (१)$$

$$\therefore र - र\,प^{२} = -२\,प\,य$$

$$\therefore र\,(\,१-प^{२}\,) = २\,प\,य$$

$$अथवा\; र = \frac{२\,प\,य}{१-प^{२}} \qquad \therefore प = \frac{२\,प}{१-प^{२}} + \frac{२\frac{त\,य}{त\,य}\left(१-प^{२}\right) + २\,प.\,२\,प\frac{त\,प}{त\,य}}{(\,१-प^{२}\,)^{२}}\,य$$

$$अथवा\; प - \frac{२\,प}{१-प^{२}} = प^{२}\,य \left\{\frac{१-प^{२}+२प^{२}}{(\,१-प^{२})^{२}}\right\}\frac{तप}{तय}$$

$$\therefore \frac{-\text{प}(\text{प}^२+१)}{१-\text{प}^२} = २\text{य}\frac{१+\text{प}^२}{(१-\text{प}^२)^२}\frac{\text{त प}}{\text{त य}}$$

$$\therefore -\text{प}(१-\text{प}^२) = २\text{य}\frac{\text{तप}}{\text{तय}}$$

$$\text{अथवा}\frac{२\,\text{त प}}{\text{प}(१-\text{प}^२)} + \frac{\text{त य}}{\text{य}}$$

$$\text{अथवा}\left(\frac{२}{\text{प}}+\frac{२\text{प}}{१-\text{प}^२}\right)\text{त प}+\frac{\text{त य}}{\text{य}} = ०$$

$$\text{लु}_\text{इ}\,\text{य} - \text{लु}_\text{इ}\,\text{प}^२ - \text{लु}_\text{इ}\,(१-\text{प}^२) = \text{लु}_\text{इ}\frac{\text{स}}{२}$$

$$\text{अथवा}\frac{\text{य प}^२}{१-\text{प}^२} = \frac{\text{स}}{२}\ldots\ldots\ldots(२)$$

$$\frac{१}{१-\text{प}^२} = १+\frac{\text{स}}{२\text{य}}$$

अब प्रथम और द्वितीयके मानका उत्थापन करनेसे

$$\text{र}^२ = \text{य}^२\frac{४\text{प}^२}{(१-\text{प}^२)^२}$$

$$= \text{य}^२.\ \frac{४\text{स}}{२\text{य}}\left(१+\frac{\text{स}}{२\text{य}}\right)$$

$$= २\text{स य}+\text{स}^२$$

$$\therefore \text{र}^२ = २\text{स य}+\text{स}^२$$

(द)

सवर्ण समघातिक समीकरण।

चलनसमीकरण सवर्ण समघातिक हो तो निम्नलिखित प्रकारसे प्रकाशित किया जा सकता है।

$$\text{फ}\left(\frac{\text{त र}}{\text{त य}},\ \frac{\text{र}}{\text{य}}\right) = ०$$

जब $\frac{\text{तर}}{\text{तय}}$ का मान मालूम हो जाय तब उक्त नियमोंकी सहायतासे उसे हल कर सकते हैं।

इसी प्रकार जब $\frac{\text{र}}{\text{य}}$ का मान मालूम हो सके

$$\frac{\text{र}}{\text{य}} = \text{फा}(\text{प})$$

$$\therefore \text{र} = \text{य फा}(\text{प})$$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$$\text{प} = \text{फा}(\text{प})+\text{य फा}'(\text{प})\frac{\text{त प}}{\text{त य}}$$

$$\therefore \frac{\text{तय}}{\text{य}} = \frac{\text{फा}'(\text{प})\,\text{त प}}{\text{प}-\text{फा}(\text{य})}$$

और तब यह सुगमतासे हल हो सकता है॥

(इ)

ऐसे समीकरण जिनमें य और र का घात एक हो—क्लेरो का समीकरण॥

ऐसे समीकरण कई भागोंमें विभाजित हो सकते हैं। जब य और र का मान मालूम हो जाय तब वह सुगमतासे हल हो सकता है जैसा पहले ही वर्णन हो गया है।

परन्तु जब समीकरण निम्नलिखित प्रकारसे लिखा जा सके तब उसे क्लेरो का समीकरण कहते हैं और वह बहुत ही प्रसिद्ध समीकरण है।

$$\text{र}=\text{प य}+\text{फ}(\text{प})$$

यही क्लेरो का (Clairaut's) समीकरण है

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$$\text{प}=\text{प}+\left\{\text{य}+\text{फ}'(\text{प})\right\}\frac{\text{त प}}{\text{त य}}$$

$$\therefore \text{य}+\text{फ}'(\text{प}) = ०$$

$$\text{अथवा}\ \frac{\text{त प}}{\text{त य}} = ०$$

$$\text{जब}\ \frac{\text{त प}}{\text{त य}} = ० \quad \text{तब प}=\text{स}$$

$$\text{और र}=\text{स य}+\text{फ}(\text{स})$$

जब $\text{य}+\text{फ}'(\text{प})=०$। इसका वर्णन आगे किया जायगा

उदाहरण—समीकरण $\text{र}=(१+\text{प})\,\text{य}+\text{प}^२$ को हल करो

$$\text{र}=(१+\text{प})\,\text{य}+\text{प}^२$$

$$\text{प}=१+\text{प}+(\text{य}+२\text{प})\frac{\text{त प}}{\text{त य}}$$

$$\therefore \frac{\text{तय}}{\text{तप}} + \text{य} = -२\text{प}$$

$$\therefore \text{य} = २(१-\text{प}) + \text{स}\,\text{इ}^{-\text{प}}$$

$$\therefore \text{र} = २ - \text{प}^{२} + (१+\text{प})\,\text{स}\,\text{इ}^{-\text{प}}$$

अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित समीकरणों को हल करो

१. $\text{प}^{२} + २\,\text{प}\,\text{य} = ०$

२. $\text{प}^{२} - \text{प}\,\text{र}^{२} = ०$

३. $\left(\frac{\text{तर}}{\text{तय}}\right)^{२} - \text{अ}\,\text{य}^{३} = ०$

४. $\text{प}^{२} - ७\,\text{प} + १२ = ०$

५. $\text{य}\,\text{प}^{२} - २\,\text{र}\,\text{प} + \text{अ}\,\text{य} = ०$

६. $\text{य} - \text{र} = \text{अ}\,\text{ल}_{\text{इ}}\,\text{प}$

७. $\text{प}^{२}\,\text{र} + २\,\text{प}\,\text{य} - \text{र} = ०$

८. $\text{र} = २\,\text{प} + ३\,\text{प}^{२}$

९. $\text{य}\,(१ + \text{प}^{२}) = १$

१०. $\text{र} = \text{र}\,\text{प}^{२} + २\,\text{प}\,\text{य}$

११. $\text{य} + \frac{\text{प}}{\sqrt{१+\text{प}^{२}}} = \text{अ}$

१२. $\text{र} - २\,\text{प}\,\text{य} = \text{फ}(\text{य}\,\text{प}^{२})$

१३. $\text{य}\,\text{र}\,\text{प}^{२} + \text{प}\,(३\,\text{य}^{२} - २\,\text{र}^{२}) - ६\,\text{य}\,\text{र} = ०$

१४. $\text{प}^{३} - ४\,\text{य}\,\text{र}\,\text{प} + ८\,\text{र}^{२} = ०$

१५. $\text{प}^{३} - (\text{य}^{२} + \text{य}\,\text{र} + \text{र}^{२})\,\text{प}^{२} + (\text{य}^{३}\,\text{र} + \text{य}^{२}\,\text{र}^{२} + \text{य}\,\text{र}^{३})\,\text{प} - \text{य}^{३}\,\text{र}^{३} = ०$

१६. $\text{र} = \text{प}.\text{य} + \frac{\text{प}}{\text{म}}$

मेरा-स्वप्न

[ले०—श्रीयुत चिरंजीलाल माथुर, बी० ए०, एल-टी]

न्दुओंका विश्वास है कि नारदादि मुनि अमर हैं और विचरते रहते हैं। आजकल भी मृत्यु लोकमें आकर तमाशा देख जाते हैं। थोड़ा समय हुआ कि एक दिन मैंने सायंकालके समय एक पण्डितसे इस विश्वासके सम्बन्धमें वार्त्ता की थी। उसी रात्रिको मुझे एक स्वप्न में मालुम हुआ कि मैं एक सघन बनमें घूम रहा हूं। वनमें विहार करते हुए मुझे मुनिके वेष में एक व्यक्ति मिले। मैंने प्रणाम किया। वार्त्ता हुई। और उन्होंने मुझे पात्र और अधिकारी समझ कर अपना नाम भी कृपाकर बतला दिया। वे नारद मुनि थे।

इधर उधरकी बहुतसी बातें होनेके अनन्तर नारदजीने कहा कि लो तुम्हें मैं एक दिनका वृतान्त सुनाता हूं, जब मुझसे और विष्णुसे भेंट हुई थी। मैंने कहा, 'अच्छा महाराज, सुनाइये'। नारदजी बोले कि एक दिन हम इस मृत्युलोककी सैर कर वैकुण्ठ लोकमें गये और विष्णुकी सभामें जाकर बैठे। यहाँका तमाशा देखकर हमारा चित्त ऐसा प्रभावित हो गया था कि हम सहसा विष्णुसे कह बैठे कि अब आप मृत्युलोककी मिलकियत—स्वामित्वसे हाथ धो बैठिये। जिस तरह मृत्युलोकके कई देश अपने शासकोंसे स्वतंत्र हो गये और जो शेष हैं वे स्वतंत्र होने का उद्योग कर रहे हैं। इसी प्रकार समस्त मृत्युलोक भी अब आपकी रक्षासे स्वतंत्र हुआ चाहता है। विष्णुने कहा, कि अच्छा मुनिजी, यदि मृत्यु-लोक स्वतंत्र हुआ चाहता है तो वहां के निवासियोंकी रक्षा कौन करेगा? मैं तो उनके भोजनके फल अन्नादि पैदा करता हूं यदि वे मुझसे सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे तो वे वस्तुयेँ कहांसे पावेंगे।

नारद—बस महाराज, बस, अब वह समय गया, जब 'ख़लील-ख़ां फ़ाख्ता उड़ाया करते थे' मृत्युलोकमें अब आपके भरोसे कोई नहीं है। पशु आदि तो भले ही हों। मनुष्य जाति तो नहीं है।

विष्णु—क्या मेरे उत्पन्न किये हुये फल वा अन्नसे मनुष्योंका पालन पोषण नहीं होता?

नारद—महाराज, आप कबकी बातें करते हैं? जब सभ्यता नहीं फैली थी तब ऐसा होता होगा। आपके पैदा किये हुये जंगलोंका तो अब पता भी नहीं। फल होते तो हैं परन्तु बगीचोंमें जोकि मनुष्यके लगाये हुए हैं। परन्तु स्मरण रखिये आपके बनाये फल भी मनुष्यको रुचिकर नहीं हैं। आपके बनाये हुओंको तो मनुष्य जंगली कहता है। उसने स्वयं कलमें लगा लगा कर विचित्र फल पैदा कर लिये हैं। बिला दानेका अनार आपने कब बनाया था। बेगुठलीकी जामुन आपने कब बनाई थी। अब देखिये मनुष्यने बना ली। बारबार क्रासिंग (crossing) करके कई फलोंको बेबीज बना लिया। वृक्ष किसी फलका है उसमें फल रहा है कोई फल। यही हाल फूलोंका है। आपने तो मामूली रंगोंके फूल पैदा किये थे। मनुष्यने एक फूलकी रज (pollen) दूसरेमें लेजाकर कई रंग एक ही फूलमें पैदा कर लिये। जानवरतक मनुष्यने नये बना लिये। आपने तो घोड़ा और गधा ही बनाये थे। उसने ख़च्चर बना लिया जो बड़ा मज़बूत होता है।

विष्णु—यह सब बातें मनुष्य मेरा बनाया हुआ अन्न खाकर ही तो करता है। यदि मेरा अन्न न मिले तो क्या करेगा?

नारद—नहीं महाराज, अब वह आपके अन्नके भरोसे नहीं है। आपने तो अन्न और फल मनुष्यके खानेके लिये बनाये होंगे। परन्तु उसे इनपर संतोष कहां है? वह जानवरोंका दूध खा जाता है—दूधवाले जानवरोंके बच्चोंको तो बांध देता है और उनके हिस्सेके दूधको डाका डालकर बलात्कार करके छीन लेता है। और इस डकैतीके मालको बड़े आनन्दके साथ खाता है। कहता है कि यह सात्विक भोजन है। भला लूटका माल सात्विक हो सकता है! इसपर भी तोष नहीं। जीवधारियोंका मांस भी खा जाता है। लोहे सोने आदिक भस्म बनाकर उनको भी चट कर जाता है। पत्थर भी खाजाता है, कहता है अबरक है। नजिस वस्तुयें भी खा जाता है। हरिणके पेटमें से रुधिरकी बनी हुई गांठ निकाल कर खा जाता है। जिसे वह अम्बर कहकर काम में लाता है वह भी एक अशुचि पदार्थ है।

विष्णु—फिर भी विशेष कर मेरे बनाये हुये अन्न व शर्करासे ही उसका पालन होता है।

नारद—इस भरोसे मत रहना। अभी एक मनुष्यने जिसका नाम Daniel Berthelot है और जो फ्रांसका निवासी है, आपका स्टार्च (मैदा) और शर्करा भी बना ली है। उसने दो प्रकारकी गैस hydrogen and carbonic acid gas नलों द्वारा एक हौज़में पहुँचाकर इनके ऊपर ultra violet light एक प्रकार का प्रकाश डालकर मैदा वा शर्करा बना ली है। आपको देखना हो तो फ्रांसमें पेरिसके निकट Neudon न्यूडनकी प्रयोगशालामें जाकर देख लीजिये। अब खाद्य पदार्थोंके लिये खेतोंमें नहीं जाना होगा। प्रयोग शालासे शीघ्र ही कारखानोंमें अन्न बनने लगेगा।

विष्णु—तो जीवन-शक्ति तो आखिर मैं ही दूंगा।

नारद—इसका भी उपाय हो रहा है। अब थोड़ी ही कसर है। यह अधिकार भी आपसे छिनने ही वाला है। मनुष्य इसका भी उद्योग कर रहा है।

विष्णु—अच्छा नारद, तुमने कहा प्रकाश डालकर स्टार्च व शर्करा पैदा कर लेता है तो प्रकाश तो मेरे ही सूर्य्यसे मनुष्य लेगा।

नारद—कहां भूले हो, सूर्य्य और चन्द्रमाके प्रकाशपर तो मनुष्य तब निर्भर थे जब मृत्युलोक असभ्य था। फिर तैलसे प्रकाश लेने लगे। अब तो बिजलीकी ज्योति ऐसी प्रखर होती है कि आपका सूर्य्य उसके सामने झेंपता है। कुछ ख़बर भी है आपके अग्नि देव, वरुणदेव, वायुदेव

अब सेवकका काम करते हैं। पहिले पानीमें डूबनेसे मनुष्य डरता था। अब तो न केवल जलके ऊपर यात्रा करता है किन्तु पनडुब्बी नौका torpedo boats ऐसी बनाली है कि बतखकी तरह डुबकी लगाकर फिर निकल आती है। हवामें पक्षी भी उतनी ऊँचे और उतनी दूर नहीं जा सकता जितना मनुष्य चीलगाड़ीमें चला जाता है।

विष्णु—तो मनुष्य प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन कर रहा है। बच्चा है, ऐसा ही करने दो। जब मैं देखूंगा कि सीमाके बाहर जाता है तो एक चपत लगाकर ठीक कर दूंगा। मैंने जब सृष्टिकी रचना की थी तो अन्य जीवोंके अतिरिक्त मनुष्यको भी बनाया था और इस जीवमें बुद्धिकी विशेषता रख दी थी। इससे मेरा आशय यह था कि यह बुद्धिके द्वारा मुझे पहिचाने। अब तुम्हारे शब्दोंसे ज्ञात हुआ कि वह उसका दुरुपयोग कर रहा है। मालूम तो मुझे था किन्तु छोटी छोटी बातोंपर मैं दृष्टि नहीं देता।

नारद—महाराज, दुरुपयोग तो यह बहुत करता है। आपने पदार्थोंमें जो गुण रक्खे हैं उनका अभिप्राय तो कुछ और ही है किन्तु मनुष्य उनको किसी और कार्यमें लाते हैं। यह आपसे ही स्वतंत्र नहीं हो रहा महेशका कार्य भी उनके हाथसे छीन रहा है।

विष्णु—नारद, इससे तुम्हारा क्या अभिप्राय है। मेरी समझमें नहीं आया। स्पष्ट करो।

नारद—महाराज, महेशका कार्य संहार करनेका है। मनुष्यने इस कार्यके लिये आज कल बड़ी तैय्यारी कर ली है। पहिले तो तलवार थी जिससे केवल सामनेके दो वीर परस्परका संहार करते थे। अबतो मीलों सेधड़के से बन्दूक चल जाती है और सफाया हो जाता है। इतना ही नहीं। ३० मीलतक उड़ा देने वाली तोपें बन गई हैं। हवामेंसे चीलगाड़ी द्वारा बम्ब डालकर हत्या की जाती है। विषैली हवाएं ऐसी बनाई गई हैं कि उनका श्वास लेते ही सैकड़ों मनुष्य सहसा परम-धामको सिधार जाते हैं। विज्ञान द्वारा ऐसा अज्ञान फैला है कि हत्याके साधन बहुलतासे बनाये जा रहे हैं।

विष्णु—तो मेरी दी हुई बुद्धि का मनुष्यने यह दुरुपयोग किया। मुझे ऐसा मालूम होता तो मैं कदापि इसे बुद्धि नहीं देता। परन्तु, नारद, तुम जानते हो दुरुपयोगका परिणाम सदा बुरा होता है। आजकलकी दशा तुमने बतलाई, इसका तुमको आश्चर्य जान पड़ता है। परन्तु मुझे नहीं। कारण यह है कि तुम्हारा ज्ञान सीमाबद्ध है। मैंने मनुष्य जातिकी ऐसी बेवकूफियां बहुत देखी हैं और बहुत बार इस जातिको चपत लगाकर ठीक किया। रोम, यूनान और मिश्र प्रभृति प्राचीन जातियां इसका उदाहरण हैं। अभी एक थोड़ीसी धमकी जर्मनीको दी थी। जरा आंख जापानको दिखाई थी जिसका फल तुम्हें अवश्य विदित हो गया होगा। तुमने अपना भाव प्रकट किया सो अच्छा किया परन्तु यह नहीं कि मनुष्य एक छोटा सा जीव मेरी तुलना-दृष्टिमें कुछ हो। यह तो एक बच्चोंका खेल है जैसा पहिले कह चुका हूँ जब चाहूंगा तब इसकी बुद्धि ठिकानेपर ले आऊँगा।

नारद—महाराज, आपने अच्छा शंका समाधान किया, नहीं तो मुझे बड़ी चिन्ता हो रही थी। मैं समझता था कि मृत्युलोक आपके हाथसे गया।

नारद मुनिने यह अपनी और विष्णुकी वार्त्ता मुझको सुनाई और कहा कि मैंने यह वार्त्ता तुमको इस अभिप्रायसे सुनाई है कि मनुष्य जाति इसका समाचार जानकर चपत खानेके पूर्व ही सुधर जावे। परन्तु इसकी आशा कम दिखाई देती है। जैसा सदासे होता आया है वैसा ही होगा। मैंने इच्छा की कि मुनि महाराजके चरण छूकर कुछ और बातें पूंछूं कि झट मेरी आंख खुल गई और न मुनि जी दिखाई दिये और न वह

सघन बन ही; किन्तु मुनिजीके शब्द मेरे कानोंमें अबतक गूंज रहे हैं।

कुछ ज्योतिर्मय पौधे

[ले० श्री लक्ष्मीनारायण माथुर]
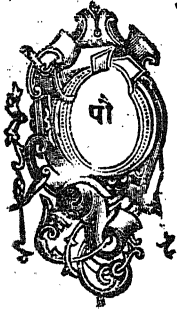
पौधोंमें ज्योति निकलना हिन्दू प्राचीन पुस्तकों में तो कई स्थानों में लिखा पाया जाता है। लक्ष्मण जीकी मूर्छासे जाग्रत करनेके लिये सुषेन वैद्यने हनुमानजी को महोदय पर्वतपर संजीवनी बूटीको पहचाननेका यह पता बताया था कि एक शिलापर ज्योति जलती होगी। मेरी तुच्छ बुद्धिमें तो उनका अभिप्राय प्रकाश देनेवाले पौधोंसे ही होगा। पर इस कालमें तो इस विषयको पहली बार प्रकाशित करने वालोंमें हम महात्मा लिन्नियस (Linneus) को पहली पद्वी देंगे। उनका ध्यान इस ओर उनकी पुत्री क्रिस्टीनिया लिन्ने (Christinia Linne) ने दिलाया था। जूनके तपते हुए दिनोंमें सन्ध्याके समय अपने पिताके फुलवारीमें टहलते समय उन्हें एक दिन नाग केशरी (garden nasturtium) के फूलोंमें ज्योति निकलती दीखी। इस ज्योति को न सिर्फ उनके पिता ही परन्तु और भी वैज्ञानिकों ने भी प्रति संध्याको और प्रति काल सूर्योदयसे पहले देखा था। उनमेंसे एक मिस्टर विल्के (Mr. Wilke) बिजली (electricity) के इन्जीनियर थे। उन्होंने इस ज्योतिका कारण बिजली बताई। और भी बहुतसे मनुष्यों की जिन्होंने इसे देखा यह ही राय हुई।

यों तो गेंदा (common marigold) हज़ारा (african marigold) और सूरजमुखी (sun flower) के फूलोंमेंसे भी ज्योति निकलती है पर जिस पौधेमें महात्मा लिन्नियस (Linneus) ने इसको देखा उससे अधिक भली भांति और किसीमें दिखाई नहीं देती। यही कारण दीखता है कि इरेस्मस डार्विन (Erasmas Darwin) ने अपनी पुस्तक Loves of plants में नागकेसरीको ही ज्योतिमान पौधा मान कर उसकी प्रशंसा की है।

Ere the bright star which leads the mornig sky,
Hangs o'er the blushing east his diamond eye,
The chaste *Tropaeo* leaves her-secret bed;
A saint-like glory hangs round her head.
O'er her fair form the *electric* lustre plays,
And cold she moves among the lamlent blaze,
So shines the glowfly when the sun retires
And gems the night air with phosphoric, fires.

क्रिस्टीनिया लिन्ने (Christinia Linne) ने जो ज्योति पहली बार देखी उसको अब तो इतने विज्ञानियों ने निश्चय किया है कि उसके न होनेमें तो अब कोई संदेह रहा ही नहीं। स्वेडन (Sweden) देश के निवासी एम० हेगेरेन (M.Haggren) ने इसको कई बार देखा। अपनी फुलवारीमें सैर करते समय उन्होंने एक नौकर इस बातपर नियत किया कि वह फूलोंको देखता रहे और जब ज्योति निकले तो इशारा करदे। उन दोनोंने एक साथ और एक ही समय गेंदेके फूलोंके गिर्द ज्योति देखी। तब जोलाई अगस्तका महीना था ज्योति सूर्यास्तके समय या उसके आध घंटे पश्चात दीखती थी और बारिशके दिन या ऐसे दिन जब हवामें पानीका अंश अधिक हो कभी नहीं दीखी। इस बातको जांचनेके लिये कि इसका कारण पटबीजने जैसे कोई और तो छोटे द्युतिमान जन्तु फूलों-

की पंखड़ियोंमें छुपे तो नहीं हैं जिनसे ज्योति हा रहो हो। जब उन्होंने पंखडियोंको (microscope) खुर्दबीन रखकर देखा तो हमारे विज्ञानी महाशयको भली भांति विश्वास हो गया कि ऐसा सिद्धान्त निरर्थक और अविश्वसनीय है। परन्तु उनका भी कथन, कि यह ज्योति जो उन्होंने भी बिजलीकी ही बताई, फूलोंका ज़ीरा पंखड़ियोंपर बिखरे रहने के कारण है मानने योग्य नहीं है॥

स० १८३५ में ट्रिमर महाशय (Mr. Trimmer) ने इस दृश्य को स्वयम् अपनी आंखोंसे देखा। अपनी फुलवाड़ीमें जहां बहुतसे नागकेसरी (garden nasturtium) के बहुत भांतिके फूल खिल रहे थे संध्याके समय टहलते हुए जब उनको ज्योति निकलनेका सुपनेमें भी विचार नहीं था अकस्मात उनका ध्यान फूलोंमेंसे ज्योति निकलनेकी ओर आकर्षित हुआ। ज्योतिका इतना प्रकाश उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। यह बात भी विचारणीय है कि उसी समय बिजली भी कौंद रही थी।

सात वर्ष पश्चात इस दृश्यको डाउडेन महाशय (Mr. Dowden) और तीन और महोदयों ने दिनको उसी समय और वायु इत्यादिकी उसी हालतमें देखा। यानी ज्योति एक सप्ताह (dry weather) रहनेपर रातके लगभग आठ बजे दीखी। उनका कथन है कि फूलोंकी एक पंखड़ीसे दूसरीपर फैलती हुई ज्योतिने एक प्रकारका केन्द्र बना रखा था। यह ज्योतिर्मय फूल हज़ारे (a double variety of marigold) के थे॥

इसके पश्चात तो कई महोदयोंने ऐसी ज्योतियें स्वयम् देखकर लिखा है। पादरी रसल साहब (Canon Russel) का कथन है कि १८ जून स० १८८६ को मैं गिर्जाकी फुलवाड़ीमें सैर कर रहा था, जब गहरे सुनहली रंग के हज़ारे (common double marigold) के फूलों के पास होकर निकला तो उनमें अद्भुत प्रकाश दिखाई दिया। ज़रा और पास आकर एक दो सेकिंड तक देखनेसे मुझे ज्योतिकी लपटें सी जोकि ऐसी मालूम होती थीं मानों छोटे परिमाण में बिजली ही छमक रही हो पंखडियोंसे निकलती दीख पड़ी। यह बिचार कर कि कहीं मृगतृष्णा की भांति यह भी भुलावा ही न हो मैं घरके मनुष्यों को बुला लाया और उनसे पूछा कि उन्हें कोई अद्भुत बात तो नहीं दीखती। कईको तो ज्योति शीघ्र ही दीख गई और कईने देरतक ध्यानसे देखकर बताया क्योंकि सब आंखें इतनी जल्दी जल्दी निकलती ज्वालाओंसे शीघ्र ही परिचित नहीं हो सकतीं। मैंने पीछे निश्चय किया कि अंधेरा अधिक होजानेपर सारा पौधा प्रकाशसे धधक रहा था॥

नागकेसरी (Garden Nasturtium) भी प्रकाशमान थी परन्तु इतनी नहीं। इसमें ज्योति पत्तियोंतक फैली हुई थी। मैंने एक पत्तीको सूक्ष्मदर्शकपर (microscope) रख कर देखा और नसें जहांसे निकलती हैं उस जगहको बीचमें रखकर मैं उसे घुप अंधेरे कमरेमें ले गया। पत्ती अपने प्रकाशकमें भली भांति दिखाई देती थी। सारी पत्तोंपर ज्योतिकी कई बूँदें सी दीखती थीं। उसकी बड़ी नसें बीचसे निकलती हुई ऐसी मालूम होती थीं मानों चमकता हुआ चांदीका सितारा।

अभीतक जिन पौधोंमें ज्योति निकलना लिखा गया है वह बहुधा सुनहरी या नारंगी रंगके ही हैं। सम्भव है कि इन रंगके फूलोंमें ज्योति कुछ अधिक हो। कवि कालेरिज (Coleridge) इससे परिचित मालूम होते हैं, तभी उन्होंने लिखा है।

'Tis said at Summer's evening hour,
Flashes the *golden coloured* flower
A fair *electric flame.*

परन्तु इस दृश्यकी सीमा यहीं समाप्त नहीं होती। ट्रिमर महाशय (Trimmer) ने नागकेसरीमें ही नहीं बल्कि सफेद गुलाब (rose alba) लाल जेरेनियम (pelargonium-inquinanus) लाल पोस्त (hairy red poppy) और लाल वर्बीना (verbena chamaedrifolia) में भी इस दृश्यको बहुधा देखनेका हाल लिखा है। एक महोदयका इस मासिकपत्रमें लेख है कि आज रातको नौ बजेसे कुछ पहले हमने एक अद्भुत दृश्य देखा। नौ २ इंचके एक २ फुट की दूरीपर उगे हुए तीन लाल वर्बीना (scarlet verbena) के पौधे धूप घरके सामने उगे हुए हैं। मैं कुछ गज़की दूरीपर खड़ा हुआ उनकी ओर देख रहा था कि अकस्मात एक पौधेसे दूसरे-पर जाती हुई ज्योतिकी ज्वालाओंसे मेरा ध्यान आकर्षित हुआ। मैं तुरंत ही माली और घरके और मनुष्योंको बुला लाया जिन सबने इस निराले दृश्यको देखा। ज्योतिका प्रकाश ५ मिनटतक रहा। इसके पश्चात् धीरे धीरे मंदा होता गया और फिर बिल्कुल जाता रहा। हवा बंद थी। उसमें गर्मी थी और बिजलीसे भरी मालूम होती थी। बादमें भी यह दृश्य सूर्यास्तके उतने ही देर पश्चात और गर्म खुश्क मौसिम (hot dry weather) में देखा गया।

फूल देनेवाले पौधोंमें ज्योति निकलनेकी अधिक मिसालें एक प्रकारकी दूधी (euphorbia phosphorea) के दूधमें पाई जाती हैं जो ब्राजील (Brazil) के प्राचीन जंगलोंमें प्रकाश देती हुई कही गई है। और कुछ पौधोंकी जड़ोंमें भी जैसे सुगंधित खस खस था और कई घासों-की जड़। खस खसकी जड़पर गीला कपड़ा लपेटनेसे वह अंधेरेमें पटबीजनेकी द्युतिकी भांति एक दो घंटेतक प्रकाश देती रही। यद्यपि कपड़ा सूख जानेपर वह प्रकाश मंदा पड़ गया तब भी कपड़ा फिर गीला करनेपर वह फिर अधिक होगया और कई बार इसी प्रकार कपड़ा गीला करदेनेसे देरतक उसकी ज्योति कम न हुई।

फूल देनेवाले पौधोंको छोड़कर अब हम फूल न देनेवाले पौधोंको लेते हैं। इनमें भी ज्योति निकलनेके बहुतसे दृष्टांत पाये जाते हैं।)

मध्य यूरप (Central Europe) की बहुत सी गुफाएं अपनी चमकने वाली काई (mosses, के कारण प्रसिद्ध हैं। इनमें घुसकर ध्यान एकदम गुफाओंके फ़र्शकी ओर जाता है जिसपर सुनहरी हरे रंगकी कई बूंदे चमकती दीखती हैं। अनजान अज्ञानीको तो अवश्य यह प्रतीत होता है कि वह भाग्यवश कुबेरकी सम्पत्तिके पास ही आगया है। पर उस सम्पत्तिसे एक साथ धनवान हो जानेका लवलेश ध्यान भी उसे पीछे बहुत निराश करता है। क्योंकि इस बहुमूल्य धनको रोशनीमें लानेसे सिवाय कांतिहीन मट्टी और पत्थरके टुकड़े जिनपर जगह जगह काईके काही रंगके धागे फैले हुए हों और कुछ नहीं दीखता। काईके इन बारीक धागोंसे या यों कहो कि इनकी गोल सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों (microscopical cells) से यह धोका देनेवाली और मनोहर ज्योति निकलती है। सच पूछो तो यह नन्हीं अर्द्ध कन्द्र समान सेल cells जिनमें हर एक में क्लोरोफिल chlorophyl) के कई कण हैं, बिल्ली की आंखके तालों (lens) की भांति काम करते हैं। मंदी रोशनी जो अंधेरी गुफाओंमें होती है इनसे टकरा कर वापस लौटती है। नतीजा यह है कि ज्योतिकी कई बूंदे दीखती हैं। इस प्रकार क्लोरो-फिल (chlorophyll) के कणोंके पास ज्योति इकट्ठी हो जाती है और यह घुप अंधेरा होनेपर भी इस प्रकाशमें खाना बनानेका काम भली भाँति करनेके सामर्थ हो जाते हैं। इस अद्भुत काईका नाम शिस्टोस्टीगा ओसमन्डेसिया (Schistostega-osmundacea) है।

और भी कई प्रकारकी काई हैं जिनमें भी

ऐसा मनोहर दृश्य दिखाई देता है पर इतना अधिक नहीं। इनके अतिरिक्त और भी फूल न देने वाले पौधे हैं जिनमें यह दृश्य भली भांति दिखाई देता है।

ड्रेस्डेन (Dresden) की कोयलेकी कानोंमें सांपकी छत्रीके सदृश पौधोंके वास्ते कहा जाता है कि उनके प्रकाशसे आंखें चुंध्या जाती हैं। टेढ़ी बेढंगी छतोंसे लटकते हुए, सितूनोंके चारों ओर जड़ोंकी भांति लिपटे हुए और दीवारोंको ढके हुए यह पौधे उन घुप और डरावनी कानोंको स्वर्गका नमूना बना देता हैं। कानोंके Commissioner कमिश्नर अर्डमन महाशय (Mr. Erdman) का कथन है कि मैंने इन ज्योति देने वाले पौधोंके बहुतही सुहावना पाया और जो भाव इन्हें देखकर मेरे चित्तपर अंकित हुआ वह अकथनीय है। कानोंमें उतरते समय ऐसा मालूम होता था मानो हम जादू-के महलमें प्रवेश कर रहे हैं। इन पौधोंकी अधिकता इतनी थी कि छत खंभे और दीवारें सब ढकी हुई थीं और उस सुहावने दृश्यसे आंखें बन्द हुई जाती थीं। इन पौधोंका प्रकाश मद्धे चन्द्रमा-के प्रकाशके समान था इतना कि दो मनुष्य साथ खड़े हुए एक दूसरेको भली भांति देख सकते थे।

अब हम जानते हैं कि यह पौधे एगेरिकस (Agaricus) ज्योतिकी छत्रीके महीन धागे हैं और यह प्रकाश इन पौधोंके महीन धागे या छत्री के गलने और आक्साइड बनने Slow decay and-oxidation के कारण है। सर जे डी हुकर Sir J. D. Hooker ने मालूम किया कि शराब, गर्मी और खुश्की (dryness) से यह प्रकाश कम हो जाती है।

इन प्रसिद्ध विज्ञानो ने उत्तरी भारतमें जलने-की लकड़ियोंमें भी छत्रियोंके धागोंमेंसे ज्योति निकलती देखी। वह लिखते हैं कि यह दृश्य लकड़ीकी टालोंमें बहुधा दीखता है। दारजिलिंग (Darjeeling) में गर्मी और वर्षाके महीनोंमें (मईसे अक्टूबरतक) ५०००-८००० फिटकी ऊँचाईपर जंगलमें कुछ ही दूर धंसनेपर प्रति रात यह दृश्य दिखाई देता है, कमसे कम स० १८४८ और १८४९ में तो ऐसा अवश्य था। जबतक मैं वहां ठहरा तबतक वहांके निवासी सदैव मेरे पास लकड़ीकी खिपचें भेजकर ज्योतिका कारण पूछते रहे। लकड़ियोंके सड़ने गलनेसे इसका गहरा संबंध है और साल, शीशम इत्यादिके पेड़ों-में बहुधा पाया जाता है। ठूँठ और लकड़ी काटे जानेकी जगहपर भी पाया जाता है। पर जंगलों-में पृथ्वीसे सटी हुई टहनियोंपर बहुत मिलता है। उनका यह भी कथन है कि मुझे पूरा विश्वास है कि देरकी कटी हुई जगहोंसे नई कटी हुई जगहोंपर यह तुरंत ही फैल जाता है और इसका कारण छत्रीके धागे हैं।

टुलासने महाशय (M. Tulasne) ने इस विषयपर और काम किया है और वह इस परिणामपर पहुँचे हैं कि ज्योतिमान छत्रियोंका प्रकाश शून्य (vacuum) में और सांस न लेने योग्य गैसोंमें बिल्कुल फीका पड़ जाता है। इसका कारण बिना ताप उत्पन्न किये धीमे धीमें जलना है जोकि छत्रियोंके स्वांस लेनेमें हवा के आक्सिजन (oxygen) और एक और वस्तु के जोकि छत्रियोंमें ही खास तौरपर पाई जाती है मिलनेसे पैदा होती है। कर्नर महोदय (Mr.-kerner) की भी यही सम्मति है। वह लिखते हैं कि कुछ ऐसी वस्तुएं हैं जोकि क्षारीय घोल alkaline solution में प्रकाश देती हैं जब आक्सिजन (oxygen) मौजूद हो। सम्भव है कि ऐसी वस्तु एगेरिकस (Apicaricus) जाति-की छत्रियोंमें हो और जब कि वह सांस लेनेके साथ आक्सिजन लेती हैं तब ज्योति निकलती है। कुछ भी हो इस ज्योतिके निकलनेको समझानेकी सबसे सहल और सुगम रीति यही दीख पड़ती है। रहा यह कि इस रीतिके प्रयोगसे छत्री।

को क्या लाभ होता है। इसके उत्तरमें यही कह सक्ते हैं कि सम्भव है कि छोटी मक्खियाँ और मकोड़ोंको जो कि अपने अंडे इन छत्रियों और उनके धागोंमें देते हैं और जो कि इन छत्रियोंके बीज (spores) के फैलानेमें सहायक हैं इस ज्योतिके कारण रातके अँधेरेमें यहांतक आना सुलभ हो जाता है क्योंकि और परदार रातमें उड़नेवाले भुनगों पतंगोंकी भांति यह भी उसी ओर जाते हैं जहां प्रकाश हो।

हम निश्चय रीतिसे नहीं कह सक्ते कि इस दृश्यका यही कारण है। परन्तु यह भली भांति प्रतीत है कि इन फूल न देनेवाले पोधोंमें खाना खाना या सांस लेना ही ज्योतिका मुख्य कारण है। पहला तो गुफाओंमें उगनेवाली काई पाया जाता है और दूसरा छत्रियोंके उन धागोंमें जो सड़ी गली लकड़ीपर आते हैं। इसके अतिरिक्त फूल देनेवाले पोधोंमें जो ज्योति देखी गई है और जो सफ़ेद, लाल, पीले और सुनहले रंगके फूलोंमें ही पाई जाती है उसका कारण हवामें बिजलीका होना है और यदि यह ठीक है तो हम इसको अवश्य ही अद्भुत दृश्य ही कहेंगे।

सूखी बाटरी (DRY BATTERY) और रद्दी सूखी बाटरी का उपयोग

[ले० श्री शङ्करलाल जौहल, एम. एस सी]

जिस मनुष्यको बिजलीसे ज़रा भी परिचय है वह अच्छी तरह जानता है कि आजकल सूखी बाटरी (Dry Battery) संसारमें कितनी चल रही है। बात बातमें उससे काम लिया जाता है। कुछ लोगोंको यह आश्चर्य्य होता होगा कि इस छोटीसी डिबियामें क्या भरा है जिससे चाहे रोशनी कर लो, चाहे घंटी बजालो, जिसे चाहे तार भेजनेके काममें लेलो और चाहे रातके समय बाइसिकिलमें लगाकर जहां जीमें आवे वहां फिरो। इस लेखमें मैं यह बताना चाहता हूं कि यह चीज़ कितनी सुगमतासे बन सकती है और दूसरी बात यह है कि जहां इस बैटरीने काम करना बंद किया तहां लोग इसको निकम्मा करके फेंक देते हैं। परन्तु मैं यह बतलाऊंगा कि वही चीज़ फिर उससे अधिक कार्य्य कर सकती है, यदि कुछ चीज़ें उसमें बदल दी जावें। मैंने ऐसे ही दो एक बैटरीको उठा कर छोटी छोटी वैसलीनकी शीशियों द्वारा काम करना शुरू कर दिया है और उसमें मेरा कुछ भी ख़र्च नहीं हुआ। कारण कि ऐसी शीशियां तो प्रत्येक घरमें पड़ी ही रहती हैं केवल थोड़ा सा नमक डालना पड़ता है। और नमक इतना कम काममें आता है कि उसकी कुछ कीमत ही नहीं है। यह छोटी सी बैटरी घरोंमें घंटी बजाने व तेज़ रोशनी (flash light) के लिए बड़ी उपयोगी होती है। घंटी बनानेकी आसान तरकीब अगले किसी लेखमें दूंगा। केवल आठ आनेमें अपने घरको बिजलीकी घंटीसे सुसज्जित करलो और मिलनेवालोंको आवाज़ देनेकी तकलीफ़से बचा लो।

सूखी बैटरी जो आजकल बनाई जाती है वह लेकलांशे (Leclanche) की गीली या आर्द्र (wet) बैटरीके आधारपर ही होती है। इस कारण यह बैटरी लगातार बिजलीकी रोशनी नहीं दे सकती। मेरा विचार ऐसा है कि शीघ्र ही एक सूखी (Dry) बैटरी तैय्यार करूं जो लगातार रोशनी भी दे सके। वह आर्द्र या गीली (wet) बैटरी जो ऐसा कार्य्य कर सकती है आपके सम्मुख आगे के लेखमें प्रगट कर रहा हूं। सूखी (dry) बैटरीमें तीन आरम्भिक सेल (primary cells) होती हैं। प्रत्येक सेल एक जस्तके छोटेसे गोल और लम्बे बर्तनमें होती है जिसके अन्दर उसकी दीवारोंसे लगा हुवा एक लेई जैसा पदार्थ (paste) होता है जो नौसादर, पानी

और प्लास्टर आफ पेरिस (plaster of paris) से बनता है। यह लेई (paste) लेकलाशी (leclanche) की गीली सेल (wet cell) के नौसादरके घोलकी तरह काम देता है। तत्पश्चात् उज्जन दूरीकरणके लिए मिश्रण (depolarizing mixture) होता है जिसमें प्रायः कर्बन, मैंग्नीजद्विओषिद (manganese dioxide) नौसादर और ग्लीसरीन (glycerine) होते हैं यह मिश्रण (mixture गीली बाटरी wet cell) की मसमदार बरतन (porous cell) के बजाय काम करता है। इस मिश्रण (mixture) में एक कर्बनकी सलाई होती है जो कि धन सिरे (positive pole) का काम देती है। और एक तार जो कि जस्तमें झला हुआ होता है ऋण सिरे (Negative pole) का काम देता है। (Dry cell) सूखी सेल की वोल्टेज़ (voltage) १ से लेकर १½ वोल्ट (volt) तक होता है

बैटरी बनानेकी विधि—एक जस्तकी चादरका टुकड़ा लो जो नौ इञ्च लम्बा हो और छः इञ्च चौड़ा हो। उसको साफ़ कर लो और उसकी नलकी बनालो। नलकी बनानेका सहज उपाय यह है कि एक लकड़ीका रूल लेलो, फिर रूलके चारों ओर लपेट लो इस भाँति गोल नलकी बन जायगी। इसके उपरान्त जस्तकी नलीका मुंह बन्द करनेके वास्ते जस्तका एक गोल टुकड़ा काट लो। फिर नलकीके मुंहपर जोड़ दो और इसके उपरान्त एक तांबेका टुकड़ा जस्तको नलकीके मुँहके साथ जोड़ लो। इसके उपरान्त दवाई भरनेकी विधि बतलाते हैं। जहांतक बने वहांतक बरसातका जल उत्तम है जो बरसातका जल न मिले तो अग्निके द्वारा शुद्ध किया हुआ जल जिसमें नमक या किसी वस्तुका अंश न हो दवाई बनानेके काममें ला सकते हैं। आध सेर जल लो। जलमें प्लास्टर ऑफ़ पैरिस मिला लो, जैसे लेई होती है उसीकी भांति उसे हो जाना चाहिये। इसके बाद ग्लीसरीनकी थोड़ी बूँदे मिलाओ। मिलानेके बाद जस्तकी नलकीके अंदरके भागमें चारों ओर वह लेई लगा दो। फिर एक कारबनकी प्लेट लो जो छः इञ्च लम्बी व पौने दो इञ्च चौड़ी हो और तीन सूत मोटी हो। प्लेटके सिरेपर एक छिद्र करो। इसमें तार बाँधा जाता है। फिर नलकीके नीचे एक रबड़का टुकड़ा अथवा कांचका टुकड़ा रक्खो उसके ऊपर कारबन प्लेट रक्खो। प्लेटके आसपास नीचे लिखी हुई औषधियोंसे बन्द करलो—१ सेर कारबनका चूरा, आध सेर मेङ्गनीजडाइओक्साइड, आधी चम्मच ग्लीसरीन और ढाई छटांक ज़िंक क्लोराइड (zinc-chloride) यह तैयार किया हुआ मिश्रण ३ सेलके लिये काफी होगा। बहुत सम्भालके साथ बटैरी बनानी चाहिये क्योंकि कारबनका चूरा जस्तके साथ मिलन न पावे। जो मुँह समस्त वस्तुओंके रखनेके बाद खुला रहेगा उसको रालसे बन्द कर दिया जावे फिर उस बैटरीपर काला वार्निश कर लेना चाहिये। फिर कारबनकी प्लेटपर एक पीतलका पेंच लगा लो, पेंचके साथ तार लगा देना चाहिये। इस तारके द्वारा बिजली प्रगट होती है। मोमजामा या मोमी (Paraffined) कागज़ बैटरीके आसपास लपेटलो।

खास सूचना यह है कि बैटरीके दो तार जो धन (पौज़िटिव) और ऋण (नैगिटिवके) नामसे पहचाने जाते हैं इनको अलहदा २ रखना चाहिये जिससे बटैरीकी ज़िन्दगी बहुत देरतक रहती है।

पुरानी इस्तेमाल की हुई सूखी बैटरीका प्रयोग

बाजारमें किसी बिजलीवालेकी दूकानपर अथवा कबाड़ियोंके यहां आपको रद्दी की हुई जेबी लैम्पकी सूखी (Dry) बैटरियां पैसे पैसे मिल जावेंगी। उनको लाकर आप ऊपरका कागज़ व पट्टा हटा दें—नीचे आपको जस्तकी तीन नल-

कियां मिलेंगी। उनको अग्निपर रखनेसे उनका झाल खुल जावेगा और जस्तकी छोटी छोटी चादर बन जावेंगी। उनपरसे नौसादर वगैराको खुर्च कर छुटा दो और नलकीके अन्दर जो कपड़ेकी लम्बी पोटलियां मिलें उनको भी पानीमें भिगोओ और सारी चिपटी हुई सफ़ेद वस्तुको हटा दो। अब तीन वैसलीनकी शीशियां लो जो खूब साफ़ की जा चुकी हैं। तीनों कपड़ेकी पोटलियोंको उन शीशियोंमें अलग २ डाल दो और नमकका पानी या नौसादरका पानी जो कि नमकसे अधिक उपयोगी है उनमें भरदो। जस्तकी निकली हुई चादरोंको गोल मोड़कर शीशियोंमें डाल दो अब तांबेके छोटे छोटे छः टुकड़े लो। तीन टुकड़े जस्तकी चादरोंमें अलग २ बांध दो। और बाकी तीन टुकड़ोंको पोटली वाली कार्बनकी सलाइयोंमें बांध दो। फिर एक शीशीके जस्त वाले तारको दूसरी शीशीके कार्बन वाले तारसे जोड़ दो और दूसरी शीशीके जस्तके तारको तीसरी शीशीके कार्बन वाले तारसे मिला दो इस प्रकार आपकी एक छोटीसी बटैरी बन जावेगी। जिसका वोल्टेज (voltage) ४½ के करीब होगा। इससे आप चाहें घंटी बजावें चाहे तेज़ रोशनी (flash light) के काममें लावें और चाहे तारबर्क़ी में इस्तैमाल करें मुद्दततक काम देगी। जब काम देना कम करदे तब नौसादरका पानी और डालदो। अगले लेखमें बिजलीकी घंटी बनानेकी तरकीब दी जावेगी जो कि पांच या छः आनेमें तैय्यार हो जाती है।

सस्ती बिजलीकी रोशनी

(घरोंमें उजाला करो, चांदी सोने का मुलम्मा करो, तार घर व विद्यालयोंमें काम लो।)

[ले० श्री शङ्करलाल जींदल, एम. एस-सी.]

तार घर व विद्यालयोंके वास्ते

प्रत्येक बाटरी के लिए एक ऐसा शीशे का बर्तन लो जो ६ इञ्च ऊंचा हो और जिसमें तीन पाव पानी आजावे। एक चीनी मट्टीका मसामदार बरतन (porous cell) लो जो ६ इञ्च ऊँचा हो और जिसमें पांच छटांक पानी आजावे। एक कार्बनकी तख़्ती (plate) जो कि ६½ इञ्च लम्बी और तीन इञ्च चौड़ी हो और एक जस्तकी तख़्ती (plate) जो ६½ इञ्च लम्बी और १ इञ्च चौड़ी हो की भी ज़रूरत है। ये सब चीज़े हमेशा काम देंगी केवल जस्तेकी पटरीको कभी कभी बदलना पड़ेगा।

शीशेके बर्तनमें ६ छटांक गुनगुना पानी लो और १½ तोला लाल कसीस (potassium bichromate) बारीक पीसकर मिला दो—फिर उसमें ३½ तोला १७५० नं०का गन्धकका तेज़ाब डालदो—मसामदार बरतन में १७ तोला पानी और एक तोला नौसादर (ammonium chloride) मिलाकर उसको शीशेके बर्तनमें रखदो। कार्बनकी प्लेटको लाल कसीसके घोलमें रखदो और जस्तेकी पटरीको उसपर पारा चढ़ाकर नौसादरके घोलमें डाल दो—बस बिजली की एक बाटरी (cell) तैयार होगई। इसका एक दफ़ा तैयार (charge) करनेका खर्च करीब ३ पैसा होता है क्योंकि लाल कसीस १ रु० सेर और १७५० नं० का तेज़ाब ६ आने सेर और नौसादर १२ आने सेर बाज़ारमें मिलते हैं। इस बाटरीकी

शक्ति २ वोल्ट(2 volts)की हैं, अन्दरका अवरोध (resistance) १.७ ओह्म (ohm)है। सो आप अपनी ज़रूरतके मुताबिक जितनी चाहें उतनी सेल मिलाकर बैटरी (battery) बना सकते हैं। मैंने बिजलीकी घंटियां व तारघरके शब्द दायक (sounders) एक सेल (cell) से बजाए हैं। रोशनीके लिए जेबी लेम्पका बल्ब २½ आनेमें बाज़ारमें मिलता है। इसकी रोशनी एक मोमबत्तीकी होती है। दो सेल (cells) से काम करनेपर यह बल्ब ३६घंटे तक बराबर सफ़ेद रोशनी देता रहा। २५ घंटेतक तो रोशनीमें कुछ अन्तर भी नहीं मालूम होता है। तारघरके वास्ते यह बैटरी (battery) एक माहतक बराबर काम देती रही और आशा है कि अधिक समयतक भी काम दे सके। ३६ घंटे काम करनेके बाद एक सेलके जस्तमें केवल ६ माशेका फ़र्क पड़ा। विद्यालयोंके लिए यह बड़ी उपयोगी है। प्रकाश विज्ञान (light)के जितने भी प्रयोग (experiments) हैं उनमें मोमबत्तीके बजाय इस छोटे बल्ब का प्रयोग करना बहुत अच्छा है। तार (cross wires) के पीछे इसको लगा देना चाहिये। प्रवाह सूचक (mirror galvanometers) का जहां काम पड़ता है वहां भी इसको इस्तेमाल कर सकते हैं। एक और बात भी सम्भव है जो कि मैंने स्वयं तो नहीं की परन्तु आशा है कि वह भी पूरी हो जावे रश्मि चित्रदर्शक (spectrometer) के लिए सूर्य्यकी रोशनीका ज़रूरत पड़ती है जब हम भिन्न भिन्न प्रकारकी रोशनीपर प्रयोग (experiment) करना चाहते हैं। और सूर्य्यकी रोशनीको एक जगह रखनेके लिए एक विशेष प्रकारकी घड़ीकी ज़रूरत होती है जो बहुत ही कीमती है और जिसका नाम सौर-परावर्तक (helio reflector) है। इस बल्बके लगानेसे शायद पूरा रश्मि-चित्र (spectrum) बन जावे क्योंकि इसका भीतरवाला कार्बन का तार सफ़ेद गर्म (filament white hot) होता है।

Potentiometer में constant cell का काम भी इससे ले सकते हैं और wheatstone bridge में electrolytes के resistance निकालते समय toy coil को चलाने में भी यह battery लाभदायक होगी।

घरोंमें उजाला और चांदी सोनेका मुलम्मा

चूंकि बड़े शीशेके बर्तन व चीनी मट्टीकी मसामदार बर्तन porous cell व नौसादर महंगे मिलते हैं इस वास्ते मैं कुछ सस्ती तरकीब लिखता हूं। पुरानी या ऊपर से टूटी हुई या नई बोतल लो। नई बोतल ६ पैसेमें मिलेगी—इसके मुंहके पास कच्चे सूतको चारों ओर लपेट दो और उसपर मट्टीका तेल डाल दो और जलाकर सीधा खड़ा कर दो। जब जल चुके तब पानी डाल दो। जहां धागा बंधा था वहांसे बोतल कटजावेगी और एक गिलास सा बन जावेगा। चीनी मट्टीके बजाय मामूली मट्टीकी कुल्फियां कुम्हारसे बनवालो, १ पैसेकी दो या तीन मिल जावेंगी। इसकी उंचाई कटी हुई बोतलके बराबर होनी चाहिए और चौड़ाई १½ इञ्च की हो। इसमें मसाला पहली सेलका आधा पड़ेगा। नौसादर के बजाए घरमें खानेका नमक ६ मासे डाल दो। कार्बन प्लेट केवल १½ या २ इञ्च चौड़ी काफी है। जस्तकी पटरी आधा इञ्च चौड़ी होनी चाहिए—चूंकि इसमें मसाला आधा है यह सेल बड़ी सेल के मुकाबलेमें आधी देरतक काम देगी। परन्तु यह बहुत सस्ती है और हर एक मनुष्य इसको आसानीसे बना सकता है। यह (cell tattooing) हाथ पैरपर तसवीरें खुदवानेके काममें भी बड़ी अच्छी तरहसे काम आ सकती है। कार्बनकी प्लेट चार आनेकी मिलेगी और जस्तकी सलाई दो या तीन आनेमें मिल जावेगी। जो मनुष्य मंगाना चाहें वे निम्नलिखित पतेसे मंगा सकते हैं। पंडित जैदेव शर्म्मा द्वारा बा० ओमप्रकाश तलाक़ महल कानपुर।

सूर्य-सिद्धान्त

[गताङ्क से आगे]

ले०—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ।

इसलिए धनु अ द फ=९०°=धनु पू अ द। यदि दोनों धनुओंसे सामान्य खंड अ द निकाल दिया जाय तो अ पू=द फ

गोलीय त्रिभुज अ त पू में

$$\frac{\text{ज्या (अ पू)}}{\text{ज्या अ त पू}}=\frac{\text{ज्या (अ त)}}{\text{ज्या अ पू त}}$$

परन्तु अ त पू विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तके बीचका कोण अर्थात् सूर्यकी परम क्रान्ति है और अ पू त कोण व द धनु-के समान है जो स स्थानका लम्बांश है।

$$\therefore \text{ज्या (अ पू)}=\frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ज्या (त अ)}}{\text{लम्बज्या}}$$

यही सूर्यग्रहणाधिकारके तीसरे श्लोकका तात्पर्य है। इसी ज्या अ पू का नाम उदय या उदयज्या रखा गया है। परतु अ पू= द फ, जो म ख त्र कोण के समान है।

अब यदि गोलीय समकोण त्रिभुज म ख त्र के धनु म ख का ज्ञान हो जाय तो धनु ख त्र का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि कोण ख त्र म समकोण है। यह स्पष्ट ही है कि म ख मध्यलग्न का नतांश है जो मध्यलग्न की उत्तर क्रान्ति व म और इष्ट स्थान के अक्षांश व ख का अन्तर है। क्रान्ति दक्षिण होती तो जोड़ना पड़ता। म ख की ज्या का नाम मध्यज्या रखा गया है यह जानने की रीति उसी अधिकार के ४ थे और ५वें श्लोकों में बतलाई गयी है। इसलिए समकोण गोलीय त्रिभुज ख त्र म में

ज्या (त्र ख) = ज्या (ख म त्र) × ज्या (म ख)

यदि गोलीय त्रिभुज ख त्र म को समतल त्रिभुज (plane triangle) मान लिया जाय तो ज्या (ख म त्र)=कोज्या (म ख त्र) क्योंकि ख म त्र और म ख त्र का योग ९०°के समान होगा। इसलिए

ज्या (त्र ख)=कोज्या (म ख त्र) ज्या (म ख)

=कोज्या (द फ) × ज्या (म ख)

$$=\text{ज्या (म ख)}\sqrt{१-\text{ज्या}^{२}\text{ (द फ)}}$$

$$=\sqrt{\text{ज्या}^{२}\text{ (म ख)}-\text{ज्या}^{२}\text{ (म ख) ज्या}^{२}\text{ (द फ)}}$$

$$\therefore \text{दृक्क्षेप}=\sqrt{\text{मध्यज्या}^{२}-\text{मध्यज्या}^{२}\times\text{उदय}^{२}}$$

$$\text{दृग्गति}=\sqrt{१-\text{दृक्क्षेप}^{२}}$$

यही सूर्यग्रहणाधिकारके ५–६ श्लोकोंका अर्थ है, यहाँ त्रिज्या १ मानी गयी है।

$$\text{छेद}=\frac{(\text{ज्या ३०°})^{२}}{\text{दृग्गति}}=\frac{(\frac{१}{२})^{२}}{\text{दृग्गति}}=\frac{१}{\text{४ दृग्गति}}$$

$$\text{लम्बन}=\frac{\text{ज्या विश्लेषांश*}}{\text{छेद}}$$

$$=\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\frac{१}{\text{४ दृग्गति}}}$$

=४ × दृग्गति × ज्या विश्लेषांश

इससे लंबनका जो परिमाण ज्ञात होगा वह घड़ियोंमें होगा। यह सूत्र पृष्ठ ५८५के सूत्र (ग) से मिलता है जहां लि=४ घडी=ग्रहका परम लम्बन, दृग्गति=त्रिभोनलग्नकी उन्नतांशकी ज्या=कोज्या त्र और व=विश्लेषांश।

शर लंबन या नतिके लिए केवल यह दिया हुआ है कि

* ग्रहके भोगांश और त्रिभोन लग्नका अन्तर विश्लेषांश है (देखो पृष्ट ५८४

हकक्षेपको परमलंबनसे गुणा करनेपर नति आती है। यह रीति बहुत स्थूल है।

लंबन और नतिकी आवश्यकता सूर्य-ग्रहणकी गणना करनेमें पड़ती थी। इसलिए हमारे ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा सूर्य ग्रहणाधिकारमें की गयी है। परन्तु आजकल लम्बनसे ग्रहों और ताराओंकी दूरीका पता भी लगाया जाता है। यह बतलाया गया है कि क्षितिज लम्बन की ज्या $= \frac{त्र}{क}$। इसलिए यदि क्षितिज लंबनकी ज्या और भूकेन्द्रसे द्रष्टाकी दूरी त्र ज्ञात हो तो क सहज ही जाना जा सकता है। अब संक्षिप्तमें यह बतलाया जायगा कि ग्रह का लंबन कैसे नापा जाता है।

किसी ग्रहका लंबन नापना—मान लो कि चित्र ८० में द, दा भूतलके ऐसे दो स्थान हैं जो एक ही देशान्तर रेखापर हैं और जिनके अक्षांश भी शुद्धता-पूर्वक जान लिये गये हैं। जिस समय ग्रह च याम्योत्तर वृत्तपर आता है उस समय द से इसका स्पष्ट नतांश ख द च अथवा न है और दा से उसका स्पष्ट नतांश खा दा च अथवा ना है। इन दोनों स्थानोंके अक्षांशोंका योग द भ दा ज्ञात है इसलिए

$$\angle द\ च\ दा = ३६०^\circ - (\angle च\ द\ भ + च\ दा\ भ + \angle द\ भ\ दा)$$
$$= ३६०^\circ - (१८०^\circ - न + १८०^\circ - ना + \angle द\ भ\ दा)$$
$$= न + ना - \angle द\ भ\ दा$$

परन्तु हमें द च दा कोणके जाननेकी आवश्यकता नहीं है। हमको तो द या द से च का लम्बन जानना है अर्थात् हमको द च भ या दा च भा कोण जानना है जो द और दा से च के लम्बन हैं। मान लो द च भ = ल और दा च भ = ला और द च दा = च। अब

$$ज्या\ ल = ज्या\ न \times \frac{भ\ द}{भ\ च}$$

$$ज्या\ ला = ज्या\ ना \times \frac{भ\ दा}{भ\ च} = ज्या\ ना \times \frac{भ\ द}{भ\ च}$$

क्योंकि भ द और भ दा दोनों पृथ्वीकी त्रिज्याएँ हैं इसलिए समान मानी जा सकती हैं। इसलिए

चित्र ८०

$$\frac{ज्या\ ल}{ज्या\ न} = \frac{ज्या\ ला}{ज्या\ ना}$$

अथवा $ज्या\ ल = ज्या\ ला \times \frac{ज्या\ न}{ज्या\ ना}$

परन्तु $ल = च - ला$

$$\therefore ज्या\ (च - ला) = ज्या\ ला \times \frac{ज्या\ न}{ज्या\ ना}$$

$$\therefore \quad \text{ज्या च कोज्या ला} - \text{कोज्या च ज्या ला} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

यदि इस समीकरणके प्रत्येक पक्षको ज्या च ज्या ला से भाग दिया जाय तो

$$\text{कोस्पर्श ला} - \text{कोस्पर्श च} = \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या च ज्या ना}}$$

अथवा $\text{कोस्पर्श ला} = \text{कोस्पर्श च} + \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या च ज्या ना}}$

इस प्रकार यह सिद्ध है कि यदि दो स्थानोंसे किसी ग्रहका नतांश वेध करके जान लिये जायं तो उन स्थानोंके अक्षांशोंके ज्ञानसे द च दा कोण अर्थात् च को जानकारी हो सकती है। फिर च से ला की जानकारी उपर्युक्त समीकरणसे की जा सकती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि चंद्रमाको छोड़कर अन्य ग्रहोंके लंबन बहुत छोटे होते हैं इसलिए यदि इनके लंबनोंकी ज्याओंके स्थानमें इनके धनु ही रखे जायँ तो कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी दशामें

$\text{ज्या}(\text{च} - \text{ला}) = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$ की जगह

$\text{च} - \text{ला} = \text{ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$ लिखा जा सकता है।

$$\therefore \quad \text{च} = \text{ला} + \text{ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$= \text{ला}\left(१ + \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}\right)$$

$$= \text{ला} \times \frac{\text{ज्या ना} + \text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\therefore \quad \text{ला} = \frac{\text{च ज्या ना}}{\text{ज्या न} + \text{ज्या ना}}$$

$$= \frac{\text{च ज्या ना}}{२\ \text{ज्या}\frac{\text{न}+\text{ना}}{२}\ \text{कोज्या}\frac{\text{न}-\text{ना}}{२}} \cdots\cdots\cdots (\text{क})$$

इस सूत्रसे किसी ग्रहका वेध करके उसका साधारण लंबन या क्षितिज लंबन जाना जा सकता है क्योंकि यदि क्षितिज लंबन लि हो तो

$$\text{ज्या लि} = \frac{\text{ज्या ला}}{\text{ज्या ना}}$$

अथवा $\text{लि} = \frac{\text{ला}}{\text{ज्या ना}} \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots (\text{ख})$

समीकरण (क) और (ख) को एकत्र करनेसे

$$\text{लि} = \frac{\text{च}}{२\ \text{ज्या}\frac{\text{न}+\text{ना}}{२}\ \text{कोज्या}\frac{\text{न}-\text{ना}}{२}} = \frac{\text{च}}{\text{ज्या न} + \text{ज्या ना}}$$

उदाहरण—यदि द स्थानका उत्तर अक्षांश ५९°२०′३०″ और दा का दक्षिण अक्षांश ३३°५५′५″ हो तथा द और दा से मंगल ग्रहके याम्योत्तर नतांश ६८°१४′६″ और २५°२′ हो तो मंगलका क्षितिज लंबन क्या है?

$$\text{द भ दा} = ५९°२०'३०'' + ३३°५५'५'' = ९३°१५'३५''$$

$$\text{न} + \text{ना} = ६८°१४'६'' + २५°२' = ९३°१६'६''$$

$$\therefore \quad \text{च} = \text{द च दा} = \text{न} + \text{ना} - \text{द भ दा}$$

$$= ९३°१६'६'' - ९३°१५'३५''$$

$$= ३१''$$

$$\text{ज्या न} = \text{ज्या } ६८°१४'६'' = \cdot ९२८७$$

$$\text{ज्या ना} = \text{ज्या } २५°२' = \cdot ४२३१$$

∴ ज्या न + ज्या ना = १ · ३५१८

∴ क्षितिज लंबन क्षि $= \frac{३१''}{१ \cdot ३५१८} = २२'' \cdot ६३$

यह प्रकट है कि इस रीतिसे च का मान जाननेके लिए हमको दो स्थानोंके अक्षांश जानना आवश्यक है। परन्तु यदि हम यह देखें कि जिस समय ग्रह याम्योत्तर वृत्तपर है उस समय वह किसी पासवाले तारेसे कितना ऊपर या नीचे दोनों स्थानोंसे देख पड़ता है तो च का मान सहज ही जाना जा सकता है। मान लो—कि चित्र ८१ में च ग्रहका स्थान है और त उसीके पासवाले किसी तारेका स्थान है। द से देखनेपर त से च का अन्तर त द च कोणके समान है और दा से इन दोनोंका अन्तर त दा च कोणके समान है।

चित्र ८१

इसलिए द च दा = त द च + त दा च + द त दा

परन्तु तारा त इतनी दूर होता है कि द त दा कोण शून्यके समान होता है। इसलिए

द च दा = त द च + त दा च

इस चित्रमें द स्थानसे त से नीचे च देख पड़ता है और दा स्थानसे त से ऊपर च देख पड़ता है। इसलिए च और त के अन्तरोंका योग किया गया है। यदि दोनों स्थानोंसे त के एक ही ओर च देख पड़े तो त द च और त दा च कोणोंका अन्तर द च दा कोणके समान होता है।

व्यवहारमें ठीक एक ही देशान्तर रेखाके दो स्थानोंसे किसी ग्रह या तारेका वेध लेना कठिन है। परंतु यदि दो स्थान ऐसे हों जिनके देशान्तरोंमें थोड़ा ही भेद हो तो भी उपर्युक्त नियम लागू हो सकता है क्योंकि इससे जो अशुद्धि होगी वह नहींके समान होगी।

केवल चन्द्रमा और मङ्गल ग्रहका लम्बन जाननेके लिए यह रीति काममें लायी जा सकती है। मंगलके लिए भी यह रीति तभी शुद्ध हो सकती है जब वह पृथ्वीके बहुत पास हो अर्थात् सूर्यसे ६ राशिके लगभग दूर हो। अन्य दूरके ग्रहोंके लिए यह रीति उपयोगी नहीं है क्योंकि जब लंबन १० या १२ विकलासे कम होता है तब इस रीतिसे काम लेनेमें वेध करनेकी कुछ भूलें ऐसी रह जाती हैं जिनसे फल बहुत अशुद्ध हो जाता है। चन्द्रमा इतने पास है कि यदि पृथ्वीको पूर्ण गोल माना जाय जैसा कि उपर्युक्त नियमके लिए भ द और भ दा समान समझ लिये गये हैं तो भी कुछ स्थूलता रह जाती है। इसलिए चन्द्रमाका लंबन जाननेके लिए भ द को भ दा के समान न समझकर इनका यथार्थ परिमाण लेना पड़ेगा। यदि

ज्या ल की जगह ल और ज्या ला की जगह ला रखा जाय तो १६० पृष्ठके अनुसार,

$$ल = \frac{भ\ द}{भ\ च} \times ज्या\ न$$

$$ला = \frac{भ\ दा}{भ\ च} \times ज्या\ ना$$

$$\therefore\ च = ल + ला = \frac{भ\ द \times ज्या\ न + भ\ दा \times ज्या\ ना}{भ\ च}$$

परन्तु क्षितिज लम्बन $लि = \frac{त्र}{भ\ च}$ जहाँ त्र=पृथ्वीकी त्रिज्या

$$\therefore\ भ\ च = \frac{त्र}{लि}$$

$$\therefore\ च \times \frac{त्र}{लि} = भ\ द \times ज्या\ न + भ\ दा \times ज्या\ ना$$

$$\therefore\ लि = \frac{च \times त्र}{भ\ द \times ज्या\ न + भ\ दा \times ज्या\ ना}$$

यहाँ न और ना चन्द्रमाके यथार्थ नतांश हैं। यदि भौगोलिक या स्पष्ट नतांशके अनुसार लि का मान जानना हो तो पृष्ठ १६०—१६१ में बतलायी गयी रीतिसे भौगोलिक नतांशसे यथार्थ नतांश जान लेना चाहिए। उपर्युक्त सूत्रसे यह सिद्ध होता है कि द्रष्टाके स्थानमें भिन्नता होनेसे क्षितिज लंबनमें भिन्नता होती है क्योंकि भ द और भ दा बदलते रहेंगे। यह बात वेधसे भी देखी गयी है कि भिन्न भिन्न स्थानोंमें चंद्रमाका क्षितिज लंबन भिन्न भिन्न देख पड़ता है। यह इस बातका प्रमाण है कि पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है वरन् अंडाकार है।

सूर्यका लंबन उपर्युक्त रीतिसे नहीं जाना जा सकता। इसके लिए कई रीतियाँ काममें लायी जाती हैं जिनमेंसे दो नीचे लिखी जाती हैं:—

पहली रीति—भूतलपर दो स्थान द और दा ऐसे चुने जाते हैं जो विषुवत् रेखाके निकट हैं और परस्पर बहुत दूर हैं। सरलताके लिए यह भी मान लो कि शुक्रकी कक्षा शुक्र और
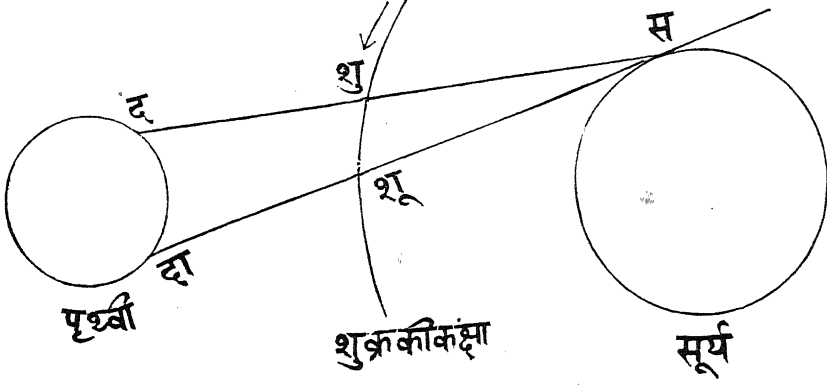
चित्र ८२

सूर्य भी विषुवत् रेखाके तलपर है जिस तल पर द, दा स्थान

है। द, दा स्थानोंसे सूर्यके स बिन्दुतक दो स्पर्श रेखाएँ द स और दा स खींचो। द स्थानका द्रष्टा यह ध्यानसे देखता है कि शुक्र शु किस समय सूर्य बिम्बके सामने पहुँचकर उसको भीतरसे स्पर्श करता है। इसी प्रकार दा स्थानका द्रष्टा भी शुक्र और सूर्यबिम्ब के भीतरी स्पर्शका समय ध्यानसे देख लेता है। इन दोनों वेधोंके समयमें जो अन्तर होता है उतने ही समयमें शुक्र शु बिन्दुसे शू बिन्दुपर अपनी कक्षामें जाता है अर्थात् उतने ही समयमें शुक्र सूर्यकी परिक्रमा शु स शू कोणके समान करता हुआ देख पड़ता है, यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सूर्यके चारों ओर जानेवाली शुक्रकी यह गति शुक्र और पृथ्वीकी गतियोंके अन्तरके समान है। परन्तु हमको मालूम है कि शुक्र और पृथ्वी दोनों कितने समयमें सूर्यकी परिक्रमा करती हुई एक रेखामें आजाती हैं। इसलिए शु स शू या द स दा कोणका परिमाण जाना जा सकता है। जब यह मालूम हो गया कि सूर्यबिम्बके एक बिन्दुपर भूतलके दो स्थानोंसे कितना कोण बनता है तब चित्र ८० और ८१ में बतलायी गयी रीतिसे यह सहज ही जाना जा सकता है कि सूर्यका क्षितिज लंबन क्या है।

व्यवहारमें यह रीति इतनी सुविधाजनक नहीं है जितनी देख पड़ती है क्योंकि शुक्र और पृथ्वीकी कक्षाएँ एक ही तलमें नहीं हैं, दूसरे द, दा स्थानोंके देशान्तरोंको बहुत ही शुद्धता-पूर्वक जाननेकी आवश्यकता है। यह रीति डीलिस्ले (Delisle) ने चलायी थी।

दूसरी रीति—इस रीतिमें द्रष्टाके स्थानोंके देशान्तरोंके जाननेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यहाँ तो केवल यह देखा जाता है कि दो भिन्न भिन्न स्थानोंसे शुक्र कितनी देर तक सूर्यबिम्बके सन्मुख एक किनारेसे दूसरे किनारेतक जाता हुआ देख पड़ता है। इस कामके लिए दो द्रष्टाओंके स्थान परस्पर बहुत दूर परन्तु उत्तर दक्खिन होने चाहिए।

चित्र नं० ८३

मान लो कि शु शुक्र और द दा भूतलपर द्रष्टाके दो स्थान एकही तलपर अर्थात् कागजके तल पर हैं और सूर्यका बिम्ब प्रकट करनेवाला वृत्त जिसका केन्द्र स है इस तलके समकोण-पर है। दा स्थानके द्रष्टाको देख पड़ेगा कि शुक्र अपनी कक्षामें तीरकी दिशामें चलता हुआ सूर्य बिम्बको क ख रेखामें काटता हुआ जाता है। परन्तु द स्थानके द्रष्टाको देख पड़ेगा कि सूर्यके बिम्बको शुक्र ग घ रेखामें काटता हुआ जाता है। जितनी देरमें शुक्र सूर्यके सामने एक किनारेसे दूसरे किनारेतक जाता हुआ देख पड़ता है वह समय प्रत्येक स्थानसे ध्यानपूर्वक देखकर लिख लेना चाहिए। शुक्र जिस गतिसे सूर्यके बिम्ब-को काटता हुआ निकल जाता है उसकी गणना सहज ही की जा सकती है। यह १ मिनटमें ४ विकलाके लगभग होती है। इसलिए जब यह मालूम है कि शुक्र क ख या ग घ रेखाओंको कितने समयमें पार करता है तब इन रेखाओंके विकलात्मक मान सहज ही और बहुत शुद्धतापूर्वक जाने जा सकते हैं। इसलिए क ख और ग घ चापोंके आधे भागोंके भी परिमाण जाने जा सकते हैं। परन्तु सूर्य बिम्बका कोणात्मक मान विक-लाओंमें मालूम ही रहता है। इसलिए स च और स छ के विक-लात्मक मान भी जाने जा सकते हैं क्योंकि रेखागणितके अनुसार

$$\text{स छ}^2 = \text{स घ}^2 - \text{घ छ}^2$$

और $$\text{स च}^2 = \text{स ख}^2 - \text{ख च}^2$$

स च और स छ की जानकारी हो जानेपर इन दोनोंका अन्तर निकाल लेनेसे हमको च छ का ज्ञान हो जाता है। इससे च छ की दूरी मीलोंमें भी मालूम हो सकती है क्योंकि यदि दोनों त्रिभुज द शु दा और च शु छ सजातीय (similar) समझ लिये जायँ तो

$$\frac{\text{च छ}}{\text{द दा}} = \frac{\text{शु छ}}{\text{शु द}}$$

परन्तु शु छ और शु द का सम्बन्ध हमें केपलरके नियमोंसे मालूम है क्योंकि शु छ शुक्रसे सूर्यकी दूरी है और शु द शुक्रसे पृथ्वीकी दूरी है। इसलिए यदि शु छ ७२३ और शु द २७७ हो तो

$$\frac{\text{च छ}}{\text{द दा}} = \frac{७२३}{२७७}$$

द दा पृथ्वी तलके दो स्थान हैं इसलिए इनकी परस्पर दूरी सहज ही जानी जा सकती है। इस प्रकार च छ का परि-माण मीलोंमें भी जाना जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त रीतिसे च छ का परिमाण विकलाओंमें भी जाना जा सकता है। इस-लिए जब इसका परिमाण विकलाओं और मीलों दोनोंमें मालूम है तब यह सहज ही जाना जा सकता है कि सूर्य पृथ्वी-से कितनी दूर है क्योंकि

$$\frac{\text{च छ का विकलात्मक मान}}{२०६२६५} = \frac{\text{च छ का मान मीलोंमें}}{\text{पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी}}$$

$$\therefore \text{ पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी} = \frac{२०६२६५ \times \text{च छ का मान मीलोंमें}}{\text{च छ का मान विकलाओं में।}}$$

इससे सूर्यका लंबन सहज ही जाना जा सकता है। हैली (Hally) ने १७७३ वि० में इस रीतिका आविष्कार किया था। इन दोनों रीतियोंमें यह दोष है कि शुक्र और सूर्यके बिम्बोंके भीतरी स्पर्शका समय ठीक ठीक वेध करना बड़ा कठिन होता है। शुक्रकी गति इतनी मन्द होती है और सूर्यके बिम्ब-का किनारा इतना अस्पष्ट होता है कि स्पर्शकालके समयमें कई असुओंका अन्तर पड़ सकता है।

क्षितिज लम्बन जानकर सूर्य और चन्द्रमाकी दूरी जानना—यह

बतलाया गया है कि क्षितिज लंबनकी ज्या = त्र ÷ क, जहाँ त्र पृथ्वीकी त्रिज्या और क भूकेन्द्रसे ग्रहकी दूरी है।

$$\therefore \text{क} = \frac{\text{पृथ्वीकी त्रि ज्या}}{\text{क्षितिज लंबनकी ज्या}}$$

क्षितिज लम्बनकी ज्याको कलाओं और विकलाओं में प्रकट करने से सुविधा होती है इसलिए पृथ्वीकी त्रिज्याको भी कलाओं और विकलाओंमें लिखना चाहिए। यह बतलाया गया है कि

त्रि ज्या × २ × ३·२४१५६ = परिधि = ३६०°

$$\therefore \text{त्रिज्या} = \frac{३६०^\circ}{२ \times ३\cdot१४१५९} = ५७^\circ\cdot२९५७७९५$$

= ३४३७′·७४६७७

= २०६२६४″·८०६२

= २०६२६५″

सूर्यका मध्यम क्षितिज लम्बन = ८″ · ८०

$$\therefore \text{सूर्यकी मध्यम दूरी} = \frac{२०६२६५}{\cdot८}$$

= २३४३९ पृथ्वीकी त्रिज्याओंमें

यह दूरी पृथ्वीकी त्रिज्याओंमें है जिसका विषुवद् वृत्तीय मान ३९६३·३ मील है। इसलिए सूर्यकी दूरी = २३४३९ × ३९६३·३ मील = ९२८९५७८९ मील।

चंद्रमाकी मध्यम क्षितिज लम्बन = ५७′१″·८=३४२२″

$$\therefore \text{चंद्रमाकी मध्यम दूरी} = \frac{२०६२६५}{३४२२}$$

= ६०·३ पृथ्वीकी त्रिज्याओंमें

= ६०·३ × ३९६३·३=२३८९८७ मील

सूर्य और चन्द्रमाके विस्तार—यदि किसी आकाशीय पिंडका कोणात्मक अर्द्धव्यास वेधसे जान लिया जाय और उसका लम्बन भी ज्ञात हो तो उसका विस्तार भी जाना जा सकता है क्योंकि

$$\text{कोणात्मक अर्द्धव्यासकी ज्या} = \frac{\text{पिंडकी त्रिज्या}}{\text{पिंडकी दूरी}}$$

$$\text{लम्बनकी ज्या} = \frac{\text{पृथ्वीकी त्रिया}}{\text{पिंडकी दूरी}}$$

$$\therefore \frac{\text{पिण्डकी त्रिज्या}}{\text{पृथ्वीकी त्रिज्या}} = \frac{\text{पिण्डके कोणात्मक अर्द्धव्यासकी ज्या}}{\text{पिण्डके लंबनकी ज्या}}$$

सूर्यका अर्द्धव्यास १६′ और लम्बन ८″·८ है, इसलिए

$$\frac{\text{सूर्यकी त्रिज्या}}{\text{पृथ्वीकी त्रिज्या}} = \frac{१६'}{८''\cdot८} = \frac{९६०}{८\cdot८} = १०९$$

$\therefore$ सूर्यकी त्रिज्या = १०९ × पृथ्वीकी त्रिज्या

= १०९ × ३९६३·३ मील

= ४३१९९९·७ मील

= ४३२००० मील

चन्द्रमाका अर्द्धव्यास १५′३९″·९ और लम्बन ५७′१″·८ है,

$$\text{इसलिए चंद्रमाकी त्रिज्या} = \text{पृथ्वीकी त्रिज्या} \times \frac{\text{ज्या } १५'३९''\cdot९}{\text{ज्या } ५७'१''\cdot८}$$

$$= \text{पृथ्वीकी त्रिज्या} \times \frac{१५'३९''\cdot९}{५७'१''\cdot८}$$

= ३९६३·३ × ·२७५

= १०८९·९

= १०९० मील

∠ प भ द = चंद्रमा का कोण तक अर्द्ध व्यास

∠ भ च द = चंद्रमा का लम्बन

प च = चंद्रमा की त्रिज्या

भ द = पृथ्वी की त्रिज्या

वार्षिक लम्बन—यह बतलाया गया है कि तारे हमसे इतनी इतनी दूर हैं कि भूतलके किसी दो स्थानोंसे देखनेपर
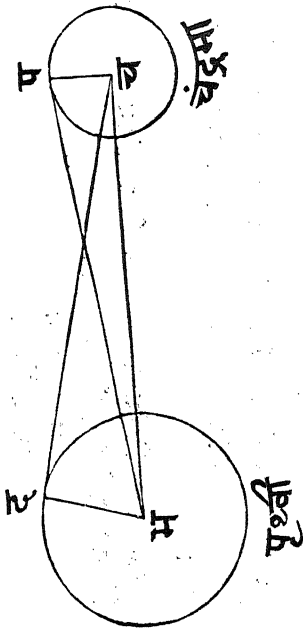
चित्र नं० ८४

इनके लम्बनका पता नहीं लग सकता। परन्तु यदि पूरे वर्ष-भर तक किसी तारेका वेध किया जाय तो पृथ्वीकी वार्षिकगति-के कारण एकही द्रष्टाके स्थानोंमें बहुत अंतर पड़ता जाता है जिससे देख पड़ता है कि तारेमें भी कुछ लम्बन होता है। यह अभी सिद्ध हुआ है कि पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९,३०,००००० मील के लगभग है। यह विदित ही है कि पृथ्वी एक वर्षमें सूर्यकी परिक्रमा कर लेती है। इस लिए ६ मासमें पृथ्वी आधा परिक्रमा करती है। अब यदि किसी तारेका वेध किसी दिन किया जाय और फिर ६ महीनेके बाद उसी तारेका वेध किया जाय तो द्रष्टा के स्थानोंका अन्तर १,८,६०,००,००० मील हो जाता है जिससे तारेकी दिशामें कुछ परिवर्तन देख पड़ता है। यह परिवर्तन लम्बनके कारण होता है। जब द्रष्टाके दो स्थानोंका अंतर अठारह करोड़ साठ लाख मील दूर होता है तब भी सब तारोंका लम्बन नहीं देख पड़ता है क्योंकि बहुत से तारे हमसे इतनी दूर हैं कि पृथ्वीकी कक्षाका व्यास भी उनके सामने शून्यके समान है। इस लिए बहुत सूक्ष्म यंत्रोंसे भी थोड़े ही तारोंका लंबन नापा जा सका है।

वार्षिक लंबन—किसी तारेका वार्षिक लंबन वह कोण है जो पृथ्वीकी कक्षाके अर्द्ध व्यासके सम्मुख तारेपर बनता है। चित्र ८५ में यदि भ पृथ्वी, स सूर्य और त किसी तारेके स्थान हों तो त का वार्षिक लंबन कोण स त भ अथवा लु के समान है।

जिस प्रकार चंद्रमा या ग्रहका लंबन जानने के लिए सूत्र स्थापित किये गये हैं उसी तरह तारेका लंबन जाननेका सूत्र भी स्थापित हो सकता है।

$$\frac{\text{ज्या लु}}{\text{ज्य स भ त}} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

$$\therefore \text{ज्या लु} = \text{लु} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}} \times \text{ज्या स भ त}$$
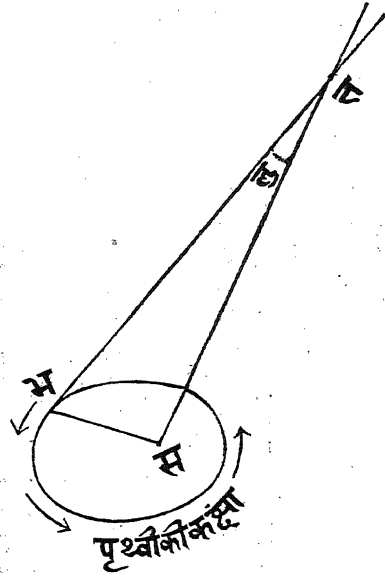
चित्र नं० ८५

अर्थात् किसी तारे का वार्षिक लंबन उस कोणकी ज्याके अनुपात

में होता है जो उस तारे और सूर्यके बीच भूकेन्द्रपर बनता है। यह स्पष्ट है कि जब कोण स भ त ९०° के समान होता है अर्थात् जब तारेका भोगांश सूर्यके भोगांशसे ९०° आगे या पीछे होता है तब लंबनका परिमाण महत्तम होता है। इसलिये किसी तारेका महत्तम लंबन वर्षमें दो बार देख पड़ता है। इसका सूत्र यह है:—

$$\text{तारेका महत्तम लंबन} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

यदि महत्तम लंबनको लू मान लिया जाय तो तारेका किसी समयका लंबन

$$\text{लु} = \text{लू} \times \text{ज्या स भ त}$$

साधारणतः तारेके महत्तम लंबनको ही तारेका लंबन कहते हैं।

ऊपरके सूत्रोंमें लु और लू रेडियनके दशमलव भिन्नमें हैं। यदि इनको विकलाओंमें लिखा जाय तो

$$\frac{\text{लू विकला}}{२०६२६५} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

इससे सिद्ध होता है कि यदि लू मालूम हो तो स त अर्थात् तारेकी दूरी मालूम हो सकती है क्योंकि स भ तो मालूम ही है।

उदाहरण—यदि किसी तारेका वार्षिक लंबन ०″·८ हो तो सूर्यसे उस तारेकी दूरी बतलाओ।

$$\frac{०{\cdot}८}{२०६२६५} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

$$\therefore \text{स त} = \frac{२०६२६५}{{\cdot}८} \times \text{स भ} = २,५७,८३१ \text{ स भ}$$

अर्थात् सूर्य पृथ्वीसे जितनी दूर है उसकी २,५७,८३१ गुना दूर सूर्यसे वह तारा है।

$$\text{मीलोंमें यह दूरी} = २,५७,८३१ \times ९,३०,००,०००$$
$$= २,३९,७८,२८,३०,००,०००$$

इससे यह सिद्ध है कि यदि तारोंकी दूरी मीलोंमें लिखी जाय तो बहुत बड़ी संख्यका व्यवहार करना आवश्यक होगा जिसमें सुभीता नहीं है। इसलिए ज्योतिषियोंने इतनी बड़ी दूरीको प्रकट करनेके लिये एक और इकाई स्थिर की है जिसे प्रकाश वर्ष कहते हैं। एक वर्षमें प्रकाश जितनी दूर चलता है उसे प्रकाश वर्ष कहते हैं। यह कई प्रयोगोंसे सिद्ध हो गया है कि सूर्यका प्रकाश पृथ्वी तक ८ मिनट १८ सेकंडमें पहुँचता है अर्थात् प्रकाशकी गति प्रति सेकंड १,८६,००० मील है। इसलिये एक सायन वर्षमें प्रकाश ३६५·२४२२ × २४ × ६० × ६० × १८६००० मील अथवा ५८,६९,५८,८२,५०,८८० मील चलता है। इसलिये इसी दूरीको एक प्रकाश वर्ष कहते हैं।

यह भी याद रखना चाहिये कि जहां इतनी बड़ी दूरियोंका हिसाब लगाया जाता है वहां लाखों मीलकी दूरीका भूल रह जाना साधारण बात है क्योंकि यदि किसी तारेके लंबनके बेध करनेमें ·००१ विकलाकी भूल रह जाय, जो असम्भव नहीं है, तो उसकी दूरीमें बहुत अन्तर पड़ सकता है।

नीचे एक सारिणी * दी जाती है जिससे जान पड़ेगा कि कुछ तारोंके लंबन और उनकी दूरियां क्या हैं। यह सारिणी R. S. Ball Spherical Astronomy पृष्ट ३२८ से ली गयी है:—

है, इसके पहले नहीं। जैसे पत्रके द्वारा किसी दूरके मित्रका जो कुछ समाचार मिलता है वह उस समयका समाचार होता है जिस समय पत्र लिखा जाता है न कि इसके पहुंचनेके समयका।

आजकल दूरदर्शक यंत्रोंसे ऐसे तारोंका भी परिचय मिला है जो यहांसे लाखों प्रकाश वर्ष दूर हैं।

वार्षिक लम्बनके कारण तारा वर्ष भरमें एक नन्हेंसे दीर्घवृत्तपर चलता हुआ जान पड़ता है।
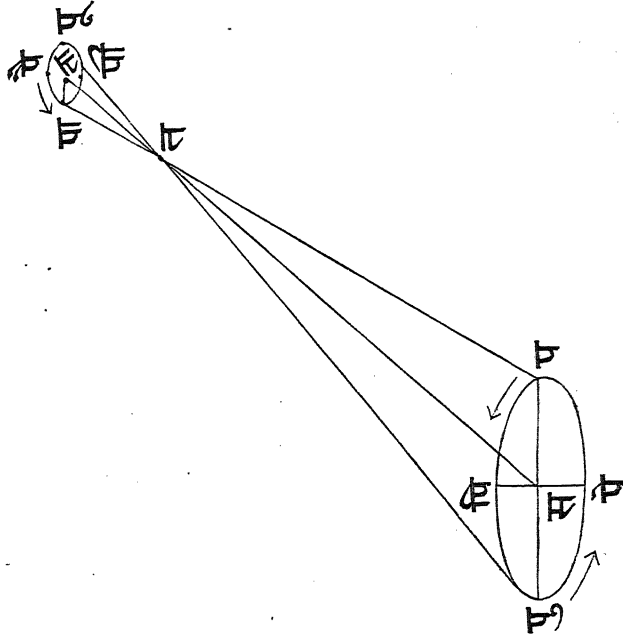
चित्र ८६

नाम अंगरेज़ीमें	नाम हिन्दीमें	वार्षिक लंबन	पृथ्वीसे सूर्यकी दूरीकी कितने गुनी दूरी	प्रकाश वर्षमें दूरी
∝ Centauri	...	०″.७४० ± ०″.०१	२,८०,०००	४.४
61 Cygni	...	०.३७ ± ०.०२	५,६०,०००	८.८
Sirius	लुब्धक	०.३७ ± ० ०१	५,६०,०००	८.८
Procyon	प्रश्वा	०.३१	६,६०,०००	११
Altair	श्रवण	०.२८ + ०.०२	७,४०,०००	१२
Aldebaran	रोहिणी	०.१७ + ०.०२	१४,००,०००	२२
Capella	ब्रह्म-हृदय	०.१२ + ०.०२	१७,०[illegible],०००	२७
Vega	अभिजित्	०.१२ + ०.०२	१७,००,०००	२७
Polaris	ध्रुव तारा	०.०७ + ०.०२	३०,००,०००	४७
Arcturus	स्वाती	०.०२४	८७,००,०००	१४०
∝ Gruis	...	०.०१५	१,४०,००,०००	२२०

प्रकाश वर्षकी दूरीकी कल्पना इस प्रकार की जा सकती है। जब यह कहा जाता है कि आकाशमंडलका सबसे चमकीला तारा लुब्धक हमसे ८.८ प्रकाश वर्ष दूर है तब इसका अर्थ यह भी होता है कि लुब्धकको जो किरण इस समय हमारी आंखोंमें पहुँचकर लुब्धकका परिचय करा रही है वह वहांसे ८.८ वर्ष पहले चली थी अर्थात् यह आजकी किरण लुब्धककी ८.८ वर्ष पहलेकी दशा बतला रही है। अब लुब्धक की क्या दशा है इसका ज्ञान आजसे ८.८ वर्ष बाद हो सकता

चित्र ८६ में स सूर्य है, प, पि, पु, पे चार बिंदुओंपर पृथ्वी अपनी वार्षिक परिक्रमा करती हुई दिखलाई गई है। त तारेका स्थान है। यदि प और स से दो रेखाएं त तक खींचकर और आगे, त से भी बहुत दूर स्थित तारोंके पास पहुँचायी जायं तो स सूर्यसे देखनेपर तारा ता स्थानपर और पृथ्वीसे देखनेपर पा स्थानपर देख पड़ेगा। इसी तरह जब पृथ्वी पि, पु और पे बिंदुओंपर रहेगी तब तारा क्रमानुसार पी, पू और पै बिंदुओंपर देख पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि तारा पा पी पू पै बिंदुओंसे बनी हुई कक्षापर घूमता हुआ देख पड़ेगा। यह छोटी कक्षा क्रान्तिवृत्त प पि पु पे के समानान्तर तलपर होगी और इसका आकार दीर्घवृत्तकी तरहका देख पड़ेगा।

जो तारा क्रन्तिवृत्तीय ध्रुवों अर्थात् कदम्बोंपर होता है उसकी कक्षा केवल वृत्तके आकार की देख पड़ती है क्योंकि ऐसी दशामें इस छोटी कक्षाका तल हमारे दृष्टिसूत्रसे समकोणपर रहेगा। परन्तु जो तारा क्रान्तिवृत्तपर होता है वह मध्य स्थानसे छः महीनेतक पूरब और छः महीनेतक पच्छिम देख पड़ेंगे जैसे किसी वृत्तपर घूमता हुआ पिंड उस समय केवल आगे बढ़ता हुआ या पीछे हटता हुआ जान पड़ता है जबवृत्त का तल देखनेवालेके दृष्टिसूत्रकी ही सीधमें हो। तारेके वार्षिक लंबन जाननेकी विधि भी प्रायः उसी तरह है जैसा चित्र ८१ में बतलाया गया है। परंतु इस कामके लिए बहुत सूक्ष्म वेध करना पड़ता है जिसकी चर्चा करनेकी आवश्यकता यहां नहीं जान पड़ती।

भूचलन संस्कार (Aberration)

यह ऊपर बतलाया गया है कि प्रकाश एक सेकंडमें १,८६,००० मील चलता है। पृथ्वी भी वर्ष भरमें सूर्यकी परिक्रमा करती है जिससे यह अपनी कक्षामें प्रति सेकंड १८½ मील चलती है क्योंकि पृथ्वीकी कक्षाका परिमाण २ π × ९,३०,००,००० मील है और एक वर्षमें ३६५.२४२२ × २४ × ६० × ६० सेकंड होते हैं, इसलिए पृथ्वीकी कक्षाको एक वर्षके सेकंडों से भाग देनेपर १८½ मीलके लगभग आता है। इन दोनों गतियोंके कारण दूरदर्शक यंत्रमें आकाशीय पिंडोंका जो स्थान देख पड़ता है वह यथार्थ स्थानसे कुछ आगे या पीछे होता है। किसी पिंडके यथार्थ और स्पष्ट स्थानमें इन दोनों गतियोंके कारण जो अंतर देख पड़ता है उसे भूचलन संस्कार (Aberration) कहते हैं। इसकी मीमांसा करनेके पहले संक्षेपमें यह बतलाना आवश्यक है कि प्रकाश की गति कैसे नापी गयी और दो गतियोंके संयोगसे पदार्थोंके यथार्थ और स्पष्ट स्थानोंमें कैसा अंतर देख पड़ता है।

प्रकाश की गति—प्रकाशकी गति नापनेकी कई रीतियां हैं। इनमेंसे पहली रीतिकी चर्चा यहांकी जायगी:—

प्रकाशकी चालका पता रोमर नामक ज्योतिषीने संवत् १७३२ विक्रमीयमें लगाया। इसके पहले किसीकी कल्पना में भी यह बात नहीं आयी थी कि एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेमें प्रकाशको भी कुछ समयकी आवश्यकता पड़ती है। रोमरने कैसे इस बातका पता लगाया यह भी आश्चर्यजनक है। आप लोगोंने चन्द्रग्रहण और सूर्य ग्रहण कई बार देखा होगा। चंद्र ग्रहणके समय पृथ्वी सूर्य और चंद्रमाके बीच आजाती है इसलिए चंद्रमा पृथ्वीकी छायामें पड़ जाता है। जब पूरा चन्द्रमा छायामें आजाता है तब पूर्ण ग्रहण लगता है और जब कुछ ही भाग छायामें पड़ता है तब खंड

ग्रहण लगता है। जैसे चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमता है और कभी आधा, कभी चौथाई, कभी तीन चौथाई देख पड़ता है वैसेही वृहस्पतिके चारों ओर चार पांच चंद्रमा चक्कर लगाते हैं। वृहस्पतिके चंद्रमा इतने छोटे हैं कि बिना दूरबीनके देखे नहीं जा सकते । चंद्रमा घूमते घूमते बहुत जल्दी जल्दी वृहस्पतिकी छायामें चले जाते हैं इसलिए कुछ देरतक दिखाई नहीं पड़ते। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब बृहस्पतिके चन्द्रमा उसकी छायामें पड़ जाते हैं तब उनका ग्रहण लगता है। इन ग्रहणोंके समय भी गणना करके कई वर्ष पहले उसी प्रकार जान लिये जाते हैं जिस प्रकार सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय। जहाज़वाले तो इन ग्रहणोंको देख कर घड़ीका काम लेते हैं । बस इसीके सम्बन्धमें सोचते सोचते रोमरको प्रकाशकी गतिका पता मिला।
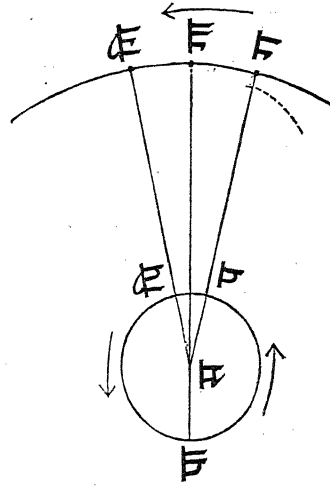
चित्र ८७

कल्पना कीजिए कि चित्र ८८ में स सूर्य है, प पा पि पृथ्वी के तीन स्थान अपनी कक्षापर हैं और ग गा गि गुरु अथवा वृहस्पतिके तीन स्थान वृहस्पतिकी कक्षा पर हैं। पृथ्वी और गुरु दोनों एकही दिशामें सूर्यकी परिक्रमा क्रमानुसार १ और १२ वर्षमें करते हैं। जिस समय सूर्य पृथ्वी और गुरु क्रमसे स प और ग स्थानोंमें होते हैं उस समय पृथ्वी गुरुके बहुत पास होती है और जिस समय पृथ्वी प पर, गुरु ग पर और सूर्य मध्यमें होते हैं उस समय पृथ्वी गुरुसे अत्यन्त दूर हो जाती है। प से पा पर पहुँचनेमें पृथ्वीको ६॥ महीने लग जाते हैं। १३ महीनेमें पृथ्वी प से पा पर होती हुई फिर पि पर पहुंचकर सूर्य और गुरुके बीच आ जाती है। जैसे जैसे पृथ्वी प से चल कर पा के पास होती जाती है तैसे तैसे वृहस्पतिके चन्द्रमाके ग्रहणका प्रत्यक्ष समय गणितसे जाने हुए समयसे पीछे पड़ता जाता है और जब पृथ्वी पा पर पहुँच जाती है और वृहस्पति गा पर अर्थात् पृथ्वी वृहस्पति से बहुत दूर हो जाती है तब गणित-सिद्ध कालसे प्रत्यक्ष काल सबसे अधिक पिछड़ जाता है। रोमरने ग्रहणकाल जाननेकी रीति अनेक वेधोंसे निश्चित की थी, जब पृथ्वी गुरुसे दूर और निकट प्रत्येक दशामें रही थी। इसलिए इस रीतिसे ग्रहणकालका जो समय आता था वह मध्यममानके अनुसार ठीक होता था। इस कालसे प्रत्यक्षग्रहण जितने परिमाणमें पिछड़ता था उसका आरम्भ वह उस समय-से करता था जिस समय पृथ्वी गुरुके अत्यन्त निकट रहती थी अर्थात् जब वह प विन्दु की दशामें रहती थी। इसी प्रकार जब पृथ्वी प से आगे बढ़कर वृहस्पतिके पास पहुँचती जाती थी तब गणित-सिद्धकालसे प्रत्यक्ष-ग्रहणकालका पिछड़ना कम पड़ता जाता था। जब पृथ्वी पि पर और वृहस्पति ग पर हो जाते थे तब प्रत्यक्ष और गणित सिद्धकालोंका अन्तर शून्य हो जाता था अर्थात् प्रत्यक्ष ग्रहणका समय भी वही होता था जो गणितसे ठीक आता था। चित्र ८८ से जान पड़ेगा कि गणित-से निकाले हुए ग्रहणके समय और प्रत्यक्ष ग्रहणके समयमें जो सबसे अधिक अन्तर पड़ता है वह उन दोनों समयोंके अंतरके

समान होगा जितनेमें गुरुके चंद्रमाका प्रकाश ग से प तक और गा से पा तक जाता है अर्थात् यह अंतर उस समयके समान होगा जितनेमें प्रकाश पृथ्वीकी कक्षाके व्यासके समान दूरी तै करता है।

अनुभवसे यह जाना गया है कि पा और प से देखनेपर ग्रहणोंके समयमें जो अन्तर पड़ता है वह सबसे अधिक होता है और १६ मिनट ३६ सेकंडके समान होता है। पृथ्वीकी कक्षाका अर्द्धव्यास ९,३०,००,००० मीलके लगभग है इसलिए इसका व्यास १८,६०,००,००० मील हुआ। इसलिए जब प्रकाश इतनी दूर चलनेमें १६ मिनट ३६ सेकंडका समय लेता है तब एक सेकंडमें इसकी गति १८,६०,००,००० ÷ ९९६=१,८६,००० मीलके लगभग।

इसके बाद कई अन्य वैज्ञानिकोंने प्रकाशकी गति नापनेके प्रयोग किये। इन सब प्रयोगोंसे जो फल निकले वे प्रायः एक-से हैं। इन प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो गया कि प्रकाशकी गति १,८६,३५० मील है।

जब यह सिद्ध हो गया कि प्रकाश गतिमान है तब यह समझ लेना कठिन नहीं है कि यदि गतिमान प्रकाश किसी दूसरी गतिवाली वस्तुमें प्रवेश करे तो इसकी दिशामें परिवर्तन हो जायगा। उदाहरणके लिए मान लो कि एक रेलगाड़ी ६० मील प्रति घंटेके हिसाबसे दौड़ी चली जा रही है। यदि एक बन्दूक रेलगाड़ीको लक्ष्य करके इस तरह चलायी जाय कि गोली गाड़ीकी दिशासे समकोण बनाती हुई एक ओर घुसे और दूसरी ओर आर-पार निकल जाय तो क्या गोली गाड़ीके डब्बेके भीतर भी उसकी दिशा से समकोण बनाती जायगी? जितनी देरमें गोली रेलगाड़ीके सामने दीवालसे पीछेकी दीवाल तक पहुँचेगी उतनी देरमें गाड़ी कुछ आगे बढ़ जायगी और गोली पीछेकी दीवालमें घुसनेके छेदके ठीक सामने न लगकर कुछ पीछे पड़ जायगी। कल्पना करो कि र ल गाड़ीका एक डब्बा है जो र की ओर ६० मील प्रति घंटे या ८८ फुट प्रति सेकंड की गतिसे आगे बढ़ रहा है और ब स्थानसे बन्दूक ऐसी दागी गई कि गोली ब ग दिशामें चलती हुई डब्बेमें ग स्थानसे घुसती है। जिस समय गोली ग पर आयी डब्बा र ल स्थितिमें था। यदि गाड़ी स्थिर होती तो गोली घ स्थान पर छेद करती हुई बाहर निकल जाती। परन्तु बात ऐसी नहीं होने पाती क्योंकि जिस समय गोली ग छेदसे घुसकर घ की ओर जाती रहती है उस समय गाड़ी भी आगे बढ़ी जा रही है। इसलिए जिस समय गोली पीछेकी दीवाल तक पहुँचे उस समय डब्बा रा ला स्थितिमें हो गया और घ की जगह गा बिन्दु सामने आ गया। इसलिए गोली गा पर छेद करती हुई देख पड़ेगी। डब्बेमें बैठे हुए मुसाफिर कहेंगे कि गोली ग गा दिशासे आयी, इसलिए बन्दूक चलानेवाला बा स्थानकी सीधमें रहा होगा।
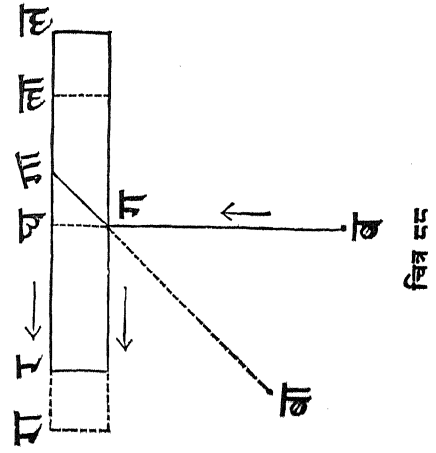
चित्र ८८

[शेष फिर]

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २२ { मीन, संवत् १९८२ } संख्या ६

अगम्य विश्व और उसके कुछ प्राचीन वेत्ता

[ले० पं० श्री गोविन्द तिवारी एम. एस-सी.]

विश्व क्या है अथवा उसके परिमाणका कुछ भी ज्ञान कर लेना यह एक कठिन कार्य है। इस विश्वमें हमारी पृथ्वी एक कणके तुल्य भी नहीं है, यह अत्यन्त अविश्वसनीय प्रतीत होता है, तथापि सच तो यही है कि यदि आप विश्वकी सीमा कुछ भी बांधें, इस पृथ्वीका समानुपात एक सुईके नोकके तुल्य भी कहना उसे बहुत बढ़ा देना है। पहले तो इस सूर्यमण्डलमेंही देखिये। सूर्य भगवान मध्यमें विराजकर अपनी ज्योतिसे सूर्यमण्डल भरको प्रकाशित करते हैं। वे स्वयं ही आठों ग्रहों* तथा अवान्तर ग्रहोंको मिला कर भी बड़े हैं। उनका व्यास (diameter) ही ८,६६,००० मील है। इनके निकट बुध अपनी कक्षा (orbit) पर चक्कर लगाया करते हैं। यह कमसे कम २९,०००,००० मील और अधिकसे अधिक ४३,०००,००० मीलकी दूरीपर सूर्यसे रहते हैं। यह सबसे छोटा ग्रहहै और इसका व्यास केवल ३,००० मील है। इनके बाद सूर्यसे लगभग ६७,११२,००० मील शुक्र अपनी कक्षापर

*वस्तुतः आठ ही ग्रह हैं—बुध (mercury), शुक्र (venus), पृथ्वी, मङ्गल (mars), बृहस्पति (Jupiter), शनि (saturn), वारुणी (uranus) और वरुण (neptune)

परिक्रमण किया करते हैं। यह पृथ्वीके बराबर गोल है, क्योंकि इसका व्यास लगभग ७,४३८ मील है। तदनन्तर पृथ्वी सूर्यसे लगभग ९३,०००,००० मील रहा करती है और इसका व्यास भी भूमध्य रेखापर ७,९२७ मील है। मंगल १४१,०००,००० मीलपर है और इसका व्यास ४,२०० मील है। तत्पश्चात बृहस्पति ४८३,०००,००० मील मध्यम दूरीपर है और उसका व्यास ८७,००० मील है। यह सबसे बड़ा ग्रह है और ३१६ पृथ्वी मिलकर इसके बराबर होती हैं। इसके बाद शनि ८८६,०००,००० मील सूर्यसे दूर है और उसका व्यास उसके गोलाकार वलय (ring) को छोड़कर ७१,००० मील है। फिर वारुणी जिसका व्यास ३१,७०० मील है, १८००,०००,००० मील सूर्यसे दूर रहता है और सबसे अन्तिम ग्रह वरुण जिसका व्यास ३५,००० मील है, २८००,०००,००० मील दूर है। इस प्रकार से सूयमण्डलका व्यास लगभग ५६००,०००,००० मील हुआ। ऐसे ही विश्वमें कितने ही सूर्य-मण्डल हैं जिनकी गिनती ही नहीं हो सकती और सब अपने रागमें मस्त हैं। अधिकतर जितने नक्षत्र सूर्य माने जाते हैं इस हमारे सूर्यसे कई सौ गुना बड़े हैं। दो सूर्यमण्डलोंके बीचमें बहुत फ़ासला होता है। इस फ़ासलेका अनुमान करनेके लिये एक उदाहरण लेना आवश्यक है। समीपके नक्षत्रोंमें अल्फ़ा सेन्टारी (Alpha centauri) हीको लीजिये जो दक्षिण गोलार्धमें सेन्टारस centauru नक्षत्र मण्डलमें ख़ूब चमकता है। यह सूर्यका निकट पड़ोसी भी, जितनी दूर सूर्यमण्डलका अन्तिम ग्रह वरुण है उसका ६,००० गुना दूर है। सबसे तेज चाल विद्युन-लहर या प्रकाश-लहरकी है जो लगभग १८६,००० मील एक सेकंडमें जाती है। सूर्यसे वरुणतक इस लहरको पहुँचानेमें सवा चार घंटे लगेंगे और इस अल्फ़ा सेन्टारी तक पहुँचनेमें ४.३ वर्ष लगेंगे। यदि उस दूरीको जिस तक कि प्रकाशलहर एक वर्षमें पहुँचे हम एकाई मान लें यानी ५८८३,०००,००० मीलको हम एक मानें, तो फिर हम कुछ विश्वको माप सकते हैं।

नक्षत्र उनके दूरीके परिमाणके हिसाबसे विभाजित किये गये हैं। ध्रुव जिसकी रोशनी ६० वर्षमें यहाँ आती है पहलो परिमाण में है। आठवें परिमाण वाले नक्षत्रकी रोशनी लगभग ८०० वर्षमें यहाँ आवेगी। यह कैसी अचरजकी बात मालूम होती है कि यदि किसी कारण वश आठवें परिमाणका एक नक्षत्र इसी क्षण विलुप्त हो जाय तो भी लगभग ७०० वर्षके उपरान्ततक उसकी रोशनी आती रहेगी। इस महान विशाल आकाशकी कोई व्याख्या करना असम्भव है। यह अगणित संख्यायें हम लोगोंके हृदयोंमें यही भाव संचार करती हैं कि पृथ्वी क्षुद्र पदार्थ और फिर उसपर विचरने वाले मनुष्यकी क्षुद्रताका ठिकाना क्या है। परन्तु यह जीव अपने ही झगड़ोंमें व्याप्त है। कहीं इस देशपर आक्रमण हुआ, कहीं कोई साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया। इस महान विश्व-साम्राज्यका संचालन कितनी शान्तिके साथ हो रहा है इससे मनुष्यने कोई शिक्षा न प्राप्त की।

चीनके प्राचीन लेखकोंके अनुसार नक्षत्रोंके सम्बन्धकी चर्चा ईसाके ३,००० वर्ष पूर्व महाराज फूहीके समयसे प्रारम्भ हुई। तत्पश्चात बेबीलोनिया, मिश्र और यूनानके लोगोंने विश्वके गोरखधंधेका हल करनेमें बुद्धि और समयलगाया। अरिस्टिलस (Aris tyllus) ने प्रधान नक्षत्रोंके स्थानोंको निश्चित किया और अरिस्टार्कस (Aristarchus) ने तो सूर्य और चन्द्रमाकी दूरी मालूम करनेका प्रयत्न किया। इन्होंने यह भी भूमिका बांधी कि पृथ्वी अपनी अक्ष (Axis) पर चक्कर काटती है और सूर्यकी परिक्रमा एक वर्षमें करती है। एरेटास्थीनीज़ (Eratosthenes) ने ईसाके २३० वर्ष पूर्व पृथ्वीका परिमाण निर्धारित किया। हिपार्कस (Hipparchus) ने, जो अपने

समयका अद्वितीय ज्योतिषी था, एक क्रमानुसार नक्षत्रोंकी सूची तैयारकी जिसका उल्लेख अभीतक कभी कभी किया जाता है। सन् १५० में टालेमी (Ptolemy) ज्योतिषको कुछ ठीक ढंगपर ले आये और उन्हें विश्वका कुछ उचित ज्ञान था। इधर अब यूनानने अपने कला कौशलका चमत्कार खोना आरम्भ कर दिया। दूसरी शताब्दीसे लेकर आठवीं शताब्दीतक यूरोपमें ज्योतिष विद्या लुप्त सी हो गई। परन्तु अन्ध विश्वास तथा फलित ज्योतिषका अधिक प्रचार प्रारंभ हुआ। गणित ज्योतिषने इस कालमें अरबमें शरण ली। इसी कालमें भारतवर्षमें भी ज्योतिष फलित और गणित दोनोंका खूब प्रचार प्रारम्भ हुआ। हमारे इस कथनका यह अर्थ नहीं है कि ईसाके पूर्व शताब्दियों में भारतमें कोई गणितज्ञ ही नहीं हुआ। फलित ज्योतिषके विषयमें तो मेरा यह मत है कि जितना विकाश भारतमें हुआ उतना और किसी देशमें इस कालमें नहीं हुआ। सच तो यही है कि ईसाके बाद तेरहवीं शताब्दीतक गणितमें भारत सबसे आगे रहा। इन्होंने अपनी शक्तियां फलितमें अधिक लगादीं और फिर कुछ देशपर दुर्घटनाओंके कारण यह उत्तम पदसे च्युत होगया। जर्मन लेखक ब्रूनो एच.बुरगेल (Bruno H. Buirgel) से हम कदापि सहमत नहीं हैं कि फलित ज्योतिष केवल अन्ध विश्वासका भेद है। उनका कुछ कुछ यह भी मत है कि भारतसे अधिक मिश्र इत्यादि देशोंमें इसका अधिक प्रचार हुआ।

कमसे कम भारतमें फलितका धर्मसे इतना संबन्ध था कि गणित भागको छोड़ा कर लोगोंने फलितको श्रेष्ठतर माना। दूसरे इसी कालमें आर्यभट्ट (४७०सन्) लल्ला (४९१), वराहमिहिर (५०५), ब्रह्मगुप्त (५९८—६६०), श्रीधर (८५१), महावीर (८५०), आर्यभट्ट द्वितीय (९७०) और उत्पल (९७०), इतने महान गणितज्ञ हुए। भास्कराचार्यके विषयमें बापूदेव शास्त्रीका विश्वास था कि वे कलन (calculus) का कुछ ज्ञान रखते थे। यूरोपियन लेखक स्पाटिस्वर्डे (Spottis worde) का भी यही मत है। इनके २७ नक्षत्रों और ९ ग्रहों-के विषयमें यदि अवकाश मिला तो मैं अपने विचार फिर प्रकाशित करूँगा। यह जो कुछ भी फलित ज्योतिषकी लीला है उसी समयकी निकाली हुई है। इसमें और कुछ भी विशेष रूपसे जोड़ फिर नहीं हुआ। बुरगेल महाशयके लिये इतना ही उत्तर उचित होगा।

यूरोपमें पहला यन्त्रालय (observatory सन् १४७१ में जर्मनीमें नूरेनबर्गमें रीगियामाण्टनस (Regiomontanus) और वाल्टर (Walter) ने खोला था। सन् १४७३ में निकोलस को-निकस उत्पन्न हुए जिन्होंने सूर्य मण्डलका ठीक ठीक ज्ञान कराया। उनके बाद टाइको ब्रहे (TychoBrahe) ने जो डेनमार्कके रहनेवाले थे, गणित ज्योतिषमें बड़ा परिश्रम किया। इनके शिष्य केपलर (Keplər) ने सबसे पहले ग्रहोंकी गतिके नियम निर्धारित किये। इनका विश्वास कुछ कुछ फलित भागपर भी था।

सन् १६०८में दूरदर्शक यन्त्रका अविष्कार हुआ। फिरतो ज्योतिषियोंने नई नई बातें बतलानी आरंभ करदीं। गेलीलियो (Galileo), हेवल (Hevel), हेली (Halley), ब्रैडले (Bradloy), केसीनी (Cassini) और हर्शल (Horschel) इत्यादि बड़े महारथी ज्योतिषी हुए और इन लोगोंने वर्णनात्मक ज्योतिषकी उत्पत्तिकी। न्यूटन (Newton), यूलर (Euler), गास (Gauss), लप्लास (Laplace) और लग्रांज (Lagrange) जो बड़े भारी गणितज्ञ थे ज्योतिषके प्रकाशको और उज्ज्वल बना गये और इन्हीं लोगोंके कारण यह शास्त्र स्वतंत्र होगया। ठीक ठीक हरएक ग्रहकी गति, दूरी, मात्रा निर्धारिता होगई और ग्रहोंके उपग्रहोंका भी पूर्णतया प्रमाण मिलगया।

इसी बीचमें सन् १८५९ में रश्मिवर्ण विश्लेषण (spectrum analysis) का आविष्कार हुआ और इसके कारण ग्रहोंके रसायन संघट्टन (ch-

mical composition) का पता लगने लगा। क्योंकि इसके कारण रोशनी को हो विश्लेषण करने से पदार्थके संघट्टनका पता लग जाता है इसका कारण यही है कि हरएक तत्वका रश्मिवर्ण पृथक पृथक होता है। ज्योतिष शास्त्रको फ़ोटोग्राफ़ीसे भी अमूल्य सहायता मिली और शास्त्रज्ञोंको बड़ी सुविधा होगई। इसके लिये लुई डगरे (Louis Daguerre) के सब कृतज्ञ हैं। जो नकशा महीनोंमें तैयार होता था वह एक पलमें और उससे अधिक ठीक बनने लगा।

यह जान कर पाठकोंको आश्चर्य होगा कि कुछ लोगोंका मत है कि यंत्रालयमें स्त्रियां अधिक उपयोगी होती हैं क्योंकि इनके प्रयोगोंमें बड़ी सहिष्णुता और धैर्य चाहिये और यह स्त्रियोंमें अधिक होता है। यही कारण है कि यन्त्रालयोंमें वेध और गणना विभाग में स्त्रियां अधिक रूपमें विद्यमान हैं। बहुत सी महिलायें इस शास्त्रमें विशारद भी हो चुकी हैं और अधिकतर अमरीकामें हुईं। हम यहाँपर सोंजा कोवालयुस्की (Sonja Kowalewski) का नाम बिना लिये नहीं रह सकते। यह विदुषी सन् १८५० में मास्कोमें उत्पन्न हुई थी और १८९१ में इसका देहान्त हुआ। मृत्यु के समय ये स्टाकहम (Stockholm) विश्वविद्यालय में गणितकी प्रधान अध्यापिका थीं। इन्होंने शनिके वलयपर बहुतसे नवीन निबन्ध लिखे हैं।

इतने आविष्कार होने पर भी विश्व उतना ही अगम्य है जितना कि हो सकता है, और "नेति नेति" उसके लिये अत्यन्त उचित पद होगा। जबकि पृथ्वी का ही पता इस विश्वमें नहीं है तो मनुष्यका तो कहना ही क्या है। परन्तु उसकी बुद्धि कितनी तीव्र है कि उस अगम्यको भी जाननेके लिए प्रस्तुत है और कुछ न कुछ अपने चमत्कार दिखलाती ही रहती है।

तितली और उनके विवाह उत्सव

[ले० श्री एम. एन. दत्त, एम-एससी.]

मेरे जीवनमें वह एक अत्यन्त आनन्ददायक रात्रि थी। मैं उस रात्रिको "तितलियोंकी मनोहर रात्रि व विवाहोत्सव रात्रि" कहूँगा। उस रात्रिको मेरे मकानपर उन सुन्दर जीवोंका समागम था। उस मनमोहनी तितलीको कौन नहीं जानता। उसके सुन्दर गेहुँवाँ रंगका कोमल मखमली शरीर, उसके गले
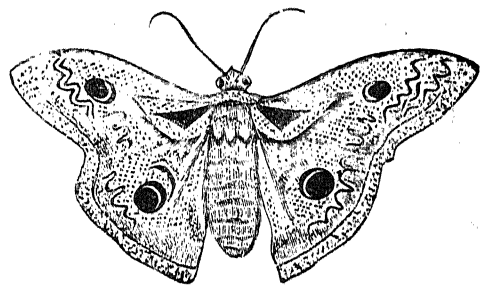
चित्र १

पर सफ़ैद परोंकी हँसुली और उसके पंख जो कि कत्थई और खाकी रंग का है, उसपर लहरदार पीले धब्बे और किनारोंमें धुयें का रंग है। हरेक पंखके मध्यमें एक सुफ़ैद गोल धब्बा है जिसके भीतर आंखकी तरह काली पुतली और उसके चारों ओर रंगबिरंग के बिन्दु हैं।

उसके बच्चे जो सुर्यकी तरह होते हैं उसे कैटर पिलर कहते हैं (चित्र नं: ३)
यह एक विचित्र मैले पीले रंग का होता है। उसके घोंसले जो कि डिम्बाकार होते हैं उसे 'कोकून' कहते हैं (चित्र नं: ४)। यह पुराने बादामके वृक्षके नीचे पाये जाते हैं और इसके बच्चे उनकी पत्तियों से पलते हैं।

एक दिन मेरे प्रयोगशाला (लेबोरेटरी) में कोकूनमें से एक बच्चा निकला और वह भोगी हुई
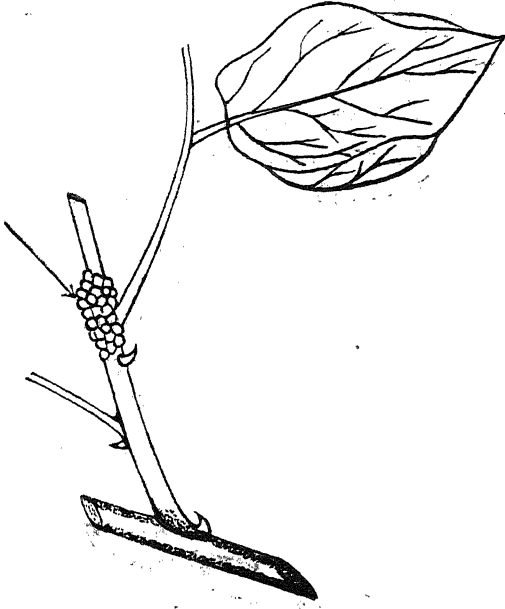
चित्र २—एक बेरके वृक्षपर तितलियोंके डिम्भ

तितली एक तारके जालीदार बक्समें बन्द कर दिया गया। इस कार्यसे मुझे कोई अभिप्राय न था, परन्तु इससे मुझे लाभ हुआ। रात्रिके ९ बजेके समीप जब कि सब लोग सोनेको जा रहे थे अचानक मेरे पासके कमरेसे कुछ शब्द सुनाई पड़ा। उठ कर देखा कि एक छोटा बच्चा उछल २ कर कह रहा है कि यहाँपर अनेक तितलियाँ जो कि पत्तियोंकी तरह बड़ी हैं, आई हुई हैं। मैं शीघ्र दौड़ गया और देखा कि अनेक बड़ी बड़ी तितली ऊपरे में उड़ रही हैं। इतनी बड़ी कभी मेरे मकानपर नहीं आई थीं। मेरे पहुंचने तक बच्चा उनमें से पांच पकड़ कर एक पिंजड़ेमें बन्द कर चुका था, और बाकी कमरेके ऊपरी भागमें उड़ रही थीं।
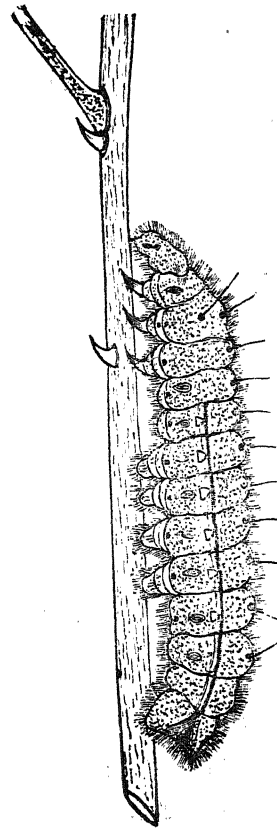
इसको देख कर मेरे ध्यानमें सवेरेकी मादा तितली की बात याद आई। तब बच्चेको मैं ने कहा कि कपड़े पहनलो और पिंजड़ेको रखकर मेरे संग आओ मैं तुम्हें एक बहुत अच्छा दृश्य दिखाऊँगा।

नीचे उतर कर मैं अपनी प्रयोगशालामें जा रहा था, परन्तु बीचमें मैं ने देखाकि मेरा नौकर अपने कोट इत्यादिसे रसोईके घर

चित्र ३—कोकुन

चित्र ४—कैटरपिलर

में तितलियोंको पकड़ रहा है। उसने उन्हे चमगीदड़ समझा था।

मालूम होताथा कि उस रात्रिको मेरे मकान पर उन बड़े २ सुन्दर तितलियोंकी चढ़ाई थी। हाथमें बत्ती लिये हुये हम कमरेमें घुसे और जो कुछ देखा कभी न भूलेंगे। एक धीमी फड़फड़ाती हुई आवज़के साथ वह प्रसिद्ध रातकी तितलियाँ तारके जालीके चारों ओर उड़ रहीं थीं। कुछ उड़ते २ हमारे कंधोंपर बैठ जाती थीं और कुछ बत्तीके ऊपर गिर कर अपने परोंको जला लेती थीं। इसको देख कर बच्चा डर कर मेरे हाथको बहुत ज़ोरसे पकड़ रहा था।

कोई १० के करीब तितलियां वहांपर थीं और उनको छोड़ कर कोई २० और भी थीं, जो मकानके अन्य भागोंमें भटक गई थीं। इस रात्रिको दूर दूर से आई हुई ४० युवा तितलियां उस सुन्दर युवती तितलीको अपने प्रेम फांसमें बांधनेके लिये व्याकुल होरही थीं। कुछ समयतक मैंने उनको न छेड़ा, परन्तु फिर भी वह मेरे बत्तीके ऊपर आपड़ते थे और अपने परों को झुलसा भी लेते थे। प्रातःकाल मैंने उन्हें भलीभांति देखनेका विचार किया।

अधिक लिखनेसे पहिले, मैं प्रति रात जो कुछ कार्य करता था वह आपको बताना उचित समझता हूँ। रातको अंधकार होनेके बाद वह तितली एक २ करके आती थी। उस समय रात बहुत अंधेरी और भयानक थी और आकाश बादलोंसे घिरा हुआ था और इसके अतिरिक्त मकानभी बड़े बड़े वृक्षोंसे घिरा हुआ था उसके चारों ओर छोटी २ गाड़ियाँ भी थीं। इन सब कठिनाइयोंको भेद कर बेचारे नर तितलियां अपने पूजा भेट देनेके लिये उस युवती तीतलीके पास आते थे। ऐसे भयानक समय निशाचर भी अपना बसेरा छोड़ कर नहीं जाते। परन्तु तितली, जिसके बहुनेत्र (कम्पाउन्ड आई) होते हैं निडर होकर सब कठिनाइयोंका सामना करके जाते थे। ऐसे कठिन समयपर भी वह इस सावधानीसे उड़कर आते हैं कि उनके पर इत्यादि सब अच्छी हालतमें रहते हैं। अंधेरी उनके लिये उजियाली होती है। यह उजियाली चाहे आँखोंको पहुँचती हो या नहीं परन्तु तितलीको यह मालूम हो जाता है कि उसकी सुन्दरी किस स्थानपर है, चाहे वह कितनी दूर क्यों न हो।

इसके अतिरिक्त हमको अच्छी प्रकारसे मालूम है कि तितलियाँ दीपकसे प्रेम करती हैं, और यह उसको देखकर उनके ओर सीधी भागती हैं। परन्तु कभी कभी यह भूल भी करती हैं और भ्रमवश अपने इष्ट स्थानसे इधर उधर भटक भी जाती हैं। बत्तीके ले जानेसे पहिले मेरे बागमें मादा तितलीके पास अनेक नर तितली जमा थे। आँगनमें भी अनेक भटके हुये तितलियाँ थी परन्तु वहां पर रोशनी थी। दीपक निशाचर कीटोंके लिये एक अत्यन्त रिझाने कि वस्तु है, और इसीलिये वह निशाचर तितलियाँ अपने रास्तेसे भटक गये होंगे। अब हम उन स्थानोंको देखेंगे जहाँ पर अंधकार छाया हुआ था, वहाँ भी अनेक तितलियाँ थीं। मुझे उस मादा तितलीके आसपास जो कि मेरे कमरे पिंजड़ेमें बन्द थीं अनेक नर तितलियाँ मिलीं और इनके साथके बाक़ी तितलियाँ सीधे रास्तेसे उस कमरेमें जानेके बदले सीढ़ियोंमें से घुसकर नीचेके बड़े कमरोंमें चली गईं। इन बातोंसे मालूम होता है कि विवाहोत्सवमें जाने वाले तितलियाँ सीधे अपने निर्दिष्ट स्थान किसी प्रकार रोशनी पर जो कि हमको दिखाई दे या न दिखाई दे रीझनेके कारण नहीं गये। वह वस्तु रोशनी नहीं है परन्तु कोई और ही वस्तु है जिसने उनको प्रेमिकाके स्थान की राह बतलाई और एक विशेष स्थानपर ले जाकर छोड़ दिया जहाँसे उनको अपने प्रेमपात्रीके पास पहुँचनेके लिये बड़े कष्ट और क्लेशोंको झेलना और इधर उधर भटकना पड़ता है।

हमारे कान और नाक, शब्द सुनने व गन्ध सूंघनेके लिये हैं परन्तु जब हम यह ठीक २ पत

लगाना चाहते हैं कि उन शब्द व गन्ध की ठीक जगह कहाँपर है तब यह यन्त्र हमारी साहयता नहीं करते हैं। फिर यह क्या वस्तु है जो इस बड़े तितली को उसके मित्रके समीप बुलाकर रातभर भटकनेके लिए छोड़ जाती है। शरीरका वह कौन सा भाग है जो इस कार्य्य को करता है? कुछ लोग कहते हैं कि यह सूंड़ (एन्टीना) है (चित्रनं०५, ६)।

नर तितलीमें यह देखा गया है खाली स्थानोंमें अपने एन्टीनाको हिलाकर वस्तुओंको खोजते हैं। फिर क्या यह एन्टीना केवल सुन्दरताके लिये है या यह नर तीतलीको अपनी स्त्रीके पास पहुँचने में सहायता देती है। आगे चल कर कुछ कार्यों से हमें ठीक २ मालूम होगा।
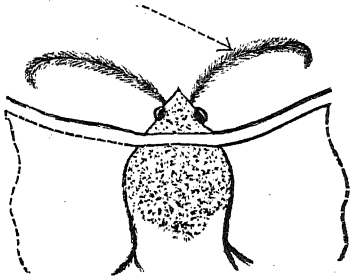
चित्र ५—नर एन्टीया

इस चढ़ाईकी रात्रीके दूसरे दिन प्रातःकालके समय मुझे ८ही रजनीचर मिले। यह सब चुपचाप खिड़कीके ऊपर बैठे हुए थे और बाकी रातके दस बजेतक अपने मनोरथको सफल न होते देख कर खुली खिड़कीसे लौट गये थे। इन्हीं आठोंको लेकर मैंने अपना काम आरम्भ किया।

मैंने एक छोटी कैंची लेकर अत्यन्त सावधानी के साथ उनके सूंड व एन्टीनीयों को काट दिया परन्तु यह कार्य इतनी सावधानताके साथ किया गया कि उनको कुछभी पता न चला। यह सब बहुत अच्छी हालतमें थे। और सूंड के काटनेपर उन्हें कुछ भी कष्ट न मालूम पड़ा। दिन भर वह इसी अवस्था में रहे। इनको इसी अवस्था में छोड़कर मैंने और भी कार्य किया।

रातमें इनके उड़नेसे पहिले इनकी प्रिय वस्तु पिंजराबद्ध मादा तितली) को हटाकर अन्यस्थान-पर रख दिया। यह इस लिये कि रात को फिर इन्हें ढूंढ़नेके लिये कुछ क्लेश भी उठाना पड़े।

रात आरम्भ होनेपर मैंने कमरेमें जाकर देखा कि उन एन्टीना कटे आठमेंसे ६ उड़ गये हैं। और
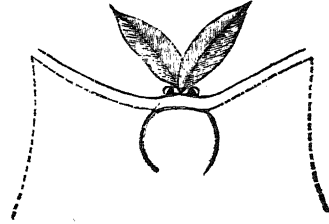
चित्र ६—मादा

दो शक्तिरहित होकर भूमिपर गिर पड़े हैं और मृत्युकी बाट जोह रहे हैं। इसके लिये मुझे दोष न दें क्योंकि इस प्रकार यह प्रायः मर जाते थे।

छः जो अच्छी अवस्थामें उड़कर चले गये हैं क्या वह फिर लौटेंगे या अपने एंटीना कटी हालत-में क्या वह अपने प्रेमपात्रीके पास जायेंगे।

मादा प्रजापतिका पिंजड़ा अंधकार में खुले एक स्थानपर रखा हुआ था, और थोड़े थोड़े समयके अन्तरपर मैं एक लालटेन और जाल लेकर उसके पास जाता था और जभी नर तीतली आता था उन्हें पकड़कर कुछ देर देखनेके पश्चात एक अलग बन्द कमरेमें छोड़ देता था। इन्हें एक एक करके बन्द करनेमें मुझे ठीक ठीक नम्बर का ख्यात होता था। मैंने हरेक परीक्षामें ऐसाही किया।

रात के १०॥ बजेके पश्चात फिर कोई भी तितली नहीं आया। उस समय तक मैं २५ नर तितलियां पकड़ चुका था, उनमेंसे केवल १ बिना एन्टीना के था। उन छः अच्छी दशा वाले नर तितलियों मेंसे, जो प्रातःकाल उड़ गये थे केवल

एक ही लौट आया। इस परीक्षासे मुझे विशेष लाभ नहीं हुआ क्योंकि मैं विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता हूँ कि एन्टीना कट जानेसे वो अपनी प्रेमिकाके पास ले जानेमें कुछ बाधा देते हैं या नहीं। मैंने दूसरे दिन प्रातःकाल उन २५ तितलियों-को जो रात को पकड़े थे परीक्षा किया पर उन्हें देख कर सब उत्साह जाता रहा। उनमेंसे अनेक कुछ भी हिलडुल न सकते थे, परन्तु मैं निराश न होकर अपने कार्यमें लगा। मुझे यह आशा थी कि शायद वह शामको प्रेम उन्मादके समयपर फिरसे अपनी दुर्बलताको जीतलें। २४ कैदियों के सबके एन्टीना काट दिये गये और एक जिसका पहिले दिन कट चुका था मरता हुआ छोड़ दिया गया। उस कमरेके दरवाज़े दिन भर खुले रखे गये। वह पींजरा हटाकर दूसरे स्थान-पर रख दिया गया, इस कारण कि उन तित-लियोंको अपनी प्रेमवतीके पास पहुँचनेमें कुछ कष्ट उठाना पड़े। उन २४ मेंसे केवल १६ कमरेमेंसे उड़ गये और बाकी ८ कमरेमें अधमरे पड़े थे। उन १६ मेंसे रातको एक भी न लौटा। इस रातको मैंने केवल सात तितली पकड़े सबके एन्टीना थे, इससे मालूम पड़ता है कि इसके (एन्टीना) काटनेसे उन्हें कुछ हानि पहुँचती है। शायद वह यह सोचते हों कि हम बग़ैर एन्टीनाके होनेसे अपने दूसरे एन्टीना वाले भाइयोंके पास कैसे जायें। वह लज्जाके मारे अपने गिरे हुये एन्टीना कटी अवस्थामें प्रेमपात्रीके सामने नहीं आते थे। क्या वह लज्जाके वश व ठीक ठीक स्थानका ज्ञात न होनेके कारण न लौटते थे। कारण हमें आगे ठीक ठीक मालूम होगा।

चौथी रातको मैंने १४ नये यात्रियोंको पकड़ कर उनके एन्टीनाके बदले कंधेके बाल साफ कर दिये जिससे उन्हें कोई हानि नहीं पहुँची और मेरे पहिचाननेके लिये एक चिन्ह हो गया।

इस समय सब उड़नेके लायक थे और रात्रिके आगमनके साथ साथ वह १४ उड़ गये। इसके पश्चात् मैंने पिंजरेको हटाकर दूसरे स्थानपर रख दिया दो घण्टेमें मैंने २० तितली पकड़ लिये और उनमेंसे केवल दो के कन्धेके बाल साफ़ थे। पहिली रात्रिके एन्टीना कटे हुएमेंसे कोई भी न लौटे थे। उनके विवाहोत्सवका समय बीत चुका था।

अब हमें यह पता लगाना चाहिये कि बाल साफ़ किये हुये तितली, एन्टीनाके रहते भी केवल दो क्या लौटे। इसके लिये केवल एक ही उत्तर है कि यह तितली (ग्रेट पीकक) अपने ऋतुके समयके उन्मादसे अत्यन्त शीघ्र ही थक जाते थे।

यह भोगविलासके समय जो कि इनके जीवन-का एक मुख्य कर्त्तव्य है एक अपूर्व-शक्ति प्राप्त करती है और उस समयके लिये एक प्रबल इच्छा रखती है। और अपने हृदय (प्रेमपात्री) को ढूँढ़नेके लिये हरेक प्रकारके क्लेशको झेलकर बहुत दूरतक उड़ सकती है। अगर इस कार्यमें वह सफल न हुई तो उसकी आशाओंपर पानी फिर जाता है और वह शोक- के मारे अपने जीवनका अन्त कर देती है। अब जीवनका अभिप्राय ही क्या है। शोकातुर तितली एक कोनेमें आ बैठती है और हमेशा के लिये सो जाती है सब अपने अपने क्लेश मय जीवनको नाश कर देती है।

यह ग्रेट-पीकक अपने कुलकी वृद्धि के ही लिये जीवित रहता है। वह खाना जानता ही नहीं- जब दूसरे प्रसन्नचित भोजनार्थी एक फूलसे दुसरे फूलपर उड़ते फिरते हैं और अपने घुम-रीली एन्टीना को फैलाकर मधुभरी कलियोंमें डालते हैं परन्तु इस विरक्त योगी (ग्रेट पीकक) के पास, जिसको पेटके दासत्वने छुआतक नहीं है, है पुनः बल प्राप्ति के लिये कोई उपाय नहीं है, इसके मुखमें खानेका यंत्र होता ही नहीं है वह केवल एक अपने चिन्ह मात्र रह जाता है और इनका मुख कर्तव्यको करनेमें सर्वथा असमर्थ होते हैं। मधु-को एक घूँट भी उसके पेटमें नहीं जा सकती। यह

है तो अतिही सुन्दर परन्तु तभी अच्छी है जब अधिक समयतक प्रयोग में लाई जाय। यदि जीवन रूपी दिया जलता है तो उसमें भोजन रूपी तेल अवश्य ही भरा जाना चाहिये। ग्रेट पीकक जीभ का स्वाद तो त्याग देता है परन्तु इसके साथ ही वह बहुत समयतक जीवित नहीं रहता। यह केवल दो या तीन रात्रि जो कि इन दो प्रेमियों के मिलने और भोगविलासके लिये प्रायः काफ़ी होती हैं जीवित रह कर अपने जीवनके समयको पूरा करके अपने प्राण दे देता है।

फिर क्या कारण हैं कि पन्टोना कटी हुई तीतलीयाँ न लौटती थी। क्या इससे यह प्रतीत होता था कि पन्टीनाके न होने से वह पिंजड़ेको ढूँढ़ कर न निकाल सके। नहीं यह कभी नहीं हो सकता। उन बाल कटे किये हुएकी तरह यह भी अपनी आयु के व्यतीत होनेपर मर जाते थे। अंग भंग होनेसे व सर्वांग पूर्ण वृद्ध आयु के कारण और अधिक कुछन कर सकते थे। इस कारण उनके न होनेसे कोई हानि भी नहीं थी।

मेरे कार्य व परीक्षामें जो स्वाभाविक विलम्ब हुआ उससे पन्टीनाने उन तितलियोंको अपनी प्रियाके पास पहुँचानेमें जो भाग लिया उसको मैं न देख सका इस कारण मैं पहिलेकी भांति अब भी अनभिज्ञ रहा। मेरी बन्दी मादा तितली लोहेके जालीदार पींजरेमें केवल आठ दिन जीवित रही। प्रत्येक रात्रिको उसके पास झुंडके झुंड नर तीतलीयां कभी मकानके एक हिस्सेमें और कभी दूसरे हिस्सेमें आते रहे। मैं उनको जालीसे पकड़ कर एक कमरेमें छोड़ दिया करता था जहां वह रात भर बन्द रहते थे और दूसरे दिन उनके ऊपर कुछ चिन्ह बना कर छोड़ दिया करते थे।

इन आठ रात्रियो में मुझे १५० तितली मिलीं यह बहुत बड़ी संख्या थी क्योंकि मुझे अपने कार्यको आगे बढ़ाने के लिये भविष्यके दो वर्ष-में इनको एकत्रित करनेमें अत्यन्त कठिनाईयां उठानी पड़ी और अनेक समय व्यतीत करना पड़ा। मैंने इन तितलियोंके कोकुनको अपने आस पास न पाया परन्तु तो भी कभी २ यह पाई जा सकती थी क्योंकि वह वृक्षपर जिनपर कि यह रहतीथी कम पाये जाते हैं। दो वर्ष मैंने बादाम-के जितने पेड़ थे सबके नीचे खोज किया और उनके आस पासके काँटेदार झाड़ियों और छोटे पेड़ोंको भी देखा परन्तु प्रायः मुझे खाली हाथ लौटना पड़ा। इस कारण मुझे मालूम हुआ कि मेरी १५० तितलियां कुछ दुरसे ही आई होंगी। कभी १ व १½ मीलकी दूरीसे भी आती थीं। उन्हे कैसे ज्ञात हुआ कि मेरी प्रयोगशाला (व अध्ययन) में क्या हो रहा है।

हमारे पास तीन ही इन्द्रीयां हैं जिनसे हम दूरकी वस्तुओं को मालूम कर सकते हैं—नेत्र, कान और नाक! क्या इस विषयमें हम नेत्रको प्रधान कह सकते हैं। परन्तु अगर वह नेत्र द्वारा देखकर आते थे तो मीलों दूर से क्या वह मेरी लेबोटरीको देख सकते थे? कदापि नहीं।

श्रवण शक्ति भी इस प्रकार काममें नहीं लाई जा सकती। वह मादा तितली कभी किसी प्रकारके शब्दोंसे अपने प्रेम जालमें फंसाने के लिये उन नर तितलियोंको इतनी दूरसे नहीं बुला सकती। तो फिर क्या वह नाक द्वारा सूँघ कर इतनी दूरसे आती थी, नहीं यह भी सम्भव नहीं मालूम पड़ता क्योंकि वह शक्ति केवल कुछ ही दूरतक काममें लाई जा सकती है। इस विषयका ठीक ठीक पता लगानेके लिये और भी प्रयत्न मैंने किये।

जिस कमरेमें वह उस दिन आनेवाले थे उसमें मैंने अनेक नैपथेलोनकी गोलियां डाल दीं और उस मादाके पींजरेके पास भी कुछ रख दिया। परन्तु मैं क्या देखता हूँ कि रात्रिके समय वह नर ततिली आये और इस प्रकारसे उस कमरेमें घुसने लगे जैसे कि वहांपर शुद्ध वायु

हो। इससे ज्ञात होता है कि यह किसी प्रकारकी गंध भी सूंघ नहीं पाते थे।

इसके बाद मैं आगे न बढ़ सका क्योंकि मेरी सब अशाओंकी रानी वह मादा तितली आठवें दिन अपने पिंजड़ेकी जालियोंपर कुछ बेकार व बांझ डिम्भ प्रसव कर मर गई।

दूसरे साल मैंने इस कार्य को और अच्छी प्रकारसे आरम्भ करनेका प्रबन्ध किया। ग्रीष्म ऋतुमें मैंने कैटरपिलर खरीदना आरम्भ किया। इसका बाज़ार मेरे अड़ोस पड़ोसके बच्चोंके पास था। वह छुट्टियों में पैसेके लोभसे खेत और बगीचोंमें जाकर मेरे लिये यह सुये कैटरपीलर लकड़ियोंपर लटकते हुये लाते थे। वह उन्हें पकड़नेमें डरते थे। और जब मैं उन्हें हाथसे छूटा कर पकड़ता था तो वह बड़े अचम्भेसे देखते थे। इन कैटरपीलरको मैंने बादाम के पेड़ोंपर पाल कर कोकुन बनने दिये और जाड़ेतक मैंने अपने पास सब समान इकट्ठा कर लिये। मेरे कुछ मित्र भी अब मेरी सहायताको आये। कुछ दिनोंतक इसी तरह खरीदनेके बाद जब हम इसके कारण कष्टोंको झेला तो देखा कि मेरे पास बहुत चुनिंदा कोकुन इकट्ठे हो गये। उनमेंसे १२ खूब बड़े थे और मादा तितलियों के थे। परन्तु इतने पर भी मुझे एक बार फिर निराश होना पड़ा क्योंकि जाड़ेके अन्तिम समयपर फिर ठंड के पुनरागमनसे कुछ सफलता न हुई।

मेरे सब तितले थके और सुस्तसे मालूम पड़ते थे। कोई २ दिनतक मेरे पिंजड़े में एक न एक नई तितली पैदा होकर अपने नर मित्रोंके लिये बाट जोहती थी, परन्तु ठंड अधिक होनेके कारण कोई न आये। शेष अवस्थामें जो दो चार आये भी तो वह मेरे कोकुनके निकले हुए थे। परन्तु चाहे वह पाससे आये हों या दूरसे वह भी मिलन उत्तेजनामें उतने ही ठंडे थे।

मेरा यह साल भी निष्फल गया। तीसरे साल मैंने फिर कोकुन इकट्ठे किये, और इस बार जाड़ेके अन्त में अनेक तितलियोंके शुभागमनसे मेरे कामको आगे बढ़ानेकी कुछ आशा हुई। प्रत्येक रात्रिको यह नर तितली २०, २५ के झुण्ड-में आते थे। परन्तु वह मादा बड़े पेटवाली तितली अपने पिंजड़ेमें चुपचाप बैठी रहती थी। जब इस अवस्थामें बेपरवाह होकर वह बैठी रहती थी तो दो चार नर आकर उसके पिंजड़े के चारों ओर फड़फड़ाते थे उनमेंसे प्रत्येक पिंजड़ेमें घुसने की चेष्टा करता था और इस प्रकार आते जाते तितलियों का जमघट रातके दस बजेतक रहता था।

प्रत्येक रात्रि को पिंजड़ा हटाकर दूसरे स्थान पर रख दिया जाता था परन्तु ऐसे धोखोंसे वह नहीं हारते थे, वह अपने मुख्य तीर्थको किसी न किसी प्रकारसे ढूंढ़ लेते थे।

तो क्या यह किसी जलती हुई वस्तुको मादा तितलीके चारों ओर देखकर अंधकार रातमें आते थे? परन्तु अगर हम इसे एक हवादार लकड़ीके बक्समें बन्द करते हैं तो क्या होता है। वह मनुष्यों की तरह अपने बेतारके खबरोंसे जान जाते थे कि उनका मुख्य तीर्थस्थान अब कहां है।

परन्तु मैंने जब उनको टीन, लकड़ी व कार्डबोर्ड के बक्सोंमें जो बिना किसी छेदके थे, बन्द कर दिया तो कोई भी नर न आते थे। फिर मैंने उन मादाओंको एक बड़े कांचके बर्तनमें रुईका ढकना बना कर बन्द कर दिया परन्तु फिरभी कोई नर नहीं आए। परन्तु जब मैंने उसे एक बक्समें बन्द किया जिसमें कुछ छिद्र थे तब वह नर खूब आते रहे। खुली अलमारी व टोपीके नीचे मादाको रखनेपर भी यह खूब आते रहे। परन्तु वह अपने रहने की जगहको किस प्रकार नरों को जतलाती थीं?

मेरे कोकुनोंमेंसे कुछ बच्चे फिर निकले और फिर भी मैं इस विषय में अंधकार हीमें रहा। इस हालतमें क्या मैं चतुर्थ वर्ष भी इस कार्यकोआरम्भ करूँ? नहीं, क्योंकि अब मुझे यह अत्यन्त ही

कठिन मालूम पड़ता है कि मैं रात्रिमें इनके कार्यक्रम को देख सकूँ। यह नर तितली किसी न किसी प्रकारसे अपने प्रेमपात्री को देख सकते थे परन्तु यह मनुष्योंकी शक्तिके बाहर है। एक मोमबत्ती व लालटेनके सहारेसे अगर मैं अपना काम करूँ तो नहीं हो सकता क्योंकि उससे हम ठीक रास्तेसे हटा दिये जाते हैं। और यह भी है कि रोशनीको देखकर तितलियां भी उसके पास आती हैं और कभी २ इतने पास आजाती हैं कि अपने परों को भी जला लेती हैं, परन्तु इसका उन्हें ख्याल भी नहीं होता है। क्या उनके ऊपर रोशनीका कोई जादू होता है ?

एक रात्रिको मैंने एक कमरेमें एक अत्यन्त तेज़ रोशनी जलाकर उसी कमरेमें एक मादा तीतली को भी रख दिया। इसी समय यात्रियोंका आगमन आरम्भ हुआ। कुछ तो उस मादा के पिंजड़ेके चारों ओर बैठे रहे और कुछ उसको नम्रता के साथ प्रणाम कर उस चमकीले लालटेनके चमत्कारको देख कर मोहित होकर उसके चारों ओर बैठ गये। बच्चे इनको देख कर पकड़नेको गये परन्तु मैंने उन रूपवान यात्रियोंको छूनेको मना किया। रात्रि भर वह वहां से न हटे और दुसरे दिन भो वहां ही बैठे रहे। वह रोशनी से मस्त तीतली अपने प्रेमको भी भूल गये। ऐसे तितलीयोंको जो रजनीचर हैं और रोशनीसे इतना प्रेम करते हैं, लेकर क्या मेरा कार्य हो सकता है। मैंने फिर यह प्रबन्ध किया कि ऐसे तितलीसे काम करना चाहिये जो दिनमें बाहर निकल कर अपने प्रेमालाप करती हैं।

मैंने ऐसे भी तितली पाये जिन्हें अंगरेजीमें "लेसर पीपक" कहते हैं और वह प्रायः रेशम बनाने वाली तितली से मिलती जुलती है।

लेसर पीपकका कोकुन भी मुझे मिला। उसे मैंने अत्यन्त सावधानीसे रख लिया। जाड़ेके शेष समयमें यह कोकुन फूटे और इसमें से एक मादा तितली निकली। मैंने उसे पिंजड़े में बन्द कर दिया। ६ दिन तक यह बिलकुल न हिली। सातवें दिन क्या देखता हूं कि जब मैं भोजन करनेको बैठा ही था उसी समय एक बच्चा दो उंगलियोंके बीचमें एक फड़फड़ाता नर तितलीको लिये हुये चला आरहा है। मैंने भोजन करना छोड़ दिया और उसे लेकर मैं अपने कमरेके पास भागा। वहाँ जाकर क्या देखता हूँ कि वह बिलकुल ग्रेट पीपकसे मिलता जुलता था परन्तु रंग उससे अधिक चमकीला था और वह सब दीवारके उस भागमें आते थे जब कि सूर्य खूब जगमगाता था। यह तितलियाँ उस दिन केवल आठ ही आये। क्या यह किसी प्रकारके सुगन्धसे यहाँ आकर्षित होकर आये ? नहीं कदापि नहीं क्योंकि हवा उस समय उत्तरकी ओरसे आ रही थी और वह भी सब उसी ओरसे आये थे। फिर उन्हें कैसे मालूम पड़ा कि उनकी प्रेमपात्री यहाँ पर है। यह आश्चर्य की बात है कि वह इतने दूर दूरसे आये और अपने स्थानतक पहुँचे, परन्तु कैसे ? कुछ दिन इनके आने जानेसे मालूम पड़ा कि जब सूर्यकी किरण अत्यन्त तेज़ होती है उसी समय आते हैं। अबतक मेरी परीक्षाओंसे केवल दो बातें इन तितलियोंके विषयमें ममालू हुई। वह यह है कि "ग्रेट पीकक" रात्रिमें अपने जीवनका मुख्य कार्य (प्रेमवतीसे मिलना) करते हैं और "लेसर पीकक" यही कार्य सूर्य जब खूब तेज़ होता है उस समय करता है। क्या यह एक आश्चर्य की बात नहीं है कि यह दोनों प्रेमी जीव जो कि लगभग एक दुसरेसे मिलते जुलते हैं अपने अपने विषय भोगके समयमें इतना बड़ा भेद रखते थे।

अपने कार्यको आगे बढ़ानेके लिये मुझे ऐसी तितलीकी आवश्यकता थी जो दिनके समय आती है—न कि "लेसर पीकक" की तरह जो कि समय चूक जानेपर आया जब कि मेरा उससे कोई मतलब सिद्ध नहीं हो सकता था। चाहे कोई भी तितली हो परन्तु इसमें यह गुण होना

आवश्यक है कि वह विवाहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये तत्पर रहा करे। क्या ऐसे तितलियाँ हमें कभी न मिलेंगे? ऐसे मुझे मिले हैं और उनके विषयमें मैं फिर कुछ लिखूंगा।

हमारा वैज्ञानिक साहित्य

[ले० श्री० चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय]

संसार में जन्म लेकर ज्ञान लाभ करना मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है। ज्ञान लाभ कैसा तथा किस प्रकारसे हो यह बात विषयान्तर की है; यहाँपर केवल यह कहना पर्य्याप्त होगा कि प्रयोजनीय ज्ञानकी शिक्षा देना ही हमारी शिक्षा प्रणालीका मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। प्रयोजनीय ज्ञानके दो विषय हैं। कुछ विषय ऐसे हैं जिनका जानना सभीको परमावश्यक हैं, और कुछ विषय ऐसे हैं जो प्रत्येक मनुष्य के निज व्यवसायपर निर्भर हैं। मातृभाषा अन्तर्जातीय भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, शरीर तथा मनोविज्ञान, जड़ विज्ञान, रसायन, धर्म नीति आदि विषय ऐसे हैं कि इनका थोड़ा बहुत ज्ञान होना सभीके लिए आवश्यक है। आधुनिक प्रगतिको लक्ष्यमें रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनके बिना जाने शिक्षित समुदायके मनुष्यका काम भी नहीं चल सकता।

सभी विषयोंके सूक्ष्म तत्व जानना प्रत्येकके लिए सम्भव नहीं है, परन्तु मोटी मोटी बातोंका जान लेना अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा। ग्रामोफोन, बायस्कोप, वायुयान इत्यादि इत्यादि आश्चर्य जनक नवीन आविष्कार जब हमारे सामने आते हैं तो हृदयमें उनके रहस्योद्घाटनकी प्रबल आकांक्षा स्वभावतः जाग्रत हो जाती है, परन्तु साधन उपस्थित न रहनेके कारण उस इच्छाको मनमें ही दबाना पड़ता है। ज्ञानलाभ आत्माका विषय होनेके कारण यह कहा जा सकता है कि इस प्रकारसे आत्मापर एक प्रकारका व्याघात पहुंचता है, जो सम्भवतः उसके विकास मार्गमें हानि प्रद सिद्ध हो सकता है। इसपर यह आपत्ति करना कि किसी विषयका अधूरा ज्ञान होनेसे तो उससे अनभिज्ञ रहना अच्छा है, पूर्णतया युक्ति संगत नहीं है। विज्ञान जैसे विषयका पूर्ण परिज्ञान असाधारण बुद्धिमान पुरुषके लिए भी संभव नहीं है, किन्तु यह कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि इसका कमसे कम चञ्चु प्रवेश ज्ञान प्रत्येकके लिए प्रयोजनीय है। इस ज्ञानको प्राप्त करनेका साधन केवल मात्र वैज्ञानिक साहित्यका मनन करना है। यह कहना अनावश्यक होगा कि हमने अपनी कितनी शक्ति ऐसे साहित्यकी वृद्धिकी ओर प्रेरितकी है।

अंग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपियन भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी उत्तरोत्तर वृद्धि होरही है। इसमेंसे कुछ पुस्तकें तो इतने सुचारु रूपसे तथा इतनी सरल लिखी गई हैं कि इनको पढ़ कर साधारण मनुष्य भी गूण वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इनके लिखे जानेका उद्देश्य केवल मात्र यही होता है कि सर्व साधारण इस मनोरंजक विषयकी मोटी मोटी बातों से परिचित हो जायँ! हिन्दी भाषामें अभीतक ऐसी पुस्तकोंका अभाव है। हमारे देशके लेखकों का ध्यान अभी वैज्ञानिक साहित्यकी उन्नतिकी ओर आकर्षित नहीं हुआ है। अन्यथा विज्ञान विषयकी पुस्तकपर पुरस्कार देनेके लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलनको इनी गिनी पुस्तकोंपर ही विचार नहीं करना पड़ता। हमारी विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकोंकी संख्या उंगलियोंपर गिनी जा सकती

है। आधुनिक वैज्ञानिक युगमें हमारा इस प्रकार पिछड़ना क्या उपेक्षणीय नहीं है? इस प्रश्नका उत्तर हम सम्मेलनसे ही चाहते हैं जिसने अपनी परीक्षाओंमें विज्ञानको स्थान देते हुए भी इस विषयकी उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखने लिखवानेका प्रयत्न नहीं किया है। नागरी प्रचारिणी सभाका कार्य तो वैज्ञानिक कोषके प्रकाशन पर ही समाप्त हुआ जान पड़ता है। जबतक पढ़नेके लिये पुस्तकें ही न होंगी तबतक कोषका अस्तित्व होना न होना एकसा है। अतएव ऐसी पुस्तकें तो केवल पुस्तकालयोंकी आलमारियोंको ही सुशोभित कर सकती हैं।

भारतका अधिकतर शिक्षित समुदाय विज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ है। यह कहना अनुचित न होगा कि केवल कालिज मुक विद्यार्थियोंमेंसे कतिपय इसके सिद्धान्तोंसे परिचित हैं। इसका प्रत्यक्ष कारण हमारी उदासीनता एवं अकर्मण्यताके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? हमारे वायुमंडलमेंसे वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी गन्धतक उड़ गई है। हमारे प्रत्येक रीति रिवाज वैज्ञानिक तत्वोंकी भित्तिपर स्थापित हैं, परन्तु हम निरे लकीरके फकीर बन गए हैं। अनुसंधान करना तो मानों अक़लके पीछे लाठी लेकर दौड़ना है। जो बात 'परम्परासे चली आई हैं' उसके व्यतिक्रम को सहन करना हमारी शक्तिके बाहरकी बात है। क्या हमारे पूर्वज मूर्ख थे? यह प्रश्न प्रत्येक अवैज्ञानिकके मुखसे सुन लीजिए। हम तो यह कहेंगे कि पूर्वज मूर्ख नहींथे वरन ऐसा कहने वाले ही मूर्ख हैं। अपना अपना अतीत उत्कर्ष न जानकर जो ऐसा कहते हैं वे केवल अपनी अज्ञानता प्रकट करते हैं। हमारा इतना ह्रास हो गया है कि हम विज्ञानके रहस्योंको ख़याली पुलावके अतिरिक्त कुछ नहीं समझते। जहाँ इङ्गलेंड, जर्मनी, अमेरिका प्रभृति देश वैज्ञानिक अनुसंधानोंके मार्गपर आश्चर्य जनक वेगसे अग्रसर हो रहे हैं, वहाँ हमारा खड़े रहकर ताली पीटना अत्यन्त खेदका विषय है। हमारी स्पर्धा करनेकी शक्ति लुप्त प्राय होगई है, तभी तो हम केवल दाँतोंके तले उँगली दबाकर तथा वाह वाह करके ही कृतार्थ होजाते हैं।

हिन्दी वैज्ञानिक संसारमें एक मासिक पत्र **'विज्ञान'** ही दीपककी तरह टिमटिमा रहा है। अज्ञानान्धकारको दूर करनेके लिये पश्चात्य शक्तियाँ बड़े बड़े प्रकाशस्तम्भ स्थापित कर रही हैं परन्तु हमारा देश केवल एकही दीपकके प्रकाशमें मस्त हैं। फल यह होता है कि जो वस्तुएँ कम प्रकाश होनेके कारण हम नहीं देख सकते उन्हींको वे लोग उठाकर आश्चर्यजनक लाभ उठा रहे हैं। हमारे यहां तो इस दीपकसे लाभ उठाने वाले भी गिने चुने हैं। मनोरंजक साहित्य क्षेत्रमें पत्र पत्रिकाओंकी बरसाती बाढ़सी आरही है और उनकी ओर जनताका झुकाव रंग ढंग देखनेसे ही ज्ञात हो जाता है। विज्ञान जैसे मनोरंजक विषयको शुष्क साहित्यमें स्थान दे दिया गया है। जिस भारतने सारे संसारको विज्ञानका पाठ पढ़ाया उसकी ऐसी अधोगति देखकर किसका हृदय विदीर्ण न होगा।

हमारे वैज्ञानिक साहित्यकी शोचनीय अवस्था यह प्रकट करती है कि हमारे नवयुवक इस ओरसे बिलकुल उदासीन हैं। कालिजोंकी पढ़ाई समाप्त करके वे अपनी विद्या तथा ज्ञानको कंजूसके धनकी तरह अपने ही लिये रखते हैं। वे यह विचार कभी नहीं करते कि जिन तत्वोंको उन्होंने अन्य भाषाओंकी पुस्तकोंसे प्राप्त किया है, उनसे हिन्दी जनताको वंचित क्यों रक्खें। मातृभाषाकी उन्नतिका तो कभी स्वप्नमें भी ध्यान न आता होगा। परन्तु फिर भी सारा दोष उन्हींके सिर नहीं मढ़ा जासकता। एक तो, विचार तथा उसे कार्य रूपमें परिणत करनेमें आकाश पातालका अन्तर है, दूसरे, हमारे यहाँकी शिक्षा प्रणाली कुछ ऐसी है कि जिसने नवयुवकोंको परीक्षा पास करना ही अपना ध्येय मानना पड़ता है।

डिग्री प्राप्त होते ही पढ़ी हुई बातोंको हृदयमें से दूधकी मक्खोकी भाँति निकालकर फेंक देते हैं और फिर परतन्त्रताकी बेड़ी पहन लेनेके कारण कुछ करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। मातृभाषासे तो बेचारोंका सम्पर्क स्कूल छोड़ते ही विच्छेद हो जाता है, जिसके कारण वे इच्छा रहते हुए भी कुछ नहीं कर सकते, और यही कारण है कि हिन्दीमें वैज्ञानिक लेखक गिने चुने हैं। काशी आदि विश्वविद्यालयोंमें जो हिन्दीको उच्च परिक्षाओंमें स्थान दिया गया है, वह अलबत्ता शुभ फलका द्योतक है।

जनताकी इस उदासीनताका प्रतिकार केवल एक उपायसे हो सकता है। हिन्दी भाषामें अल्प मूल्य की छोटी २ पुस्तकें विज्ञान विषय-पर लिखी जावें। और उनकी लेखन शैली सरल होनेके साथही साथ रोचक भी हो। मनोरंजक विभूतियां देकर उनका वैज्ञानिक विवेचन किया जावे, और उसीके साथ उससे सम्बन्ध रखने वाले कुछ गूढ़ तत्वों का दिग्दर्शन करा दिया जावे, जिससे पाठकोंकी रुचि मनोरंजकता से आकृष्ट होकर उनकी ओर प्रवृत्त हो। पुस्तकोंकी भाषा भी एक विचारणीय विषय है। क्लिष्ट संस्कृत शब्दोंका अधिक उपयोग घातक सिद्ध होगा। यदि संस्कृत वा अन्य भाषाओं के पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हों तो पहले उनको भली प्रकार समझा देना श्रेयस्कर होगा, क्योंकि ऐसा करने से पुस्तकके अनुशीलन में सुगमता होगी और जगह २ अटकना न पड़ेगा। कोरी शब्द विडम्बना-से लाभ नहीं हो सकता। और जबतक सर्व सम्मतिसे हिन्दी भाषामें समस्त पारिभाषिक शब्द निर्धारित न हो जावें, तबतक मन गढ़न्त शब्द मालाका प्रयोग भी भयंकर है। इससे श्रेष्ठतर तो यही है कि अंग्रेज़ीके शब्द ज्यों के त्यों रख दिए जावें। यह शब्द एक देशीय नहीं है, वरन वे अन्तर्जातीय परिषद्‌के द्वारा निर्धारित किये जाने-के कारण सब सभ्य देशों में मान्य हैं। अतएव यदि हिन्दीमें भी उन्हीं शब्दोंको स्थान दिया जाय तो कुछ भयकी बात नहीं है। हमारी शब्द-माला अभी पूर्ण विकासको प्राप्त नहीं हुई है। नवीन शब्दोंके लिए अभी हमें दूसरों का ही ऋणी होना पड़ेगा। हमें उस दिनकी प्रतीक्षा करनी चाहिए जिस दिन हिन्दी भाषा इन ऊपरी बातोंको जीर्ण वस्त्रकी भांति उतार कर फेंक देगी।

दूसरी ध्यान देनेकी बात यह है कि जबतक पाठकों को साधारण वाह्य बातोंका ज्ञान न हो तबतक उनके सम्मुख गूढ़ तत्वोंकी आलोचना करना अनधिकार चेष्टा मात्र है। मूल तत्वोंसे अनभिज्ञ रहते हुए बड़े २ सिद्धान्तोंका परिचय एकबारगी उन्हें दे डालना अरण्य रोदन सिद्ध होगा। पाठकोंके पास इतना धैर्य तथा समय नहीं होता कि वे एक ही विषयकी छोटी २ बातें जानने-के लिए विभिन्न पुस्तकोंका पाठ करें। अतएव पुस्तकोंकी लेखन शैली प्रारम्भिक तत्वसे ही आरम्भ होनी चाहिए और ज्यों २ आगे बढ़ते जांय त्यों त्यों गूढ़तर तत्वोंकी आलोचना होती जानी चाहिए। हमारी तुच्छ सम्मतिमें यदि इस प्रकार शृंखला बद्ध होकर पुस्तकें लिखी जांयगी तो अत्यन्त लाभकी संभावना हो सकती है। विद्वान लेखक इसमें संशोधन उपस्थित कर इसे और भी उप-योगी बना सकते हैं, ऐसा हमे पूर्ण विश्वास है।

नोट—हम एक इसी प्रकारकी पुस्तक लिखनेका प्रयत्न कर रहे हैं। प्रस्तुत लेख उसी पुस्तककी अवतरणिका कुछ अंश है। यदि संभव हुआ। तो पुस्तकके दूसरे अंश भी इस पत्र द्वारा हम पाठकोंके सम्मुख विचारार्थ रक्खेंगे।—

[लेखक]

जड़ तथा जीव

[श्री जगदानन्दराय लिखित बङ्गला पुस्तक से]

जब हम जीव तत्व-सम्बन्धी ग्रन्थों का पढ़ना आरम्भ करते हैं तो हमें प्रत्येक पृष्ठमें "जीवनी शक्ति" (Vitality) नामक एक शब्द दिखलाई पड़ती है। इतना निरर्थक यह शब्द मालूम होता है कि और किसी भी शास्त्रमें नहीं है। भिन्न भिन्न शक्तियोंने भिन्न भिन्न आकार धारण करके हमारे चारों ओर ऐसे इन्द्र-जालकी रचना कर रखी है कि यदि उसका मूल खोजने जाँय तो मनुष्यको कोई दिशा ही नहीं सूझती। परन्तु इससे विचलित न होकर यदि वह ठीक रास्तेपर चल सके तो उसे सत्यके दर्शन का सौभाग्य अवश्य प्राप्त होता है। जिस प्रकार साधु गण जब गंगाजीका उद्गम स्थान खोजनेके लिये चलते हैं तो उन्हें हिमालयके चरणोंसे निकली हुई गोमुखीकी सहस्र धारामें उनको उसका पता चलता है। ठीक इसी प्रकार चाहे कोई कितना ही बड़ा विद्वान क्यों न हो यदि वह शक्तिके मूलका अनुसन्धान करना चाहता है तो उसे अन्तमें विश्वेश्वरके चरणोंके नीचे जाना पड़ता है।

मूलका आविष्कार करनेके लिये उद्योग करना तो पर्वतपर कुआं खोदना है। मूलके आधारको जाननेके लिये वैज्ञानिककी सूक्ष्म दृष्टि और सूक्ष्म यंत्रकी ज़रा भी आवश्यकता नहीं है। जिस विस्तृत भित्तिके ऊपर मूल शक्तिके केवल कुछ अंश एकत्र होकर ब्रह्माण्डमें रङ्ग विरङ्गके खेल दिखलाया करते हैं उस भित्तिका निर्देश करना ही वैज्ञानिकका अन्तिम उद्देश्य है। अस्तु, इस उद्देश्यकी सिद्धिमें किस वैज्ञानिकको कितनी सफलता प्राप्त हुई है इस सम्बन्धमें विचार करना वर्तमान लेखका उद्देश्य नहीं है।

जीवके शारीरिक-क्रियाकी जो बात साधारणतः विदित हैं जीव तत्वके ज्ञाताओंसे यदि उनका कारण पूछा जाय तो उनसे उसका कोई भी यथार्थ उत्तर नहीं मिलता। "जीवनी शक्ति" नामक जो केवल एक काल्पनिक वस्तु है। लोग इसीके सहारेसे जीवनके कार्यों की सभी छोटी छोटी बातोंकी व्याख्या करनेका प्रयत्न करते हैं परन्तु वास्तवमें वह कौनसी वस्तु है और उसका स्वरूप क्या है इस बातको कोई भी नहीं प्रमाणित कर सकता। जिस वस्तु के मूलमें ही इतनी त्रुटियाँ हों उसके सम्बन्धमें बड़ी सावधानीके साथ तर्क वितर्क करनेपर भी कुछ न कुछ भ्रमकी आशंका रह ही जाती है। आजतक इस अनुमानकी न जानें कितनी परीक्षायें हुई हैं और भ्रम भी अन्तिम सीमातक पहुँच गया है।

मेरा यह कहनेका उद्देश्य नहीं है कि जीवनी शक्तिको स्वीकार करनेपर उसके द्वारा किसी भी दैवी शक्ति की व्याख्या नहीं हो सकती। जीवनी शक्तिके कुछ धर्मोंकी कल्पना करके उसकी सहायतासे जीवतत्व वेत्ताओंने बहुत सी बातों की यथार्थ रूपसे व्याख्या की है। परन्तु और भी बहुत सी बातोंकी व्याख्याके लिये उस जीवनी शक्तिकी ही सहायता ग्रहण करनेपर उन्हें सफल भी होना पड़ा है।

उदाहरण :—पौधेकी जड़ तथा उसकी फुनगी की एक बगल ताप या प्रकाशका प्रयोग करके उस पर आघात पहुँचाया जाय तो देखनेमें आता है कि वृक्षकी जड़ तो उस संघर्ष से बचनेके लिये दूसरी ओर झुक जाती है किन्तु नरम फुनगी उस ताप या प्रकाशकी ही ओर है। इसके कहनेका तात्पर्य यह है कि एक ही उत्तेजना एक ही वृक्षके दो भिन्न भिन्न अङ्गोंपर भिन्न भिन्न रूप से काम करती है। वृक्षकी डालीके पस यदि इस प्रकार प्रकाश का प्रयोग किया जया तो मालूम पड़ता है कि एक ही डाली कभी तो

झुक कर प्रकाशकी ओर कभी उससे दूरका प्रयत्न करती है।

उद्भिज्जतत्वकी आलोचना करनेपर पद पद-पर इस प्रकारकी भिन्न भिन्न क्रियायें देखनेमें आती हैं। डारविन इत्यादि बड़े बड़े विद्वानोंने इन सबोंके सम्बन्धमें छान बीन किया था परन्तु भीतरी हाल नहीं जान सके।

उद्भिज्जकी गतिके सम्बन्धमें यदि कोई भी जटिल प्रश्न उपस्थित होता तो ये लोग उसका कोई स्पष्ट उत्तर न देकर दूसरे रूपमें कहते हैं कि उद्भिज्ज-की भीतरी शक्ति ज्ञानमय है। इसलिये वृक्षके अस्तित्व को स्थायी रखनेके लियेजो कार्य आवश्यक होता है, यह शक्ति वृक्षसे वही करवाती है। परन्तु इस शक्तिका यह धर्म कहाँसे आया है ये लोग इस सम्बन्धमें कोई भी विचार नहीं स्थिर कर सके। इस तत्वके विद्यार्थियोंके लिये पहले-की सी व्याख्या कहाँतक सन्तोषजनक है, पाठकोंको इसपर विचार करना चाहिये।

आज कई वर्षसे हमारे देशके सुयोग्य विद्वान आचार्य सर जगदीश चन्द्रजी बसु महोदय ने उद्भिज तत्वकी भिन्न भिन्न समस्याओंको हल करनेके लिये बहुत कुछ छानबीन किया है और उन सब गवेषणाओंके फल स्वरूप दो बड़े बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

(1) Plant Respouse, (2) Comparative Electro-Physiology published by longman Green & Co London.

अनेक परीक्षाओंके द्वारा प्राणी तथा उद्भिजकी जीवन-क्रियामें बसु महोदय-ने जिस सत्यका दर्शन किया है मैं यहाँपर उसके सम्बन्धमें थोड़ासा प्रकाश डालनेका प्रयत्न करूँगा।

वृक्षोंके पत्तोंका हरकत तथा इसका सोखना इत्यादि प्राकृतिक कार्य देखकर लोगोंके मनमें इस सम्बन्धमें दो प्रकारके भावोंके उदय होनेकी सम्भावना है इसे देखकर कुछ लोग तो यह समझ सकते हैं कि जीवतत्वके ये सिद्धान्त घोर रहस्योंमें छिपे हुये हैं। इस रहस्यका पर्दा उठाकर अन्दर की घटनाओंके देखनेकी शक्ति हममें नहीं है। और कुछ लोग यह समझ सकते हैं कि जिस प्रकार रेलका इञ्जन बाहरसे शक्तिका आकर्षण करके तरह तरहके अद्भुत कार्य करता है, जीवका शरीर भी मानो उसी प्रकारका जटिल कल है। उसके सहारे बाहरी शक्ति भाँति भाँतिके खेल दिखा-लाया करती है। इसमें शक्तिकी कोई भी विशेषता नहीं है, यह सब केवल यंत्रकी ही करतूत है।

जीव के अद्भुत कार्योंमें किसी प्रकार की भी श्रृङ्खलाका अनुसन्धान न पाकर प्राचीन तथा आधुनिक जीवतत्ववेत्तागण उपरोक्त दोनों दलों में से पहलेका आश्रय ग्रहण करनेके लिये बाध्य होते थे। बाहरकी अन्ध शक्ति जब वायुकी सहा-यता से बड़े जोरोंकी तूफाने उत्पन्न करती है और अपने परिचयके लिये गिरे हुये मकानों और उजड़े हुए गावोंको छोड़ जाती है। उनके द्वारा उसकी स्वेच्छाचारिताका लक्षण स्पष्टरूपसे दिखलाई पड़ता है। इससे यह ठीक ठीक जान-पड़ता है कि तूफ़ान अन्धशक्तिका ही कार्य है। परन्तु रात्रि होते ही जो शक्ति वृक्षोंकी पत्तियों को निस्तब्ध कर देती है और सूर्य के उदय होनेसे पहले ही जिस शक्तिके द्वारा वे हरी हरी पत्तियाँ खिल जाया करती हैं, उसे जीवतत्वके विद्वान लोग अन्धशक्ति नहीं कह सकते। इस बातको सभी लोग मानते चले आ रहे हैं कि जीवके भीतर कोई ऐसी विशेष शक्ति छिपी हुई है जो कि वृक्षके पत्तोंके साथ इस प्रकार चेतन भावसे खेला करती है। हिन्दू सन्तान आचार्य जगदीश चन्द्र जी बसुने पाश्चात्य विद्याकी दीक्षा ग्रहण करनेपर भी इस प्रकारके विश्वासको अपने हृदयमें स्थान नहीं दे सके। आचार्य बसु महोदय का तो यह दृढ़ विश्वास है कि विश्वेश्वरकी जिस शक्तिका केवल एक कण पाकर अग्नि प्रज्वलित होती है, मेघ वृष्टि करता है तथा पवन चलायमान हुआ करती है, उसी शक्ति का ही कुछ अंश ताप

तथा प्रकाशक रूपमें जीवके ऊपर पड़ कर उसके द्वारा चेतन रूपसे तरह तरह कार्योंका सम्पादन कराता है। केवल प्राणी तथा उद्भिज्जको सजीव करनेके लिये ब्रह्माने जीवनीशक्ति नामक एक विशेष शक्तिकी रचना करके उनकी प्राण-प्रतिष्ठा की है, इस प्रचलित बातपर उन्हें किसी प्रकार भी विश्वास नहीं हो सका। किसी विशेष मतपर अन्धप्रेम होनेसे मनुष्य जिस प्रकार असमर्थ होजाता है, मेरे विचारसे तो वैसा और किसी प्रकारसे भी नहीं हो सकता। और यही कारण है कि प्राकृतिक घटनायें किसी पक्षपात रहित विचारसे सर्वसाधारणके समझमें नहीं आती। वे बहुत दिनोंतक रहस्यके ही गर्भमें छिपी रहजाती हैं। आचार्य बसु महोदयको इस प्राचीन प्रथापर जिसका कि पहले निर्धारण किया जा चुका है विश्वास नहीं हो सका। उन्होंने सत्यकी जो थोड़ी झलक मिली थी उसीको आग्रहके साथ लेकर वे कार्यक्षेत्रमें उतरे थे और अन्तमें उन्हें सत्यकी पूर्णमूर्ति का दर्शन हुआ।

बसु महोदयके आविष्कारके स्थूलतत्वको समझनेके लिये जड़ तथा शक्तिके साधारणत दो एक कार्योंको स्मरण रखना आवश्यक है।

पाठकगण यह तो जानते ही हैं कि, जड़ ही शक्तिका क्रीड़ाक्षेत्र है, शक्ति जड़के ही सहारेसे अपना प्रभाव दिखलाती है और जड़का अभाव होते ही शक्ति भी असमर्थ हो जाती है। अब हमें इस बातपर विचार करना है कि शक्ति जड़के ऊपर किस प्रकार कार्य किया करती है। परन्तु इस कार्यका क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसकी सीमाका निर्देश करना असम्भव है। ताप, प्रकाश तथा विद्युत इत्यादि सभी तो शक्ति और जड़के कार्य हैं। अतएव इस कार्यकी फिर भला सीमा कहाँ रह गई? इस विषयके बहुत ही व्यापक होनेपर भी प्रत्येक कार्य के मूल कारणतक पहुँचनेपर मालूम पड़ता है कि पदार्थके अणुका विन्यास विकृत तथा चञ्चल करना ही शक्तिका प्रधान कार्य है। मान लीजिये कि हमारे सामने लोहेकी एक सीधी सलाई है। इसके अणुओंने भली भाँति सुसज्जित होकर उस वस्तुको सीधी कर रखा है। इसके दोनों किनारोंको पकड़ कर यदि हम अपने शरीरकी शक्तिका प्रयोग करें तो उसके अणु पहलेकी समान सजावटमें न रहेंगे। अणुओंकी सजावट बिगड़ कर सलाईको टेढ़ी कर देगी परन्तु उसमें प्रयोगकी हुई शक्तिकी मात्रा यदि अधिक न हुई तो सलाई कुछ देरतक टेढ़ी रहकर पहले की ही तरह फिर सीधी हो जायगी। अणु की शक्तिको विकृत करना शक्तिका एक प्रधान कार्य है और अपनी पूर्व-अवस्थाको फिरसे प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना भी जड़का एक प्रधान धर्म है।

आचार्य बसु महोदयने जड़ तथा शक्तिके इस सुप्रसिद्ध तथा स्वभाविक धर्मोंका अवलम्बन करके जीवन-क्रियाके रहस्योंके सम्बन्धमें बहुत से नवीन समाचारोंका संग्रह किया है। उन्होंने तरह तरहसे उद्भिज्जोंके अङ्ग संचालनकी परीक्षा करके यह प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि इन्हें समस्त जीवनमें बाहरसे क्षण क्षणमें जो प्रकाश और तापकी शक्ति प्राप्त हुआ करती है वही शरीरको सुविन्यस्त तथा अणुओंको विकृत करके शरीरको इधर उधर झुकाया करता है।

अब पाठकोंके दिलमें यह प्रश्न उपस्थित होगा कि यदि सभी उद्भिज्जोंको ताप तथा प्रकाशकी शक्ति निरन्तर प्राप्त हुआ करती है तो समस्त वृक्षोंके गतिशील न देखकर हम लाजवन्ती इत्यादि कुछ ही वृक्षोंको सचेत क्यों देखते हैं। आचार्य बसु महोदयने इस प्रश्नपर भी भली भाँति विचार किया है। उन्होंने यह स्पष्ट रूपसे दिखला दिया है कि सभी उद्भिजों के अङ्ग प्रत्यङ्गके अणु बाहरकी उत्तेजनासे सचमुच विकृत हुआ करते हैं परन्तु उन सबोंके अङ्ग प्रत्यङ्ग बाहरी हरकत करनेके योग्य नहीं होते। इससे आणविक विकारका फल नहीं दिखलाई पड़ता। लाजवन्तीके

अङ्ग-प्रत्यङ्ग भीतरी आणविक विकृतिको प्रत्यक्ष करके प्रकाशित करनेके योग्य हैं इसीसे इस जातिके वृक्ष पत्तोंका झुकाकर और उठाकर हरकत किया करते हैं अब इस बातको ज़रा उदाहरण देकर समझाना चाहिये। मान लीजिये कि एक टुकड़े मोटे इबोनाइट (Ebonite) के साथ ठीक उसी आकारका रबरका एक टुकड़ा जोड़ दिया गया। तपाने पर इबोनाइट रबरकी अपेक्षा अधिक फैलती है। यहाँ यह समझ रखना चाहिये कि इन दोनों चीज़ोंके ऊपर और नीचे एकही प्रकारके तापका उपयोग किया गया है। ऐसी दशामें इबोनाइट रबरकी अपेक्षा अधिक फैल जायगा और इसका परिणाम यह होगा कि वह टेढ़ा होकर धनुषकी रूप धारण कर लेगा। लज्जावती इत्यादि जिन उद्भिजोंके पत्ते और डालियाँ उठकर और झुककर बाहरी आघात तथा उत्तेजनासे हरकत किया करती हैं उनकी पत्तियोंकी डण्ठीके अंशमें ऊपर और नीचे समान रूपसे ही फैलनेकी शक्ति नहीं रहा करती। ऐसी दशामें किसी प्रकारकी भी उत्तेजना मिलने पर उपरोक्त रबर और इबोनाइट के समान डण्ठीका झुककर पत्तोंको हिलाना झुलाना स्वाभाविक ही है। केवल लज्जावती ही नहीं वरन अधिकांश वृक्षों तथा लताओंका हिलना झूलना उनके शरीरके भिन्न भिन्न अंशोंके अणुओंकी असम उत्तेजनशीलता पर निर्भर हैं। आचार्य वसु महाशयने अपने ही बनाये हुये बहुत महीन यंत्रोंकी सहायतासे यह स्पष्ट दिखला दिया है। इससे प्रगट होता है कि पहलेके विद्वानोंका जो यह मत था कि वृक्षका हीलना झूलना अपनी इच्छा तथा जीवनी-शक्तिका विशेष कार्य है इस प्रकारकी व्याख्या किसी प्रकार भी युक्ति संगत नहीं है। विधाताकी शक्ति रूपी भण्डारकी ही कुछ शक्ति वृक्षोंके शरीरमें पड़कर देहरूपी यंत्रके ही प्रभावसे भाँति भाँतिके इन्द्रजाल रचा करती है। उद्भिजोंके शरीर रूपी यन्त्रका गठन बहुत ही सीधा है। अतएव इसे एकबार समझलेने पर हम लोग जिन हरकतोंको चेतनाका लक्षण और असम्बद्ध व्यापार समझ कर छुटकारा पाजाते थे उसका वास्तविक अर्थ समझमें आ जायगा। तत्काल ही उत्पन्न हुये वृक्षका शरीर ज्यों ज्यों जटिल हो जाता है और जिन कार्य्योंका केवल विकाश कहकर ही उड़ा दिया जाता है उसकी क्रमोन्नतिकी धारा कैसी हैं इसे वसु महाशयने अनेक प्रकारसे दिखलाया है। इस उदाहरणके द्वारा अब यह बात अच्छी तरह समझमें आजायगी कि रबर और इबोनाइट जिस कारणसे टेढ़े हो जाते हैं यदि ठीक उसी कारणसे वृक्षकी पत्तियाँ तथा शाखायें भी हिलती झूलती हैं तो सजीव और निर्जीवमें भिन्नता ही क्या है? उपरोक्त व्याख्याके सुननेसे हमारे मनमें यह शंका अपने आप ही उत्पन्न होती है। इसके उत्तरमें आचार्य वसु महोदयका कथन है कि सजीव तथा निर्जीव सभी पदार्थोंका जब अणुके द्वारा गठन हुआ है और अणुका विकृत करना ही जब शक्तिका कार्य है तो ऐसे स्थान पर अणुके एकही अवस्थामें रहने पर सजीव और निर्जीवकी भिन्नतामें शक्तिके किसी प्रकारके भी भेदकी सम्भावना नहीं है। वसु महोदयने सैकड़ों परीक्षाओंके द्वारा इसकी सत्यता सिद्धि कर दिया है। निर्जीव धातुके पिण्ड, सजीव प्राणी तथा वृक्षके शरीरमें विष और मादक वस्तुका प्रयोग किया गया था। उन सबोंमें एक ही प्रकारके लक्षण दिखाई पड़े। अतएव जीवतत्ववेत्तागण उत्तेजनामें जवाब देनेको ही सजीवताका सर्व प्रधान लक्षण कहा करते हैं यह बात किसी प्रकार भी नहीं मानी जा सकती।

हमारे पाठक यह तो जानते ही हैं कि नीचांसे नीची श्रेणीके उद्भिजसे लेकर सबसे ऊँचे उद्भिजों तकके कार्यों पर यदि क्रमशः विचार किया जाय तो ऐसी दशामें आना पड़ता है कि वहाँके जीवनको उद्भिज कहें या प्राणी कहें इस बातका निश्चय करना बहुत ही कठिन हो जाता है। यदि हम उच्च जातिके उद्भिजसे लेकर क्रमशः सबसे नीची श्रेणी

के उद्भिजकी ओर भी उतरते हैं तो भी हमारी दृष्टि पर बहुत सी ऐसी बातें पड़ती हैं कि जिन्हें कि जड़ और उद्भिजके मध्यकी किस श्रेणीमें रखें यह निश्चय नहीं किया जा सकता। आचार्य वसुने जड़, उद्भिज तथा प्राणीके हरकतकी परीक्षा करनेपर भी ऐसा ही देखा है। उन्होंने हरकत (Response) की परीक्षा करनेपर भी कहा है कि यहाँ पर जड़का अन्त और यहाँ उद्भिजका आरम्भ है, यहाँ उद्भिजका अन्त और प्राणीका आरम्भ है—इस प्रकार रेखा खींचना असम्भव है। यहाँ तक कि वे मृत्युको भी सजीवता का लक्षण माननेके लिये नहीं तैयार होते। जब बाहिरी उत्तेजनासे पदार्थके अणुओं में बहुत ज्यादा विकार हो जाता है और वे अणु अपनी पूर्व अवस्थाको फिरसे प्राप्त होनेके लिये अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी जब नहीं सफल होते तभी मृत्यु आकर पदार्थको आक्रमण करती है। आचार्य्य वसु महाशयने धातुकी बनी हुई चीज़ों तथा इस प्रकारके और भी अनेक पदार्थोंमें विष का प्रयोग करके यह दिखला दिया है कि वे भी सदाके लिये विकृत हो जाती अर्थात् मर जाती हैं। इससे सिद्ध है कि मृत्युकी अचेतनता भी पहले की सजीवताका लक्षण नहीं मानी जासकती। आचार्य वसु महाशय शरीरकी स्वाभाविक जटिलताको ही सजीवताका एकमात्र लक्षण मानना चाहते हैं। परीक्षा करनेसे यह देखनेमें आता है कि हम जिनको सजीव कहते हैं उन सभोंका शरीर निर्जीव पदार्थोंसे भी कहीं अधिक जटिल है और उसके भीतरके अणु आसानीसे विकृत तथा उत्तेजित हो सकते हैं। इसलिये इन सब पदार्थों में आसानीसे ही हरकत होती है और उत्तेजनाकी मात्रा जब अधिक बढ़ जाती है तो वे शीघ्र ही सदाके लिये विकृत हो जाते अर्थात् मर जाते हैं।

पौदे किस प्रकार रस सोखा करते हैं और वे कैसी विचित्रतासे बढ़ा करते हैं, ऐसे कितने काम हैं जो कि आजभी उद्भिज तत्त्ववेत्ताओंके सामने बड़ी बड़ी समस्यायें उपस्थित करते हैं। साधारण प्राकृतिक शक्ति और जीवनी शक्तिका अवलम्बन करके बड़े बड़े विद्वान् उन सब क्रियाओंकी व्याख्या करने का प्रयत्न करते आये हैं। परन्तु वास्तवमें सभीको असफल होना पड़ा है। आचार्य वसु महाशय प्रकृतिके केवल साधारण नियमके ही सहारेसे इन सबोंकी भी बड़ी ही अच्छी व्याख्या की है। इसमें जीवनी-शक्ति या जीवन नामक सृष्टि रहित शक्ति का अस्तित्व स्वीकार करनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे रसके सोखने और बढ़नेकी विचित्रता इत्यादिको भी सजीवताका लक्षण नहीं कहा जा सकता। केवल शरीर-रूपी यंत्रकी जटिलताके अतिरिक्त और किसी भी व्यापारमें सजीव पदार्थकी विशेषता नहीं है।

आणविक विकारके समान एक बहुत आसान और सुप्रसिद्ध कार्यका अवलम्बन करके आचार्य वसु महाशय ने जो बड़े बड़े आविष्कार किये हैं उनका विशेष विवरण पढ़नेसे आश्चर्य सागरमें गोते लगाना पड़ता है। बाहरी शक्तिके आघात प्रत्याघातके कारण जो आणविक विकार आकर शरीरके अणुओं पर आक्रमण करते हैं वेहीं शरीरके अन्दर रासायनिक कार्य करते हैं। इस बात को पहले के विद्वान लोग नहीं समझ सके इसीसे इतनी गड़बड़ी हो गई। ये लोग सजीव पदार्थ में एक शक्ति की क्रीडा देखकर उसी शक्तिको जीवनी-शक्ति कह कर छुटकारा पानेका प्रयत्न करते चले आ रहे हैं। परन्तु उनकी दृष्टि पर यह नहीं पड़ा कि वे बाहरी शक्ति के ही अंश हैं। ज्यादातर बाहरी शक्ति जिस कार्यके करने के लिये प्रेरणा करती है भीतरी शक्ति कभी कभी उससे बिलकुल विपरीत कार्य करती है। इससे भीतर और बाहरकी शक्तियाँ एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं, इस संस्कारने ही उन्हें और भी मार्ग भ्रष्ट कर दिया था। आचार्य वसु महोदय

का कथन है कि दो शक्तियों के परस्पर विरोधी होनेके कारण यह कभी नहीं माना जा सकता कि उनके मूल मेंभी भिन्नता है। हम लोग शक्ति का प्रयोग करके कलों तथा कारखानाओं में काम करते हैं उस समय एक ही शक्ति भिन्न भिन्न रूपोंमें प्रकाशित होती है। तब फिर भला जिस का मूल एक है उसे भिन्न कैसे मानें?

आचार्य बसु महोदयने ऐसे स्थानों पर वायुके द्वारा चलाये हुये विद्युतके कलों (Wind-motor) के साथ वृक्षोंके शरीरकी तुलनाकी है। यह यंत्र वायुके प्रबल झकारों से घूम कर काम करता है और साथही साथ यंत्र में लगे हुये विद्युतके कोषमें उसी वायुकी शक्तिका कुछ अंश विद्युतके आकारमें संचित करके रखता है। जब वायुकी गति मन्द हो जाती है तब वही कोष-सञ्चित-विद्युत आकर यंत्रको घुमाता है। परन्तु इस वार वह विपरीत दिशामें घूमता है। यदि वायुकी शक्ति इस प्रकारदो भागोंमें विभक्त होकर एक दूसरेके विपरीत कार्य कर सकती है तो यह बात किसी प्रकार भी नहीं मानी जा सकती कि वाहरी शक्ति दो भागोंमें नहीं विभक्त हो सकती, और उसीका एक अंश भीतर रह कर वृक्षकी वृद्धि नहीं कर सकता तथा उसके लिये रस नहीं सोख सकता। जीवतत्व-वेत्ताओं ने जिस प्रकार भीतरी हाल न जाननेके कारण वायुके अभाव में कलको घूमता हुआ देखकर उसे किसी विशेष शक्तिका कार्य मान रखा था तो ऐसी दशामें उनके लिये उद्भिजों की आभ्यन्तरिक शक्ति को एक स्वतन्त्र शक्ति मानना भी असम्भव नहीं है। आचार्य वसु महोदय के आविष्कारसे इस भ्रमके दूरहो जाने का उपक्रम हो गया है और उद्भिजतत्व के जो कार्य परस्पर असंगठित माने जाते थे उनमें भी एकता का बन्धन दिखलाई पड़ने लगा।

ग्रीष्म ऋतुकी जुताइयां

[ले० श्री शीतला प्रसाद तिवारी]

ती का काम सदैव जारी रहने-वाला काम है। ज्यादातर भारतवर्षमें कृषक समुदाय रबीकी फसलोंकी कटाईके बाद उसकी मड़ाई ओसाई इत्यादि में लगा रहता है। उसके पश्चात् वर्षा ऋतुका समय आता है। तब वे अपने खेतोंकी जुताई करते हुये दिखाई पड़ते हैं। परन्तु कभी कभी यह देखा जाता है कि जब चैत्र, वैशाख, ज्येष्ट के (अप्रिल, मई, जून) महीनेमें आँधियोंके चलनेके बाद वर्षा हो जाया करती है, तौभी भारतीय कृषक समुदायमेंसे कोई कोई किसान अपने खेतोंको जोतते देखे जाते हैं। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे यह प्रथा कृषि—उन्नतिके लिए अथवा अधिक से अधिक पैदावार करनेके लिये लाभदायक नहीं है। क्योंकि बिना जोते हुये खेतोंके गर्भतल (subooil) और धरातल (soil) में ग्रीष्मऋतु की वायु और धूप का प्रभाव भली प्रकार नहीं पड़ने पाता, यदि रबीकी फसलों की कटाईके पश्चात् तुरन्त ही सारे खेत जोत डाले जायें तो रबी की बोई हुई फसलोंकी जड़ें उखड़ जायेंगी और वे हानिकारक कीड़े, मकाड़े, फँगस वैक्टिरिया जो रबीकी फसलोंकी जड़ों में छिपे रहते हैं धरातल पर आजायेंगे और वैशाख, ज्येष्ठ मासकी कड़ी लू और सूर्य्यकी प्रखर किरणोंके लगनेसे जलकर नेस्तनाबूद हो जावेंगे। इससे अगली बोई जाने वाली फसल को ये किसी प्रकार हानि नहीं पहुँचा सकते हैं।

वर्त्तमान काल में प्राय:यह देखा जाता है कि प्रत्येक ऋतुओं की फसलों में बीमारियोंके कीड़े लग जाया और उनसे सारा फसल चौपट होजाया करती है। जैसे कुछ वर्षोंसे संयुक्त प्रान्तके गेहूँकी फसल में गेरुईके लग जानेका प्रमाण पर्याप्त है, अथवा

धान की फ़सलमें गन्धी कीड़े के लगने से धानकी फ़सल का चौपट हो जाना।

वैज्ञानिक प्रयोगोंसे यह सिद्धान्त निश्चित हो चुका है। कि फ़सलोंकी कटाईके पश्चात् शीघ्रसे शीघ्र खेतोंको पलेवा करके भली प्रकारसे दो तीन बार जोत देना चाहिये। ऐसा करनेसे वायु और धूपके संयोग से धरातल और गर्भतलकी मिट्टीके कणोंमें कई प्रकार के रासायनिक (chemical) और भौतिक (physical) परिवर्त्तनोंके कारण बहुत सी ख़ुराक पौधोंके लिये एकत्रित हो जावेगी। और वे धातुयें और उपधातुयें जो पौधोंकी ख़ुराक हैं, परन्तु खेतके धरातल और गर्भतलमें ऐसी दशा में मौजूद हैं जोकि पानीमें घुल कर पौधोंकी जड़ों द्वारा खिंच करके पौधोंको कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती, वे सारी खाद्य पदार्थकी वस्तुयें पलेवा करके जोत देनेके पश्चात् अवश्य धूप, वायु तथा अन्य छीजन-शक्तियों द्वारा छीज जावेंगी।

उक्त विवेचन से यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि फ़सलोंसे अधिक पैदावार प्राप्त करनेके लिये खेतोंकी जुताइयां गर्मीके महीने में पलेवा करके अवश्य करनी चाहिये। अधिकतर रबीकी फसलें चैत्र मासके आधे काल तक कट जाती है। फसलों की कटाई के पश्चात यदि खेतोंमें इतनी नमी मौजूद हो कि देशी हल अथवा मिट्टी पलटने वाला (Mould board Plough) हल आसानी से खेतों में चल सके तो खेतोंको तुरन्त जो देना चाहिये। यदि नमी पर्याप्त मात्रा में खेतों के धरातल और गर्भतल में मौजूद नहीं है, तो खेतोंको बिना पलेवा किये हुये जुताई करनी भारी भूल होगी। क्योंकि ऐसी दशा में हलोंके टूट जानेका भय रहता है। दूसरे हलों के खींचनेमें बैलोंकी अधिक ताक़त व्यर्थमें नष्ट होती है। पलेवा कर देनेके पश्चात पन्द्रहवें, बीसवें दिन निरन्तर खेतों की जुताइयां करते रहना चाहिये, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठके अन्दर पांच छः जुताइयां अवश्य कर देनी चाहिये। जिन लोगोंके पास मिट्टी पलटने वाले हल मौजूद नहीं है उन्हें अपने देशी हलोंसे ही गर्मियों में खेतोंकी जुताई करनी चाहिये। परन्तु जिन लोगोंके पास मिट्टी पलटने वाले हल मौजूद है उन्हें ग्रीष्म-ऋतु की सारी जुताइयां इन्हीं हलों से करनी चाहिये। क्योंकि गर्मी की जुताइयों का वास्तविक अभिप्राय यह है कि जहां तक सम्भव हो सके खेत के धरातल और गर्भतलकी सारी मिट्टी उखाड़-पुखाड़ कर उलट-पुलट दी जावे। हमारे देशी हलोंमें मिट्टीके उलट-पुलट देनेके लिये कोई तरकीब नहीं है। इस कारण वैज्ञानिक दृष्टिसे देशी हल गर्मी की जुताइयों के लिये अनुपयुक्त है। जो लोग बड़े क्षेत्रफलकी खेती करते हैं, और उनके पास मिट्टी पलटने वाले हल मौजूद हैं, उन लोगोंको चाहिये कि इन देशी हलोंको ग्रीष्म-कालमें साफ़ करके रख दें, और प्रचुरता से मिट्टी पलटने वाले हलों का ही प्रयोग करें। इन हलों के प्रयोग से केवल इतना ही लाभ न होगा कि खेतके धरातल और गर्भतल की मिट्टी उखड़पुखड़ कर उलट दी जावेगी, वरन वर्षा-कालके आरम्भकी पहली वर्षा में जिसमें पौधों की नत्रजन सम्बन्धी वह सारी ख़ूराक जोकि ग्रीष्म ऋतुके वायु मण्डलमें गैसके रूपमें मिली रहती है, वर्षाके जलके साथ मिलकर खेत की मिट्टीमें पूर्ण रूपसे मिल जायेगी। जिससे आगे बोई जाने वाली फ़सलको पर्याप्त रूपसे काम देगी।

इस प्रान्त में गर्मी की जुताइयों के लिये मिट्टी पलटने वाले हलोंमें से मेस्टन हल बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका कारण यह है कि यह हल हमारे देशी हलोंकी भांति अत्यन्त हलका होता है—अर्थात इसको खींचनेमें बैलोंको देशी हलोंके खींचनेके समान ताकत लगानी पड़ती है और यह हल उसी प्रकार जोता भी जाता है, जैसे देशी हल। देशी हलोंकी अपेक्षा इस हलमें यह विशेषता है कि इसमें मिट्टी पलटने वाला पुर्जा विदेशी उन्नति प्राप्त हलोंकी भांति लगा हुआ है। इसका मूल्य भी अन्यान्य मिट्टी पलटने वाले हलोंकी अपेक्षा अत्यन्त ही कम है। इस हलको कानपुर इन्जिनियरिङ्ग वर्कशापके एक हिन्दुस्तानी मिस्त्री ने जिसका नाम बलदेव था बनाया। और इस प्रान्तके भूतपूर्व गवर्नर श्रीमान् जेम्समेस्टन

साहिबके नाम से इसका प्रचार किया गया। यह हल इस प्रान्तके सरकारी कार्यों पर अथवा किसानों और जमींन्दारोंके यहां भली प्रकार से प्रचलित हो गया है; और इसके लाभसे लोग भली प्रकारसे परिचित होगये हैं। मामूली श्रेणीके किसानोंके लिये यह हल विशेष लाभदायक है। यह हल हर एक प्रान्तीय सर्किलकी इन्जिनियरिङ्ग वर्कशापमें आसानीसे थोड़े मूल्यमें मिल सकता है, अथवा 'डिस्ट्रिक्ट डिमान्सट्रेटरों द्वारा' मंगाकर इसके प्रयोगकी सारी रीतियां जानी जा सकती हैं और कोई अड़चन पड़नेपर हर प्रकारका सलाह प्रत्येक किसान ले सकता है। संयुक्तप्रान्तको छोड़कर अन्य प्रान्त निवासियोंके लिये यह उचित और लाभदायक होगा कि गर्मीकी जुताइयोंके लिये उनके प्रान्त का कृषि विभाग जिन हलोंकी सिफारिश करे उन हलों को वे प्रयोग में लावें।

बहुत कुछ सहायता मिलती है। मेस्टनहल के बजाय वाट्सहल, मानसून हल, पञ्जाब हल, टर्नरैस्ट हल इत्यादि मिट्टी पलटने वाले हलोंका भी प्रयोग गर्मीकी जुताइयों के लिये करना लाभदायक है। जिन स्थानोंमें सिंचाई करके खेतोंके जोतनेकी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं, उन स्थानोंके लिये पत्थरतोड़ हल, तथा सैबूल हल भली प्रकारसे काममें लाये जा सकते हैं। और इनके द्वारा खेतोंकी जुताइयां करनेसे उसी प्रकारसे लाभ होता है जिस प्रकार अन्यान्य मिट्टी पलटने वाले हलों से।

गर्मीकी जुताइयोंके विषयमें उपर्युक्त विवेचन में तमाम आवश्यक और उपादेय बातोंका वर्णन भली प्रकारसे कर दिया गया है, परन्तु इसी सम्बन्धमें यह बता देना आवश्यक प्रतीत नहीं है कि जब कभी प्राकृतिक-परिवर्तनुसार देशके दुर्भाग्यवश अकाल पड़ जाया करता है तो उस समय खेतोंकी
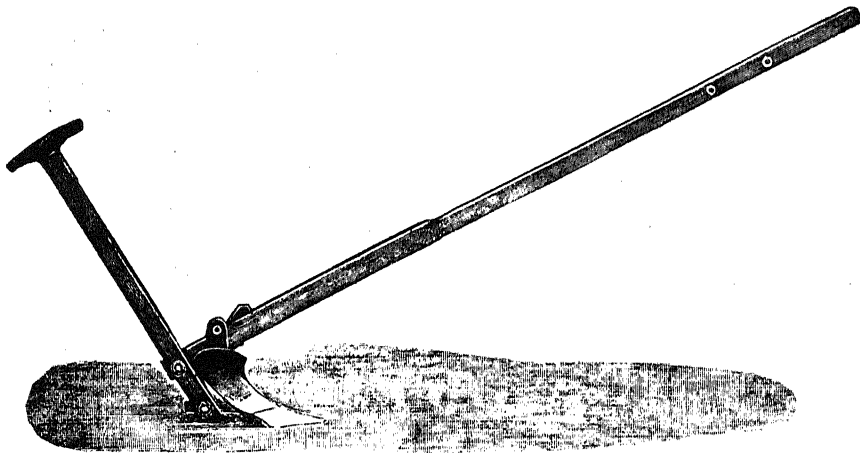
चित्र मेस्टन हल।

मिट्टी पलटने वाले हलोंके निरन्तर प्रयोगसे ग्रीष्म कालमें खेतके धरातल और गर्भतलमें छिपे हुए फसलोंके हानिकारक कीड़े-मकोड़ेंको पक्षी खा जाया करते हैं, और खूब गहरी जुताइयोंके हो जानेके कारण वर्षाकालमें खेतोंमें इतना पानी सीझ जाता है कि अगली बोई जाने वाली फसलोंको सिंचाईमें

सिंचाई अथवा पलेवा करके ही जुताई करनेकी आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि ग्रीषम-ऋतुमें बिना जुते हुए खेतोंकी अपेक्षा जुते हुए खेतों की मिट्टी अधिक पानी सोखती है। इस विचारकी दृष्टिसे अकाल वाले वर्षोंमें गर्मी की जुताइयां कुछ हानिकारक प्रतीत होती हैं। परन्तु वर्षा ऋतुकी थोड़ी वर्षासे भी

जुते हुए खेतोंमें नर्मी बहुत दिनों तक ठहरती है। जिससे फसल बिना पलेवा किये भी बोई जा सकती है।

गर्माकी जुताइयोंके बारेमें संयुक्तप्रान्तीय कृषि विभागकी मध्यमी सर्किल कानपूर के फार्मों पर किये गये तजुरबों का फल निम्नलिखित है।

गेहूँ की फसल के लिये कानपूर वो अत्तर्राफार्म (कृषि क्षेत्र) पर तजुरबे किये गये। जिनखेतों में तजुरबे किये गये, उन खेतोंमें इस गेहूँ की फसल के पहले खरीफ की फसल में ज्वार या कपास बोई गई थी। दोनों फसलें कार्तिक मासके समाप्त होते ही अगहन मास के आरम्भ में काट ली गई और खेत खाली कर दिया गया और उसी समय खेतों को पलेवा करके एक दफे जोत कर छोड़ दिया गया। बादमें जो जुताइयां की गई, वे बिना सिंचाईके बड़ी आसानी से हुई। ऐसा करने से गेहूँ की पैदावार कानपूर वो अतर्राफार्म में अक्सर पांच मन फी एकड़ तक गेहूँ अन्यान्य खेतोंकी अपेक्षा ज्यादा पैदा हुई।

और कल्याणपूर के फर्मों में मामूली सालोंमें गर्मी में जुते हुये खेतोंकी केवल दो सिंचाई हीसे पच्चीस मनसे लेकर तीस मन गेहूं प्रति एकड़ काटा जा सका था, जब कि औरोंको गर्मीके दिनोंमें बिना जुते खेतोंकी तीन चार सिंचाइयां करनी पड़ी थी। इसका प्रधान कारण यही था कि गर्मी के दिनों की जुताइयों से खेतों में बर्षा कालका पानी प्रर्याप्त मात्रा में जमा हो गया था।

कपास अधिकतर गेहूँके पश्चात बोई जाती है। साधारण तथा लोग इन खेतोंके बुवाईके समयसे पहले नहीं जोतते। वास्तवमें यह रीति हानिकारक है। चाहे कपास ज्येष्ठके महीनेमें सिंचाई करके बोई जाय अथवा वर्षा होने पर आषाढ़में बोई जाय। दोनों प्रकार की बुआइयों के लिये लाभदायक प्रथा यह होगी कि गेहूँके काटनेके पश्चात् ही खेतोंको पलेवा करके मिट्टी पलटने वाले हलोंसे भली प्रकार से जोत डालना चाहिये। इससे यह लाभ होगा कि कपास के सारे बीज भली प्रकारसे उगेंगे, और पौधे हृष्ट पुष्ट होंगे, और इससे पैदावार भी अधिक प्राप्त
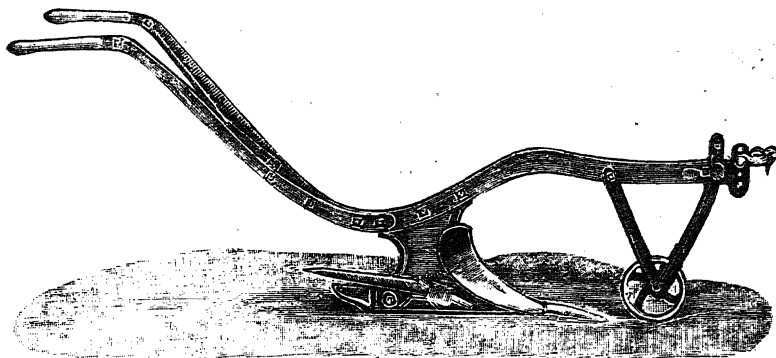
पत्थर तोड़ हल

इतना ही नहीं इन खेतोंके गेहूंके दाने और खेतोंकी अपेक्षा बड़ा, अच्छा और पुष्ट पाया गया। और इनमें धवीलें दाने बहुत कम पाये गये। ऐसे मौके पर जब कि वर्षा बहुत कम हुई थी। गर्मीके जुते हुये खेतोंकी बुवाई आसानी से बिना पलेवाके की गई, जब कि पासके किसानोंके खेतोंकी बुवाई पलेवा करके की गई थी। इसके अतिरिक्तकानपूर

होगी। कल्याणपूर फार्ममें देशी कपास बोनेके लिये एक खेतकी जुताई बैशाखमें की गई और दूसरे खेतकी जुताई ज्येष्ठमें की गई, जिसका फलनिम्न लिखितहुआ।

बैशाख में जुते हुए खेतसे आठ मन चार सेर कपास प्रति एकड़ और ज्येष्ठमें जुते हुए खेतसे पांच मन छब्बीस सेर कपास प्रति एकड़ उत्पन्न हुई।

उपरोक्त फलसे भली प्रकार विदित होता है। कि चैत्र वैशाखकी जुताइयोंका प्रभाव ज्येष्ठ की जुताइयोंकी अपेक्षा फसलोंकी पैदावार पर उपजकी दृष्टि के अच्छा पड़ता है। उक्त अनुभव से यह भली प्रकार सिद्ध होगया कि गर्मीकी जुताइयाँ पैदावारकी दृष्टिसे प्रत्येक फसलोंके लिये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य्य है। इसलिये फ़सलोंकी कटाईके पश्चात ज्योंही खेत खाली हो जाय त्योंही पलेवाकर के मिट्टी पलटने वाले हलोंसे खेतोंकी जुताइयां चैत्र वैशाख, ज्येष्ठमें निरन्तर करते रहना चाहिये।

साहित्य समालोचना

साहित्य-हृदय

(प्रथम भाग)

[ले० श्री० उपाध्याय हरिश्चन्द्र शर्मा]

सम्पादक तथा प्रकाशक श्री० पं० नर्मदेश्वर प्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०, एल-एल० बी० जार्ज टाउन प्रयाग। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृ० सं० २०८ काग़ज़ और छपाई उत्तम।

यह पुस्तक उपाध्यायजी के भिन्न भिन्न विषयों के अठारह निबन्धों का संग्रह है। इसके प्रत्येक निबन्ध बड़ी योग्यता के साथ लिखे गये हैं। अर्थ गाम्भीर्य तथा वर्णन वैचित्र्य के साथ ही साथ भाषा भी बहुत ही रोचक है। उपाध्याय जी की प्रकृति प्रियता इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर झलक रही है। साथ ही साथ अलंकारों की भी छटायें पाठकोंके हृदयको सहसा मुग्ध कर लेती है। ऐसी पुस्तक प्रकाशित करके वास्तव में पं० नर्मदेश्वरप्रसाद जी ने हिन्दी-साहित्यका बड़ा उपकार किया है। इसके उपलक्ष्य में मैं उक्त पं० जीको हृदय से बधाई देता हूँ।

नोट—यह लेख लेखककी कृषि-विज्ञान नामक पुस्तकसे जो कि छप रही है, लिया गया है।

भारत में रेलपथ

ले० तथा प्र० रामनिवासजी पोद्दार, आगरा आकार सोलह पेजी पृ० सं० ४१६ काग़ज़ तथा छपाई उत्तम, मूल्य २॥), लेखकसे प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तकमें भारत वर्षके सम्पूर्ण रेल पथों (Railway) की प्रत्येक बातोंपर—उनके गुण दोष, आयव्यय तथा उनकी उपयोगितापर भली भाँति प्रकाश डाला गया है। पुस्तक बड़ी खोजके साथ लिखी गई है। इसके द्वारा अर्थशास्त्रके विद्यार्थियोंको भी बहुत सी आवश्यक बातें मालूम हो सकती हैं। निस्सन्देह यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। लेखक महोदयका श्रम परम-प्रशंसनीय है।

ज्ञान गुटिका

संग्रहकर्ता रायबहादुर साँवलदासजी, बी० ए० रानीमंडी प्रयाग, पृ० सं० ४२ काग़ज तथा छपाई उत्तम। मूल्य।)

इस पुस्तमें भिन्न भिन्न कवियोंके शिक्षाप्रद पद्योंका संग्रह है। पुस्तक बालकोंके लिये बहुत उपयोगी है।

—ठाकुरदत्त मिश्र

मुद्रा अर्थात् सिक्के

[ले० श्री विश्वप्रकाशजी विशारद]

विनिमयके लिये द्रव्यका होना अत्यावश्यक है। इस लेखमें हम यह विचार करेंगे कि द्रव्यका प्रयोग किन किन रूपोंमें होता है। हमारे देशमें द्रव्यके रूप रुपया, अठन्नी, चवन्नी, पैसे तथा नोट हैं। भारतवर्षमें चाँदीके रुपये चलते हैं। पाश्चात्य देशमें स्वर्णके सिक्के प्रचलित हैं। बहुतसे देशोंमें स्वर्ण और चाँदी दोनोंके सिक्के चलते हैं। इङ्गलैण्ड देशमें सोने और चाँदीके सिक्कोंके साथ साथ काग़ज़ी सिक्कों (paper money) का भी प्रचार है।

मुद्रा विनिमय का माध्यम है :-

सभी देशोंमें विनिमयका माध्यम अवश्य रहा है। जिस प्रकार विनिमयके बिना किसीका काम नहीं चल सकता उसी प्रकार बिना माध्यमके विनिमयका होना सम्भव नहीं है। विनिमयका माध्यम अधिकतर देशकी सभ्यता और स्थितिपर निर्भर रहा है। अबीसीनियोंके निवासी खानसे खुदे नमकको माध्यम मानते थे। कोरोमंडलके समुद्रीतट निवासी चावलसे विनिमय करते थे। मेक्सिको-निवासी कहवासे वस्तुओंका क्रय विक्रय करते थे। आयोनीनियन्द्वीप निवासी गोलेके तेलको विनिमयका साधन समझते थे। रूसीपुरुष चायकी टिकियोंको मुद्रा मानते थे। अफ्रीका देश के जंगली मनुष्य अन्य आवश्यक वस्तुयें खजूरसे ख़रीदते थे। उत्तरी ध्रुवके निवासी सील नामक पशुकी खालसे अपना काम निकालते थे। गाय, बैल, भेड़, आदि ग्रीक लोगों के माध्यम रहे, उनके विजेता रोम जातिके लोग इसीको माध्यम मानते रहे, रोम जातिके विजेता ट्यूटन जातिके लोग भी उन्हींसे व्यापार करते रहे।

माध्यम वही वस्तु हो सकती है जो मान्य हो, जिसको मनुष्य प्रसन्नतासे ग्रहण कर ले। कोई वस्तु तभी मान्य हो सकती है जब कि लोगोंको उसकी आवश्यकता हो उस वस्तुमें एक गुण और होना चाहिये। जब किसी अन्य वस्तुकी आवश्यकता हो तो उस वस्तुसे वांछित वस्तु क्रयकी जा सके। मुद्राका सर्वमान्य होना नितान्त आवश्यक है। और मुद्राको सर्वमान्य बनानेके लिये यह आवश्यक है कि जिस वस्तुकी मुद्रा बनाई जाय उसको ग्रहण करने में किसीको आपत्ति न हो।

मुद्रा किस वस्तुकी बनानी चाहिये :—

ये पूर्वोक्त वस्तुयें जो कि बहुत दिनों तक माध्यम बनी रही हैं मुद्राका कार्य्य नहीं चला सकतीं। मुद्राका सब से बड़ा गुण है सर्वप्रियता। सोना, चांदी, हीरा जवाहरात आदि वस्तुयें सबको प्रिय हैं। गाय, बैल, भेड़, कहवा, चाय इत्यादिक वस्तुयें सर्वप्रिय नहीं है। सोने और चांदीके सिक्के बननेका ही कारण है कि प्रत्येक मनुष्य इनको रखना चाहता है।

जिस वस्तुकी मुद्रा बनाई जावे वह क्षणिक नहीं होनी चाहिये। पशु थोड़े वर्षोंके अन्तरसे मर जाते हैं। कहवा, चाय, नमक समान वस्तुयें समय के अनुसार नाशको प्राप्त हो जाती हैं। यदि क्षणिक वस्तुयें मुद्रा बनाई जायगी तो मनुष्य उसको अधिक काल तक न रख सकेंगे। वे मुद्राको शीघ्र ही अपने पाससे निकाल देनेकी बाटमें रहेंगे। पर जितने धातु हैं वे क्षणिक नहीं हैं। यद्यपि समयसे वे घिसते अवश्य हैं तिसपर भी उनके घिसनेमें अधिक समय लगता है। बीस या चालीस वर्षतक तो वे बड़ी सुगमतासे रक्खे जा सकते हैं।

उस वस्तुका हलका होना भी अनिवार्य है।

विनिमय करनेमें मुद्रायें एक स्थानसे दूसरे स्थान की ओर एक देशसे दूसरे देशको जाया करती है। ऐसी दशामें यदि मुद्रायें भारी होंगी तो उनके ले जानेमें अधिक व्यय पड़ जायगा और व्यापार की हानि होगी। इस कारणसे मुद्रायें-सोने और चाँदी ही की बन सकती है बाहर भेजनेके लिये तो सोना ही बहुत उपयुक्त है क्योंकि चांदी और सोनेके मूल्यमें बड़ा अन्तर है। जिस मूल्यकी चाँदी एक मनुष्यसे नहींउठ सकती उसी मूल्य का सोना हाथ में लिया जा सकता है।

उस वस्तुके छोटेसे छोटे टुकड़े भी हो सकें। यदि हीरेकी मुद्रा बनाई जावे तो इसके बराबर बराबर छोटे टुकड़े होना असम्भव है। कुशलसे कुशल हीरा काटनेवाले भी एकही तौलके टुकड़े नहीं काट सकते। पर धातुओंको गला कर मुद्रा बनाई जा सकती है। धातुको गलाकर सांचेमें डालते हैं इस प्रकार एकही स्वरूप और एकही तौलके सिक्के बन जाते हैं। अस्तु जो वस्तु गल नहीं सकती उसकी मुद्रा नहीं बन सकती।

मुद्राओंका स्वरूप इस प्रकारका बना होना चाहिये कि गंवारसे गंवार भी उसको पहचान ले। आजकल भारतवर्षमें गंवारभी रुपयेको पहचानता है और उसके मूल्यके बराबर विनिमय कर सकता है। उसे चांदी तौलनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। आवश्यकता पड़ेही क्यों? वह जानता है कि मुद्रा सरकारकी बनाई हुई है और प्रत्येक मुद्राका मूल्य बराबर है।

वह वस्तु अधिक मात्रामें मिल सके। प्लैटिनमकी मुद्रा बनानेका यत्न किया गया था। पर इसका मिलना अधिक समुचित मात्रा कोई सरल कार्य्य नहीं है। इसके अतिरिक्त यह अधिक मात्रामें नहीं मिलता। ऐसी वस्तुओंकी मुद्रा बनना असम्भव है।

मुद्राओं का वर्त्तमान स्वरूप कैसे बना:—

मुद्राओंका स्वरूप देशकी सभ्यता पर निर्भर है। मुद्रायें भी दिन प्रति दिन सभ्यतानुसार उत्तम होती गई। आवश्यकताओंका अनुभव करके नई नई तबदीलियां होती रहीं। भिन्न भिन्न देशोंमें प्रथम भिन्न भिन्न प्रकारकी मुद्रायें बनाई गईं। किसीका स्वरूप चौकोर था और किसी किसीका लम्बा छड़की तरह। इनपर सरकारी मुहर हुआ करती थी। पर मुहर पूरे सिक्के पर न होती थी। इससे चतुर मनुष्य सिक्कोंको घिस कर चांदी और सोना निकाल लेते थे। इस प्रकार सिक्कोंका वज़न कम हो जाता था। इस कमी का अनुभव बिना सिक्केको तौले हुए नहीं होता था। इस कारण बनिया और महाजन सिक्कोंको तोलकर लिया करते थे। यद्यपि यह राजनियम उन दिनोंमें भी था कि सिक्कोंको दूषित न किया जाय पर धूर्त्त मनुष्य अपनेको इस लाभसे कब वंचित रख सकते थे। मुद्राके कार्य्यमें बड़ी अड़चन पड़ा करती थी क्योंकि सिक्के विश्वसनीय न थे। सरकारी मुहरका होना मुद्राके शुद्ध होनेका समुचित प्रमाण न था इसको दूर करनेके लिये ऐसी मुहर मुद्राओंपर छपने लगी जो कि मुद्राको पूर्ण रूपसे ढक लेती थी। ऐसा करनेपर भी मुद्राओंमेंसे सोना और चाँदी निकालना न बन्द हो सका क्योंकि मुहर मुद्राके एक ओर ही होती थी। दूसरी ओरसे धूर्त्त मनुष्य सोना या चाँदी निकाल लिया करते थे। वर्त्तमान मुद्राओंका, जो कि सभ्य देशोंमें प्रचलित है, यदि अवलोकन किया जाय तो यह पता चल जायगा कि भिन्न भिन्न कौन कौन सी तबदीलियां होती रही हैं। हमारे देशमें चांदीका रुपया प्रचलित है। इसके स्वरूपका अवलोकन करनेसे वर्त्तमान मुद्राओंका कुछ अनुमान किया जा सकता है। इसके एक ओर सरकारी मुहर होती है जिसमें पंचमजार्जका चित्र रहता है। उसकी दूसरी ओर अँग्रेजी और उर्दू में "एक रुपया" खुदा होता है। इसके चारों ओरकी गोलाईपर भी छोटी छोटी रेखायें बनी होती है। इसको अँग्रेजी में मिलिंग (milling) कहते हैं। यह प्रथा इसलियेकी गई

जिससे धूर्त्त किनारोंको घिसकर चाँदी न निकाल सकें। रुपयोंका शरीर गोला होता है। प्रायः वर्त्तमान मुद्रायें गोलही बनाई जाती हैं। लोगोंका विचार है कि मुद्रायें गोल बनानेसे कम घिसती हैं। रुपयेका यह रूप बहुत दिनोंके अनुभवसे ही बन पाया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मुद्राओंका स्वरूप देश और राज्यकी सभ्यतापर निर्भर है। वर्त्तमान कालमें भी कम सभ्य जातियों के सिक्के भद्दे बने हुये हैं। सिक्के देशकी चित्रकला के नमूने हैं।

कागज़ी सिक्के

धातुके सिक्के अन्तर्देशीय विनिमयके माध्यम हो सकते हैं क्योंकि प्रत्येक देशके लोगोंको उसे ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती पर धातुके सिक्के चलानेमें राज्योंको एक आपत्तिका सामना करना पड़ा। सोना तथा चांदी पर्याप्त मात्रामें मिलना दुष्कर होगया। इसका कारणसे विशेषज्ञ इस विपत्तिको दूर करनेका उपाय सोचने लगे। कागज़ी सिक्कोंका प्रचलन इसी फलस्वरूप था कागज़ी सिक्कोंके प्रचलनसे सोने और चाँदीकी न्यूनता कम अनुभव होने लगी क्योंकि कार्य्य उसी सुन्दरतासे होने लगा जैसा कि धातुके सिक्कोंसे होता था।

कागज़ी सिक्के बनानेका अधिकार केवल राज्यकोही है। कागज़ी सिक्के एक प्रकारके प्रतिज्ञा-पत्र होते हैं जिसके अनुसार उसके रखने वालेको राजकीय खज़ानेसे उतनी राजकीय धातु मुद्रा मिल सकती है जितनेकी प्रतिज्ञा उस पत्रमें की गई हो। सभी देशोंमें यह नियम कर दिया गया है कि राज्यके अतिरिक्त और कोई इनको प्रकाशित न कर पाये। ऐसा करनेपर वह पुरुष महादण्डका भागी होता है। थोड़े दिन पहले देशका बैंक भी इसी प्रकारके प्रतिज्ञा पत्र छापती थी पर उनका यह अधिकार छीन लिया गया है। बात यह है कि प्रतिज्ञा-पत्र छापनेवालेका भी बहुत कुछ उत्तरदायित्व होता है। यदि प्रतिज्ञा करनेवाला समय पर धातुकी राजकीय मुद्रा न दे सके तो महाअन्धेर मच जायगा। उदाहरण-स्वरूप आजकल भारतमें कागज़ी मुद्रा प्रचलित है। इनका रखने यदि धातुकी मुद्रा लेना चाहे तो किसी भी खज़ानेमें आकर ले सकता है। खज़ानेमें पर्याप्त धन होता है जिससे कि कागज़ी सिक्कोंके बदलेमें धातुकी मुद्रायें दी जा सकें।

अब यह देखना है कि इन सिक्कोंसे क्या लाभ होता है। सन् १६२० ई० में भारतमें लगभग १८६ करोड़ रुपयेके नोट प्रचलित थे। कोषमें सब रुपये रखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि सभी सिक्के एक साथ भँजनेके लिए नहीं आते। उस समय ८६ करोड़ रुपए कागज़ी सिक्कोंके कोषमें थे और शेष १०० करोड़ रुपये विदेशमें ब्याज पर दिये गये थे। इनकी वार्षिक आय ४ करोड़ रुपये थी यदि भारतवर्षमें धातुके ही सिक्के चलते तो ४ करोड़ रुपयेकी राज्यको हानि होती जिसके लिये अन्य कर लगाने पड़ते। इस लाभके अतिरिक्त एक और बड़ा लाभ होता है। धातुके सिक्के घिस जाते हैं और समय समय पर पूरी तौलके सिक्के उनके बजाय बनाये जाते हैं। इसमें भी बहुत व्यय होता है। परन्तु कागज़ी सिक्कोंके बदलनेमें बहुत कम व्यय होता है।

इस लाभके होते हुए भी इन सिक्कोंका प्रचलन आसानीसे नहीं हो जाता। यह कार्य्य सभ्य और शिक्षित जातिमें ही हो सकता है। बहुतसे स्थानों पर स्वार्थवशता अथवा राजकीय कार्य्योंसे अनभिज्ञ होनेके कारण घोर अन्धेर हो जाते हैं। रबल (rouble) नामक कागज़ी सिक्का जो कि बोल्शेविक राज्यने प्रकाशित किया है उसका अन्तर्देशीय मूल्य इतना घट गया है कि १००० रबल दो पैसेको क्रय किया जा सकता है। बोल्शेविक राज्यको इस समय रुपयेकी आवश्यकता है इसलिये वह धड़ाधड़ कागज़के सिक्के छापता चला रहा है। ऐसाही फ्रान्सकी राज्य-क्रान्तिके

समय फ्रान्सके असिगनेट्स (assigantes) की दुर्दशा हो गई थी। यह कहा जाता सकता है कि यह अन्तर केवल क्रान्तिके कारण होगया है। पर मेक्सिको देशमें कागज़ी सिक्केके मूल्यमें अन्तर आगया जबकि वहाँ कोई क्रान्ति न थी। बात यह है कि बहुतसे स्थानों पर जहाँ कि प्रजातन्त्र राज्य प्रचलित नहीं है राजा अपने भोग विलासके लिये कागज़ी सिक्के आवश्यकतासे अधिक प्रकाशित कर देता है। जिसका फल यह होता है कि उनके मूल्यमें अन्तर पड़ जाता है। भारत सरकारको इस महायुद्ध के लिये धनकी आवश्यकता पड़ी थी। यदि लोगोंसे चन्दा माँगा जाता वह उसके देनेमें आनाकानी करते। इसने जितने रुपयेकी आवश्यकता थी उतने नोट प्रकाशित कर दिये। सरकारको तो रुपया मिल गया पर भारतमें वस्तुओंका मूल्य बढ़ गया। इस महायुद्धके समय जो वस्तुओंका मूल्य बढ़ गया था उसका एक मुख्य कारण यह भी था।

कागज़ी सिक्के एकही स्थानमें चल सकते हैं। इसके अतिरिक्त जिसके पास वे होते हैं वे सरकारके पास हो जाते हैं। इसी कारणसे सोने और चाँदीके सिक्के ही अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं।

मुद्राओंके भेद :—

मुद्राओंके प्रायः दो ही भेद माने जाते हैं। (१) राजकीय मुख्य मुद्रा (standard money) और (२) सहायक मुद्रा (token money) राजकीय मुख्य मुद्रा वह है जो कि राजका परिमाण या मान चिन्ह हो। इसके चलानेके लिये राज्य दृढ़ता या राज्य नियमकी आवश्यकता नहीं होती। धातुकी मुद्रायें ही 'राजकीय मुख्य मुद्रा' हो सकती है। इनका मूल्य उतना ही होता है जितने की धातु उसमें पाई जावे। ऐसी मुद्रायें अनगिनित संख्यामें बनाई जा सकती है।

सहायक मुद्राओंके लिये राजनियमकी आवश्यकता पड़ती है और वे राजनियमके सहारे ही चलती हैं क्योंकि उनका मूल्य उससे कम होता है जिसपर वे चलाई जाती हैं। इनकी संख्या भी निश्चित ही रहा करती है जिससे अधिक ऐसी मुद्रायें नहीं बनाई जा सकती। भारतवर्ष में चवन्नी, अठन्नी, दुअन्नी, इकन्नी और पैसे आदि सहायक मुद्रायें हैं। कागज़ी सिक्के भी सहायक मुद्रा ही हैं क्योंकि उनका वास्तविक मूल्य उससे कम होता है जिस पर वे चलते हैं।

द्विधातु परिमाणवाद (bi-metallism) और एक धातु परिमाण (mono-metalism)

पहले प्रायः चाँदीहीकी मुद्राओंका निर्माण होता था। वे ही मुख्य मुद्रा हुआ करती थीं। सहायक मुद्रायें गिलट और चाँदीकी हुआ करती थी। थोड़े दिनके पश्चात सोनेकी मुद्राभी मुख्य-मुद्रा बन गई क्योंकि इनका मूल्य इनकी धातु के बराबर था। यह दशा द्विधातु परिमाणवाद की है जबकि दो धातुके सिक्के मुख्य मुद्रा हों। पर दो मुद्राओंको एक साथ चलनेमें आपत्ति होने लगी। दोनों धातुओंमें किस प्रकारसे विनिमय हो एक अनुपातकी आवश्यकता पड़ी। इस बात का यत्न किया गयाकि सब देश एकही अनुपात रक्खें। पर यह सम्भव न हो सका। किसी देशमें कोई अनुपात रहा और किसी देशमें कोई। कहीं पर १:१६ थी और कहीं १:२५। इसके अतिरिक्त कभी देशमें चांदी आती थी तो बाज़ारकी चांदी का मूल्य घट जाता था और लोग चांदीही देते थे, सोनेको वह जमा करके रख लेते थे। यदि सोना देशमें आजाता था तब मनुष्य चांदीको जमा करने लगते थे। इसको दूर करनेके लिये सभ्य देशमें एकही धातुकी मुद्राको मुख्य माना। दूसरी धातुभी आवश्यकतानुसार चलाई पर उसे सहायक ही माना। इङ्गलैंडने सोनेके सिक्के मुख्य मुद्रा माने। सन् १७१७ ई० में २०½ शिलिंगकी एक गिन्नी होती थी। सरकारने इसका अनुपात १:२१ कर दिया। इसका फल यह हुआ

कि देशमें आये मालका मूल्य चांदीहो में देना लाभप्रद था। इस तरह सोनेके सिक्के देशमें बने रहे। पर १८ वीं शताब्दी भर द्विधातु परिमाणवाद ही चलता रहा। १८१६ ई० में जबकि नैपोलियन-के साथ युद्धका अन्त हुआ तो केवल थोड़े से हलके चांदीके सिक्के ही रह गये थे। इसी समय चांदीके सिक्कोंको सहायक मुद्रा बना दिया गया और अनुपात १:२० रख दिया गया यद्यपि १ गिन्नी २१ तथा २२ शिलिंगके बराबर थी।

ग्रेशमका नियम :—Greshams' law

लंदनके रायल एक्सचेंजके जन्मदाता और महाराणी एलिज़बेथके व्यापार मंत्री सर टोमस ग्रेशमने एक अपूर्व नियम बनाया जोकि उसीके नामसे प्रसिद्ध है। वह नियम है कि "प्रत्येक देश जहां कि दो प्रकारके सिक्के चलते हैं, अप्रचलित और खोटे सिक्कोंके सामने अच्छे सिक्के नहीं ठहर सकते।"

जबकि देशमें दो प्रकारके सिक्के—हलके या ठीक वजनके—चलते हैं तो स्वभावतः मनुष्य पूरे वज़नके सिक्कोंको पसन्द करेंगे। जब मनुष्य रुपयोंको गाड़कर रखते हैं तो इसका ध्यान अवश्य रखा जाता है कि सिक्के पूरी तौलके हों। यदि हलके सिक्के वे जमा करेंगे तो उनका मूल्य भी कम होगा। सिक्कोंके हलके हो जानेके भी कई कारण हैं। एक हाथसे दूसरे हाथमें जानेमें सिक्के घिस जाया करते हैं। सिक्कोंके इधर उधर भेजनेमें ये एक दूसरेकी रगड़ खाकर हलके हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त धूर्त्तजी सिक्कोंसे चाँदी निकालना चाहते हैं वे उनको एक सन्दूकमें रखकर हिलाते हैं। इस क्रियासे थोड़ीसी धातुका चूर्ण उन्हें मिल जाया करता है। जब दो तरहके सिक्के चलते हैं तो नये नये सिक्कोंको लोग जमा करने लग जाते हैं या गला लेते हैं। ऐसा करनेसे हलके हलके सिक्के ही रह जाते हैं कईबार इसके दूर करनेका प्रयत्न किया गया और नये सिक्के बनाये गये। परन्तु खज़ानेसे निकलते ही लोगोंने उसको जमाकर लिया और थोड़े दिनोंमें वे दिखाई न पड़ने लगे। यह ग्रेशमके नियमका फल है।

अन्तर्देशीय देशोंसे व्यापार करनेमें भी मुद्राकी आवश्यकता होती है। दूसरे देशवाले हलके सिक्के लेना कब पसन्द करेंगे। हलके सिक्कोंमें धातु कम मात्रामें होती है, इसलिये वे अच्छे अच्छे सिक्के मांगेंगे। इसका भी वही फल होता है और हलके सिक्केही रह जाया करते हैं। जब कि कभी कभी धातुका हाटमूल्य markot ualue) सिक्कोंके मूल्यसे बढ़ जाता है उस अवस्थामें भी सिक्के गलने आरम्भ हो जाते हैं उन्हीं सिक्कोंके गलानेमें अधिक लाभ होता है जो कि हलके न हो। इस प्रकार अच्छे अच्छे सिक्के गला दिये जाते हैं और हलके सिक्के बच रहते हैं।

ग्रेशमका नियम निम्न अवस्थाओंमें घटित होता है:—

(१) जब कि हलके सिक्के नये सिक्कोंके साथ प्रचलित होते हैं।

(२) जब कि धातुके सिक्कोंके साथ ऐसे कागज़ी सिक्कें चलते हों जिनका मूल्य घट गया हो।

(३) जबकि दो धातुके सिक्के साथ साथ चलते हों और एकका वास्तविक मूल्य हाट-मूल्य से अधिक हो। मान लीजिये कि सोने और चाँदीमें राज्य निर्मित अनुपात (mint ratio) १:१६ है परन्तु धातुका अनुपात हाटमें १:१५ है। ऐसी दशामें लोग जो कुछ चांदी उनके पास होगी उसको निकाल देंगे। इस अवस्थामें चाँदीके सिक्कोंका चलना बन्द हो जायगा और सोनेके सिक्के का प्रचलन बढ़ जायगा।

पर इस ग्रेशमके नियमका प्रयोग तभी हो सकेगा जब कि सिक्कोंकी संख्या आवश्यकतासे अधिक हो। जब सिक्के अधिक होंगे तभी गलाने

या जमा करनेकी फिक्र लोगोंको पड़ेगी । जब सिक्के आवश्यकतासे कम या आवश्यकताके बराबर होंगे तब हल्के और ठीक सिक्के चलते ही रहेंगे । इसको रोकनेका एक और उपाय है। सिक्कोंका मूल्य हाटके मूल्यसे अधिक कर दिया जाय। ऐसी अवस्थामें न सिक्के गलाये जायंगे और न कोई उनके जमा करनेका साहस करेगा।

विज्ञानके प्रेमियोंसे नम्र निवेदन

सच्चिदानन्द परमात्माकी अनुपम अनुकम्पासे इस अंकके साथ विज्ञानका ग्यारहवां वर्ष समाप्त हो रहा है। लगातार ग्यारह वर्ष तक इसने हिन्दी संसारकी जिस प्रकार अनवरत सेवा की है यह हमारे सहृदय पाठकोंसे छिपा नहीं है। विज्ञानके प्राचीन तथा अर्वाचीन सिद्धान्तोंके हिन्दी भाषा भाषियोंको सरल रीतिसे समझानेके ही लिये इसने जन्म ग्रहण किया है। इसका जन्म ऐसे समयमें हुआ था जब कि भारतवर्षमें विज्ञानका नाम इने गिने विश्वविद्यालयके उपाधिधारियों तक ही था, ऐसी दशामें अपनी सत्ताको स्थायी करनेमें इसे कितनी कठिनाइयां पड़ी होंगी यह हमारे पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। युद्धके समयमें जब कि कागज़का दाम तिगुना चौगुना हो रहा था, कितने पत्र अपना व्यय न संभाल सकनेके कारण अन्तर्धान हो गये, कितनोंने अपना कलेवर बदल दिया और कतिपय पत्रोंने अपना मूल्य बढ़ाकर ही अपने घाटेका भार ग्राहकोंके मत्थे मढ़ दिया। ऐसे विकराल समयमें भी विज्ञानने अपनी जीर्ण शीर्ण दशाको संभालता हुआ अपने पाठकोंकी सेवामें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं होने दी। न तो इसके आकार तथा कागज़में किसी प्रकारका परिवर्तन किया गया और न कुछ मूल्य ही बढ़ाया गया। लगातार चार पाँच वर्षके इस प्रकारके घाटेका परिणाम विज्ञान जैसे पत्रके लिये जिसका क्षेत्र बहुतही संकुचित है और जिसके सहायकोंकी संख्या इने गिने शिक्षित लोगोंमें ही परिमित है, क्या हो सकती थी इसका भी सहज ही अनुमान हो सकता है। सारांश यह है कि निर्धनताके कारण संसारमें अपने अस्तित्वकी रक्षा करनेमें सर्वथा असमर्थ होगया।

ज़रासा सहारा मिलते ही अपनी दशाको किसी प्रकार संभालता हुआ अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये यह फिर अग्रसर होने लगा। थोड़ेही दिनोंमें पिछले अंक प्रकाशित होकर ग्राहकोंकी सेवामें भेज दिये गये और फिर यह नियमित रूपसे प्रकाशित होने लगा। उत्तम लेखोंके अभाव तथा कुछ अन्य आकस्मिक कारणोंसे क्रमकी संख्या निकालनेमें देरी होगई और मीनकी संख्या भी अधिक नहीं किन्तु फिर भी कुछ पिछड़ कर निकल रही है। हमें इस बातका हार्दिक खेद है। भविष्यमें यदि हमारे अनुग्राहक ग्राहकोंने विज्ञानको अपनाया तो यह नियमित रूपसे उनकी यथासाध्य सेवा करता रहेगा थोड़े दिनों तक पिछड़ जानेके कारण अधिकांश ग्राहकोंने रुष्ट होकर गत वर्षमें विज्ञानसे सम्बन्ध छोड़ दिया था। जितनी वी० पी० भेजी गईं थी उनमेंसे लगभग दोतिहाई वापस आई जिससे हमारा कितने रुपये रजिस्ट्री करनेमें ही व्यर्थ गये अतएव निवेदन है कि इस अंकके साथ जो जिन सज्जनोंका चन्दा समाप्त हो रहा है, वे कृपया ३) मनीआर्डर द्वारा शीघ्र भेज दें इससे उन्हें रजिस्ट्रीका व्यय =) अधिक न देना पड़ेगा। जो सज्जन किसी कारण वश भविष्य में ग्राहक नहीं रहना चाहते वे शीघ्र सूचना दे दें ताकि हम उन्हें वी० पी० न भेजें, अन्यथा कार्यालयको बड़ी हानि होगी। अप्रैल मासके अन्ततक जिन महाशयोंका चन्दा कार्यालयमें न पहुँच जायगा उनके नाम ३=) की वी० पी० भेजी जायगी।

मैनेजर, विज्ञान प्रयाग

सूर्य-सिद्धान

[ले०—श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव]

(गतांकसे आगे)

जिस समय पानी बरस रहा हो और बूंदें खड़ी गिर रही हों उस समय यदि मनुष्य छतरी ठीक ऊपर थाँमे खड़ा हो तो भीगनेसे बच जाता है परन्तु यदि वह छतरी ठीक उसी तरह थाँमे आगे बढ़े तो वह भीगनेसे बच नहीं सकता क्योंकि उसके चलनेके कारण खड़ी गिरती हुई बूंदें भी उसके मुंहपर तिरछी आती हुई पड़ती हैं। मनुष्यकी चाल जितनी ही अधिक होगी उतनी ही तिरछी बूंदें उस पर पड़ेंगी। यह भी इसी बातका उदाहरण है।

इसी प्रकार जब प्रकाश दूरदर्शक यन्त्रके भीतर प्रवेश करता है तब उसकी दिशामें परिवर्तन हो जाता है। कल्पना करो कि किसी तारेका यथार्थ स्थान त है और द्रष्टाकी आँख द पर है। यदि द्रष्टा अचल हो और वर्तन (refraction) भी न हो तो तारा द त दिशामें सदैव देख पड़ेगा, चाहे तारेसे प्रकाश द्रष्टाकी आँखमें उसी क्षण पहुँच जाय जिस क्षण तारेसे चलता है या उसके आनेमें कुछ देर लगे।

परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि द्रष्टा द दि दिशामें चल रहा है तो तारा उसको द त की दिशामें तभी देख पड़ेगा जब प्रकाश उसी क्षण द्रष्टाकी आँखमें पहुँचे जिस क्षण तारेसे चलता है। परन्तु यदि प्रकाशके त से द तक आनेमें कुछ समय लगता है तो तारा द त दिशामें कदापि नहीं देख पड़ेगा।

मान लो कि द म उस नलीका अक्ष (axis) है जिसके मादा और मिदि समानान्तर भुज हैं। जिस समय प्रकाश नली में म से अक्ष म द की ओर उतर रहा है यदि उसी समय नली अपने ही समानान्तर द दि की ओर जा रही है और जितनी देर-में प्रकाश म द दूरी चलता है उतनी देरमें नली द दा दूरीके समान आगे बढ़ती है तो चित्र ८९ की तरह यह प्रकट है कि प्रकाश द पर न पहुँच कर दा पर पहुँचेगा। इससे यह जान

चित्र ८९
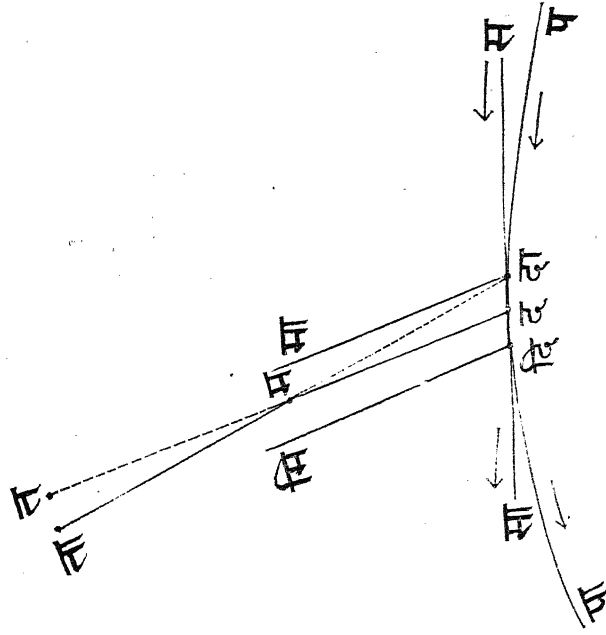
पड़ेगा कि प्रकाश म दा दिशासे आ रहा है और तारा दा मा की सीधमें वहीं ता पर है। इस कारण यदि नली चलायमान हो और तारा त पर हो तो वह नलीकी अक्षकी दिशामें नहीं देख पड़ेगा वरन् दा म ता दिशामें देख पड़ेगा। अर्थात् तारेका

स्पष्ट स्थान ता होगा जो यथार्थ स्थानसे उसी दिशाकी ओर बढ़ा हुआ है जिस दशामें नली जा रही है। इस प्रकार इन दोनों जातियोंके कारण तारेका यथार्थ और स्पष्ट स्थानोंमें त म ता कोणका अंतर पड़ता है जिसे भूचलन संस्कार aberration कहते हैं।

यह जानना सहज है कि त म ता अथवा द म दा कोणका परिमाण क्या है क्योंकि म द दा त्रिभुज में

$$\frac{\text{द दा}}{\text{म दा}} = \frac{\text{ज्या द म दा}}{\text{ज्या म द दा}}$$

परंतु द दा पृथ्वीकी उतने समय की चाल है जितने समयमें प्रकाश म दा के समान चलता है। इस लिए द दा और म दा की दूरियोंमें वही अनुपात है जो पृथ्वी और प्रकाशकी गतियोंमें है। परन्तु पृथ्वी प्रति सेकंड १८$\frac{१}{२}$ मील चलती है और प्रकाश १८६००० मील चलता है इसलिए

$$\frac{\text{ज्या द म दा}}{\text{ज्या म द दा}} = \frac{\text{द दा}}{\text{म दा}} = \frac{\text{पृथ्वीकी गति}}{\text{प्रकाशकी गति}} = \frac{१८.५}{१८६०००} \text{ के लगभग}$$

$$= \frac{१}{१००००} \text{ के लगभग}$$

यदि भूचलन संस्कार को भू माना जाय तो ज्या द म दा=ज्या भू=भू जब कि भू का मान रेडियनमें हो। ऐसी दशामें

$$\text{भू} = \frac{१}{१००००} \times \text{ज्या म द दा}$$

यदि भू को विकलाओंमें लिखा जाय तो

$$\frac{\text{भू}''}{२०६२६५} = \frac{१}{१००००} \text{ ज्या म द दा} = \frac{१}{१००००} \text{ज्या त द सा}$$

अथवा $\text{भू}'' = २०''.६३$ ज्या त द सा

२०''.६३ को भूचलन संस्कारका स्थिरांक (coefficient of aberration) कहते हैं। इसका अधिक शुद्ध मान २०''.४७ है। यदि त द सा कोण ९०° के समान हो तो यह स्पष्ट है कि भूचलन संस्कारका महत्तम मान २२''४७ होगा।

यह स्पष्ट है कि भूचलन संस्कारके स्थिरांकमें पृथ्वीकी गति एक गुणकके रूपमें वर्तमान है। परंतु पृथ्वीकी गति सदा समान नहीं होती जस समय पृथ्वी अपने नीचपर रहती है उससमय इसकी गति अत्यन्त तीव्र और जिस समय यह अपने उच्चपर रहतीहै उस समय इसकी गति अत्यन्त मंद रहती है। इसलिए पहली दशामें भूचलन संस्कारका स्थिरांक २०''.८० और दूसरी दशामें २०''.१३ होता है।

भूचलन संस्कारके कारण सूर्य, तारों और दूरके ग्रहों के भोगांश, शर, विषुवांश और क्रान्तिपर क्या प्रभाव पड़ता है इसकी व्याख्या विस्तारके भयसे छोड़ दी जाती है। यहां इसकी चर्चा साधारण रीतिसे कर दी जाती है:—

जिस प्रकार वार्षिक लंबनके कारण तारा अपने यथार्थ स्थान के चारों ओर एक छोटी सी कक्षामें घूमता हुआ देख पड़ता है उसी प्रकार भूचलन संस्कारके कारण भी वह अपने यथार्थ स्थानके चारों ओर एक छोटीसी कक्षा मे घूमता हुआ देख पड़ता है। यह कक्षा भी क्रान्तिवृत्तके तलके समानान्तर होती है। इसकी कक्षाका आकार भी उसी प्रकार बदलता है जिस प्रकार लंबनके कारण तारेकी कक्षाका आकार बदलता है। जिस समय इसका आकार दीर्घवृत्त की तरह होता है उस समय इसका दीर्घ अक्ष २०''.४७ के समान होती है और लघु अक्ष २०''.४७×ज्याश के समान होती हैं जब कि श तारेका शर या विक्षेप हो।

यह स्पष्ट ही है कि तारेका भूचलन संस्कार उसी दिशामें होता है जिस दिशामें पृथ्वीकी गति होती है परन्तु जिस दिशामें पृथ्वीकी गति होती है उससे ९०° आगे सूर्य रहता है क्योंकि पृथ्वीकी गति भूकक्षाकी स्पर्श रेखाकी दिशा में होती है जो भूकक्षाके अर्द्धव्यास से ९०° का कोण बनाता और सूर्य भूकक्षाके केन्द्रपर रहता है। इसलिए यह सिद्ध हो गया कि तारेका भूचलन संस्कार क्रान्तिवृत्त के उस विन्दुकी ओर होता है जो सूर्य से ९०° पीछे रहता है अर्थात् जिसका भोगांश सूर्यके भोगांश से ९०° कम होता है।

जो तारा क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव अर्थात् कदम्बपर होता है वह वर्ष भरमें अपने यथार्थ स्थानके चारों ओर एक वृत्त पर घूमता हुआ देख पड़ता है जिसके कर्द्धव्यासका कोणात्मक मान २०″·४६ होता है।

जो तारा क्रान्तिवृत्तपर होता है वह क्रान्तिवृत्तपर ही अपने यथार्थ स्थान से २०″·४६ आगे और पीछे लोलककी तरह आन्दोलन (Oscillation) करता हुआ देख पड़ता है। इस लिए वर्ष भर में कुल अंतर ४७″ ६ के समान पड़ता है।

जो तारा किसी और स्थानमें रहता है जिससे उसका शर मान लो श के समान होता है, वह वर्ष भरमें एक दीर्घवृत्तपर घूमता हुआ देख पड़ता है। जिसका केन्द्र तारेका यथार्थ स्थान होता है, जिसके दीर्घ अथवा आधा २०″ ४६ और लघु अक्षका आधा २०″४६ ज्या श तथा जिसका तल क्रान्तिवृत्त के तलके समानान्तर होता है।

इसपर बहुत से पाठक पूछ बैठेंगे कि वार्षिक लंबन और भूचलन संस्कारमें फिर अंतर क्या है। इसका उत्तर यह है कि वार्षिक लंबनके कारण तारा जिस कक्षामें घूमता हुआ देख पड़ता है उसका विस्तार तारेकी दूरीपर अवलंबित है अर्थात् तारा जितना ही दूर होगा उसका लंबन उतना ही कम होगा जिसके कारण कक्षा का आकार भी छोटा होगा। सबसे निकट वाले तारेकी जो कक्षा लंबनके कारण देख पड़ता है उसके दीर्घ अक्षका आधा ०″ ७६ से अधिक नहीं है। परंतु भूचलन संस्कारके कारण तारेकी जो कक्षा देख पड़ती है उसके दीर्घ अक्षका आधा सदैव २०″·४० होता है और यह सब तारों के लिए समान होता है। दूसरी बात यह है कि यदि तारा उसी दिशामें हो जिस दिशामें सूर्य है अथवा सूर्यसे ठीक १८०° पर हो तो लंबन का परिमाण शून्य होता है परन्तु भूचलन संस्कारका परिमाण महत्तम अर्थात् २०″·४७ होता है। तीसरे यह कि लंबन के कारण तारा सूर्य की ही ओर कुछ हटा हुआ देख पड़ता है परन्तु भूचलन संस्कार के कारण तारा उस विन्दुकी ओर हटा हुआ देख पड़ता है जो सूर्य से ९०° पीछे होता है।

ग्रहोंपर भूचलन संस्कारका प्रभाव दो तरहसे पड़ता है, एक तो पृथ्वीकी गतिके कारण दूसरा ग्रहकी गतिके कारण। यदि ग्रहकी गति पृथ्वी की गतिके समान हुआ। और उसी दिशामें हुआ तो भूचलन संस्कारका अभाव होगा। अन्य दशाओंमें भूचलन संस्कार क्या होगा इसकी गणना अलग अलग सहज ही की जा सकती है।

चंद्रमाकी गति प्रकाशकी गतिकी तुलनामें बहुत छोटी होती है इस लिए इसके कारण भूचलन संस्कार शून्य के समान समझा जा सकता है। पृथ्वीकी गतिके कारण भी चंद्रमामें भूचलन संस्कार नहींके समान होता है क्योंकि पृथ्वीके साथ साथ चंद्रमाभी वर्ष भरमें सूर्यकी परिक्रमा कर आता है। इसलिए चंद्रमामें भूचलन संस्कारका प्रभाव शून्यके समान होता है। [देखिये कवर पृष्ठ ३]

चलन-समीकरण

मिश्रित उदाहरण

[लें० श्री० अवध उपाध्याय]

इस अध्यायमें मिश्रित उदाहरणोंका वर्ण न किया जायगा। जब एक नियम बतला दिया जाता है और ऐसे प्रश्न हल करनेके लिये दिये जाते हैं जिनका सम्बन्ध उसी नियमसे रहता है, तब बहुधा यह होता है कि, उनके पढ़ने वाले भली भांति जानते हैं, कि यह प्रश्न इसी नियमकी सहायतासे हल हो जायगा। इस प्रकार उनकी बुद्धिका विकास भली भाँति नहीं होता। इस प्रकारसे, उनके अभ्यास करनेमें सहायता अवश्य मिलती है, परन्तु बुद्धिकी उन्नति नहीं होती।

इस कमीको पूरा करनेके लिये, इस अध्याय में ऐसे प्रश्नोंका वर्णन किया जाता है, जिनके हल करने के लिये, किसी विशेष आधारकी सहायता अवश्य ली जा सकती है, परन्तु यह पता नहीं है, कि किस नियमकी सहायता ली जायगी।

विद्यार्थियोंको चाहिये कि पहले इन प्रश्नोंके हल करनेका स्वयं प्रयत्न करें और जब वे इसे हल न कर सकें, तभी, पुस्तकमें उन्हें देखें।

१

समीकरण $(\text{य}+\text{र})^2 \frac{\text{तर}}{\text{तय}} = \text{अ}^2$ को हल करो

$$(\text{य}+\text{र})^2 \frac{\text{तर}}{\text{तय}} = \text{अ}^2 \quad \ldots\ldots\ldots(१)$$

मान लिया कि $\text{य}+\text{र}=\text{व}$

$$\therefore \frac{\text{तर}}{\text{तय}} + १ = \frac{\text{तव}}{\text{तय}}$$

$$\text{और } (\text{य}+\text{र})^2 = \text{व}^2$$

इन मानोंका प्रथम समीकरणमें उत्थापन करनेसे $\text{व}^2 \left(\frac{\text{तव}}{\text{तय}} - १ \right) = \text{अ}^2$

$$\text{अथवा } \text{व}^2 \frac{\text{तव}}{\text{तय}} - \text{व}^2 = \text{अ}^2$$

$$\text{या } \text{व}^2 \frac{\text{तव}}{\text{तय}} = (\text{अ}^2 + \text{व}^2)$$

$$\therefore \text{व}^2 \, \text{तव} = (\text{अ}^2 + \text{व}^2) \, \text{तय}$$

$$\therefore \frac{\text{व}^2 \, \text{तव}}{\text{अ}^2 + \text{व}^2} = \text{तय}$$

$$\therefore \text{तव} - \frac{\text{अ}^2 \, \text{तव}}{\text{अ}^2 + \text{व}^2} - \text{तय} = ०$$

$$\therefore \text{व} - \text{अ}^2 \times \frac{१}{\text{अ}} \text{स्परे}^{-१} \frac{\text{व}}{\text{अ}} - \text{य} + \text{स} = ०$$

$$\therefore \text{य} + \text{र} - \text{अ} \; \text{स्परे}^{-१} \frac{\text{य}+\text{र}}{\text{अ}} - \text{य} + \text{स} = ०$$

$$\therefore \text{र} + \text{स} - \text{अ} \; \text{स्परे}^{-१} \left(\frac{\text{य}+\text{र}}{\text{अ}} \right) = ०$$

$$\therefore \frac{\text{र}+\text{स}}{\text{अ}} = \text{स्परे}^{-१} \frac{\text{य}+\text{र}}{\text{अ}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{य}+\text{र}}{\text{अ}} = \text{स्परे} \frac{\text{र}+\text{स}}{\text{अ}}$$

२

समीकरण $३ \frac{\text{तर}}{\text{तय}} + \frac{३}{\text{य}+१} \text{र} = \frac{\text{य}^४}{\text{र}^२}$ को हल करो

$$३ \frac{\text{तर}}{\text{तय}} + \frac{२}{\text{य}+१} \text{र} = \frac{\text{य}^४}{\text{र}^२} \quad \ldots\ldots\ldots १$$

$$\therefore ३ \text{र}^२ \frac{\text{तर}}{\text{तय}} + \frac{२ \text{र}^३}{\text{य}+१} = \text{य}^४$$

मान लिया कि $\text{र}^३ = \text{व}$

$$\therefore ३ \text{र}^२ \frac{\text{तर}}{\text{तय}} = \frac{\text{तव}}{\text{तय}}$$

इन मानका (१) में उत्थापन करने से

$$\frac{\text{तव}}{\text{तय}} + \frac{२ \text{व}}{\text{य}+१} = \text{य}^४ \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

यह समीकरण (८) वें गुरु की सहायतासे हल हो सकता है।

$$\text{यहां पर } \text{प} = \frac{२}{\text{य}+१}$$

$$\therefore इ^{\int प\, तय} = इ^{\int \frac{२}{य+१} तय}$$

$$= इ^{२\, ल_इ (य+१)}$$

$$= इ^{ल_इ (य+१)^२}$$

$$= (य+१)^२$$

दूसरे समीकरणमें (य+१) से गुणा करनेसे

$$(य+१)^२ \frac{तव}{तय} + \frac{२\,व}{(य+१)} \times (य+१)^२ = य^३ (य+१)^२$$

$$\text{अथवा } (य+१)^२ \frac{तव}{तय} + २\,व\,(य+१) = य^३ (य+१)^२$$

$$\text{अथवा } (य+१)^२\, तव + २\,(य+१)\, तय\, व = य^३ (य+१)\, तय$$

$$\therefore (य+१)^२ = \frac{य^६}{६} + \frac{२\,य^५}{५} + \frac{य^४}{४} + स$$

$$\therefore ६० \,(य+र)^२\, र = १०य^६ + २४य^५ + १५य^४ + स$$

३

समीकरण $य\frac{त\,र}{त\,य} + \frac{र^२}{य} = र$ को हल करो

$$य\frac{त\,र}{त\,य} + \frac{र^२}{य} = र \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

$$\therefore \frac{त\,र}{त\,य} + \frac{र^२}{य^२} = \frac{र}{य}$$

$$\therefore \frac{त\,र}{त\,य} - \frac{र}{य} = -\frac{र^२}{य^२}$$

$र^२$ का भाग देनेसे

$$-र^{-२}\frac{त\,र}{त\,य} + \frac{र^{-१}}{य} = \frac{१}{य^२}$$

मान लिया कि $र^{-१} = व$

$$\therefore -र^{-२}\frac{त\,र}{त\,य} = \frac{त\,व}{त\,य}$$

$$\therefore \frac{त\,व}{त\,य} + \frac{व}{य} = \frac{१}{य^२} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (३)$$

यहां पर (८) के अनुसार

$$प = \frac{१}{य}$$

$$\therefore इ^{\int प\, तय} = इ^{\int \frac{१}{य} तय}$$

$$= इ^{ल_इ य}$$

$$= य$$

दोनों ओर (२) में, य से गुणा करनेसे

$$व\frac{त\,व}{त\,य} + \frac{व^२}{य} = \frac{१}{य}$$

$$\text{अथवा } य\,तव + व\,तय = \frac{१}{य}$$

$$\text{अथवा } व\,य = ल_इ स\,य$$

$$\therefore \frac{य}{र} = ल_इ स\,य$$

$$\text{अर्थात् } स\,य = इ^{\frac{य}{र}}$$

४

समीकरण $(य-र^२)\frac{त\,र}{त\,य} = अ^२$ को हल कर

$$(य-र)^२ \frac{त\,र}{त\,य} = अ^२ \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

$$\therefore \frac{त\,र}{त\,य} = \frac{अ^२}{(य-र)^२}$$

मान लिया कि $य - र = व$

$$१ - \frac{त\,र}{त\,य} = \frac{त\,व}{त\,य}$$

$$\therefore व^२\left(१ - \frac{त\,व}{त\,य}\right) = अ^२$$

$$\text{या } व^२ - व^२\frac{त\,व}{त\,य} = अ^२$$

$$\therefore\ ब^{२}\frac{त\ ब}{त\ य} = (ब^{२} - अ^{२})$$

$$\text{या,}\ ब^{२}\ त\ ब = (ब^{२} - अ^{२})\ त\ य$$

$$\text{या,}\ \frac{ब^{२}\ त\ ब}{ब^{२} - अ^{२}} = त\ य$$

$$\text{या}\ \frac{\{(ब^{२} - अ^{२}) + अ^{२}\}\ त\ ब}{ब^{२} - अ^{२}} = त\ य$$

$$\therefore\ त\ ब - \frac{अ}{२}\left(\frac{१}{ब+अ} - \frac{१}{ब-अ}\right) त\ ब = त\ य$$

$$\therefore\ ब - \frac{अ}{२}\ ल_{इ}\frac{ब+अ}{ब-अ} = य + स'$$

$$\therefore\ (य - र) - \frac{अ}{२}\ ल_{इ}\frac{य-र+अ}{य-र-अ} = य + स'$$

$$\therefore\ र + \frac{अ}{२}\ ल_{इ}\frac{य-र+अ}{य-र+अ} = स'$$

५

समीकरण $(य^{२} र^{३} + य\ र)\ त\ र = त\ य$ को हल करो

$$(य^{२} र^{३} + य\ र)\ त\ र = त\ य \ldots\ldots\ldots(१)$$

$$\therefore\ \frac{त\ य}{त\ र} = य\ र + य^{२} र^{३}$$

$$\text{या,}\ \frac{त\ य}{त\ र} - य\ र = य^{२} र^{३}$$

दोनों ओर $य^{२}$ का भाग देने से

$$-य^{-२}\frac{त\ य}{त\ र} + \frac{र}{य} = -र^{३} \ldots\ldots\ldots(२)$$

मान लिया कि $-य^{-२}\frac{त\ य}{त\ र} = \frac{त\ ब}{त\ र}$

$$\therefore\ \frac{त\ ब}{त\ र} + ब\ र = -र^{३}$$

गुरु (८) के अनुसार यह प्रश्न हल हो सकता है यहाँ पर प = र

$$इ^{\int प\ त\ र} = इ^{\int र\ त\ र} = इ^{\frac{र^{२}}{२}}$$

$$\therefore\ इ^{\frac{र^{२}}{२}}\ त\ ब + ब\ इ^{\frac{र^{२}}{२}}\ त\ र = र^{३}\ इ^{\frac{र^{२}}{२}}\ त\ र$$

$$\therefore\ इ^{\frac{र^{२}}{२}}\ ब = -\int र^{३} इ^{\frac{र^{२}}{२}}\ त\ र + स$$

$$\text{या,}\ \frac{इ^{\frac{र^{२}}{२}}}{य} = -\int र^{३} इ^{\frac{र^{२}}{२}}\ त\ र + स$$

अब मान लिया कि $ल = \frac{र^{२}}{२}$

$$\therefore\ र\ त\ र = त\ ल$$

$$\therefore\ -\int र^{३} इ^{\frac{र^{२}}{२}}\ त\ र + स = -२\int ल\ इ^{ल}\ त\ ल$$

$$= -२\ इ^{ल}(ल - १)$$

$$= -२\ इ^{\frac{र^{२}}{२}}\left(\frac{र^{२}}{२} - १\right)$$

$$= इ^{\frac{र^{२}}{२}}(२ - र^{२})$$

$$\therefore\ \frac{इ^{\frac{र^{२}}{२}}}{य} = इ^{\frac{र^{२}}{२}}(२ - र^{२}) + स$$

$$\text{या}\ \frac{१}{य} = २ - र^{२} + स\ इ^{-\frac{र^{२}}{२}}$$

६

समीकरण $र - (१ + प^{२})^{-\frac{१}{२}} = ब$ को हल करो।

इस प्रश्न में $प = \frac{त\ र}{त\ य}$

$$र - (१ + प^{२})^{-\frac{१}{२}} = ब \ldots\ldots\ldots(१)$$

$$\therefore\ र - ब = (१ + प^{२})^{-\frac{१}{२}}$$

$$\therefore\ (र - ब)^{२} = \frac{१}{१ + प^{२}}$$

$$\therefore\ १ + प^{२} = \frac{१}{(र - ब)^{२}}$$

$$\therefore\ प^{२} = \frac{१}{(र - ब)^{२}} - १$$

$$= \frac{१ - (र - ब)^{२}}{(र - ब)^{२}}$$

$$\therefore\ प = \sqrt{\frac{१ - (र - ब)^{२}}{(र - ब)^{२}}}$$

अथवा $\frac{त र}{त य} = \sqrt{\frac{१-(र-व)^२}{(र-व)^२}}$

या, $त य = \frac{र-व}{\sqrt{१-(र-व)^२}} त र$

या $य + स = -\sqrt{१-(र-व)^२}$

या, $(य+स)^२ = १-(र-व)^२$

$\therefore (य+स)^२ + (र-व)^२ = १$

७

समीकरण $य र प^२ + प (३ य^२ - २ र^२) - ६ य र = ०$ को हल करो

$य र प^२ + प (३य^२ - २र^२) - ६य र = ० \ldots १$

या. $(प य - २ र)(प र + ३ य) = ०$

यहाँ पर दो बातें सम्भव हो सकती हैं या तो

$प य - २र = ०$ या $प र + ३ य = ०$

पहले मान लिया कि $प य - ३ र = ०$

$\therefore प य = २ र$

या, $\frac{त र}{त य} य = २र$

या, $\frac{त र}{त य} = \frac{२र}{य}$

या, $\frac{त र}{२ र} = \frac{त य}{य}$

$\therefore ल_इ र^{\frac{१}{२}} = ल_इ य + ल_इ स$

$\therefore र^{\frac{१}{२}} = स य$

या, $र = स^२ य^२$

अथवा $र - स^२ य^२ = ०$

फिर मान लिया कि $प र + ३ य = ०$

$\therefore पर = -३ य$

या, $\frac{त र}{त य} र = -३य$

$\therefore त र = -३ प त य$

या $\frac{र^२}{२} + \frac{३य^२स}{२}$

अथवा $र \quad ३य^२ = स$

$\therefore (र - स^२ य^२)(र^२ + ३य^२ - स) = ०$

८

समीकरण $\left(प^२ - \frac{१}{अ^२ - य}\right)\left(प - \sqrt{\frac{र}{य}}\right) = ०$ को हल करो

$\left(प^२ - \frac{१}{अ^२ - य^२}\right)\left(प - \sqrt{\frac{र}{य}}\right) = ० \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(१)$

अथवा $\left(प + \frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}}\right)\left(प - \frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}}\right)\left(प - \sqrt{\frac{र}{य}}\right) = ०$

यहाँपर तीन बातें सम्भव हो सकती हैं, या तो

(१) $प + \frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}} = ०$

या, (२) $प - \frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}} = ०$

या, (३) $प - \sqrt{\frac{र}{य}} = ०$

मान लिया कि (१) $प + \frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}} = ०$

$\therefore प = -\frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}}$

$\therefore \frac{त र}{त य} = -\frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}}$

या, $त र = -\frac{त य}{\sqrt{अ^२ - य^२}}$

अथवा $र = कोज्या^{-१}\frac{य}{अ} + स$

$\therefore \left(र - कोज्या^{-१}\frac{य}{अ} - स\right) = ०$

फिर मान लिया कि (२) $प - \frac{१}{\sqrt{अ^२ य^२}} = ०$

$\therefore प = \frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}}$

$\therefore \frac{त र}{त य} = \frac{१}{\sqrt{अ^२ - य^२}}$

$$\therefore त\, र = \frac{त\, य}{\sqrt{अ^2 - य^2}}$$

$$\therefore र = ज्या^{-1}\frac{य}{अ} + स$$

$$\therefore र - ज्या^{-1}\frac{य}{अ} - स = 0$$

फिर मान लिया कि (२) $प - \sqrt{\frac{र}{य}} = 0$

$$\therefore प = \sqrt{\frac{र}{य}}$$

अथवा $\frac{त\, र}{त\, य} = \sqrt{\frac{र}{य}}$

या, $\frac{त\, र}{\sqrt{र}} = \frac{त\, य}{\sqrt{य}}$

या, $२\, र^{\frac{1}{2}} = २य^{\frac{1}{2}} + २\, स$

या, $२\, (र^{\frac{1}{2}} - य^{\frac{1}{2}} - स) = 0$

अथवा $र^{\frac{1}{2}} - य^{\frac{1}{2}} - स = 0$

$$\therefore \left(र - ज्या^{-1}\frac{य}{अ} - स\right)$$

$$\left(र - कोज्या^{-1}\frac{य}{अ} - स\right)\left(य^{\frac{1}{2}} - र^{\frac{1}{2}} - स\right) = 0$$

९

समीकरण $य\, र^2(प^2 + २) = २\, य\, र^3 + य^3$

$य\, र^2(प^2 + २) = २\, प\, र^3 + य^3 \cdots\cdots (१)$

$\therefore य\, र^2(प^2 + २) - २\, प\, र^3 - य^3 = 0$

$\therefore (प\, र - य)\,(प\, य\, र + य^2 - २र^2) = 0$

यहाँपर दो बातें सम्भव हो सकती हैं या तो

(१) $पर - य = 0$

या (२) $प\, य\, र + य^2 - २\, र^2 = 0$

मान लिया कि (१) $प\, र - य = 0$

तब, $प\, र = य$

अथवा $र\frac{त\, र}{त\, य} = य$

अथवा $र\, त\, र = य\, त\, य$

या, $र^2 = य^2 + स$

फिर मान लिया कि (२ $प\, य\, र + य^2 - २र^2 = 0$

$\therefore प\, य\, र = २\, र^2 - य^2$

या, $प = \frac{२\, र}{य} - \frac{य}{र}$

मान लिया कि $व = \frac{र}{य}$

$$\therefore \frac{त\, य}{य} = \frac{व\, त\, व}{व^2 - १}$$

$\therefore लइ\, स\, य = लइ\sqrt{व^2 - १}$

$= लइ(व^2 - १)^{\frac{1}{2}}$

$\therefore स\, य = (व^2 - १)^{\frac{1}{2}}$

अथवा $स^2 य^2 = व^2 - १$

$= \frac{र^2}{य^2} - १$

$\therefore य^2 - र^2 + स\, य^4 = 0$

$\therefore (र^2 - य^2 - स)(य^2 - र^2 + स\, य^4) = 0$

१०

समीकरण $र = -\, य\, प + प^2 य^4$ को हलकरो।

$र = -प\, य + प^2 य^4 \cdots\cdots\cdots\cdots (१)$

य के अनुसार तात्कालिक सम्बन्ध निकालनेसे

$प = -प - य\frac{त\, प}{त\, य} + २\, प\, य^4\frac{त\, प}{त\, य} + ४य^3 प^2 = 0$

अथवा $२\, प + य\frac{त\, प}{त\, य} - २\, य^4\, प\frac{त\, प}{त\, य} - ४\, य^3 प^2 = 0$

$$\therefore (१ - २\, प\, य^3)\left(२\, प + य\frac{त\, प}{त\, य}\right) = 0$$

अब इसकी दो दशाएं हो जाती हैं;

या तो $१ - २\, प\, य^3 = 0$

वा, $२\, प + य\frac{त\, प}{त\, य} = 0$

पहले मान लिया कि $१ - २ प य^२ = ०$

$$\therefore २ प य^२ = १$$

$$\therefore २ प = \frac{१}{य^२}$$

$$\text{अथवा } २ \frac{त र}{त प} = \frac{१}{य^२}$$

$$\text{अथवा } २ तर = \frac{त प}{य^२}$$

$$\therefore र = -\frac{१}{२ य^२} + स$$

$$\text{या, } ४ य^२ र + १ = २ स य^२$$

$$\therefore ४ य^२ र + १ - २ स य^२ = ०$$

फिर मान लिया कि $२ प + २ य \frac{त प}{त प} = ०$

$$\therefore \frac{त य}{य} = -\frac{त प}{२ प}$$

$$\therefore ल_इ य = \frac{१}{२} ल_इ \frac{स}{प}$$

$$\text{अथवा } ल_इ य^२ = ल_इ \frac{स}{प}$$

$$\therefore य^२ = \frac{स}{प}$$

$$\text{अथवा } प य^२ = स$$

$$\text{परन्तु } र = - प य + प^२ य^४$$

[प्रथम समीकरण से य से गुणा करने से]

$$\therefore य र = - प य^२ + प^२ य^४ . य$$

$$= - स + स^२ य$$

$$\therefore य र + स = स^२ य$$

(६)

सिद्ध करो कि $र = म य + र \sqrt{१ + म^२}$

समीकरण $र = य \frac{त र}{त प} + र \sqrt{१ + \left(\frac{त र}{त य}\right)^२}$

का उत्तर है।

$$र = म य + र \sqrt{१ + म^२}$$

$$\therefore \frac{त र}{त य} = म$$

अभीष्ट चल समीकरण $र = प \frac{त र}{त य} + र \sqrt{१ + \left(\frac{त र}{त प}\right)^२}$ में

$\frac{त र}{त य} = म$ का उत्थापन करने से

$र = य म + र + \sqrt{१ + म^२}$ हुआ

यही सिद्ध करना था

चतुर्थ अध्याय के अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) $(१ + र^२) त य = (स्परे^{-१} इ - य) त र$

(२) $य \frac{त र}{त य} - र = \sqrt{य^२ + र^२}$

(३) $(य^२ - र य^२) \frac{त र}{त य} + र^२ + य र^२ = ०$

(४) $\frac{त र}{त य} + \frac{१ - २ य}{य^२} र = १$

(५) $(२ य - र + १) त य + (२ र - य - १) त र = ०$

(६) $य \frac{त र}{त य} + \frac{२}{य} = र$

(७) $य (१ - य^२) \frac{त र}{त य} + (२ य^२ - १) र = अ य^३$

(८) $\frac{त र}{त य} = य^३ र^३ - य र$

(९) $र \frac{त र}{त प} = अ य$

(१०) $य र तप + (र^२ - य^२) त र = ०$

प्रथम अध्यायके अभ्यासार्थ प्रश्नोंके उत्तर

(१) $र = य र_१$

(२) कोज्या अ त य = कोज्या र त र

(३) $\frac{त र}{त य} = \frac{य^२ + १}{य र (र + १)}$

(४) $\frac{त र}{त य} = \frac{य^२ + य + १}{र^२ + र + १}$

(५) $\text{१} + \left(\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right)^2 + \text{र}\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} = 0$

(६) $\text{य}\left[\left(\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right)^2 + \text{र}\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2}\right] - \text{र}\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = 0$

(७) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} + \text{र} = 0$

(८) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} + \text{र} = 0$

(९) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} + \text{र} = 0$

(१०) $\frac{\text{त}^2\text{र}}{\text{त य}^2} + \text{र} = 0$

(११) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} + \text{र} = 0$

(१२) $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = -\frac{\text{य}}{\text{र}}$

(१३) $\text{य त र} + \text{र त य} = 0$

(१४) $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{म}$

(१५) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} = 0$

(१६) $\left[\text{१} + \left(\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right)^2\right]\frac{\text{त र}^3}{\text{त य}^3} - \text{३}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\left(\frac{\text{त}^2\text{र}}{\text{त य}^2}\right)^2 = 0$

(१७) $\left\{\text{१} + \left(\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right)^2\right\}\frac{\text{त र}^3}{\text{त य}^3} = \text{३}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\left(\frac{\text{त}^2\text{र}}{\text{त य}^2}\right)^2$

(१८) $\text{९}\left(\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2}\right)^2 - \text{४५}\frac{\text{त र}^2}{\text{त प}^2}\,\frac{\text{त र}^3}{\text{त य}^3}\,\frac{\text{त र}^4}{\text{त र}^4} + \text{४०}\left(\frac{\text{त र}^3}{\text{त य}^3}\right)^3 = 0$

(१९) $\text{२ य}\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{र}$

(२०) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} + \text{न र}^2 = 0$

(२१) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} - \text{न}^2\text{ र} = 0$

(२२) $\frac{\text{त र}}{\text{त य}} + \text{य}\frac{\text{त र}^2}{\text{त प}^2} = 0$

(२३) $(\text{१} + \text{य}^2)\frac{\text{त र}}{\text{त य}} = \text{१}$

(२४) $(\text{१} - \text{य}^2)\frac{\text{त र}^2}{\text{त प}^2} = \text{य}\frac{\text{त र}}{\text{त य}} - \text{य}^2\text{ र}$

(२५) $\text{य}\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} + \text{२}\frac{\text{त र}}{\text{त प}} - \text{प र} = 0$

(२६) $\frac{\text{त र}^3}{\text{त य}^3}\left(\text{र} - \text{य}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\right) + \text{३ य}\left(\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2}\right)^2 = 0$

(२७) $\text{य}^2\frac{\text{त र}^2}{\text{त प}^2} + \text{य}\frac{\text{त र}}{\text{त य}} + \text{र} = 0$

(२८) $\frac{\text{त र}^3}{\text{त प}^3} + \text{प}\frac{\text{त र}^2}{\text{त प}^2} + \text{क}\frac{\text{त र}}{\text{त य}}\ \text{ख य} = 0$

(२९) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त प}^2} - \text{२}\frac{\text{त र}}{\text{त य}} + \text{२ र} = 0$

(३०) $\frac{\text{त र}^2}{\text{त य}^2} - \text{४}\frac{\text{त र}}{\text{त य}} + \text{१३ र} = 0$

द्वितीय अध्याय

प्रश्नोंके उत्तर

(अ)

(१) $\text{यस्परे य} - \text{लघु छे रे य} = \text{र स्प रे र} - \text{लघु छे रे र} + \text{स}$

(२) $\frac{\text{य}^3\text{र}^3}{\text{३}} + \frac{\text{य}^2\text{र}^2}{\text{२}} + \text{य} - \text{र} = \text{स}$

(३) $\text{२ य र} + \text{य} + \text{र} + \text{स}(\text{य} + \text{र} + \text{१}) = \text{१}$

(४) $\text{लघु}\sqrt{\text{१} + \text{र}^2} = \text{लघु य} + \text{स्परे}^{-1}\text{य} + \text{स}$

[देखिए कवर पृष्ठ ३]

वनस्पति-शास्त्र

प्रारम्भिक

पानी वग़ैरः में होनेवाली नीचे दरजे की बनस्पतियों को छोड़कर बाक़ी सब दरख़्तों के अवयव हम अच्छी तरह आसानी से मालूम कर सकते हैं। इन सब ऊंचे श्रेणी वाले दरख़्तों के दो भाग हम अच्छी तरह जान सकते हैं। एक हिस्सा तो ज़मीन के अन्दर चला जाता है। यह ही हिस्सा दरख्त् को ज़मीन में जमाये रखता है और साथ ही साथ ज़मीन के अन्दर के पानी को दरख़्त के ऊपर वाले दूसरे हिस्से में पहुँचाता है। दरख़्त का दूसरा हिस्सा वह है जोकि ज़मीन के ऊपर रहता है। यह ऊपर ही रोशनी की तरफ़ बढ़ता जाता है। पहले हिस्से को जड़ (Root) कहते हैं दूसरे हिस्से को जो ज़मीन के ऊपर रहता है अंकुर (Shoot) कहते हैं। ऊपर वाले हिस्से के दो और हिस्से हैं। एक को तना (Stem) कहते हैं और दूसरे को पत्तियां (Leaves)। तो गोया हमको यह कहना चाहिये कि दरख्त के मुख्य तीन हिस्से हैं, तना, जड़ और पत्तियां। दरख़्त की बाढ़ के साथ इन्हीं तीनों हिस्सों से दोयम दरजे के हिस्से निकलते हैं। जड़ और तने में उन्हें शाखा कहते हैं। बहुतसी दूसरी चीज़ों के भी पत्तीनुमा आकार बने हुए होते हैं। इन्हें पत्तियों में शामिल करना पड़ता है जैसे हरी पत्तियां, फूल की पखरियां, दल इत्यादि।

हम ऊपर लिख आये हैं कि अंकुर के दो हिस्से हैं तना और पत्तियां लेकिन इसके साथ साथ यह भी मालूम होना आवश्यक है कि दरख़्त के ऊपर वाले हिस्से में इन दोनों चीज़ों के सिवाय एक और भी चीज़ होती है जिसे फूल (Flower) कहते हैं। पहला, अर्थात् तना और पत्तियां तो (शाखों सहित) बढ़ने बढ़ाने वाला अंकुर कहलाता है और दूसरा याने फूल उत्पन्न करनेवाला अंकुर कहलाता है।

अब इन ऊंचे श्रेणीवाले दरख्तों में पत्तियां तना और जड़ इनके हरएक की कई क़िस्में होती हैं। इससे यह आवश्यक जान पड़ता है कि हरएक के अवयव को अलग अलग करके उनकी तमाम क़िस्में बयान करें।

तना (Stem)

एक पूरे बढ़े हुये तने में हमको यह बात दिखाई देती है कि उसके किसी किसी जगह से तो पत्तियां निकलती हैं (यह पत्तियों के निकलने को जगहें अमूमन बाकी जगहों से मोटी और उठी हुई होती हैं) और दो पत्तियों के निकलने वाली जगहों के बीच की जगह खाली होती है। जिस उठी हुई जगह से पत्तियाँ निकलती हैं उसे गाँठ (Node) कहते हैं और बीच की ख़ाली जगह को गाँठों के बीच की खाली जगह (Internode) कहते हैं।

तनों के बयान करने के लिये कुछ नाम

तने अक्सर गोल होते हैं और उन्हें गोल या बेजनदार तने कहते हैं। अगर गोल होने की बजाय उनमें कोने होते हैं और इन कोनों की बीच की जगह दबी हुई होती है जैसे लौकी,
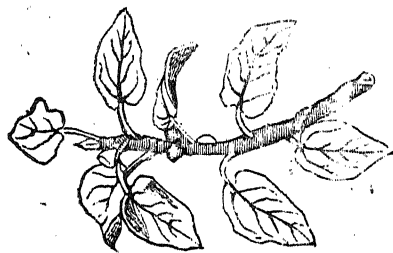
शाख़। गाँठें जहाँ से पत्तियाँ निकलती हैं और दो गाँठों के बीच की खाली जगह। सिरे की कली।

खीरेवग़ैरः के तनों में तो इन तनों को कोनेदार तने कहते हैं। तने या तो सब्ज़ या हरे ही होते हैं जैसे गेहूं, मटर मूली वग़ैरः के तने, और या लकड़ी की तरह होते हैं जैसे आम नीबू कटहल वग़ैरः के तने। बाज़ बाज़ तने ऐसे होते हैं कि उनके नीचे का हिस्सा तो लकड़ी की तरह का होता है और ऊपर का हरा होता है, जैसे वॉलफ्लावर (wallflower) का तना। तने गाँठ पर फूले हुये होते हैं और अगर इन जगहों पर वह जुड़े हुये मालूम हों तो उन्हें जोड़दार तने कहते हैं। इनकी मिसालें बहुत हैं जैसे बाजरा, मकई, घास, बांस वग़ैरः। बाज़ तनों पर बारीक २ बाल पाये जाते हैं जैसे लौकी, सूरजमुखी, कासनी वग़ैरः में। कुछ तनों पर कांटे पाये जाते हैं जैसे गुलाब, सेमल, बेर, बबूल वग़ैरः में। जब तनों पर बाल वग़ैरः कुछ न हों और बिलकुल चिकने हों तब उन्हें चिकने तने कहना चाहिये जैसे केला, कदली वग़ैरः के तने। उन तनों को खुखले तने कहना चाहिये जब वे बीच में खुखले हो गये हों इन तनों की मिसालें अक्सर बड़े २ दरख्तों में पाई जाती हैं। बाज़ पीपल, इमली, आम वग़ैरः के तने खुखले हो जाते हैं और इनमें चिड़ियां, सांप, और अक्सर दूसरे बड़े जानवर तक रहने लगते हैं।

तनों की क़िस्में

हमको यह मालूम होना चाहिये कि दरख़्त का हर एक हिस्सा कोई न कोई ख़ास काम करने के लिये उस ख़ास शक्ल का बना हुआ होता है। तने के ज़्यादातर तीन क़िस्म के काम होते हैं।

(क) पहला काम तो यह कि वह पत्तियों को सम्हालता है और उनको इस तरह से फैलाये रहता है कि उनको हवा और धूप लगने में दिक़्क़त न हो।

(ख) दूसरा काम यह है कि जो पानी दरख़्त जड़ों के ज़रिये ज़मीन से खींचता है उसे पत्तियों में और दरख़्त के दूसरे हिस्सों में जहां उसकी ज़रूरत हो पहुँचाता है और साथ ही साथ उस बने हुये खाने को जो हरे हिस्से में बनता है बाढ़ की जगह पहुँचाता है।

(ग) तीसरा काम यह है कि आगे की ज़रूरत के लिये अक्सर खाद्य वस्तुओं के कोठों का काम दे।
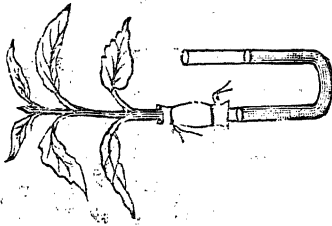
इसी तरह से जड़ें जमीन से पानी खींचकर ऊपर पत्तियों में पहुँचाती हैं। काँच के नली में लगी हुई शाख़। सिरे की कली।

अब यह काम भिन्न भिन्न दरख़्त अलग २ तरह से करते हैं क्योंकि हर एक दरख़्त का तना उसी ख़ास शक्ल का बना हुआ होता है कि जिस मेल के तने की ज़रूरत उस ख़ास जगह अर्थात् परिस्थिति के लिये हो।

इन ऊपर लिखे कामों के सिवाय तने और भी काम करते हैं जैसे (१) बाज़ तनों के ऊपर कांटे होने की वजह से वह अपने को बचाने का काम करते हैं जैसे सेमल का तना (२) बाज़ पत्तियों की तरह हरे और चपटे होते हैं, चाहे उतने पतले न हों, और उन्हीं का काम भी करते हैं जैसे नागफनी। इसमें वह हथेली की तरह मोटे और चपटे हिस्से असली तने हैं जो कि पत्तियों की तरह हरे हैं और पत्तियों ही की तरह खाना बनाने का काम करते हैं।

इन सब बातों से लड़कों को यह ज़रूर पता चल गया होगा कि तनों की कई क़िस्में हो सकती हैं। यानी जिस दरख़्त को जिस ख़ास परिस्थिति में काम करना अर्थात् रहना पड़ता है उसी परिस्थिति के काम का उसका तना बना हुआ होता है। वनस्पति वर्ग में जितने मेल के तने पाये जाते हैं उनको हम नीचे के किसी न किसी विभाग में बांट सकते हैं।

(१) सादे और सीधे तने ज़मीन के ऊपर रोशनी की तरफ़ बढ़ते रहते हैं। ज़्यादातर तने इसी मेल के होते हैं जैसे नीम, आम, जामुन, वग़ैरः में। ऐसे तनों को सीधे तने कहते हैं।

(२) अक्सर तने कमज़ोर होने की वजह से अपने आप को नहीं सम्हाल सकते और इनको सहारे की ज़रूरत होती है और इस वजह से किसी दरख़्त या दीवार का सहारा लेकर वे अपने आप को ऊपर रोशनी की तरफ़ उठाते हैं जिससे कि धूप और हवा उसकी पत्तियों को अच्छी तरह मिल सके। इस मेल के तनों का कमज़ोर तनों का नाम दिया गया है। इस मेल के तनों में वह तने शामिल हैं जैसे बेलों वग़ैरः के तने—लौकी, खीरा, सेम।

(३) अब बाज़ तने ऐसे होते हैं कि ज़मीन के ऊपर रोशनी में बढ़ने की बजाय ज़मीन के अन्दर भी रहते हैं और इन्हें ज़मीन के अन्दर रहने वाले तने कहते जैसे फ़र्न अदरक।

(४) बाज़ दरख़्त ऐसे होते हैं कि जिनमें असली तने का पता ही नहीं चलता और पत्तियां बिलकुल जड़ से निकलती हुई मालूम होती हैं।

इन ऊपर लिखे हुए तनों की क़िस्मों में बाज़ दरख़्त तो ऐसे होते हैं कि कई साल तक ज़िन्दा रहते हैं जैसे पीपल, बरगद, सेमल नीबू वग़ैरः। इन्हें बहुवर्षी कहते हैं। बहुत से दरख़्त केवल एक वर्ष ही ज़िन्दा रहते हैं इन्हें एकवर्षी कहते हैं। और बाज़ दरख़्त ऐसे होते हैं जो दो वर्ष तक रहते हैं इन्हें द्विवर्षी कहते हैं। इन द्विवर्षी दरख़्तों में पहले वर्ष में तो सिर्फ़ पत्तियाँ और शाखें निकलती हैं और दूसरे वर्ष में वे फूलते हैं जिससे कि बीज पैदा होकर वे ही सन्तानोत्पत्ति के साधन हो जाते हैं।

अब हम ऊपर लिखे तनों की क़िस्मों के उन भिन्न भिन्न प्रकार के तनों को बतलावेंगे कि जो उस ख़ास शक्ल की वजह से उस ख़ास क़िस्म के मेल में शामिल हैं।

(१) कमज़ोर तने—इस मेल में वह तने शामिल हैं जो कि कमज़ोर होने की वजह से ज़मीन पर रेंगते हैं। इनमें बहुत से तने ऐसे भी हैं जो खुद तो सीधे ऊपर नहीं बढ़ सकते परन्तु कसी न किसी वस्तु का सहारा पाकर उसके सहारे ऊपर रोशनी की तरफ़ बढ़ते हैं। इन्हें चढ़ने वाले तने कहते हैं। इन चढ़नेवाले पौदों के कोई न कोई अवयव इस तरह से बने हुए होते हैं कि जिनकी मदद से तना किसी सहारे पर आसानी से चढ़ सके।

(क) जड़ों की मदद से चढ़ने वाले पौदे—बाज़ तनों में (जैसे Pepper vine) यह होता है कि तनों के ऊपर जड़ें निकलती हैं जिनको संयोगी (Adventitious) जड़ें कहते हैं और ये ही जड़ें सहारों को पकड़ कर तनों को ऊपर रोशनी की तरफ़ बढ़ाती हैं।

(ख) रेशों की मदद से चढ़ने वाले तने—कुछ पौदों में उनकी शाखें (जैसे अंगूर की बेल में) अपनी असली शक्ल बदल कर रेशों की शक्ल में तबदील हो जाती हैं और यह रेशे दरख़्त को किसी न किसी सहारे पर चढ़ने में मदद करते हैं।

(ग) सहारे के चारों ओर लपटकर चढ़नेवाले तने—(लपटनेवाले तने)—बाज़ तने जो किसी भी तरकीब से ऊपर की ओर नहीं बढ़ सकते वह अपने आपको और ही तरकीब से किसी सहारे पर चढ़ाते हैं। जिस सहारे पर चढ़ना होता है यह पौदे अपने को उसके चारों तरफ़ लपेटते हैं और इस सहारे को चक्कर देकर उस पर चढ़ते हैं।

(घ) इनके अलावा बाज़ तने अपने आपको ऊपर की तरफ़ बढ़ाने के लिये और ही तरकीबों का इस्तेमाल करते हैं बाज़ तो शाखों के सिरे पर हुक की तरह टेढ़े बन जाते हैं और इन हुकों से अपने को सहारे पर लटका लेते हैं।

अब ज़रा यह बात भी ध्यान देने के योग्य है कि आख़िर इन सब तरकीबों की आवश्यकता ही क्या है? हम ऊपर ही लिखआये हैं कि दरख़्त के तने के ख़ास तीन काम हैं और उसी के साथ यह भी बताया है कि उन कामों में से तनों का एक यह भी काम है कि वे दरख़्त को सीधा रक्खें जिससे कि पत्तियाँ धूप पाकर भोजन बनाने का काम कर सकें और साथ ही साथ श्वासोछ्वास क्रिया भी होती रहे। अगर इन दरख़्तों में जिनके तने कमज़ोर होते हैं कोई ऐसी तरकीब न हो कि जिससे उनकी पत्तियों को धूप और हवा मिलने

में आसानी हो तो दरख़्त के मुरझाकर मर जाने का डर है। और इसी वजह से इन दरख़्तों में जिनके तने कमज़ोर होते हैं परमेश्वर ने ऐसी तरकीबों की योजना की है।

(२) ज़मीन की सतह पर दौड़ने वाले तने—बाज़ दरख़्तों से ख़ास तरह की बनावट के अंकुर निकलते हैं और इन्हीं की मदद से उनकी वृद्धि भी होती है। इन अंकुरों के कई नाम हैं।
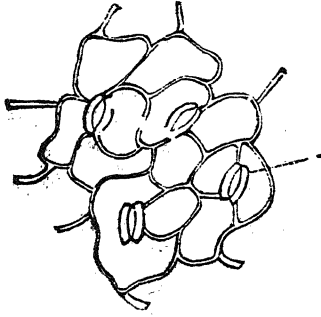
पत्तियों के ऊपर के रन्ध्र। इन्हीं से होती हुई कारबन वायु पत्ती के अन्दर पहुँचती है और इन्हीं के ज़रिये से श्वासोच्छ्वास क्रिया भी होती है।

(क) रेंगने वाले अंकुर—उन पतले अंकुरों को कहते हैं जो ज़मीन से लगे हुए बहुत दूर तक चले जाते हैं। यह खुद पत्तियों की बग़ल से निकलते हैं। थोड़ी थोड़ी दूर पर इन अंकुरों पर छिलकेनुमा पत्तियाँ निकलती हैं और इन पत्तियों की बग़ल में एक एक कली होती है। जिस जगह से अंकुरों पर कलियाँ निकलती हैं उसी जगह उनसे संयोगी जड़ें निकली हुई होती हैं। इस तरह से नये पेड़ पैदा होते हैं। इन रेंगने वाले अंकुरों की कई मिसालें हैं; जैसे स्ट्राबरी, दूब घास या मामूली घास।

(ख) सकर (Sucker) यह भी रेंगने वाले अंकुरों ही की तरह होता है उसमें फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही होता है कि इसका तना ज़मीन की सतह के नीचे होता है, या ऊपर की तरफ़ बढ़ता है और ज़मीन के ऊपर की तरफ़ अंकुर और नीचे की तरफ़ जड़ें देता है। इसको हम तना इस वजह से कहते हैं कि यह ख़ुद एक पत्ती की बग़ल से निकलता है और इस पर छिलकेनुमा पत्तियाँ हैं जैसे रेंगने वाले अंकुर पर भी पाई जाती हैं। इसका रङ्ग सफ़ेद या फीका जड़ों के मानिन्द होता है क्योंकि यह ज़मीन के भीतर रहता है। इसकी पोदीना बहुत अच्छी मिसाल है।

(३) ज़मीन की सतह के नीचे रहनेवाले तने—जिन दरख़्तों में इस तरह के तने पाये जाते हैं उन दरख़्तों को किसी ख़ास हवा की तबदीलियों से या पानी के न मिलने से सूख कर मुरझा जाने का डर नहीं रहता और इसी वजह से बन पेड़ों का, जिनमें ऐसे तने पाये जाते हैं, कई साल तक ज़िन्दा रहना मुमकिन हो जाता है। इन तनों की बहुत सी सूरतें होती हैं।

कन्द—यह नाम हम उन सब तनों को देते हैं जिनमें कि दरख़्त की भोजन सामिग्री भरी हुई होती है। लड़के अक्सर

इन्हें जड़ें समझेंगे लेकिन इनमें हरी पत्तियों का निकलना और इस पर कलियों का पाया जाना ये ही इसको तना कहने के लिये काफ़ी सुबूत रखती है। किसी किसी कन्दपर हरी पत्तियाँ पाई जाती हैं। बहुत प्रकार के कन्द पाये जाते हैं और यह प्राणी मात्र की उपजीविका के बहुत बड़े आधारों में से हैं। पुराने समय में हमारे तपस्वी लोगों का, फलों को छोड़कर, इन्हीं चीज़ों से उदरनिर्वाह होता था। कहा जाता है कि उनके भोजन की ख़ास तीन चीज़ें थी, कन्द, मूल और फल। इन कन्दों में कई चीज़ें शामिल हैं जैसे आलू, सूरन, प्याज़, शकरकन्दी, अरबी, बण्डा वग़ैरः वग़ैरः। इनमें से थोड़ी सी चीज़ों के बनावट के बारे में लिखकर हम कन्दों का बयान ख़तम करेंगे।

आलू :—आलू जो कि हम तरकारी बनाने के काम में लाते हैं असल में तने का वह हिस्सा है जिस में कि खाने का सामान भरा हुआ होता है। यह असल में ज़मीन के अन्दर पतले अङ्कुरों के सिरे पर होते हैं। इन ज़मीन के नीचे होनेवाले पतले अङ्कुरों को अंकुर इस लिये कहते हैं कि उन पर छिलकेनुमा पत्ती पाई जाती है और इसकी अन्तर रचना भी तने की तरह होती है। यह हम लिख ही चुके हैं कि आलू अंकुरों के फूले हुये सिरे हैं और इनके बड़े और गोल रहने की वजह यह है कि इनमें भोजन सामिग्री भरी रहती है। आलू गोया ज़मीन के अन्दर के तनेकी एक सूरत सिर्फ़ इसी वजह से नहीं है कि इनके अंकुर पर छिलकेनुमा पत्ती होती है किन्तु एक और वजह है और वह यह कि आलू पर कलियाँ भी पाई जाती हैं जिनको हम आलू की आँखें कहते हैं। जब कि आलू बेये जाते हैं तब इन्हीं आँखों में से कलियाँ बढ़ निकलती हैं और उससे नया दरख़्त पैदा हो जाता है। इन कलियों के बढ़ने को जो खाने की आवश्यकता होती है वह आलूके अन्दर भरे हुये सामान से पूरी की जाती है।

प्याज़ :—इसकी और आलू की बनावट में बहुत अन्तर है। पासवाली आकृति से मालूम होगा कि अगर एक प्याज़ को लेकर लम्बा काटा जाय तो बीच में और बिलकुल नीचे की ओर जो जगह है और जिसके चारों तरफ़ गूदा भरी हुई पत्तियाँ होती हैं वह तना है। इसको मण्डल कहते हैं और इसीसे फूल देनेवाला अंकुर निकलता है। इस मण्डल को ढकती हुई और इसीके चारों तरफ़ गूदेदार मोटी मोटी पत्तियाँ होती हैं। इन गूदेदार पत्तियों में के सबसे अन्दरवाली पत्ती के बग़ल में एक छोटी कली होती है जो कि दूसरे वर्ष में बढ़ कर ख़ुद प्याज़ बनती है और इसके अन्दर एक और छोटी कली पाई जाती है और यह सिलसिला बराबर जारी रहता है। मण्डल के नीचे की तरफ़ से संयोगी जड़ें निकलती हैं जो कि बहुत ही पतली होती हैं किन्तु बहुत लम्बी नहीं होतीं। यह गूदेदार पत्तियाँ एक के बाहर एक बड़ी तरकीब से लगी हुई होती हैं और सब से बाहर की तरफ़ जो कि लाल या सफ़ेद बारीक पत्ती हमें नज़र आती है इसमें और इसके अन्दर वाली मोटी पत्तियों में असली कुछ भी फ़र्क नहीं है सिर्फ़ सब से बाहर की तरफ़ होने की वजह से यह सूख जाती है और सूख जाने की वजह से इसके अन्दर की सामग्री पतली और सूखी हुई होती है।

अरवी :—यह ज़मीन के अन्दर के तने के सिरे की गाँठ

है जिस में भोजन सामग्री भरी होती है और जिसके ऊपर छिलकेनुमा पत्ती और कलियाँ पाई जाती हैं। अरवी, सूरन अदरक वगैरः, ये उन ज़मीन के अन्दर वाले तनो की तरह पतले और लम्बे होने की बजाय जैसे कि फ़र्न या कदली के तने होते हैं, मोटे और कम चौड़े होते हैं। इनकी बहुत सी शक्लें होती हैं। इन पर जो कली होती है दूसरे साल कन्द बन जाती है और उसके अन्दर फिर एक और कली पैदा हो जाती है जो कि उसके दूसरे साल बढ़ कर तना बन जाती है और यह सिलसिला जारी रहता है। बरसात में यह कलियाँ बढ़ कर अपनी बाढ़ के लिये कन्द के अन्दर की सामग्री इस्तेमाल करती हैं। अंकुर ऊपर हवा की तरफ़ बढ़ता है। इस नये अंकुर के नीचे की तरफ़ से संयोगी जड़ें निकलती हैं जो कि ज़मीन में बढ़ कर अपना काम करती हैं। गरमी के मौसम में जो कुछ फ़ालतू सामग्री होती है वह इस नये अंकुर के नीचे की तरफ़ जमा हो जाती है और इस तरह से नया कन्द पैदा हो जाता है।

अब हमें जिन दो तनों को बयान करना है वे ऐसे हैं कि जो अपनी मामूली शक्ल से बिलकुल ही तबदील हो गये हैं और यह शक्ल की तबदीली यहाँ तक हो गई है कि मामूली तौर से यह दरख़्त के दूसरे अवयवों की तरह हो जाते हैं।

वह तने जो रेशों की शक्ल में तबदील हुये हैं:— इनके बारे में हम ऊपर तो काफ़ी लिख ही चुके हैं। तने के हिस्से पतले रेशों की तरह हो जाते हैं और इन्हीं रेशों की मदद से ऐसे दरख़्त अपने आप को किसी सहारे के ऊपर चढ़ाते हैं। इस से यह साफ़ मालूम हो जायगा कि इस तरह के तनों की सूरत की तबदीली उन्हीं दरख़्तों में पाई जाती है जो कि कमज़ोर होते हैं और जिन्हें ऊपर की तरफ़ बढ़ने के लिये इन रेशों की मदद की ज़रूरत होती है। अंगूर की बेल में या 'पेशन फ़्लावर' की बेल में इसकी मिसाल बहुत ही अच्छी तरह देखने में आती है।

तनों की कांटे की शक्ल में तबदीली:— बाज़ हालतों में क्या होता है कि तने की बाढ़ बन्द हो जाने के कारण उसका कांटा बन जाता है। ऐसी हालत में हम इस कांटे को सूरत बदला हुआ तना इस कारण से कहते हैं कि दूसरे सूरत बदले हुए तनों की तरह इस पर भी छिलकेनुमा पत्ती होती है। दूसरी बात यह है कि उन पत्तियों के बग़ल में कलियाँ पाई जाती हैं। तीसरी बात यह है कि यह ख़ुद ही पत्तियों के बग़ल से निकले हुये होते हैं। इन कांटों के विषय में एक बात लिखना अलबत्ता आवश्यक जान पड़ता है और वह यह है कि इन कांटों में और गुलाब के कांटों में बहुत फ़र्क़ है। गुलाब के कांटे तने के ऊपर के मामूली उभार हैं जैसे कि दरख़्त के तने या पत्ती के ऊपर के बाल या रोयें होते हैं। तो गोया गुलाब के कांटों में और बेर बबूल वग़ैरः के कांटों का फ़र्क़ उनकी अन्तर रचना में है और यद्यपि गुलाब के कांटे और बाल या रोयें यह दोनों ही उभार हैं तो भी इनकी भी अन्तर रचना में फ़र्क़ है।

पत्ती की (यानी हरी और चपटी) शक्ल में तने की तबदीली:— इसकी बहुत उम्दा मिसाल नागफनी के दरख़्त में मिलती है। इस दरख़्त में क्या होता है कि इसके हथेली

या सांप के फन की तरह के जो चपटे और चौड़े हिस्से हैं वह असल में तने के हिस्से हैं पत्तियां नहीं हैं। इस तरह के सूरत बदले हुये तने अक्सर उन दरख़्तों में पाये जाते हैं जो रेती या रेतीले मैदानों में पाये जाते हैं। यद्यपि यह तनों ही के हिस्से हैं तो भी यह दरख़्त की जीविका के लिये वह काम करते हैं जो मामूली दरख़्तों में, जिनमें कि हरी हरी पत्तियाँ होती हैं, हरी पत्तियाँ करती हैं, अर्थात् श्वासोच्छ्वास क्रिया, कारबन संस्थापन क्रिया वग़ैर:। इन पत्तोनुमा तनों पर अक्सर शुरू में छोटी छोटी हरी पत्तियाँ निकलती हैं परन्तु वह बहुत ही जल्द गिर जाती हैं।

कलियां

अगर हम किसी पौदे के बढ़ते हुये तने को देखें तो यह मालूम होगा कि जहां तक तनों पर पत्तियाँ निकलती चली जाती हैं वहाँ तक तो कोई ख़ास बात नहीं होती, हमें गाँठें
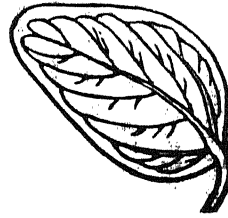
पत्ती जिसमें नसों का जालीदार फैलाव है।

यानी जहाँ से पत्तियाँ निकलती हैं वे स्थान और दो गाँठों के बीच की जगहें बराबर मिलती जाती हैं। परन्तु बिलकुल सिरे पर हमको यह बात नज़र आती है कि वहाँ पर गाँठों के बीच की जगह अभी लम्बी नहीं हुई है और छोटी छोटी पत्तियाँ जो अभी बढ़ रही हैं एक ही जगह सिरे पर जमा हैं और बढ़नेवाले सिरे के चारों तरफ़ लपटी हुई हैं। यह कसी हुई बनावट जो करीब करीब हर एक तनों या शाख़ों के सिरे पर पाई जाती है सिरे की कली कहलाती है। यानी एक हिसाब से कली को बिना बढ़ा हुआ अंकुर कहना चाहिये।

यह बात याद रखना चाहिये कि सब शाख़ें पहले कलियों ही से बनती या निकलती हैं और ये कलियाँ बाज़ू की कलियाँ कहलाती हैं और पत्ती के बगल में यानी पत्ती के और मुख्य-शाख़ के बीच में रहती हैं। इन्हीं बाज़ू वाली कलियों से शाख़ें बढ़ निकलती हैं।

अक्सर यह भी होता है कि या तो आप ही आप और या हवा पानी के असर से ये कलियाँ सोती रहती हैं और एक ख़ास वक़्त काम आती हैं। इसका मतलब यह है कि बहुत सी कलियों से तो शाख़ें बढ़ निकलती हैं लेकिन अक्सर ज़रूरत के वक़्त जब मुख्य तना और उसकी शाख़ें बरबाद हो जाती हैं तब यह सोती हुई कलियाँ ज़ोर पकड़ती हैं और इनसे फिर अंकुर निकल कर बढ़ते हैं।

शेष फिर

———